भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी

[खंड २ : इंडोयूरोपियन परिवार की भारतीय पृष्ठभूमि]

भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी

[खंड २ : इंडोयूरोपियन परिवार की भारतीय पृष्ठभूमि]

रामविलास शर्मा

नयी दिल्ली पटना

मूल्य : रु.१[illegible]५.००

प्रथम संस्करण : १९८०

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२

मुद्रक : अजय प्रिंटर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

BHARAT KE PRACHIN BHASHA PARIVAR AUR HINDI-2
A philological study *by* Dr. Ram Bilas Sharma.

भूमिका

इंडोयूरोपियन परिवार में यूरुप की अधिकांश भाषाएँ हैं, ईरानी क्षेत्र की भाषाएँ हैं, कश्मीर के उत्तर में तुखारी से लेकर वर्तमान तुर्की में कभी बोली जानेवाली हित्ती भाषा है। इस विशाल भूखण्ड की प्राचीन और नवीन भाषाओं की पृष्ठभूमि में हैं भारत की आर्य और आर्येतर भाषाएँ। प्राचीन काल में, एक आर्यभाषा नहीं, अनेक आर्यभाषाएँ बोली जाती थीं। हिन्दी प्रदेश की जनपदीय भाषाओं में उन प्राचीन आर्य-भाषाओं की कुछ विशेषताएँ सुरक्षित हैं। इंडोयूरोपियन परिवार की भाषाओं का सम्बन्ध किसी एक प्राचीन आर्यभाषा से नहीं है, अनेक प्राचीन आर्यभाषाओं से है। कोसल, मगध, कुरु आदि प्राचीन गणसमाजों की भाषाओं की कुछ पहचान हो जाय, तो भारत से बाहर की इंडोयूरोपियन भाषाओं के विवेचन में सुविधा होगी। इस कारण पुस्तक में आर्यभाषाओं का विवेचन पहले है, इंडोयूरोपियन परिवार का विवेचन बाद को है।

इंडोयूरोपियन परिवार हिन्दी और अन्य आर्यभाषाओं से दूर स्थित कोई ऐसा भाषा-समुदाय नहीं है जिससे कभी हमारा कुछ सम्बन्ध रहा हो किन्तु जिसकी पहचान हिन्दी के विवेचन के लिए अनावश्यक हो। बहुतों की धारणा है कि इंडोयूरोपियन परिवार से हमारा जो भी सम्बन्ध था, वह वैदिक भाषा तक सीमित है; उसके बाद हिन्दी का विकास समझने के लिए संस्कृत की पृष्ठभूमि काफी है। वास्तविक स्थिति इससे भिन्न है। अनेक आर्यभाषाओं से अनेक इंडोयूरोपियन भाषाओं का शताब्दियों तक भिन्न प्रकार का सम्बन्ध रहा है। इस दीर्घकालीन पेचीदा सम्बन्ध का ज्ञान अपनी भाषाओं का विकास समझने के लिए आवश्यक है। इंडोयूरोपियन भाषाओं के विवेचन से प्राचीन आर्यभाषाओं की उन विशेषताओं की पुष्टि होती है जिनका उल्लेख पहले खण्ड में हो चुका है। इसके सिवा हिन्दी का विकास कोई अद्भुत व्यापार नहीं रह जाता, वह एक बृहत्तर विकास-प्रक्रिया का अंग दिखाई देने लगता है। संस्कृत संश्लिष्ट भाषा है, हिन्दी विश्लिष्ट है; अंग्रेज़ी की तुलना में जर्मन संश्लिष्ट है, हिन्दी की तुलना में अंग्रेज़ी और भी विश्लिष्ट है। उत्तरकालीन संस्कृत में कृदन्तों का ज़ोर है, यही स्थिति फ़ारसी की है। ईरानी क्षेत्र की पश्तो जैसी भाषा का जितना सम्बन्ध फ़ारसी

से है, उससे ज़्यादा उसका सम्बन्ध भारतीय आर्यभाषाओं से है। पश्तो, बलोची, कुर्द आदि ईरानी क्षेत्र की भाषाओं के ग़ैर-फ़ारसी तत्वों पर ध्यान दिये बिना भारतीय आर्यभाषाओं की ऐतिहासिक भूमिका समझ ही में न आयेगी। इस भूमिका में द्रविड़ भाषाओं का योगदान महत्वपूर्ण है। बृहत्तर भारत पर ध्यान दें तो इंडोयूरोपियन परिवार के विवेचन में उसकी भारतीय पृष्ठभूमि का विवेचन अनिवार्य है; उसी तरह भारतीय भाषाओं, आर्य और आर्येतर दोनों समुदायों की भाषाओं, के विवेचन में उनकी इंडोयूरोपियन पृष्ठभूमि का विवेचन अनिवार्य है।

इस खण्ड के सातवें अध्याय में सुमेरी, सामी, तुर्क मंगोल आदि ग़ैर इंडो-यूरोपियन भाषाओं का संक्षिप्त विवेचन है। इससे मध्य और पश्चिमी एशिया का भाषाई मानचित्र यूरुप और भारत से सम्बद्ध दिखाई देगा और बृहत्तर भाषाई क्षेत्र में अनेक भाषा-परिवारों के विश्लेषण की पद्धति सार्थक प्रतीत होगी। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान के लिए आवश्यक सामग्री केवल प्राचीन भाषाओं से नहीं, आधुनिक भाषाओं से भी प्राप्त होती है, केवल मानक भाषाओं से नहीं, पिछड़े हुए समाजों की बोलियों से भी होती है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के विकास के लिए भाषा-सर्वेक्षण अत्यन्त आवश्यक है, अन्तिम अध्याय में इस तथ्य की ओर मैंने ध्यान दिलाया है।

आगरा, —रामविलास शर्मा

२२. ६. ८०

विषय-सूची

इंडोयूरोपियन परिवार की भारतीय पृष्ठभूमि

१

भारतीय भाषा परिवार और इंडोयूरोपियन ध्वनितंत्र

१. अक्षर-ध्वनियों का बहुकेन्द्रीय विकास

भारत में चार भाषा परिवार मुख्य हैं, आर्य, द्रविड़, कोल (अथवा मुंडा) और नाग (अथवा चीनी तिब्बती या तिब्बती बर्मी)। अत्यन्त प्राचीनकाल से ये परिवार एक दूसरे को प्रभावित करते आये हैं। भारत का आर्य भाषा परिवार इंडोयूरोपियन परिवार की शाखा माना जाता है। देखना चाहिए कि इंडोयूरोपियन परिवार से न केवल आर्य, वरन् भारत के अन्य भाषा परिवारों का भी सम्बन्ध है या नहीं, और है तो किस प्रकार का है। सबसे पहले हम आर्य और द्रविड़ भाषा परिवारों की कुछ ध्वनितन्त्र-सम्बन्धी विशेषताओं पर विचार करेंगे।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में किसी भाषा परिवार की प्राचीन और नवीन भाषाओं की प्राप्त सामग्री के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा उस परिवार को जन्म देने वाली आदिभाषा के मूलतत्वों की कल्पना की जाती है। इन मूलतत्वों में सबसे पहले ध्वनि-तत्वों के प्रसार और परिवर्तन पर विचार किया जाता है। भाषाशास्त्रियों ने बड़े परिश्रम से ध्वनि-परिवर्तन के नियम निर्धारित किये हैं और इनमें एक सम्प्रदाय का कहना है कि ये नियम अटल हैं। यदि कहीं कोई अपवाद दिखाई देता है तो उसका अपवाद जैसा दिखना हमारे अज्ञान का परिणाम है। प्रयत्नपूर्वक अनुसन्धान करने से ऐसे अपवादों को भी नियमबद्ध किया जा सकता है। इंडोयूरोपियन परिवार की भाषाओं का तुलनात्मक और ऐतिहासिक विवेचन सबसे अधिक किया गया है। उसी पद्धति का अनुसरण करते हुए विद्वानों ने द्रविड़, कोल और नाग-परिवारों की भाषाओं का विवेचन किया है और प्रत्येक परिवार की आदिभाषा की मूल ध्वनियों की स्थापना की है।

भाषाओं के तुलनात्मक और ऐतिहासिक विवेचन से एक तथ्य जो बहुत साफ़ दिखाई देने लगता है, वह यह है कि किसी भी भाषा परिवार की मूल ध्वनियों का विकास एक से अधिक केन्द्रों में होता है। इन केन्द्रों के परस्पर सम्पर्क में आने के कारण

ध्वनि-तत्व एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचते हैं, और क्रमशः वे ध्वनितन्त्र की एक ही व्यवस्था के अन्तर्गत संगठित होते हैं, जिससे आभास यह होने लगता है कि यह व्यवस्था आरम्भ से ही ऐसी है, और उसके मूल ध्वनि-तत्व सदा इस प्रकार संगठित रहे हैं। किन्तु यह आभासमात्र है; वह परीक्षा से सत्य सिद्ध नहीं होता।

संसार की भाषाओं में जिन ध्वनियों का सबसे व्यापक प्रयोग होता है, वे **क्, त्, प्** हैं। संसार की बहुत कम ऐसी भाषाएँ हैं जिनमें इनका प्रयोग नहीं होता, फिर भी ऐसी भाषाएँ हैं। यूरुप के एक बहुत बड़े ध्वनिशास्त्री त्रुबेत्सकोय थे। उन्होंने ध्वनि-तन्त्र पर अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में बताया है कि यूरुप की कुछ स्लाव बोलियों में **क्** ध्वनि नहीं है, उधर अलास्का की कुछ आदिवासी भाषाओं में **प्** ध्वनि नहीं है। जिन स्लाव बोलियों का उन्होंने उल्लेख किया है, वे इंडोयूरोपियन परिवार के अन्तर्गत हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि ये भाषाएँ, चारों ओर **क्** ध्वनि का निरन्तर व्यवहार करने वाली भाषाओं से घिरी होने पर भी, आदिभाषा की **क्**-जैसी व्यापक ध्वनि का व्यवहार करना भूल गईं।

संस्कृत में दो शब्द **स्कम्भ** और **स्तम्भ** एक ही अर्थ व्यक्त करते हैं। एक में क्रियामूल है **स्क**, दूसरे में क्रियामूल है **स्त**। ध्वनि-परिवर्तन के किस नियम से **क्** ध्वनि **त्** बनेगी अथवा **त्** ध्वनि **क्** रूप ग्रहण करेगी? या कोई अन्य ध्वनि थी जिससे **क्** और **त्** दोनों ध्वनियों का विकास हुआ?

जर्मन विद्वान् ब्रुगमन ने इंडोजर्मैनिक परिवार की भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने वाले अपने ग्रन्थ के चौथे खण्ड में इन दोनों शब्दों का उल्लेख करते हुए स्वीकार किया है कि इन्हें "एक ही मूल रूप से, नियमपूर्वक निकला हुआ, सिद्ध नहीं किया जा सकता।" (ब्रुगमन, खण्ड ४, पृष्ठ २३७)।

हिन्दी में एक क्रिया है **खड़े होना**। इस **खड़े** का प्रतिरूप अवधी में **ठाढ़** है। जैसे **स्कम्भ** का हिन्दी रूप **खम्भ** या **खम्भा** है, वैसे ही किसी प्राचीन **स्कध** रूप से **खड़े** बना है। फ़ारसी में इसी **स्क** वाले क्रियामूल से **खाना** शब्द बनता है जो संस्कृत **स्थान** का प्रतिरूप है। भारत की उत्तर-पश्चिमी बोली—खड़ी बोली—का **खड़े** अब हिन्दी का मानक रूप बन गया है। **खड़े** और **ठाढ़** का विकास-क्रम देखने से ज्ञात होता है कि **स्क** का व्यवहार-क्षेत्र उत्तर-पश्चिमी था और **स्त** का मध्यदेश।

यूनान की प्राचीन बोलियों के बारे में यथेष्ट सामग्री प्राप्त है। उनमें इस तरह के प्रतिरूप हैं: **कइओ, दइओ**—जलाना; **किस्, तिस्**—कोई एक; **के, ते**—क्यों, कैसे; **कोस्, पोस्**—इस प्रकार; **कोते, पोते**—कब; **तेस्सारेस्, पिसुरेस्**—चार; **पेन्ते, पेम्पे**—पाँच। यदि कोई भाषाविज्ञानी ऐसे नियम बता दे जिनके अनुसार स्वयं ग्रीक भाषा-समुदाय में ध्वनि-परिवर्तन होता है तो ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का मार्ग सुगम हो जाय। प्राचीन ग्रीक भाषाओं के एक विशेषज्ञ अमरीकी विद्वान् बक हैं। ग्रीक और लैटिन भाषाओं के अपने व्याकरण में उन्होंने लिखा है: "कुछ बोलियों में ऐसे रूप मिलते हैं जहाँ सर्वनामों में सामान्यतः **प्** अथवा **त्** के बदले **क्** का व्यवहार होता है, यथा आयोनियन में **पोस्** के लिए **कोस्** और थेसालियन में **तिस्** के लिए **किस्** का व्यवहार

होता है।" (बक : **कम्पैरेटिव ग्रामर ग्रौफ़ ग्रीक ऐन्ड लैटिन**, शिकागो, १६५६; पृष्ठ १२८)। इस तरह के प्रयोगों में जो विभिन्नता दिखाई देती है, बक के अनुसार उसकी कोई सन्तोषजनक व्याख्या नहीं की गई।

यूरुप की एक भाषा और है जिसमें किसी समय **क्**, **त्**, **प्**, ये तीनों ध्वनियाँ एक साथ विद्यमान न थीं। लैटिन भाषा में अनेक भाषा-स्रोतों से आये हुए तत्व दिखाई देते हैं। इनमें एक भाषा ऐसी थी जिसमें **प्** ध्वनि नहीं थी। इसलिए जब वह **प्** ध्वनि वाले शब्द लेती थी तब **प्** के स्थान पर **क्** ध्वनि का व्यवहार करती थी, **प्** का ओष्ठ्य तत्व **व्** रूप में जोड़ देती थी। इस प्रकार **प्** के स्थान पर **क्व्** का व्यवहार होता था। ग्रीक भाषा में अनेक **प्** से आरम्भ होने वाले प्रश्नवाचक शब्द हैं यथा : **पोथेन्**—कहाँ से; **पोइग्रोस्**—कैसा; **पोऊ**—कौन; **पे** (तथा **प**)—कैसे। इनके समानान्तर लैटिन के प्रश्नवाचक शब्द **क्व** रूप वाले इस तरह के हैं : **क्वा**—कैसे; **क्वो**—कहाँ; **क्विद्**—क्यों; **क्विस्**—कौन; **क्वान्तो**—कितना। यह बात ध्यान देने की है कि लैटिन की पड़ोसी इटली की अन्य प्राचीन भाषाएँ **प्** से ही प्रश्नवाचक चिन्ह बनाती थीं यथा उम्ब्रियन **पिस्**—कौन। लैटिन में **क्व्** ध्वनि का व्यवहार इटली की ही पड़ोसी भाषाओं से शब्द लेते समय हुआ हो, या ग्रीक भाषा से शब्द लेते समय हुआ हो, **प्** के लिए उसमें **क्व्** ध्वनि का व्यवहार अवश्य हुआ है।

प्रश्नसूचक शब्दों के अलावा अन्य प्रकार के शब्दों में भी **प्-क्व्** वाला समीकरण दिखाई देता है। ग्रीक भाषा-समुदाय में संस्कृत **पंच** के दो प्रतिरूप हैं : **पेन्ते** और **पेम्पे**। दूसरे प्रतिरूप को लैटिन ने ग्रहण किया तो उसका रूप बना **क्विन्क्वे**। इसी प्रकार उम्ब्रियन के **पेतुर्** का लैटिन प्रतिरूप है **क्वत्तुग्रोर**—चार।

जब एक ही भाषा में **क्**, **त्**, **प्** ध्वनियों का विषम विकास दिखाई देता है, तब दो पड़ोसी भाषाओं में इस वैषम्य के चिन्ह मिलना और भी स्वाभाविक है। ग्रीक **लुकॉस्** का लैटिन प्रतिरूप है **लुपुस्**—भेड़िया। एक में **क्**, दूसरी में **प्**।

क्, **त्**, **प्** की तरह **ग्**, **द्**, **ब्** ध्वनियों का विकास भी भिन्न केन्द्रों में हुआ है। इसलिए ग्रीक भाषा में एक रूप है **ग्रोबेलोस्**, तो दूसरा रूप है **ग्रोदेलोस्**—नुकीला खम्भा। एक रूप है **ब्लेफरोन्**, तो दूसरा रूप है, **ग्लेफरोन्**—भौंह।

ऐसे अनेक शब्द हैं जहाँ एक रूप में अघोष ध्वनि है तो दूसरे रूप में अन्य वर्ग की सघोष ध्वनि विद्यमान है। यथा : **लपरोस्**, **लगरोस्**—शिथिल; **दइग्रो**, **कइग्रो**—जलाना। संस्कृत **गर्भ** के ग्रीक प्रतिरूप **देल्फोस्** में **ग्** के स्थान पर **द्** हो, तो इस पर आश्चर्य न होना चाहिए।

द्रविड़ भाषाओं में प्रश्नवाचक शब्द कहीं तो प-वर्ग की ध्वनियों से आरम्भ होते हैं और कहीं त-वर्ग की ध्वनियों से। यथा गोंडी भाषा में **बोल्**—कौन; **बाह्**—क्या; **बद्**—कौन; **बेगा**—कहाँ; **बस्के**—कब। तुलु भाषा में **द**, **दाने**, **दाव**—क्या; **दाय**—क्यों; कोलमि भाषा में **तानेद्**, **तानेव्**—क्या; **ताङ्**, **तागलेङ्**, **तन्दुङ्**—क्यों; नइकि भाषा में **ता**, **ताने**—क्या; कन्नड़ में **दारु**—कौन; कोत भाषा में **दार्**—कौन; ब्राहूइ में **दे**, **देर्**—कौन; कॉडगु भाषा में **दारि**—कौन। इन उदाहरणों से

सिद्ध होता है कि द्रविड़ भाषाओं में प्रश्नवाचक शब्द त-वर्ग और प-वर्ग, दोनों वर्गों की ध्वनियों से आरम्भ होते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि इन दोनों वर्गों की ध्वनियों का विकास द्रविड़ भाषाओं के भिन्न केन्द्रों में हुआ।

किसी आदि इंडोयूरोपियन भाषा में आदिकाल से **क्, त्, प्** ध्वनियाँ विद्यमान थीं, यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है। इसी प्रकार किसी आदि द्रविड़ भाषा की कल्पना करना जिसमें आदिकाल से **क्, त्, प्**, ध्वनियाँ एक साथ विद्यमान रही हों, भ्रान्तिपूर्ण है। जब **क्, त्, प्**, जैसी अति सामान्य, विश्व-भाषाओं में अत्यन्त व्यापक रूप से व्यवहृत होने वाली, ध्वनियों का यह हाल है, तब जो ध्वनियाँ विश्व-भाषाओं में विरल हैं, उनका विशेष केन्द्रों में विकसित होना सहज ही अनुमेय है।

क्, त्, प् ध्वनियाँ जितना ही विश्व-भाषाओं में व्यापक हैं, उतना ही **घ्, ध्, भ्** ध्वनियों का व्यवहार सीमित है। इन ध्वनियों की विशेषता यह है कि इनमें सघोषता के साथ महाप्राणता का सामंजस्य है। संसार की अधिकांश भाषाओं में स्पर्श ध्वनियाँ यदि सघोष होती हैं तो महाप्राण नहीं होतीं, यदि महाप्राण होती हैं तो सघोष नहीं होतीं। अधिकांश भाषाओं के बोलने वाले या तो **ग्, द्, ब्** सघोष ध्वनियों का व्यवहार करेंगे, या **ख्, थ्, फ्** महाप्राण ध्वनियों का व्यवहार करेंगे। **घ्, ध्, भ्** ध्वनियों में सघोषता से महाप्राणता को मिलाना होता है, अधिकांश भाषाओं के लिए यह कठिन क्रिया है। ध्वनिशास्त्री जब सघोषता और महाप्राणता का विवेचन करते हैं, तब वे उदाहरण के लिए केवल भारत की भाषाओं का उल्लेख करते हैं जहाँ दोनों लक्षणों का सामंजस्य दिखाई देता है।

इन **घ्, ध्, भ्** ध्वनियों के अस्तित्व की कल्पना आदि इंडोयूरोपियन भाषा में की गयी है। किसी कारण इन ध्वनियों का व्यवहार भारत ही में सीमित रह गया। भारत से बाहर ईरान से लेकर इंग्लैण्ड और आइसलैण्ड तक कहीं भी इन भाषाओं के व्यवहार का प्रमाण नहीं है। जिन भाषाओं को वैदिक भाषा से भी प्राचीन माना जाता है, जैसे हित्ती भाषा, उनके दस्तावेजों में भी इन ध्वनियों का व्यवहार नहीं है। इससे यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि ये ध्वनियाँ विशुद्ध भारतीय हैं और भारत के बाहर केवल इनके प्रतिरूप दिखाई देते हैं, वहाँ उनका व्यवहार न होना था। तथाकथित भारत-ईरानी शाखा में भी इन ध्वनियों का व्यवहार सिद्ध नहीं किया जा सकता। वैदिक भाषा और प्राचीन ईरानी भाषा में व्याकरण और शब्द-भण्डार की जबर्दस्त समानता है। इसी समानता के आधार पर इस शाखा की कल्पना की गई है। किन्तु इस शाखा की भारतीय प्रशाखा में ही इन ध्वनियों का व्यवहार होता है, ईरानी प्रशाखा में—आर्यों के भारत-प्रवेश से पहले ही—उनके अस्तित्व का लोप हो गया है।

भारत में आर्य भाषा परिवार के अतिरिक्त जिन तीन अन्य परिवारों की भाषाएं बोली जाती हैं, उनमें कहीं भी उनके अपने शब्दों में इन सघोष महाप्राण ध्वनियों का व्यवहार नहीं होता। जहाँ होता है, वहाँ आर्य भाषा परिवार के प्रभाव के कारण, इस परिवार से उधार लिये हुए शब्दों में होता है; उन परिवारों के मूल शब्द-भण्डार में उनका व्यवहार नहीं होता। आर्य परिवार से भिन्न भारत की अनेक

भाषाओं की वर्णमाला में ये ध्वनियाँ शामिल कर ली गई हैं। इसका कारण यह है कि संस्कृत की वर्णमाला में जिस क्रम से वर्णों को रखा गया है, उससे इन भाषाओं की वर्णमाला प्रभावित है। संस्कृत वर्णमाला के लिए जिस लिपि या जिन लिपियों का व्यवहार होता आया है, उसने या उन्होंने इन भाषाओं की लिपियों को प्रभावित किया है। यह स्थिति भारत के उत्तर में तिब्बत से लेकर भारत के दक्षिण में कम्पूचिया (कम्बोज) तक है। इससे यह भ्रम न उत्पन्न होना चाहिए कि इन भाषाओं में इस कोटि की ध्वनियों का व्यवहार होता है।

द्रविड़, कोल, नाग, इन तीनों परिवारों की भाषाएँ बोलने वाले भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से रहते आये हैं। कहा जाता है कि आर्यों ने द्रविड़ों को परास्त किया और उन्हें अपना दास बनाया। न्यूनाधिक मात्रा में उन्होंने यही व्यवहार कोल और नागजनों के साथ किया। यदि यह बात सही हो तो मानना होगा कि मुट्ठी-भर आर्य आक्रमणकारी ऐसे देश में आ गये थे जहाँ की बहुसंख्यक जनता का भाषाई परिवेश **घ्, ध्, भ्** जैसी ध्वनियों के लिए प्रतिकूल था। इस विरोधी परिवेश में दो-चार पीढ़ियों तक भी इन ध्वनियों का सुरक्षित रहना कठिन था। पर वैदिक काल से लेकर अब तक, कम से कम चार हज़ार साल तक, इन ध्वनियों का अविच्छिन्न व्यवहार भारत में होता आया है। नाग-कोल-द्रविड़ भाषाओं के ध्वनि-सागर में आक्रमण-कारियों की इन ध्वनियों को डूबकर कभी का लुप्त हो जाना चाहिए था। यूरुप में इस तरह के विरोधी भाषाई परिवेश का प्रमाण नहीं मिलता। वहाँ तो इनका लोप हो गया और भारत जैसे देश के विरोधी परिवेश में ये ध्वनियाँ कायम रहीं! इसका कारण क्या है? कारण पर भाषाविज्ञानी विचार करना आवश्यक नहीं समझते। इन ध्वनियों के लिए यूरुप और भारत के भाषाई परिवेशों में मौलिक अन्तर था, एक नहीं तीन-तीन भाषा परिवारों का ध्वनितन्त्र—इस सन्दर्भ में—संस्कृत के ध्वनितंत्र से भिन्न था, भाषाशास्त्री समस्या को इस रूप में प्रस्तुत ही नहीं करते। इनमें वही भाषाशास्त्री नहीं हैं जो इंडोयूरोपियन परिवार के विशेषज्ञ हैं, इनमें अंग्रेज़ बरो और अमरीकी एमेनो जैसे विद्वान् हैं जो संस्कृत के साथ द्रविड़ भाषाओं के भी विशेषज्ञ हैं। बरो ने कोल भाषाओं पर भी बहुत कुछ लिखा है।

यदि हम इस बात पर ध्यान दें कि **क्, त्, प्** जैसी बहुप्रयुक्त विश्वजनीन व्यापक ध्वनियों का विकास विभिन्न केन्द्रों में हुआ है, तो यह समझना आसान होगा कि **घ्, ध्, भ्** जैसी विरल ध्वनियों का विकास कुछ विशेष केन्द्रों में ही हुआ होगा। **स्कम्भ** और **स्तम्भ** की तरह **स्कंध** और **स्कम्भ** की मिसाल से यह मानना चाहिए कि **क्, त्, प्** की तरह घ्, **ध्, भ्** का विकास भिन्न केन्द्रों में हुआ था, ये तीनों सघोष महाप्राण ध्वनियाँ एक साथ एक ही केन्द्र में विकसित न हुई थीं।

स्कंध का वही अर्थ है जो **स्कम्भ** का है। मूल क्रिया में **ध** जोड़ा जाता है, भ भी जोड़ा जाता है; शब्द-निर्माण की प्रक्रिया एक ही है, रूप दो हैं, अर्थ एक ही है। **खड़े** और **ठाढ़** के प्रसंग में **स्तध** रूप का उल्लेख हुआ था। जैसे संस्कृत में **पथ** और **पन्थ** दो रूप हैं, वैसे ही **स्कध** और **स्कन्ध** दो प्राचीन रूप थे। इनका व्यवहार होता

था, इसका प्रमाण यह है कि **खड़े** का पूर्वरूप **स्कध** जैसा होगा। **स्कंध** का तो व्यवहार लिखित भाषा में होता ही था। इसी प्रकार **स्तभ** और **स्तम्भ**, **स्तध** और **स्तंध** जैसे रूपों को समझना चाहिए। **स्तंध** का अंग्रेज़ी प्रतिरूप है **स्टैण्ड**, **स्तम्भ** का एक अंग्रेज़ी प्रतिरूप है **स्टम्प** (तना) और दूसरा है **थम्ब** (अंगूठा)। **स्तध** का अंग्रेज़ी प्रतिरूप है **स्टड**— अलंकरण के लिए किसी चीज़ पर जड़ी हुई चीज़, वह खम्भा जिस पर पटिया रखी जाती हैं। पुरानी अंग्रेज़ी में एक शब्द था **स्टुडु** जिसका अर्थ था खम्भा, और इसी गोत्र के अनेक शब्द नौर्वे-स्वीडेन आदि की भाषाओं में भी मिलते हैं। **स्तभ** का अंग्रेज़ी प्रतिरूप है **स्टब**। इसका वही अर्थ है जो **स्टम्प** का है, पेड़ का तना, कोई कटी हुई चीज़ आदि। **स्तभ, स्तध, स्कंभ, स्कंध,— ध्** और **भ्** इन दोनों ध्वनियों वाले भिन्न रूपों का चलन था। निष्कर्ष यह निकला कि **घ्, ध्, भ्** ध्वनियाँ भारतीय हैं किन्तु भारत में भी इनका विकास एक ही केन्द्र में एक साथ न हुआ था।

जिन लोगों ने इंडोयूरोपियन परिवार से सम्बन्धित विवेचन-पद्धति अन्य भाषा परिवारों पर लागू की है, उनकी कठिनाइयों पर यहाँ संक्षेप में ध्यान देना उचित होगा।

कुइपर संस्कृत और इंडोयूरोपियन भाषाओं के साथ कोल परिवार के भी विशेषज्ञ हैं। इंडोयूरोपियन परिवार से सम्बन्धित ध्वनि-परिवर्तनों की व्यवस्था जिस पद्धति से निश्चित की गयी है, उसे कोल-परिवार पर लागू करने में अपनी कठिनाइयों का उल्लेख उन्होंने इस प्रकार किया है : "यह अनुभव बहुत कुछ सामान्य है कि एशिया की अनेक भाषाओं पर ध्वनि-नियम लागू करने में ऐसी कठिनाइयाँ सामने आती हैं जैसी इंडोयूरोपियन परिवार में हैं ही नहीं, या कम-से-कम इस सीमा तक नहीं हैं। इंडोनीशियाई भाषा-विज्ञान-क्षेत्र से ऐसी कठिनाइयों का समाचार बहुत पहले से आता रहा है। कभी-कभी विद्वानों में यह रुझान देखा गया है कि वे इस बात को अस्वीकार करते हैं कि तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के सामान्य तरीके यहाँ काम देंगे। शायद इससे भी अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इंडोयूरोपियन भाषाशास्त्र में 'आकस्मिक ध्वनि-नियमों' की धारणा १८७८ से निषिद्ध है, जब ब्रुगमन और होस्तहोफ़ ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि ध्वनि-नियम निरपवाद रूप से काम करते हैं। किन्तु द्रविड़ भाषाओं से सम्बन्धित पिछले दिनों के तुलनात्मक अध्ययन में इन आकस्मिक ध्वनि-नियमों का अस्तित्व, कभी मौन, कभी मुखर रूप में, स्वीकार किया गया है।

"यद्यपि यह पूर्वकल्पना की जा सकती है कि आगे चलकर इंडोयूरोपियन भाषाओं की तरह इन भाषाओं पर भी यह सिद्धान्त लागू होगा कि ध्वनि-सम्बन्धी विकास कठोर नियमों के अनुसार ही होता है, और 'आकस्मिक' विकास यहाँ भी ग़लत साबित होगा, किन्तु वास्तव में इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कठिनाइयाँ तो हैं। मुंडा भाषाओं के अध्ययन में इन कठिनाइयों का परिमाण असाधारण है। शब्द-भण्डार का एक बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा है जिसकी व्याख्या अटल ध्वनि-नियमों के अनुसार करना असम्भव जान पड़ता है। इस कठिनाई के कारण अनेक सिद्धान्तों की रचना की गई है।" (**लिंगुआ**, संख्या १४, १९६५)।

अन्य भाषा परिवारों की अपेक्षा इंडोयूरोपियन परिवार में परिनिष्ठित भाषाओं की संख्या अधिक है। इनमें सर्वाधिक परिनिष्ठित भाषा संस्कृत का व्याकरण भी सर्वाधिक व्यवस्थित है। इस स्थिति का प्रभाव सारे ध्वनितन्त्र-सम्बन्धी विवेचन पर पड़ा है। अधिकतर परिनिष्ठित भाषाओं के आधार पर आदि भाषा के मूल तत्वों की कल्पना की गई और ध्वनि-नियम बनाये गये। प्राकृतिक विज्ञान की देखादेखी ये नियम भी अटल माने गये। ध्वनि-परिवर्तन की रीतियाँ होती हैं, निश्चित अटल नियम नहीं होते। ब्रुगमन से पहले भाषाविज्ञानी इन रीतियों (पैटर्न) पर ही अधिक ज़ोर देते थे। रीतियों के स्थान पर नियमों को नव्य व्याकरण-पंथियों ने स्थापित किया। प्राचीन और आधुनिक कालों में उक्त परिनिष्ठित भाषाओं के समानान्तर व्यवहार में आने वाली अन्य भाषाओं से बहु-विधि सामग्री सुलभ रही है किन्तु उस पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। परिनिष्ठित भाषाओं के आधार पर जो नियम बनाये गये, उनके बहुत से अपवाद निकल आये। अपवादों की व्याख्या में, नियम-रचना में कौशल और कल्पना से काफी काम लिया गया। नियम बनाने वालों की कुछ कठिनाइयों के नमूने हम आगे देखेंगे।

इंडोयूरोपियन परिवार की अपेक्षा द्रविड़ परिवार में कम भाषाओं के मानक रूप स्थिर हुए हैं। द्रविड़ परिवार की तुलना में कोल परिवार के अन्तर्गत परिनिष्ठित भाषाओं की संख्या और भी कम है। यही कारण है कि द्रविड़ परिवार पर इंडो-यूरोपियन ध्वनि-नियमों का साँचा जमाने में काफी कठिनाइयाँ पैदा हुईं और कोल परिवार पर वैसा ही साँचा जमाना असम्भव हो गया।

भाषाविज्ञानी जल्दी हार नहीं मानते। निश्चित ध्वनि-नियमों के साथ उन्होंने कुछ आकस्मिक ध्वनि-नियम बना लिये। एक ही भाषा परिवार के ध्वनि-तथ्यों को व्यवस्थित करने के लिए उन्होंने नियमों का एक प्रधान वर्ग बनाया। जो तथ्य इन नियमों की पकड़ में न आये, उन्हें उन्होंने आकस्मिक नियमों से बाँधा। आशा करते रहे कि आगे चलकर ये दूसरे वर्ग के नियम आकस्मिक न रहेंगे।

इस तरह की कठिनाइयाँ दूर करने का उपाय यह है कि अनेक केन्द्रों में भिन्न भाषा-तत्वों के विकास और फिर एक ही भाषा-व्यवस्था में उनके संगठित होने का सिद्धान्त स्वीकार किया जाय। एक ही बीज से किसी भाषा 'परिवार' की उत्पत्ति होना सम्भव नहीं है। जो भाषाएँ एक परिवार के अन्तर्गत आगे चलकर सम्बद्ध दिखाई देती हैं, वे इससे पहले भिन्न केन्द्रों में, भिन्न स्रोतों से विकसित होकर, एक दूसरे को प्रभावित करती रही थीं। **क्, त्, प्** जैसी सामान्य ध्वनियाँ भी एक ही साथ किसी एक केन्द्र में उत्पन्न नहीं हुईं। इनसे कम सामान्य **ग्, द्, ब्** ध्वनियाँ भी अनेक केन्द्रों में विकसित हुईं। अर्थविच्छेदक लक्षण के रूप में सघोषता का विकास और प्रसार सर्वत्र नहीं हुआ। **घ्, ध्, भ्** जैसी विरल ध्वनियाँ एक सीमित क्षेत्र के केन्द्रों में विकसित हुईं। इन ध्वनियों के प्रतिरूप यूरुप की भाषाओं में देखकर उन्हें कल्पित आदि भाषा पर आरोपित करना उचित नहीं है।

२. भारतीय भाषा परिवारों में महाप्राणता और सघोषता

भारत के भाषाई मानचित्र पर हम जितना ही ध्यान देंगे, भिन्न भाषा परिवारों के परस्पर सम्बन्धों पर जितना ही विचार करेंगे, उतना ही भाषा-परिवार-निर्माण की प्रक्रिया स्पष्ट होगी। इस मानचित्र में यह क्रम बार-बार दिखाई देगा कि कोई भाषागत लक्षण किसी एक परिवार की सीमाएँ लाँघकर दूसरे में पहुँच जाता है। लक्षणों का यह प्रसार भाषा-परिवार बन जाने के बाद होता रहता है, यह तथ्य तो बहुत से भाषाविज्ञानी मानते हैं। यह प्रसार इन परिवारों के निर्माण काल में भी होता है, भाषा-तत्वों, भाषागत लक्षणों के विनिमय से ही भाषा परिवार निर्मित होते हैं, यह तथ्य अभी भाषाविज्ञानियों की दृष्टि से ओझल है।

भारत के दो प्रमुख भाषा-परिवार हैं—आर्य और द्रविड़। इनके ध्वनितन्त्र में दो बातों को लेकर मौलिक भेद है। आर्य भाषा परिवार में महाप्राण स्पर्श ध्वनियाँ हैं, द्रविड़ परिवार में इन ध्वनियों का अभाव है। पूर्ण अभाव नहीं है, महाप्राणता का लक्षण आंशिक रूप से द्रविड़-परिवार में प्रवेश कर गया है। आर्य भाषा-परिवार में सघोष ध्वनियाँ हैं, द्रविड़ परिवार में इनका प्रयोग सीमित है। महाप्राणता की तरह सघोषता का लक्षण भी आर्य परिवार से द्रविड़ परिवार में पहुँचा है। इसके प्रमाण हम आगे देखेंगे।

सबसे पहले सघोष महाप्राण स्पर्श ध्वनियों की बात करें। आर्य भाषा परिवार के बहुत से ऐसे शब्द द्रविड़ परिवार की भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं जिनमें मूलतः सघोष महाप्राण ध्वनियाँ थीं। देखना चाहिए कि द्रविड़ भाषाओं में इनकी क्या स्थिति है।

भाषाविज्ञानियों ने पुरानी तमिल में प्राप्त आर्य शब्दों की सूचियाँ बनाई हैं। उनमें से कुछ शब्द इस प्रकार हैं: **घट—कुडम्; घोर—कोरम्; धर्म—तरुमम्; धूम—तूमम्; धूर्त—तुरुत्ति; धूप—तूपम्; भिक्षा—पिच्चइ; भ्रू—पुरुवम्; भरत-कुमार—परतकुमार; भूत—पूतम्; भाग्यम्—पाक्कियम्; भोग—पोगम्**। इन उदाहरणों में आर्य परिवार के शब्दों की प्रारम्भिक ध्वनि सघोष महाप्राण है। तमिल प्रतिरूपों में उसके स्थान पर अघोष अल्पप्राण ध्वनि दिखाई देती है। आदिस्थानीय **घ्, ध्, भ्** के बदले तमिल **क्, त्, प्** ध्वनियों का व्यवहार करती है।

जब यह ध्वनि शब्द के अन्तिम वर्ण में हो—दो स्वरों के बीच में प्रयुक्त हुई हो अथवा अनुनासिक व्यंजन से उसका संयोग हुआ हो—तो उसके स्थान पर मानक तमिल में अल्पप्राण सघोष ध्वनि होगी। लिखने में वह अल्पप्राण अघोष ही दिखाई देती है पर बोलने और सुनने में वह सघोष होती है। इस तरह के शब्दों में कभी-कभी एक स्पर्श ध्वनि के स्थान पर दो स्पर्श ध्वनियों का व्यवहार होता है; ऐसे उदाहरणों में सघोष के स्थान पर अघोष व्यंजन ही रहेंगे, जैसे **गर्भ** का तमिल प्रतिरूप **करुप्पम्**, **अयोध्या** का तमिल प्रतिरूप **अयोत्ति**। यहाँ **भ्** के स्थान पर **ब्**, **ध्** के स्थान पर **द्** नहीं दिखाई देता क्योंकि स्पर्श ध्वनि का द्वित्व हुआ है। किन्तु **मागध—मागदर्; कबन्ध—कवन्दम्; सन्धि—चन्दि** अथवा **अन्दि; स्कन्ध—कन्दु; स्वयम्भु—चयम्बु**; यहाँ सघोष

महाप्राण ध्वनि के स्थान पर सघोष अल्पप्राण ध्वनि का व्यवहार किया गया है।

सघोष महाप्राण ध्वनियों के अलावा जहाँ आर्य परिवार के शब्दों में आदि स्थान पर अघोष महाप्राण ध्वनियों का व्यवहार है, वहाँ तमिल में पुनः वैसी ही प्रक्रिया दिखाई देती है। शब्द के आरम्भ में **ख्**, **थ्**, **फ्** ध्वनियाँ होंगी तो वे **क्**, **त्**, **प्** रूपों में बोली जायेंगी। यथा **खंड—कंडम्**; **स्थूण—तूण**; **फलम्—पळम्**; **फाल्गुन—पङ्ङुनि**; **स्फटिक—पलिङ्ङु**। स्वरों के बीच में आने पर यदि स्पर्श ध्वनि का द्वित्व न हुआ तो वह सघोष होगी। **मुख—मुगम्**, **मेखला—मेगलइ**, **रेखा—एगइ**, **कंठ—कण्डि**, **कुठार—कुडारि**, **नाथ—नादर**, **उलुखल—उलक्कइ**, **मैथुन—मैत्तुनन्**, **तीर्थम्—तीर्त्तम्**, **गोष्ठी—कोट्टि**। मध्यवर्ती अघोष महाप्राण ध्वनि के साथ तमिल वैसा ही व्यवहार करती है जैसा सघोष महाप्राण ध्वनि के साथ। मूल भेद महाप्राणता को लेकर है।

तमिल भाषा का वर्तमान क्षेत्र संस्कृत के पुराने केन्द्रों से सर्वाधिक दूर है। कुछ उधार लिये हुए शब्दों के अलावा, अथवा शिक्षित जनों द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्दों को छोड़कर, तमिल में महाप्राण ध्वनियों का अभाव है। इसके विपरीत द्रविड़ परिवार की जो भाषाएँ आर्य परिवार के भाषा-केन्द्रों के निकट हैं, उनमें महाप्राण ध्वनियों का व्यवहार अपेक्षाकृत अधिक होता है। तमिल **कण्** (आँख) का ब्राहूइ प्रतिरूप **ख़न्** है। कुड़ुख और मल्तो में महाप्राण **ख़्** ध्वनि का व्यवहार होता है। यह संस्कृत और हिन्दी की स्पर्श ध्वनि नहीं है वरन् फ़ारसी के **ख़्** से मिलती-जुलती संघर्षी ध्वनि है। आर्य भाषा परिवार के कुछ शब्द ब्राहूइ में अपनी महाप्राणता सुरक्षित किये रहते हैं जबकि इसके विपरीत तमिल में महाप्राणता का लोप हो जाता है। यथा तमिल क्रिया **कुत्तु** का ब्राहूइ प्रतिरूप है **ख़ुत्तिङ्**। इन दोनों का अर्थ है खोदना, और स्पष्ट ही दोनों का स्रोत हिन्दी की **खोदना** क्रिया है। द्रविड़ परिवार की उत्तरी शाखा में महाप्राण ध्वनियों के नाम पर **ख़्** का ही व्यवहार अधिक होता है। **थ्** ध्वनि कुड़ुख और मल्तो में प्रयुक्त होती है; तोद भाषा में इसका संघर्षी रूप काम में आता है। ब्राहूइ में इसका व्यवहार नहीं होता। जिन द्रविड़ भाषाओं में इसका व्यवहार होता है, उनमें यह ध्वनि शब्द के आरम्भ में नहीं आती; उसका प्रयोग मध्यवर्ती ध्वनि के रूप में ही होता है। **फ्** ध्वनि अत्यन्त विरल है और द्रविड़ भाषाओं के ध्वनितन्त्र का विश्लेषण करने वाले उसका उल्लेख भी नहीं करते। ब्राहूइ के कुछ शब्दों में इसका प्रयोग देखा जाता है।

इस विवेचन से ज्ञात होता है कि महाप्राणता का लक्षण द्रविड़ भाषाओं में अत्यन्त सीमित है, उसका व्यवहार बहुत थोड़ी द्रविड़ भाषाओं में होता है, और जहाँ होता है, उसका कारण आर्य परिवार का पड़ोस है। तोद भाषा सुदूर दक्षिण में है; यह सम्भव है कि संघर्षी **थ्** के प्रयोग की विशेषता यह भाषा अपने साथ उत्तर से ले गई हो। इसमें कई लक्षण ऐसे हैं जो इसे पड़ोसी द्रविड़ भाषाओं से अलग करते हैं।

तमिल भाषा की कुछ बोलियों में शब्द के आरम्भ में आनेवाली **क्**, **त्** ध्वनियाँ किंचित् महाप्राणता के संयोग से बोली जाती हैं। यह महाप्राणता अर्थ-विच्छेदक नहीं होती।

महाप्राणता के प्रसंग में ह् ध्वनि की चर्चा भी करनी चाहिए। द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ध्वनिशास्त्री जिस आदि द्रविड़ भाषा की कल्पना करते हैं, उसमें इस ध्वनि को प्रयुक्त होते नहीं दिखाते। चेक विद्वान् ज्वेलेबिल ने द्रविड़ भाषाओं के ध्वनितन्त्र का विश्लेषण ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किया है। उनके अनुसार मूल द्रविड़ भाषा में ह् ध्वनि का व्यवहार शब्द के आदि स्थान पर न होता था। इस स्थापना का कारण यह है कि ख्, थ्, फ् के समान द्रविड़ परिवार में ह् का व्यवहार भी सीमित है और कुछ ही भाषाओं में होता है। कन्नड़ भाषा में शब्द का आदिस्थानीय प् बदलकर ह् हो जाता है, फिर कुछ बोलियों में ह् का भी लोप हो जाता है। कन्नड़ के प्रभाव से अथवा कन्नड़ शब्दों को ग्रहण करने से उसकी पड़ोसी दो-तीन भाषाओं में ह् ध्वनिवाले शब्द मिलते हैं। अनेक द्रविड़ भाषाओं में ह् ध्वनि से आरम्भ होने वाले शब्दों का प्रयोग होता है किन्तु तमिल में कोई शब्द इस ध्वनि से आरम्भ न होगा। तमिल की कुछ बोलियों में मध्यवर्ती क् ध्वनि ह् में परिवर्तित होती है। ध्वनिशास्त्रियों का कहना है कि तमिलनाडु के ब्राह्मणेतर वर्ण मध्यवर्ती क् ध्वनि का उच्चारण सघोष संघर्षी ग़् के रूप में करते हैं। ब्राह्मण लोग मध्यवर्ती क् का उच्चारण संघर्षी ख़् के रूप में भी करते हैं, यह किसी ध्वनिशास्त्री ने लिखा हो तो मुझे पता नहीं। किन्तु कनैयालाल माणकलाल मुंशी विद्यापीठ के तमिल-अध्यापक पण्डित जगन्नाथ पार्थसारथी को मैंने कभी-कभी क् के स्थान पर ख़् का व्यवहार करते सुना है। वह स्वयं इसे अस्वीकार करते हैं। मध्यवर्ती क् के स्थान पर ह् का व्यवहार ब्राह्मणों की बोली में हो, यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि संस्कृत से अधिक प्रभावित होने के कारण इनकी बोली में ह् ध्वनि का व्यवहार सरलतापूर्वक होता है। ज्वेलेबिल ने बताया है कि तोद, कुड़ुख और ब्राहूइ भाषाओं में मध्यवर्ती क् का उच्चारण संघर्षी ख़् के रूप में होता है। तात्पर्य यह है कि द्रविड़ भाषाओं में मध्यवर्ती क् के स्थान पर ह् का व्यवहार अत्यन्त सीमित है।

द्रविड़ भाषाओं में ख्, थ्, फ् के साथ ह् के व्यवहार का कारण भी आर्य-परिवार का प्रभाव है।

महाप्राणता के साथ सघोषता के लक्षण पर विचार करना चाहिए। प्रश्न यह है कि द्रविड़ भाषा परिवार के निर्माण-काल में इस परिवार की भाषाओं में सघोष स्पर्श ध्वनियों का व्यवहार होता था या नहीं। कौल्डवेल का विचार था कि आदि काल में द्रविड़ भाषाओं के शब्द केवल अघोष स्पर्श ध्वनियों से आरम्भ होते थे। दो स्वरों के बीच में होने पर, अथवा अनुनासिक ध्वनि के तुरत बाद आने पर, स्पर्श ध्वनि सघोष होती थी। कौल्डवेल की यह स्थापना सही मानी जाय तो उससे सिद्ध यही होगा कि स्पर्श ध्वनियों की सघोषता अर्थ-विच्छेदक लक्षण नहीं थी। दूसरे शब्दों में द्रविड़ भाषाओं की ध्वनि-व्यवस्था में सघोषता की सक्रिय भूमिका नहीं है। उसकी भूमिका निष्क्रिय है क्योंकि अर्थ-विवेक में उससे सहायता नहीं मिलती।

द्रविड़ भाषाओं के भारतीय विशेषज्ञ भद्रिराजु कृष्णमूर्ति का विचार है कि आदि द्रविड़ भाषा में एक समय ऐसा था जब मध्यवर्ती स्पर्श ध्वनियाँ भी अघोष होती थीं;

आगे चलकर, आदि द्रविड़ भाषा काल के अन्तिम चरण में, इन मध्यवर्ती स्पर्श ध्वनियों के सघोष रूप का व्यवहार आरम्भ हुआ। कृष्णमूर्ति ने अपने मत के समर्थन में इस तथ्य का उल्लेख किया है कि द्रविड़ शब्द-भण्डार में एक भी शब्द ऐसा नहीं है जिसके आरम्भ में सघोष ध्वनि हो और उसका व्यवहार द्रविड़ भाषाओं में व्यापक रूप से होता हो। कृष्णमूर्ति के मत से मिलती-जुलती बात ज़्वेलेबिल ने कही है। उनके अनुसार ऐसी भाषाओं की संख्या अति अल्प है जिनके शब्द-मूल सघोष ध्वनियों से आरम्भ होते हों। इस प्रकार के जो शब्द-मूल मिलते हैं, द्रविड़ भाषाओं में उनका वितरण व्यवस्थित नहीं है; इसके विपरीत अघोष स्पर्श ध्वनियों का वितरण अधिक व्यापक और व्यवस्थित है।

महाप्राणता की अपेक्षा सघोषता का प्रसार ज़्यादा बड़े पैमाने पर हुआ है। तमिल भाषा शब्द के आदि स्थान पर सघोष ध्वनि का व्यवहार नहीं करती (अंग्रेज़ी जैसी भाषा से कुछ उधार लिये हुए शब्द इसका अपवाद हैं।) तमिल की अपेक्षा जो द्रविड़ भाषाएँ आर्य भाषा परिवार के केन्द्रों के अधिक समीप हैं, वे शब्द के आरम्भ में सघोष ध्वनियों का व्यवहार करती हैं। कन्नड़ और तेलुगु जैसी भाषाओं में ध्वनि-शास्त्रियों ने ऐसे शब्दों की गिनती भी की है।

लिंगुआ, संख्या ३० (१९७२) में ज़्वेलेबिल ने द्रविड़ भाषाओं में स्पर्श ध्वनियों के आदिस्थानीय प्रयोग पर एक लेख लिखा था—**इनीशल् प्लोज़िव्स् इन् ड्रैवीडियन।** इसमें उन्होंने बताया है कि अनौपचारिक वार्तालाप की शैली में तमिल और मलयालम भाषाओं में अनेक शब्द सघोष स्पर्श ध्वनियों से आरम्भ होते हैं यथा : **बयों** (भय), **जन्नल्** (खिड़की), **गर्वों** (गर्व), **दर्मों** (धर्म)। अन्य भाषाओं में आदिस्थानीय सघोष ध्वनियों का व्यवहार और भी अधिक होता है। संस्कृत शब्दों के प्रतिरूप छोड़ देने पर भी काफ़ी द्रविड़ शब्द ऐसे निकल आते हैं जिनके आरम्भ में सघोष स्पर्श ध्वनि होती है। द्रविड़ भाषाओं को तीन भागों में बाँटा जाता है। दक्षिणी द्रविड़ भाषा-समुदाय में प्रति बारह शब्द के पीछे एक शब्द सघोष स्पर्श ध्वनि से आरम्भ होता है। उत्तरी द्रविड़ भाषाओं में चौदह शब्दों के पीछे ऐसा एक शब्द होता है। किन्तु मध्यवर्ती द्रविड़ भाषाओं में हर पाँच शब्दों के पीछे एक शब्द सघोष स्पर्श ध्वनि से आरम्भ होता है। ये मध्यवर्ती भाषाएँ आर्य-भाषा-केन्द्रों के सर्वाधिक समीप हैं। इनमें तेलुगु और कन्नड़ भी हैं। स्पष्ट ही सघोषता के प्रसार का कारण आर्य भाषाओं का सम्पर्क है।

इस सम्पर्क के फलस्वरूप कुछ भाषाओं में सघोष-अघोष भेद अर्थ-विच्छेदक हो गया है। द्रविड़ व्युत्पुत्ति कोष से यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। कन्नड़ भाषा में **कञ्चि**—खट्टा नीबू, **गञ्जि**—चावल का माड़; **कट्टु**—बाँधना, **गट्टु**—नदी आदि का बाँध, **कडव**—हिरन, **गडव**—मियाद; **कडि**—जोशीलापन, **गडि**—बाँस; **कॉलॅ**—मारना, **गॉलॅ**—फलों का गुच्छा। सघोष-अघोष ध्वनियों का यह भेद कन्नड़ जैसी मध्यवर्ती द्रविड़ भाषा में हो, यह स्वाभाविक है।

द्रविड़ भाषाओं में सघोषता के लक्षण का प्रवेश आर्यभाषा-परिवार के सम्पर्क

के कारण हुआ, अतः इस परिवार से जो शब्द द्रविड़ भाषाओं में पहुँचे, उनकी दो स्थितियाँ दिखाई देती हैं। एक स्थिति वह है जहाँ आदि सघोष ध्वनि सघोष हो जाती है। दूसरी स्थिति वह है जहाँ आदि सघोष ध्वनि यथावत् कायम रहती है। मानक तमिल एक परिवर्तन और करती है। यदि उधार लिये हुए मूल शब्द की मध्यवर्ती ध्वनि अघोष है तो वह उसे सघोष कर देगी। **दन्त** शब्द **तन्दम्** हो जायगा, **जन्तु** शब्द **चन्दु** (अथवा **चेन्दु**) रूप में बोला जायेगा। यदि मध्यवर्ती ध्वनि अघोष महाप्राण है, तो महाप्राणता का लोप हो जायगा और सघोषता जोड़ दी जायगी। इस प्रकार **गाथा** शब्द **कादि** रूप में ग्रहण किया गया है। पुरानी तमिल से कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं; **जाति—चादि, बन्धम्—पन्दम्, दिशा—तिजइ, दंड—तंडु; दारु—तारम्; गर्दभ—कळुदइ; दूत—तूदु; गोपाल—कोवलर्; गुरु—कुरु; दिति—तिदि; द्रोणि—तोणि; गौरी—कवुरी।**

तमिल की इस प्रवृत्ति के विपरीत कन्नड़, तेलुगु आदि भाषाएँ मूल शब्दों की आदिस्थानीय सघोष ध्वनि बहुधा सुरक्षित किये रहती हैं। संस्कृत **गारुड** तमिल में **कारडम्** है, कन्नड़ में **गारड**; संस्कृत **द्रोणि** तमिल में **तोणि** है, कन्नड़ में **दोणि**; हिन्दी **गारा** तमिल में **कारइ** है, कन्नड़ में **गारें**। षण्मुगम् पिल्लइ ने श्रीलङ्का की तमिल बोली पर **इन्डियन लिंग्विस्टिक्स** में प्रकाशित अपने लेख में यह रोचक तथ्य दिया है कि सघोष स्पर्श ध्वनियों का व्यवहार सर्वाधिक मद्रास की तमिल में होता है। मद्रास के दक्षिण में ऐसी ध्वनियों का व्यवहार क्रमशः कम होता जाता है और कन्याकुमारी तथा श्रीलङ्का की तमिल में इनका व्यवहार अल्पतम होता है। मद्रास की तमिल में सघोष स्पर्श ध्वनियों के अधिक व्यवहार का कारण उन्होंने तेलुगु का प्रभाव माना है। यह बात उचित जान पड़ती है क्योंकि द्रविड़ परिवार में तेलुगु मध्यवर्ती समुदाय में है और आर्य परिवार के निकट है।

द्रविड़ भाषा परिवार के साथ कोल और नाग परिवारों में महाप्राणता और सघोषता की क्या स्थिति है, संक्षेप में इस पर भी विचार कर लेना चाहिए।

लिंगुआ संख्या १५, १९६५ में यूजेनी जे० ए० हेन्डरसन का लेख **द टोपोग्राफ़ी ऑफ़ सर्टेन् फोनेटिक ऐण्ड मौर्फोलौजीकल् कैरैक्टरिस्टिक्स ऑफ़ साउथ ईस्ट एशियन लैंग्वेजेज** प्रकाशित हुआ है। इसमें दक्षिण-पूर्वी एशिया की भाषाओं के ध्वनितन्त्र और शब्दतन्त्र की विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इसमें बताया गया है कि ध्वनितन्त्र के विचार से यहाँ भाषाओं के दो समुदाय हैं। एक समुदाय वह है जिसमें **प्-फ्, त्-थ्, क्-ख्** वाली ध्वनि-व्यवस्था है। दूसरा समुदाय वह है जिसमें **प्-फ्-ब्-भ्, त्-थ्-द्-ध्, क्-ख्-ग्-घ्** वाली व्यवस्था है। इस दूसरी व्यवस्था के अन्तर्गत सोर-भाषा छोड़कर सभी कोल भाषाएँ हैं। खसी भाषा में अघोष बनाम सघोष महाप्राण ध्वनियाँ अर्थ-विवेक के काम आती हैं किन्तु इसमें वह ध्वनि-व्यवस्था अधूरी है: **प्-फ्-ब्-भ्; त्-थ्-द्; क्-ख् (ज्-झ्)**। जिन शब्दों के आरम्भ में सघोष महाप्राण ध्वनि प्रयुक्त होती है, वे या तो सबके सब उधार लिये हुए हैं, या अर्थ पर ज़ोर देने के लिए, विशेष मनोदशा का बोध कराने के लिए, उस ध्वनि का व्यवहार होता है। इसका एक

अपवाद है **भूर** जिसका अर्थ है साग।

शब्दों के आरम्भ में जिन ध्वनियों का अर्थ-विच्छेदक प्रयोग होता हो, उन्हें किसी भाषा परिवार के ध्वनितन्त्र का अभिन्न अंग मानना चाहिए। वे भले ही किसी समय अन्य भाषा-केन्द्रों से प्राप्त हुई हों, अब उनकी गिनती उस भाषा परिवार की मूल ध्वनि-सम्पदा में होगी। कोल भाषाओं में सघोष महाप्राण ध्वनियों का व्यवहार सीमित है। शब्दों के आरम्भ में जहाँ इन ध्वनियों का प्रयोग होता है, वहाँ या तो वे उधार लिये हुए शब्दों के साथ चली आई हैं या उनका यह प्रयोग अर्थ-विच्छेदक नहीं है, केवल बोलने वाले की मनोदशा व्यक्त करने के लिए है। सभी कोल भाषाओं में एक-सी व्यवस्था नहीं है। कुछ में **घ्, ध्** ध्वनियों का व्यवहार नहीं होता। किन्तु अघोष महाप्राण ध्वनियों का व्यवहार एकाध भाषा को छोड़कर सर्वत्र होता है।

यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि कोल भाषाओं से मिलती-जुलती जो आस्ट्रिक भाषाएँ भारत के बाहर बोली जाती हैं, उनमें सघोष महाप्राण ध्वनियों का अभाव है। भारत के बाहर जहाँ भी महाप्राण ध्वनियाँ प्रयुक्त होती हैं, वहाँ वे अघोष होती हैं, सघोष नहीं। **प्-फ्, त्-थ्, क्-ख्**—ये ध्वनियाँ कोल या आस्ट्रिक भाषा-समुदाय में, भारत के भीतर और बाहर, समान रूप से व्यवहृत होती हैं।

भाषा परिवारों की सीमाओं पर अटके न रहकर यदि विस्तृत भाषाई क्षेत्र के विशेष लक्षणों पर ध्यान दिया जाय, तो एक केन्द्र से दूसरे केन्द्रों तक इन लक्षणों के प्रसार का मानचित्र सामने आ जायगा। इस पद्धति से भाषागत लक्षणों का प्रसार देखने पर भाषा परिवारों के परम्पर सम्बन्धों का ज्ञान होता है। **लिंगुआ** संख्या १५ के उपर्युक्त लेख में महाप्राणता का लक्षण लेकर दक्षिण-पूर्वी एशिया को दो भागों में बाँटा गया है। एक भाग में महाप्राणता का लक्षण है, दूसरे भाग में अल्पप्राणता का लक्षण। इस सम्बन्ध में यूजेनी हेन्डरसन ने लिखा है : "महाप्राणता और अल्पप्राणता से यह क्षेत्र दो खण्डों में विभाजित हो जाता है। एक खण्ड में मोटे तौर पर सारा उत्तर भारतीय भाषाई क्षेत्र, तथा मुख्य भूमि पर चीनी-तिब्बती क्षेत्र आ जाता है; दूसरे खण्ड में दक्षिण-भारतीय भाषाएँ तथा द्वीपों की भाषाएँ आ जाती हैं जिनके साथ प्रशान्त महासागर में महाप्राणता के लघु क्षेत्र हैं, और मुण्डा-समुदाय तथा असम में अल्पप्राणता के लघु क्षेत्र हैं। यह भाषाई विभाजन भाषा परिवारों की स्वीकृत सीमाएँ पार कर जाता है। कारण यह है कि यहाँ एक बृहत् भाषाई क्षेत्र में चीनी-तिब्बती, भारतीय आर्य, मोन्‌ख्मेर और अधिकांश मुण्डा भाषाएँ समेट ली जाती हैं। यह क्षेत्र पुनः सघोष महाप्राणता और अघोष महाप्राणता के खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। यहाँ भी ऐसा लगता है कि हम बृहत्तर क्षेत्र से उत्तर भारतीय भाषाई क्षेत्र अलग करने में सफल हुए हैं, फिर भी हर्दि, लेप्चा और खसी भाषाओं के रूप में सघोष महाप्राणता के लघु क्षेत्र छूट जाते हैं। इनमें दो भाषाओं, लेप्चा और खसी में सघोष महाप्राणता का लक्षण पड़ोसी उत्तर भारतीय भाषाई क्षेत्र की ओर से प्रविष्ट हुआ है, यह माना जा सकता है। प्रशान्त महासागर के दूर-दूर के स्थानों में अघोष महाप्राण ध्वनियों की

विशिष्ट शृंखला गौण विकास जैसी प्रतीत होती है और वह बहुत दिलचस्प है।"

इस उद्धरण में मुख्य भूमि का आशय, द्वीप समूह छोड़कर, बृहत्तर भारत का भाषाई क्षेत्र है। इस क्षेत्र में चीनी-तिब्बती परिवार की भाषाएं आ जाती हैं जो भारत में या उसके निकट पड़ोसी देशों में बोली जाती हैं। चीनी-तिब्बती परिवार के विशेषज्ञ बेनेडिक्ट ने चीनी भाषा-समुदाय को तिब्बती-बर्मी क्षेत्र से अलग दिखाया है। हेन्डरसन ने उनसे पहले जिन चीनी-तिब्बती क्षेत्र को बृहत्तर भारत में शामिल किया है, वह वास्तव में तिब्बती-बर्मी क्षेत्र है। भाषाशास्त्र की दृष्टि से तिब्बती-बर्मी भाषाएँ बृहत्तर भारत के अन्तर्गत हैं, चीन के नहीं।

महाप्राणता और सघोष महाप्राणता दोनों के प्रसार का मुख्य केन्द्र उत्तर भारतीय क्षेत्र—ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त अथवा मध्यदेश—है। यह कल्पना करना कठिन नहीं है कि महाप्राणता और सघोष महाप्राणता के जो लक्षण इस उत्तर भारतीय केन्द्र से दक्षिण-पूर्वी एशिया में फैलते दिखाई देते हैं, वे मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया और इनकी सीमान्त भूमि यूरुप में भी प्रसारित हुए होंगे। इस दृष्टि से, यूरुप को मध्य या पश्चिमी एशिया के साथ मिलाकर, एक बृहत् भाषाई क्षेत्र का अध्ययन अभी किया नहीं गया।

हेन्डरसन ने अल्पप्राणता के क्षेत्र में दक्षिण भारत तथा पड़ोसी द्वीप समूह की भाषाओं को रखा है। दक्षिण भारत की द्रविड़ भाषाओं की मूल प्रकृति अल्पप्राणता वाली है। इसी प्रकार जिसे आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार कहा जाता है, उसकी मूल प्रकृति भी अल्पप्राणता की है। कोल भाषाएँ इसी आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार की शाखा मानी जाती हैं। इनमें महाप्राणता का लक्षण आर्य भाषा परिवार के सम्पर्क का ही परिणाम हो सकता है। जहाँ यह सम्पर्क कम रहा है, वहाँ कोल समुदाय में भी अल्पप्राणता के लघु क्षेत्र हैं। दूसरी ओर सुदूर प्रशान्त सागर में महाप्राणता के लघु क्षेत्र हैं। प्रशान्त सागर में, दूर-दूर के स्थानों में, अघोष महाप्राण व्यंजनों की विशिष्ट शृंखला दिखाई देती है। यह शृंखला निस्सन्देह बहुत दिलचस्प है क्योंकि महाप्राणता का यह लक्षण इन द्वीपों में अकारण न विकसित हुआ होगा। उनकी पड़ोसी भाषाएँ अल्पप्राण हैं। वे जिस भाषा परिवार के अन्तर्गत हैं, उसकी ध्वनिप्रकृति अल्प प्राणवाली है। आर्य भाषाओं की महाप्राण ध्वनियों से प्रभावित होने वाली भारतीय कोल भाषाओं के कुछ तत्व प्रशान्त महासागर के द्वीपों में दूर-दूर तक पहुँचे हैं, ऐसा मानना उचित होगा।

आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार से कम्पूचिया (कम्बोज) आदि प्रदेशों की मोनुख्मेर भाषाएँ भिन्न हैं। इन भाषाओं के प्रदेश से भारत का अत्यन्त प्राचीन सम्बन्ध रहा है; इस सम्बन्ध में द्रविड़ भाषाओं की अपेक्षा वहाँ आर्य भाषाएँ बोलने वालों की भूमिका प्रमुख रही है। यही कारण है कि चीनी-तिब्बती और कोल भाषाओं की तरह मोनुख्मेर भाषा-समुदाय में भी महाप्राणता के लक्षण का प्रसार हुआ है।

कहीं-कहीं पड़ोसी भाषा परिवारों से आर्य भाषा परिवार का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ रहा है कि उनमें सघोष महाप्राण ध्वनियों का भी व्यवहार होने लगा है।

हेन्डरसन ने इसे पड़ोसी उत्तर-भारतीय क्षेत्र की ओर से होने वाला प्रवेश [illegible] कहा है। सघोष महाप्राणता के सीमित प्रसार को परस्पर सम्पर्क का परिणाम कहना उचित है।

महाप्राणता से भिन्न सघोषता का लक्षण अधिक व्यापक है। इस लक्षण पर विचार करते हुए यूजेनी हेन्डरसन ने उक्त लेख में बताया है कि अधिकांश भाषाओं में **क्-त्-प्** के साथ **ग्-द्-ब्** सघोष ध्वनियों का व्यवहार होता है। इन भाषाओं को उन्होंने दो खण्डों में विभाजित किया है। पहले खण्ड में वे भाषाएँ हैं जिनमें **ग्-द्-ब्** तीनों सघोष ध्वनियाँ हैं, दूसरे खण्ड में वे भाषाएँ हैं जिनमें केवल **द्** और **ब्** हैं, **ग्** का अभाव है। इस तथ्य से पता चलता है कि सघोषता के लक्षण का प्रसार भी सर्वत्र एक-सा नहीं है। अनेक भाषाओं में केवल **द्-ब्** सघोष स्पर्श ध्वनियाँ हैं; **ग्** जैसी ध्वनि उनके यहाँ नहीं है यद्यपि अघोष **क्** उनके यहाँ है। बर्मी भाषा-समुदाय के बारे में हेन्डरसन का यह उल्लेख महत्वपूर्ण है कि शब्द के आदि स्थान पर सघोष स्पर्श ध्वनियों का व्यवहार अपेक्षाकृत विरल है। यही बात उन्होंने द्रविड़ भाषाओं के बारे में कही है। संस्कृत से उधार लिये हुए शब्दों में ही आदि स्थान पर सघोष-अघोष स्पर्श ध्वनियों में भेद किया जाता है। यह बात आंशिक रूप में सत्य है। जो द्रविड़ भाषाएँ आर्य भाषा-केन्द्रों के समीप हैं, वे आदि स्थानों पर भी सघोष ध्वनि का व्यवहार करती हैं। पर यह बात सही है कि द्रविड़ भाषाओं की ध्वनि-प्रकृति मूलतः अघोषता वाली है।

एक ओर अघोष ध्वनि-प्रकृति वाली द्रविड़ भाषाएँ, दूसरी ओर अघोष ध्वनि-प्रकृति वाली बर्मी भाषाएँ, इनसे घिरा हुआ सघोषता का मूल प्रसार केन्द्र आर्य भाषा-क्षेत्र है। इसी प्रकार सघोषता के लक्षण का अध्ययन, मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया और यूरुप के भाषा-क्षेत्रों पर एक साथ ध्यान देते हुए, करना चाहिए।

यहाँ भारतीय कोल भाषा-समुदाय के बारे में हेन्डरसन का यह उल्लेख भी महत्वपूर्ण है कि इन भाषाओं में शब्द के आदि स्थान पर **ग्-द्-ब्** का व्यवहार तो होता है, अन्त में नहीं होता।

इससे विदित होता है कि हिन्दी जैसी भाषाओं की अपेक्षा कोल समुदाय में सघोषता के लक्षण का विकास सीमित है। हेन्डरसन ने भाषाविद् [illegible] के मत की चर्चा की है जिसके अनुसार संथाली भाषा में शब्द के अन्तिम स्थान के लिए भी सघोष ध्वनियों की कल्पना की गई है। यूजेनी हेन्डरसन ने संकेत किया है कि शायद यह बात लिखित भाषा को ध्यान में रखकर कही गई है; यथार्थ उच्चारण से उसका सम्बन्ध नहीं है। संथाली में शब्द के अन्तिम स्थान पर सघोष ध्वनि का व्यवहार होता भी हो, तो भी यह निष्कर्ष अपनी जगह कायम रहता है कि आर्य भाषा परिवार की अपेक्षा कोल समुदाय में सघोष स्पर्श ध्वनियों का व्यवहार सीमित है।

नाग भाषा-परिवार के लिए बेनेडिक्ट ने कल्पना की है कि आदि नाग भाषा में **क्-त्-प्** के साथ **ग्-द्-ब्** ध्वनियाँ थीं किन्तु **ख्-थ्-फ्** जैसी अघोष महाप्राण ध्वनियाँ नहीं थीं। इस मत से इस तथ्य का संकेत मिलता है कि नाग भाषा परिवार में भी महाप्राणता की अपेक्षा सघोषता के लक्षण का प्रसार अधिक हुआ है। भारत की [illegible]

नाग भाषाओं में **ख्-थ्-फ्** का व्यवहार होता है। द्रविड़ भाषाओं से भिन्न महाप्राण ह् ध्वनि का व्यवहार सभी नाग भाषाओं में दिखाई देता है। शब्द के आदि स्थान पर सघोष-अघोष भेद अर्थ-विच्छेदक होता है। कुछ बातों में नाग और कोल भाषाएँ द्रविड़ समुदाय की अपेक्षा आर्य भाषा-परिवार से अपने सुदीर्घ और निकटतर की सूचना देती हैं।

३. इंडोयूरोपियन भाषा परिवार में महाप्राणता और सघोषता

अब देखना चाहिए कि भारत से बाहर इंडोयूरोपियन परिवार की भाषाओं में महाप्राणता और सघोषता की क्या स्थिति है। यह बात पहले कही जा चुकी है कि भारत से बाहर इस परिवार की प्राचीन या नवीन किसी भी भाषा में सघोष महाप्राण ध्वनियों का व्यवहार नहीं होता। भारत की कोल भाषाएँ आर्य परिवार से भिन्न समुदाय की हैं किन्तु आर्य परिवार से सम्पर्क के कारण उनमें सघोष महाप्राण ध्वनियों का व्यवहार, अपवाद रूप से, कुछ सीमित क्षेत्रों में होने लगा। भारत के बाहर इंडो-यूरोपियन समुदाय की भाषाएँ उसी परिवार की हैं जिसकी एक 'शाखा' भारतीय आर्य भाषाएँ हैं, पर उनमें सघोष महाप्राण ध्वनियों का व्यवहार नहीं होता।

संस्कृत के ऐसे बहुत से शब्द हैं जिनमें सघोष महाप्राण ध्वनियों का प्रयोग हुआ है। यूरुप की भाषाओं में इनके प्रतिरूप मिलते हैं। इन प्रतिरूपों में एक वर्ग ऐसे शब्दों का है जहाँ सघोष महाप्राण ध्वनि की जगह अघोष अल्पप्राण ध्वनियों का व्यवहार होता है। जैसे तमिल में संस्कृत **धरा** का प्रतिरूप **तॅरइ** है, ठीक उसी तरह लैटिन में संस्कृत **धरा** का प्रतिरूप **तॅरा** है। अंग्रेज़ी के **टॅरीटरी, टॅरीटोरियल्, टॅरेस्ट्रियल्** आदि शब्द भारतीय **धरा** के उसी लैटिन प्रतिरूप **तॅरा** से बनते हैं। इसी प्रकार संस्कृत **भक्ष्**, लैटिल **पस्को**; संस्कृत **ध्वनि**, लैटिन **तोनो** (गर्जन); संस्कृत **भर्**, लैटिन **परिओ** (ले आना), **पोर्तो** (ले जाना), ग्रीक **पोरेउओ** (लाना, ले जाना); **घर्म** के शब्द-मूल **घर** से लैटिन में **कलेओ** (गर्म होना), **कलोर्** (गर्मी); **घूर्ण** के शब्द-मूल **घूर्** से लैटिन कूर (घूमना); **भी, भय** के अनुरूप लैटिन क्रिया **पवेओ** (डरना), संज्ञा **पवोर्** (डर)।

दूसरे वर्ग में वे शब्द आते हैं जो उत्तरी द्रविड़ भाषाओं की तरह सघोष महाप्राण के स्थान पर अघोष महाप्राण ध्वनि का व्यवहार करते हैं। संस्कृत और ग्रीक भाषाओं में प्रतिरूपों के कुछ जोड़े इस प्रकार हैं : **धूम—थूमोस; मधु—मथु; भूति—फूसिस** (आन्तरिक गुण); **भद्र—फइद्रोस्** (श्रीयुक्त); **दीर्घ—दोलिखोस्; लघु—एलिखुस्**।

ग्रीक की अपेक्षा लैटिन में अघोष महाप्राण ध्वनियों का विकास कम हुआ है। ग्रीक में **ख्-थ्-फ्** तीन ध्वनियाँ हैं; लैटिन में केवल **फ़्** है। अतः सघोष महाप्राण ध्वनियों के स्थान पर लैटिन यदि किसी अघोष महाप्राण ध्वनि का व्यवहार करती है तो वह केवल **फ़्** है। संस्कृत **अर्घ**—लैटिन **अल्फ़ानो**; संस्कृत **भ्रातर्**—लैटिन **फ़्रातेर्**; संस्कृत **धूम**—लैटिन **फ़ूमुस्**। घ्-ध्-भ् तीनों के लिए एक ही ध्वनि **फ़्** का व्यवहार

हुआ है। किन्तु लैटिन में ऐसा कोई नियम नहीं है कि सघोष महाप्राण के स्थान पर **फ़्** का व्यवहार ही होगा। जैसे **धरा** के प्रतिरूप **तॅरा** में अघोष अल्पप्राण ध्वनि का व्यवहार हुआ है, वैसे ही **रुधिर** के प्रतिरूप **रुबेर्** में **घ्** के स्थान पर सघोष अल्पप्राण **ब्** का व्यवहार हुआ है। तीन प्रकार के ध्वनि-परिवर्तन का कारण यह है कि लैटिन भाषा के निर्माण में अनेक बोलियों का योगदान है। उसके शब्द-भण्डार में इन बोलियों की भिन्न प्रवृत्तियों के चिन्ह विद्यमान हैं। जैसे **धूम** के प्रतिरूप **फ़ूमुस्** में अन्य वर्ग की अघोष महाप्राण ध्वनि का व्यवहार हुआ है, वैसे ही **रुधिर** के प्रतिरूप **रुबेर्** में अन्य वर्ग की सघोष अल्पप्राण ध्वनि का व्यवहार हुआ है। ग्रीक भाषा में भी सर्वत्र सघोष महाप्राण की जगह स-वर्गीय अघोष महाप्राण ध्वनि प्रतिस्थापित नहीं होती। ग्रीक **थर्मोस्** का सम्बन्ध **घर्म** से है किन्तु प्रतिरूप में **घ्** से भिन्न वर्ग की ध्वनि का व्यवहार हुआ है।

प्राचीन ईरानी भाषा में **ख्-थ्-फ्** ध्वनियों का ही विकास हुआ था। उसमें सघोष महाप्राण ध्वनियों का अभाव है। संस्कृत **धन्वन्** का प्रतिरूप **थन्वन्, आधि** का प्रतिरूप **आथि;** इसी तरह फ़ारसी में **नाभि** का प्रतिरूप **नाफ़्, अभ्राज** का प्रतिरूप **अफ़ाज्** (श्रेष्ठ) है। फ़ारसी में सघोष महाप्राण ध्वनि के स्थान पर सघोष अल्पप्राण ध्वनि का व्यवहार भी होता है यथा **अभ्र** का प्रतिरूप **अब्र, भार** का प्रतिरूप **बार्**।

ग्रीक, लैटिन और ईरानी भाषाओं में महाप्राण-अल्पप्राण, सघोष-अघोष ध्वनियों का भेद सार्थक होता है। प्राचीन भाषा हित्ती की स्थिति इससे भिन्न है। इसमें महाप्राणता अत्यन्त सीमित है और सघोष-अघोष का भेद सन्दिग्ध है। अमरीकी विद्वान् एडगर ऐच० स्टुर्टेवैन्ट हित्ती भाषा के विशेषज्ञ हैं। उन्होंने **ए कम्पैरेटिव ग्रामर ऑफ़ द हित्ताइत लैंग्वेज्** पुस्तक लिखी है (खण्ड १, संशोधित संस्करण १९५१, येल युनिवर्सिटी)। इसमें उन्होंने महाप्राणता के बारे में यह मत व्यक्त किया है, "हित्ती दस्तावेजों में महाप्राणता का कोई चिन्ह नहीं मिलता।" (पृष्ठ ५८)। उनका यह मत सन्दिग्ध है। कारण यह कि जिस ध्वनि को वह अंग्रेज़ी वर्णमाला के ऐच् अक्षर द्वारा, उसके नीचे अर्धचन्द्र लगाकर, व्यक्त करते हैं, वह सम्भवतः संघर्षी अघोष महाप्राण कंठ्य ध्वनि **ख्** है। **सारस** का हित्ती प्रतिरूप **ख़ारस** है। यहाँ **स्** ध्वनि **ख़्** में वैसे ही परिवर्तित हुई है जैसे **शुष्क** फ़ारसी में **ख़ुश्क** हो जाता है। **अस्थि** का हित्ती प्रतिरूप **ख़स्तइ** है। मूल शब्द में अघोष अल्पप्राण **क्** ध्वनि थी। यह ध्वनि रूसी प्रतिरूप **कॉस्त्** में विद्यमान है। यह **क्** संघर्षी **ख़्** में परिवर्तित होता है और **ख़्** **ह्** में। हिन्दी शब्द **हड्डी** में यह **ह्** विद्यमान है, संस्कृत रूप **अस्थि** में उसका लोप हो गया है। भारत की अन्य भाषाओं में भी, अनेक स्थितियों में, **क्** ध्वनि **ख़्** में परिवर्तित होती है। अतः हित्ती रूप **ख़स्तइ** की आदि अक्षर-ध्वनि **ख़्** ही होनी चाहिए। संस्कृत **पृथु** का हित्ती प्रतिरूप **पलख़** है, और **भर्ग** का प्रतिरूप **ख़र्किस्** है। इन रूपों में **थ्** और **भ्** के स्थान पर एक ही ध्वनि **ख़्** का प्रयोग वैसे ही होता है जैसे लैटिन में **धूम** और **भ्रातर्** के प्रतिरूपों में एक ही ध्वनि **फ़्** का व्यवहार होता है।

हित्ती में महाप्राणता का अस्तित्व मानना चाहिए किन्तु निस्सन्देह वह अत्यन्त

सीमित है। **घरा** और **तॅरा** की तरह हित्ती में भी सघोष महाप्राण ध्वनि के स्थान पर अघोष अल्पप्राण ध्वनि का व्यवहार होता है, यथा **नभस्** का प्रतिरूप **नेपिस**, **मघ** का प्रतिरूप **मेइकिस्** (महान्), **दभ्रस्** का प्रतिरूप **तेपुस्** (छोटा), **हन्ति** (मूलरूप घन्ति) का प्रतिरूप **कुएन्चि** है।

हित्ती में सघोष-अघोष ध्वनियों में भेद किया जाता था या नहीं, यह समस्या विवादास्पद है। स्टुर्टेवैन्ट ने एक ओर यह माना है कि दस्तावेजों के लिपिक सघोष-अघोष ध्वनियों में विवेक नहीं करते, दूसरी ओर वह मानते हैं कि हित्ती भाषा में सघोष-अघोष ध्वनियों में सार्थक भेद किया जाता था। जहाँ एक ही व्यंजन दो बार लिखा जाता है, वहाँ उनके मत से अघोषता का बोध होना चाहिए। किन्तु लिपिक इस नियम का पालन नहीं करते। इसी पुस्तक में एक स्थान पर कहते हैं कि **क्-ग्**, **त्-द्** और **प्-ब्**, ये ध्वनियाँ एक दूसरे के स्थान पर अदल-बदलकर इतना अधिक लिखी जाती हैं कि उनके सघोष-अघोष भेद के बारे में कोई परिणाम नहीं निकाला जा सकता (पृष्ठ २६)। उसी पृष्ठ पर आगे कहते हैं; "अत: यह निष्कर्ष निकालना आवश्यक जान पड़ा कि हित्ती भाषा में सघोष-अघोष ध्वनियों के बीच भेद नहीं था। इस निष्कर्ष का स्वागत किया गया था क्योंकि प्राचीन निकट पूर्व की अन्य कई भाषाओं में ऐसी स्थिति प्रतीत होती थी।" वह यह मानते हैं कि हित्ती भाषा की अक्षर-ध्वनियों की व्यवस्था (फोनेमिक सिस्टम) निश्चित करना सरल नहीं है (पृष्ठ १६)। हित्ती भाषा में सघोष-अघोष ध्वनियों का भेद है, अपने इस मत के समर्थन में स्टुर्टेवैन्ट कोई पुष्ट प्रमाण नहीं दे पाये।

हित्ती भाषा के एक अन्य विशेषज्ञ अमरीकी भाषाविद् वाल्टर पीटर्सन हैं। उनका मत है कि हित्ती में सघोष-अघोष ध्वनियों का भेद अर्थ-विच्छेदक नहीं था और सम्भवतः केवल अघोष स्पर्श ध्वनि उच्चरित होती थी, कहीं शिथिल रूप में (ग्-वत्), कहीं तीव्र रूप में (क्-वत्)। फिनलैंड की भाषा में व्यंजनों का उच्चारण दीर्घ या लघु होता है। यह बात हित्ती के लिए भी सम्भव है। **लैंग्वेज** पत्रिका (खण्ड ६, १६३३) में फिनलैंड के एक विद्वान् एइनारसन का यह मत उद्धृत करने के बाद पीटर्सन इस सम्भावना पर विचार करते हैं कि आदि इंडोयूरोपियन भाषा में सघोष-अघोष ध्वनियों का जो सार्थक भेद था, वह हित्ती में केवल स्पर्श ध्वनियों के उच्चारण में शिथिल और तीव्र रूप का भेद रह गया था।

यदि द्रविड़ भाषाओं की ध्वनि-पद्धति पर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होगा कि उनमें अनेक भाषाएँ सघोष-अघोष ध्वनियों का व्यवहार करती हैं किन्तु सामान्यतः यह ध्वनि-भेद अर्थ-विच्छेदक नहीं होता। सम्भव है, यह स्थिति हित्ती में भी रही हो। इसमें तो सन्देह नहीं कि संस्कृत की सघोष महाप्राण ध्वनियों के स्थान पर, स्टुर्टेवैन्ट के अनुसार ही उसमें अघोष अल्पप्राण ध्वनियों का व्यवहार किया गया था। यदि हित्ती के ध्वनितन्त्र की तुलना तुखारी भाषा के ध्वनितन्त्र से की जाय तो इस समस्या को हल करने में सहायता मिल सकती है।

तुखारी भाषा के दस्तावेज हित्ती दस्तावेजों की अपेक्षा बहुत बाद के हैं किन्तु

भाषाविज्ञानी मानते हैं कि उसमें प्राचीनता के लक्षण हित्ती के ही समान हैं। दोनों ही भाषाएँ केन्तुम् शाखा के अन्तर्गत मानी जाती हैं। जिस भूमि-भाग में तुखारी भाषा का व्यवहार होता था, वह भारत का प्राचीन उत्तराखण्ड है। भौगोलिक दृष्टि से यह क्षेत्र भारत के अधिक समीप है। तुखारी भाषा की दो बोलियाँ हैं, दोनों में लिखे हुए दस्तावेज सुलभ हैं। ध्वनितन्त्र के विचार से दोनों में कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं है; दोनों में न तो महाप्राणता का लक्षण है, न सघोषता का। अतः बोलियों का अलग उल्लेख यहाँ अनावश्यक है। संस्कृत के सघोष महाप्राण ध्वनियों वाले शब्दों के तुखारी प्रतिरूप इस प्रकार हैं: **धाम—ताम; भाग—पाक; भ्रातर्—प्राचर्; जम्भ—कम्** (दाँत)। अघोष अल्पप्राण ध्वनियाँ सघोष महाप्राण ध्वनियों के स्थान पर प्रयुक्त होती हैं। जहाँ मूल शब्द में सघोष अल्पप्राण ध्वनि है, वहाँ भी तुखारी प्रतिरूप में अघोष अल्पप्राण ध्वनि का व्यवहार किया जाता है। यथा: **गोत्र—कोतॅर; गो—को, कउ** (हिन्दी **गाय**, अंग्रेज़ी **काऊ**), संस्कृत **गम्**—तुखारी **कम्** (अंग्रेज़ी **कम्**); **राज्—राक्**।

तुखारी भाषा के इन उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि इंडोयूरोपियन परिवार की प्राचीन भाषाओं में या तो महाप्राणता का पूर्णतः लोप है या उनका प्रयोग अत्यन्त सीमित है। इसी प्रकार सघोषता का लक्षण या तो अर्थ-विच्छेदक नहीं है या उसका पूर्णतः अभाव है। अधिकांश भाषाविज्ञानी यह मानते हैं कि भारत के उत्तर-पश्चिम में द्रविड़ जनों की बस्तियाँ थीं। भारत के द्रविड़ों ने आर्यों की भाषा को कैसे प्रभावित किया, इसकी छानबीन उन्होंने काफी की है; भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्तों पर द्रविड़ों ने इंडोयूरोपियन परिवार की अन्य भाषाओं को किस प्रकार प्रभावित किया, इसका अनुसन्धान उन्होंने नहीं किया। यदि भारत के भाषाई परिवेश में महाप्राणता और सघोषता के लक्षणों का अध्ययन करें तो पता चलेगा कि इनके केन्द्र आर्य भाषा-क्षेत्र में हैं और जिन रीतियों से ये लक्षण पड़ोसी द्रविड़-कोल-नाग भाषाओं को प्रभावित करते हैं, वे सब रीतियाँ भारत के बाहर इंडोयूरोपियन परिवार की भाषाओं में भी दिखाई देती हैं। सघोषता और महाप्राणता के लक्षणों का सुसंगत व्यवहार आर्य भाषाओं में होता है। इनका प्रसार विषम गति से नाग-द्रविड़-कोल-क्षेत्रों में हुआ और इसी प्रकार विषम गति से पश्चिमी एशिया तथा यूरुप की भाषाओं में हुआ।

ग्रीक-लैटिन की अपेक्षा यूरुप की जो भाषाएँ अर्वाचीन हैं, उनमें भी सघोषता-महाप्राणता का विकास विषम है। स्लाव भाषाएँ भारतीय आर्य परिवार की भाषाओं से घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध हैं। रूसी भाषा में **ख़्** और **फ़्** संघर्षी, अघोष, महाप्राण रूप में विद्यमान हैं, किन्तु **थ्** का अभाव है। रूसी और उक्रैनी एक ही स्लाव समुदाय की पड़ोसी भाषाएँ हैं किन्तु उक्रैनी में **फ़्** ध्वनि का अभाव है। **फ़िलिप** रूसी तथा यूरुप की अन्य भाषाओं में अत्यन्त प्रचलित नाम है। किन्तु इसके उच्चारण में उक्रैनियों को कठिनाई होती है। प्रशिक्षित जनों को छोड़ दें, तो साधारण उक्रैनी लोग **फ़िलिप** के स्थान पर **ख़्विलिप्** कहेंगे—**ख़्** संघर्षी तत्व का अनुकरण करने के लिए, और **व्** ओष्ठ्य

तत्व के अनुकरण के लिए। स्लाव भाषाओं में सघोष महाप्राण ध्वनियाँ वैसे ही नहीं हैं जैसे भारत से बाहर इंडोयूरोपियन परिवार की अन्य भाषाओं में नहीं हैं; अघोष महाप्राण ध्वनियों की भी शृंखला पूरी नहीं है और विभिन्न स्लाव भाषाओं में स्थिति अलग-अलग है। सघोषता-अघोषता का भेद सार्थक है किन्तु इस तरह का भेद शब्द के आदि स्थान वाली ध्वनि में किया जाता है, शब्द के अन्तिम स्थान में इस तरह का भेद लगभग वैसे ही नगण्य है जैसे कोल भाषाओं में।

जर्मन भाषा में महाप्राणता इसी प्रकार सीमित है। **ख्** और **फ्** ध्वनियाँ हैं, **थ्** नहीं है। अंग्रेज़ी में भी **थ्** का उच्चारण ऐसे संघर्षी रूप में होता है कि वह सीत्कार के निकट पहुँच जाता है। ग्रीक भाषा से उधार लिये हुए कुछ अंग्रेज़ी शब्दों में स्पर्श ध्वनि **थ्** का उच्चारण होता है यथा **थ्योरी, थीसिस्, थ्योरम्** में। **ह्** ध्वनि जर्मन में बहुत स्पष्ट है, अंग्रेज़ी में लिखी ज़्यादा जाती है, बोली कम जाती है। रूसी में उसका अभाव है, चेक आदि अन्य स्लाव भाषाओं में वह विद्यमान है। आइरिश लोग अपने ह्-कार-उच्चारण के लिए विख्यात हैं। अंग्रेज़ी कथा-साहित्य में उनकी इस उच्चारण विशेषता पर ज़ोर देकर अक्सर उनका मज़ाक उड़ाया जाता है।

ग्रीक और लैटिन में ह्-कार की स्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि इस ध्वनि का उच्चारण सुसंस्कृत होने का चिन्ह माना जाता था। इस कारण ग्रीक भाषा में अनावश्यक रूप से **ह्** ध्वनि जोड़ी जाने लगी। ग्रीक शब्द-कोश में कोई भी शब्द, **ह्** ध्वनि के संसर्ग के बिना, **उ** स्वर से आरम्भ नहीं होता। इस स्वर के साथ ही यह ध्वनि निरन्तर क्यों जोड़ी जाती है, यह कहना कठिन है। इसके अतिरिक्त संस्कृत **अश्व** और लैटिन **एक्वुउस्** का ग्रीक प्रतिरूप **हिप्पोस्** है जहाँ इ स्वर के साथ ह्-कार-संयोग हुआ है।

लैटिन में **ह्** का स्पष्ट उच्चारण अभिजातवर्गीय माना जाता था। लैटिन भाषा पर अपनी पुस्तक में पामर ने लिखा है कि कुछ ग्रामीण बोलियों में महाप्राण ध्वनि का लोप हो गया; देहातीपन के इस चिन्ह के खिलाफ अबोध प्रतिक्रिया हुई जिससे अति शिष्ट प्रयोगों का जन्म हुआ। ऐसे प्रयोगों का उदाहरण देते हुए वह कहते हैं कि **हुमेरुस्, हुमोर्** तथा **हउरिओ** में हकार अनावश्यक है। लैटिन की मूल प्रवृत्ति अल्प-प्राणता की थी। प्राचीन लैटिन में जहाँ यह ध्वनि थी, वहाँ आगे चलकर उसका प्रयोग कम होता गया। इस सन्दर्भ में पामर कहते हैं: "लैटिन का काकल्य **ह्** निसर्गतः अस्थिर ध्वनि था और उत्तरोत्तर उसका प्रयोग कम होता गया। जहाँ वह दो स्वरों के बीच में होता था, वहाँ ईसापूर्व तीसरी शताब्दी तक उसका लोप हो गया।··· इसके फलस्वरूप इस अक्षर का प्रयोग वर्णक्रम (सिलैब्रीफिकेशन) दिखाने के लिए होता था, यथा **अहेनुस्** की वर्तनी में, जहाँ व्युत्पत्ति की दृष्टि से वह अनावश्यक था।" (ऐल्० आर्० पामर : **द लैटिन लैंग्वेज्**, पृष्ठ २२९-२३०)।

लैटिन में जहाँ **ह्** लिखा जाता है, वहाँ वह हमेशा बोला न जाता था। ऐसी ही स्थिति अंग्रेज़ी वर्तनी की है। लैटिनभाषियों ने इस ध्वनि का व्यवहार जिनसे सीखा था, वे अवश्य अधिक सुसंस्कृत रहे होंगे। इसीलिए मौखिक और लिखित, भाषा

के दोनों, रूपों में ह् का व्यवहार उच्च संस्कृति का चिह्न माना गया था।

ग्रीक-भाषा समुदाय में ह-कार की क्षीणता और उसके लोप की स्थिति वैसी ही है जैसी लैटिन में। इंडोजर्मैनिक भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण के पहले खण्ड में ब्रुगमन ने बताया है कि पहले लेस्बियन भाषा में ह् लुप्त हुआ; आयोनियन और अत्तिक भाषाओं में उसका प्रयोग कम होता गया और ईसाई सम्वत् शुरू होते-होते उसका पूर्ण लोप हो गया। बक ने लैटिन और ग्रीक भाषाओं के व्याकरण में यही बात दोहराई है; इसके साथ आधुनिक ग्रीक के बारे में बताया है कि उसमें ह् ध्वनि का अभाव है।

किसी भाषा में ध्वनियों का लोप अकारण नहीं होता। ग्रीक भाषा-समुदाय में दो विरोधी स्रोतों से तत्व आते रहे थे। एक भारतीय आर्य स्रोत है, और दूसरा भारतीय द्रविड़-नाग-कोल-स्रोत। इनके अलावा ग्रीक भाषा-समुदाय के अपने अल्पप्राण स्रोत हो सकते हैं। भारतीय आर्य भाषाओं से ग्रीक भाषा-समुदाय की स्थिति तुलनीय है। हमारे यहाँ ह् ध्वनि सुरक्षित ही नहीं रहती, जहाँ-तहाँ भिन्न ध्वनि प्रकृति के द्रविड़ परिवार में भी वह प्रवेश करती है। उधर ग्रीक समुदाय में किसी समय व्यवहृत होने पर भी वह क्रमशः क्षीण होती जाती है। इसका कारण यह है कि वह ग्रीक भाषाओं के ध्वनितन्त्र का आवश्यक अंग नहीं बनी। द्रविड़ भाषाओं की तरह ग्रीक में उसका उच्चारण करो तो ठीक, न करो तो भी ठीक। ध्वनितन्त्र में उसका अपना कोई अर्थ-विधेयक कार्य नहीं है। यूरुप की अधिकांश भाषाओं में ह् ध्वनि की यही स्थिति है। वह उन भाषाओं के ध्वनितन्त्र का अपरिहार्य अंग नहीं है जैसे वह आर्य परिवार के ध्वनितन्त्र का है।

यूरुप की भाषाओं में महाप्राण ध्वनियों का विषम प्रसार हुआ। सघोष महाप्राण ध्वनियों के स्थान पर कुछ भाषाओं ने अघोष महाप्राण ध्वनियों का व्यवहार किया, कुछ ने सघोष अल्पप्राण ध्वनियों का। इस दूसरे वर्ग में जर्मन और स्लाव भाषाएँ मुख्य हैं। इनमें सघोषता का प्रसार महाप्राणता से अधिक हुआ था। कुछ संस्कृत शब्दों के पुराने जर्मन प्रतिरूप इस कोटि के हैं: **भ्र्—ब्राव्, नभ—नेबुल्** (बादल, कुहरा), **लुभ्—लिओब्** (प्रिय), **बन्ध्—बिन्दन्**।

इसी प्रकार पुरानी स्लाव भाषा में **भय—बोयति** (डरता है); **भग—बोगु** (देव); **घर्म** का शब्दमूल **घर्—गोरेति** (गर्म होता है)। आधुनिक रूसी में: **धाम—दोम्;—भूर्ज—ब्रेर्योज़्; दीर्घ—दोल्गो**। रूसी भाषा में अघोष महाप्राण के स्थान पर अघोष अल्पप्राण के व्यवहार की प्रवृत्ति है: संस्कृत **फेन—रूसी पेन,** ग्रीक **थॅओरिआ—रूसी-तॅओरिआ।**

रूसी और जर्मन दोनों ही भाषाओं की विशेषता है कि शब्द के अन्त में यदि सघोष **ग्-द्-ब्** ध्वनियाँ होंगी, तो उनका उच्चारण अघोषवत् होगा। **ग्-द्-ब्** ध्वनियाँ शब्द के अन्त में किसी समय अवश्य उच्चरित होती रही होंगी किन्तु जैसे लैटिन में महाप्राणता का ह्रास हुआ, वैसे ही अधिक सीमित रूप में, स्लाव और जर्मन भाषाओं में सघोषता क्षीण हुई। लिखित भाषा में वह केवल दृश्य ध्वनि (शब्द के अन्त में) रह गई है। उल्लेखनीय है कि कुछ जर्मन बोलियों में शब्दों के आरम्भ में सघोष ध्वनि है,

तो अन्य कुछ बोलियों में उसी स्थान पर अघोष ध्वनि का व्यवहार होता है, यथा गौथिक में डाग् है तो पुरानी हाई जर्मन (अर्थात् पहाड़ी जर्मन) में टाग् है। (यह शब्द **दाघ** का प्रतिरूप है जिसका अर्थ था दिन।)

भारतीय भाषा-परिवारों में कोल और नाग, दो परिवार ऐसे हैं जिनमें शब्दों के अन्त में **ग्-द्-ब्** ध्वनियाँ अघोषवत् बोली जाती हैं। यही स्थिति रूसी और जर्मन भाषाओं की है।

यूरुप की कुछ भाषाओं में द्रविड़ पद्धति से भिन्न, सघोष महाप्राण स्पर्श ध्वनियों में परिवर्तन अन्य प्रकारों से भी होता है। महाप्राण ध्वनि संघर्षी **ज्** में परिणत होती है और सघोष अल्पप्राण स्पर्श ध्वनि के साथ उसका संयोग होता है। यथा भारतीय आर्य शब्द **मेध** अवेस्ता में **म्यज्द** (बलि) में परिवर्तित होता है (**ध्**=**ह्-स्-ज्**+**द्**)। यहाँ महाप्राण ध्वनि **ध्** न तो केवल **द्** रही न **त्**, न वह **ह्** में परिवर्तित हुई। वह **ज्द्** में बदलती है। ईरानी शब्द **मज्दा** का सम्बन्ध भारतीय शब्द **मेधा** से होना चाहिए; अर्थ है ज्ञानवान्। इसी प्रकार रूसी भाषा में **मध्य** का परिवर्तित रूप **मेज्दु** है, **प्रबुद्ध** का समकक्ष रूप **प्रबुज्देनिये** है। यही प्रक्रिया जब अघोषता से प्रभावित होती है, तब सघोष **ज्** के स्थान में अघोष **स्** रहता है और सघोष **द्** का स्थान अघोष **त्** लेता है। इस प्रकार संस्कृत **बद्ध** ईरानी में **बस्त** और **बस्ता** बनता है (**अवेस्ता** इसी **बद्ध** का रूपान्तर है)। संस्कृत **अबुद्ध** का ग्रीक प्रतिरूप **अपुस्तोस्** है, संस्कृत **एध** (ईंधन) का लैटिन प्रतिरूप **ऐस्तुस्** है।

कहीं आदिस्थानीय **ध्** सघोष **ज्** में बदलता है और यह सघोष **ज्** पुनः अघोष् **स्** में परिवर्तित होता है। संस्कृत ध्वनि रूसी में **ज्वन्** है और यही **ज्वन्** पुनः परिवर्तित होकर **स्वन्** बनता है (और नाग प्रभाव से इस **स्वन्** का एक रूप **क्वण्** होता है)।

संस्कृत **धाम** का मूल अर्थ है निर्माण की हुई वस्तु। ग्रीक भाषा में **दोमोस्** शब्द का अर्थ है घर या कोई भी वस्तु जो निर्मित की गई हो। संस्कृत **धाता** और **विधाता** में यही निर्माता वाला भाव है। रूसी भाषा में **धा** शब्दमूल से **ज्दानिये** (भवन) शब्द बनता है। यहाँ भी **ध्** ध्वनि **ज्द्** में परिवर्तित हुई।

किसी समय **वध्** जैसा शब्दमूल भारत में प्रचलित था जिसका अर्थ था ले चलना, राह दिखाना। **वधू** शब्द इसी से व्युत्पन्न हुआ है। जिसे दूसरा ले जाय, वह **वधू**। रूसी भाषा से **वोझ्-द्**, **वोझाक्** शब्दों का अर्थ है नेता, **वोझातइ** का अर्थ है पथ-दर्शक। उसी **वध्** के अन्य रूप **वेध्** से रूसी क्रिया **वेस्ति** (ले जाना) बनती है। **ध्** पहले **ज्द्** में परिवर्तित हुआ फिर सघोषता का लोप होने पर **स्त्** शेष रहा।

सघोष महाप्राण स्पर्श **भ्** द्रविड़ पद्धति से **ब्** और **प्** रूपों में ग्रहण किया जाता है। पुनः यह **ब्** या **प्**, द्रविड़ भाषाओं में ही, **संघर्षी व्** में रूपान्तरित होता है। अतः संस्कृत के **भ्** मूलक शब्द ग्रीक आदि भाषाओं में **व्**-युक्त दिखाई देते हैं और जब इस **व्**-युक्त वर्ण से **व्** का भी लोप हो जाता है, तब केवल स्वर बच रहता है। यह प्रक्रिया द्रविड़ प्रभाव से संस्कृत में भी घटित होती है।

ज़्वेलेबिल ने अपने द्रविड़ ध्वनितन्त्र वाले ग्रन्थ में बताया है कि परिनिष्ठित तमिल में जहाँ **प्** वाला रूप प्रचलित है, वहाँ बोलचाल की तमिल में, विशेषतः अब्राह्मणजनों की तमिल में, **व्** वाले रूप का व्यवहार होता है। संस्कृत अभयम् परिनिष्ठित तमिल में **अबयम्** है तो बोलचाल में उसका रूप **अवयों** हो जाता है। संस्कृत **तपस्** इसी प्रकार **तपचु** और **तवचु** रूपों में बदलता है। संस्कृत **बल** तमिल में **वलि** बनता है। कन्नड़ भाषा आदि स्थान में **ब्** का व्यवहार भी करती है, तमिल उसके स्थान पर **व्** का व्यवहार करती है, यथा कन्नड़ **बान** (आकाश) तमिल में **वान्** है, कन्नड़ **बर** (आना) तमिल में **वरु** है। ब्रज से लेकर बंगाल तक आधुनिक आर्य भाषाएँ **ब्** ध्वनि का प्रयोग करती हैं, **व्** वाले शब्द को भी बदलकर **ब्** वाला रूप दे देती हैं। इसके विपरीत संस्कृत में **ब्** ध्वनि वाले शब्द बहुत कम हैं। इसका कारण यही हो सकता है कि मध्य देश और मगध **ब्**-प्रधान क्षेत्र थे और उत्तर पश्चिमी प्रदेश **व्**-प्रधान था।

हिन्दी शब्द **भेली** (गुड़ की भेली) तमिल में **वॅल्लम्** है; संस्कृत **भंडि** (गाड़ी) तमिल में **वंडि** है; हिन्दी **भाड़ा** का तमिल रूप **वारम्** है। संस्कृत में **भुज्** क्रिया का अर्थ है मुड़ना। **भुजा** वह जो मुड़ जाय। **भोग** और **भुजग** साँप को कहते हैं क्योंकि वह टेढ़ी-मेढ़ी गति से चलता है। **भंग** और **भंगिमा** के अनुरूप संस्कृत में **वंक, वक्र** आदि रूप बनते हैं। व् का लोप होने पर **अंक, अंग, अंगुलि** आदि शब्द प्राप्त होते हैं। इनसे मिलते-जुलते शब्द ग्रीक भाषा में हैं: **अंके** (भुजा), **अंकले** (मुड़ी हुई भुजा), **अंकुलोस्** (मुड़ा हुआ), **अंकोल्** (कोहनी), **अंकुरा** (लंगर), **अङ्किस्त्रोन्** (मछली पकड़ने का काँटा)। संस्कृत शब्दों के अतिरिक्त यूरुप की भाषाएँ अभारतीय शब्दों में भी इस तरह का परिवर्तन करती हैं। लैटिन भाषा का **लपिस्** (पत्थर) ग्रीक में **लअस्** बनता है। ध्वनि-परिवर्तन की यह प्रक्रिया उत्तर-पश्चिमी भारतीय भाषाओं के के अनुरूप है।

यूरुप की भाषाओं में थोड़े से शब्द ऐसे थे जिनमें **स्त्** परिवर्तित होकर **थ्** ध्वनि का रूप लेता है और यह प्रक्रिया वैसी ही है जैसे संस्कृत **स्तन** हिन्दी में **थन** हो जाता है। संस्कृत में गरजने के लिए **ध्वन्** से बने **स्तन्** और **तन्** दोनों क्रिया-रूप हैं। अंग्रेज़ी शब्द **थंडर** (गर्जन) **स्तन्** से सम्बद्ध है। लैटिन रूप **तोनारे** है और उसी के अनुरूप जर्मन शब्द **दॉन्नॉर्** है। हालैण्ड की भाषा में इसका रूप **दॉन्दॅर्** है। नौर्वे और स्वीडन के गण समाजों का 'इन्द्र' **थोर्** था; वह मेघों का गर्जन करने वाला देवता है। इससे अनुमान होता है कि जर्मन समुदाय की भाषाओं में **तन्** और **स्तन्** दोनों क्रिया रूपों का चलन था। **थोर्** और **थंडर्** का सीधा सम्बन्ध **स्तन्** वाले रूप से है। इनके अतिरिक्त ग्रीक **थम्बइनो** का अर्थ है स्तम्भित होना। **थम्बोस्** (चकित होने का भाव), **थओमइ** (आश्चर्य करना), **थउमा, थोउमा** (आश्चर्य), **थउमाज़ो** (आश्चर्य करना)—ये सभी रूप संस्कृत शब्दमूल **स्तम्भ्** से सिद्ध होते हैं। ऐसे शब्दों की संख्या थोड़ी है किन्तु उनसे यह अवश्य सिद्ध होता है कि **स्त्**—**थ्** वाली ध्वनि परिवर्तन-प्रक्रिया सीमित क्षेत्र में यूरुप में भी चालू थी। अंग्रेज़ी **थम्ब्** (अँगूठा) भी संस्कृत **स्तम्भ** का प्रतिरूप है।

घ्-ध्-भ् आर्य परिवार की मूल ध्वनियाँ हैं। द्रविड़ परिवार की भाषाओं के शब्द भण्डार का अध्ययन करने से **घ्-ध्-भ्** उसकी मूल ध्वनियाँ सिद्ध नहीं होतीं। आर्य भाषा परिवार के विकास की कोई ऐसी मंज़िल नहीं मिलती जब उसमें **क्-त्-प्** ध्वनियों का व्यवहार न होता रहा हो। फिर भी इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन ध्वनियों के आदिम विकास काल में दो मूल केन्द्र रहे होंगे, एक **घ्-ध्-भ्** का, दूसरा **क्-त्-र्** का। दोनों के सम्पर्क से ध्वनियों के दो नये वर्ग उत्पन्न हुए; एक **ख्-थ्-फ्** का, और दूसरा **ग्-द्-ब्** का। संस्कृत क्रिया **स्था** है किन्तु **स्तम्भ** शब्द में महाप्राणता के बदले अल्पप्राणता है। **धाम** शब्द के आरम्भ में सघोष महाप्राण ध्वनि है किन्तु **दम्पति** रूप में **ध्** के स्थान पर **द्** का व्यवहार हुआ है। संस्कृत में अनेक ऐसे रूप हैं जिनमें मूल सघोष महाप्राण के स्थान पर अघोष महाप्राण अथवा सघोष अल्प-प्राण, और कभी-कभी अघोष अल्पप्राण ध्वनियों का व्यवहार होता है। मूल शब्द है **अभ**। इसी से **अभ्र** रूप बनता है। **अभ** का एक संस्कृत प्रतिरूप है अंभ, दूसरा अंबु, तीसरा अप। एक क्रिया है **नाध्**; इसका वैकल्पिक रूप है **नाथ्**। इस तरह के उदाहरणों से सिद्ध होता है कि **घ्-ध्-भ्** ध्वनियों वाली बोलियाँ ऐसी बोलियों के सम्पर्क में आई थीं जिनके लिए सघोष महाप्राण ध्वनियों का उच्चारण कठिन था। यदि संस्कृत के शब्दमूलों में **घ्-ध्-भ्** और **ख्-थ्-फ्**, दो वर्गों की इन ध्वनियों की प्रयोग-बहुलता का हिसाब लगायें, तो पता चलेगा कि **घ्-ध्-भ्** की तुलना में **ख्-थ्-फ्** का प्रयोग अत्यन्त सीमित है। इससे निष्कर्ष यह निकलेगा कि आर्य परिवार की मूल महाप्राण ध्वनियाँ **घ्-ध्-भ्** ही हैं। अघोष महाप्राण ध्वनियों का विकास बाद में हुआ है।

भारत में द्रविड़ भाषा-समुदाय एकमात्र भाषा-परिवार नहीं था जो सघोष महाप्राण ध्वनियों के व्यवहार के प्रति विरोधी प्रकृति का परिचय देता था। अन्य परिवारों में भी यह प्रवृत्ति विद्यमान थी। इनमें नाग भाषा-परिवार की ध्वनि प्रकृति ध्यान देने योग्य है। बेनेडिक्ट ने अपनी चीनी-तिब्बती परिवार वाली पुस्तक में बताया है कि नाग भाषाओं में सघोषता और अघोषता का भेद तो अर्थ-विच्छेदक है किन्तु महाप्राणता और अल्पप्राणता का भेद गौण है। इस गौण भेद के बारे में कहते हैं कि शब्द के आरम्भ में जो अघोष स्पर्शध्वनि होती है, उसमें महाप्राणता का संयोग किया जाता है (पृष्ठ २०)। यदि यह स्मरण करें कि उत्तरी द्रविड़ भाषाओं में अक्सर **क्** के स्थान पर **ख्** का प्रयोग होता है तो नागभाषाओं से इस प्रवृत्ति की समानता देखी जा सकेगी। महाप्राणता नाग-परिवार का मूल लक्षण नहीं है। महाप्राणता मूल लक्षण होती तो अर्थ-विच्छेदक होती। यह लक्षण इस परिवार ने आर्य भाषा-समुदाय से ग्रहण किया है और उसके प्रयोग की एक रीति उसने निश्चित कर ली है। शब्द के आरम्भ में अल्पप्राण ध्वनि से महाप्राणता का संयोग हो जायगा। यह प्रवृत्ति वैसी ही है जैसी तमिल आदि द्रविड़ भाषाओं की यह प्रवृत्ति कि मध्यवर्ती अघोष ध्वनि सघोष हो जायगी। जैसे द्रविड़ परिवार में सघोषता का लक्षण मूलतः अर्थ-विच्छेदक नहीं रहा, वैसे ही नाग-परिवार में महाप्राणता उसका मूल लक्षण नहीं है। जैसे आर्य भाषा परि-वार के अनेक शब्दों में मध्यवर्ती अघोष ध्वनि सघोष हो गई है—यथा **काक—काग**,

लोक—लोग, वैसे ही नाग भाषा-परिवार की महाप्राणता-सम्बन्धी रीति के प्रभाव से **स्थान** और **स्तम्भ** जैसे रूपों का भेद उत्पन्न हुआ हो, यह सम्भव है।

नाग भाषा-परिवार की उक्त विशेषता को ध्यान में रखने से यह सम्भावना पुष्ट होती है कि संस्कृत में **ख्-थ्-फ्** ध्वनियों वाले शब्दमूल जो बहुत कम हैं सो इसका कारण आर्य भाषाओं पर नाग भाषाओं का सीमित प्रभाव है (यद्यपि इस प्रभाव का स्रोत—महाप्राणता—नागभाषाओं को आर्य परिवार से ही प्राप्त हुआ था)। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के विद्वान् जब अपनी आदि इंडोयूरोपियन भाषा के ध्वनितन्त्र में **ख्-थ्-फ्** के अस्तित्व पर विचार करते हैं, तो स्वभावतः संशय में पड़ जाते हैं। उन्हें इस बात का पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता कि उस आदि भाषा में इनका व्यवहार होता था। संस्कृत की शब्द-राशि सामने होने से यह भी दृढ़तापूर्वक नहीं कह सकते कि आदि भाषा में इनका व्यवहार होता ही नहीं था। भारत के समग्र भाषाई परिवेश को ध्यान में रखते हुए, आर्य और नाग भाषा परिवारों के परस्पर सम्पर्क पर विचार करने से, सम्भव है, इस समस्या का समाधान मिल जाय।

ख्-थ्-फ् की तुलना में **ग्-द्-ब्** का व्यवहार इंडोयूरोपियन भाषाओं में अधिक होता है। इनमें **ब्** की स्थिति संदिग्ध मानी गई है। लैटिन और ग्रीक में **ब्** से आरम्भ होने वाले बहुत से शब्द हैं किन्तु अन्य शाखाओं में उनके प्रतिरूप कम मिलते हैं। संस्कृत में **ब्** की अपेक्षा **व्** ध्वनि अधिक सुसंस्कृत मानी जाने लगी, इस कारण भी संस्कृत में **ब्** का प्रयोग सीमित हुआ। **ग्** और **द्** के बारे में भाषाविज्ञानियों को सन्देह नहीं है कि ये आदि इंडोयूरोपियन भाषा की मूल ध्वनियाँ हैं।

यदि संस्कृत के शब्द-मूलों पर इस दृष्टि से विचार करें कि इनमें **क्-त्-प्** ध्वनियों का आदिस्थानीय प्रयोग अधिक है या **ग्-द्-ब्** का, तो इस विषय में सन्देह न रहेगा कि **क्-त्-प्** ध्वनियों का व्यवहार ही अधिक हुआ है। संस्कृत का कोई भी कोष उठाकर इन ध्वनियों के व्यवहार का मोटा हिसाब लगाया जा सकता है। संस्कृत में ऐसे अनेक शब्द हैं जिनमें सघोष अघोष ध्वनियों का वैकल्पिक प्रयोग दिखाई देता है यथा **कर्व्** क्रिया का अर्थ है गर्व करना। इसका वैकल्पिक रूप **गर्व** है। संस्कृत रूप **कोचति** का अर्थ है ऊँची आवाज़ करना; यह स्पष्ट ही **घोष्** का प्रतिरूप है जहाँ सघोष महाप्राणता के स्थान पर अघोष अल्पप्राण ध्वनि प्रतिष्ठित हुई है। संस्कृत में **गुल्फ, कुल्फ** जैसे वैकल्पिक रूप यह सिद्ध करते हैं कि सघोषता का लक्षण किसी अन्य भाषा-परिवार के प्रभाव के कारण अस्थिर है। संस्कृत शब्द-मूलों में जो महत्व **घ्-ध्-भ्** का है वह **क्-त्-प्** का नहीं है। इससे यह सम्भावना सामने आती है कि **घ्-ध्-भ्** वर्ग से **क्-त्-प्** वर्ग का संयोग होने पर **ग्-द्-ब्** के नये वर्ग की सृष्टि हुई।

४. नाग भाषा परिवार और संघर्षीकरण

क्-त्-प् चाहे मूलतः आर्य परिवार की ध्वनियाँ हों, चाहे द्रविड़ परिवार की, चाहे इन दोनों की सामान्य ध्वनियाँ हों, दोनों परिवारों में इनके कायाकल्प का इतिहास शिक्षाप्रद है। दोनों ही परिवारों में ये ध्वनियाँ निरन्तर किसी ऐसे भाषा-समुदाय से

प्रभावित होती हैं जिससे उनका अस्तित्व संकट में पड़ जाता है। शब्द के आदि स्थान में उनके लिए ख़तरा कम रहता है किन्तु मध्यवर्ती स्थान में—मध्यवर्ती से आशय है दो स्वरों के बीच की स्थिति से—बहुधा उनका रूप-परिवर्तन होता है या लोप हो जाता है। प्राकृत भाषाओं में व्यंजनों के लोप की यह प्रक्रिया अतिरंजित जान पड़ती है, फिर भी उसका वास्तविक आधार है। स्पर्श ध्वनियाँ अकस्मात्, अकारण, लुप्त नहीं हो जातीं; उनके लुप्त होने की एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का अध्ययन भारत की आधुनिक भाषाओं के सन्दर्भ में भी सम्भव है।

तमिल भाषा के ध्वनितन्त्र का विवरण देते हुए तमिल व्याकरण पर अपनी पुस्तक में सोवियत संघ के विद्वान् आन्द्रोनोव ने यह मत प्रकट किया है कि इस भाषा की मध्यवर्ती ध्वनियाँ सघोष होती हैं और स्पर्श होने के बदले संघर्षी होती हैं। एक शब्द **मकन्** है; **क्** ध्वनि सघोष होगी, **क्** बदलकर **ग्** होगा, और यह **ग्** ध्वनि संघर्षी **ग़्** रूप धारण करेगी। इसी प्रकार **त्** और **प्**, **द्** और **ब्** में परिवर्तित होकर सघोष रूप धारण कर फिर संघर्षी बनेंगे। तमिलभाषी भाषाविज्ञानियों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि **त्** और **प्** में इस तरह का परिवर्तन नहीं होता। केवल **क्** कुछ बोलियों में संघर्षी **ग़्** में बदलता है। ज़्वेलेबिल ने केवल मध्यवर्ती **क्** के बारे में लिखा है कि वह ब्राह्मणों की बोली में **ह्** में बदलता है और अब्राह्मणों की बोली में संघर्षी **ग़्** बनता है। इस सम्बन्ध में मेरा कहना यह है कि कुछ शिक्षित तमिलभाषी मध्यवर्ती **क्** के स्थान पर संघर्षी महाप्राण **ख़्** का उच्चारण करते हैं। यह **ख़्** ही **ह्** में बदलता है, संघर्षी **ग़्** **ह्** में नहीं बदलता। **त्** और **प्** की स्थिति कुछ अधिक मजबूत है किन्तु उनका परिवर्तन भी होता है, **ह्** में नहीं, अन्य अन्तस्थ ध्वनियों में। इसकी चर्चा आगे करेंगे। जहाँ **क्-त्-प्** का द्वित्व होता है, वहाँ ये ध्वनियाँ सुरक्षित रहती हैं। वास्तव में यह द्वित्व-प्रक्रिया व्यंजनों की सुरक्षा के लिए ईजाद की हुई प्रक्रिया है। किसी वैयाकरण ने अथवा पण्डितों के समाज ने सोच-विचारकर उसे जन्म नहीं दिया; द्रविड़ भाषा-भाषियों के सहज बोध ने उसकी सृष्टि की है। इसी प्रकार नासिक्य ध्वनि का संसर्ग होने पर उसके बाद आने वाली स्पर्श ध्वनि का संघर्षीकरण नहीं होता और उसके ह-कार में बदलने या लुप्त होने की सम्भावना नहीं रहती। तमिल में **ब्** ध्वनि केवल अनुनासिक ध्वनि के बाद आती है। दो स्वरों के बीच में आने पर **प्** ध्वनि **व्** में बदल जाती है। **कूम्बु, कूप्पु, कुवि** (बन्द होना जैसे फूल का); **कूबु** या **कुबि** रूप न होगा।

द्रविड़ भाषा-परिवार में कन्नड़ एक ऐसी भाषा है जो आदिस्थानीय **प्** को **ह्** में बदलती है और जनसाधारण की बोलचाल में कभी-कभी यह ह-कार लुप्त हो जाता है। कन्नड़ भाषा में **प्—ह्** परिवर्तन-प्रक्रिया के बारे में ए० ऐन्० नरसिंह ने **बुलेटिन ऑफ़ द स्कूल ऑफ़ ओरिएन्टल स्टडीज़** के ग्रियर्सन को समर्पित अंक (१६३६) में एक लेख लिखा था : **द हिस्ट्री ऑफ़ पी इन कनरीज़**। इसमें उन्होंने बताया है कि कन्नड़ भाषा में नवीं शताब्दी तक **प्** ध्वनि का व्यवहार होता था। आदिस्थानीय **प्** के बदले **ह्** के व्यवहार के प्रमाण दसवीं शताब्दी से मिलने लगते हैं। मठों आदि को दी हुई भूमि के आज्ञा-पत्रों में जो गद्य है, उसमें **ह्** का व्यवहार अधिक है, पद्य में कम। तेरहवीं

शताब्दी में **प्** के स्थान पर प्रतिष्ठित होने वाले **ह्** का लोप होने लगता है। मूलशब्द **पोगु**, परिवर्तित रूप **होगु**, ह् के लोप के बाद **ओगु** (जाना)। वर्तमान स्थिति के बारे में उन्होंने लिखा है : "आजकल अशिक्षित जनों की बोलचाल में **प्** का स्थान लेने वाला **ह्** प्राय: लुप्त हो गया है। **प्** के बाद जो स्वर आता है, वह किसी भी प्रकार का हो, स्थानापन्न **ह्** लुप्त हो जाता है। अशिक्षित लोग शिष्ट भाषा बोलने के प्रयास में कभी-कभी अपनी ओर से **ह्** जोड़ देते हैं जहाँ वह व्युत्पत्ति-विचार से अनावश्यक है।"

अनावश्यक **ह्** जोड़ने वाली प्रवृत्ति लैटिन और ग्रीक भाषाओं का व्यवहार करते वालों की याद दिलाती है। ह् का उच्चारण शिष्टता का चिन्ह माना जाता था। पुन: ब्राह्मणों की तमिल में ह् के स्पष्ट उच्चारण की बात कही गई है। इन सभी भाषाओं की मूल प्रवृत्ति अल्पप्राणता की ओर है; अत: सामान्य जनों की बोलचाल में ह् का लोप होता दिखाई देता है। लिखित भाषा का व्यवहार शिक्षित जन करते हैं, इसलिए वे उन रूपों को बहुत दिनों तक बनाये रहते हैं जो बोलचाल में नष्ट हो गये हैं। कन्नड़ में नवीं शताब्दी तक आदिस्थानीय **प्** का व्यवहार लिखित भाषा में अवश्य होता रहा होगा किन्तु साधारणजनों की बोलचाल में इसका लोप बहुत पहले हो चुका होगा। जो प्रवृत्ति कन्नड़ भाषा में है, वही प्रवृत्ति आर्मीनियन और आइरिश भाषाओं में भी है।

किसी समय यह **प्** संघर्षी **फ़्** में बदलता था। फिर यह संघर्षी **फ़्** ध्वनि बदलकर काकल्य महाप्राण **ह्** बनी। यह प्रक्रिया पूर्वी बंगाल की बोलियों में आधुनिक काल में देखी जा सकती है। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने बँगला भाषा के उद्भव और विकास पर अपने ग्रन्थ में इसके अनेक उदाहरण दिये हैं। इन बोलियों में **पाप—फ़ाफ़, पूजा—फ़ूजा, पूत—फ़ूत**—इस तरह के परिवर्तन देखे जाते हैं। **पूत** के दो रूप होंगे : एक **फ़ूत**, दूसरा **हूत**। इसी तरह **पेट** के दो रूप : **फ़ेट** और **हेट**। डा० चाटुर्ज्या कहते हैं कि इस **फ़्** के उच्चारण में ओंठ इतने खुले रहते हैं कि सुनने में ध्वनि अघोष ह् जैसी लगती है। डा० चाटुर्ज्या के विवरण से कन्नड़ में **प्** ध्वनि के परिवर्तन की प्रक्रिया समझी जा सकती है। संघर्षी **फ़्** या **ख़्** ध्वनि इस ढंग से उच्चारित की जा सकती है कि वह ह् जैसी लगे। यही कारण है कि डा० पार्थसारथी के उच्चारण में मध्यवर्ती **क्** मुझे संघर्षी **ख़्** सुनाई देता था किन्तु उन्हें प्रतीति ह् की होती थी। ध्वनि-विश्लेषण में किसी भाषा के स्वर या व्यंजन एक दूसरे से जितना भिन्न दिखाये जाते हैं, उतना होते नहीं हैं। दो देशों या दो सेनाओं के बीच में जैसे अनिर्धारित भूमि होती है जिस पर किसी का निश्चित अधिकार नहीं होता, वैसे ही ध्वनियों का एक संध्यालोक है, जहाँ यह कहना कठिन होगा कि जो ध्वनि हमने सुनी है, वह **ख़्** है या ह्, **फ़्** है या ह्। इसलिए प्राकृतिक नियमों के समान जो लोग ध्वनि-परिवर्तन के अटल नियम कायम करते हैं, वे प्रकृति का एक नियम यह भूल जाते हैं कि दिन और रात के बीच में कुछ समय ऐसा होता है जो न दिन होता है न रात।

ध्वनियों की इसी द्वन्द्वात्मक संयोग-वियोग-प्रक्रिया से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय भाषाओं में अनेक व्यंजनों के स्थान पर ह् का व्यवहार क्यों होता है अथवा

व्यंजनों का पूर्ण लोप क्यों हो जाता है।

पूर्वी बंगाल की बोलियाँ नागभाषा-क्षेत्र से घिरी हुई हैं। डा० चाटुर्ज्या ने इस स्थिति की ओर उचित ही ध्यान दिलाया है। **क्-त्-प्** के उच्चारण में महाप्राणता का योग नाग-भाषाओं की विशेषता है। इसी परिवार की कुछ भाषाएँ संघर्षी ध्वनियों का व्यापक प्रयोग करती हैं। बेनेडिक्ट की पुस्तक में हमें इस तरह के उदाहरण मिलते हैं। रोने के लिए कनौरी में शब्द है **कप्**, इसका कचिन भाषा में रूप है—**ख़प्**, मगरि में इसका रूप है **ह्रप्**, और ह् का लोप होने से इस भाषा में इसका वैकल्पिक रूप रह जाता है **रप्**। इसी तरह तिब्बती-बर्मी समुदाय की एक भाषा में घर के लिए शब्द है **किम्**, तो दूसरी में शब्द है **खिम्** और तीसरी में शब्द है **हिम्**। नाग परिवार की सभी भाषाओं की ध्वनि-प्रकृति एक-सी नहीं है। कहीं संघर्षी ध्वनि है, कहीं नहीं है, कहीं अल्पप्राण अघोष स्पर्श ध्वनि कायम रहती है, कहीं बदल जाती है। इसके दो कारण हो सकते हैं। नाग भाषाएँ किसी ऐसे भाषा-समुदाय से प्रभावित हुई हैं जिसमें अघोष अल्पप्राण स्पर्श ध्वनियों का अभाव था, केवल संघर्षी अघोष महाप्राण ध्वनियों **ख़्, थ़्, फ़्** का व्यवहार होता था। इस भाषा-समुदाय का प्रभाव नाग परिवार पर विषम रूप में पड़ा, कहीं कम कहीं ज्यादा, कहीं बिल्कुल नहीं। दूसरा कारण यह हो सकता है कि संघर्षी तत्व आर्य भाषाओं के प्रभाव से क्षीण हो गया हो और अघोष अल्पप्राण तथा अघोष महाप्राण दोनों प्रकार की स्पर्श ध्वनियों का चलन हुआ हो। जो भी हो, यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि स्पर्श ध्वनियों के परिवर्तन की यह प्रक्रिया बहुत स्पष्ट रूप में उन क्षेत्रों में देखी जाती है जिनमें नाग भाषाओं का बाहुल्य है। पूर्वी बंगाल की बोलियों के कुछ उदाहरण और लें। **टका** शब्द का बँगला प्रतिरूप है **टाका**। इसके अन्य पूर्वी बँगला के प्रतिरूप हैं **टाख़ा, टाग़ा, टाहा**। यहाँ तमिल भाषा के मध्यवर्ती **क्** के सारे रूपान्तर—ब्राह्मण-अब्राह्मण बोली-भेद के बिना—एक साथ मिल जाते हैं। संघर्षी महाप्राण अघोष **ख़्** है, संघर्षी सघोष अल्पप्राण **ग़्** है और संघर्षी **ख़्** से विकसित होने वाला काकल्य महाप्राण **ह्** है। **सकल** शब्द बदलकर **हअल** होगा, और फिर दो स्वरों के मिलने से **हाल** हो जायगा। इसी तरह **शकुन—होउन; शिकल—हीओल;** डाकिबो—**डाइबो** (बुलाऊँगा); **दोकान** (दुकान)—**दोआन; मोकद्दमा** (मुकदमा)—**मोख़दमा, मोहदमा; हाकिम—आहिम;** मुल्लुके—मुल्लुख़े, **मुल्लुहे, मुल्लुग़े; काली—ख़ाली; किछु—ख़िसु; कथा—ख़था;** और **ढाका—डाख़ा, डाहा, डाग़ा** (प्राग और प्राहा की तरह)।

इससे मिलती-जुलती स्थिति कोल भाषाओं में दिखाई देती है। **लिंगुआ** संख्या १४ में कुइपर ने जो व्यंजन-विकल्प पर—**कौन्सोनेन्ट वेरिएशन इन मुंडा**—निबन्ध लिखा है, उसमें उन्होंने स्पर्श व्यंजनों के ह-कार में बदलने के बहुत से उदाहरण दिए हैं, यथा कुड़ुख़ भाषा में **कोन्** (बेटा), **काकू** (मछली), **कोरो** (पुरुष), **कोइयो** (हवा), **कोलोम्** (आटा) शब्दों के, इसी क्रम से, संथाली में प्रतिरूप हैं: **होन्, हको, होड़्, होए, होलोङ्**। कभी-कभी इस तरह के विकल्प एक ही भाषा में मिलते हैं। संथाली में **क्** और **ह्** वाले वैकल्पिक रूपों की भरमार है। **कलोबतो—हलोबतो**

(अज्ञानी), **कोएदो—होएदो** (निरावरण), **कोन्दे—होम्बे** (टेढ़ा)। **क्** के अलावा जहाँ **ग्** है, वहाँ भी ऐसा वैकल्पिक प्रयोग देखा जाता है। यथा **गद गद—हद हद** (भीड़-भाड़ सहित), **गिलोङ् गोलोङ्—हिलोङ् होलोङ्** (धीमे-धीमे)। जहाँ **ख्** और **घ्** महाप्राण व्यंजन हैं, वे तो ह-कार में वैकल्पिक रूप से बदलते ही हैं। ऐसा लगता है कि भारत के भाषा-परिवारों में कोल समुदाय ही उस प्रवृत्ति से सर्वाधिक प्रभावित हुआ है जो स्पर्श व्यंजनों को पहले संघर्षी रूप देती है, फिर उन्हें ह-कार में बदलती है। स्वाभाविक है कि कन्नड़ की तरह यहाँ भी आदिस्थानीय **प्** ह-कार में परिवर्तित हो, यथा संथाली में **पोगोएआ—होगोया** (स्त्रियों का बेपर्द होकर बैठना)। इसके साथ ही द्रविड़ भाषाओं की तरह इस ह-कार का लोप भी हो जाता है यथा संथाली में **गोलमाल** बदलकर **गुलमाल** हुआ, फिर **हुलमाल**, पुन: उसका वैकल्पिक रूप बना **उलमाल; कण्ड्रुज—होण्ड्रोज, ओण्ड्रोज** (पें पें करना)। इससे प्रतीत होता है कि अनेक भाषा-परिवार कोल भाषाओं को प्रभावित करते रहे हैं और उनमें वैकल्पिक रूपों की अधिकता का यही कारण है।

यूरुप की भाषाओं में जहाँ तहाँ मध्यवर्ती स्पर्श (या संघर्षी) ध्वनियों का लोप होता है। जर्मन-अंग्रेज़ी के कुछ प्रतिरूप इस प्रकार हैं : **फ़ोगेल्—फ़ाउल्** (चिड़िया), **रेगिल—रूल** (शासन), **रेगेन्—रेन्** (उप०) **फ़्लीगेन—फ़्लाई** (उड़ना)। ध्वनि-परिवर्तन की प्रक्रिया यहाँ भारतीय भाषाओं की उक्त प्रक्रिया के अनुरूप है।

कोल-द्रविड़ भाषाओं की तरह यूरुप की अनेक भाषाओं में **क्-त्-प्** की स्थिति परिवर्तनशील है। विशेष रूप से **प्** के परिवर्तन की प्रक्रिया कन्नड़ तथा पूर्वी बंगाल की बोलियों में **प्** के परिवर्तन से मिलती है। भारतीय आर्यभाषा में जहाँ **प्** है, वहाँ जर्मन में **फ़्** का व्यवहार होता है। यथा संस्कृत **पितर्** का ग्रीक प्रतिरूप **पतेर्** है, पुरानी जर्मन में **फ़ाडर् या फ़ादर्** है। आर्मीनियन में यह **प्** या **फ़्** बदलकर **ह्** हो जाता है। वहाँ इसी **फ़ादर्** का प्रतिरूप है **हइर**। आइरिश भाषा में ह-कार का लोप हो जाता है और रूप बनता है **अथिर**। पुराने जर्मन रूप में **द्** या **थ्** संघर्षी ध्वनि रहा होगा। आर्मीनियन में उसका लोप हो जाता है, आइरिश में मूल अल्पप्राण ध्वनि महाप्राणता से संयुक्त होकर कायम रहती है किन्तु आरम्भिक ह-कार का लोप हो जाता है। संस्कृत **पर** का पुराना जर्मन (गौथिक) रूप **फ़इर** है, इसी से अंग्रेज़ी **फ़ार्** (दूर) बनता है। आर्मीनियन में इसका प्रतिरूप है **हेरि**। संस्कृत क्रिया **पत्** (उड़ना) से जैसे **पत्र** बनता है, वैसे ही अंग्रेज़ी में **फ़ेदर्** (पंख), **प्** को **फ़्** में परिवर्तित करके बनता है। इसी से पक्षी के लिए **पेन्** शब्द बना होगा। **प्—फ़्—ह्** परिवर्तनक्रम से यह शब्द **हेन्** होगा जिसका अर्थ अंग्रेज़ी में मुर्गी है। पुरानी आइरिश में ह-कार का लोप होने के बाद **एन्** रूप बनता है जिसका अर्थ है पक्षी। संस्कृत **विपुल** में **पुल** शब्द-मूल है, जिसका अर्थ है बहुत, अधिक। इसका ग्रीक प्रतिरूप **पोलुस्** है। गौथिक में **प्** संघर्षी **फ़्** में बदलता है, और शब्द बनता है **फ़िलु**। पुरानी आइरिश में ह-कार लोप के बाद रूप बचता है **इल्**। संस्कृत **पंच** का लिथुआनियन रूप है **पेन्कि**। आर्मीनियन में यही **हिंग** हो जाता है। लैटिन शब्द **पोर्कुस्** (सुअर), पुरानी जर्मन में **फ़रह्** और पुरानी

आइरिश में **ओर्क्** है। अब इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि संस्कृत, ग्रीक, लैटिन और स्लाव भाषाओं में **प्** की स्थिति सुदृढ़ है। इनकी तुलना में जर्मन, केल्त और आर्मीनियन भाषा-समुदायों में यह ध्वनि अस्थिर है। यह अस्थिरता तीन प्रकार से व्यक्त होती है और ये तीनों प्रकार एक ही प्रक्रिया की तीन मंज़िलें हैं। पहली मंज़िल **प्** का **फ़्** में बदलना, दूसरी मंज़िल **फ़्** का **ह्** में बदलना और तीसरी मंज़िल **ह्** का लोप होना है। यह प्रक्रिया ज्यों की त्यों भारतीय भाषाई क्षेत्र में घटित होती है। इस प्रक्रिया की पहली मंजिल का कारण नाग भाषाओं का प्रभाव है। दूसरी मंज़िल का कारण आर्य भाषाओं का प्रभाव है। संस्कृत तथा अधिकांश आधुनिक आर्य भाषाएँ संघर्षी ध्वनियों का व्यवहार नहीं करतीं, उनके स्थान पर वे काकल्य महाप्राण ध्वनि **ह्** से काम लेती हैं। तीसरी मंज़िल का कारण द्रविड़ प्रभाव है जिससे ह-कार का लोप हो जाता है। यूरुप की भाषाओं में ये तीनों प्रभाव साफ़ दिखाई देते हैं।

इंडोयूरोपियन परिवार की भाषाओं में कभी-कभी मध्यवर्ती **प्** भी उक्त प्रकार की अस्थिरता प्रदर्शित करता है। संस्कृत **नपात्** लैटिन में **नेपोस्** है। अंग्रेज़ी में यही **नेफ़्यू** बनता है (फ़् का उच्चारण **व्** के समान होता है)। मध्यकालीन आइरिश में इस **प्** या **फ़्** का लोप हो जाता है और शब्द बनता है **निश्रोए**। संस्कृत **उपरि** का गौथिक प्रतिरूप **ऊफ़र्** है। आधुनिक जर्मन में यह रूप **ऊबॅर्** है। ये दोनों रूप दो भिन्न प्रभावों के कारण हैं। **फ़्** वाला रूप नाग प्रभाव के कारण है, और **ब्** वाला रूप मध्यवर्ती अघोष को सघोष करने वाली द्रविड़ वृत्ति के कारण है। अंग्रेज़ी में **फ़्** सघोष होकर **व्** बनता है और मूल संस्कृत **उपरि** का अंग्रेज़ी प्रतिरूप बनता है **ओवर्**। संस्कृत **अपि** का आर्मीनियन प्रतिरूप **एव** है जिसकी निर्माण-प्रक्रिया **ओवर्** के समान है। अंग्रेज़ी शब्द **सेवॅन्** किसी **सेपॅन्** जैसे रूप से बना हुआ मालूम होता है। लिथुआनियन में सात के लिए **सेप्तिनि** शब्द संस्कृत **सप्तमी** का विकास है। इस तरह के शब्द से **सेपॅन्** शब्द का विकास सहज है। आर्मीनियन में इसका प्रतिरूप **एविन्** है, जो स्पष्ट ही **सेवॅन्** और **सेप्तिनि** जैसे रूपों से सम्बद्ध है। यहाँ ऊपर उल्लिखित तमिल के मध्यवर्ती **प्** के **व्** में बदलने की प्रक्रिया स्मरणीय है।

इटली की पुरानी भाषाओं में मध्यवर्ती **प्** और **क्** में ऐसे ही परिवर्तन होते दिखाई देते हैं। लैटिन **स्क्रिप्तुम्** का उम्ब्रीयन प्रतिरूप **स्क्रेह्तो** है। यह **ह्** संघर्षी **फ़्** का विकास है, इसका प्रमाण इटली की दूसरी पुरानी भाषा ओस्कन में मिल जाता है। उसमें इसका प्रतिरूप **स्क्रिफ़्तस्** (लेखन, अंग्रेज़ी **स्क्रिप्ट**) है। लैटिन **रेक्ते** का उम्ब्रियन प्रतिरूप **रेह्ते** है। इसी का जर्मन प्रतिरूप **रेश़्ते** है जो अंग्रेज़ी में right लिखा जाता है, वर्तनी में दो अक्षर gh पुराने **क्** के परिवर्तित संघर्षी रूप की यादगार हैं। यह संघर्षी रूप **ह्** में बदलकर लुप्त हुआ और शब्द का उच्चरित रूप हुआ **राइट्**। इस प्रकार इंडोयूरोपियन परिवार की अनेक भाषाओं के शब्दों की ध्वनि-परिवर्तन-सम्बन्धी व्याख्या भारतीय भाषाई परिवेश को ध्यान में रखकर की जा सकती है।

नाग भाषा-परिवार में **किम्, खिम्, हिम्** (घर) जैसे रूप मिले थे, वैसे रूप

तथाकथित भारत-ईरानी शाखा में मिलते हैं। संस्कृत रूप **मित्र** का प्राचीन ईरानी रूप **मिथ्र** है। इसी से **मिहिर** रूप बनता है जो वराह मिहिर से लेकर आर्य मिहिर तक प्रकाशित है। संस्कृत **प्रथम** पुरानी ईरानी में **फ़तम** है; अंग्रेज़ी **फ़र्स्ट** का सम्बन्ध संघर्षी **फ़्** से आरम्भ होने वाले **फ़तम** जैसे किसी रूप से है। संस्कृत **ऋतु** प्राचीन ईरानी में **ख़तु** है। इसी तरह संस्कृत **चक्र** फ़ारसी में **चर्ख़** बनता है। आर्य परिवार की **क्-त्-प्** ध्वनियाँ ठीक भारत के पड़ोस में **ख़्-थ्-फ़्** रूप धारण कर रही हैं। वही प्रक्रिया जर्मन समुदाय में घटित होती है। कारण है नागभाषा समुदाय का प्रभाव। एक ओर ईरान, दूसरी ओर पूर्वी बंगाल, इसके बीच में है आर्यभाषा क्षेत्र जो दोनों ओर नाग भाषाओं से घिरा हुआ है।

द्रविड़ भाषाओं तथा अंग्रेज़ी और जर्मन में **ग्-द्-ब्** ध्वनियों की स्थिति से ग्रीक भाषा समुदाय में इन ध्वनियों की जो स्थिति है, उसकी तुलना करनी चाहिए। वैयाकरण बक का कहना है कि पुरानी ग्रीक भाषा की ये स्पर्श ध्वनियाँ आगे चलकर संघर्षी बन गईं; आधुनिक ग्रीक में उनके संघर्षी रूपों का ही चलन है। किन्तु ग्रीक भाषा समुदाय में किसी भी समय **ग्-द्-ब्** पूर्ण स्पर्श ध्वनियाँ थीं, इसमें सन्देह है। यूनानियों के **ज़ेउस्**—देवता का नाम—मूलतः **देउस्** हैं। आयोनियन भाषा में **द्** बदलकर संघर्षी **ज़्** बनता है। इसी प्रकार ग्रीक शब्द **बेरेथ्रोन्** आर्केडियन भाषा में **ज़ेरेथ्रोन्** है। जहाँ **ओद्मे** और **ओस्मे** जैसे विकल्प मिलते हैं, वहाँ यह सहज ही अनुमेय है कि **द्** पहले संघर्षी **ज़्** में परिवर्तित हुआ और इस सघोष **ज़्** ने अघोष **स्** रूप धारण किया। बक का मत है कि यूनान की बोलियों में **ब्** ने **ब़्** (अथवा **व़्**) रूप धारण किया, **द्** ने **द़्** रूप, और **ग्** ने **ग़्** रूप। इस तरह तीनों सघोष स्पर्श ध्वनियाँ संघर्षी रूपों में परिवर्तित हुईं। बक के अनुसार कुछ बोलियों में यह परिवर्तन काफ़ी पहले हुआ; अत्तिक और कोइने—यूनान की व्यापक ग्रीक भाषा—में सम्भवतः यह परिवर्तन ईसा के सौ-दो-सौ साल बाद तक नहीं हुआ। ग्रीक, जर्मन, द्रविड़ समुदाय की भाषाओं में इस तरह के परिवर्तनों की समानता उल्लेखनीय है। सारा परिवर्तन संघर्षीकरण की दिशा में होता है। संघर्षी ध्वनियों का चलन ईरान की भाषाओं में भी रहा। इस तरह की ध्वनियों का विकास जिस भाषा-परिवार में सबसे अधिक हुआ, वह नाग है। यह कहा जा चुका है कि स्वयं नाग परिवार किसी अज्ञात संघर्षी ध्वनियों के स्रोत से प्रभावित हुआ हो तो आश्चर्य की बात नहीं है। भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त पर नागों से ग्रीक, जर्मन, ईरानी भाषा समुदायों तथा द्रविड़ भाषाओं के सम्पर्क की कल्पना करने से इस तरह के व्यापक परिवर्तन आकस्मिक न होकर एक ही सूत्र में बँधे हुए दिखाई देंगे।

आर्य-भाषा परिवार में **क्-त्-प्** और **ग्-द्-ब्**, सघोष और अघोष, दोनों ही तरह की ध्वनियों की स्थिति अपेक्षाकृत सुदृढ़ है। किन्तु यह बात सघोष महाप्राण **घ्-ध्-भ्** के बारे में नहीं कही जा सकती। संस्कृत में आदिस्थानीय सघोष महाप्राण ध्वनियाँ कभी-कभी ह-कार में बदलती हैं। यही ध्वनियाँ जब मध्यवर्ती होती हैं तब उनमें इस तरह का परिवर्तन और भी अधिक होता है।

संस्कृत **हरस्** का सम्बन्ध **घर्म** के **घर्** से है। दहति का ह्, **दग्ध** और **निदाघ**

से सिद्ध, घ् का रूपान्तर है। **हन्ति** रूप जिस क्रिया से बनता है, उसी से दूसरा रूप **जघान** बनता है। **अर्हति** के साथ **अर्घ** (मूल्य), **दुह्** के साथ **दुग्ध** आदि रूपों से ज्ञात होता है कि संस्कृत में इस तरह का परिवर्तन अत्यन्त सीमित है। जहाँ ऐसा परिवर्तन होता है, वहाँ अपरिवर्तित शब्द-मूल का समानान्तर व्यवहार भी होता है। यह स्थिति ग्रीक, लैटिन, प्राचीन ईरानी, हित्ती आदि भाषाओं की स्थिति से भिन्न है। संस्कृत में हम यह देख सकते हैं कि किसी प्रभाव के कारण यह प्रक्रिया आरम्भ तो होती है किन्तु मूल प्रवृत्ति काफी शक्तिशाली सिद्ध होती है, और वह इस प्रक्रिया को सीमित कर देती है। संस्कृत में थोड़े ही शब्द ऐसे हैं जहाँ केवल ह-कार का चलन शेष रहा, मूल ध्वनि का चिन्ह नष्ट हो गया। ऐसा ही एक शब्द है **हस्त**। इसका मूल रूप था **घस्त**। यह बात फ़ारसी शब्द **दस्त** का स्मरण करने से समझ में आ जाती है। दस्त के द् का विकास हस्त के ह् से नहीं हुआ, **हस्त** और **दस्त** के **द्** और **ह्** दोनों ही मूल **घस्त** के **घ्** के परिवर्तित रूप हैं। अंग्रेजी **हैन्ड** और जर्मन **हान्ड** इसी **हस्त** से बनते हैं, अर्थात् **घ्** जब **ह्** में बदल चुका है, भारतीय **हस्त** रूप अस्तित्व में आ चुका है, उसके बाद जर्मन शाखा के **हान्ड** रूप का आविर्भाव होता है। इसी प्रकार संस्कृत **हंस** का मूल रूप **घंस** है। यह बात हम जर्मन रूप **गंज्** से जानते हैं। यहाँ जर्मन रूप, **घ्** की महाप्राणता के लोप के बाद, सीधे मूल रूप **घंस** से विकसित हुआ है। किन्तु लैटिन रूप **अन्सेर्** सिद्ध करता है कि **हंस** के ह-कार का लोप होने पर उसका यह रूप बना है। उधर इसका ग्रीक प्रतिरूप **ख़ेन्** है, जहाँ सघोष महाप्राण **घ्** संघर्षी **ख़्**, अथवा स्पर्श **ख्** में परिवर्तित हुआ। एक शब्द का उदाहरण और लें। संस्कृत **हनु**, ग्रीक **गेनुस**, जर्मन **किन्**, अंग्रेज़ी **चिन्**, मूल रूप **घनु** की ओर संकेत करते हैं।

यदि संघर्षी ध्वनियों के भौगोलिक प्रसार पर ध्यान दिया जाय तो आर्य भाषा परिवारों का छोटा-सा केन्द्रीय क्षेत्र चारों ओर संघर्षी ध्वनियों से घिरा हुआ दिखाई देगा। **ख़्** वाली ध्वनि पूर्वी बंगाल में है, फ़ारसी में है, रूसी, उक्रैनी आदि स्लाव भाषाओं में है, मेरे विचार से हित्ती में है (**सारस—ख़ारस**), प्राचीन ग्रीक भाषा के लिए कहते हैं कि उसमें **ख्** ध्वनि स्पर्श थी, संघर्षी बाद को बनी, यह संघर्षी ध्वनि जर्मन भाषा में है और स्कौटिश जैसी केल्त भाषाओं में है (झील के लिए अंग्रेज़ी लेक् का स्कौटिश प्रतिरूप **लौख़्** है)। संघर्षी **फ़्** पूर्वी बंगाल की बोलियों में है, फ़ारसी में है, लैटिन में है (लैटिन लिखने-बोलने वाले अपने संघर्षी **फ़्** को ग्रीक स्पर्श **फ्** से भिन्न मानते थे), जर्मन समुदाय की भाषाओं में इसका व्यवहार होता है। संघर्षी **थ़्** का व्यवहार-क्षेत्र अधिक सीमित है। अंग्रेज़ी में **थिंक्** जैसे शब्दों में इसका प्रयोग निश्चित रूप से होता है।

सघोष संघर्षी **ज़्** का प्रवेश आर्य भाषा-परिवार में निषिद्ध-सा है। पूर्वी बंगाल की बोलियों तथा मराठी में इसका व्यवहार होता है, द्रविड़ भाषाओं में कर्णाटक और आन्ध्र प्रदेश के उत्तरी भागों में इसका प्रयोग होता है, उधर उत्तर में कश्मीरी भाषा की यह सुपरिचित ध्वनि है। नाग भाषाओं में इसका व्यवहार होता ही है। भारत के बाहर प्राचीन ग्रीक, फ़ारसी, जर्मन, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में इसका व्यवहार होता

है। अंग्रेज़ी की अपेक्षा जर्मन में इसका प्रयोग अधिक होता है क्योंकि शब्द के आदि स्थानीय स-कार को बदलकर जर्मनभाषी ज़-कार कर देते हैं। मराठी और कश्मीरी में संघर्षी **च्** का व्यवहार होता है और असमिया भाषी जन संस्कृत शब्दों के च-कार के स्थान पर च-कार का उच्चारण करते सुने जाते हैं। कुछ नाग भाषाओं में संघर्षी **छ्** का व्यवहार भी होता है। रूसी, फ़ारसी, फ़्रान्सीसी और अंग्रेज़ी में एक संघर्षी ध्वनि सीमित रूप में व्यवहृत होती है। यह तालव्य संघर्षी सघोष अल्पप्राण ध्वनि है जो अंग्रेज़ी के **Pleasure, Measure** जैसे शब्दों में प्रयुक्त होती है। इसे हिन्दी में **झ़्** चिन्ह द्वारा व्यक्त करेंगे (केवल यह स्मरण रखना चाहिए कि यह **झ्** के समान महाप्राण ध्वनि नहीं है)। भारत में जिस प्रदेश को नागालैण्ड कहा जाता है, उसमें इसका व्यापक प्रयोग होता है। व्यापक से आशय यह है कि फ़ारसी समेत भारत के बाहर की भाषाओं की तुलना में इसका प्रयोग नागालैण्ड की भाषाओं में अधिक होता है। यदि संघर्षी ध्वनियों के पूरे व्यवहार-क्षेत्र पर ध्यान दिया जाय तो यह सत्य प्रत्यक्ष हो जाता है कि इनकी सर्वाधिक विविधता और प्रयोग-बहुलता उस भाषाई क्षेत्र में है जिसे बृहत्तर भारत की संज्ञा दी जाती है। इस बृहत्तर भारत में संघर्षी ध्वनियों का प्रदेश मध्यदेश को घेरे हुए है। (यहाँ **स्** और **ह्** को संघर्षी ध्वनियों से अलग रखा गया है।) आर्य भाषा परिवार में सघोष-अघोष, अल्पप्राण-महाप्राण स्पर्श ध्वनियों की अपेक्षाकृत स्थिरता इस बात की ओर संकेत करती है कि इन ध्वनियों की विकास-भूमि भिन्न प्रवृत्तिवाली भाषाओं से घिरी रहने पर भी अपनी मूल ध्वनि-प्रकृति की रक्षा करने में सफल हुई है।

क्-त्-प् और **घ्-ध्-भ्** के समान भारत के भाषाई क्षेत्र में एक ध्वनि और बदलती है, वह है अघोष **स्**। इसके परिवर्तन की प्रक्रिया उक्त ध्वनियों के परिवर्तन की प्रक्रिया से मिलती-जुलती है। सरस्वती का प्राचीन ईरानी रूप **हरख़्वैति** है। **स्** का यह परिवर्तित रूप **ख़्** पुनः **ह्** में भी बदलता है। संस्कृत **स्व** अवेस्ता में **ख़्व** है और गाथा ईरानी में **ह्व**। प्राचीन ईरानी में संस्कृत शब्दों का **स्** इसी प्रकार **ह्** में बदलता है : **असुर—अहुर** (स्वामी); **यासु—याहु** (जिसमें); **भरसि—बरहि** (ले जाता है); **सेना—हएना; सम—हम**। फ़ारसी **ख़ुश्क** का प्राचीन ईरानी (अवेस्ता वाला) प्रतिरूप **हुश्क** है। पूर्व रूप संस्कृत **शुष्क** है। **सप्ताह** और फ़ारसी **हफ़्ता** में **स्** के **ह्** में बदलने के साथ-साथ **प्** भी संघर्षी **फ़्** में बदला है। नाग भाषाओं में जहाँ-तहाँ इससे मिलते-जुलते परिवर्तन दिखाई देते हैं, यथा भारत के पूर्वाञ्चल की गलोङ् भाषा में **सिगि, सोबो** के वैकल्पिक रूप **हिगि, होबो** का चलन है।

पूर्वी बंगाल में **सात हात आत** जैसी परिवर्तन-प्रक्रिया दिखाई देती है। दन्त्य **स्** और तालव्य **श्** दोनों **ह्** में बदलते हैं। **शुष्क** और **हुश्क** की तरह कश्मीरी में **श्वान** का प्रतिरूप **हून**, **शाक** का प्रतिरूप **हाक** आदि प्रचलित हैं। नाग भाषाओं में एक क्रिया **शि** है जिसका अर्थ है मरना। इसका प्रतिरूप **हइ** है। यूरुप की भाषाओं में **स्-श्** ध्वनियाँ **ह्** में बदलती हुई दिखाई देती हैं। संस्कृत **सम** ईरान की तरह यूनान की भाषाओं में भी **हम** है। संस्कृत **सदस्** जब ग्रीक भाषा में **हेदोस्** रूप धारण करता है, तब वही

ध्वनि-परिवर्तन की प्रक्रिया काम करती है। अंग्रेज़ी **सेवॅन्** का आर्मीनियन प्रतिरूप **एवॅन्** पूर्वी बंगाल की **सात हात आत** प्रक्रिया का उदाहरण प्रस्तुत करता है। लैटिन भाषा का **साल्**, आर्मीनियन में **आल्** है और ग्रीक में **आल्स्** (नमक) है। भारतीय सीमान्तों पर ह् स् परिवर्तन की प्रक्रिया ज़ोरों से होती दिखाई देती है और द्रविड़ प्रभाव से अनेक भाषाओं में ह् का लोप होता है। यह क्रम तालव्य श् के साथ भी सम्पन्न होता है। संस्कृत **श्वान** का अंग्रेज़ी प्रतिरूप **हाउंड**, जर्मन प्रतिरूप **हुन्ड** है। परिवर्तन का ढँग वही है जिससे संस्कृत **श्वान** कश्मीरी **हून** बनता है।

संस्कृत **शतम्** का एक इंडोयूरोपियन प्रतिरूप **केन्तुम्** है जिसके आधार पर इस भाषा-परिवार की दो शाखाओं की कल्पना की गई है। इसका एक प्रतिरूप अंग्रेज़ी **हन्ड्रेड** है जिसका आदिस्थानीय ह् **श्वान** और **हाउंड** के समीकरण के समान है। जर्मन में यही शब्द **हुन्डेर्ट** है।

यूरुप और भारत के भाषा-परिवारों में तालव्य अथवा दन्त्य स-कार की स्थिति पर विचार करने से पहले इस तथ्य पर पुनः ध्यान देना उचित है कि **क्-त्-प्** और **ग्-द्-ब्** ध्वनियों की स्थिति इन भाषा-परिवारों में कहीं तो अपेक्षाकृत सुदृढ़ है और कहीं कमज़ोर है। एक परिवर्तन संघर्षीकरण की ओर है, **क्** के स्थान पर **ख़्**, **ग्** के स्थान पर **ग़्** के व्यवहार की प्रवृत्ति है। यह परिवर्तन की एकमात्र प्रवृत्ति नहीं है। **प्** के स्थान पर **व्**, **त्** और **द्** के स्थान पर **र्** या **ल्** का व्यवहार एक अन्य प्रवृत्ति है। **व्** अर्धस्वर है, संघर्षी और असंघर्षी दो प्रकार के **व्** हैं, दोनों ही अर्द्धस्वर हैं। **र्** और **ल्** में वायु का अवरोध पूर्ण स्पर्श व्यंजनों के समान नहीं होता। इसके सिवा **प्** के स्थान पर **म्** का व्यवहार, **त्** या **द्** के स्थान पर **न्** का व्यवहार भी होता है। इस तरह के परिवर्तन में स्पर्श व्यंजनों का स्थान नासिक्य ध्वनि लेती है और **र्**, **ल्**, **व्** के समान यहाँ भी वायु-अवरोध अपेक्षाकृत कम होता है। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञानियों ने कल्पना की है कि किसी समय **न्** और **म्** ध्वनियाँ स्वर और व्यंजन दोनों थीं। यह कल्पना भी नासिक्य ध्वनियों के उच्चारण में अपेक्षाकृत शिथिल वायु-अवरोध की ओर संकेत करती है।

उड़ने के लिए मूल क्रिया है **पत्** जिससे **पतंग** शब्द बनता है। इसके **त्** के स्थान पर जब **र्** का उच्चारण होता है, तब द्रविड़ भाषाओं में **पर्** और **पळ्** शब्द-मूल बनते हैं। तमिल में **पळ्** का अर्थ उड़ना है, **पळल्** और **पळवइ** शब्दों का अर्थ चिड़िया (परेवा) है। कोत भाषा में **पर्न्**, **पर्न्द्** का अर्थ उड़ना है। कोडगु में दीर्घ स्वर के साथ उसी क्रिया के लिए **पार्** शब्द है। फ़ारसी **परिन्दा**, हिन्दी **पर**, **परेवा** इसी प्रक्रिया से सिद्ध होते हैं।

द्रविड़ भाषाओं में **प्** बहुधा **व्** में परिवर्तित होता है, विशेषतः जब वह मध्यवर्ती होता है। ए० ऐन्० नरसिंह के जिस लेख का पहले हवाला दिया जा चुका है, उसमें उन्होंने लिखा है कि आदि कन्नड़ में मध्यवर्ती **प्** के स्थान पर **व्** का व्यवहार होता था। समास के दूसरे शब्द में यह **प्** आदिस्थानीय हो तो वह भी इसी प्रकार बदलता था। जहाँ इसका द्वित्व होता था, वहीं यह सुरक्षित रहता था, यद्यपि वहाँ भी कभी-

कभी एक ही **प्** के समान उच्चरित होने पर वह **व्** में बदल जाता था। द्रविड़ भाषाओं में जो व्यंजन-द्वित्व का बाहुल्य देखा जाता है, उसका मूल कारण यही व्यंजनों की सुरक्षा का प्रयत्न है।

कभी-कभी यह **प्** आदिस्थानीय होने पर भी बदलता है। कन्नड़ में ही **प्** के स्थान पर, **ह्** के अलावा, **व्** का व्यवहार देखा जाता है यथा **पोल्, होल्, ओल्** (किसी के समान होना), **वोल्** (समानता), कन्नड़ **पॅडसु** (कठोरता) का तमिल प्रतिरूप है **वॅट्टनवु**। यहाँ तमिल रूप में आदिस्थानीय **प्** परिवर्तित हुआ है। ग्रीक भाषा में **ओर्निस्** (चिड़िया) द्रविड़ भाषाओं के **पर्न** का प्रतिरूप है। इसी से **ओर्निथोस्** रूप बनता है जिससे अंग्रेज़ी में अनेक पारिभाषिक शब्द रचे गये हैं। ग्रीक भाषा में **य्-व्** ध्वनियों का अभाव है, इसलिए **व्** के स्थान पर यहाँ **ओ** स्वर का व्यवहार किया गया है। न केवल ध्वनि-परिवर्तन की प्रक्रिया द्रविड़ भाषाओं की-सी है वरन् जिस मूल शब्द से ग्रीक रूप का विकास हुआ है, वह **पर्न** भी द्रविड़ भाषाओं में विद्यमान है। मूल क्रिया **पत्** जब **पर्** में परिवर्तित हुई, तब उसमें **न** प्रत्यय जोड़ा गया। इस प्रकार **पर्** से **पर्न** की उत्पत्ति हुई। **पर्न** और **ओर्निस** की तुलना में अंग्रेज़ी रूप **बर्ड** कम पुराना नहीं है। यहाँ **पर्** क्रिया में **त्** प्रत्यय जोड़ा गया है। फिर **प्** और **त्** दोनों ध्वनियाँ सघोष की गई हैं।

लैटिन में एक शब्द **लेविर्** है जो संस्कृत **देवर**, ग्रीक **दएर्** का प्रतिरूप है। पुरानी लैटिन में इसका रूप **देविर्** था। पश्तो में **देवर** का सीधा प्रतिरूप **लेवर** है। **त्** या **द्** के स्थान पर **र्** या **ल्** का व्यवहार भारतीय भाषाओं में व्यापक रूप से हुआ है। हिन्दी तथा अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं में **ग्यारह, बारह,** तेरह, जैसे शब्दों में मूलध्वनि **द् र्** में परिवर्तित हुई है। उत्तरपश्चिमी भाषाओं में **र्** के स्थान पर **ल्** की बहुलता मिलेगी। इसलिए पश्तो में **देवर** के लिए **लेवर** रूप है। यह **ल्** द्रविड़ भाषाओं में **ळ्** या **ऴ्** में भी परिवर्तित होता है, विशेषतः तमिल, मलयालम और पड़ोसी भाषाओं में। **पत्** क्रिया से तमिल में जो रूप बनता है, उसमें **ऴ्** है।

पत् का एक रूप **पेत्** था जिससे **पेन्** बना। **पेन्** से अंग्रेज़ी **हेन्** (मुर्गी) और आइरिश **एन्** (पक्षी) रूप बने। यहाँ **त्** ध्वनि नासिक्य **न्** में परिवर्तित होती है। इसी प्रकार **प्** और **म्** में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

५. स्-श् के रूपान्तर

स्पर्श ध्वनियों के सन्दर्भ में परिवर्तन का जो मानचित्र बनता है, उसे ध्यान में रखते हुए **स्-श्** के परिवर्तन पर विचार करना चाहिए। जिन भाषाओं के लिए **क्-त्-प्** ध्वनियों की सुरक्षा कठिन थी, उनके लिए **स्** और **श्** का उच्चारण और भी कठिन था। दन्त्य **स्** की ध्वनि अनेक द्रविड़ भाषाओं में है, ग्रीक और लैटिन में है। द्रविड़ परिवार में उसका वैसा व्यापक व्यवहार नहीं होता जैसा आर्य भाषा-परिवार में, **श्** का व्यवहार और भी कम होता है; ग्रीक और लैटिन में इसका नितान्त अभाव है। इसी तरह प्राचीन हित्ती और तुखारी भाषाओं में उसका अभाव है। पुरानी तमिल में कुछ

संस्कृत शब्दों के प्रतिरूप इस प्रकार हैं : **सन्तति—तन्दति; सेना—तानइ; तापस—ताबदन्; स्नान—तानम्; दास—तादन्;** समय—तमय। अंग्रेज़ी **टाइम,** लैटिन **तेम्पुस्** इसी परिवर्तन-प्रक्रिया के प्रमाण हैं। उनका मूलरूप **समय** है। दन्त्य स् की ध्वनि को अनेक भाषाओं ने त् रूप में ग्रहण किया।

अब शतम्-केन्तुम् समीकरण पर विचार करें। अनेक द्रविड़ भाषाओं में **स्** के स्थान पर **क्** का व्यवहार होता है। कन्नड़ **साय्,** तोद **सोय्** (मरना) का सम्बन्ध **शे, शो** जैसी क्रिया से है जिससे संस्कृत **शव** रूप बना है। मल्तो, कुड़ुख, ब्राहूइ, आदि भाषाओं में **केये, केएना, कींहुग्** जैसे रूप हैं। इनके प्रसंग में बरो और एमेनो ने अपने शब्दकोश में उचित ही **शव** शब्द का स्मरण किया है। गोंडी **सर्पुम्,** कन्नड़ **केर्पु** (चप्पल); कन्नड़ **सारु,** पर्जि **केद्** (गोरखा); तुलु **शंत्तावुनि, कंडगुनि** (नाश करना); ये रूप **स्-श्** को **क्** में परिवर्तित होते दिखाते हैं। असम प्रदेश की नागभाषा बोरो में, लैटिन और ग्रीक के समान, तालव्य **श्** का अभाव है। इसलिए उसमें श् ध्वनि वाले शब्दों के ऐसे प्रतिरूप बनते हैं : शुक्र—**कुकुर, शनि—कोनि,** शरीर—कोराल, **शत्रु—कुतुर**। बँगला प्रभाव से दन्त्य **स्** भी तालव्यवत् बोला जाता है, अतः बोरो में दन्त्य **स्** भी **क्** में बदलता दिखाई देता है : **सोलह—कोल्लाव;** सहाय—कोहाय; **समय—कोमय; सभा—कोभा; सीमा—कोमा; सागर—कागर**। इस भाषा में हिन्दी **सौ** के लिए **को** शब्द है, **शतम्** के प्रतिरूप **केन्तुम्** की तरह। केन्तुम् शाखा पर नाग-प्रभाव असंदिग्ध है।

भारत के उत्तरी सीमान्त पर ईसा की छठी शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक तुखारी भाषा का व्यवहार होता था। वह प्रदेश अब चीनी तुर्किस्तान में है। तुखारी भाषा केन्तुम् शाखा के अन्तर्गत मानी जाती है। यह सहज ही अनुमेय है कि भारत के पूर्वी सीमान्त प्रदेश के समान इस उत्तरी सीमान्त पर भी एक ही स्रोत **श्** को **क्** में बदल रहा है। तुखारी में संस्कृत शब्दों के कुछ प्रतिरूप इस प्रकार हैं : **शत—केन्त, श्वा—कु** (कुत्ता); **शृणोति—क्लाओ** (सुनाना); **क्लोत्स** (कान); **श्रवस्** अथवा **स्रवस्—क्लुओ** (शब्द); **श्रोषति—क्लिओस** (सुनता है)। तुखारी में लैटिन के समान दन्त्य स-कार है। मूलशब्दों का तालव्य **श्** दोनों भाषाओं में **क्** रूप में प्राप्त होता है। इसी प्रकार हित्ती भाषा में तालव्य **श्** वाले संस्कृत शब्दों के प्रतिरूपों में **क्** ध्वनि का व्यवहार होता है। **श्रद्धा** वाले **श्रद्** (हृदय) का प्रतिरूप **कर्तस्** या **कर्त** है। लैटिन में जैसे इसके प्रतिरूप **कोर्द** के साथ **कोर** भी है, वैसे ही हित्ती में **कर्त** के साथ **कीर** है। यही **श्रद्** संस्कृत-हिन्दी का परिचित **हृदय,** अंग्रेज़ी का **हार्ट** है। संस्कृत **शेते** का हित्ती प्रतिरूप **कीत** है।

तालव्य **श्** वाले संस्कृत शब्दों के ग्रीक और लैटिन प्रतिरूपों में निरन्तर **क्** ध्वनि का प्रयोग होता है। संस्कृत **श्वशुर** का लैटिन प्रतिरूप **सोकेर** है, ग्रीक प्रतिरूप **हेकुरोस्** है। इन प्रतिरूपों से ज्ञात होता है कि इनका पूर्वरूप **स्वशुर** है। दन्त्य **स्** लैटिन में सुरक्षित रहा, ग्रीक में वह ह-कार में बदल गया। तुखारी भाषा की तरह संस्कृत शब्द-मूल **श्रु** ग्रीक में **क्लुओ,** लैटिन में **क्लुओर्** है। **शतम्** लैटिन में **केन्तुम्**

और ग्रीक में (हे +) **कतोन्** है। संस्कृत **शेते** हित्ती के समान ग्रीक में **केइतइ** है। संस्कृत **विश** ग्रीक में **ओइकोस्** और लैटिन में **वीकुस्** (घर) है। ग्रीक भाषा में **व्** का अभाव होने से **ओइ** युग्म ध्वनि का व्यवहार हुआ। लैटिन का प्रसिद्ध **एक्वुउस्** इसी प्रक्रिया से **अश्व** का प्रतिरूप सिद्ध होता है। पशुओं के बाँधने के लिए एक पुराना भारतीय शब्द है **पाश**। बाँधने के लिए मूल क्रिया **पश्** होनी चाहिए। जो बाँधा जाय वह **पशु**। **श्** स्पर्श ध्वनि **क्** में परिवर्तित हुआ; पुन: मध्यवर्ती होने से वह सघोष बना और इसी से हिन्दी **पगही, पाग, पगड़ी** आदि शब्द बने। नासिक्य ध्वनि जोड़कर (**शतम्—कतम्,** इससे फिर **केन्तुम्** की तरह) लैटिन **पंगो** शब्द बना जिसका अर्थ है बाँधना।

कुछ लैटिन शब्दों में संस्कृत का दन्त्य **स्** भी **क्** में बदलता दिखाई देता है। संस्कृत उपसर्ग **सम्** का लैटिन प्रतिरूप **कोम्** अथवा **कोन्**—वैकल्पिक रूप **कुम्**—है। यह कल्पना की जा सकती है कि मागधी जैसी किसी भाषा के प्रभाव से **सम्** का उच्चारण **शम्** (**शोम्**) के समान होता था, अत: लैटिन में **क्** वाला प्रतिरूप बना। ईरानी और स्लाव भाषाओं का एक पुराना शब्दमूल है **पिस्**। इसका तुखारी प्रतिरूप है **पेके**। लैटिन में यही **पिन्गेरे** है और उसी से अंग्रेज़ी शब्द **पिक्चर** बनता है। **पिस्** का मूल अर्थ है चित्र बनाना; रूसी भाषा में अब इस शब्दमूल का व्यवहार लिखने के अर्थ में होता है। सम्भव है **पिस्** का उच्चारण कुछ लोग **पिश्** करते रहे हों जिससे तुखारी-लैटिन आदि के रूप बने हों।

भारतीय भाषा-परिवारों के परस्पर सम्बन्धों पर विचार करने से यह सिद्ध हो जाता है कि यहाँ **स्** और **श्** ध्वनियों का विषम विकास हुआ है। यदि आधुनिक भाषाई मानचित्र पर ध्यान दें तो द्रविड़ भाषाओं में सकार की अतिशय न्यूनता है। हिन्दी क्षेत्र में ब्रज से लेकर मिथिला तक जनपदीय उपभाषाओं में दन्त्य **स्** की प्रधानता है। साहित्यिक ब्रजभाषा तालव्य **श्** का व्यवहार नहीं करती। उधर परिनिष्ठित बँगला भारत की ऐसी भाषा है जो दन्त्य **स्** का व्यवहार नहीं करती। तत्सम-प्रधान होते हुए भी वह दन्त्य **स्** को निरन्तर तालव्य **श्** में बदलती है (यद्यपि बंगाल की जनपदीय उपभाषाओं में सर्वत्र ऐसी स्थिति नहीं है)। भारत से बाहर **स्** और **श्** का ऐसा विभाजन शायद ही कहीं हो। इससे इस धारणा की पुष्टि होती है कि इन दोनों ध्वनियों के विकास केन्द्र अलग-अलग थे। आदि इंडोयूरोपियन भाषा में केवल दन्त्य **स्** की कल्पना की गई हैं। इसका कारण यह है कि ग्रीक और लैटिन में यही एक स-कार है। स्लाव, जर्मन, ईरानी, भारतीय भाषा-समुदायों में तालव्य **श्** की भरमार है। भाषा विज्ञानी सर्वत्र इसे स्वतन्त्र विकास मानते हैं। किन्तु जिस प्रक्रिया से **शतम्** का प्रतिरूप **केन्तुम्** प्राप्त होता है, वह भारत में आज भी प्रत्यक्ष है। यह प्रक्रिया कुछ नाग भाषाओं में है, कुछ द्रविड़ भाषाओं में है। कोई प्राचीन तालव्य **क्** (**क्य्**) ध्वनि थी जो **शतम्** शाखा में तालव्व **श्** बन गई, इस तरह की कल्पना के लिए कोई पुष्ट कारण नहीं है। किन्तु जिस मध्यदेशीय भाषा के आधार पर संस्कृत का विकास हुआ, उसमें दन्त्य **स्** का ही व्यवहार होता था। बहुत से संस्कृत शब्दों में **श्** ध्वनि **स्** को विस्थापित

करके प्रतिष्ठित हुई है। ऐसे अनेक शब्दों की मूल **स्** ध्वनि रूसी, फ़ारसी आदि भाषाओं में सुरक्षित है।

यूरुप की भाषाओं में संस्कृत शब्दों के प्रतिरूपों में **श्** के स्थान पर जो **ह्** दिखाई देता है, वह दो तरह की प्रक्रियाओं का परिणाम हो सकता है। पहली यह कि तालव्य **श्** सीधा **ह्** में परिवर्तित हुआ हो। दूसरी यह कि पहले वह **क्** रूप में बोला गया हो, फिर अघोष महाप्राण संघर्षी **ख्** बना हो; इसके बाद वह **ह्** रूप में स्वीकृत हुआ हो। यह भी सम्भव है कि भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों में श् ह् परिवर्तन-प्रक्रिया सम्पन्न हो चुकी हो और यूरुप की भाषाओं के लिए कम-से-कम कुछ शब्द—**ह्** वाले रूप में ही सुलभ हुए हों जैसे **श्वान**, कश्मीरी **हून**, फिर अंग्रेज़ी **हाउन्ड**।

श् ध्वनि यूरुप की अनेक भाषाओं में **स्क्** रूप में भी ग्रहण की जाती है। संस्कृत शब्द **छाया** मूल इंडोयूरोपियन शब्द **स्किआ** का विकास माना जाता है। भारतीय भाषाओं के लिए इस तरह का ध्वनि-परिवर्तन अत्यन्त अस्वाभाविक है। यह शब्द वास्तव में **शाया** है जिसका सम्बन्ध **शे** क्रिया से है। **छाया** सदा भूमि पर पड़ी हुई दिखाई देती है, वह शयन करती है, इसलिए उसे **शाया** नाम दिया गया। अंग्रेज़ी शब्द **शेड** और **शैडो** में यह क्रिया स्पष्ट दिखाई दे रही है। ग्रीक भाषा में इसे **स्किआ** रूप मिला। नौर्वे और स्वीडन की भाषाएँ अनेक शब्दों में **स्क** ध्वनियों का व्यवहार करती हैं जहाँ अंग्रेज़ी में **श्** का प्रयोग होता है। अंग्रेज़ी **फिश्** स्वीडिश में **फ़िस्क्** (मछली) है, अंग्रेज़ी **शू** स्वीडिश में **स्को** (जूता) है। अंग्रेज़ी **शावर्** उसी भाषा में **स्कूर्** (बौछार) है। इसी प्रकार नौर्वे की भाषा में **स्कीक्** अंग्रेज़ी **श्रीक्** (चिल्लाना), **स्कार्प** अंग्रेज़ी **शार्प** (तेज़) के प्रतिरूप हैं। नौर्वे और स्वीडन की भाषाओं में अनेक शब्द **स्क्** से लिखे जाते हैं, किन्तु कुछ स्थितियों में **स्क्** का उच्चारण **श्** रूप में होता है। पुरानी प्रवृत्ति **श्** को **स्क्** रूप में ग्रहण करने की थी। ध्वनितन्त्र में तालव्य **श्** का निवेश होने पर विशेष स्थितियों में **स्क्** का उच्चारण पुनः **श्** रूप में होने लगा।

मध्य एशिया का एक मानव-समुदाय शक नाम से प्रसिद्ध रहा है। ग्रीक भाषा में इस शब्द को **स्कूथाइ** रूप में ग्रहण किया गया था। यदि यह सिद्ध किया जा सके कि **शक** लोग मूलतः **स्कूथ** नाम से जाने जाते थे तो यह मान लिया जायगा कि **स्किआ** से **छाया** का विकास हुआ है। नहीं तो संस्कृत **छाया**, फ़ारसी **साया**, अंग्रेज़ी **शेड** को भारतीय **शे** क्रिया से व्युत्पन्न मानना होगा।

लैटिन में एक क्रिया **स्किओ** है जिसका अर्थ है जानना। इटालियन में **शिएन्ते** का अर्थ है जानकार। लैटिन के अनेक शब्दों के आरम्भ में **स्क्** ध्वनि है, उनके इटालियन प्रतिरूपों में वह **श्** बोली जाती है। **स्किओ** वाली क्रिया से इटालियन में **शिएन्त्सा**, अंग्रेज़ी में **साइन्स** शब्द बनते हैं। इटली से लेकर इंग्लैण्ड तक **स्क्** ध्वनि तालव्य **श्** या **स्** में क्यों परिवर्तित होने लगी? **स्क्** से आरम्भ होने वाले ऐसे शब्द इटालियन में हैं, अंग्रेज़ी में भी हैं, जिनमें **स्क्** को **श्** में नहीं बदला जाता। इससे सिद्ध होता है कि अंग्रेज़ी और इटालियन में तालव्य **श्** की ध्वनि स्वतन्त्र रूप में विद्यमान थी, वह लैटिन **स्क्** का विकास नहीं है। यही स्थिति जर्मन भाषा की है जिसमें

तालव्य **श्** से आरम्भ होने वाले शब्दों की भरमार है, विशेष रूप से **श्ल्** और **श्** से आरम्भ होने वाले शब्द संस्कृत की याद दिलाते हैं। जर्मन भाषा में एक भी शब्द **स्ल्** जैसे व्यंजन-युग्म से आरम्भ नहीं होता; ठीक यही स्थिति संस्कृत की है। जर्मन भाषा इस मामले में संस्कृत से एक कदम आगे है। संस्कृत में **स्र्** ध्वनि से अनेक शब्द आरम्भ होते हैं; जर्मन में इससे एक भी शब्द आरम्भ नहीं होता।

श्वास के ग्रीक प्रतिरूप **प्सूखे** का पूर्वरूप सम्भवतः **स्पूखे** था। तालव्य **श्** दन्त्य रूप में ग्रहण किया गया, **व्** स्पर्श ध्वनि **प्** के रूप में। **अश्व** के ईरानी प्रतिरूप **अस्प** के समान यहाँ **श्-व्** ध्वनियाँ परिवर्तित हुईं। फिर वर्ण-विपर्यय से **स्प्** का रूपान्तर **प्स्** हुआ।

श् का एक रूपान्तर **द्** होता था। **शव** की मूल क्रिया **शो** या **शे** का एक प्रति-रूप **दे** था। इससे अंग्रेज़ी के **डेथ्** (मृत्यु) और **डाई** (मरना) शब्द बनते हैं।

इस प्रकार **श्** ध्वनि यूरुप की भाषाओं में अनेक रूपों में ग्रहण की गई।

६. प्राचीन भाषाओं में च्-ज्-य्-व् की स्थिति

भाषाविज्ञानी यह मानते हैं कि **च्** और **ज्** जैसी तालव्य ध्वनियाँ आर्य और द्रविड़ परिवारों में विलम्ब से विकसित हुईं अर्थात् वे इन परिवारों की मूल ध्वनियाँ नहीं हैं। इन ध्वनियों का विकास चाहे **क्-त्-प्** के साथ हुआ हो चाहे बाद को, एक बात निश्चित है कि जिन्हें किसी परिवार की मूल ध्वनियाँ माना जाता है, उन सब का विकास एक समय पर एक ही केन्द्र में नहीं होता। दूसरी बात यह है कि भारत के चारों भाषा-परिवारों में इन ध्वनियों का व्यवहार व्यापक रूप से होता है; यूरुप की भाषाओं में उनका ऐसा व्यापक व्यवहार नहीं है। इससे यह तो माना ही जा सकता है कि इन ध्वनियों के मुख्य विकास केन्द्र भारत में हैं। भाषा-विज्ञानी **च्** और **ज्** को आदि इंडोयूरोपियन भाषा की मूल ध्वनियाँ नहीं मानते। इसका विकास **शतम्** शाखा की विशेषता माना जाता है। अंग्रेज़ी जैसी भाषा में **च्** और **ज्** दोनों ध्वनियों का व्यवहार होता है; इटालियन में इनका सीमित व्यवहार होता है। तालव्य **श्** की तरह **च्** और **ज्** के व्यवहार को भाषाविज्ञानी विभिन्न भाषाओं का अपना स्वतन्त्र विकास मानते हैं। ग्रीक और लैटिन में ये ध्वनियाँ नहीं हैं। किन्तु यह सिद्ध किया जा सकता है कि इन दोनों भाषाओं में कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके मूल रूप उन्हें **च्-ज्** ध्वनियों वाली भाषाओं से सुलभ हुए थे।

संस्कृत शब्द **यव** का हिन्दी प्रतिरूप **जौ** है। इस तरह का **य्-ज्** परिवर्तन बहुत पुराना है। **ज्** वाला रूप फ़ारसी में भी है। ग्रीक भाषा में इसका प्रतिरूप है **ज़ेआ**। स्पर्श ध्वनि **ज्** संघर्षी **ज़्** रूप धारण करती है। भाषाविज्ञानी **यव** और **ज़ेआ** के सम्बन्ध से परिचित हैं। इस य्-ज़् समीकरण की व्याख्या के लिए उन्होंने कल्पना की है कि आदि भाषा में एक ध्वनि संघर्षी **य्** थी। यही ध्वनि ग्रीक भाषा में **ज़्** बनती है और संस्कृत में **य्**। **यव्** का **य्** मूल ध्वनि नहीं है!

अंग्रेज़ी में एक शब्द है **जुपिटर**। यह लैटिन के **इउपितर्** का विकास है।

मूल शब्द **द्यौस्पितर्** है। **द्यौस्** का **द्** पहले **ज्** में परिवर्तित होगा, तभी **जुपिटर** जैसा रूप बनेगा। **द्यौस्पितर** का प्रतिरूप **द्युपितर**, इसका प्रतिरूप **जुपिटर**; पुनः **जुपितर** से नया रूप बना **युपितर**। लैटिन में न **ज्** है, न **य्**। इसलिए यदि **युपितर** लिखना-बोलना हो तो वह **इउपितर्** रूप में ही सम्भव होगा। **द्** को **ज्** में बदलते तो सुना जाता है जैसे **यमुना** से **जमुना**, पर **ज्** भी **य्** में बदलता है, इसका प्रमाण क्या है?

बुलेटिन ऑफ़ द स्कूल ऑफ़ ओरिएन्टल स्टडीज़ के खण्ड २८, भाग २ (१९६५) में टी० ऐम्० जौन्स्टन ने अरब देश की बोलियों में **ज्** के **य्** में बदलने के बारे में एक लेख लिखा था। वैकल्पिक रूप इस तरह के होते हैं : **जा—या** (आओ) **जदीद—यदीद** (नया); **जेब—येब** (हिन्दी जेब); **वाजिब—वायिब** (अधिक); **जूद—यूद** (पानी भरने की मशक)। इन उदाहरणों से सिद्ध है कि **ज** ध्वनि का **य्** में बदलना असम्भव घटना नहीं है। सामी भाषाएँ भारत से बहुत दूर जान पड़ती हैं किन्तु ईरान और इराक पड़ोसी हैं। फिर भी इतनी दूर जाने की जरूरत नहीं है। कन्नड़ भाषा में एक शब्द है **दारु** (कौन लोग)। उसी भाषा में उसके दो प्रतिरूप हैं : **यार, आर**। मूलरूप **द्** से आरम्भ होता है। यह **द्** सीधे **य्** में परिवर्तित नहीं होता, **दारु** पहले **जारु** बनेगा, उसके बाद **यार** रूप उपलब्ध होगा। **जारु** जैसा रूप कभी प्रचलित रहा होगा, इसकी कल्पना तुलु भाषा के **दार्नें, जार्नें** (क्या) रूपों को देखकर की जा सकती है। इसी अर्थ में कन्नड़ के तीन रूप हैं : **दाव, याव, आव**। **य्** से आरम्भ होने वाला रूप कन्नड़ में नहीं है। मागधी प्राकृत के लिए प्रसिद्ध है वह संस्कृत शब्दों के रूपान्तरों में **ज्** के स्थान पर **य्** का व्यवहार करती है : **जानाति—याणादि; जनपद—यणवद; जलधर—यलहल**। सामी, द्रविड़, आर्य, तीन परिवारों की भाषाओं में **ज्** ध्वनि **य्** में बदलती है। सम्भवतः तीनों की ऐसी भाषाओं का एक ही क्षेत्र था—भारत के उत्तर-पश्चिम में। अतः **जुपितर** का **युपितर** बनना सहज बोधगम्य है।

जहाँ तक ग्रीक **ज़ेउस्** की प्रारम्भिक ध्वनि संघर्षी **ज़्** का सम्बन्ध है, वह **द्** का परिवर्तित रूप है, यह इसी से सिद्ध है कि ग्रीक भाषा में **ज़ेउस्** का सम्बन्धकारक रूप **दिओस्** है। यहाँ किसी संघर्षी **य्** की कल्पना से काम नहीं चल सकता। जैसे **यव** से **जौ** और फिर उससे ग्रीक **ज़ेआ**, वैसे ही **देउस्** से **जेउस्** और फिर उससे **ज़ेउस्** रूप बना। **ज़ेआ** और **ज़ेउस्** दोनों शब्दों में **ज़्** ध्वनि **ज्** का परिवर्तित रूप है। ईरानी समुदाय की भाषाओं में **ज्** ध्वनि संघर्षी **ज़्** का रूप लेती है; इनके अलावा द्रविड़ भाषाओं में भी यह परिवर्तन देखा जाता है। तेलुगु **ज़ल्लु** का सम्बन्ध संस्कृत **जल** से है; कुवि भाषा में इसका प्रतिरूप है **ज़ल्लनइ**। मराठी में **जगह** के प्रतिरूप **ज़ाय्गा** से बहुत लोग परिचित होंगे।

संस्कृत **जीव** का ग्रीक प्रतिरूप **ज़ोओन्** है। ग्रीक भाषा में **ज्** ध्वनि का अभाव है, अतः उसके समकक्ष **ज़्** का व्यवहार उसके लिए स्वाभाविक है। संस्कृत **युग** (जुआँ) के लिए ग्रीक शब्द **ज़ुगोन्** है। इसका लैटिन प्रतिरूप **इउगुम्** है—**इउपितर्** के समान। ग्रीक समुदाय की आयोनियन भाषा बहुधा **द्** को **ज़्** में बदलती है। **दोर्कस्** (हिरन), **ज़ोर्कस्**। इस शब्द का एक प्रतिरूप **इओर्कोस्** भी है। इस अन्तिम रूप में **ज़्** पहले **य्**

में परिवर्तित हुआ, फिर **य्** ध्वनि के अभाव में **इअ** स्वरों का व्यवहार हुआ। ध्वनि-परिवर्तन की यह प्रक्रिया ऊपर बतायी हुई द्रविड़ भाषा की ध्वनि-परिवर्तन-प्रक्रिया से मिलती है। रोमन लोगों का एक देवता **यानुस्** (अंग्रेज़ी में **जेनस्**) था। इसका भी सम्बन्ध मूलतः **द्यौस्** से था। ग्रीक **ज़ेउस्** का एक पुराना रूप **ज़ेन्** था जिसका दोरिक भाषा में प्रतिरूप **ज़ान्** था। यह **ज़ान्** **यान्** में परिवर्तित हुआ और रोमन रूप **यानुस्** उपलब्ध हुआ।

ज़् सघोष ध्वनि है। संस्कृत, ईरानी, ग्रीक भाषाओं में अनेक स्थानों पर सघोष **ज़्** अघोष **स्** में बदलता है। **पराजित** और **परास्त**, **सृजन** और **सृष्टि** जैसे रूप इसी तरह के परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं। परिनिष्ठित ग्रीक भाषा का **ओद्मे** (गन्ध) आयोनियन में **ओस्मे** है, संस्कृत के **तद्** और **तस्मै** की तरह। **द्** पहले **ज्** में परिवर्तित हुआ, फिर संघर्षी **ज़्** का विकास हुआ, पुनः यह **ज़्** अघोष **स्** में परिवर्तित हुआ। कुछ ग्रीक शब्दों में यह **स्** एक बार फिर **ह्** में बदलता है। संस्कृत **यज्ञ** का ग्रीक प्रतिरूप **हग्नोस्** (पवित्र) है। **यज्ञ** का **य्** क्रमशः **ज्-ज़्-स्** मार्ग से **ह्** में परिवर्तित हुआ। दूसरे वर्ण (**ज्ञ्**) का **ज्** बदलकर **ग्** बना। तालव्य नासिक्य **ञ्** के अभाव में ग्रीक भाषा ने **न्** का व्यवहार किया। इस तरह **हग्नोस्** रूप सिद्ध हुआ।

संस्कृत में एक शब्द है **यकृत्**। इसका लैटिन प्रतिरूप **इएकुर्** है किन्तु ग्रीक भाषा में इसका रूप बनता है **हेपर्**। **य्** क्रमशः **ह्** बना; पुनः यह शब्द उस भाषा में पहुँचा जिसमें **क्** ध्वनि का उस समय विकास न हुआ था। अतः उसके स्थान पर **प्** ध्वनि का व्यवहार हुआ, वैसे ही जैसे संस्कृत **अश्व** के लैटिन प्रतिरूप में तो **क्** है, किन्तु ग्रीक प्रतिरूप **हिप्पोस्** में **प्** है।

यह देखना दिलचस्प होगा कि यूनानी और रोमन लोग बाइबिल का अनुवाद करते समय सामी भाषा के उन शब्दों को ग्रीक और लैटिन में कैसे लिखते थे जिनमें **च्-ज्** ध्वनियाँ विद्यमान थीं। प्रसिद्ध प्रदेश **जूदेआ** (जूडिया) लैटिन में **इउदेआ** लिखा जाता था। **जोब, जोशुआ** जैसे नाम ग्रीक भाषा में **इओब्, इओसोउस्** लिखे जाते थे। सामी भाषा का **चेरुबिम्** शब्द ग्रीक में **खेरोउबिन्** रूप में लिखा जाता था। यहाँ चीनी **चाय** का अंग्रेज़ी प्रतिरूप **टी** स्मरणीय है। मूल शब्द में चकार ही है; वह त-कार के माध्यम से बदलता हुआ अंग्रेज़ी में ट-कार बना। आधुनिक ग्रीक भाषा में **चीन** के लिए **कीन** रूप का व्यवहार होता है। फ्रेन्च में **शीन** रूप का चलन है और रूसी में विशेषण रूप चीनी के लिए **किताइस्की** जैसे रूप का व्यवहार होता है। रूसी भाषा में **च्** ध्वनि विद्यमान है, यह **क्** वाला रूप अन्य स्रोत से आया है। जैसे वर्तमान काल में ग्रीक आदि भाषाएँ **च्** को भिन्न ध्वनियों में परिवर्तित करके विदेशी शब्दों का व्यवहार करती हैं, जैसे बाइबिल का अनुवाद करते समय वे **च्** और **ज्** वाले सामी शब्दों के रूप बदलती हैं, वैसे ही प्राचीन काल में **च्** और **ज्** वाले—अथवा मूलतः **द्** और **य्** वाले—शब्दों के रूप भी वे बदलती थीं।

यहाँ इस बात पर ध्यान देना उपयुक्त है कि भारत के अन्य भाषा-परिवारों की अपेक्षा द्रविड़ समुदाय में **च्** और **ज्** की ध्वनियाँ अस्थिर हैं। इसका कारण यह है

कि इनके उच्चारण में जो स्पर्श तत्व विद्यमान हैं, उसके विरोध में वही प्रवृत्ति काम करती है जो **क्-त्-प्** ध्वनियों को अस्थिर बनाती है। इसी क्रम में **द्-ल्** वाले परिवर्तन पर भी विचार करना चाहिए। जैसे **च्-ज्** परिवर्तित होकर **य्** रूप में ग्रहण किये जाते हैं, वैसे ही **द्** ध्वनि अपना स्पर्श गुण अंशतः खोकर अन्तस्थ **ल्** में परिवर्तित होती है। किन्तु **ज्** सदा **य्** में परिवर्तित हो, यह आवश्यक नहीं है। वह **द्** में भी परिवर्तित होता है। हिन्दी बोलियों की तरह कन्नड़ में भी **काग़ज़** पहले **कागज** रूप में बदलता है, फिर **कागद** रूप में प्रयुक्त होता है। **तक़ाज़ा** इसी प्रक्रिया से **तगादा** बनता है। यदि संस्कृत क्रिया **जीव्** **दीव्** रूप धारण करे, तो अंग्रेज़ी शब्द **लिव** (रहना) आसानी से सिद्ध हो सकता है। आर्य भाषा परिवार की एक भाषा सिंहली श्रीलंका में बोली जाती है। इसमें **जीव** का प्रतिरूप **दीव** मिलता है। **बुलेटिन ऑफ़ द स्कूल ऑफ़ ओरिएन्टल स्टडीज़** के ग्रियर्सन-समर्पित अंक में एडविन् ऐस्० टटल ने **सम ड्रैविडियन प्रेफिक्सेज़** लेख में आहूइ के प्रसंग में लिखा है कि सिंहली में **ज्** के स्थान पर नियमित रूप से शब्द के आरम्भ में **द्** का व्यवहार होता है। इस प्रकार संस्कृत **जिह्वा** और **जानु दिव** और **दान** बनते हैं। टटल ने यह भी ठीक लिखा है कि सिंहली भाषा मूलतः उत्तरी भारत की भाषा थी। संस्कृत **जीव** भारत की किसी उत्तरी भाषा में **दीव** बने, यह विश्वसनीय है। पुनः **देवर—लेवर** की तरह यह **दीव** अंग्रेज़ी का **लिव** बनता है। किन्तु लैटिन में **जीव** से सीधा रूप **वीव** बनता है जो फ्रान्सीसी भाषा की सामान्य क्रिया है। यहाँ **ज्** बदलकर **य्** नहीं बना वरन् समकक्ष अन्तस्थ ध्वनि **व्** में परिवर्तित हुआ है। किसी ने यह नहीं सुझाया कि संघर्षी **व्** से **ज्** का विकास हुआ है। सुझाता तो हम कहते **वीव** से **जीव** का विकास हुआ है! लैटिन में **वोल्कानुस्** अग्नि के देवता का नाम है। ज्वालामुखी पर्वत के लिए अंग्रेज़ी शब्द **वौल्केनो** इसी से सम्बद्ध है। स्पष्ट ही लैटिन शब्द का सम्बन्ध संस्कृत क्रिया **ज्वल्** से है।

अंग्रेज़ी क्रिया **लिव** के समान इस भाषा का दूसरा शब्द **लिवर्** पूर्व रूप की **ज्** ध्वनि से सम्बद्ध है। मूल शब्द संस्कृत **यकृत्** है। इसी से फ़ारसी का **जिगर** बनता है। ईरान के उत्तरी सीमान्त पर कुर्द लोगों की भाषा में इसका **दिगर** रूप प्रचलित है।

मध्यवर्ती ग्, फ़ोगेल्—फ़ाउल् की तरह, लुप्त हुआ; आदिस्थानीय **द् ल्** में परिवर्तित हुआ। **जिगर** से **यकृत्** शब्द का विकास हुआ, यह कोई नहीं कहता। इस शब्द से लिवर् का सम्बन्ध किस तरह का है, इस पर विचार नहीं किया गया। **य्-ज्-द्-ल्** इस क्रम के बिना **लिवर्** शब्द का विकास सिद्ध नहीं किया जा सकता। आदि-इंडोयूरोपियन भाषा में भले ही **ज्** ध्वनि न रही हो—जब यह आदि भाषा ही नहीं थी तब ज् या कोई भी अन्य ध्वनि थी या नहीं थी, यह प्रश्न निरर्थक है—किन्तु जिस समय पश्चिमी एशिया होते हुए भारतीय भाषा-तत्व यूरुप पहुँच रहे थे, उस समय यहाँ **ज्** ध्वनि अवश्य थी।

प्राकृतों में **ज्-द्** वाला परिवर्तन सामान्य है। यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि सिंहली और कुर्द जैसी भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त की भाषाएँ

ज् ध्वनि को निरन्तर **द्** में परिवर्तित करती थीं। इसीलिए **प्रसेनजित** पालि में **पसेनदी** हो जाते हैं। सिंहली के पुराने गद्य में **राजन्** का प्रतिरूप **रादुन्**, **उपजना** का प्रतिरूप **उपदना** मिलते हैं। संस्कृत **जिघित्सा** प्राकृत **दिगिम्छा**, संस्कृत **जुगुप्सा** प्राकृत **दुगुम्छा**, संस्कृत **ज्योत्स्ना** प्राकृत **दोसिणा**, ये रूप उसी ध्वनि-परिवर्तन के प्रमाण हैं। यह प्रवृत्ति फ़ारसी को प्रभावित करती है। संस्कृत **जानाति** में क्रिया-मूल **जान्** है, वह फ़ारसी में **दान्** रूप में प्राप्त है। **दाना** (बुद्धिमान), **नादान**, **दानिस्तन्** (जानना) आदि भारतीय **जान** के विकास हैं। महाराष्ट्र तथा द्रविड़ प्रदेशों के शिक्षित जन संस्कृत **ज्ञान** को **द्यॉंन** कहते हैं, **यज्ञ** को **यद्यँ** बोलते हैं। यह वही पुरानी उत्तर-पश्चिमी प्रवृत्ति है जो **ज्** ध्वनि को **द्** रूप में ग्रहण करती है।

संस्कृत शब्द **जन** का एक प्रतिरूप ग्रीक भाषा में **देमोस** (अंग्रेज़ी **डिमौक्रैसी** का **डेमोस्**) है। **जन** और **देमोस** का अर्थ एक ही है पर ये दोनों प्रतिरूप हैं, इस ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया। **जामाता** और **दामाद** के आपसी अटूट सम्बन्ध की तरह **जन** और **देमोस** का सम्बन्ध अभिन्न है। **म्** और **न्** का हेरफेर **माप** और **नाप**, अथवा **चेरुबिम्** और **खेरुबिन्** की तरह, महत्वपूर्ण नहीं है।

संस्कृत क्रिया **यम्** का अर्थ है किसी पर नियन्त्रण करना, विनिमय में कोई वस्तु देना। संस्कृत में ही दूसरी क्रिया **दम्** नियन्त्रण वाला अर्थ देती है। ग्रीक भाषा में **दमओ** क्रिया का अर्थ है किसी पर नियन्त्रण करना, विवाह करना। यह रूप सीधे संस्कृत **दम्** से सम्बद्ध माना जा सकता है और **यम्** से भी। **यम्** और **दम्** परस्पर सम्बद्ध हैं और इनमें मूल रूप **य्** वाला है। लैटिन में **दोमारे** क्रिया का अर्थ है किसी को नियन्त्रण में रखना, पालतू बनाना। अंग्रेज़ी शब्द **टेम** यही अर्थ देता है और उसी **यम्** शब्द-मूल का विकास है।

जैसे **ज्** **द्** में परिवर्तित होता है, वैसे ही **च्** **त्** में बदलता है। संस्कृत **पंच** का ग्रीक प्रतिरूप **पेन्ते** है। जिस ग्रीक बोली में **त्** ध्वनि का विकास न हुआ था, उसमें **त्** के स्थान पर **प्** का व्यवहार हुआ और **पेम्पे** रूप बना। रूसी में इसका प्रतिरूप नासिक्यहीन **प्यत्** है। भारत के सीमान्त की उत्तर-पश्चिमी बोलियों में किसी समय **च्** और **ज्** की ध्वनियाँ नहीं थीं। इसलिए **च्-ज्** ध्वनियों वाले शब्दों को ग्रहण करते समय इन बोलियों में सहज ही **त्-द्** ध्वनियों का व्यवहार हुआ। लैटिन और ग्रीक में **च्** और **ज्** का अभाव है। रूसी भाषा में केवल **च्** है, **ज्** का अभाव है, यद्यपि **क्-ग्**, **त्-द्**, **प्-ब्** के अघोष-सघोष जोड़े विद्यमान हैं। ध्वनियों का विकास और विभिन्न भाषाओं में उनका प्रसार सुदीर्घ प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होता है। किसी एक भाषा से किसी निश्चित समय पर कुछ शाखाएँ फूटकर अलग-अलग हो गईं, इस धारणा को दृढ़तापूर्वक पकड़े रहने के कारण उक्त प्रक्रिया समझ में नहीं आती।

पंच और **पेन्ते** के समान संस्कृत **चत्वारि** का एक ग्रीक (अत्तिक) रूप **तॅत्तारॅस्** है। अन्य ग्रीक भाषा दोरिक में इसका प्रतिरूप **तॅत्तॉरॅस्** है। परिनिष्ठित ग्रीक में इसका रूप **तॅस्सरॅस्** है। ग्रीक समुदाय की जिस भाषा में **त्** ध्वनि का विकास न हुआ था, उसने इस शब्द को **पिसुरॅस्** रूप में ग्रहण किया।

लैटिन में ऐसे शब्दों के प्रतिरूप इटली अथवा यूनान की बोलियों के **प** वाले रूपों से बने हैं। **अपः** और **अववा** की तरह ग्रीक **पेम्पे** से लैटिन **क्विनक्वे** (पाँच) रूप बना। वैसे ही **पिसुरॅस्** जैसे किसी रूप से चत्वारि का लैटिन प्रतिरूप **क्वन्तुओर्** बना। संस्कृत अव्यय **च्** का ग्रीक प्रतिरूप **तॅ** है और इसका लैटिन प्रतिरूप **क्वॅ** है जो किसी **पॅ** जैसे रूप से व्युत्पन्न हुआ है।

संस्कृत **जन** का एक प्रतिरूप **गण** है। तुखारी में **ज्** ध्वनि क में बदलती है: **राज्—राक्; जान्—कन्वेन्**। वैदिक भाषा में एक शब्द **ग्ना** है जिसका अर्थ है देवी, दिव्य नारी। यह शब्द तुखारी भाषा में भी है। यह दूसरी प्रक्रिया है जहाँ **ज्** ध्वनि **ग्** रूप में ग्रहण की जाती है। संस्कृत **ज्ञान** हिन्दी प्रदेश से लेकर बंगाल तक **ग्यान** रूप में बोला जाता है। इसी प्रवृत्ति के अनुरूप **यम्** क्रिया से जैसे **जम्** और **दम्** रूप बने, वैसे ही **जम्** से दूसरा रूप **गम्** बना। ग्रीक भाषा में **दमेओ** का एक प्रतिरूप **गमेओ** है जिसका अर्थ है विवाह करना (अंग्रेज़ी के **मोनोगैमी** जैसे शब्दों में यही शब्द-मूल है)। संस्कृत **ज्या** (धरती) का ग्रीक प्रतिरूप **गआ** (वर्ण संकोच से एक रूप गे) है। संस्कृत **जरा** का ग्रीक प्रतिरूप **गेरास्**, संस्कृत क्रिया **जन्** से **गॅनॅआ** (जन्म) रूप इसी प्रकार बनता है। **गमेओ**—विवाह करना, **गमोस्**—विवाह; इसी क्रम में **जामाता** और **दामाद** का ग्रीक प्रतिरूप है **गम्ब्रोस्**।

ग्रीक भाषा में जैसे **ज्** नहीं है, वैसे ही तालव्य नासिक्य **ञ्** नहीं है। **ज्** के स्थान पर **ग्** वैसे ही **ञ्** के स्थान पर ग्रीक भाषा की प्रचलित नासिक्य ध्वनि **न्** का व्यवहार हुआ। इस तरह संस्कृत **ज्ञान** का ग्रीक प्रतिरूप **ग्नोसिस्** बना। रूसी भाषा संस्कृत **ज्** के स्थान पर संघर्षी **ज़्** का व्यवहार करती है। अतः **ज्ञान** के **ज्** को उसने **ज़्** रूप में ग्रहण किया। पर उसके पास तालव्य नासिक्य ध्वनि नहीं है, इसलिए वह **ज़्** के साथ **न्** ध्वनि का संयोग करती है और **ज्ञान** का रूसी प्रतिरूप **ज़्नानिये** बनता है। **ज्ञा**—शब्द-मूल रूसी भाषा में बहुत लोकप्रिय रहा है, अतः उसमें **ज़्नात्**—जानना, **ज़्नामेनिये**—चिन्ह **ज़्नाम्ना**—पताका जैसे रूप हैं। संस्कृत शब्द **नाम** मूलतः **ज्ञाम** था। उत्तर पश्चिमी बोलियों में यह रूप **ग्नाम** बना। फिर आदिस्थानीय व्यंजन का लोप हुआ और केवल **नाम** रह गया। लैटिन में इसका प्रतिरूप **नोमॅन्** है; उसका एक वैकल्पिक रूप **ग्नोमॅन्** भी है। **ज़्नाम्या** और **ग्नौमॅन** जैसे रूपों पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि **नाम** शब्द भी **ज्ञा** (और **ग्ना**) शब्द-मूल से बना है। संस्कृत **ज्ञाति** का लैटिन प्रतिरूप **नातुस्** है जिसका अर्थ है सन्तान। इसी का समकक्ष हिन्दी शब्द **नाती** है। **ग्न** में **ग्** का लोप होने से ये रूप बने हैं।

च् और **ज्** के समान **य्** और **व्** ध्वनियाँ भी ग्रीक भाषा में नहीं हैं। लैटिन में **य्** नहीं है किन्तु संघर्षी **व्** है। भाषाविज्ञानियों ने **य्, व्** की कठिनाई से निपटने के लिए दो तरह की **इ, उ** ध्वनियों की कल्पना की है। एक **इ** ध्वनि विशुद्ध स्वर है। वह लैटिन, ग्रीक और संस्कृत में स्वर ही बनी रहती है। दूसरी **इ** स्वर और व्यंजन दोनों हैं। लैटिन-ग्रीक में वह स्वर रहती है, संस्कृत में व्यंजन बन जाती है। उसी तरह दो **उ** हैं। एक **उ** संस्कृत में **व्** बन जाता है पर पश्चिमी शाखा में स्वर बना रहता है;

दूसरा **उ** दोनों शाखाओं में स्वर ही रहता है।

लैटिन में **व्** का होना और ग्रीक में उसका अभाव, यह तथ्य अन्य ध्वनियों की तरह, इसके भी स्वतन्त्र विकास केन्द्र की ओर संकेत करता है। पुराने ग्रीक अभिलेखों में **व्** ध्वनि के लिए रोमन लिपि के **F** जैसा चिन्ह था किन्तु यह ग्रीक भाषा-समुदाय की मूल ध्वनि नहीं थी। उसके स्थान पर स्वरों का व्यवहार होने लगा। इसके विपरीत लैटिन भाषा में संघर्षी **व्** कायम रहा। **य्** ध्वनि न ग्रीक में थी, न लैटिन में।

भारत के भाषाई मानचित्र को देखें तो ज्ञात होगा कि यहाँ **नया—नवा, भया—भवा, गया—गवा** जैसे रूपों का चलन आज भी है। प्राचीन काल में **अयम्** के साथ **अवम्, याति** के साथ **वाति** जैसे रूप मिल जायेंगे। **व्** वाले रूपों की प्रधानता उत्तर-पश्चिमी भाषाओं की विशेषता है। इसलिए **अवम्** रूप संस्कृत में विरल है; उसमें **अयम** और **याति** जैसे रूपों की प्रधानता है। **य्** और **व्** ये दो ध्वनियाँ दो भिन्न केन्द्रों में विकसित हुईं, गण-समाजों के सम्पर्क से वे विभिन्न भाषाओं की ध्वनिव्यवस्था में सम्मिलित हुईं। भारत से बाहर प्राचीन गण-समाजों की भाषा में उनका प्रसार एक-सा नहीं हुआ। संस्कृत क्रिया **युध्** (जिससे **युद्ध** शब्द बनता है) ग्रीक भाषा में **एथ्** है और उससे **एथलोस्** (योद्धा, अंग्रेजी का **ऐथलीट**) शब्द बनता है। संस्कृत **वमन** के अनुरूप लैटिन में **वोमितुस्** (अंग्रेज़ी **वौमिट्**) शब्द है किन्तु ग्रीक में इसका प्रतिरूप **एमेतोस्** है। संस्कृत **युवा** में **य्** और **व्** दोनों ध्वनियाँ है। लैटिन में इसका प्रतिरूप है **इउवेनिस्**। ग्रीक और लैटिन भाषाएँ संस्कृत **य्** के स्थान पर स्वर का प्रयोग करती हैं; **व्** के स्थान पर केवल ग्रीक स्वरों से काम लेती है। द्रविड़ भाषाओं में **य्** की अपेक्षा **व्** का व्यवहार बहुत अधिक होता है। बँगला में **य्** और **व् ज्** और **ब्** रूप में ग्रहण किये जाते हैं; जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ उनके स्थान पर स्वरों का व्यवहार होता है : **यूरोप—इउरोप; माया—माअॅआ; वज़ीर—उजीर; वकील—उकील; वजन—ओजन**। यही स्थिति उन भाषाओं की है जो **य्-व्** ध्वनि-केन्द्रों से दूर के क्षेत्रों में बोली जाती थीं।

सिद्ध यह हुआ कि जिस समय ग्रीक और लैटिन भाषाओं का निर्माण हो रहा था, उस समय **य्** और **व्** ध्वनियाँ उन भाषाओं में विद्यमान थीं जिन्होंने ग्रीक और लैटिन के विकास को प्रभावित किया। ग्रीक और लैटिन के प्रतिकूल हित्ती भाषा में **य्** और **व्** दोनों ध्वनियाँ हैं। यही स्थिति तुखारी भाषा की है। हित्ती और तुखारी केन्तुम् शाखा की भाषाएँ मानी जाती हैं। ग्रीक और लैटिन उनकी सगी बहनें हुईं। किन्तु हित्ती में **य्** और **व्** दोनों हैं, तुखारी में **य्** और **व्** दोनों हैं, लैटिन में **य्** नहीं है केवल **व्** है, ग्रीक में न **य्** है न **व्** है (किसी समय उसमें **व्** था, यह पुराने अभिलेखों से ज्ञात होता है)। यह सारी स्थिति **य्** और **व्** ध्वनियों के भिन्न केन्द्रों में स्वतन्त्र विकास और विभिन्न भाषाओं में उनके विषम प्रसार का प्रमाण है।

७. प्राचीन भाषाओं में मूर्धन्य ध्वनियों की स्थिति

च्-ज् के समान **ट्-ड्** का विकास भी संस्कृत में बाद को हुआ, ऐसा माना जाता

है। द्रविड़ भाषाओं में भी इन ध्वनियों का विकास बाद को हुआ, यह कोई नहीं कहता। इसके विपरीत आम धारणा यह है कि ये विशिष्ट द्रविड़ ध्वनियाँ हैं जिन्होंने आदि भारतीय आर्य भाषा को प्रभावित किया। द्रविड़ों की पराजय और आर्यों की भारत-विजय का सबसे बड़ा प्रमाण संस्कृत में ट-वर्गीय ध्वनियों का सीमित व्यवहार है। पिछले कुछ वर्षों में आर्य-द्रविड़ भाषा-विशेषज्ञों को इस स्थापना में सन्देह होने लगा है। उन्होंने यह नवीन स्थापना प्रस्तुत की है कि संस्कृत में इन ध्वनियों का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ था; उनके व्यवहार का कारण द्रविड़ प्रभाव नहीं है। यह बात पहले अंग्रेज़ विद्वान् बेली ने कही। फिर दूसरे अंग्रेज़ विद्वान् बरो ने **बुलेटिन ऑफ़ द स्कूल ऑफ़ ओरिएन्टल ऐण्ड ऐफ्रीकन स्टडीज** (खण्ड ३४, भाग ३, १९७१) में एक लेख लिखा : **स्पौन्टेनियस् सेरीब्रल्स इन् संस्कृत**। इसमें बेली का समर्थन करते हुए उन्होंने इन ध्वनियों के स्वतन्त्र विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

माना जाता है कि आर्यों के अभियान के समय भारत के उत्तर-पश्चिम में द्रविड़ लोग बसे हुए थे। भारत में आकर आर्यों ने जहाँ अपने उपनिवेश कायम किये, वहाँ भी द्रविड़ लोग विद्यमान थे। इन द्रविड़ों की भाषाओं में ट् और ड् ध्वनियों का व्यवहार होता था। इनसे गहन सम्पर्क होने पर आर्यों ने और बहुत से द्रविड़ भाषा तत्त्व तो ग्रहण किये, केवल ट-वर्गीय ध्वनियों को ग्रहण न करके उनका स्वतन्त्र विकास किया, यह बात कुछ आश्चर्य में डाल देने वाली है।

द्रविड़ भाषाओं में ट्-ड् की स्थिति पहचानने के लिए सबसे पहले यह देखना चाहिए कि शब्दों के निर्माण में उनकी भूमिका क्या है। इसके बाद यह देखना चाहिए कि जिन शब्दों में उनका व्यवहार होता है, उनकी स्थिति समूचे शब्द-भण्डार में क्या है। द्रविड़ भाषाओं के शब्द-भण्डार से यदि उन शब्दों को निकाल दिया जाय जिनके आदि स्थान में ट् का प्रयोग हुआ हो तो इससे शब्द-भण्डार की शब्द-संख्या में विशेष अन्तर न आयेगा। किसी भी भाषा में ध्वनि-विशेष की भूमिका जानने का सहज उपाय यह है कि शब्दों के आदि स्थान पर उसका प्रयोग होता है या नहीं, होता है तो यह प्रयोग विरल है या बहुल है, इस बात पर विचार किया जाय।

द्रविड़ भाषाओं में ट् से आरम्भ होने वाले शब्द विरल हैं। तमिल भाषा का कोई भी अपना शब्द ट् से आरम्भ नहीं होता। इससे च्-सम्बन्धी स्थिति तुलनीय है। माना जाता है कि च् ध्वनि का विकास द्रविड़ भाषाओं में बाद को हुआ। जिस ध्वनि का विकास बाद को हुआ, वह तो पचीसों शब्दों के आदि स्थान पर दिखाई देती है, किन्तु जो ट् ध्वनि उससे पहले से विद्यमान थी, जिसका अस्तित्व आदि द्रविड़ भाषा की ध्वनि-व्यवस्था में स्वीकार किया जाता है, वह शब्द के आदि स्थान से गायब है! इस अद्भुत व्यापार का कारण क्या है?

वैदिक भाषा ने चाहे द्रविड़ भाषाओं से प्रभावित होकर ट्-ड् का विकास किया हो, चाहे स्वतन्त्र रूप से किया हो, शब्द के आदिस्थानीय प्रयोग के विचार से, उसकी स्थिति वही है जो तमिल की है।

आदि स्थान से भिन्न द्रविड़ भाषाओं में ट्-ड् का प्रयोग विरल न होकर बहुल

है। संस्कृत की अपेक्षा, और आर्य परिवार की अधिकांश आधुनिक भाषाओं की अपेक्षा, द्रविड़ भाषाओं के शब्दों में ट्-ड् ध्वनियों का व्यवहार अधिक होता है। यही कारण है कि इन भाषाओं को सुनने या पढ़ने पर यह धारणा आसानी से बन जाती है कि ट-वर्गीय ध्वनियों का बहुल प्रयोग इन भाषाओं की विशेषता है। आदिस्थानीय प्रयोग और मध्यवर्ती प्रयोग का भेद महत्त्वपूर्ण है, इस बात की ओर लोगों का ध्यान कम जाता है। द्रविड़ भाषाओं में ट्-ड् की मध्यवर्ती प्रयोग-बहुलता के कारण हैं। क्-त्-प् की स्थिति पर विचार करें। एक तो व्यंजन वैसे ही कम, उस पर दो स्वरों के बीच में आये नहीं कि उनके लोप होने का खतरा पैदा हुआ। मध्यवर्ती त् अपेक्षाकृत सुरक्षित रहता है किन्तु क् और प् अत्यन्त असुरक्षित रहते हैं। मध्यवर्ती क्-प् की न्यूनता को ट्-ड् पूरा करते हैं। द्रविड़ भाषाओं के विकास की जिस मंजिल में भी संघर्षीकरण-वाली प्रवृत्ति उन्हें प्रभावित करती रही हो, यह स्पष्ट है कि ट् और ड् के संघर्षी रूप न तो द्रविड़ भाषाओं में हैं, न भारत की किसी अन्य भाषा में। संघर्षीकरण की प्रवृत्ति के विरोध में जो ध्वनियाँ अडिग, अपरिवर्तित बनी रहती हैं, वे ट् और ड् हैं। इसलिए द्रविड़ भाषाओं के ध्वनितन्त्र में उनको विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ। किन्तु यह महत्त्व दो स्वरों के बीच में है, शब्द के आदि स्थान पर नहीं है। यदि ट् और ड् से आरम्भ होने-वाले हिन्दी शब्दों पर ध्यान दिया जाय तो यह विदित होगा कि संस्कृत और तमिल की अपेक्षा हिन्दी तथा अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं में इन ध्वनियों की भूमिका कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

अब प्रश्न यह है कि इन ध्वनियों के विकास-केन्द्र कहाँ थे। इसके साथ दूसरा प्रश्न यह है कि इन ध्वनियों ने संस्कृत के अलावा इंडोयूरोपियन परिवार की अन्य भाषाओं के ध्वनितन्त्र को प्रभावित किया या नहीं।

भारत में कम-से-कम दो प्रदेश ऐसे हैं जहाँ त्-द् के स्थास पर ट्-ड् का व्यवहार ही होता है। इनमें एक क्षेत्र है असम और दूसरा गुजरात की कुछ बोलियों का विशेष क्षेत्र। डा० सुनीतकुमार चाटुर्ज्या ने अपने एक संस्मरणात्मक लेख में बताया है कि जब वह पढ़ते थे, तब उनकी भेंट एक गुजराती बन्धु से हुई जो आर्य भाषा के त-कार-वाले शब्दों का उच्चारण हमेशा ट-कार से करते थे। प्राकृत व्याकरणों की परम्परा के अनुसार गुर्जर देश के लोग ट-कार प्रेमी होते थे। बँगला और असमिया के ध्वनि तन्त्रों में एक महत्वपूर्ण भेद यह है कि बँगला में त् और ट् दो स्वतन्त्र अर्थ-विच्छेदक ध्वनियाँ हैं। असमिया में केवल ट-कार है। यह ट-कार मूर्धन्य है या वर्त्स्य है, इस पर आगे विचार करेंगे। इतना तो स्पष्ट है कि त-वर्ग से भिन्न ट-वर्ग के स्वतन्त्र विकास केन्द्र हैं। ट-वर्ग की अन्य ध्वनियाँ छोड़ दें, केवल ट्-ड् पर ध्यान दें, तो विदित होता है, कि इनके केन्द्र वर्तमान भारत के पूर्वी और पश्चिमी प्रदेशों में हैं। असमिया में ट्-ड् का प्रयोग उस प्रदेश की अपनी प्राचीन विशेषता हो सकती है; यह भी सम्भव है कि यह विशेषता वहाँ पश्चिम से पहुँची हो। गुजरात के पड़ोसी प्रदेश सिन्ध में ट्-ड् ध्वनियों का विकास अन्य भाषाओं की अपेक्षा विशेष हुआ है। सिन्धी भाषा में ग् और ब् के समान ड् के दो रूप होते हैं—एक में वायु का विस्फोट बाहर की ओर होता है, दूसरे

में अन्दर की ओर। यह भेद अर्थ-विच्छेदक है। इसलिए यह मानना उचित है कि ट्-ड् ध्वनियों के विकास-केन्द्र भारत की पश्चिमी भाषाओं में थे।

अब इस बात पर विचार करें कि भारतीय भाषाओं में ट्-ड् ध्वनियाँ मूर्धन्य हैं या वर्त्स्य हैं। यह प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि अंग्रेजी में जो ध्वनियाँ हमें ट्-ड् जैसी लगती हैं, उन्हें भारतीय ध्वनियों से भिन्न बताया जाता है।

किसी समय बीम्स जैसे विद्वान् सोचते थे कि मूर्धन्य ध्वनियाँ पुरुषत्व और वीरता की सूचक हैं। अतः उन्होंने कल्पना की थी कि ट्, ड् ध्वनियाँ मूर्धन्य हैं; वे आदि इंडोयूरोपियन भाषा में थीं और अपने विशुद्ध मूर्धन्य रूप में अंग्रेजी में प्रयुक्त होती थीं। भारत में इनसे मिलती-जुलती जो ध्वनियाँ प्रयुक्त होती थीं, वे मूर्धन्य नहीं थीं। इसके बाद पश्चिमी विद्वानों ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि मूर्धन्य ध्वनियाँ द्रविड़ भाषाओं की विशेषता हैं, उनसे सम्पर्क होने के कारण आदि, मध्य और नव्य आर्य भाषाओं में उनका प्रयोग क्रमशः बढ़ता गया। ऊपर उल्लेख हो चुका है कि कुछ विद्वान् मूर्धन्य ध्वनियों का विकास आर्य परिवार में स्वतन्त्र मानते हैं। बेली और बरो से पहले डा० विश्वनाथ प्रसाद ने यह बात भोजपुरी भाषा के ध्वनितन्त्र पर अपने शोध प्रबन्ध में कही थी। यह शोध प्रबन्ध उन्होंने लन्दन में १९५० में प्रस्तुत किया था। यन्त्रों की सहायता से ध्वनियों के अध्ययन की दिशा में यह प्राथमिक प्रयास था। इसमें उन्होंने संस्कृत भाषा में मूर्धन्य ध्वनियों के विकास को स्वायत्त भारतीय-आर्य विकास (औटोनोमस् इन्डोएर्यन् डिवेलपमेन्ट्) कहा था और इस बात की आलोचना की थी कि मूर्धन्य ध्वनियों के विकास को जल्दबाजी में द्रविड़-सम्पर्क का परिणाम मान लिया गया था। उनके ऐसा कहने का कारण यह था कि उन्हें विश्वास था कि वास्तविक मूर्धन्य ध्वनियों का व्यवहार तो द्रविड़ भाषाओं में होता है, संस्कृत और आधुनिक आर्य भाषाओं की ध्वनियाँ वर्त्स्य हैं। यही मत लन्दन के ध्वनिशास्त्री फ़र्थ का भी था। उन्होंने तमिल को ध्यान में रखते हुए लिखा था कि हिन्दी-उर्दू में तथाकथित मूर्धन्य व्यंजनों का स्थान और कार्य उन भाषाओं की ध्वनि-व्यवस्था से बिल्कुल भिन्न है जहाँ ऐसे व्यंजनों का प्रयोग होता है। उन्होंने तमिल भाषा की ध्वनियों का विश्लेषण करते हुए एक निबन्ध लिखा था जो तमिल व्याकरण पर आर्डन की पुस्तक के पहले संस्करण में प्रकाशित हुआ था। बाद को फ़र्थ ने इस निबन्ध का प्रकाशन बन्द करा दिया क्योंकि उन्हें अपनी स्थापनाओं में शंका होने लगी थी। फ़र्थ की पूर्वोक्त धारणा से प्रभावित होकर डा० विश्वनाथ प्रसाद ने अपने शोध प्रबन्ध में लिखा था कि हिन्दी की अपेक्षा मराठी में, और मराठी की अपेक्षा तमिल में मूर्धन्य तत्व अधिक हैं। यह मत उनके अपने अनुसन्धान का परिणाम न था। उनके अपने अनुसन्धान का परिणाम हिन्दी और भोजपुरी की ध्वनियों के बारे में यह था : **पट्टा, अड्डा, भाँटा, पण्डा** जैसे शब्दों में ट्, ड् का उच्चारण करते समय जीभ का स्पर्श लगभग दन्त्य होता है (पृष्ठ ३८७); अन्य शब्दों में जीभ दन्त्य से लेकर तालव्य क्षेत्र तक कहीं भी स्पर्श करती है (पृष्ठ ३८९)। इनकी तुलना अंग्रेजी की ट्, ड् ध्वनियों से करते हुए उन्होंने लिखा : "अधिकांश स्थितियों में अंग्रेज़ी के ट्, ड् के सम्पर्क-स्थान से ज़रा ही कुछ ऊपर—

यदि ऊपर हुआ ही तो—इनका उच्चारण-सम्पर्क होता है। अंग्रेज़ी की इन ध्वनियों का उच्चारण जिह्वाग्र-भाग को दन्तमूलीय रेखा तक उठाने से होता है।" (पृष्ठ ३६५)। आशय यह कि हिन्दी की **ट्, ड्** ध्वनियाँ वर्त्स्य हैं; मूर्धन्य लक्षण स्वल्प है; वे अंग्रेज़ी की **ट्, ड्** ध्वनियों से मिलती-जुलती हैं।

रूसी विद्वान् आन्द्रोनोव ने तमिल व्याकरण पर अपनी पुस्तक में तमिल भाषा की **ट्, ड्** ध्वनियों को वर्त्स्य माना है। चेक भाषाविद् ज़्वेलेबिल ने द्रविड़ भाषाओं के ध्वनितन्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए इन भाषाओं में वर्त्स्य **ट्, ड्** के व्यवहार की बात लिखी है यद्यपि वह इसके साथ मूर्धन्य ट्, ड् का व्यवहार भी स्वीकार करते हैं। उल्लेखनीय है कि द्रविड़ परिवार में कुछ भाषाएँ ऐसी भी हैं जो वर्त्स्य अथवा मूर्धन्य **ट्** के स्थान पर **र्** जैसे व्यंजन का व्यवहार करती हैं। शब्द के आरम्भ में **ट्** ध्वनि विरल है और जहाँ मध्यवर्ती सघोष **ड्** का प्रयोग होता है, वहाँ इसका उच्चारण **ड़्** के समान होता है।

डा० गोलोकचन्द्र गोस्वामी के असमिया भाषा के ध्वनि-तन्त्र पर एक पुस्तक लिखी है। इसमें **ट्, ड्** ध्वनियों के उच्चारण के बारे में उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह हिन्दी-भोजपुरी के सम्बन्ध में डा० विश्वनाथ प्रसाद के मत से मिलता है। **पुत्र, संत्रास, पाताल, पत्नी** जैसे शब्द असमिया में **पुट्र, संट्रास, पाटाल, पट्नी** जैसे रूपों में बोले जाते हैं। डा० गोस्वामी के अनुसार इनके उच्चारण में जीभ का स्पर्श दाँतों के ऊपर से लेकर वर्त्स्य क्षेत्र से कुछ ऊपर तक होता है। आशय यह कि असमिया की **ट्, ड्** ध्वनियाँ वर्त्स्य हैं, मूर्धन्य तत्व बहुत कम हैं।

मूर्धा से जीभ स्पर्श करती है, तब उसकी नोक पीछे की ओर थोड़ा मुड़ती है। यही उसका प्रतिवेष्टन (रिट्रोफ्लेक्शन) है। हिन्दी की **ट्, ड्** ध्वनियों के उच्चारण में यह प्रतिवेष्टन अनेक स्थितियों में नहीं होता। कुछ ध्वनि-शास्त्रियों ने मूर्धन्य शब्द को अवैज्ञानिक मानकर प्रतिवेष्टित ध्वनियों की बात करना युक्तिसंगत माना है। अंग्रेज़ी की इस कोटि की ध्वनियों में जिह्वाग्र भाग का प्रतिवेष्टन नहीं होता, यही लक्षण भारतीय ध्वनियों से उनकी भिन्नता का विशेष सूचक माना गया है। किन्तु यह बात अब बिल्कुल स्पष्ट हो गई है कि आर्य और द्रविड़, दोनों भाषा-परिवारों में अप्रति-वेष्टित वर्त्स्य **ट्-ड्** का व्यवहार बहुत बड़े पैमाने पर होता है। यह स्थिति भी ध्यान देने योग्य है कि अंग्रेज़ी भाषा में दन्त्य **त्-द्** का प्राय: अभाव है। कल्पित आदि इंडोयूरोपियन भाषा में **त्-द्** ध्वनियाँ विद्यमान हैं। जर्मन तथा यूरुप की अन्य भाषाओं में जो शब्द एक ही स्रोत से आये हुए माने जाते हैं, उनकी मूल ध्वनियाँ त्-द् मानी गई हैं, ट्, ड् (वर्त्स्य अथवा मूर्धन्य) नहीं। वास्तव में दन्त्य और वर्त्स्य ध्वनियों के विचार से यूरुप दो हिस्सों में बँटा हुआ है। एक हिस्से में स्लाव और लैटिन समुदायों की भाषाएँ हैं, दूसरे हिस्से में जर्मन समुदाय की उत्तरी भाषाएँ हैं। इसी इंडोयूरोपियन परिवार के अन्तर्गत एक अन्य भाषा समुदाय है केल्त। इस समुदाय की भाषाएँ किसी समय सारे यूरुप में बोली जाती थीं। अब उनके मुख्य क्षेत्र आयर्लैंड, वेल्स और स्कौटलैंड हैं। जहाँ केल्त क्षेत्रों में लैटिन भाषा समुदाय का प्रसार हुआ, वहाँ **त्-द्**

ध्वनियों के विचार से कोई परिवर्तन न हुआ। इसके विपरीत जिन केल्त-क्षेत्रों में जर्मन-भाषा समुदाय का प्रसार हुआ, उनमें त्-द् ध्वनियों का प्रयोग विरल हो गया, बहुल प्रयोग वर्त्स्य ध्वनियों का होने लगा। जैसे असम और बंगाल पड़ोसी हैं, वैसे ही लैटिन और जर्मन, स्लाव और जर्मन, केल्त और जर्मन भाषा-समुदाय एक दूसरे के पड़ोसी हैं। इस स्थिति से यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि पड़ोसी क्षेत्रों में वर्त्स्य और दन्त्य ध्वनियों का भेद इन ध्वनियों के दो भिन्न केन्द्रों में विकसित होने और वहाँ से उनके प्रसारित होने का परिणाम है।

वर्त्स्य और मूर्धन्य (प्रतिवेष्टित) ध्वनियाँ एक दूसरे के बहुत निकट हैं। यूरुप की भाषाओं में वर्त्स्य ध्वनियों के अलावा प्रतिवेष्टित मूर्धन्य ध्वनियों का व्यवहार भी होता है। डा० विश्वनाथ प्रसाद ने अपने शोध प्रबन्ध में हैरोल्ड आर्डन का हवाला देते हुए बताया है कि इंग्लैंड के नौर्थम्बरलैंड क्षेत्र की ट्-ड् ध्वनियाँ प्रतिवेष्टित मूर्धन्य ध्वनियाँ हैं। इसके अतिरिक्त नौर्वे और स्वीडन की भाषाओं पर जिन लोगों ने लिखा है, वे इनमें मूर्धन्य ट्-ड् का व्यवहार स्वीकार करते हैं। भाषाविज्ञानियों ने प्रतिवेष्टन को लेकर भारत और यूरुप की भाषाओं में जो भेद खड़ा किया था, वह निराधार सिद्ध होता है। दोनों जगह वर्त्स्य ध्वनियों का व्यवहार होता है, दोनों जगह मूर्धन्य ध्वनियों का व्यवहार होता है।

कौल्डवेल द्रविड़ भाषाओं का सम्बन्ध शक परिवार से स्थापित करते थे। अपनी स्थापना के प्रमाण-स्वरूप उन्होंने एशिया और यूरुप की जिन शक भाषाओं का हवाला दिया है, उनके बारे में कहीं यह नहीं लिखा कि उनमें ट्-ड् ध्वनियों का व्यवहार होता था। इन्हें वह द्रविड़ परिवार की मूल ध्वनियाँ मानते थे। उन्होंने इस समस्या का विवेचन नहीं किया कि शक-समुदाय की भाषाएँ बोलने वालों ने जब भारत में प्रवेश किया तब किसके सम्पर्क और प्रभाव से उनकी भाषाओं में ट्-ड् ध्वनियों का विकास हुआ। शायद उन्होंने मान लिया था कि यह द्रविड़ भाषाओं का स्वायत्त विकास है जैसे डा० विश्वनाथ प्रसाद, बेली और बरो ने आगे चलकर माना कि संस्कृत में इनका स्वायत्त विकास हुआ था। उधर यूरुप में जर्मन-समुदाय की भाषाओं में ऐसा ही स्वायत्त विकास हुआ। इस तरह के स्वायत्त विकासों की संख्या कुछ आवश्यकता से अधिक बढ़ती जाती है। यह सोचना अधिक युक्ति-संगत होगा कि इन सब तथा-कथित स्वायत्त विकासों का कारण एक ही आर्य भाषा-समुदाय है, असम और गुजरात में जिसके अवशेष मात्र रह गये हैं, किन्तु जो समुदाय अत्यन्त प्राचीन था, इतना प्राचीन कि उसने वैदिक भाषा के अलावा जर्मन समुदाय की भाषाओं को प्रभावित किया और इंडोयूरोपियन परिवार के अलावा द्रविड़ भाषा-समुदाय को प्रभावित किया। कोल और नाग भाषाओं में जहाँ वर्त्स्य मूर्धन्य ध्वनियों का व्यवहार होता है, वहाँ वह आर्य-द्रविड़ प्रभाव के कारण है।

निष्कर्ष यह निकला कि इंडोयूरोपियन परिवार के भारतीय आर्य और जर्मन समुदायों की भाषाओं का विकास जिस समय हुआ, उस समय भारत में वर्त्स्य-मूर्धन्य ध्वनियों का व्यवहार होता था, आर्य परिवार में ही नहीं द्रविड़ परिवार में भी होता था।

भारत के उत्तरी सीमान्त पर पश्तो भाषा बोली जाती है। यह ईरानी शाखा के अन्तर्गत मानी जाती है। इसमें **ट्-ड्** ध्वनियों का व्यवहार होता है। यह व्यवहार केवल हिन्दी-उर्दू अथवा पंजाबी के प्रभाव का परिणाम है, अथवा अत्यन्त प्राचीन है, इस समस्या का विवेचन अभी किसी ने नहीं किया। फ़ारसी में ये ध्वनियाँ नहीं हैं, इसलिए अवश्य ही पश्तो में वे आधुनिक भारतीय भाषाओं के प्रभाव से आई होंगी, ऐसा मान लिया जाता है। १९वीं सदी में ट्रम्प ने सिन्धी और पश्तो भाषाओं के व्याकरण लिखे थे। इनमें उन्होंने इस बात का उल्लेख अनेक बार किया है कि सिन्धी और पश्तो में बहुत बड़ी समानता है। इस समानता के अन्तर्गत **ट्-ड्** ध्वनियों का व्यवहार भी है। जो लोग दरद भाषाओं का एक अलग समुदाय मानते हैं, और इस समुदाय की विशेषता यह मानते हैं कि वह भारतीय आर्य भाषाओं की अपेक्षा ईरानी भाषाओं से अधिक प्रभावित हैं, उनके अधिक निकट हैं, वे इस बात की व्याख्या करें कि फ़ारसी से भिन्न सिन्धी और पश्तो में अनेक समानताएँ क्यों विद्यमान हैं, और इन्हीं समानताओं में एक यह **ट्-ड्** ध्वनियों के व्यवहार की समानता भी सिन्धी और पश्तो भाषाओं में क्यों मिलती है। यह इस बात पर ध्यान दिया जाय कि पश्तो में ऐसी अनेक व्याकरणगत समानताएँ हैं जिनसे वह फ़ारसी से दूर और सिन्धी के समीप है, तो यह बात युक्तिसंगत लगेगी कि पश्तो में इन ध्वनियों का व्यवहार उतना ही पुराना है जितना अन्य आर्य भाषाओं में अथवा द्रविड़ भाषाओं में।

८. प्राचीन भाषा में नासिक्य ध्वनियों की स्थिति

ऐतिहासिक-भाषा विज्ञान के अनुसार आदि इंडोयूरोपियन भाषा में **ङ्, ञ्, न्, म्** चारों नासिक्य ध्वनियाँ विद्यमान थीं। इनमें केवल **म्** और **न्** शब्द निर्माण-प्रक्रिया में काम आती थीं; वही ध्वनियाँ अर्थ-विच्छेदक थीं। **ञ्** और **ङ्** समवर्गीय व्यंजनों के साथ प्रयुक्त होती थीं।

अन्य ध्वनियों के समान नासिक्य ध्वनियों का विकास भी भिन्न केन्द्रों में हुआ था। यही कारण है कि अनेक भाषाओं में बहुधा ये ध्वनियाँ स्वच्छन्द संचरण की स्थिति में दिखाई देती हैं। संस्कृत **नक्र** का हिन्दी प्रतिरूप **मगर** है; एक शब्द है **माप,** उसी अर्थ का सूचक दूसरा शब्द है **नाप**। तमिल में एक सर्वनाम है **नीर्** (तुम), इसका तेलुगु प्रतिरूप है **मीरु**। लैटिन में एक शब्द है **क्वाम्दे** (कितना), लैटिन में ही इसका प्रतिरूप है **क्वान्दे**। संस्कृत में **कन्** और **कम्** क्रियाएँ एक ही अर्थ की सूचक हैं—चमकना, प्रसन्न होना। तमिल में **मुऴइ,** और **नुऴइ,** दोनों का अर्थ है प्रविष्ट करना; **माऴि, नॉडि** का अर्थ है बोलना। ग्रीक भाषा-समुदाय में आयोनियन रूप **मिन्** (उसकी) का दोरिक रूप है **निन्**। आर्य-द्रविड़ दोनों परिवारों में **म्** और **न्** परस्पर स्वच्छन्द-संचरण की स्थिति में दिखाई देते हैं; सर्वत्र नहीं, फिर भी अनेक शब्दों में। जब आदि इंडोयूरोपियन भाषा में **म्** और **न्** दो भिन्न अर्थ-विच्छेदक ध्वनियाँ थीं, तब लैटिन, ग्रीक और संस्कृत में एक ही अर्थ देने वाले **म्** और **न्** से दो रूप बनते हुए क्यों दिखाई देते हैं? इसका कारण वही है जिससे **स्तम्भ** और **स्कम्भ**

जैसी रूपों की रचना हुई थी।

संस्कृत मूलतः ओष्ठ्य नासिक्य ध्वनि की भाषा है। एक उपसर्ग है **सम्**। इसका व्यवहार व्यापक रूप से होता है। इस तरह का **न्** ध्वनि वाला कोई उपसर्ग नहीं है। अन्य ध्वनियों के संयोग से **सत्** भले ही **सन्** बन जाय, पर **सन्** जैसा उपसर्ग संस्कृत में नहीं है। द्रविड़ भाषाएँ कुछ रूपों में संस्कृत की अपेक्षा **न्** का प्रयोग अधिक करती हैं। तमिल **नडु** का अर्थ है मध्य और वह इसी **मध्य** शब्द का प्रतिरूप है। कन्नड़ **नॆत्ति** का अर्थ है माथा और यह **मत्था** जैसे रूप का विकास है। तमिल **निनइ** और कन्नड़ **नॆनसु** का अर्थ है सोचना और इस शब्द-शृंखला का सम्बन्ध संस्कृत क्रिया **मन्** से है। तमिल **नीर्** का तेलुगु प्रतिरूप **मीरु** इसी भेद की ओर संकेत करता है। तमिल की अपेक्षा तेलुगु में आर्य भाषाई ध्वनितन्त्र के लक्षण अधिक मिलते हैं। इसलिए उसमें **न्** के स्थान पर **म्** का प्रयोग स्वाभाविक है। संस्कृत में नपुंसकलिंग संज्ञा-शब्द कर्त्ता-कारक में मकारान्त दिखाई देते हैं यथा **ज्ञानम्**। तमिल में पुरुषों के नाम बहुधा नकारान्त होते हैं। संस्कृत सर्वनाम **अयम्** का तमिल प्रतिरूप **अवन्** है। नासिक्य ध्वनियों का यह भेद दोनों भाषा-समुदायों की मूल भिन्नता का सूचक है—**य्** और **व्** के समान। हिन्दी **मगर**, संस्कृत **नक्र** की अपेक्षा, मध्यदेशीय आर्य ध्वनितन्त्र के निकट है। उधर हिन्दी **न** और **नहीं** की अपेक्षा संस्कृत **मा** आर्य-भाषा परिवार का मूल अस्वीकृति-सूचक शब्द है। इसका ग्रीक प्रतिरूप **मे** है, लैटिन में ने रूप का चलन हुआ। किन्तु कर्म-कारक में जहाँ संस्कृत और लैटिन में शब्द के अन्त में **म्** आयेगा, वहाँ ग्रीक में **न्** का व्यवहार होगा। इसी प्रकार कुछ क्रिया-रूपों में संस्कृत में जहाँ **म्** का व्यवहार होता है, वहाँ ग्रीक भाषा **न्** का प्रयोग करती है यथा संस्कृत **अभरम्** का ग्रीक प्रतिरूप है **ऍफॅरॉन्**। संस्कृत की तरह ग्रीक भाषा में **म्** और **न्** दोनों ध्वनियों का प्रयोग होता है किन्तु संस्कृत की अपेक्षा ग्रीक भाषा—तमिल के समान—**न्** का प्रयोग अधिक करती है।

म् और **न्** में कौन-सी ध्वनि आर्य भाषा-परिवार की मूलध्वनि है, यह जानने के लिए इस परिवार के मूल शब्द भण्डार में इन ध्वनियों की भूमिका देखनी चाहिए। सर्वनाम मूल शब्द-भण्डार का महत्वपूर्ण अंश है। अस्मद्, मदीय, मम, अस्मै, तस्मै, एतस्मात् जैसे रूपों में **म्** ध्वनि की प्रधानता देखी जा सकती है। सम्बन्ध आदि कारकों के बहुवचन में **नः** रूप दिखाई देता है। यह रूप **मद्**, **मन्** जैसे शब्द-मूलों का रूपान्तर है। फ़ारसी में **मन्** का अर्थ है मैं। ठीक इसी अर्थ में तमिल **नान्** का प्रयोग होता है। दोनों शब्द **मद्** के प्रतिरूप हैं। यूरुप की भाषाओं में, संस्कृत के विपरीत और तमिल के अनुरूप, न-कार वाले सर्वनामों का व्यापक प्रयोग होता है। लैटिन **नोस्तेर**—हमारा, फ्रान्सीसी **नू**—हम, रूसी **नास्**—हमें, **नाश्**—हमारा इत्यादि।

सर्वनामों के अलावा क्रियापदों में **मज्ज्**, **मथ्**, **मद्**, **मन्**, **मन्द्**, **म**, **मि**, **मुच्** **मुद्**, **मर्**, या **मृ** आदि में **म्** की महत्वपूर्ण भूमिका है। इनकी तुलना में **न्** से आरम्भ होने वाली भारतीय क्रियाएँ, अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर, उतने व्यापक रूप में प्रयुक्त नहीं होतीं। उपसर्गों की बात पहले कही जा चुकी है। संस्कृत **सम्** का लैटिन प्रतिरूप **कोन्** है; लैटिन में ही म-कार वाला उसका दूसरा प्रतिरूप **कुम्** है। साथ का अर्थ देने वाला यह उपसर्ग

संस्कृत में मकारान्त है। ग्रीक भाषा में लैटिन **कुम्** का प्रतिरूप **सुन्** है जो पुनः इस भाषा के नकारप्रेम का सूचक है।

म् और **न्** इन दो नासिक्य ध्वनियों का विकास दो भिन्न केन्द्रों में हुआ। **म्** का विशेष सम्बन्ध मध्यदेशीय भाषा-केन्द्रों से है और **न्** का उत्तर-पश्चिमी भाषा-केन्द्रों से। इन ध्वनियों का व्यवहार करनेवाली भाषाएँ अपने विकास-क्रम की प्राथमिक अवस्था में ही एक-दूसरे के ऐसे घनिष्ठ सम्पर्क में आईं कि दोनों समुदायों में उन ध्वनियों का व्यवहार व्यापक रूप से होने लगा। किन्तु यह बात ङ् और ञ् के बारे में नहीं कही जा सकती। जो लोग आदि इंडोयूरोपियन भाषा में इनका अस्तित्व स्वीकार करते हैं, उन्हें इस प्रश्न का उत्तर देना चाहिए कि इन ध्वनियों की भाषाई भूमिका क्या है। लैटिन और ग्रीक में **च्-ज्** का अभाव है; ञ् ध्वनि संयुक्त किसके साथ होगी? संस्कृत में **च्-ज्** के साथ इस समवर्गीय नासिक्य ध्वनि का व्यवहार होता है, अर्थ-विच्छेदक ध्वनि वह संस्कृत में भी नहीं है। लैटिन, ग्रीक, हित्ती, तुखारी आदि भाषाओं में उसका अस्तित्व ही नहीं है, वे समवर्गीय ध्वनियाँ ही नहीं हैं जिनके साथ इस अनुनासिक ध्वनि को प्रयुक्त किया जाय। भाषाविज्ञानियों ने कल्पना की है कि आदिभाषा में एक तालव्य **क्** का व्यवहार होता था। यह तालव्य **क्** संस्कृत में तालव्य **च्** बन गया; लैटिन, ग्रीक आदि में वह सामान्य **क्** बना। उस तालव्य **क्** के साथ तालव्य नासिक्य ध्वनि का व्यवहार होता था। किन्तु 'आदि' इंडोयूरोपियन भाषा में यह तालव्य **क्** नहीं था। अतः उसकी समवर्गीय नासिक्य ध्वनि भी चवर्गहीन भाषाओं में नहीं थी।

ञ् और ङ् ध्वनियों का अर्थ-विच्छेदक व्यवहार नाग भाषाओं की विशेषता है। इनका वहाँ आदिस्थानीय प्रयोग होता है और उनका अर्थ-विच्छेदक महत्व है। मोन्पा भाषा में ञ् से शब्द इस प्रकार आरम्भ होते हैं : **ञिरि**—संध्या, **ञिङ्**—वर्ष, **ञोक्तङ्**—दिमाग, **ञुम् बु**—ईमानदार। इसी प्रकार ङ् से शब्द आरम्भ होते हैं : ङ—मछली, **ङम्**—आकाश, ङ-ङ्—गर्दन। इन ध्वनियों का अर्थ-विच्छेदक प्रयोग इस प्रकार होता है : **ङन्**—जादू, **ङ-ङ्**—गीत। (जहाँ एक ही शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता लगे, वहाँ समझना चाहिए कि उसके उच्चारण में स्वरतान का भेद है।) नाग भाषा के बाद कोलभाषाओं में ञ् आदिस्थान पर प्रयुक्त होता है किन्तु ङ् का वैसा प्रयोग इस भाषा-समुदाय में नहीं होता। द्रविड़ भाषाओं में कहीं-कहीं आदिस्थान पर संस्कृत **ज्ञ** अथवा मूल **न्** के स्थान पर ञ् का व्यवहार होता है। एक रूप **नरम्बु** (नस) तो दूसरा रूप **ञरम्बु**। इन रूपों का सम्बन्ध संस्कृत **नाडि** से है। स्पष्ट है कि संस्कृत की अपेक्षा भारत के अन्य तीन भाषा-परिवारों में ञ् का प्रयोग अधिक होता है। इस तरह के परिवेश में समवर्गीय नासिक्य ध्वनि के रूप में उसे अपने ध्वनितंत्र में शामिल कर लेना संस्कृत के लिए स्वाभाविक था।

तमिलनाडु के रामनाथपुरम् जिले में ङ् से आरम्भ होनेवाले कुछ शब्द बोले जाते हैं यथा **ङोप्पन्**—तुम्हारे पिता, **ङोम्मा**—तुम्हारी माता, **ङोक्का**—तुम्हारी बहन,

ङोण्णन्—तुम्हारा भाई। इस बात का उल्लेख षण्मुगम् पिल्लइ ने **इंडियन लिंग्विस्टिक्स** में अपने लेख **ए तमिल डायलेक्ट इन सीलोन** में किया है। अन्यत्र द्रविड़ भाषाओं में यह नासिक्य ध्वनि आदिस्थान में प्रयुक्त नहीं होती। नाग भाषा-समुदाय में इस ध्वनि की अर्थ-विच्छेदक भूमिका देखते हुए यह धारणा पुष्ट होती है कि भारत के अन्य भाषा परिवारों में इसका प्रसार नाग-प्रभाव के कारण हुआ। संस्कृत और यूरप की भाषाओं में समवर्गीय ध्वनि के रूप में उसका सीमित प्रयोग होता है।

समवर्गीय नासिक्य ध्वनि सम्बन्धी नियम भारत के विभिन्न भाषा परिवारों के परस्पर सम्पर्क का परिणाम है। संस्कृत में सभी नासिक्य ध्वनियों की एक-सी भूमिका नहीं है। संस्कृत वैयाकरणों के नियम को आधुनिक आर्य भाषाओं पर लागू करते हुए कुछ अंग्रेज भाषाविज्ञानियों ने यह मान लिया है कि आधुनिक आर्य भाषाओं में वास्तविक नासिक्य ध्वनियाँ केवल दो हैं—**न्** और **म्**; स्पर्श ध्वनियों के साथ योग होने पर समवर्गीय, नासिक्य ध्वनि का व्यवहार होता है। भारतीय भाषाविद् डा० पण्डित ने फ़र्थ और ऐलन की इन मान्यताओं का खंडन किया है। तारापुरवाला को समर्पित **इंडियन लिंग्विस्टिक्स** के विशेषाङ्क (जून १९५७) में उन्होंने गुजराती की नासिक्य ध्वनियों और महाप्राणता पर एक लेख लिखा—**नेजलाइजेशन, ऐस्पिरेशन ऐन्ड मर्मर इन गुजराती**। इसमें उन्होंने मराठी से उदाहरण दिये: **चम्की**—नाक की बाली; **दण्का**—चोट, डङ्का, घण्टा; और गुजराती से उदाहरण दिये: **चिम्की**—नोंचना; **मण्की**—तेज़ (घोड़ी); **जान्की**—सीता का नाम, और बताया कि आधुनिक आर्य भाषाओं में सर्वत्र समवर्गीय ध्वनियों का व्यवहार नहीं होता।

इस प्रसंग में द्रविड़ भाषाओं की स्थिति विचारणीय है। द्रविण व्युत्पत्ति कोष के लेखकों के अनुसार लगभग आधी द्रविड़ भाषाएँ ऐसी हैं जिनमें **च्** या **ज्** के साथ **ञ्** का व्यवहार नहीं होता। तमिल में **अन्बु** (प्रेम), **अॅण्गु**, (भालू), **अॅण्पदु** (अस्सी) रूपों में **प्**, **ब्**, **ग्** के साथ समवर्गीय ध्वनि का व्यवहार नहीं हुआ। तोद भाषा में **ङ्** ध्वनि का अभाव है। इसलिए उसमें **तिन्गोणि** (सोने के सिक्के रखने की थैली), **ईन्** (इस स्थान को) जैसे रूपों का प्रयोग होता है। तोद भाषा में ही **कन्फ़ू** (गरजना), **कॅन्प्ओळ्त्** (खाँसना), जैसे रूपों में **प्**, **फ़्** के साथ भी **न्** का व्यवहार होता है। द्रविड़ भाषाओं की सर्वाधिक प्रयुक्त ध्वनि **न्** है, वह वर्त्स्य है कि दन्त्य, या दो भिन्न नकार हैं, यह प्रश्न यहाँ गौण है। वैदिक भाषा में भी नकार की बहुलता है। मैकडनल के अनुसार **म्** की अपेक्षा **न्** का व्यवहार तीनगुना अधिक होता है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि जिस मूल भाषा से वैदिक भाषा का विकास हुआ है, वह नकारबहुला थी।

'आदि' इंडोयूरोपियन भाषा में चार नासिक्य ध्वनियों के अस्तित्व की कल्पना मिथ्या है, किन्तु जिस समय यूरप की प्राचीन भाषाओं का विकास हुआ, उस समय भारतीय आर्य भाषाओं में इनका व्यवहार होता था। इसका एक प्रमाण यह है कि **यज्ञ, ज्ञान** जैसे संस्कृत शब्दों के ग्रीक और रूसी प्रतिरूप समान भाव से **ञ्** के स्थान

पर **न्** का व्यवहार करते हैं। ग्रीक और लैटिन में ञ् ध्वनि का अभाव है। तुखारी भाषा में इसका व्यवहार होता था, और समवर्गीय ध्वनि के रूप में ही नहीं, आदि-स्थानीय ध्वनि के रूप में भी होता था, तथा संस्कृत शब्द **नाम** के तुखारी प्रतिरूप **ञेम**, **ञोम्** हैं, **नव** का प्रतिरूप **ञु** है। यहाँ **न्** के स्थान पर ञ् का व्यवहार वैसे ही होता है जैसे कुछ द्रविड़ भाषाओं में आदिस्थानीय **न्** की जगह ञ् का व्यवहार होता है। तुखारी भाषा का व्यवहार-क्षेत्र नागजनों से भरा हुआ था। वहाँ इस प्रकार **ञ्** का व्यवहार होना, और लैटिन में उसका अभाव, इस तथ्य की सूचना देता है कि यह ध्वनि भारतीय भाषा-परिवारों में नाग समुदाय की अपनी ध्वनि है, और उसके प्रभाव से उसका प्रसार हुआ है। कुछ अन्य नाग भाषाओं के समान तुखारी भी संस्कृत श् के स्थान पर **क्** का व्यवहार करती है, इससे उक्त धारणा की पुष्टि होती है। आर्य भाषा-परिवार में सिंधी एक ऐसी भाषा है जिसमें **ङ्**, **ञ्** का व्यवहार अधिक होता है; इसका कारण यह हो सकता है कि वह नाग परिवार से अधिक प्रभावित हुई हो। बंगाल की कुछ बोलियों में इसी प्रकार **म्** के स्थान पर **ङ्** का व्यवहार होता है; कुमार का प्रतिरूप होगा **कोङार**। यहाँ नाग प्रभाव असन्दिग्ध है।

उक्त चार नासिक्य ध्वनियों के साथ एक वर्त्स्य अथवा मूर्धन्य ध्वनि और है—**ण्**। भाषाविज्ञानी इसे आदि इंडोयूरोपियन भाषा की ध्वनि-व्यवस्था में स्थान नहीं देते। पहले **ट्** और **ड्** के समान वे इसे संस्कृत की विशेष ध्वनि मानते थे जिसे आर्यों ने द्रविड़ों से ग्रहण किया था। किन्तु अब कुछ भाषाविज्ञानी जैसे **ट्** और **ड्** को आर्य भाषाओं का स्वतन्त्र ध्वनि-विकास मानते हैं, वैसे ही वे **ण्** के विकास को भी स्वतन्त्र मानते हैं।

ट् और **ड्** से **ण्** का अभिन्न सम्बन्ध नहीं है। वर्णमाला में जो वर्ग बनाये गये हैं, उनमें किसी वर्ग की सभी ध्वनियाँ एक साथ विकसित हुई हों, यह आवश्यक नहीं है; किसी भाषा-परिवार में उनका सर्वत्र व्यवहार एक-सा होता हो, यह भी आवश्यक नहीं है। असम और सौराष्ट्र दो टकारप्रधान प्रदेश हैं। गुजराती में णकार की बहुलता है, असमिया में णकार का अभाव है। संस्कृत की अपेक्षा कुछ द्रविण भाषाओं में **न्** और **ण्** का भेद अर्थ-विच्छेदक होता है। कौल्डवेल ने इस विशेषता की ओर ध्यान दिलाया था। तमिल **ऍण्** का अर्थ है विचार और **ऍन्** का अर्थ है बोलना। संस्कृत में **अनु** और **अणु** शब्दों-का सा भेद—यदि **अनु** को स्वतन्त्र शब्द माना जाय तो—बहुत ढूँढ़ने पर मिलेगा। हिन्दी में **ट्** और **ड्** का आदिस्थानीय प्रयोग द्रविड़ भाषाओं की अपेक्षा अधिक होता है किन्तु द्रविड़ भाषाओं की तरह उसमें **न्**—**ण्** का भेद अर्थ-विच्छेदक नहीं है। राजस्थानी जैसी कुछ भाषाओं में **मन** और **मण** जैसे कुछ शब्दों में अर्थभेद किया गया है, **मन** जिसका सम्बन्ध सोचने से है और **मण** जिसका सम्बन्ध तौलने से है। ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बुन्देलखंडी और बोलचाल की हिन्दी में पचीसों शब्द **ट्** और **ड्** से आरम्भ होते हैं, जैसे कि वे तमिल में नहीं होते। इन सबमें णकार का अभाव है जैसे कि तमिल में नहीं है। ब्रज प्रदेश की उत्तरी सीमा पर बाँगरू,

पंजाबी और राजस्थानी भाषाओं की णकार-बहुलता आकर रुक जाती है किन्तु टकार-डकार के प्रयोग में कमी नहीं होती। इससे सिद्ध हुआ कि इस नासिक्य ध्वनि का कोई अटूट सम्बन्ध अपने वर्ग की अन्य ध्वनियों से नहीं है।

जैसे स्वीडन नौर्वे की भाषाओं और नौर्थम्बरलैंड की बोली में मूर्धन्य **ट्-ड्** ध्वनियों का व्यवहार होता है, वैसे ही उनमें मूर्धन्य **ण्** का व्यवहार भी होता है। इस व्यवहार का क्षेत्र सीमित है; **र्** के संसर्ग से वर्त्स्य **न्** मूर्धन्य ध्वनि में परिवर्तित होता है। स्वीडन और नौर्वे की भाषाओं में यह ध्वनि कुछ शब्दों में अर्थ-विच्छेदक भी होती है यथा **कोन्** —बेंत, **कोण्**—अनाज (अंग्रेज़ी **कौर्न**)। यूरुप की इन भाषाओं में मूर्धन्य नासिक्य का व्यवहार स्वतन्त्र विकास वैसे ही नहीं है, जैसे वहाँ **ट्** और **ड्** ध्वनियों का व्यवहार स्वतन्त्र विकास नहीं है।

यह प्रश्न रोचक है कि किन्हीं भारतीय भाषाओं में इस ध्वनि का आदिस्थानीय व्यवहार होता था कि नहीं। प्राकृतों में **ण्** की ऐसी भरमार हुई कि आदिस्थान पर नकार का बहिष्कार ही हो गया। भारत के पर्वतों, नगरों, प्रदेशों, महापुरुषों, देवी-देवताओं आदि का नाम **ण्** से आरम्भ नहीं होता। जिन लोगों ने प्राकृत में ग्रन्थ लिखे हैं, वे सब संस्कृत जाननेवाले थे और किन्हीं नियमों के अनुसार वे अपनी मूल संस्कृत को प्राकृत रूप में प्रस्तुत करते थे। इसलिए प्राकृतों को लोकभाषा समझना भ्रम है। किन्तु जो लोग प्राकृतें गढ़ रहे थे, वे किसी के वास्तविक उच्चारण की नकल कर रहे थे। हरियाणा, राजस्थान, पंजाब आदि में णकार-बहुलता आज भी देखी जाती है; सम्भव है, किसी समय यहाँ के गण-समाज इस ध्वनि का आदिस्थानीय प्रयोग भी करते रहे हों। जो भी हो, यह निश्चित है कि मूर्धन्य नासिक्य ध्वनि का प्रधान व्यवहार-क्षेत्र भारत में ही है और जिस समय यूरुप की भाषाओं का निर्माण हुआ, उस समय इस ध्वनि का व्यवहार उत्तर-पश्चिमी भारतीय गण-भाषाओं में होता था। संस्कृत के अनेक शब्दों में आदिस्थानीय **न्** का उच्चारण मूर्धन्य था, इसकी चर्चा पहले खंड में हो चुकी है। भाषाविज्ञानियों ने अपनी कल्पित आदि इंडोयूरोपियन भाषा में चार नासिक्य ध्वनियों का अस्तित्व स्वीकार किया है; इनमें उन्हें पाँचवीं मूर्धन्य नासिक्य ध्वनि भी जोड़ लेनी चाहिए।

९. प्राचीन भाषाओं में र्-ल् की स्थिति

अन्य ध्वनियों के समान लुण्ठित **र्** और पार्श्विक **ल्** ध्वनियों का विकास भी भिन्न केन्द्रों में हुआ। संस्कृत मूलतः **र्**-क्षेत्र की भाषा है। उपसर्ग, प्रत्यय, सम्बन्ध-सूचक शब्द—**प्र, प्रति, परि, पुरः, परः, अन्तर** आदि—**ल्** की अपेक्षा इसी ध्वनि का व्यवहार अधिक करते हैं। जिसे मागधी प्राकृत कहा जाता है, उसकी एक विशेषता **र्** के स्थान पर **ल्** का व्यवहार है। परिनिष्ठित हिन्दी में **ल्** की प्रधानता है यथा **साला** शब्द ब्रज से लेकर मिथिला तक **सार** जैसे रूपों में बोला जाता है, बंगाल में वह फिर **साला** (यानी **शाला**) हो जाता है। **मृच्छकटिक** में संस्थानक **मरिष्यसि** को

मागधी में **मलिहिशि** कहता है। बँगला में **श्** को जैसा एकाधिकार मिला है, वैसा **ल्** को तो प्राप्त नहीं है, किन्तु मगध गण-भाषा की वह विशेषता वास्तविक थी; **स्** और **र्** के स्थान पर उसमें **श्** और **ल्** का व्यवहार होता था। संस्कृत में **स्** और **र्** व्यंजनों का मिश्रण तो होता है, **स्** और **ल्** व्यंजनों का मिश्रण नहीं होता। संस्कृत में **स्लथ, स्लोक** जैसे रूप असम्भव हैं। **ल्**-क्षेत्र की भाषाओं ने संस्कृत की मूल स्रोतभाषा या भाषाओं पर गहरा प्रभाव डाला था। इसका एक परिणाम यह हुआ कि संस्कृत में अनेक वैकल्पिक रूपों का चलन हुआ: रघु—लघु, रिह्—लिह् (चाटना), रिप्—लिप् (लीपना), रभ्—लभ् (प्राप्त करना); रप्—लप् (बात करना)।

अन्य ध्वनियों की तरह **र्-ल्** का भी वैकल्पिक प्रयोग द्रविड़ भाषाओं में मिलता है। तमिल में **इलञ्जि, इरिञ्जि** (एक फूल), तुलु में **उरॅ, उलॅ** (हिरन), गोंडी में **रोपा, लोपा** (भीतर), तमिल **काल्**, कोत में **कार्** (उल्टी करना), तमिल में कल्, नइकि में **कर्प्** (सीखना), तमिल में **मलडु**, तुलु में **मरडु** (बंजर होना); इस तरह के रूपों में आर्य क्षेत्र की भाषाओं के समान **र्-ल्** का वैकल्पिक व्यवहार होता है। इस बात की छानबीन नहीं की गई कि उत्तरी और दक्षिणी द्रविड़ भाषा-समुदायों की अपेक्षा मध्य द्रविड़ भाषा-समुदाय में **र्** का व्यवहार अधिक होता है या नहीं। अनुमान है कि अन्य विशिष्ट ध्वनियों के समान **र्-ल्** का प्रयोग-अनुपात मध्यदेश से द्रविड़ भाषाओं के सामीप्य अथवा दूरी के अनुरूप है।

कोल भाषाओं में **र्** और **ल्** के वैकल्पिक प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं। कुइपर ने इस भाषा-समुदाय में व्यंजनों के स्वच्छन्द संचरण पर जो निबन्ध **लिंगुआ** संख्या १४ में प्रकाशित किया था, उसमें उन्होंने सीधे **र्-ल्** के स्वच्छन्द संचरण के उदाहरण तो नहीं दिये किन्तु ऐसे उदाहरण एकत्र किये हैं, जिनमें मूल **ड्** ध्वनि के स्थान पर कहीं **र्** का व्यवहार होता है और कहीं **ल्** का होता है। **डक् डक—रक् रक** (सीधे खड़े सींग); **डअँक—लअँग्र** (बड़ी सींगों वाले भैंसे); **डुकन् डुकुन्—रकन् रुकुन्** (लड़खड़ाते हुए); **डकज् डुकुज्—लकज् लुकुज्** (लड़खड़ाते हुए)। मानना चाहिए कि **र्-ल्** का वैकल्पिक व्यवहार एक अखिल भारतीय प्रपंच है।

नाग भाषाओं में **र्** और **ल्** दोनों ध्वनियों का व्यवहार होता है। शान्ति निकेतन में, रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवनकाल में, एक चीनी विद्वान् रहते थे जो गुरुदेव का उच्चारण हमेशा **कुलुदेव** के रूप में करते थे। सम्भव है, भारत के भीतर या बाहर, नाग भाषाओं का ऐसा क्षेत्र रहा हो जिसमें, मगध के समान, केवल **ल्** ध्वनि का चलन रहा हो, और उसने मगध की भाषा को भी प्रभावित किया हो अथवा मगध की भाषा ने उसे प्रभावित किया हो। मगध नाग भाषाओं के क्षेत्र से सटा हुआ था, बंगाल आज भी है; अतः इस प्रकार का प्रभाव असम्भव नहीं है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में यह माना गया है कि आदि इंडोयूरोपियन भाषा में जहाँ **ल्** का व्यवहार होता था, वहाँ संस्कृत में कहीं तो **र्** का व्यवहार होता है, और कहीं **ल्** कायम रहता है। यथा **श्रवस्**, ग्रीक प्रतिरूप **क्लेओस्** (कीर्ति); **पुर,**

ग्रीक प्रतिरूप **पोलिस्** (नगर); इसके विपरीत संस्कृत **लुभ्यति** का लैटिन प्रतिरूप **लुबेत्**; संस्कृत **प्लीहन्**, ग्रीक प्रतिरूप **स्प्लेन्** (जिगर)। इंडोयूरोपियन भाषा का **र्** अधिकतर संस्कृत में कायम रहता है: **परि**, ग्रीक **पेरि**, (चारों ओर); **वर्तते**, लैटिन प्रतिरूप **वॅर्तितुर्** (घूमता है)। मूल ध्वनि **ल्** थी जो भारत में आकर कुछ शब्दों में **र्** में परिवर्तित हुई, इसका प्रमाण केवल यह है कि ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं में ल् ध्वनि वाला रूप ही मिलता है। किन्तु ग्रीक भाषा में ही शब्दों के दो रूप हैं; **ग्राफो, ग्लाफो** (अंकित करना)। आदि इंडोयूरोपियन शब्द में **र्** ध्वनि थी या **ल्**? ग्रीक शब्द **पउरोस्**, लैटिन प्रतिरूप **पउलुस्** (छोटा, क्षुद्र), इनमें आदि इंडोयूरोपियन शब्द का प्रतिनिधि कौन है? भिन्न केन्द्रों में **र्-ल्** जैसी ध्वनियों का स्वतन्त्र विकास न मानने से इस तरह के प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जा सकता।

स्वयं संस्कृत भाषा में वैदिक शब्दों और बाद की संस्कृत के शब्दों में अन्तर दिखाई देता है। वैदिक भाषा में जहाँ **र्** है, वहाँ बाद की संस्कृत में बहुधा **ल्** है, यथा **रघु** के स्थान पर **लघु** का प्रयोग उत्तरकालीन संस्कृत की विशेषता है। **रघु** के ग्रीक और लैटिन प्रतिरूपों में, **लघु** के समान, **ल्** का व्यवहार होता है—**एलखुस्, लेविस्**। ऐसे काफी शब्द हैं जिनमें वैदिक भाषा तो कल्पित मूल ध्वनि **ल्** को बदलकर **र्** कर देती है किन्तु बाद की संस्कृत में वह आदिभाषा वाला **ल्** कायम रहता है। बरो ने इस प्रपंच की व्याख्या करते हुए कहा है कि ऋग्वेद की भाषा उत्तर-पश्चिमी बोली के आधार पर निर्मित हुई थी और वेदोत्तर संस्कृत का निर्माण मध्यदेश में हुआ था। विभाजन इस प्रकार हुआ कि पश्चिमी बोली ने **ल्** को **र्** में बदल दिया और पूर्वी बोली अर्थात् मध्यदेश की बोली ने मूल **ल्** ध्वनि कायम रखी। यह व्याख्या मध्यदेश के **र्**-प्रेम और मगध के **ल्**-प्रेम के विपरीत है।

संस्कृत के उपसर्गों आदि में जो **र्** के व्यवहार की प्रधानता है, वह सिद्ध करती है कि यह रेफ-प्रधान क्षेत्र की भाषा है। पर यह क्षेत्र न तो उत्तरी-पश्चिमी है और न पूर्वी सीमान्त है। यह क्षेत्र पुराना मध्यदेश है जो अपनी रेफ-प्रियता आज तक बनाये हुए है। दो-भिन्न केन्द्रों में विकसित **र्-ल्** ध्वनियों का व्यवहार करनेवाले गण-समाज परस्पर घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करेंगे, तब **र्-ल्** वाले ढेरों वैकल्पिक रूप उत्पन्न होंगे। ऐसे वैकल्पिक रूप यूरुप की भाषाओं की अपेक्षा भारतीय भाषाओं में अधिक हैं, यह अकारण नहीं है। यूरुप की भाषाओं का विकास उस समय हुआ जब भारतीय भाषाएँ आर्य, द्रविड़, नाग, कोल आदि—अपना स्वरूप बहुत-कुछ स्थिर कर चुकी थीं। यहाँ से जिन भाषा-तत्वों का निर्यात हुआ, उनमें **र्** और **ल्** वाले तत्व अलग-अलग बँटे हुए थे, वैकल्पिक रूप कम थे।

र् और **ल्** के सम्बन्ध में तमिल भाषा की स्थिति इस सन्दर्भ में विचारणीय है। इस भाषा की परम्परा यह है कि कोई शब्द **र्** या **ल्** से आरम्भ न किया जायगा। शब्द चाहे आर्य हो चाहे द्रविड़, **र्** और **ल्** के पहले, उच्चारण-सुकरता के लिए, एक अतिरिक्त स्वर जोड़ा जायगा, यथा **राम** शब्द **इरामन्**, **लक्षण** शब्द **इलक्कणम्** रूप

में ग्रहण किया जायगा (जिससे सिद्ध हुआ कि **रावण** और **लंका** तमिल शब्द नहीं हैं)। अब ग्रीक भाषा में ऐसे अनेक शब्द हैं जिनके संस्कृत प्रतिरूप **ल्** या **र्** से आरम्भ होते हैं किन्तु ग्रीक रूपों में एक अतिरिक्त स्वर जुड़ा हुआ है, यथा लघु का प्रतिरूप **एलखुस्** है। संस्कृत में **ऋक्ष** का ग्रीक प्रतिरूप **अक्तोंस्** है। इन रूपों में एक अतिरिक्त स्वर जोड़ा गया है। कोई नहीं कहता कि 'आदि' इंडोयूरोपियन भाषा में यह अतिरिक्त स्वर विद्यमान था। पर ग्रीक रूपों में अतिरिक्त स्वर का कारण क्या है? और अवेस्ता में संस्कृत **ऋतस्** का प्रतिरूप **एरजुस्** है। ईरानी भाषा में इस अतिरिक्त स्वर-संयोग का कारण क्या है?

जर्मन **अर्तिग्** का अर्थ है शिष्ट, और इसका सम्बन्ध संस्कृत **ऋत से** है। जर्मन **अॅर्ब्** का अर्थ है **वारिस**, विरासत से सम्बन्धित; **अॅर्बन्** का अर्थ है विरासत पाना। ये शब्द संस्कृत **ऋक्थ** से सम्बन्धित हैं। संस्कृत **रजत** का ग्रीक प्रतिरूप **अर्गोस्** है जिसका अर्थ है चमकना। लैटिन में इसका प्रतिरूप है **अर्गेन्तुम्**—चाँदी। इसी से अंग्रेज़ी शब्द **आर्जॅन्ट्** बनता है जिसका अर्थ है चाँदी या श्वेत, और चमकदार। संस्कृत लोमश (शृंगाल) का ग्रीक प्रतिरूप है **अलोपेस्**। फ़ारसी **अरीस्** (चतुर) का मूलरूप संस्कृत **ऋषि** है; फ़ारसी **अर्गवान्** (लाल) का सम्बन्ध संस्कृत **रोध** (रोहित, लोहित) से है। संस्कृत **लक्तक** (लाल, रक्त) का संस्कृत में ही वैकल्पिक रूप **अलक्तक** है। मोनियर विलियम्स के अनुसार प्राचीन पाठों में **लोक** शब्द **उलोक** रूप में मिलता है, और उनका कहना है कि यह किसी ऐसी बोली में **लोक** का प्रतिरूप है जिसमें **उ** उपसर्ग लगा हुआ है। यह **उ** उपसर्ग तमिल परम्परा का अतिरिक्त स्वर है। इस तरह के और बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं।

संस्कृत **रघु** का ग्रीक प्रतिरूप **ब्रखुस्** (थोड़ा) है। **रघु** और **लघु** दोनों रूप ग्रीक समुदाय में पहुँचे; **ल्** के पहले तो **ए** स्वर जोड़ा गया, **र्** के पहले **ब्** व्यंजन। ग्रीक **ब्रखुस्** का लैटिन प्रतिरूप **ब्रेविस** है जिससे अंग्रेज़ी शब्द **ब्रीफ़्** (संक्षिप्त) और **ब्रेविटी** (संक्षेप) बनते हैं। ये पितामह **रघु** की सन्तान हैं। संस्कृत क्रिया **रु** से **रव** शब्द बना; उसका अंग्रेज़ी प्रतिरूप **रोर्** है। ग्रीक **ब्रेमो** (रव) उसी क्रिया से बना है; यहाँ पुनः **र्** के पहले अतिरिक्त व्यंजन **ब्** जोड़ा गया है। **ब्रेमो** का लैटिन प्रतिरूप **फ़ेमो** है। लैटिन **रोस्** (ओस) का ग्रीक प्रतिरूप **द्रोसोस्** है; यहाँ **र्** के पहले अन्य व्यंजन **द्** जोड़ा गया है। संस्कृत **अलस** में शब्दमूल **लस्** है, **ल्** के पहले अतिरिक्त स्वर **अ** जोड़ा गया है। लैटिन **लस्सो** (थकाना), **लस्सुस्** (थका हुआ), **लस्सितुदो** (थकान), अंग्रेज़ी **लैसीट्यूड्** (थकान, आलस्य) में वही शब्दमूल **लस्** है। ग्रीक भाषा के **ब्लस्**, **ब्लकोस्** (आलसी) रूपों में **ल्** के पहले अतिरिक्त व्यंजन **ब्** जोड़ा गया है। फ्रान्सीसी भाषा का **ब्लाज़े** (थका हुआ, आलसी) **लस्** के ग्रीक रूपान्तर **ब्लस्** के आधार पर बना है। ग्रीक रूप **लेस्तिस्** (विस्मरण) शायद सीधे **लस्** शब्दमूल से, अतिरिक्त व्यंजन लगाये बिना, बना है। लिथुआनियन रूप **अल्सिनमस्** (थकना) में तमिल **अलचु** (थकना), **अलुप्पु** (थकान), **अलैचु** (आलस करना) और संस्कृत

अलस के समान ल् के पहले अतिरिक्त स्वर अ लगा हुआ है। लिथुआनियन **इलन्क** (खाड़ी) भारतीय शब्द **लंका** (द्वीप) से सम्बद्ध प्रतीत होता है। यहाँ ल् के पहले अतिरिक्त स्वर इ है।

ग्रीक भाषा में ल् से आरम्भ होनेवाले शब्द तो अनेक हैं किन्तु र् से आरम्भ होनेवाला एक भी शब्द नहीं है। र् के स्थान पर ग्रीक भाषा की एक ध्वनि ह्र् है जिससे शब्द आरम्भ होते हैं, यथा सामी शब्द **रब** से **रब्बी** बनता है जिसका अर्थ है मेरे स्वामी। ग्रीक भाषा में इसका रूप होता है **ह्रब्बी**। इस ह्र् के उच्चारण में ह् ध्वनि पहले बोली जाती थी, र् ध्वनि बाद को। ग्रीक भाषा में महाप्राणता अत्यन्त क्षीण थी, इस-लिए यह सम्भावना असंगत नहीं है कि शब्द के आरम्भ में हकार वास्तव में स्वर का काम करता था। यदि उसे व्यंजन ही माना जाय तो भी यह स्पष्ट है कि र् से शब्द आरम्भ न होगा, उसके पहले एक अतिरिक्त ध्वनि का प्रयोग आवश्यक है। संस्कृत **ऋचा** और लैटिन **रतुस्** का ग्रीक प्रतिरूप **ह्रेतोस्** है जिसका अर्थ है भाषित, विख्यात। यहाँ लैटिन और ग्रीक प्रतिरूप इस तथ्य की ओर संकेत कर रहे हैं कि लैटिन की अपेक्षा ग्रीक भाषा र् के पहले अतिरिक्त ध्वनि का प्रयोग अधिक करती है।

भारतीय भाषाओं में द्रविड़ परिवार ही एकमात्र भाषा-समुदाय नहीं है जिसमें र्-ल् के पहले अतिरिक्त स्वर जोड़ने की प्रवृत्ति हो। यह प्रवृत्ति कहीं-कहीं कोल भाषाओं में भी देखी जाती है। **इंडियन लिंग्विस्टिक्स** (जून १९५७) में गुम्पर्ज़ का एक लेख प्रकाशित हुआ था—**नोट्स औन द फोनोलौजी औफ़ मुंडारी**। इसमें उन्होंने मुंडारी भाषा की इस प्रवृत्ति का उल्लेख किया है: ल्, स् और नासिक्य ध्वनियों के पहले कभी-कभी हल्के रूप में स्वर उच्चरित होता है ('ए स्लाइट वोकैलिक औन-सेट्')।

द्रविड़ भाषाओं में कौन-सा समुदाय र्-ल् ध्वनियों का आदिस्थानीय प्रयोग अधिक करता है, और कौन कम, इस पर विचार किया जाय तो आर्य द्रविड़ परिवारों के आपसी सम्बन्धों के बारे में कुछ रोचक परिणाम निकलेंगे। दक्षिण भाषा-समुदाय में द्रविड़ व्युत्पत्ति कोष के अनुसार, र् से आरम्भ होनेवाले छह शब्द हैं, ल् से आरम्भ होनेवाले तमिल शब्द तीन हैं। उत्तरी समुदाय में केवल एक ब्राहूइ शब्द र् से आरम्भ होता है, ल् से आरम्भ होनेवाला ब्राहूइ शब्द एक भी नहीं है। कुड़ुख भाषा में ल् से आरम्भ होने वाला एक शब्द है, र् से आरम्भ होने वाला शब्द एक भी नहीं है। मल्तो में दो शब्द ल् से आरम्भ होते हैं, र् से एक भी आरम्भ नहीं होता। इसक विपरीत मध्यवर्ती समुदाय की कन्नड़ भाषा में १९ शब्द र् से आरम्भ होते हैं और १६ शब्द ल् से आरम्भ होते हैं। इसी मध्यवर्ती समुदाय की तेलुगु भाषा में ४६ शब्द र् से आरम्भ होते हैं और १९ शब्द ल् से आरम्भ होते हैं, (यहाँ शब्द से आशय द्रविड़ व्युत्पत्ति कोष में दिये हुए शब्द-मूलों से है जहाँ एक शब्द-मूल के अन्तर्गत एक ही भाषा के अनेक शब्द हो सकते हैं। शब्द-मूलों की संख्या देखने से कुल शब्दों की संख्या का अनुमान किया जा सकता है।) शब्द के आरम्भ में र् या ल् ध्वनि का प्रयोग द्रविड़ परिवार की

ध्वनि-प्रकृति के प्रतिकूल है। सघोष स्पर्श ध्वनि का आदिस्थानीय प्रयोग द्रविड़ भाषाओं में जितना होने लगा है, **र्-ल्** ध्वनियों का आदिस्थानीय प्रयोग उसकी अपेक्षा कुछ कम ही है। जैसे अल्पप्राण सघोष ध्वनियों का आदिस्थानीय प्रयोग मध्यवर्ती समुदाय की भाषाओं में सर्वाधिक है, वैसे ही **र्-ल्** का आदिस्थानीय प्रयोग इसी समुदाय में सर्वाधिक है। इसका कारण मध्यदेश के आर्य भाषा केन्द्रों का सामीप्य ही हो सकता है और यह सामीप्य काफी प्राचीन होना चाहिए क्योंकि यूरुप की कुछ भाषाएँ **र्-ल्** के आदिस्थानीय प्रयोग को लेकर द्रविड़ समुदाय से मिलती-जुलती हैं।

इंडोयूरोपियन परिवार की भाषाओं में हित्ती के दस्तावेज सबसे पुराने माने जाते हैं। **र्** और **ल्** के सम्बन्ध में इस भाषा की स्थिति तमिल जैसी है। स्टुर्टवैन्ट ने हित्ती भाषा पर अपनी पूर्वोक्त पुस्तक में लिखा है : "हित्ती शब्दों में **र्** कभी आदिस्थानीय नहीं होता किन्तु जो इंडोयूरोपियन शब्द **र्** से आरम्भ होते थे, उनका यहाँ अभाव-सा जान पड़ता है।" ('अॅपैरेन्ट ऐब्सेन्स', पृष्ठ २५)। हित्ती भाषा में **र्** से आरम्भ होने वाले 'इंडोयूरोपियन' शब्द न मिलें, यह आश्चर्य की बात है। इतना तो स्पष्ट है कि उसमें कोई शब्द **र्** से आरम्भ नहीं होता। स्टुर्टवैन्ट आदि इंडोयूरोपियन भाषा के स्थान पर आदि इंडोहित्ताइत भाषा की कल्पना करते हैं। इस भाषा की **र्-ल्** ध्वनियों के बारे में वह कहते हैं : "इंडोहित्ताइत **र्-ल्** वर्ण ('सिलेबिक' **र्** और **ल्**) हित्ती में नियमित रूप से **उर्** और **उल्** रूपों में प्राप्त होते हैं।" (पृ० २६)। इस वाक्य से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि हित्ती नाम की यह प्राचीन भाषा **र्-ल्** ध्वनियों से पहले **उ** स्वर जोड़ती है। यह सारा व्यापार आकस्मिक नहीं है। उसकी व्याख्या द्रविड़ परिवार की ध्वनि-प्रकृति को ध्यान में रखते हुए ही की जा सकती है। संस्कृत भाषा स्वयं जहाँ-तहाँ इस प्रकृति से प्रभावित है। भारत से बाहर की इंडोयूरोपियन भाषा में अतिरिक्त स्वर वाला लक्षण सर्वत्र एक-सा नहीं है। भारत की द्रविड़ भाषाओं में इसी प्रकार इस लक्षण के प्रसार में विषमता है। इसका कारण आर्य भाषा परिवार के मूल केन्द्रों से द्रविड़ भाषाओं का प्राचीन सामीप्य अथवा उनकी दूरी है।

द्रविड़ भाषाओं की एक मूर्धन्य पार्श्विक ध्वनि है **ळ्**। ऋग्वेद का पहला मन्त्र **अग्निमीळे** से आरम्भ होता है। मैकडनल ने वैदिक भाषा के ध्वनितन्त्र में इस ध्वनि को स्वीकार नहीं किया। वह **ईळे** के स्थान पर **ईडे** पढ़ते हैं। यह मूर्धन्य पार्श्विक **ळ्** द्रविड़ भाषाओं के अतिरिक्त मराठी, राजस्थानी और बाँगरू में विद्यमान है, 'आदि' इंडोयूरोपियन भाषा के ध्वनितन्त्र में यह ध्वनि भी थी, भाषाविज्ञानियों के लिए यह बात कल्पनातीत है। इंडोयूरोपियन परिवार के अन्तर्गत विभिन्न भाषा-समुदायों का निर्माण और विकास भिन्न-भिन्न समय पर हुआ; उनका सम्पर्क भी भारत की भिन्न-भिन्न गण-भाषाओं से भिन्न-भिन्न समय पर हुआ। मूर्धन्य पार्श्विक ध्वनि पश्चिमी स्लाव भाषाओं में विद्यमान है। एनट्विसिल और मौरीसन ने स्लाव भाषाओं पर एक पुस्तक लिखी है **रशन ऐण्ड द स्लावोनिक लैंग्वेजेज़**। इसमें उन्होंने बताया है कि

उक्त ध्वनि का उच्चारण जिह्वा को कोमल तालु के समीप लाने से होता है। पश्चिमी स्लावोनिक भाषा-समुदाय के बारे में उन्होंने लिखा है कि इसमें सामान्य वर्त्स्य ल् था ही नहीं। चेकोस्लोवाकिया के विद्वान् हुस ने, पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में, सामान्य तालव्य ल् और इस मूर्धन्य ल् में भेद किया था। उक्त पुस्तक के लेखकों के अनुसार यह ध्वनि पोलैण्ड की सीमा के पास अधिक प्राप्त होती है। उन्होंने लिखा है कि हुस ने स्लोवाक जनों की भाषा में तालव्य ल् का अभाव बताया था। इसके बाद उन्होंने एक आश्चर्यजनक बात लिखी है : इस समय स्लोवाक बोलियों में तीन ध्वनियाँ है : ल, ळ्, ऴ्। (पृष्ठ ३०६)।

अंग्रेजी का साधारण ऐल् अक्षर तालव्य या वर्त्स्य ल् का सूचक है; इसके ऊपर एक चिह्न बनाकर वे कोमल तालु वाले ल् (ळ) का संकेत करते हैं, उसी ऐल् अक्षर को बीच से काटकर तीसरी ध्वनि ऴ् सूचित करते हैं। इस तीसरी ध्वनि की विशेषता यह है कि वह उ स्वर में बदल जाती है। यह विशेषता तमिल-मलयालम की उस ध्वनि में है जिसे मेरी इस पुस्तक में ऴ् द्वारा व्यक्त किया गया है। इसके उच्चारण में अवरोध तत्व इतना कम होता है कि व्यंजन ध्वनि लगभग स्वर जैसी सुनाई देती है और तमिल शब्दों में वह कभी-कभी स्वर में परिवर्तित भी हो जाती है। ज़्वेलेबिल ने द्रविड़ ध्वनितन्त्र पर अपनी पुस्तक में बताया है कि अनेक शब्दों में इस ध्वनि का लोप हो जाता है। लोप होने का कारण यह है कि यह ध्वनि स्वर के बहुत निकट है। तमिल भाषा में समय सूचक शब्द है **पॉऴदु**; इसका अन्य रूप इसी भाषा में **पोदु** है। इस रूप परिवर्तन का कारण ऴ् के व्यंजन तत्व की क्षीणता और उसका स्वर में परिवर्तित होना है। इसी प्रकार तमिल **पुऴु** (कृमि) का कोत रूप **पू** है, बदग में इसका प्रतिरूप **हू** है और **तोद** में केवल **ऊ** बच रहता है। यह ऴ् ध्वनि अर्धस्वर में भी बदलती है यथा **मऴइ** (वर्षा), कोत में **मय्** है और तोद में **मव्** है। तमिल शब्द **कुऴन्दइ** (बच्चा) इसी भाषा की बोलियों में **कॉयन्दॅ** और **कोन्दॅ** रूपों में बोला जाता है। ज़्वेलेबिल के अनुसार बोलचाल की तमिल में इस ऴ् ध्वनि का पूर्णतः लोप हो गया है; शिक्षा के प्रसार से उसे अब पुनः प्रस्थापित किया जा रहा है। तेलुगु भाषा में इस ध्वनि के स्थान पर **ल्** का व्यवहार किया जाता है। दक्षिणी तमिल और श्रीलंका की तमिल में ऴ् के स्थान पर ळ् का व्यवहार किया जाता है। तमिल भाषा-क्षेत्र के पश्चिमी भाग में ऴ् के स्थान पर य् का व्यवहार होता है। मद्रास में यह ध्वनि अंशतः ल् रूप में बोली जाती है।

आन्द्रोनोव ने इस ध्वनि को **व्** और **य्** जैसे अर्ध स्वरों के साथ रखा है। यह उचित है क्योंकि इनके उच्चारण में वायु-निर्यात के समय अवरोध कम होता है। इसीलिए यह ऴ् ध्वनि **य्-व्-ल्** में बदलती दिखाई देती है। आन्द्रोनोव के अनुसार भी बोलचाल की तमिल से इस ध्वनि का लोप हो गया है। प्राचीन तमिल वैयाकरण तोल्काप्पियर ने इसे **य्-र्-ल्-व्** के साथ रखा है और सुब्रह्मण्य शास्त्री ने इनके व्याकरण की अपनी व्याख्या में इस ध्वनि को अर्द्ध स्वर माना है। ज़्वेलेबिल ने ऴ् के ध्वनिगत

मूल्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह पश्चगामी, सघोष, संघर्षी ध्वनि से लेकर प्रतिवेष्टित सघोष कम्पन तक की ध्वनि है ('फ्रौम रिट्रैक्टेड व्हायस्ड फ्रिकेटिव् टु रिट्रो-फ़्लेक्स व्हायस्ड व्हायब्रैन्ट')। इस व्याख्या में प्रतिवेष्टन वाली बात ध्यान देने योग्य है। देफ़ेरारी नाम के विद्वान् ने इटालियन, स्पैनिश और फ्रेंच भाषा के ध्वनितन्त्र पर अपनी पुस्तक **द फोनोलौजी औफ़ इटालियन, स्पैनिश ऐन्ड फ्रेन्च** में दो लकारों का भेद बताया है। एक लकार सामान्य तालव्य है; दूसरे लकार के उच्चारण में जीभ का अग्रभाग वर्त्स्य अथवा उसके आगेवाले क्षेत्र की ओर उठाया जाता है। वर्त्स्य क्षेत्र से ऊपर वाला भाग मूर्धा कहा जायगा; सम्भव है कि उस ध्वनि के उच्चारण में जीभ के अगले भाग का प्रतिवेष्टन भी होता हो।

लैटिन समुदाय की भाषाओं में एक ऐसे लकार का व्यवहार होता है जो तालव्य नहीं है, वर्त्स्य अथवा मूर्धन्य है। पश्चिमी स्लाव भाषाओं में एक ऐसे लकार का व्यवहार होता है जिसके उच्चारण में जीभ को तालु के निकट लाना पड़ता है। स्वीडन और नौर्वे की भाषाओं में **ट्-ड्-ण्** के साथ मूर्धन्य ळ् भी है; इसी प्रकार वह इग्लैंड में नौर्थम्बर्लैन्ड की बोली में प्रयुक्त होता है। इस सम्बन्ध में अभी और छानबीन की आवश्यकता है पर इतना स्पष्ट है कि तालव्य अथवा वर्त्स्य लकार के साथ एक अन्य पार्श्विक ध्वनि का व्यापक व्यवहार भारत के बाहर होता है। इंडोयूरोपियन भाषाओं में इस ध्वनि के व्यवहार का कारण द्रविड़ भाषाओं से इनका प्राचीन सम्पर्क होना चाहिए। इसके सिवा कुछ स्लाव भाषाओं में एक तीसरी ध्वनि ऴ् का व्यवहार होता है जिसमें अवरोधतत्व क्षीणतम है। इस ध्वनि का स्लोवाक और तमिल बोलियों में स्वर में बदल जाना आकस्मिक नहीं है।

इंग्लैंड में **र्** और **ल्** ध्वनियों की स्थिति दिलचस्प है। एच० ए० हार्मैन ने अंग्रेज़ी भाषा की ध्वनियों पर अपनी पुस्तक **द साउन्ड्स औफ इंगलिश स्पीच** में बताया है कि अंग्रेज़ी में दो प्रकार के **ल्** बोले जाते हैं। एक सामान्य **ल्** है और दूसरा विशिष्ट (डार्क ऐल्)। इस दूसरे ल् का उच्चारण इस तरह होता है मानो वक्ता ने उसे निगल लिया हो; उसका उच्चारण मुँह के सबसे पीछे वाले हिस्से में होता है। **र्** के उच्चारण में परिनिष्ठित अंग्रेज़ी लुंठन-क्रिया बहुत कम करती है और आदिस्थानीय **र्** को छोड़कर उसका उच्चारण बहुत कम सुना जाता है। हार्मैन कहते हैं कि अधिकांश अंग्रेज़ **र्** का उच्चारण करते ही नहीं हैं; उससे केवल पास वाला स्वर कुछ दीर्घ हो जाता है। अंग्रेज़ी **र्** की यह स्थिति तमिल और स्लोवाक भाषाओं में **ऴ्** से मिलती-जुलती है। स्कौटलैंड में **र्** का उच्चारण बहुत साफ सुना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे दो प्रकार के पार्श्विक **ल्** विभिन्न क्षेत्रों में बोले जाते रहे हैं, वैसे ही दो प्रकार के लुंठित **र्** भी प्रयुक्त होते रहे हैं।

क्लौड मर्टन वाइज़ ने ध्वनि-विज्ञान पर अपनी पुस्तक **ऐप्लाइ फ़ोनेटिक्स** में अंग्रेज़ी **र्** के उच्चारण के बारे में बताया है कि जिह्वाग्र-भाग ऊपर की ओर, अथवा ऊपर और पीछे की ओर, उठता है। यह जीभ की क्रिया कुछ-कुछ वैसी ही है जैसी

ळ् के उच्चारण में होती है। इसे मूर्धन्य र् कह सकते हैं। नौर्वे और स्वीडन की भाषाओं में जिस व्यंजन के पहले यह र् आता है, उसका मूर्धन्यीकरण हो जाता है यथा **कोर्न्** शब्द में है **न्** के पहले र् है, अतः वह मूर्धन्य **ण्** बना और शब्द का रूप हुआ **कोण्**। ठीक यही प्रक्रिया बहुधा उन संस्कृत शब्दों में घटित होती है जिनमें त-वर्गीय व्यंजन के पहले र् आता है। ऐसा सर्वत्र नहीं होता। इसका कारण यह है कि संस्कृत में दो तरह की र् ध्वनियाँ थीं, एक दन्त्य या वर्त्स्य, और दूसरी मूर्धन्य। पहली का विलायती प्रतिरूप दक्षिण इंग्लैंड में है, दूसरी का स्कौटलैंड में। मैकडनल ने वैदिक भाषा में र् और ल् ध्वनियों को क्रमशः मूर्धन्य और दन्त्य बताया है। वास्तव में र् भी दो प्रकार का था, दन्त्य और मूर्धन्य और ल् भी उसी तरह दो प्रकार का था। यदि संस्कृत में मूर्धन्य र् ही होता तो उसके संसर्ग में आनेवाली **तवर्गीय** ध्वनियों का सर्वत्र मूर्धन्यीकरण होता। संस्कृत में मूर्धन्य ल् का व्यवहार अन्यन्त सीमित है, उसकी अपेक्षा मूर्धन्य र् का व्यवहार अधिक होता है। यह स्वाभाविक है क्योंकि संस्कृत मूलतः र् ध्वनि वाली भाषा है। यह भाषा जब मूर्धन्यीकरण की प्रवृत्ति से प्रभावित होती है, तब दन्त्य र् पूरी तरह विस्थापित नहीं हो जाता। मध्यदेश में, वह, मूर्धन्यीकरण की उत्तर-पश्चिमी प्रवृत्ति से अपनी रक्षा करता है, और वेदोत्तर संस्कृत में वही उस भाषा की प्रधान रेफ-ध्वनि रहता है।

मूर्धन्य र् के प्रभाव से त-वर्गीय ध्वनियों में जैसा परिवर्तन संस्कृत में घटित होता है, वैसा ही द्रविड़ भाषाओं में कभी-कभी दिखाई देता है। इससे विदित होता है कि वैदिक भाषा में न तो टवर्गीय ध्वनियाँ द्रविड़ प्रभाव से आई हैं और न उनका स्वतंत्र विकास हुआ है। वैदिक भाषा और द्रविड़ भाषाएँ, दोनों ही किसी विशेष भाषा-समुदाय से प्रभावित हुई हैं। इसलिए र् ध्वनि के बाद जो त् आता है, दोनों में जहाँ-तहाँ उसका मूर्धन्यीकरण होता है। द्रविड़ भाषाएँ भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त पर बोली जाती थीं। मध्यदेश की अपेक्षा यह लकारप्रधान क्षेत्र था, इसी कारण संस्कृत की तुलना में द्रविड़ लकार का मूर्धन्यीकरण अधिक हुआ। इसी प्रकार द्रविड़ भाषाओं की तुलना में संस्कृत र् का मूर्धन्यीकरण अधिक हुआ। द्रविड़ भाषाओं की मूल ध्वनि दन्त्य ल् है, मूर्धन्य ळ् नहीं। एक बार इस ध्वनि का निवेश हो जाने पर शब्द-निर्माण-प्रक्रिया में उससे काम लिया जाने लगा किन्तु इस व्यापार में उसकी भूमिका वैसी ही महत्वपूर्ण नहीं है जैसी दन्त्य ल् की। फिर उसके पश्च-मूर्धन्य ऴ् रूप का विकास हुआ। इसकी भूमिका और भी सीमित है, इसीलिए बोलचाल की तमिल से भी इसका लोप हो गया है। मूर्धन्य ळ् और पश्च-मूर्धन्य ऴ् का भेद वैसा ही है जैसा तमिल और मलयालम में दन्त्य न् और वर्त्स्य ऩ् का भेद है। और दन्त्य ल् तथा मूर्धन्य ळ् का भेद वैसा है जैसा दन्त्य न् और मूर्धन्य ण् का भेद है। द्रविड़ भाषाओं की मूलध्वनि दन्त्य न् है, उसी के समान मूल पार्श्विक ध्वनि दन्त्य ल् है।

नृत् अथवा **नर्त** से जैसे **नट** बनता है, वैसे ही **भृत्** अथवा **भर्त्** से **भट** बनता है। **ऋध्** क्रिया से **आर्ध्य** शब्द बनेगा और उसका रूपान्तर होगा **आढ्य** (समृद्ध)।

संस्कृत **अर्ध** कन्नड़ में **अड्ड** है, हिन्दी **बर्ध** (बैल) का तमिल प्रतिरूप **एरुदु** और कुड़ुख रूप **अड्डो** है। संस्कृत **वृत्त** (वर्त) का तमिल प्रतिरूप **वट्टम्**, **अश्रद्धा** का तमिल प्रतिरूप **अचट्टइ है**। कभी-कभी एक ही भाषा में वैकल्पिक रूप मिलते हैं जैसे कन्नड़ में **कुरुडे** और **कुरुदे** (अन्धा)। प्राकृतों में इस तरह के परिवर्तन बहुत होते हैं। इससे बड़ी सरलता से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि प्राकृतें द्रविड़ प्रभाव व्यक्त करती हैं। किन्तु प्राकृतों में यह परिवर्तन बहुत अधिक है, द्रविड़ भाषाओं में वैसे परिवर्तन का अनुपात बहुत ही कम है।

१०. प्राचीन भाषाओं में ष् की स्थिति

मूर्धन्य **र्**, **ल्**, **ट्**, **ण्**, के समान एक मूर्धन्य **ष्** है। 'आदि' इंडोयूरोपियन भाषा की ध्वनि-व्यवस्था में इसको भी स्थान नहीं मिला, उसमें एक ही मूल दन्त्य सकार की स्थिति मानी गई है। भारतीय आर्य भाषा-क्षेत्र के पूर्वी छोर पर मगध एक ऐसा प्रदेश है जिसमें तालव्य **श्** का ही व्यवहार होता था। मूर्धन्य **ष्** के ऐसे ही किसी व्यवहार-क्षेत्र का पता नहीं है किन्तु इस बात का संकेत मिलता है कि मूर्धन्य **ष्** का व्यवहार उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों में अधिक होता था। संस्कृत में मूर्धन्य **ष्** की भूमिका अत्यन्त सीमित है। बहुत थोड़े शब्दों में इसका आदिस्थानीय प्रयोग होता है। इसकी तुलना में तालव्य **श्** की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है, शब्द-निर्माण-प्रक्रिया में अर्थ-विच्छेदक ध्वनि के रूप में उसका व्यवहार अधिक होता था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दन्त्य, तालव्य और मूर्धन्य सकार तीन केन्द्रों में विकसित हुए और इन तीनों केन्द्रों के परस्पर सम्पर्क में आने से वे एक ही ध्वनि-व्यवस्था में सम्मिलित किये गये।

संस्कृत में **र्** के संसर्ग से दन्त्य **स्** मूर्धन्य रूप में बोला जाता है। **वर्ष**, **हर्ष** जैसे शब्दों के साथ उनके **वर्स**, **हर्स** जैसे प्रतिरूप संस्कृत में असम्भव हैं, जैसे **वर्ण**, **कर्ण** के साथ **वर्न**, **कर्न** जैसे प्रतिरूप संस्कृत में असम्भव हैं। इसी प्रकार तालव्य **श्**, **त्** के समीप होने पर, अपने साथ उसे भी मूर्धन्य बना लेता है, यथा **नश्यति** और **विनाश** किन्तु **नष्ट**। संस्कृत में **नश्त** जैसा रूप असम्भव है। संस्कृत में मूर्धन्य **ष्** विशेष संदर्भों में प्रतिस्थापित होनेवाली ध्वनि है। यही स्थिति अनेक द्रविड़ भाषाओं में है। कोत भाषा के बारे में भाषाविज्ञानियों ने लिखा है कि उसमें मूर्धन्य **ष्** का व्यवहार तभी होता है जब उसके आगे या पीछे कोई मूर्धन्य स्पर्श ध्वनि हो।

संस्कृत की तुलना में द्रविड़ भाषाओं में मूर्धन्य **ष्** की भूमिका और भी सीमित है। आर्य भाषा-परिवार में अब कोई ऐसी भाषा नहीं है जो बोलचाल में इस ध्वनि का व्यवहार करती हो, लिखित भाषा में ही उसके दर्शन होते हैं। शिक्षित जन भी तालव्य **श्** और मूर्धन्य **ष्** के उच्चारण में विवेक नहीं करते। दक्षिण भारत के शिक्षित जन इस भेद के प्रति अधिक सचेत रहते हैं।

आर्य भाषा-क्षेत्र में मूर्धन्य **ष्** का लोप हो गया है किन्तु द्रविड़ क्षेत्र में एक

भाषा अब भी ऐसी है जो दन्त्य **स्** ही नहीं, तालव्य **श्** और मूर्धन्य **ष्** का अर्थ-विच्छेदक उपयोग करती है। एमेनो के अनुसार यह तोद भाषा है। पर्वत-प्रदेश में नष्ट होते हुए एक द्रविड़ गण-समाज की यह भाषा अब भी वह भेद कायम किये हुए है जो किसी समय संस्कृत की विशेषता थी और जो भेद अधिक विकसित समाजों की आर्य-द्रविड़ भाषाओं में नष्ट हो गया है। तोद भाषा में **पोश्** का अर्थ है दूध, और **पोष्** का अर्थ है भाषा। यह दूसरा शब्द वास्तव में संस्कृत **भाषा** का ही प्रतिरूप है। पार्वतीय प्रदेशों में अलग-थलग पड़े हुए गण-समाज कभी-कभी प्राचीन ध्वनि-व्यवस्था की अधिक रक्षा करते हैं। यही कार्य तोद भाषा ने किया है। उसमें तालव्य **श्** और मूर्धन्य **ष्** का अर्थ-विच्छेदक व्यवहार इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत करता है कि उसका मूल व्यवहार-क्षेत्र भारत के उत्तर-पश्चिम में था और तोद भाषा उसी क्षेत्र की है।

अन्य मूर्धन्य ध्वनियों के समान इस **ष्** का व्यवहार भी यूरुप की भाषाओं में होता है। नौर्वे, स्वीडन और नौर्थम्बर्लैन्ड की भाषाएँ, विशेष सन्दर्भों में, इसका व्यवहार करती हैं। यह स्वीकार करना होगा कि जिस समय यूरुप की भाषाओं का विकास हुआ, उस समय आर्य द्रविड़ गण-भाषाओं में इसका व्यवहार होता था। कोल और नाग भाषाओं में इस ध्वनि का अभाव है। यह ध्वनि चाहे जिस स्रोत से आई हो, उसने मध्यदेशीय आर्य भाषा को प्रभावित किया, वह संस्कृत की विशिष्ट ध्वनि बनी। अंशतः वह द्रविड़ भाषाओं में स्वीकृत हुई।

जैसे **स्** और **श्** नाग-द्रविड़ भाषाओं में बहुधा **क्** रूप में ग्रहण किये जाते हैं, वैसे ही मूर्धन्य **ष्** **क्** या **ख्** रूप में ग्रहण किया जाता रहा है। भारतीय **तृष्** क्रिया अंग्रेज़ी **ड्रिङ्क** का पूर्व रूप **है**। जर्मन में इसी का प्रतिरूप **ट्रिङ्कॅन्** है। यहाँ मूर्धन्य **ष्** स्पर्श **क्** में परिवर्तित हुआ है। एक जर्मन बोली में इसका प्रतिरूप **ट्रीख़्** है। अर्थ वही है—पीना। ब्लूमफील्ड ने भाषा पर अपनी पुस्तक में इस शब्द के बारे में लिखा है : स्विट्ज़रलैंड के दक्षिण-पश्चिमी भाग के जर्मनभाषी जन प्राचीन जर्मन भाषा के **क्** को संघर्षी **ख़्** में बदल देते हैं और पूर्ववर्ती नासिक्य ध्वनि का लोप कर देते हैं; यह ठेठ स्थानीयता ('क्रैस लोकलिज़्म') है। उनके अनुसार स्विट्ज़रलैंड के अधिकांश जर्मन-भाषी क्षेत्र में **क्** ध्वनि वाले रूप का ही उच्चारण होता है।

वास्तव में यहाँ संघर्षी **ख़्** सीधे मूर्धन्य **ष्** का रूपान्तर है। हिन्दी की बोलियों में **वर्षा** जैसा शब्द **बरखा** बोला जाता है, वैसे ही **तृष्** का रूपान्तर **त्रिख़्** हुआ। यह बात सही है कि जर्मन बोलियाँ कहीं **क्** का व्यवहार करती हैं और कहीं **ख़्** का, यथा उत्तरी जर्मन **माकॅ** दक्षिणी जर्मन में **माख़ॅन्** (बनाना) है। यहाँ यह सम्भावना है कि मूल शब्द **माष्** रहा हो; जर्मन **इष्** (मैं) दो अन्य रूपों में भी बोला जाता है : उत्तर में **इक्**, दक्षिण में **इख़्**। इस प्रकार जो पहले निपट स्थानीय प्रयोग लगता है, वह पहाड़ी प्रदेश के एक कोने में छिपा हुआ मूल शब्द **तृष्** का सहज रूपान्तर है।

संस्कृत में एक संयुक्त व्यंजन ध्वनि है **क्ष्**। **ऋक्ष, दक्षिण, तक्ष** जैसे शब्दों

में इस संयुक्त ध्वनि का व्यवहार होता है। तमिल भाषा में जैसे संस्कृत **समय** का प्रतिरूप **तमय** स्वीकार किया गया था, वैसे ही ग्रीक भाषा में मूर्धन्य **ष्** को **त्** रूप में ग्रहण किया गया था। सिद्धान्त वही है कि जिस भाषा में दन्त्य, तालव्य या मूर्धन्य सकार नहीं है, उसमें वह **क्, त्, प्** किसी भी ध्वनि के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। **क्** और **ष्** का संयुक्त रूप संस्कृत **क्ष्** है। ग्रीक भाषा प्रथमत: **क्** ध्वनि को ज्यों का त्यों रहने देती है, दूसरी **ष्** ध्वनि को **त्** रूप में स्वीकार करती है। इस प्रकार **तक्षन्** ग्रीक भाषा में **तॅक्तोन्** रूप में प्राप्त होता है। इस कोटि के संस्कृत शब्दों के ग्रीक प्रतिरूप सिद्ध करते हैं कि ग्रीक भाषा के निर्माणकाल में उसके पास-पड़ोस में **ष्** का व्यवहार होता था; इसका व्यवहार-क्षेत्र भारत का उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश था और **ष्-त्** की ध्वनि-परिवर्तन-प्रक्रिया वही है जो **समय-तमय** की है।

इस प्रसंग में ब्रुगमन ने अपने तुलनात्मक व्याकरण के पहले खण्ड में लिखा है : "अन्त में यह प्रश्न अब भी किया जा सकता है कि उन शब्दों में सकार का उच्चारण **क्** ध्वनि के बाद किया जाता था या नहीं जिनमें संस्कृत **क्ष्** के मुकाबले ग्रीक **क्त्** दिखाई देता है, जैसे **तक्षन्-तॅक्तोन्** (बढ़ई); **ऋक्ष-अर्क्तोस्** (भालू); और यह कि उस इंडोजर्मैनिक ध्वनि से यह सकार भिन्न था या नहीं, जो संस्कृत **अक्षस्**, ग्रीक **अक्सोन्**, (धुरी), संस्कृत **दक्षिणस्**, ग्रीक **दॅक्सिओस्** (कुशल) जैसे शब्दों में पूर्वानुमानित है। सम्भवत: वह ध्वनि **थ्** थी। कारण यह कि अभी तक यह सम्भव नहीं हुआ कि ऐसे नियम का पता लगाया जाय, जिसके कारण, विशेष रूप से ग्रीक में **क्त्-क्स्** का भेद उत्पन्न हुआ हो।" (पृष्ठ ४०८)।

ब्रुगमन की कठिनाई का कारण यह है कि वह ग्रीक भाषा में एक ही ध्वनि-व्यवस्था मानते हैं। यह ग्रीक भाषा अनेक गण-भाषाओं का समुदाय है; इसलिए उसकी ध्वनि-व्यवस्था भी अनेक ध्वनि-तन्त्रों का समवाय है। यह समवाय एक-रूप नहीं है, उसमें आन्तरिक वैषम्य है। ध्वनियों का विकास विभिन्न केन्द्रों में हुआ, अत: **ष्** कहीं **स्** रूप में स्वीकार किया जाता है, कहीं **त्** रूप में, कहीं **ख्** रूप में। **दक्ष** और **दाक्षिण्य** की शृंखला में ग्रीक शब्द **तॅख्ने** (कौशल), **तॅख्नाज़ो** (कौशल का प्रयोग करना) है। यहाँ **पक्षी-पाखी** के समान **क्ष्** ध्वनि **ख्** में परिवर्तित हुई है। संस्कृत क्रिया **क्षि** का ग्रीक प्रतिरूप **पिथओ** है; यहाँ **क्ष्** ध्वनि **पथ** रूप में ग्रहण की गई है। **ष्-स्-थ्** एक रूपान्तर प्रक्रिया यह है जिससे **ष्** के स्थान पर **थ्** का प्रयोग हुआ। फिर किसी गणभाषा में **क्** का अभाव होने से उसकी जगह **प्** से काम लिया गया। **स्** की जगह **त्** को जैसे महाप्राण किया गया, वैसे ही उसके साथ के **प्** को भी महाप्राण रूप दिया गया। संस्कृत **क्षोणि** (धरती) का ग्रीक प्रतिरूप **ख्थोन्** है। यहाँ **क्ष्** के **क्** को स्वीकार किया गया; फिर **थ्** के समान उसे भी महाप्राण बनाकर **ख्थ्** की प्रतिष्ठा हुई। ग्रीक भाषा के निर्माणकाल में न केवल **ष्** का व्यवहार होता था वरन् संयुक्त ध्वनि **क्ष्** का व्यवहार भी होता था। **क्ष्** के **क्त्**, **क्स्**, **ख्**, **पथ्** **ख्थ्**, ये पाँच ग्रीक रूपान्तर प्राप्त हैं। ग्रीक भाषा के ध्वनितन्त्र को एकरूप मानकर जो नियम बनाये गये हैं, वे यहाँ काम

नहीं देते।

स्वीडन की भाषा में मूर्धन्यीकरण की प्रक्रिया संस्कृत से मिलती-जुलती है। दन्त्य **स्** के पहले **र्** ध्वनि हो तो दन्त्य **स्** मूर्धन्य रूप में बोला जाता है। अंग्रेज़ी शब्द **रोज़्** (गुलाब) का स्वीडिश प्रतिरूप **रोस्** है किन्तु **रोर्स्** (पतवार) का उच्चारण **रोष्** होगा जैसे **वर्षा** में **र्** के संसर्ग से मूर्धन्य **ष्** का उच्चारण होता है। स्वीडिश भाषा की **र्** ध्वनि को पश्च-वर्त्स्य कहा जाता है। उसकी यह व्याख्या संस्कृत शब्दों में मूर्धन्य **ष्** के साथ प्रयुक्त होने वाले **र्** की भी व्याख्या करती है। स्वीडिश भाषा में मूर्धन्यीकरण की यह प्रवृत्ति इतनी प्रबल है कि एक शब्द के अन्त में **र्** हो और उसके बाद वाला शब्द दन्त्य **स्** से आरम्भ होता हो, तो द्रुत भाषण में दन्त्य **स्** वाला शब्द मूर्धन्य **ष्** से बोला जायगा : **फ़ॅरसेन्ट**, द्रुत उच्चारण में, **फ़ॅषेण्ट** हो जाएगा (इसका अर्थ है बहुत विलम्ब से)। शिक्षित जन तालव्य **श्** के व्यवहार को अधिक शिष्ट मानते हैं, अतः स्वीडिश भाषा के शिष्ट रूप में तालव्य **श्** का व्यवहार होता है। नौर्वे की भाषा में जिस **श्** का व्यवहार होता है, उसके लिए कहा गया है कि अंग्रेज़ी **श्** की अपेक्षा इसके उच्चारण में जीभ की नोक को और पीछे ले जाना होता है। इसका अर्थ है, वास्तव में यह **श्** भी मूर्धन्य **ष्** है। **र्** के बाद जब यह **ष्** आता है, तब जीभ की नोक और भी पीछे ले जाई जाती है और **र्** ध्वनि या तो लुप्त हो जाती है या अत्यन्त क्षीण हो जाती है। यह प्रक्रिया उधार लिये हुए शब्दों में भी घटित होती है। इटालियन में एक क्रिया है **वॅर्सारे**; इसका लगभग वही अर्थ है जो संस्कृत **वर्श** का है, जल जैसी किसी द्रव वस्तु को गिराना। इसी से इटालियन में छन्द के लिए **वॅर्सो** शब्द बनता है जो अंग्रेज़ी में **वॅर्स** है। लैटिन भाषा में **वर्सो** का सम्बन्ध संस्कृत **वर्त** (अपनी जगह पर घूमना) से है। **वर्सिफिको** (छन्द लिखना) जैसे शब्द लैटिन में हैं किन्तु जिस शब्द-मूल से यह क्रिया बनी है, वह इटालियन में है, लैटिन में नहीं। यह शब्द नौर्वे की भाषा में **वैष्** बन जाता है। **र्** ध्वनि लुप्त हो जाती है या बहुत हल्की सुनाई देती है। मूर्धन्य **र्** के संसर्ग से दन्त्य **स्** कैसे मूर्धन्य **ष्** में परिवर्तित होता है, यह शब्द इस प्रक्रिया की बहुत अच्छी मिसाल है।

नौर्वे की भाषा में एक मूर्धन्य **ळ्** भी है। अंग्रेज़ी **स्ले** (मारना) जर्मन में **श्लाग्** है, नौर्वे की भाषा में इसका रूप **ष्ळाग्** होता है। इस परिवर्तन का कारण मूर्धन्य **ळ्** का प्रभाव है। यदि एक वर्ण के अन्त में **स्** हो और आगेवाला वर्ण **ल्** से आरम्भ होता हो, तो दोनों मिलकर **ष्ळ्** हो जायेंगे। स्वीडन की तरह नौर्वे में भी इस प्रकार मूर्धन्य **ष्** का व्यवहार शिष्टजनों की अपेक्षा जन-साधारण की बोलचाल में अधिक होता है। मानना होगा कि मूर्धन्य **ष्**, यूरुप की कुछ भाषाओं में, तब से वर्तमान है जब से संस्कृत में उसका प्रयोग आरम्भ हुआ था। इसका प्रमाण स्वीडिश भाषा का एक शब्द है : **मॅन्निष**। यह संस्कृत **मनुष्य** का ही प्रतिरूप है।

अनेक शब्दों में जहाँ पहले दन्त्य **स्** था, वहाँ संस्कृत में तालव्य **श्** का व्यवहार होने लगा। मानक जर्मन में यह प्रवृत्ति अपने चरम रूप में है। **त्, प्, ल्, म्, न्** के

पहले सकार तालव्य रूप में ही उच्चरित होता है। जर्मन भाषा-क्षेत्र दो भागों में बाँटा जा सकता है, एक दक्षिण जर्मनी का मैदानी क्षेत्र, दूसरा उत्तर जर्मनी का पहाड़ी क्षेत्र। पहले क्षेत्र में **स्प्**, **स्त्** आदि व्यंजन-युग्मों में दन्त्य **स्** का उच्चारण होता है; पहाड़ी क्षेत्र में दन्त्य **स्** के स्थान पर तालव्य **श्** बोला जाता है। पूरे जर्मन-क्षेत्र के उत्तर-पूर्व में, नॉर्वे और स्वीडन की भाषाओं में, मूर्धन्य **ष्** की बहुलता है। इससे तुलनीय है प्राचीन भारत का मानचित्र। पूर्व में **श्** की प्रधानता है; उत्तर पश्चिम में मूर्धन्य **ष्** का विशेष क्षेत्र है। मध्यदेश दन्त्य **स्** का क्षेत्र है, जैसा कि वह आज भी है। इस तुलना से निष्कर्ष यह निकलता है कि दन्त्य, तालव्य और मूर्धन्य तीन सकारों का स्वतन्त्र विकास हुआ। इन तीन सकारों के समानान्तर तीन **र्-ल्** ध्वनियाँ थीं : दन्त्य, तालव्य और मूर्धन्य। अनेक शब्दों में दन्त्य **स्** का तालव्यीकरण होता है, पुनः मूर्धन्य **र्** के संसर्ग से अनेक शब्दों में दन्त्य अथवा तालव्य सकार का मूर्धन्यीकरण हुआ। इसी प्रकार **ल्** के संसर्ग से सकार का तालव्यीकरण अथवा मूर्धन्यीकरण हुआ।

संस्कृत में संयुक्त व्यंजन ध्वनि **क्ष्** का काफी प्रयोग होता है, यूरुप की भाषाओं के विकास काल में इसका अस्तित्व था, इसका उल्लेख किया जा चुका है। मूर्धन्य **र्** और **ल्** के प्रसंग में इसका उल्लेख भी करना चाहिए। मूर्धन्य **ष्** के योग के बिना इसका उच्चारण हो नहीं सकता किन्तु इसके पहले जिस **क्** ध्वनि का संयोग होता है, वह भी सामान्य **क्** ध्वनि से भिन्न है। संस्कृत में **क्स्** जैसा व्यंजन-संयोग असम्भव है। ऐसा व्यंजन-संयोग ग्रीक भाषा में है, फ़ारसी में है, स्लाव भाषाओं में है किन्तु संस्कृत में इसका अभाव है। इसका कारण यह है कि **क्** ध्वनि मूर्धन्य है जो अपने बाद आने वाले दन्त्य अथवा तालव्य सकार को मूर्धन्य बना लेती है। **त्, च्, ष्, श्, स्** अनेक शब्दों में **क्** में परिवर्तित हो जाते हैं और बाद में आने वाले दन्त्य **स्** को मूर्धन्य बना लेते हैं। **पक्ष** और **पक्षी** शब्दों का सम्बन्ध शब्द मूल **पत्** से है। यह **पत्** सीधे **पक्** नहीं बनता, बीच की कड़ी **पच्** है। क्रिया के साथ **स** जोड़कर संज्ञा रूप बनाना सामान्य प्रवृत्ति रही है। **शिष्** का परिवर्तित रूप **शिक्**; इसके आगे **स** का योग होने पर **शिक्ष** रूप बना। फ़ारसी **चश्म** का शब्द मूल **चश्** है; इस **श्** के **क्** में बदलने पर **चक्षु** रूप बना। **भज्**, **भुज्** आदि रूपों का **ज्** अघोष **च्** बनकर **क्** में रूपान्तरित हुआ, और तब **भक्ष्**, **भुक्ष्** जैसे रूप बने। **दक्ष** शब्द दस्त के शब्दमूल **दस्** से बना है और यह **दस्त** स्वयं **धस्त** का रूपान्तर है। **दस्** के रूपान्तर **दश्** से **दक्**, **दस्** के अन्य रूपान्तर **तस्** से **तश्-तक्** शब्दमूल प्राप्त हुए; फिर **स** के संयोग से **दक्ष तक्षन्** रूप बने।

इन रूपों का अध्ययन करने से एक तथ्य यह स्पष्ट होता है कि **क्ष्** जैसी संयुक्त ध्वनि का विकास उसी क्षेत्र में हो सकता था जिसमें **त्, च्, स्** जैसी ध्वनियाँ **क्** में परिवर्तित होती हैं, जिसमें मूर्धन्य **क्** और मूर्धन्य **ष्** का व्यवहार व्यापक रूप से होता हो। ऐसा क्षेत्र भारत का उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश ही था।

क्ष् ध्वनि वाले जिन भारतीय शब्दों के प्रतिरूप पहले दिये हैं, उनमें तालव्य **श्** नहीं है। इंडोयूरोपियन परिवार में एक भाषा ऐसी है जो **क्** के साथ **श्** का संयोग

बहुत से शब्दों में करती है। यह भाषा लिथुग्रानियन है। इसमें एक शब्द **पउक्श्तिस्** है; इसका अर्थ है पक्षी। रूसी में इसी का प्रतिरूप है **प्तीत्सा** (जिसमें पत्, वर्ण संकोच के कारण, **प्त्** बना है)। लिथुग्रानियन शब्द में ध्वनि-परिवर्तन और शब्द निर्माण की वही प्रक्रिया है जो संस्कृत **पक्षी** में है। क्रिया के साथ **स** प्रत्यय का संयोग हुआ है। या तो यह माना जाय कि किसी ध्वनि नियम के अनुसार भारतीय त् लिथुग्रानियन में **क्** हो जाता है या यह स्वीकार किया जाय कि **त्** पहले **च्** में परिवर्तित हुआ है और फिर इस **च्** का रूपान्तर **क्** में हुआ। लिथुग्रानियन भाषा का यह शब्द इस बात का प्रमाण है कि भारतीय **च्**, **ज्** जैसी ध्वनियाँ यूरुप की भाषाओं के अनेक शब्दों में **क्**, **ग्** रूपों में ग्रहण की गई हैं। अन्तर यह है कि संस्कृत में जहाँ मूर्धन्यीकरण है, वहाँ लिथुग्रानियन में तालव्यीकरण है।

ईसाई धर्म के लिए अंग्रेज़ी शब्द **क्रिश्चियेनिटी** के समान लिथुग्रानियन भाषा में शब्द है **क्रिक्शचियोनिबे**। इसमें दिलचस्प बात यह है कि मूल शब्द में जहाँ केवल दन्त्य **स्** है और अंग्रेज़ी रूप में जहाँ तालव्य **श्** है, वहाँ लिथुग्रानियन में **श्** के पहले अतिरिक्त **क्** विद्यमान है। **बप्तिस्मा** (अथवा ईसाईकरण) के लिए शब्द है **क्रिक्श्तस्**। यहाँ भी एक अतिरिक्त **क्** जुड़ा हुआ है। ऐसा लगता है कि कुछ भाषाएँ **श्** के पहले एक अतिरिक्त **क्** जोड़ देती थीं। संस्कृत **क्षीण** का वही अर्थ है जो **शीर्ण** का है। यदि मूल क्रिया **शी** हो, उसके पहले **क्** जोड़ा गया हो, फिर **क्** के प्रभाव से **श्** का मूर्धन्यीकरण हो, तो **क्षी** और **क्षीण** जैसे रूप प्राप्त होंगे। **शी**, **शे** जैसी कोई क्रिया नष्ट होने के अर्थ में यहाँ प्रचलित थी। उसी से **शव** शब्द बना है। उसका प्रतिरूप या उससे सम्बद्ध रूप **क्षय** है। **क्षमा** में जो भाव है वह **शम्** क्रिया और **शमन** शब्द में विद्यमान है।

संस्कृत का **क्षेत्र** उस क्रिया से बना है जिसका अर्थ खेती करना या बुवाई करना है। संस्कृत में **से**, **सो** जैसी क्रिया इस अर्थ में कभी प्रयुक्त होती थी। एकार के संयोग से उत्तर पश्चिमी भाषाओं में दन्त्य **स्** का तालव्यीकरण होगा। अतः मराठी में शब्द बना **शेत**। अतिरिक्त **क्** ध्वनि का संयोग हुए बिना, तालव्य **श्** का मूर्धन्यीकरण हुए बिना **क्षेत्र** रूप प्राप्त नहीं हो सकता।

११. शतम्-केन्तुम् और वर्ण-संकोचन

शतम् और **केन्तुम्** शब्दों में एक अन्तर तो यह है कि एक में जहाँ **श्** है वहाँ दूसरे में **क्** है। एक अन्तर और है; वह यह कि एक में नासिक्य ध्वनि है, दूसरे में उसका अभाव है। भाषाविज्ञानियों ने कल्पना की है कि मूल शब्द में एक ऐसी नासिक्य ध्वनि थी जो स्वर और व्यंजन दोनों थी। केन्तुम् शाखा में उसका व्यंजन रूप ग्रहण किया गया, शतम् शाखा में उसका स्वर रूप, और स्वर रूप भी ऐसा कि अनुनासिकता से मुक्त। संस्कृत में पचीसों शब्द ऐसे हैं, जिनके एक रूप में नासिक्य ध्वनि है और दूसरे में नहीं है। यह नासिक्य ध्वनि बहुधा जोड़ी जाती है और जो

व्यापार अब निरर्थक जान पड़ता है, सम्भव है, वह कभी सार्थक रहा हो। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—**ध्वस्-ध्वंस्** (बिखेरना, नष्ट करना) **स्रस्-स्रंस्** (गिरना), **भ्रश्-भ्रंश्** (गरना), **अश्-अंश्** (प्राप्त करना), **दश्-दंश्** (काटना), **नश्-नंश्** (नष्ट होना), **जभ्-जंभ्** (चबाना), **दभ्-दम्भ्** (क्षति पहुँचाना), **शुभ्-शुम्भ्** (सुन्दर बनाना), **स्कभ्-स्कम्भ्** (सहारा देना), **स्तभ-स्तम्भ्** (सहारा देना), **उभ्-उम्भ्** (कैद करना), **गुफ्-गुम्फ्** (गूँथना), **ग्रथ्-ग्रन्थ्** (बाँधना, गूँथना), **मथ्-मन्थ्** (मथना), **इध्-इन्ध्** (जलाना), **शुध्-शुन्ध्** (शुद्ध करना), **उद्-उन्द्** (भिगोना), **छद्-छन्द्** (प्रसन्न करना), **निद्-निन्द्** (निन्दा करना), **मद्-मन्द्** (मस्त होना), **चित्-चिन्त्** (सोचना), **अच्-अञ्च्** (झुकाना), **कुच्-कुञ्च्** (टेढ़ा होना)। इसी प्रकार एक शब्द था **अभ**। इसका प्रतिरूप हुआ **अम्भ**। इस **अम्भ** से महाप्राणता का लोप होने पर **अम्बु** रूप बना और जब महाप्राणता और सघोषता दोनों का लोप हुआ, तब **अप** रूप बना। इस **अप** का लैटिन प्रतिरूप **अक्वा** है। **अक्वा** से **अप—अम्बु-अम्भ-अभ (अभ्र)** की शृंखला चालू नहीं हुई। तथैव मूल रूप **केन्तुम्** नहीं है, **शतम्** है।

नासिक्य ध्वनि को जोड़ने की प्रवृत्ति आर्य भाषा-परिवार में सीमित नहीं है। द्रविड़ भाषाओं में इसकी भरमार है और संस्कृत से कुछ अधिक ही है। कुछ उदाहरण तमिल भाषा से इस प्रकार हैं : **अडक्कु-अडङ्ङु** (छिप जाना), **अचक्कु-अचङ्ङु** (काँपना), **उरगु-उरङ्ङु** (सो जाना), **अकप्पु-अकम्बु** (गहराई), **कुरप्पु-कुरम्बु** (मिश्रित होना), **चूप्पु-चूम्बु** (चूसना), **तिरक्कु-तिरंगु** (सिकुड़ना)। इसी तरह कन्नड़ में : (**अडगु-अडङ्ङु** (छिपना), **कडगु-कडङ्ङु** (उत्साहित होना), **कुग्गु-कुङ्ङु** (डूबना), **हागे-हाङ्गे** (इस प्रकार)। हिन्दी **कुदाल** कन्नड़ में **गुद्दलि** है, तमिल में **कुन्दालि**। कन्नड़ **कलगु** तमिल में **कलङ्ङु** (गन्दा करना) है। हिन्दी **उड़द**, कन्नड़ में **उर्दु** है, तमिल में **उळुन्दु**। हिन्दी में **समुद्र** और **समुन्दर** जैसे रूप इस सहस्राब्दियों से चली आती हुई ध्वनि-प्रवृत्ति का प्रमाण हैं।

यूरुप की सभी भाषाओं में, **केन्तुम्** के प्रतिरूपों में, नासिक्य ध्वनि नहीं है। आइरिश में नासिक्यहीन **केत** रूप है। लिथुआनियन में **शिम्तस्** रूप है; लैटिन के विपरीत यहाँ **न्** के बदले **म्** का प्रयोग हुआ है। इस रूप में समवर्गीय नासिक्य ध्वनि के नियम की अवहेलना की गई है। भाषाविज्ञानियों ने **शतम्** के जिस आदि रूप की कल्पना की है, उसमें **क्** के बाद **म्** है। उनके विचार से यह **म्** संस्कृत में विशुद्ध **अ** स्वर बन जाता है, लैटिन में **न्** रूप धारण करता है, और लिथुआनियन में अपना ओष्ठ्य-नासिक्य तत्व कायम रखने के साथ एक स्वर और जोड़ लेता है। (**क्+म्** के बदले **श्+इ+म्**)। बाल्टिक और स्लाव भाषाएँ भारतीय भाषा-परिवारों के अधिक समीप हैं। अतः इनमें नासिक्य ध्वनि युक्त और उससे मुक्त दो-दो रूप अधिक देखे जाते हैं। रूसी **रुक**, लिथुआनियन **रंक** (हाथ), रूसी **वोद**, लिथुआनियन **वन्दुओ** (जल), लिथुआनियन **रुदुओ**, लैतवियन **रुदेन्स** (शरद)। यानिस एन्ज़ेलिन्स ने अपनी पुस्तक **कम्पैरेटिव फोनोलौजी ऐन्ड मौर्फोलौजी औफ़ द बाल्टिक लैंग्वेजेज़** (मूतों,

१९७१) में ऐसे बहुत से रूप दिये हैं जहाँ एक ही क्रिया नासिक्य ध्वनि जोड़ती है और उसके बिना भी काम करती है : **क्रितो-क्रिन्त** (गिरना), **लिपो-लिम्प** (चिपकना), **शुतो-शुन्त** (गर्म होना), **ब्रिदो-ब्रेन्द** (नदी पार करना)। ये रूप संस्कृत क्रियापदों के ऊपर उद्धृत किये हुए रूपों की याद दिलाते हैं। बाल्टिक-स्लाव भाषाओं में ऐसे रूप अधिक हैं किन्तु ग्रीक, लैटिन, जर्मन आदि भाषाओं में इनका अभाव नहीं है। संस्कृत **मत** का ग्रीक प्रतिरूप **मतोस्** है, लैटिन प्रतिरूप **मेन्तुस्** है। संस्कृत **लघु** का ग्रीक प्रतिरूप **एलखुस्** है, पहाड़ी जर्मन प्रतिरूप **लुंगर्** है। संस्कृत में **दश्** और **दंश्** (काटना) दोनों रूप हैं; ग्रीक भाषा में **दकनो** रूप है, जर्मन में **त्संगर्** (तीखा, काटता हुआ) रूप है। इसी शृंखला में संस्कृत **दन्त**, लैटिन **देन्त्** के अंग्रेज़ी प्रतिरूप **टूथ्** में नासिक्य ध्वनि नहीं है।

अखिल भारतीय स्तर पर नासिक्य ध्वनि को जोड़ने की क्रिया पर विचार करने से भारत में और भारत से बाहर नासिक्य ध्वनियुक्त और नासिक्य ध्वनिहीन सैकड़ों वैकल्पिक रूप एक ही प्रक्रिया के अन्तर्गत दिखाई देते हैं और यह प्रक्रिया आर्य और द्रविड़ दोनों परिवारों में व्याप्त है।

इंडोयूरोपियन परिवार की भाषाओं में ऐसे बहुत से शब्द हैं जिनके एक रूप में आदिस्थानीय **स्** है और दूसरे रूप में इसका अभाव है। बरो ने इस प्रकार के कुछ शब्द संस्कृत भाषा पर अपने ग्रन्थ में दिये हैं: **तायु—स्तेन** (चोर), **तारा—स्तृ** (नक्षत्र), **पश्यति** (देखता है), **स्पश्** (गुप्त दर्शक), **स्निह्** (गीला होना), **नीहार** (ओस, कुहरा)। इसी प्रकार रूसी **स्मेर्त्** लिथुआनियन **मिर्ति** (मृत्यु), संस्कृत **नाग**, अंग्रेज़ी **स्नेक्**, हिन्दी **परेवा**, अंग्रेज़ी **स्पैरो**।

भाषाविज्ञानी इस आदिस्थानीय **स्** को घुमन्तू सकार कहते हैं। इसकी व्याख्या के लिए उन्होंने किसी ऐसी ध्वनि की कल्पना नहीं की जो कुछ रूपों में सकार बन जाती हो, और अन्य रूपों में शून्य हो जाती हो। किन्तु इस सकार का संयोग नासिक्य ध्वनि सम्बन्धी व्यापार से मिलता-जुलता है। **स्** जोड़ने की प्रवृत्ति द्रविड़ भाषाओं में नहीं, नाग भाषाओं में है, और सौभाग्य से यहाँ उसके विशेष कार्य का ज्ञान भी हो जाता है। बेनेडिक्ट ने नाग भाषाओं पर अपनी पुस्तक में इन भाषाओं से इस तरह के उदाहरण दिये हैं : तिब्बती **खोर्ब—स्कोर्ब**; पहले रूप का अर्थ है घूमना, एक ही स्थान पर किसी का आवर्तन, दूसरे रूप का अर्थ है घेरना; करेन भाषा में **दम्** का अर्थ है राह से भटकना, **सदम्** का अर्थ है राह से भटकाना, नुङ् भाषा में **अनेम्** का अर्थ है नीचा होना, **सनेम्** का अर्थ है नीचा करना; मरु भाषा में **लि** का अर्थ है आना, **सलि** का अर्थ है ले आना। इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि नाग भाषाओं में **स्** जोड़ने की प्रवृत्ति व्यापक है और यह क्रिया अकारण नहीं है, वह शब्द के अर्थ-परिवर्तन में सहायक होती है। इन्डोयूरोपियन परिवार में **स्** का संयोग सार्थक था, या नाग भाषाओं के प्रभाव से, उनकी देखादेखी, ऐसे रूप बन गये थे, यह कहना कठिन है। किन्तु इस प्रक्रिया से नासिक्य ध्वनि के निवेश की तुलना करने से यह सम्भावना दिखाई देने लगती है कि इस तरह **न्** का निवेश भी निरर्थक न रहा होगा।

इससे मिलता-जुलता व्यापार शब्द के अन्तिम वर्ण में **र्** जोड़ने से सम्बन्धित है। एक शब्द है **उद** (जल), इसके अन्तिम वर्ण में **र्** के निवेश से रूप बना **उद्र**। यही **उद्र समुद्र** शब्द में है। जहाँ बहुत सा **उद** हो, वह **उद्र** या **समुद्र** है। **उद्र** का ग्रीक रूप **हूद्र** है जो अंग्रेज़ी के **हाइड्रोजन** आदि शब्दों में प्रयुक्त है। ग्रीक भाषा के **हूद्र** शब्द से बहुत्व का यह बोध लुप्त हो गया है। **अभ** शब्द का अर्थ है जल। **अभ्र** का अर्थ हुआ बहुता-सा जल। इस रूप का प्रयोग बादल के लिए किया जाने लगा; वही फ़ारसी में **अब्र** है।

जो बहुत्व का सूचक है, वह गौरव का सूचक भी है। तमिल भाषा में शब्द के अन्त में यदि **न्** आये तो वह साधारणता का सूचक है, यदि **र्** आये तो वह गौरव का सूचक है। **अवन्** (वह) का बहुवचन **अवर्** है; उसका प्रयोग आदर में एक व्यक्ति के लिए भी हो सकता है। नामों के साथ इसी प्रकार **र्** जोड़कर आदर व्यक्त किया जाता है। वैयाकरण तोल्काप्पियन् सम्मानपूर्वक तोल्काप्पियर् कहे जायेंगे, महाकवि भारती इसी प्रकार भारतियार् रूप में याद किये जाते हैं।

रूप पुत नहीं होता। पूत पुत्र का ही विकास माना जाता है। शब्दों में **र्** जोड़ने की प्रवृत्ति इतनी व्यापक हो गई कि उसका अर्थगत प्रयोग नष्ट हो गया। **कुतः** और **कुत्र**, **ततः** और **तत्र**, **चरित** और **चरित्र** जैसे वैकल्पिक रूपों का चलन हुआ। इस सारी प्रक्रिया पर विचार करने से यह मानना चाहिए कि **पुत्र** का पूर्व रूप **पुत** था। **सूत्र** का पूर्व रूप **सूत** था। मराठी में **कुत्ते** का प्रतिरूप **कुत्र्या** है। **कुत्ते** की उत्पत्ति **कुत्र्या** से मानना उचित न होगा।

उत्तर-पश्चिमी आर्य भाषाओं में एक प्रवृत्ति बलवती रही है। इसे हम शब्द का आदिस्थानीय वर्ण-संकोचन कह सकते हैं। **जानाति** और **ज्ञान** रूपों को मिलाने से इस प्रवृत्ति का ज्ञान होता है। मूल क्रिया **जान्** है, **ज्ञा** नहीं। आदि वर्ण **जा** के संकुचित होने पर केवल **ज्** व्यंजन रह गया। उसका संयोग नासिक्य ध्वनि से हुआ जिसे उसने समवर्गीय बनाया। इस प्रकार **ज्ञान** जैसा रूप प्राप्त हुआ। इसी प्रकार **जन्** क्रिया से **ज्ञाति** जैसे रूप प्राप्त होते हैं। वैदिक भाषा में **ग्ना** (देवी) जैसे रूप इसी प्रवृत्ति के कारण मिलते हैं। ग्रीक भाषा में **ग्नोसोस्** (ज्ञान) आदि रूप अपवाद नहीं हैं; संस्कृत की अपेक्षा उसमें ऐसे रूप अधिक हैं। वे वर्ण संकोचन की प्रवृत्ति के उदाहरण हैं।

संस्कृत **पुल** (**विपुल** का **पुल**) ग्रीक भाषा में **पोलुस्** (अनेक, बहुत) है। यही लैटिन में **प्लुस्** हो जाता है (और अंग्रेज़ी में यही **प्लस्** है जो जोड़ने का चिन्ह बनता है; अंग्रेज़ी **प्लूरल्** लैटिन **प्लूरीमुस्** से सम्बद्ध है।) ग्रीक भाषा में इस अर्थ का द्योतक एक रूप **पोलुस्** है, दूसरा रूप **प्लेंइस्तोस्** है। इसी का एक प्रतिरूप **प्लेथोस्** है। संस्कृत **पूर्ण** का **पूर्** जहाँ अंग्रेज़ी में **फुल** है, वहाँ उसका ग्रीक प्रतिरूप **प्लेरोस्** है। संस्कृत **जरा** के अनुरूप ग्रीक शब्द **गेरोन्** (बूढ़ा) है, वर्ण-संकोच के बाद इसका प्रतिरूप **ग्रइओस्** बनता है। **ग्रइआ** और **ग्रउस्** जैसे शब्द बूढ़ी स्त्रियों के लिए प्रयुक्त होते थे।

संस्कृत **दम** का ग्रीक प्रतिरूप **दमश्रो** (पालतू बनाना) है; वर्ण-संकोच के बाद इसका एक रूप बनता है **द्मेसिस्**। संस्कृत **धर्ष्** के सम्बन्धी ग्रीक शब्द **थर्सोस्** और **थ्रसोस्** हैं (साहस)। संस्कृत **पत्** (उड़ना) से ग्रीक शब्द **प्तेरोन्, प्तिलोन्** (पंख) बनते हैं। इसी प्रकार **मन्** से **म्नेइश्रा** (स्मृति) शब्द बनता है। संस्कृत **प्राण** में जो **अन्** क्रिया है, उससे लैटिन में **अनिम** (साँस) शब्द बनता है। **प, प्र** के समान, उपसर्ग के साथ ग्रीक भाषा में इसका प्रतिरूप **प्नेउमा** बनता है; **प्नेश्रो** क्रिया का अर्थ है साँस लेना।

संस्कृत **दारु** वर्ण-संकोच के बाद **द्रु** और **द्रुम** रूप धारण करता है। यही **दारु** ग्रीक भाषा में **द्रुस्** (देवदार) है, अंग्रेज़ी **ट्री** इसी वर्ण-संकोचन का परिणाम है। संस्कृत उपसर्ग **प्र** का अर्थ है आगे। जो अर्थ **पुरः** का है, वही **प्र** का है। **प्र** उपसर्ग **पुर** अथवा **पर** का संकुचित रूप है। **हन्ति** रूप की मूल क्रिया **घन्** है; बहुवचन में **घनन्ति** रूप, वर्ण-संकोचन के बाद, **घ्नन्ति** बनता है। संस्कृत में एक क्रिया **प्सा** (लील जाना) है। यूरुप की भाषाओं में **प्स्, क्न्, म्न्** जैसे संयुक्त व्यंजन बहुत से शब्दों के आरम्भ में आते हैं। संस्कृत में इनका आदिस्थानीय प्रयोग अपेक्षाकृत कम है। उक्त **प्सा** क्रिया **भस्** (भक्षण करना) का संकुचित रूप है।

द्रविड़ भाषाएँ सामान्यत: शब्द के आरम्भ में संयुक्त व्यंजनों का प्रयोग नहीं करतीं किन्तु कुछ भाषाओं में इस तरह का व्यंजन-द्वित्व अनेक शब्दों में दिखाई देता है। यथा तेलुगु में **त्रच्चु** (मथना) **तरि** क्रिया का प्रतिरूप है। संस्कृत **तृषा** और अंग्रेज़ी **ड्रिंक** के अनुरूप तेलुगु **त्रागु, त्रावु** (पीना) रूप हैं। पजि भाषा में **तार्** क्रिया का अर्थ है निगलना। सम्भव है संस्कृत **तृ** और तेलुगु **त्र** दोनों ही **तर्** जैसे मूल रूप का संक्षिप्तीकरण हों। तमिल **करइ** का अर्थ है रोना; इसके तेलुगु प्रतिरूप हैं **क्रन्दु** और **क्रङ्ग**। स्पष्ट ही इसका सम्बन्ध संस्कृत **क्रन्द्** से है किन्तु संस्कृत क्रिया स्वयं **कर** जैसे शब्द-मूल का विकास है। तमिल **कल्** का अर्थ है सिखाना; कोलमि में इसका प्रतिरूप है **कर्प्**। कुइ में वर्ण-संकोचन के बाद इसके रूप बनते हैं : **ग्राप्प, ग्राम्ब** (सीखना, पढ़ना)। ग्रीक भाषा में **ग्राफो** का अर्थ है लिखना और **ग्राम्मा** का अर्थ है, जो कुछ लिखा जाय, अक्षर। तमिल **कल्** और संस्कृत **कला** से **ग्राफो** और **ग्राम्मा** बहुत दूर दिखाई देते हैं किन्तु कुछ द्रविड़ भाषाओं में इनसे मिलते-जुलते रूप **ग्राप्प** और **ग्राम्ब** आज भी विद्यमान हैं। उक्त ग्रीक शब्दों के प्रतिरूप अन्य इंडोयूरोपियन भाषाओं में न मिलें, तो उन्हें तमिल **कल्** से सम्बद्ध समझना चाहिए।

तमिल **वरि** का अर्थ है लिखना, चित्र बनाना। वर्ण-संकोचन के बाद तेलुगु में इसके **व्रायु, रायु** जैसे रूप मिलते हैं; इनके अनुरूप **व्रात, व्रालु** (लेखन) रूप हैं। कुइ में इनके प्रतिरूप **व्रीस, व्रीसि** (लेखन, लकीर बनाना, हल चलाना) हैं। इनसे अंग्रेज़ी **राइट्** की तुलना कीजिए। इस शब्द की वर्तनी में **र्** के पहले **व्** लिखा जाता है, पहले वह बोला भी जाता होगा। स्वयं तेलुगु में **व्रायु** का एक प्रतिरूप **रायु** है जिसमें प्रारम्भिक **व्** का लोप हो गया है। इस **रायु** को देखकर कोई नहीं कह सकता कि इसका मूल रूप **वरि** था। किन्तु **वरि** और **रायु** का सम्बन्ध पहचानने पर अंग्रेज़ी **राइट** के स्रोत का

पता चल जाता है और शब्द के आरम्भ में एक अनुच्चरित **व्** क्यों लिखा जाता है, इस रहस्य का भी पता लग जाता है। संस्कृत **वृषभ** का प्रतिरूप **ऋषभ** है। एक रूप में **व्** विद्यमान है, दूसरे में उसका लोप हो गया है। संस्कृत **ऋष्** का एक अर्थ आघात करना, प्रविष्ट करना है, इसलिए तलवार या भाला जैसी वस्तु के लिए **ऋष्टि** शब्द है। **रिख्** क्रिया का अर्थ खरोंचना, लकीर बनाना है; इसी से **रेखा** शब्द बनता है। इसी का प्रतिरूप **लिख्** है जिसका मूल अर्थ खरोंचना, खेत में हल से नाली बनाना आदि है। **वरि, व्रायु** और **रायु** की तरह **वृषभ, ऋषभ, ऋष्, रिख्, लिख्,** अंग्रेज़ी **राइट्**, परस्पर-सम्बद्ध शब्द हैं।

संस्कृत में **कर्षति** और **कृषि, वर्षति** और **वृष्टि, करोति** और **कृतः** जैसे रूप साथ-साथ मिलते हैं। इनमें मूल क्रिया असंकुचित रूपवाली **कर्ष, वर्ष्, कर्** है। **कृषि** आदि रूप वर्ण-संकोचन का परिणाम हैं। कायदे से वर्ण-संकोचन के बाद शब्द का रूप होना चाहिए था **क्रषि, व्रषि** आदि, किन्तु **र्** के स्थान पर **ऋ** का व्यवहार होता है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में इस **ऋ** ध्वनि को विशुद्ध स्वर माना गया है। यदि किसी ध्वनि को स्वर और व्यंजन दोनों माना जा सकता है तो वह यही **ऋ** ध्वनि है। इसमें अर्धव्यंजन तत्व है और अर्धस्वर तत्व। यदि हम स्मरण करें कि इंडोयूरोपियन परिवार में एक **र्** मूर्धन्य अथवा पश्च मूर्धन्य है, और उसके उच्चारण में लुंठन क्रिया अत्यन्त क्षीण होती है, यहाँ तक कि कभी वह सुनाई नहीं देती, केवल स्वर बच रहता है, तो इस **ऋ** की विशेषता ज्ञात हो जायेगी। इस तरह का उच्चारण अंग्रेज़ी भाषा में ही नहीं है, आधुनिक ग्रीक भाषा की कुछ बोलियों में **र्** ध्वनि का लोप हो गया है, इसका कारण स्वरवत् उच्चारण है।

वैदिक भाषा में स्पष्ट ही कम से कम दो प्रकार की **र्** ध्वनियाँ थीं। मूर्धन्य **र्** पड़ोसी तवर्गीय ध्वनियों का मूर्धन्यीकरण करता था, दन्त्य **न्** कहीं आसपास हो तो वह भी **ण्** में परिणत होता था। नासिक्य ध्वनि की अपेक्षा स्पर्श ध्वनियाँ इस प्रवृत्ति से कम प्रभावित होती थीं।

वर्ण-संकोचन होने पर **क्रषि** जैसे रूप **कृषि** क्यों बने, इसका कारण यह हो सकता है कि मूर्धन्य **र्** के उच्चारण-स्थान से सबसे निकटवर्ती स्वर **इ** था। **ऋतु** जैसे रूप में **र्** तालव्य होगा; **कृत** जैसे रूप में **र्** तत्व मूर्धन्य होगा। वर्ण-संकोचन की प्रवृत्ति उन उत्तर-पश्चिमी गण-समाजों में अधिक थी जो मूर्धन्यीकरण से प्रभावित थे। किन्तु जैसे **कृषि** आदि रूप वर्ण-संकोचन का परिणाम हैं, वैसे **ऋतु, ऋचा** आदि रूप उस प्रक्रिया का परिणाम नहीं हैं।

१२. स्वरों का विकास

(क) अ-ए-ओ समीकरण

व्यंजनों के समान स्वरों का विकास भी विभिन्न केन्द्रों में हुआ था, यह मानने के अनेक प्रमाण हैं। हिन्दी प्रदेश के पूर्वी अंचल में अकार का उच्चारण ऑकारवत्

होता है। बंगाल और असम प्रदेशों में स्वर का गोलाकार रूप और भी स्पष्ट हो जाता है। डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने बँगला भाषा के उद्भव और विकास वाली अपनी पुस्तक में बताया है कि अन्य स्वरों को सिखाते समय ह्रस्व इ, दीर्घ ई, ह्रस्व उ, दीर्घ ऊ का क्रम चलता है किन्तु दीर्घ आ के साथ ह्रस्व अ नहीं सिखाया जाता, ऑकार सिखाया जाता है। हिन्दी प्रदेश के उत्तरी भाग मेरठ, हरियाणा आदि में ऐकारवाली प्रवृत्ति है। द्रविड़ भाषाओं का जो गहरा सम्बन्ध उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों की गण-भाषाओं से रहा है, उसका एक प्रमाण द्रविड़ भाषाओं में अकार-एकार वाले वैकल्पिक रूपों की प्रचुरता है। कभी ये रूप एक ही भाषा में हैं, कभी भिन्न भाषाओं में। तमिल में **अल्, ॲल्** (रात); **कण्डन्, कॅण्डन्** (वीर पुरुष); तमिल **कट्टु**, मलयालम **कॅट्टु** (बाँधना), कन्नड़ **गट्टि**, तमिल **कॅट्टि** (क्षमता, कौशल); मलयालम **मच्चम्, मॅच्चम्** (नमूना, रीति); कन्नड़ **नण्डु, नॅण्डु**, (सम्बन्ध, मैत्री); तेलुगु **गन्तु, गॅन्तु** (कूदना); तमिल **पडु**, मलयालम **पॅडुक** (घटित होना)। इस प्रकार के प्रतिरूप अनेक द्रविड़ भाषाओं से दिये जा सकते हैं। जब तक कोई भाषाविज्ञानी यह निश्चित न कर दे कि इन वैकल्पिक रूपों में ध्वनिपरिवर्तन किन अटल नियमों के अनुसार होता है, तब तक यही मानना चाहिए कि भिन्न गण-भाषाओं में भिन्न स्वर-प्रवृत्तियाँ रही हैं, और उनके परस्पर सम्पर्क के कारण वैकल्पिक रूपों का चलन हुआ है। आश्चर्य की बात यह है कि द्रविड़ परिवार में कुछ भाषाएँ ओकार वाली प्रवृत्ति का परिचय भी देती हैं। यह प्रवृत्ति सबसे अधिक तोद भाषा में है। तमिल-तोद प्रतिरूप इस प्रकार हैं: **पत्तु, पोद** (दस); **नाबु,, नोफ** (जीभ); **पण्, पॉण्य** (काम); **पगल, पॉखॉल** (दिन); **पण्डि पॉड्य्** (गाड़ी); **कडु, कॉड्फ्** (अवधि); **कडम्, कोळ्ण्** (कर्ज); **कण्, कोण्** (आँख); **काल, कोल** (पैर)। किन्तु ओकारवाले वैकल्पिक रूप अन्य भाषाओं मे भी हैं यथा कन्नड़ में: **मट्ट, मॉट्ट** (नाटा होना); **मट्टॅ, मॉट्टॅ** (ताड़ की शाखा); **तरकलु, तॉरसलु** (खुरदुरापन); **तड्डु, तॉड्डु** (अंडकोष)।

द्रविड़ भाषाओं में भिन्न स्वर-वृत्तियों वाली बोलियों का इतना सम्मिश्रण हुआ है कि ऐसे सैकड़ों शब्द हैं जिनमें अकार-एकार के वैकल्पिक रूप हैं। इनसे कम संख्या उन शब्दों की है जिनके एकार-ओकार वाले वैकल्पिक रूप हैं। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके अकार, एकार और ओकार वाले तीनों वैकल्पिक रूप हैं और कभी-कभी तो ये तीनों रूप एक ही भाषा में मिलते हैं। इस तरह के शब्द-रूपों का वर्गीकरण किया जाय और पूरे शब्द-भंडार में उनका प्रतिशत अनुपात निकाला जाय तो कुछ नपे-तुले निष्कर्ष सुलभ होंगे। यहाँ केवल उदाहरण-स्वरूप कुछ बातें कही जा रही हैं। एकारवादी प्रवृत्ति द्रविड़ भाषाओं के दक्षिण समुदाय में अधिक है। इस समुदाय में तोद भाषा अपवाद रूप है। वह अनेक बातों में दक्षिण समुदाय की अन्य भाषाओं से भिन्न है; इन बातों में उसकी ओकारवादी प्रवृत्ति भी है। मध्यवर्ती समुदाय में अकार वाले प्रतिरूप अधिक हैं किन्तु एकार वाले रूप उनसे घुलते-मिलते दिखाई देते हैं। जिन शब्दों के आदि वर्ण में अकार अथवा एकार है, उनके ओकार वाले

प्रतिरूपों की संख्या कम है। यहाँ कुछ शब्द लेते हैं जिनके दक्षिणी रूपों में एकार है, किन्तु मध्यवर्ती क्षेत्र के रूपों में अकार है, अथवा एकार वाले रूप के साथ वह विकल्पत: विद्यमान है।

तमिल **चॅरुप्पु**, गोंडी **सर्पुम्** (चप्पल); तमिल **चॅय्**, कोलमि **क**, ब्राहूइ **कर्मिग्** (करना); तमिल **ऍरुमइ**, गोंडी **अर्मी** (भैंस); तमिल **कॅडु**, गोंडी **करीतान** (मरना, सड़ना); तमिल **ऍन्**, मल्तो **अनॅ**, कुड़ुख **आन्ना** (कहना); तमिल **कॅण्डइ**, तुलु **अण्डु** (टखना); तमिल **ऍक्कु**, कन्नड़ **अक्कुळिसु**, तेलुगु **अक्कळिचु** (पेट खलाना)। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उत्तरी या मध्यवर्ती समुदाय में एकार है और दक्षिणी समुदाय में अकार किन्तु ऐसा कम होता है। एकार वाले शब्दों के ओकार वाले कुछ प्रतिरूप इस प्रकार हैं : तमिल **चॅ**, कोडगु **चो** (ललाई); तमिल **ऍळु**, कुइ **ऑड्** (सात); कोलमि **गॅट्ट**, कुवि **कॉडु** (पैर); तमिल **चॅन्नि**, मलयालम **कॉन्नि** (गाल); तमिल **पॅण्**, तुलु **पॉणु** (लड़की); तमिल **पॅय**, मल्तो **पॉयॅ** (वर्षा), कभी-कभी एकार-ओकार वाले रूप एक ही भाषा में मिलते हैं यथा तमिल **चॅरुगु**, **चॉरुगु** (प्रविष्ट करना)। कन्नड़ में **चम्बु**, **चॅम्बु**, **चॉम्बु** (ताम्र पात्र) तीनों प्रतिरूप हैं। इसी प्रकार गोंडी में (अथवा उसकी बोलियों में) **परोल्** **पॅडिरि** और **पॉरॉल्** (नाम) तीन रूप हैं। तमिल **काल्**, तोद **कोल्**, पर्जि **केल्** (पैर); तमिल **चॅम्**, कोडगु **चो**, तुलु **चन्न** (लाल); तमिल **चा**, तोद **सॉय्**, कुड़ुख **खेना** (मरना); तमिल **पाल्**, तोद **पोश्**, तुलु **पेरु** (दूध); कन्नड़ **पन्दि**, पर्जि **पॅन्द**, तोद **पॉद्य्** (सूअर); इन उदाहरणों से विदित होगा कि द्रविड़ भाषा परिवार में ध्वनिपरिवर्तन के 'अटल' नियम स्थापित करना असम्भव है। ध्वनि-परिवर्तन की रीतियाँ स्पष्ट हैं। यदि आर्य भाषा-परिवार में हम तीन स्वर-प्रवृत्तियों का स्मरण करें, तो इस तरह के वैकल्पिक रूप अत्यन्त स्वाभाविक लगेंगे।

संस्कृत में क्रिया का एक रूप **ददाति** है तो दूसरा **देहि** अकारण नहीं है। **लभ्** से **लेभान्**, **भज्** से **भेजान**, **तप्** से **तेपान** जैसे रूप इसी कारण बनते हैं। संस्कृत ने परिनिष्ठित रूप प्राप्त करते हुए अनेक वैकल्पिक रूपों को एक ही व्यवस्था में बाँध लिया था। फिर भी भिन्न स्वर-प्रवृत्तियों के कारण जो वैकल्पिक रूप रचे गये थे, वे पहचान में आते हैं। एक क्रिया है **मा** जिससे **मात्रा** शब्द बनता है; दूसरी क्रिया है **मि** जिससे **मित**, **मिति** शब्द बनते हैं। दोनों क्रियाओं का अर्थ है नापना। वास्तव में ये भिन्न क्रियाएँ नहीं हैं, एक ही क्रिया के दो रूप हैं। एक क्रिया है **हा** (त्यागना); **हीन** (परित्यक्त) शब्द इसी क्रिया से बनता है, अर्थात् उसके **ही** वाले प्रतिरूप से बनता है (जैसे **मा** का प्रतिरूप **मि** है)। **जीर्ण** और **जूर्ण** (घिसा हुआ, बूढ़ा या पुराना), **स्थाणु** और **स्थूल** (खम्भा), **स्फरण** और **स्फुरण** जैसे शब्द-युग्म भिन्न स्वरों से बननेवाले वैकल्पिक रूपों की ओर संकेत करते हैं।

अनेक वैकल्पिक रूप परिनिष्ठित संस्कृत से बाहर रखे गये थे। हिन्दी **ईख** संस्कृत **इक्षु** का विकास है किन्तु ब्रज-अवधी का **ऊख** और बँगला का **आख** एक ही संस्कृत रूप **इक्षु** से कैसे व्युत्पन्न माने जा सकते हैं? हिन्दी **कुछ**, ब्रज **कछू**, बँगला **किछु**,

एक रूप का विकास नहीं हो सकते। हिन्दी **पीछे**, ब्रज आदि **पाछे**, हिन्दी **गिनता**, अवधी **गनत**, हिन्दी **गेहूँ**, अवधी **गोहूँ**, हिन्दी **चखना**, अवधी **चीख**, हिन्दी में ही **छिपना**, **छुपना**, **चिनना**, **चुनना** आदि रूप भिन्न स्वर-प्रवृत्तियों का प्रमाण हैं।

आर्य भाषाओं में बँगला अनेक शब्दों में हिन्दी अकार के स्थान पर एकार का प्रयोग करती है, यहाँ तक कि अन्य भाषाओं से उधार लिये हुए शब्दों में इस प्रकार का ध्वनि-परिवर्तन करती है यथा : **नशा—नेंशा**, **करामात—केंरामात**, **चपटा—चेंपटा**। डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने बताया है कि बेंगला में एकारवादी स्वर प्रवृत्ति इतनी प्रबल है कि अनेक शब्दों में आदिस्थानीय इकार ही नहीं, अकार भी एकार में बदल जाता है। साहित्य की भाषा में ऐसे रूप लिखे कम जाते हैं किन्तु बोलचाल में उनका प्रयोग बराबर होता है।

द्रविड़ भाषाओं में आदिस्थानीय तालव्य व्यंजन के साथ बहुधा एकार का उच्चारण होता है। कन्नड़ भाषा के बारे में कहा गया है कि इसके उत्तरी क्षेत्र में ब्राह्मण लोग एकारवादी हैं और अब्राह्मण अकारवादी। उत्तर कर्णाटक में उच्चवर्ण **चॅमचा**, **जॅमीन**, **चॅप्पल** एकार के साथ बोलेंगे, अब्राह्मण मूल अकार ध्वनि कायम रखेंगे। इस बात को ध्यान में रखने से इस तथ्य का ज्ञान होता है कि द्रविड़ भाषाओं का, और इनमें कम से कम कन्नड़ भाषा का, ध्वनितन्त्र मूलतः अकारवादी है। अकारवादी ध्वनितन्त्र एकार-ओकारवादी प्रवृत्तियों से प्रभावित हुआ जान पड़ता है।

ग्रीक भाषा-समुदाय में दोरिक (स्पार्टा की भाषा) अकारवादी है जब कि परिनिष्ठित ग्रीक में एकार का चलन अधिक है। दोनों के प्रतिरूपों की तुलना करने से यह भेद स्पष्ट होता है। यहाँ कुछ उदाहरण देते हैं जिनमें पहला रूप दोरिक का है, दूसरा परिनिष्ठित ग्रीक अथवा ग्रीक समुदाय की किसी अन्य भाषा का : **पादा, पेगे** (जल स्रोत); **दोतास्, दोतेस्** (दाता); **स्पदेओ, स्पेदेओ** (सेवक); **हदोस्**, **हेदोस्** (आनन्द); **हलिओस्, हेलिओस्** (सूर्य); **पथोस्, पेन्थोस्** (विपत्ति); **फामा, फेमे** (आकाशवाणी); **अलतोस्, अलेतेस्** (घुमन्तू); **अर्गास्, अर्गेस्** (सफेद)। अकार-एकार वाली प्रवृत्तियाँ ग्रीक समुदाय में इतनी भिन्न और स्पष्ट थीं कि जब यूनानी सैनिक युद्धभूमि में जोर से चिल्लाते थे, तब एक समुदाय की ध्वनि अकार से आरम्भ होती थी और दूसरे की एकार से। इसलिए उनकी भाषा में चिल्लाने के लिए दो शब्द हैं : **अलाला** और **एलेले**।

ग्रीक और लैटिन भाषाओं में ऐसे अनेक शब्द हैं जहाँ एक रूप अकार वाला है तो दूसरा रूप एकार वाला। ग्रीक **बुखुस्** लैटिन में **ब्रेविस्** (लघु, संक्षिप्त) है; इसी प्रकार, लैटिन **मलस्**, ग्रीक **मेलस्** (मल, बुराई), लैटिन **माग्नुस्**, ग्रीक **मेगस्** (महान्) है। एकारवादी प्रवृत्ति ग्रीक भाषा में अधिक है। जहाँ किसी क्रिया-रूप में आदि वर्ण की आवृत्ति होती है, वहाँ उस वर्ण की मूल अकार, उकार और ओकार ध्वनि का स्थान एकार ध्वनि लेती है। **लुओ** (शिथिल करना)—**एलुओमेन, लेलुमइ; नोमिजो** (सोचना)—**एनोमिजोन, नेनोमिका**।

लैटिन भाषा पर अपनी पुस्तक में पामर ने बताया है कि इस भाषा के शब्दों में जो अवरुद्ध वर्ण (क्लोज़्ड सिलेबिल) होते हैं, उनमें एकार के व्यवहार की प्रवृत्ति है : **अप्तुस्—इनेप्तुस्** (अयोग्य), **कस्तुस्—इंकेस्तुस्** (निषिद्ध आचरण), **अन्नुस्—बिएन्निस्** (द्विवर्षीय), **दम्नो—कोन्देम्नो** (निन्दित)।

ग्रीक भाषा में पैर के लिए एक शब्द है **पेदोन्**, उसका प्रतिरूप है **पोदोस्**; एक रूप में एकार है, दूसरे में ओकार। लैटिन में इसके प्रतिरूप हैं **पेदो, पेस्**; साथ ही **पोदिकुस्** (पैर से सम्बन्धित), **पोदिमुस्** (पैर से नापना) रूपों में ओकार है। ग्रीक **पेर्दो** (पादना) का प्रतिरूप उसी भाषा में **पोर्दो** है। संस्कृत **धर्म** का ग्रीक प्रतिरूप **थेर्मोस्** है, लैटिन प्रतिरूप **फोर्मुस्** है। ग्रीक भाषा में ए-ओ स्वर जब अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गये, तब उनका उपयोग अर्थभेद के लिए किया जाने लगा : **ओरोफे**—छत, **एरेफो**—छत डालना, **पोकोस्**—ऊन, **पेको**—ऊन उतारना, **पोनोस्**—परिश्रम, **पेनोमइ**—परिश्रम करना।

ए—ओ के समान **इ—उ** के व्यवहार में भी पर्याप्त स्वच्छन्दता दिखाई देती है। कहीं तो ह्रस्व **अॅ—ऑ** ही **इ—उ** रूपों में प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत **लघु** का ग्रीक प्रतिरूप तो **एलखुस्** है पर लैटिन प्रतिरूप **लेविस्** है। संस्कृत **द्विपद** का ग्रीक प्रतिरूप **दिपोउस्** है यद्यपि संख्यासूचक ग्रीक शब्द **दुओ** भी है। हवा के लिए एक ग्रीक शब्द **अएर्** है, दूसरा शब्द **अउर** है जो प्रातःकालीन वायु के लिए प्रयुक्त होता है। लैटिन में ऐसे रूप बहुत हैं जिनमें **अ—इ—उ** स्वर वैकल्पिक रूप से प्रयुक्त हुए हैं। एक क्रिया-मूल है **कप्** (अधिकार करना) (अंग्रेज़ी का **औक्यूपाई** अधिकार करना), इससे एक रूप बना **ओक्कुपो**, दूसरा रूप **ओक्किपिओ**, साथ ही तीसरा रूप **कपिओ** भी है। इसी तरह **रपिओ** (लूटना) क्रिया से एक रूप बना **सुर्रुपिउत्**, दूसरा रूप बना **सुर्रुपुइत्**। इसी तरह **प्रोक्सुमस्** और **प्रोक्सिमस्** (निकटतम), **ओप्तुमुस्** और **ओप्तिमुस्** (श्रेष्ठ-जन), **मक्सुमुस्** और **मक्सिमुस्** (महत्तम), **अउरुफेक्स** और **अउरिफेक्स्** (स्वर्णकार), **पोन्तुफेक्स** और **पोन्तिफेक्स्** (पुरोहित)। ऐसे रूपों को देखकर रोमन वैयाकरण क्विन्तिलियन ने कल्पना की थी कि शायद लैटिन में कोई स्वर ऐसा था जो इकार-उकार के बीच का था, इसलिए कुछ लोग इसे उकारवत् सुनते थे और अन्य लोग इकारवत्। आधुनिक भाषाविज्ञानी इस धारणा को स्वीकार नहीं करते। बक के अनुसार पुरानी लैटिन में उकार वाले रूप ज़्यादा हैं और बाद वाली लैटिन में इकार वाले। यानी लिखित रूपों में पहले जहाँ उकार का प्रयोग अधिक था, वहाँ बाद को इकार का प्रयोग होने लगा। यह लिखने वालों की लापरवाही का नतीजा नहीं है, इकार-उकार की ध्वनियों को स्थिर होने में समय लगा और संस्कृत की अपेक्षा लैटिन भाषा बाद में परिनिष्ठित हुई, इसलिए वैकल्पिक रूप वहाँ अधिक दिखाई देते हैं। इससे मिलती-जुलती स्थिति भारत में तमिल तथा अन्य द्रविड़ भाषाओं की है। तमिल में **कटाचु, किटाचु** (ठोंकना), **कटा, किटा** (भैंसा), **कटारम्, किटारम्** (पतीली), कन्नड़ में **पदिर, पुदुर** (दो अर्थों वाली बात), यहाँ अकार-उकार में स्थान-परिवर्तन दिखाई देता है।

इकार-उकार के वैकल्पिक प्रयोगों वाले रूप अनेक हैं और अनेक भाषाओं में हैं यथा: तमिल **मिटइ, मुटइ** (टोकरी बुनना), **पिणइ, पुनइ** (बांधना), **तिमिर, तुवर** (लेपना); तमिल तिर, मलयालम **तुरक्क**, (खोलना), तमिल **चिवप्पु**, मलयालम **चुवप्पु** (लाली या लाल), मलयालम **मिळकु, मुळकु** (काली मिर्च), तेलुगु **पुल्लु, पिल्लु** (घास), **पिरि, पुरि** (ऐंठना), तेलुगु **पिडि**, तुलु **पुडि** (व्यवहार करना), कन्नड़ **पिण्डु**, कोडगु **पुण्डु** (निचोड़ना)।

(ख) स्वर-संसृति और स्वरपात

ग्रीक-लैटिन-संस्कृत में स्वर परिवर्तन के नियम निश्चित न कर पाने पर भाषा-विज्ञानियों ने स्वर संसृति या ऐब्लाउट् का सहारा लिया। ऐब्लाउट् शब्द जर्मन भाषा का है। इसकी जगह अनेक आधुनिक भाषाविज्ञानी ग्रेड अथवा स्वर-श्रेणी की बात करते हैं। इसके अन्तर्गत स्वर-परिवर्तनों का सम्बन्ध शब्द के किसी एक वर्ण पर बल देने की प्रवृत्ति से, बलाघात से जोड़ा गया है। यह बात सही मानी जा सकती है, फिर भी समस्या यह रह जाती है कि एकार के स्थान पर ओकार क्यों आया, अकार क्यों नहीं आया अथवा संस्कृत में एकार ओकार के स्थान पर अकार का व्यवहार क्यों होता है। दरअसल भाषाविज्ञानियों ने जो ध्वनि-नियम बनाए हैं, वे जिन रूपों पर लागू नहीं होते उन्हें इस ऐब्लाउट् पद्धति के हवाले किया गया है।

इस स्वर-संसृति अथवा ऐब्लाउट् के बारे में ब्रुगमन ने पाँच मुख्य बातें बताई हैं: (१) स्वर-परिवर्तन शब्दमूल में होता है और प्रत्यय में भी। (२) स्वर-परिवर्तन में ह्रस्व स्वर दीर्घ भी हो जाते हैं, यथा ह्रस्व एकार दीर्घ एकार हो सकता है, यानी स्वर-परिवर्तन परिमाणगत हो सकता है। (३) स्वर-परिवर्तन गुणात्मक हो सकता है यानी एक श्रेणी के स्वर की जगह दूसरी श्रेणी का स्वर आ सकता है यथा एकार के स्थान पर ओकार का प्रयोग हो सकता है। (४) यह स्वर-परिवर्तन बलाघात (जिसे अंग्रेज़ी में ऐक्सेंट कहते हैं) से सम्बद्ध है यानी शब्द में एक वर्ण की जगह दूसरे वर्ण पर जोर देकर शब्द का उच्चारण किया गया तो स्वर-परिवर्तन हो सकता है। (५) यह स्वर-परिवर्तन किन्हीं ध्वनि-नियमों के अनुसार नहीं होता जो इंडोयूरोपियन (ब्रुगमन के इंडोजर्मैनिक) परिवार की भाषाओं पर लागू होते हों। इसका उद्भव उस आदिम काल में माना जाएगा जब अनेक भेद आदि इंडोयूरोपियन भाषा में ही उत्पन्न हो गए थे।

इन पाँच बातों में आखिरी बात सबसे महत्वपूर्ण है। ऐसे ध्वनि-नियमों का आविष्कार अभी नहीं हुआ जिनसे इन अनियमित-से लगने वाले ध्वनि-परिवर्तनों की व्याख्या की जा सके। व्याख्या इसलिए नहीं की जा सकती कि भाषाविज्ञानी किसी भाषा को बोलियों का समुदाय न मानकर उसे समरूप व्यवस्था मान लेते हैं। यदि इस बात का अध्ययन किया जाय कि विभिन्न बोलियों की प्रवृत्तियाँ कौन-सी हैं, एक ही भाषा के अन्तर्गत, एक ही व्यवस्था में शामिल होने पर भी उनकी भिन्नता समाप्त

नहीं हो जाती, वरन् वे अलग-अलग दिशाओं में, कभी-कभी परस्पर विरोधी दिशाओं में, होने वाले परिवर्तनों को प्रेरित करती हैं, और इन भिन्नताओं, प्रेरणाओं और परिवर्तनों की सीमाएँ होती हैं जिनसे वह भाषा अथवा भाषा समुदाय पहचाना जाता है, तो स्वर-परिवर्तन इतने अनियमित न जान पड़ें। इसलिए आवश्यक है कि जिन परिवर्तनों को ऐब्लाउट् या ऐसा कोई अन्य नाम देकर शेष ध्वनि-परिवर्तनों से अलग कर लिया गया है, ध्वनि-परिवर्तनों के व्यापक संदर्भ में ही उनका अध्ययन किया जाय। भारतीय भाषा-परिवेश पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मध्य-देशीय अकार पूर्वी तथा उत्तर-पश्चिमी सीमान्तों में एकार-ओकार में बदलता है और इस तरह का परिवर्तन द्रविड़ भाषाओं में भी होता है, और बहुधा एक ही द्रविड़ भाषा में एकार-ओकार वाले ही नहीं, इकार-उकार वाले वैकल्पिक रूप बनते हैं। इस तरह के विकल्प संस्कृत में कम हैं, ग्रीक भाषा में बहुत हैं।

बोधामि—यहाँ ज़ोर पहले वर्ण पर है, यह सबल श्रेणी का स्वर हुआ; **बुद्धः**—यहाँ ज़ोर अन्तिम वर्ण पर है, यह निर्बल श्रेणी का स्वर हुआ जो ओकार से घटकर उकार हो गया। **वेद**—यहाँ ज़ोर पहले वर्ण पर है; **विद्म**—यहाँ ज़ोर दूसरे वर्ण पर है। पहले उदाहरण में सबल कोटि का स्वर है, दूसरे उदाहरण में निर्बल कोटि का स्वर है जो एकार से घटकर इकार हो गया। **दधामि**—यहाँ ज़ोर फिर पहले वर्ण पर है, **हितः**—यहाँ ज़ोर दूसरे वर्ण पर है। सबल कोटि का **धा** निर्बल कोटि में बदलकर **हि** हो गया। (**दधामि** में **धा** क्रिया की आवृत्ति की गई है और इस आवृत्ति में पहला **ध** अल्पप्राण कर दिया गया है)। अन्य रूप **दध्म** में निर्बल श्रेणी का स्वर घटा ही नहीं, लुप्त हो गया है। संस्कृत **पत्**, उड़ना क्रिया का एक ग्रीक रूप है **पॅतॉमइ** (**पतामि** की तरह, ज़ोर पहले वर्ण पर है); इसका ओकार श्रेणी वाला रूप बनता **पॉते** (ज़ोर दूसरे वर्ण पर है); अन्य रूप है **ऍप्तोमेन्** (ज़ोर दीर्घ ओकार पर है)। मुख्य समस्या दरअसल एकार की है। बक के अनुसार यह बात संदिग्ध है कि ओकार की ऐसी कोई स्वर-परिवर्तन वाली श्रेणी थी; अकार वाली श्रेणी अधिक महत्वपूर्ण है, किन्तु एकार वाली श्रेणी के मुकाबले में विरल है और उससे सम्बन्धित सामग्री कम मिलती है। इस प्रकार इस स्वर-संसृति में **ए** स्वर ही सबसे महत्वपूर्ण ठहरता है। यही स्वर **ओ** और **अ** में बदलता दिखाई देता है। यह स्वर कहीं ह्रस्व से दीर्घ होता है, कहीं घटकर इकार हो जाता है और कहीं उसका लोप हो जाता है। ऊपर **पॅतॉमइ** वाले उदाहरण में एकार का ओकार में बदलना और उसका लोप होना हम देख चुके हैं। अन्य उदाहरण संस्कृत क्रियामूल **मन्** के ग्रीक प्रतिरूप **मॅन्** का है। इसका एक रूप **मॅनो**, दूसरा रूप **मॉने**, तीसरा रूप **निम्नो** है। तीनों रूपों में प्रथम वर्ण का स्वर ह्रस्व है, दूसरे का दीर्घ; एकार एक जगह ओकार हुआ, दूसरी जगह घटकर इकार हुआ; **मॉने** वाले रूप में स्वरपात दूसरे वर्ण पर है, पहले और दूसरे रूपों में प्रथम वर्ण पर। ब्रुगमन ने अनेक उदाहरण दिए हैं जहाँ स्वरपात ह्रस्व या दीर्घ एकार पर होता है और जब इस स्वरपात वाले वर्ण से ज़ोर हट जाता है, शब्द के दूसरे वर्ण पर स्वरपात

होता है, तब एकार ओकार में बदल जाता है : **फ्रेन्** (स्वरपात पहले वर्ण पर); **अफ्रोन्** (स्वरपात पहले वर्ण पर; यहाँ **फ्रे** शब्द में **अ** जोड़ा गया है; **फ्रे** का स्वरपात खिसककर **अ** पर आया; **फ्रे** का एकार बदलकर ओकार हुआ); **पतेर** और **अपतोर** (पहले रूप में स्वरपात **ते** पर, दूसरे में **प** पर; **ते** बदलकर **तो** हुआ)। इसे सामान्य प्रवृत्ति माना जा सकता है। संस्कृत **तक्षणम्** के प्रतिरूप **तॅक्तॉन्** (स्वरपात प्रथम वर्ण पर) आदि के उदाहरण देकर ब्रुगमन कहते हैं, एकार-ओकार के बीच बहुधा परिवर्तन इस तरह साधा जाता है कि एकार (ह्रस्व या दीर्घ) उस वर्ण में होता है जिस पर मूलतः स्वरपात था और ओकार (ह्रस्व या दीर्घ) अगले वर्ण में होता है जिस पर स्वरपात नहीं है।

ऐसा बहुधा होता है जिससे एक रीति (अंग्रेजी में जिसे पैटर्न कहेंगे) उभर कर सामने आती है। ध्वनि-परिवर्तनों में ऐसी रीतियों का अध्ययन अटल ध्वनि-नियमों के आविष्कार से अधिक महत्त्वपूर्ण है। ब्रुगमन ने बहुत सही कहा है कि रूप-रचना के विभिन्न स्तर हैं जो एक-दूसरे पर स्थित हैं, और ये स्तर विभिन्न कालों के हैं। यह बात पुरातत्व की खुदाई की याद दिलाती है जहाँ एक ही स्थान पर सभ्यता के अनेक स्तर मिलते हैं और इन सभी स्तरों का स्रोत एक नहीं होता। ब्रुगमन अपने व्याकरण के पहले खंड में कहते हैं, "इस दिशा में जो अनुसंधान-कार्य चालू किया गया, वह अभी काफी दूर नहीं पहुँचा जिससे कि इस सिद्धान्त के अनुसार इस स्वर-परिवर्तन की श्रेणियों की व्यवस्था पूर्णतः सुनिश्चित करके प्रस्तुत कर दी जाय। और यह बात संदिग्ध है कि हमें ऐसी व्यवस्था की प्राप्ति को अपना लक्ष्य बनाने का अधिकार है भी या नहीं—जिस अर्थ में सामान्यतः ऐसे लक्ष्य सामने रखे जाते हैं, उसी अर्थ में। रूप-निर्माण के अनेक स्तर हैं, उनका उद्भव-काल भिन्न है, वे एक-दूसरे पर स्थित जान पड़ते हैं। जिन रूपों का उद्भव पहले हुआ था, सम्भव है उनका बहुत-कुछ अंश रूपों के स्थानान्तरण से विलुप्त हो गया हो, इससे पहले कि स्वर-परिवर्तन का नया कारण सक्रिय हो, और बाद वाला ध्वनि-नियम, जिससे नये भेद पैदा हुए हों, उसी तरह क्रियाशील न रहा हो जिस तरह पुराना नियम क्रियाशील था अथवा पुराने नियम क्रियाशील थे। इस स्थिति में आरम्भ से ही यह आशा करना असम्भव है कि समानान्तर उदाहरण सर्वत्र मिल जाएँगे।" (पृ० २४६-७)

यहाँ ब्रुगमन का सहज भाषावैज्ञानिक बोध ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के पुराने ढाँचे से टकराता दिखाई देता है। रूप-निर्माण के अनेक स्तर हैं, इनका उद्भवकाल भिन्न है, ये एक-दूसरे पर स्थित जान पड़ते हैं, व्यवस्था (शब्द के सामान्य अर्थ में) कायम करने का प्रयास भी उचित नहीं है। यह प्रतीति उनके सहज बोध का परिणाम है। किन्तु कालभेद के साथ वह स्थानभेद की बात नहीं सोचते। आदि भाषा एक है, वह विभिन्न कालों में विकसित हुई है, एक काल के रूप काफी संख्या में खो गए हैं इसलिए उनसे सम्बन्धित नियमों का पता नहीं लगाया जा सकता, भाषा बोलनेवाला समुदाय एक ही है, भले ही वह किसी एक अज्ञात स्थान से दूसरे अज्ञात

स्थान तक पहुँच गया हो। यही वह पुराना ढाँचा है जिसमें कालभेद मान लिया जाएगा किन्तु विभिन्न जन समुदाय अपनी भिन्न भाषा-प्रवृत्तियों के साथ परस्पर सम्पर्क में आए हैं और इस तरह रूप-निर्माण के विभिन्न स्तर विभिन्न कालों की देन ही नहीं हैं, विभिन्न स्थानों की (विभिन्न भाषा-केन्द्रों की) और विभिन्न गण-समाजों की (भिन्न भाषाएँ बोलनेवाले जन-समुदायों की) देन हैं, यह न माना जाएगा। यहीं ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के विकास में गतिरोध उत्पन्न होता है।

स्वर-संसृति का गहरा सम्बन्ध स्वरपात से है। स्वरपात इस सन्दर्भ में दो तरह का है, एक बलाघात जिसे अंग्रेज़ी में स्ट्रेस् कहते हैं। अंग्रेज़ी, जर्मन, रूसी आदि भाषाओं में इसी तरह के स्वरपात का चलन है। दूसरी तरह का स्वरपात वह होता है जिसका सम्बन्ध स्वर के उतार-चढ़ाव से है मानो कहीं पर स्वर पंचम हो और कहीं मध्यम। इसे स्वरतान कह सकते हैं। ग्रीक और संस्कृत भाषाओं में इस स्वरतान की प्रधानता है। इससे भाषाविज्ञानियों ने कल्पना की है कि आदि भाषा में स्वरपात संगीतमय था यानी स्वरतान का चलन था, बलाघात का नहीं। किन्तु स्वर-संसृति में जैसे परिवर्तन होते हैं, वे केवल स्वर के उतार-चढ़ाव से नहीं हो सकते, उनका सम्बन्ध बलाघात से होना चाहिए जिससे कहीं स्वर घट जाता है, कहीं दीर्घ होता है और कहीं लुप्त हो जाता है। जैसे फ्रान्सीसी भाषा का शब्द **कापितैन** अंग्रेज़ी में **कैप्टॅन्** हो जाता है, दूसरे वर्ण के इकार का लोप प्रथम वर्ण पर बलाघात के कारण होता है, वैसी ही प्रक्रिया अनेक ग्रीक शब्द-रूपों में होती है। इसलिए भाषाविज्ञानी मानते हैं कि आदि भाषा में स्वरपात मूलतः स्वरतान के रूप में था किन्तु बलाघात का असर भी विद्यमान था। यहाँ भी वे दो भिन्न प्रवृत्तियों का सम्पर्क स्वीकारने पर बाध्य होते हैं। ग्रीक भाषा में सामान्यतः स्वर-संसृति के अन्तर्गत जिन रूपों का विवेचन होता है, उनके अलावा भी अन्य रूपों में बलाघात के कारण ऐसे परिवर्तन दिखाई देते हैं जिसमें किसी स्वर या वर्ण का लोप हो जाता है। ग्रीक शब्द **प्तेरून्** (पंख) उसी **पत्** क्रिया से बना है जिसका अर्थ है **उड़ना**। स्वरपात एकार पर है; **प्** के साथ जो स्वर था, उसका लोप हो गया। यहाँ ऐसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं जिसमें शब्द के दूसरे वर्ण पर इतने ज़ोर से बलाघात होता है कि पहले वर्ण का स्वर ही लुप्त हो जाता है।

ग्रीक और लैटिन बहुत मिलती-जुलती भाषाएँ हैं किन्तु इनकी स्वरपात पद्धति अलग-अलग है। विशेषज्ञों का कहना है कि लैटिन में मूलतः सभी शब्दों में प्रथम वर्ण पर बलाघात होता था। यह आघात स्वरतान नहीं था, इसका सम्बन्ध स्वरों के उतार-चढ़ाव से नहीं है। ग्रीक भाषा का स्वरपात मुख्यतः स्वरतान वाला माना गया है, लैटिन का स्वरपात स्वरतानविहीन था। दो समीपवर्ती व्याकरण और शब्द भण्डार में बहुत ही मिलती-जुलती भाषाओं में यह भेद कैसे उत्पन्न हो गया? और दोनों तरह के स्वरपात का उद्गम एक ही होगा; आदिभाषा के म् की तरह जो स्वर भी है और व्यंजन भी है; यह स्वरपात स्वरतान है और बलाघात भी!

लैटिन और ग्रीक में स्वरपात सम्बन्धी एक भेद यह है कि ग्रीक में स्वर का उतार-चढ़ाव है और लैटिन में वह विशुद्ध बलाघात है। दूसरा अन्तर यह है कि संस्कृत की तरह ग्रीक में भी यह स्वरपात शब्द में किसी विशेष स्थान के वर्ण से सम्बद्ध नहीं है। वह मुक्त स्वरपात है। लैटिन में यह स्वरपात शब्द के आदि वर्ण से जुड़ा हुआ है, इस तरह वह प्रतिबद्ध स्वरपात था। इसी कारण संस्कृत **दक्ष** के समानान्तर ग्रीक **देक्सितेरोस्**—स्वरपात अन्तिम वर्ण पर—लैटिन में आकर **देक्स्तेर्** हो जाता है जहाँ दूसरे वर्ण का इकार लुप्त हो गया है। इसी तरह लैटिन **क्विन्क्वे** तथा **देकेम्** के योग से शब्द बनता है **क्विन्देकिम्** (पन्द्रह)। यहाँ एक पूरे वर्ण **क्वे** का लोप हो गया। भाषाविज्ञानी कहते हैं कि लैटिन में यह स्थिति उसके विकास के प्राचीन काल में थी किन्तु बाल्तिक भाषा लैतवियन के बारे में कहा गया है कि बलाघात पहले अन्य वर्णों पर भी होता था, फिर खिचकर प्रथम वर्ण पर स्थिर हो गया मानो जो दशा लैटिन की पहले थी वही लैतवियन की बाद में हुई। इसका कारण विभिन्न कालों में दोनों भाषाओं पर किसी अन्य भाषा-समुदाय का एक ही कोटि का प्रभाव हो सकता है। इसका परिणाम यह हुआ कि लैतवियन भाषा के शब्दों के अन्तिम वर्णों में जहाँ दीर्घ स्वर थे, वहाँ वे ह्रस्व हो गए; जहाँ युग्म स्वर थे, वहाँ उनमें से एक ही रह गया; और जहाँ अकार या एकार था, वहाँ उसका लोप हो गया। आदि वर्ण पर बलाघात करने की सामान्य प्रवृत्ति चौसर से पहले की अंग्रेज़ी में विद्यमान थी। जर्मन भाषा में यह प्रवृत्ति अब भी विद्यमान है यद्यपि उसकी विरोधी प्रवृत्तियाँ भी हैं। यह देखना दिलचस्प होगा कि ग्रीक और संस्कृत में प्रतिशत शब्द कितने हैं जहाँ प्रथम वर्ण पर स्वरपात होता है। मेरा अनुमान है कि अन्य स्थानों वाले स्वरपात की अपेक्षा प्रथम वर्ण वाले स्वरपात की संख्या ही अधिक होती है। आजकल जब लोग संस्कृत पढ़ते हैं तब शायद ही किसी को ध्यान रहता हो कि **ददाति, दिदामहे, पिबति, पिबामि** जैसे रूपों में स्वरपात पहले वर्ण पर होगा। ग्रीक भाषा में **तिथेमि** (मैं रखता हूँ), **दिदोमि** (मैं देता हूँ) जैसे रूपों में स्वर-पात पहले वर्ण पर है। भारत में, बँगला एक ऐसी भाषा है जिसमें बलाघात अधिकतर प्रथम वर्ण पर होता है। असमिया में दो विरोधी प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं। एक प्रदेश की बोली में बलाघात प्रथम वर्ण पर है तो अन्य प्रदेश की बोली में भिन्न वर्णों पर। प्रथम वर्ण पर बलाघात होने से पूर्वी बंगाल में मुसलमान फ़ारसी शब्दों के जैसे सुन्दर अपभ्रंश निकालते हैं, वैसे अन्यत्र दुर्लभ हैं। **खोद्देर, मुहुरि, बोनिदी** क्रमशः **खरीददार, मुहर्रिर, बुनियादी** हैं। डा० चाटुर्ज्या ने दुखी होकर लिखा है कि इस बलाघात ने फ़ारसी ध्वनियों का नाश कर दिया है। किन्तु शायद इसीलिए बंगाल में फ़ारसी-मिश्रित बँगला, उर्दू की तरह, भाषा के मुख्य प्रवाह से अलग कटकर भिन्न धारा नहीं बनी। उधर साहित्यिक बँगला में संस्कृत शब्दावली अपना मूल रूप कुछ पढ़े हुए भद्रजनों के लिए बनाए रहती है किन्तु बोलचाल में उनका तद्भव रूप ही सुनाई देता है जिसे पहचानना हमेशा आसान नहीं होता। **निलि-मिशि**

उच्छग्गु, निरिबिलि, बितिकिच्छि क्रमशः **निरामिष, उत्सर्ग, निराविल, विचिकित्सा** हैं। डा० चाटुर्ज्या ने इस बात का उल्लेख किया है कि प्रथम वर्ण पर बलाघात के कारण बंगाल की अनेक स्थानीय बोलियों में—इनमें पूर्वी बंगाल ही नहीं पश्चिमी बंगाल भी शामिल है—उन वर्णों में स्वर-लोप होता है जिन पर बलाघात नहीं है। यूरुप की जिन भाषाओं में प्रथम वर्ण पर बलाघात है, उनमें स्वर-लोप की ठीक यही प्रवृत्ति दिखाई देती है।

ग्रीक और संस्कृत भाषाओं में शब्द के जिस वर्ण पर भी स्वरपात हो, उस पर केवल बल देना काफी नहीं है। यह बल स्वर के विशेष उतार-चढ़ाव के साथ दिया जाता है। संस्कृत में उदात्त—चढ़ा हुआ स्वर, अनुदात्त—गिरा हुआ स्वर, स्वरित—मध्यवर्ती स्वर; इसी प्रकार ग्रीक भाषा में तीन स्वरतानें हैं। जर्मन, लैटिन आदि भाषाओं में इस तरह की स्वरतानों का अभाव है किन्तु नौर्वे और स्वीडन की भाषाओं में स्वर का आरोह, अवरोह, अर्थविच्छेदक होता है। कुछ लोग कह सकते हैं कि यह ऐक्सेंट नहीं टोन है। इस तरह की स्वरतानें नाग भाषा परिवार की विशेषता हैं। यहाँ दो से लेकर छह तक स्वरतानें सुनाई देती हैं। भारत के बाहर ऐसी स्वरतानों की संख्या अधिक है, भारत के भीतर नाग परिवार की भाषाओं में दो या तीन स्वरतानें ही हैं।

नौर्वे और स्वीडन की भाषाओं में जो मूर्धन्य स्पर्शध्वनियाँ मिलती हैं, भाषा-विज्ञानी उनका सम्बन्ध भारत से न जोड़ेंगे। इसी तरह इन भाषाओं में जो स्वरतानों की व्यवस्था है, उसका सम्बन्ध भी भारत से न जोड़ेंगे। किन्तु इन भाषाओं की स्वरतानों को समझने से ग्रीक और संस्कृत की स्वरपात-व्यवस्था अधिक सुबोध हो जाती है। नौर्वे की भाषा में दो तरह की स्वरतानें हैं, एक अनुदात्त से उदात्त की ओर, यानी पहले अवरोह, फिर आरोह; दूसरी उदात्त से अनुदात्त की ओर, यानी पहले आरोह, फिर अवरोह। मुख्य बात यह है कि ये स्वरतानें स्वरपात अथवा बलाघात से अलग प्रयुक्त नहीं होतीं। जहाँ स्वरपात होगा, उसी के साथ स्वर का आरोह और अवरोह जुड़ा होगा। यहाँ हम टोन और ऐक्सेंट, स्वरतान और बलाघात का प्रत्यक्ष सम्बन्ध देख सकते हैं।

नौर्वे और स्वीडन की भाषाएँ, जितना लैटिन ग्रीक से मिलती हैं, उससे भी ज्यादा जर्मन भाषा से मिलती-जुलती हैं। जैसे ग्रीक भाषा के स्वरपात में और लैटिन भाषा के बलाघात में महत्वपूर्ण भेद है, वैसे ही नौर्वे और स्वीडन की भाषाओं की स्वर-तानों में और जर्मन भाषा के बलाघात में मौलिक अन्तर है।

जिन भाषाओं में स्वरतान प्रमुख होती है, उनमें स्वर की ह्रस्वता और दीर्घता प्रायः अर्थ-विच्छेदक नहीं होती। नाग भाषाएँ अधिकतर एकवर्णी होती हैं। जिन शब्दों में एक से अधिक वर्ण होते हैं, उनमें भी भिन्न वर्ण भिन्न स्वरतानों के अनुसार उच्चरित होते हैं। स्वरों के निरन्तर उतार-चढ़ाव के कारण यहाँ मुख्य भेद इस उतार-चढ़ाव की मात्रा का होता है, स्वर की दीर्घता या ह्रस्वता का नहीं, मानों स्वरतान वाली भाषाओं में बोलनेवाले का स्वर ज़मीन पर खड़े किए बाँस पर नट की तरह निरन्तर ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर चढ़ता-उतरता हो, और स्वरतानहीन भाषाओं में मनुष्य

समतल भूमि पर कभी छोटे कदम और कभी बड़े कदम रखकर चलता हो। अब नौर्वे की भाषा की यह विशेषता दर्शनीय है कि जिस वर्ण पर स्वरपात होता है, वह दीर्घ होता है।

नौर्वे और स्वीडन की भाषाओं के अलावा बलाघात के साथ स्वरतान की व्यवस्था बाल्टिक भाषाओं में भी है। इन भाषाओं में किसी वर्ण-विशेष पर बल देना ही काफी नहीं है वरन् उसके उच्चारण में स्वर के आरोह-अवरोह का ध्यान रखना भी आवश्यक है। इस प्रकार नौर्वे और स्वीडन की भाषाओं को स्वरतान के मामले में अपवाद नहीं माना जा सकता।

स्पष्ट ही दो विरोधी प्रवृत्तियाँ कुछ भाषाओं को एक साथ प्रभावित कर रही हैं। एक प्रवृत्ति वह है जिसमें स्वरतान प्रमुख है, दूसरी प्रवृत्ति वह है जिसमें बलाघात प्रमुख है। कुछ भाषाओं में केवल बलाघात है जैसे जर्मन और लैटिन में, और कुछ में दोनों मिल गए हैं जैसे ग्रीक और नौर्वीजियन में। इनसे भिन्न एक तीसरी प्रवृत्ति है जहाँ स्वर के ह्रस्व या दीर्घ होने का ही अर्थबोधक महत्व होता है। हिन्दी में और उसके साथ अधिकांश आधुनिक आर्य भाषाओं में न तो स्वरतान है और न बलाघात। भारत के लिए तो कहा जाएगा कि द्रविड़ प्रभाव से ये आर्य विशेषताएँ नष्ट हो गयीं किन्तु यूरुप में लैटिन का जो अपभ्रंश रूप (वल्गर लैटिन) प्रचलित था, उससे बलाघात का लोप कैसे हो गया? हिन्दी की तरह इटालियन में न तो स्वरतान है, न बलाघात। दूर प्रदेशों में विकास की यह समानता क्या भाषाविज्ञान के किसी सामान्य नियम के अनुसार है?

मध्यदेश की मूल आर्यभाषाएँ बलाघात और स्वरतान दोनों से मुक्त थीं। पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी सीमान्तों पर इनके समानान्तर गण भाषाओं पर एक ओर बलाघात वाली भाषाओं का प्रभाव पड़ा और दूसरी ओर बलाघात के साथ स्वरतान वाली भाषाओं का भी। संस्कृत की मूल सम्पदा मध्यदेश की है किन्तु वैदिक भाषा ने अपना रूप उत्तर-पश्चिमी गण भाषाओं के प्रभाव से निखारा और नाग भाषाओं का जैसा प्रभाव उत्तर-पश्चिम में था, वैसा मध्यदेश में नहीं। यूरुप की अनेक भाषाएँ इसी उत्तराखण्ड की गण भाषाओं से प्रभावित हुई हैं। वैदिक भाषा से प्रायः सभी सामग्री लेने वाली संस्कृत स्वरतान को त्याग देती है, स्वरपात शिथिल हो जाता है और आधुनिक भाषाओं में दोनों का लोप हो जाता है। बाहरी प्रभाव क्रमशः क्षीण होते जाते हैं और मध्यदेश की अपनी प्राचीन प्रवृत्तियाँ फिर उभर आती हैं। आधुनिक इटालियन लैटिन की पुत्री वैसे ही मानी जाती है जैसे हिन्दी संस्कृत की। यहाँ हम भाषा-तत्वों में ध्वनितन्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका पुनः देखते हैं। इटालियन का शब्दभण्डार भले ही ९०% लैटिन से लिया गया हो किन्तु उसकी ध्वनि-व्यवस्था लैटिन से स्वतन्त्र है यानी वह मूलतः भिन्न गण-भाषा है। प्राचीन लैटिन का बलाघात जर्मन और अंग्रेज़ी में मिले और इटालियन में न मिले, इसका कोई कारण समझ में नहीं आता है।

संस्कृत उस कोटि की भाषा है जिसमें स्वर का ह्रस्व और दीर्घ होना महत्वपूर्ण है। यहाँ नौर्वीजियन की-सी स्थिति नहीं है कि जहाँ स्वरपात होगा, वहाँ स्वर दीर्घ हो जाएगा। इस ह्रस्व-दीर्घ स्वरों वाली भाषा ने, ग्रीक-लैटिन आदि के निर्माणकाल में,

उनकी स्रोतभाषाओं को प्रभावित किया। यूरुप की भाषाओं में स्वरों की दीर्घता कहीं तो महत्वपूर्ण है और कहीं कम महत्वपूर्ण है या महत्वपूर्ण नहीं है, इसका यही रहस्य है।

बलाघात और स्वरतान के प्रसंग में यह स्मरणीय है कि वैदिक छन्द-रचना में इन दोनों की प्रमुख भूमिका नहीं है। वैदिक छन्द मुख्यत: वर्ण-प्रधान हैं, लगभग वैसे ही जैसे बँगला के छन्द और हिन्दी का कवित्त। वर्णों की संख्या द्वारा पंक्ति की लय नियमित की जाती है किन्तु कौन-सा वर्ण ह्रस्व है, कौन-सा दीर्घ इसका ध्यान प्राय: नहीं रखा जाता। संस्कृत में गणात्मक छन्दों का चलन हुआ जहाँ वर्ण के ह्रस्व-दीर्घ होने से लय का नियमन होता है। संस्कृत की मूल प्रवृत्ति स्वरों की ह्रस्वता और दीर्घता का भेद करने वाली थी, बलाघात वाली भाषाओं के अनुरूप इस भेद को गौण मानने वाली नहीं थी, इस कारण संस्कृत में गणात्मक छन्द लोकप्रिय हुए। ग्रीक भाषा में भी छन्द-रचना का आधार स्वरों की ह्रस्वता और दीर्घता है। इसका प्रभाव लैटिन तथा आधुनिक अंग्रेजी आदि भाषाओं पर भी पड़ा है, किन्तु शेक्सपीयर की छन्द-रचना बार-बार ग्रीक कविता से चली आती हुई परिपाटी का उल्लंघन करती है, खासतौर से हैमलेट के रचनाकाल वाले तथा बाद के नाटकों में। कोलरिज ने अपनी कविता क्रिस्टाबेल में जानबूझकर ग्रीक परिपाटी की व्यर्थता सिद्ध की और वर्णों की संख्या घटाते-बढ़ाते हुए पंक्ति में बलाघातों की संख्या एक जैसी रखी है। कहने का आशय यह है कि जो भाषाएँ बलाघात प्रधान हैं, उनके यहाँ छन्द-रचना में स्वर की ह्रस्वता और दीर्घता महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु जिन भाषाओं में बलाघात का अभाव है या वह गौण है, उनके यहाँ छन्द-रचनाओं में स्वर की ह्रस्वता और दीर्घता ही महत्वपूर्ण है। हिन्दी के मात्रिक छन्दों में संस्कृत के गणात्मक छन्दों की अपेक्षा लय मुक्त होती है किन्तु मात्राओं की गिनती स्वरों की ह्रस्वता और दीर्घता के विचार से ही होती है।

(ग) स्वरों के रूपान्तर

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की एक मान्यता यह है कि आदि इन्डोयूरोपियन भाषा में जहाँ एकार ओकार थे, वे भारत ईरानी शाखा में अकार हो गये। जहाँ अकार था, वहाँ वह कायम रहा। यथा **पशु** शब्द लैटिन में **पेकु** है; मूल शब्द का एकार संस्कृत में अकार हो गया। इस परिवर्तन का कोई कारण नहीं बताया जाता। जैसे द्रविड़ों के संसर्ग से मूर्धन्य ध्वनियों के विकास की बात कही जाती थी, वैसी भी कोई बात इस सम्बन्ध में नहीं बताई गई। भारत में मूल शब्दों के एकार-ओकार का अकार में बदल जाना वैसी ही चमत्कारी घटना है जैसी अघोषता और अल्पप्राणता के द्रविड़ परिवेश में सघोष महाप्राण ध्वनियों का संस्कृत में कायम रहना। द्रविड़ भाषाएँ न केवल दीर्घ एकार ओकार का प्रयोग करती हैं, वरन् व्यापक स्तर पर उनमें ह्रस्व एकार ओकार का अर्थविच्छेदक उपयोग भी किया जाता है। होना यह चाहिए था कि आगन्तुक आर्यों की भाषा में ये ध्वनियाँ न होतीं, तो द्रविड़ों के प्रभाव से आर्यों के ध्वनितन्त्र में वे अपना स्थान बना लेतीं। यदि होतीं तो द्रविड़ों के सम्पर्क से उनकी स्थिति और सुदृढ़ हो

जाती। किन्तु यह सब होने के बदले हुआ इससे ठीक उल्टा। ह्रस्व-दीर्घ दोनों एकार-ओकार एक ही अकार सत्ता में विलीन हो गये।

संस्कृत में ह्रस्व **ए-ओ** स्वर नहीं हैं। किन्तु दीर्घ **ए-ओ** हैं। यदि आदि इन्डो-यूरोपियन भाषा के दीर्घ **ए-ओ** भारत में आकर **आ** बन गये, तो संस्कृत के दीर्घ **ए-ओ** की सृष्टि क्या नये सिरे से हुई ?

संस्कृत में ह्रस्व ओकार नहीं है किन्तु भारतीय आर्यभाषा परिवार का पूर्वी समुदाय इस ह्रस्व ओकार का ही प्रयोग करता है, उसमें ह्रस्व अकार का अभाव है। यदि आर्य लोग भारत में आने से पहले ह्रस्व **ओ** का प्रयोग करते थे तो, संस्कृत के निर्माण-काल में उसका लोप हो जाने के बाद, पूर्वी समुदाय ने क्या फिर उसकी नये सिरे से सृष्टि की ? और सृष्टि भी ऐसी की कि संस्कृत अकार को निर्मूल करके ही छोड़ा !

ईरान में फारसी जिस ढंग से बोली जाती है वह हिन्दुस्तानियों की सीखी हुई फारसी के ढंग से अलग है। उसमें यह ओकारवादी प्रवृत्ति अत्यन्त मुखर है। ईरान के अलावा दक्खिनी रूस की भाषा में यही गोलाकार उच्चारण उस क्षेत्र की रूसी का विशेष लक्षण माना जाता है। मानना होगा कि आदि इन्डोयूरोपियन भाषा नाम की कोई एक भाषा नहीं थी, कम-से-कम दो आदि भाषाएँ थीं, एक अकारवादी, दूसरी ओकारवादी।

किसी भाषा-परिवार के निर्माण और विकास का अध्ययन करते समय यदि आसपास के भाषा-परिवारों पर ध्यान दिया जाय तो यह तथ्य स्पष्ट होता है कि स्वरों के प्रयोग से जैसे वैकल्पिक रूप आर्यभाषाओं में बनते हैं, वैसे द्रविड़ भाषाओं में भी बनते हैं। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान ध्वनि-परिवर्तन के कारण नहीं बताता किन्तु समस्त भाषाई परिवेश पर ध्यान देने से कारण समझ में आने लगते हैं। यहाँ तीन केन्द्रों में तीन स्वरों का विकास हुआ। उत्तर-पश्चिम में एकार, पूर्व में ओकार और इन दोनों के बीच में अकार। यह स्थिति मेरठ, लखनऊ और पटना की बोलियों को सुनने से आज भी पहचानी जा सकती है। ये अत्यन्त प्राचीन स्वर-पद्धतियाँ आर्यद्रविड़ भाषाओं में वैकल्पिक रूपों के लिए मुख्यतः उत्तरदायी हैं। द्रविड़ भाषाएँ भारत के उत्तर-पश्चिम में बोली जाती थीं। उस प्रदेश से होकर जिन भारतीय भाषातत्वों का निर्यात हुआ है, वे अपने साथ द्रविड़ भाषाओं की अन्य विशेषताओं के साथ वैकल्पिक रूपों की निर्माण-प्रक्रिया भी ले गये। वैकल्पिक रूप संस्कृत में हैं और संस्कृत परिवार की आधुनिक भाषाओं में, यह स्मरण रखना चाहिए।

संस्कृत मूलतः मध्यदेश की भाषा है। वैदिक काल में वह उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र की भाषाओं से बहुत प्रभावित हुई है। फिर भी उत्तर-पश्चिमी एकारवादी प्रवृत्ति उसे उतना प्रभावित नहीं कर सकी जितना द्रविड़ भाषाओं को। ग्रीक और लैटिन में इस एकारवादी प्रवृत्ति की प्रबलता हो तो आश्चर्य की बात न होगी। जैसे सघोष महाप्राण ध्वनियाँ ग्रीक और लैटिन में भिन्न रूपों में ग्रहण की जाती हैं, वैसे ही उनके साथ चलने वाले भारतीय स्वर भी भिन्न रूपों में ग्रहण किये जाते हैं। इस प्रकार समूचे भाषाई परिवेश पर ध्यान देने से जो प्रपंच पहले अकारण जान पड़ता था, वह अब सकारण प्रतीत होने लगता है।

वास्तव में भाषाविज्ञानी जिसे ध्वनि-परिवर्तन कहते हैं, वह ध्वनि-परिवर्तन है ही नहीं। जब संस्कृत **पशु** लैटिन में **पेकु** रूप से ग्रहण किया जाता है, तब जो प्रक्रिया घटित होती है, वह यह कि **श्** के अभाव में लैटिनभाषी उसका उच्चारण **क्** रूप में करता है। यह एक प्रकार से ध्वनियों का विनिमय हुआ। **श्** वाला रूप लैटिन ने **क्** देकर ग्रहण किया। यदि लैटिन में **श्** ध्वनि होती और यह ध्वनि **क्** रूप ग्रहण करती तो उसे ध्वनि-परिवर्तन की संज्ञा दी जा सकती थी। इसी प्रकार उत्तर-पश्चिमी एकारवादी प्रवृत्ति के प्रभाव से आदि वर्ण का अकार लैटिन में एकार रूप में स्वीकृत हुआ।

ध्वनि-परिवर्तन के नियम तब स्थिर किये जा सकते हैं जब एक आदि भाषा से भिन्न भाषाएँ उत्पन्न हुई हों और ये भाषाएँ परिनिष्ठित रूप में ही बोली जाती रही हों। मान लीजिए संस्कृत, ग्रीक और लैटिन में कुछ शब्द एक-दूसरे के प्रतिरूप हैं। इनके तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा मूल शब्दों के रूप निश्चित किये। इन भाषाओं में वे मूल शब्द जिस ढंग से बदलते हैं, उसका पता लगाकर ध्वनि-परिवर्तन के नियम निर्धारित किये। ये नियम तभी तक सही हैं जब तक ग्रीक, लैटिन या संस्कृत में कोई शब्द एक ही ढंग से बोला जाता है। यदि वह भिन्न प्रकार से बोला जाता है तो निर्धारित नियम खण्डित हो जायेंगे। मान लीजिए, नियम बनाया कि आदि भाषा का **ए** स्वर ग्रीक में सुरक्षित है, संस्कृत में वह अकार हो जाता है। ग्रीक भाषा-समुदाय में संस्कृत **भ्रातर्** के दो प्रतिरूप हैं। आयोनियन में **फ्रेतेर** और परिनिष्ठित ग्रीक में **फ्रातेर**। अब यदि प्रथम वर्ण का एकार शब्द की मूल ध्वनि माना जाय, तो यह भी स्वीकार करना होगा कि वह केवल संस्कृत में नहीं, ग्रीक समुदाय की एक भाषा में भी अकार बनता है। इसी प्रकार संस्कृत **मातर्** के दो ग्रीक प्रतिरूप हैं : **मातेर्** और **मेतेर्**; स्वादु के दो ग्रीक प्रतिरूप हैं : **हादुस्**, **हेदुस्**। मूल रूप कौन-सा है ?

संस्कृत **भरति** के ग्रीक प्रतिरूप **फेरेइ** का उदाहरण देकर कहेंगे, मूल एकार ग्रीक में है, संस्कृत में परिवर्तित अकार है। उदाहरण देने वाले यह नहीं सोचते कि शब्द के आदि स्थान में जो मूल सघोष महाप्राण **भ्** ध्वनि है, वह संस्कृत में कायम है, ग्रीक में नहीं है। यदि मूल ध्वनि संस्कृत में प्राप्त है तो सम्भावना यही है कि उसके साथ का मूल स्वर भी संस्कृत में बना रहा होगा। भाषाविज्ञानियों का अव्यक्त तर्क यह है कि यूरुप की भाषाओं में सघोष महाप्राण ध्वनियाँ तो बदल गईं, उनके साथ का मूल स्वर उन भाषाओं में बना रहा।

संस्कृत **भरति** के शब्द-मूल **भर्** से एक शब्द बनता है **भार**। इस **भार** का ग्रीक प्रतिरूप है **बरोस्** (भार, बोझ)। यहाँ **भ्** ग्रीक भाषा में **फ्** रूप में ग्रहण नहीं किया गया; महाप्राणता का लोप हुआ और सघोषता बच रही जैसे **रुधिर** के लैटिन प्रतिरूप **रुबेर** में बच रही थी। भाषाविज्ञानी **भरति** के साथ ग्रीक **फेरेइ** को तो याद करेंगे, ग्रीक **बरोस्** को भूल जायेंगे। गौथिक भाषा में इसी **भर्** का प्रतिरूप **बर्** (ले जाना, वहन करना) है जिसमें ग्रीक **बरोस्** के समान अकार है। जैसा सम्बन्ध **भर्** और **भार** में है, वैसा ही **पशु** की मूल क्रिया **पश्** और **पाश** में है। लैटिन में **पशु** का प्रतिरूप **पेकु** है किन्तु **पाश** के प्रतिरूप **पागुस्** (निश्चित सीमाओं वाली भूमि) और **पको**, **पगो** तथा **पंगो**

(बाँधना) हैं। इन लैटिन प्रतिरूपों में एकार के स्थानों पर अकार है। धरा शब्द तमिल में **तॅरइ** है; लटिन में इसी अर्थ का द्योतक **तॅरा** शब्द है। लटिन **तॅरा** और संस्कृत **धरा** को एक-दूसरे का प्रतिरूप माना जायगा या नहीं?

संस्कृत **दक्षिण** पुरानी तमिल में **तॅक्कणम्** रूप में सुलभ हुआ। अंग्रेज़ी में **दक्षिण** को **डॅकन्** इसी तमिल **तॅक्कणम्** के अनुरूप कहते हैं। यह शायद ही कोई कहे कि अंग्रेज़ी **डॅकन्** से **दक्षिण** का विकास हुआ है। इसी प्रकार अंग्रेज़ी रूप **बॅङ्गल्** से **बंग** या **बाँगाल** की उत्पत्ति न मानी जायगी। भारत के शिक्षित जन जब बहुत अंग्रेज़ी ढंग से हिन्दुस्तानी शहरों या प्रदेशों का नाम लेते हैं तब पटना को पैटना, कश्मीर को कैश्मियर् कहते हैं। पर ये शब्दों के मूलरूप नहीं हैं।

संस्कृत **भरति** ग्रीक भाषा में **फेरेइ** वैसे ही है जैसे संस्कृत **धरा** तमिल में **तॅरइ** है, संस्कृत **दक्षिण** पुरानी तमिल में **तॅक्कणम्** है, जैसे तमिल तॅरइ लैटिन में तॅरा है, जैसे तमिल **तॅक्कणम्** अंग्रेज़ी में **डॅकन्** है।

बरो ने संस्कृत पर अपने ग्रन्थ में लिखा है कि मूल इन्डोयूरोपियन भाषा में जहाँ क-वर्गीय व्यंजन के साथ एकार था, वहाँ भारत ईरानी शाखा में तालव्यीकरण के साथ अ स्वर का व्यवहार होता है, यथा लैटिन **क्वे** का संस्कृत प्रतिरूप **च** (और) है। यह अधिक स्वाभाविक होता कि तालव्यीकरण के साथ अकार के बदले वह स्वर जोड़ा जाता जो तालव्य व्यंजन के निकट था जैसा कि बोलचाल की तमिल में अक्सर होता है। यदि मूल शब्द **च** है तो जिस भाषा में च-वर्गीय ध्वनियाँ नहीं हैं, वह तालव्य ध्वनि के चिह्न-स्वरूप, एकार जोड़ेगी (जैसे **फिलिप** के उक्रैनी रूपान्तरण **ख्विलिप** में **ख्** के साथ, ओष्ठ्य तत्व के चिह्नस्वरूप **व्** जोड़ा जाता है)। अतः लैटिन में संस्कृत **च** का परिवर्तित रूप **क्वे** स्वाभाविक होगा। ग्रीक भाषा में इसका प्रतिरूप **ते** है जहाँ एकार उसी तालव्य ध्वनि का स्मृति चिह्न है। (सम्भव है, लैटिन **क्वे** सीधे **च** का रूपान्तरण न होकर ग्रीक **ते** के समकक्ष किसी **पे** का प्रतिरूप हो।)

जहाँ तक मूल ओकार के भारत-ईरानी अकार में बदलने का प्रश्न है, इस तरह का तथाकथित परिवर्तन अन्यत्र इतना अधिक है कि उसके सम्बन्ध में कोई नियम नहीं बनाया जा सकता। इस सम्बन्ध में बरो ने संस्कृत वाली पुस्तक में यह मत प्रकट किया है: "**अ** तथा **ओ** स्वरों का उलझाव इन्डोईरानियन शाखा के बाहर जर्मैनिक, स्लावोनिक और हित्ताइत शाखाओं में भी पाया जाता है। निश्चयपूर्वक यह कहना सम्भव नहीं है कि भिन्न भाषा-समुदायों में यहाँ समानान्तर स्वतन्त्र विकास हो रहा है, अथवा **ओ** और **अ** का यों घुलमिल जाना इन्डोयूरोपियन भाषा का प्राचीन बोलीगत लक्षण है।" (पृष्ठ १०३)। स्वतन्त्र विकास का अर्थ यह है कि प्राचीन हित्ती, पुरानी स्लाव और जर्मन भाषाओं में भी एक ही प्रकार का ध्वनि-परिवर्तन होने लगा। जब अनेक भाषाओं में एक साथ एक ही प्रकार का 'स्वतन्त्र' ध्वनि-परिवर्तन होने लगे, तब ऐसे परिवर्तन की स्वतन्त्रता को संदिग्ध मानना चाहिए। इसी कारण विकल्प रूप में इस सम्भावना पर विचार करते हैं कि **ओ** तथा **अ** का घुलनमिलन आदि भाषा का बोलीगत लक्षण है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि दो भिन्न बोलियों की प्रवृत्तियाँ एक ही भाषा-समुदाय

में घुलमिल गई हैं जिसे आदि भाषा की संज्ञा दी गई है। भारत में न केवल अकार-ओकार वरन् एकार-ओकार-अकार के तीन केन्द्र तीन क्षेत्रों की भाषाओं में अपने विशिष्ट प्रयोग का प्रमाण देते हैं और तीन भिन्न स्वर प्रवृत्तियों के मिश्रण के प्रमाण आर्य-भाषाओं के अलावा द्रविड़ भाषाओं में भी दिखाई देते हैं। भिन्न भाषा-परिवारों में प्रसारित यह अखिल भारतीय मिश्रण का प्रपंच भारत से बाहर पश्चिमी एशिया और यूरुप की नई-पुरानी भाषाओं में दिखाई देता है।

एकार-ओकार की तरह **अइ, अउ** आदि संयुक्त स्वर हैं जिनके लिए कल्पना की गई है कि भारत में आकर उनका संयुक्त रूप नष्ट हो गया और वे एक स्वर रह गये। यहाँ भारत-ईरानी शाखा में भारत अकेला रह जाता है क्योंकि ईरानी भाषा संयुक्त स्वरों को बहुत कुछ बनाये रहती है। कल्पना की गई है कि प्रसिद्ध **वेद** शब्द के प्रथम वर्ण में मूलतः संयुक्त स्वर था। शब्द था **ऑइद** जैसा कि रूप ग्रीक में मिलता है (अर्थ है—जानता हूँ)। अवेस्ता में इसका रूप **वएद्** है। इसी प्रकार देव शब्द मूलतः **दॅइव** होना चाहिए।

इस तरह के परिवर्तन वैसे ही अकारण होते दिखाई देते हैं जैसे ओकार-एकार सम्बन्धी परिवर्तन थे। सबसे पहले तो इस बात पर ध्यान जाता है कि संस्कृत में अइ, अउ जैसे संयुक्त स्वर विद्यमान हैं। पुराने संयुक्त स्वर नष्ट हो जायँ और वैसे ही नये स्वर फिर रचे जायँ, यह क्रिया समझ में नहीं आती। इसके अतिरिक्त भारत के भाषाई परिवेश में संयुक्त स्वरों की भरमार है। (संयुक्त स्वर दो भिन्न स्वरों से इस बात में अलग होता है कि भिन्न स्वरों से जहाँ दो वर्ण रचे जाते हैं, वहाँ संयुक्त स्वर से एक ही वर्ण रचा जाता है।) तमिल भाषा में एक सामान्य प्रवृत्ति है कि संस्कृत शब्दों के अन्त में जहाँ दीर्घ स्वर है, उसके स्थान पर वह संयुक्त स्वर का व्यवहार करती है यथा **धरा—तॅरइ, धारा—तारइ, सीमा—चिमइयम्** (पहाड़ की चोटी), **सभा—अवइ।** इसके अतिरिक्त संस्कृत शब्दों के अन्य स्थानों के स्वर भी कभी-कभी संयुक्त स्वरों के रूप में ग्रहण किये जाते हैं यथा : **राजन्—अरइचु, अमात्य—अमइच्चु, समय—अमइयम्।** यह प्रवृत्ति नाग भाषाओं में भी देखी जाती है। शंकर भट ने बोरो भाषा के शब्दभण्डार पर अपनी पुस्तक में इस तरह के उदाहरण दिये हैं : हिन्दी **नॅवला—नॅवलय्, पढ़ना—पॉरय्, पछतावा—पॉस्तय्।** सम्भव है बोरो जैसी नाग भाषाओं पर द्रविड़ प्रभाव पड़ा हो। सुधिभूषण भट्टाचार्य ने बोंद भाषा के शब्द कोष पर अपनी पुस्तक में कोल परिवार की इस भाषा के बारे में लिखा है कि दीर्घ स्वरों को संयुक्त स्वरों में बदलने की प्रवृत्ति इसमें देखी जाती है। बोडिंग ने सन्थाली भाषा के व्याकरण में सन्थाली के संयुक्त स्वरों की चर्चा की है, उनकी संख्या सोलह है। बरो ने मूल इन्डोयूरोपियन भाषा के जो संयुक्त स्वर गिनाये हैं, वे केवल बारह हैं।

अन्य परिवारों के अलावा स्वयं आर्यभाषा-परिवार में संयुक्त स्वरों की कमी नहीं है। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने बँगला भाषा और उसकी बोलियों में अनेक संयुक्त स्वरों का विवरण दिया है यथा : **कॉरे—कॉइरा, रेखे—रइखा, केनो—कअॅनो।** बँगला की एक विशेषता यह है कि संयुक्त स्वर का प्रथम अंश दीर्घ भी हो सकता है यथा संस्कृत

ऐ (अइ) बँगला में **आइ** वत् उच्चरित होता है : **ऐक्य—आइक्य, ऐश्वर्य—आइश्वर्यो।** इसी प्रकार संस्कृत **औ** का उच्चारण **आउ** वत् होता है। भारत के भाषाई परिवेश में संयुक्त स्वरों की प्रचुरता होने पर यदि आगन्तुक आर्यों के मूल संयुक्त स्वर एक स्वर में बदल गये तो यह बड़े आश्चर्य की बात है।

अब संस्कृत शब्दों के कुछ अभारतीय प्रतिरूपों को देखें। **वेद** शब्द का ग्रीक प्रतिरूप **ऑइद** है। ग्रीक भाषा में **व्** ध्वनि का अभाव है; अतः वह उसके स्थान पर स्वर का व्यवहार करती है। **व्** के ओष्ठ्य तत्व के अनुकरण के लिए **ओ** स्वर अत्यन्त अनुकूल है। अतः **वेद** के **वे** के स्थान पर **ऑइ** का व्यवहार इस भाषा के लिए अत्यन्त स्वाभाविक है। लैटिन भाषा में **वीनुम्** शब्द अंग्रेज़ी **वाइन्** (शराब) का मूल रूप है और उसका ग्रीक प्रतिरूप **ऑइनोस्** है। आवास के लिए संस्कृत का पुराना शब्द **विश है**। इसका ग्रीक प्रतिरूप **ऑइकोस् है**। नाग परिवार की इदु भाषा में वास का प्रतिरूप **ऑको** है; **व्** के स्थान पर स्वर का प्रयोग, **स्** का तालव्यीकरण, फिर **क्** में उसका रूपान्तरण। बँगला भाषा में इस तरह के **व्**-सम्बन्धी परिवर्तन बहुत साधारण हैं। डा० चाटुर्ज्या की पुस्तक से कुछ उदाहरण देते हैं : **दावत—दाऑयात, दवात—दोयात, पुलाव—पॉलाऑ, आवाज—आऑयाज, आबहवा—आबहाऑया, वजन—ऑजन, जानवर—जानोयार।** विदेशी शब्दों का यह बंगालीकरण उस भाषा की प्राचीन ध्वनि प्रवृत्ति का प्रमाण है। इससे मिलते-जुलते परिवर्तन ग्रीक भाषा में होते हैं तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है।

ऑइ के समान **ॲइ** का संयुक्त स्वर भी भारत की भाषाओं में विद्यमान था। बँगला भाषा के लिए जैसे अकार को ओकार रूप में ग्रहण करना सहज है, वैसे ही तमिल भाषा के लिए अकार को एकार रूप में ग्रहण करना सहज है। द्रविड़ भाषाओं के ध्वनितन्त्र पर ज़्वेलेबिल ने लिखा है कि संयुक्त स्वर **अइ** आधुनिक उच्चारण में **ॲय्** बोला जाता है। अतः यदि **देव** शब्द पहले **दॅइव** रूप में बोला जाता था तो संयुक्त स्वर के एकार में बदलने का कोई कारण नहीं है। इसके विपरीत यदि द्रविड़ प्रवृत्ति पर ध्यान दिया जाय तो **दे** के स्थान पर **दॅइ** का उच्चारण स्वाभाविक लगेगा। अतः भारत के बाहर जिन भाषाओं में **ॲइ** संयुक्त स्वर है, उसका कारण द्रविड़ प्रभाव माना जा सकता है। संस्कृत देवर के मूल रूप में प्रारम्भिक वर्ण का स्वर संयुक्त माना गया है किन्तु इसका लैटिन प्रतिरूप **लेविर् है**, वह **देवर** का ही रूपान्तर है। संस्कृत **बोधामि** (मैं जानता हूँ) का ग्रीक प्रतिरूप **पॅउथोमइ** बताया गया है, इसमें **ॲउ** को मूल ध्वनि कहा गया है। मूल व्यंजन ध्वनि **ध्** ग्रीक भाषा में नहीं है। वह संस्कृत में है; उसके साथ जिस स्वर का प्रयोग हुआ है, उसी को शब्द का मूल स्वर मानना चाहिए। इसी प्रकार संस्कृत **जोषति** (स्वाद लेता है) का ग्रीक प्रतिरूप **गॅउओमइ** है। ग्रीक भाषा में **ज्** ध्वनि नहीं है, संस्कृत में है; उसके साथ के स्वर को शब्द का मूल स्वर मानना चाहिए। संस्कृत **बोधयति** का लिथुआनियन प्रतिरूप **पसिबउदिति** है। बरो ने इसे **ऑउ** संयुक्त स्वर के प्रमाणरूप दिया है। उनके अनुसार मूल **ऑउ** ध्वनि लिथुआनियन में **अउ** हुई, **संस्कृत में ओ।** किन्तु **बोधयति** का यही **बोध बोधामि** के ग्रीक प्रतिरूप **पॅउथोमइ में**

अॅउ संयुक्त स्वर का उदाहरण बन चुका है। **बोध** का **ओ** कहाँ **अॅउ** का परिवर्तित रूप है और कहाँ **ऑउ** का, यह बात स्पष्ट नहीं की गई।

र् व्यंजन से **इ** स्वर को मिलाने पर जो वर्ण बनता है, वह दो तरह से लिखा जा सकता है : **रि** और **ऋ**। संस्कृत में कुछ शब्द दोनों प्रकार से लिखे जाते हैं। **री** क्रिया का अर्थ है चलना; इसी से **रीति** शब्द बनता है; **ऋतु** का सम्बन्ध **ऋ** से है और उसका अर्थ भी चलना है। **रि** क्रिया का अर्थ है स्तुति करना; **ऋच्** का भी यही अर्थ है। एक तरह के रूपों में **ऋ** लिखा जाता है जो वैयाकरणों के अनुसार विशुद्ध स्वर है; दूसरे रूपों में **रि** लिखा जाता है जो व्यंजन और स्वर का योग है। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि **ऋ** विशुद्ध स्वर नहीं है; उसमें और **रि** में अन्तर यह है कि व्यंजन तत्व अत्यन्त क्षीण होने से **ऋ** ध्वनि स्वरवत् सुनाई देती है।

ऋ को सामान्य स्वर माना जाता है। इसका गुण-रूप **अर्** और **र** होता है। **इ** का गुण-रूप **ए, उ** का गुण-रूप **ओ; ए** और **ओ** दोनों स्वर हैं, उन्हें **इ** और **उ** का गुण-रूप कहना उचित है। किन्तु **अर्** और **र** किसी प्रकार भी स्वर नहीं कहे जा सकते। इसी **ऋ** का वृद्धि-रूप **आर्** होता है; वह विशुद्ध स्वर से और भी दूर है। **ऋ** का गुण-रूप **अर्** इसलिए होता है कि तथाकथित स्वर में व्यंजन तत्व विद्यमान है, **र्** व्यंजन से पहले अतिरिक्त स्वर जोड़ने की प्रवृत्ति विद्यमान है।

मूर्धन्य **र्** का समीपवर्ती स्वर **इ** है, **उ** नहीं है। इसीलिए **ऋ** वाले शब्दों के प्रतिरूपों **रिष्, री** आदि में इकार है, उकार नहीं। प्राचीनकाल में **ऋ** का उच्चारण उकार के साथ भी होता था, इसीलिए **वृद्ध** शब्द का हिन्दी रूप **बुड्ढा** होता है। उर्दू में संस्कृत **ऋतु रुत** लिखा और बोला जाता है, हिन्दी उच्चारण में इकार है। महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारत में **ऋ** के उकार वाले उच्चारण की प्रधानता है। यह उसका मूल उच्चारण नहीं है। उत्तर-पश्चिमी भाषाओं में **उ** और **व्** की प्रधानता रही है। **ऋ** के इस परम्परागत उकार वाले उच्चारण का यही कारण है।

जो लोग समझते हैं कि मूर्धन्यीकरण की प्रवृत्ति विशेष रूप से भारत में अनार्य प्रभाव से उत्पन्न हुई, वे चुपचाप **ऋ** स्वर को आदि इन्डोयूरोपियन भाषा की ध्वनि व्यवस्था के अन्तर्गत मान लेते हैं, मानों मूर्धन्यीकरण की प्रवृत्ति से उसका कोई सम्बन्ध हो ही नहीं। यूरुप की भाषाओं के विकास-काल में इस प्रवृत्ति के अस्तित्व को स्वीकार किये बिना **ऋ** की व्याख्या नहीं हो सकती।

ह्रस्व-दीर्घ स्वरों की परम्परा के अनुरूप ह्रस्व **ऋ** के साथ उसके दीर्घ स्वर-रूप की भी कल्पना की गई। जब यह ध्वनि दीर्घ स्वर-रूप में उच्चरित होगी, तब पहले से ही क्षीण **र्** तत्व लुप्त ही हो जायगा और केवल **ई** (अथवा **ऊ**) स्वर सुनाई देगा। शब्द निर्माण में इस दीर्घ **ॠ** की उतनी बड़ी भूमिका नहीं है जितनी ह्रस्व **ऋ** की है। **पितॄन्** जैसे दो-चार रूपों में ही उसका व्यवहार होता है।

मगध तथा उत्तर-पश्चिमी सीमान्त पर जिन लोगों की भाषा में **ल्** ध्वनि प्रधान थी, वे **ऋ** के समकक्ष **ऌ** स्वर गढ़ने में पीछे न रह सकते थे। **ऋ** के समकक्ष **ऌ** स्वर की कल्पना की गई। सैकड़ों साल तक यह तथाकथित स्वर वर्णमाला का अभिन्न अंग

बना रहा। जिन शब्दों में इसका व्यवहार होता हो, उनकी संख्या नगण्य है। बहुत ढूंढ़ने पर एक क्रिया मिली **क्लृप्** (व्यवस्थित होना)। इसी से **कल्प** रूप भी बनता है। ऐसा लगता है कि शब्द-मूल कल्प् में जब वर्ण-संकोच की प्रवृत्ति ने काम किया, तब **क्लृप्** जैसे रूप की कल्पना की गई। पाश्चात्य ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में इसे विशुद्ध **ल्** स्वर माना जाता है; भारतीय परम्परा में उसके अन्दर **र्** तत्व विद्यमान है। वास्तव में इस तरह का कोई स्वर नहीं था और **ऌ** की कल्पना उत्तर-पश्चिमी अथवा मागध लकार-बाहुल्य के प्रभाव का परिणाम है। इसका कोई दीर्घ स्वर-रूप भी होता था, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में इसका उल्लेख नहीं है।

सारांश यह है कि इन्डोयूरोपियन परिवार की प्राचीन भाषाओं के ध्वनितन्त्र में जो अक्षर-ध्वनियाँ मिलती हैं, वे सब एक साथ किसी गण समाज की भाषा में विकसित नहीं हुई। उनके आधार पर आदि इन्डोयूरोपियन भाषा की ध्वनि-व्यवस्था की कल्पना अवैज्ञानिक है। **क्-त्-प्** जैसी सामान्य ध्वनियाँ भी सभी भाषाओं में प्राप्त नहीं हैं; उनके विकास-केन्द्र भिन्न थे। **घ्-ध्-भ्** जैसी विशिष्ट ध्वनियों के विकास-केन्द्र और भी विरल, किसी एक भाषाई क्षेत्र में सीमित थे। सघोषता और महाप्राणता के लक्षणों का विकास भारत में हुआ; आर्यभाषा परिवार से वह अन्य परिवारों में फैला। भारत को भाषाई क्षेत्र मानकर यहाँ के विभिन्न परिवारों के ध्वनितन्त्र का अध्ययन किया जाय तो यूरुप की भाषाओं में जो ध्वनिपरिवर्तन आकस्मिक लगते हैं, उनके कारण समझ में आने लगते हैं। विभिन्न गण भाषाओं की ध्वनि प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं, इसलिए एक ही भाषा में अनेक ध्वनि प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं। इसी कारण ध्वनिपरिवर्तन के अटल नियमों का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता; अस्तित्व सिद्ध होता है भिन्न प्रकारों की ध्वनि-परिवर्तन-रीतियों का। इन ध्वनि-परिवर्तन-रीतियों के निर्माण में द्रविड़ भाषाओं के अतिरिक्त नाग और कोल भाषाओं का योगदान भी है। इन भाषाओं को आर्य भाषाओं ने प्रभावित किया है, वे उनसे प्रभावित भी हुई हैं। भारत से बाहर की इन्डो-यूरोपियन भाषाओं तथा भारतीय भाषा-परिवारों का सम्बन्ध सीमित और जड़ न होकर गत्यात्मक और विविध है; अनेक प्रदेशों और अनेक शताब्दियों में घटित होने वाले परस्पर सम्पर्क के कारण इनके ध्वनितन्त्र निरन्तर विकासमान अवस्था में रहते हैं। ऐसा ही सम्पर्क और विकास भाषा के अन्य स्तरों पर भी दिखाई देता है।

२

भारतीय भाषा परिवार और इंडोयूरोपियन शब्दतंत्र

१. दस्त, दक्ष, तक्षन्

संस्कृत **हस्त** और फ़ारसी **दस्त** का मूल रूप **धस्त** है, यह बात पहले कही जा चुकी है। **धस्त** में यदि हम **धस्** को शब्द-मूल मानें तो इन्डोयूरोपियन परिवार और द्रविड़ भाषा परिवार के बहुत से शब्दों की व्याख्या हो सकती है और अर्थ-विस्तार की प्रक्रिया समझ में आ सकती है। मनुष्य सबसे अधिक काम हाथ से करता है, अतः जो क्रिया काम करने के लिए प्रयुक्त होती है, उसका सम्बन्ध हाथ से होना स्वाभाविक है। संस्कृत में **धाता, विधाता** आदि शब्द निर्माता के लिए प्रयुक्त होते हैं। **धा** क्रिया का अर्थ है रखना, लेना या लाना, देना, कार्य करना, निर्माण करना, पकड़ना, पाना। हिन्दी शब्द **धन्धा** उसी मूल क्रिया से सम्बद्ध है जिससे **धस्त** शब्द बना था। द्रविड़ प्रभाव से **धा** रूप जब अल्पप्राण होता है तब **दा** क्रिया प्राप्त होती है। **दान, दाता** आदि शब्दों में जो शब्द-मूल **दा** है, वह **धा** का ही प्रतिरूप है। लेने-देने का काम हाथ से होता है; **धा** का एक अर्थ देना भी है जो अल्पप्राण रूप **दा** का विशेष अर्थ है। **दा** का अर्थ करना भी है। फ़ारसी **दस्त** में जो **दस्** क्रिया है, उससे बहुत सहज ढंग से **दास** शब्द सिद्ध होता है। **दास** शब्द का मूल अर्थ था काम करने वाला। जो काम करते थे वे सेवक थे, जब सेवक बेचे और खरीदे जाने लगे, तब **दास** शब्द का वह अर्थ हुआ जो अब हम उसमें देखते हैं। रूसी भाषा में **दान्** शब्द का अर्थ है वह धन जो अपने ऊपर के प्रभुत्व-शाली व्यक्ति को दिया जाता है; किसी को चन्दा वगैरह दिया जाय, वह भी **दान्** है। इसी भाषा में एक दूसरा शब्द है **दार्** जिसका अर्थ है किसी को दी हुई वस्तु; **दरीत्** अर्थात् देना। रूसी भाषा में **दा** क्रिया अनेक रूपों में वर्तमान है। **दात्, दावात्,** शब्दों का अर्थ है देना, **दाच्** अर्थात् देने की क्रिया। इसके साथ ही करने वाला अर्थ उसके एकार वाले रूप से सम्बद्ध है। जैसे संस्कृत **दा** का हिन्दी प्रतिरूप **दे** है, वैसे ही रूसी में **दा** और **दे** दोनों रूप हैं। संस्कृत **दा** और हिन्दी **दे** का अर्थ एक ही है, रूसी में अर्थ-भेद है। **देलात्** माने करना, बनाना, **देलो** अर्थात् कार्य। अंग्रेज़ी भाषा के **डू** (करना) और **डीड्** (कार्य) इसी शब्द-शृंखला में आते हैं।

मूल क्रिया **धा** है। उसमें **ध** प्रत्यय जोड़ा जा सकता है, **भ** भी। **धभ** रूप में दो महाप्राण ध्वनियों के सामीप्य से बचने के लिए **ध्** को अल्पप्राण किया जाएगा और

दभ रूप बनेगा। पुनः **द्** ध्वनि **र्-ल्** में परिवर्तित होगी तो **रभ-लभ** प्राप्त होंगे। ये कृदन्त रूप पुनः क्रिया बनाये गये; इस प्रकार **रभ्-लभ्** (प्राप्त करना) धातुएँ सुलभ हुईं। **भ्** की महाप्राणता का लोप होने पर **लब्** और **रब्** रूप प्राप्त होंगे। लैटिन में **लबोरो** क्रिया का अर्थ है श्रम करना। इसमें वही शब्दमूल **लब्** है जो **लभ्** का विकास है। रूसी भाषा में **रबोता** माने काम, **रबोतात्** माने काम करना, **रबोत्निक्** माने श्रमिक, **रबोचिइ** माने श्रमिक, श्रम, **राब्स्त्वो** माने दासता, **राब्स्की** माने दास। जो काम करता है, वह एक स्थिति में गुलाम होता है। रूसी भाषा में **रब्** शब्द-मूल से मजदूर और गुलाम, दोनों तरह के अर्थ देने वाले शब्द बनते हैं। इससे **दास** शब्द का जो मूल श्रमिक वाला अर्थ ऊपर बताया गया है, उसकी पुष्टि होती है।

द्रविड़ भाषाओं में शब्द के आदि स्थान पर अघोष अल्पप्राण **त्** का व्यवहार होगा। तमिल **तरु, तार्, ता** का अर्थ है देना। **त** शब्द-मूल से बने हुए रूप तमिल, मलयालम, कोत, तोद, कन्नड़, कोडगु, तुलु, तेलुगु, गोंडी, कोन्ड, कुइ, कुवि भाषाओं में हैं। जैसे आर्य परिवार की समस्त आधुनिक भाषाओं में **द** वाली क्रिया है, वैसे ही लगभग सभी द्रविड़ भाषाओं में **त** वाली क्रिया है जिसका अर्थ है देना, लेना, पाना, बनाना इत्यादि, उसी तरह के अर्थ जिस तरह के संस्कृत क्रिया **धा** से प्राप्त होते हैं। आर्य और द्रविड़ भाषाओं के प्राचीन घनिष्ठ सम्बन्धों का प्रमाण मनुष्य की एक आदिम क्रिया के सूचक इस शब्द का व्यापक व्यवहार है।

ब्राहूइ में इस श्रृंखला का शब्द **हत, हतरिङ्** है जिसका अर्थ है लाना। यह शब्द **ता** और **तरु** वाली श्रृंखला का नहीं है। इसका सीधा सम्बन्ध उस रूप से है जहाँ **ध** क्रिया से **धत—हत** जैसा रूप बनता है जो फ़ारसी **दस्त** की अपेक्षा संस्कृत **हस्त** के अधिक निकट है। **ता** और **तरु** वाली श्रृंखला में **तो** और **ते** वाले रूप भी हैं। तेलुगु में **तॅच्चु, ते, तेर्** (पाना, लाना, बनाना) तथा तोद में **तोर्, तो, तॉद्** (देना) रूप हैं। (कोलमि भाषा के **कोद, कोदर्** रूप अन्य शब्द मूल से निष्पन्न होते हैं।) तमिल **तॅक्कु** (पाना) और **तण्डु** (उगाहना) इसी शब्दमूल से सम्बद्ध हैं। जैसे संस्कृत **कर** का एक अर्थ हाथ है और दूसरा अर्थ वसूल किया जाने वाला **कर** है, वैसे ही तमिल **तण्डु** का अर्थ ऋण, कर आदि वसूल करना है। तमिल **तण्डम्** का अर्थ है टैक्स। यह संस्कृत **दण्ड** का प्रतिरूप है और **दण्ड** स्वयं **धन्ध** का रूपान्तर है। मलयालम **तॅण्डुक** (पाना), कोत **तण्ड्** (कर्ज चुकाना), **दण्ड्** (काम करके कर्ज चुकाना), तेलुगु **तण्डु, दण्डु** (प्राप्य धन माँगना या वसूल करना), तुलु **दण्ड्युनि** (माँगने के लिए हाथ पसारना)—ये सारे रूप संस्कृत **दण्ड** का मूल अर्थ व्यक्त करते हैं और स्वयं उसी शब्दमूल से जुड़े हुए हैं जिसका आदि व्यंजन सघोष महाप्राण है और जिसके दो मूल अर्थ हैं, काम करना और हाथ। अंग्रेज़ी क्रिया **टेक** (लेना) इसी अघोष अल्पप्राण द्रविड़ शब्द-मूल से सम्बद्ध है। अंग्रेज़ी शब्द **टैक्स** का सम्बन्ध **टेक** क्रिया से है। **टैक्स** और **टास्क** (कार्य) परस्पर सम्बन्धित हैं।

अंग्रेज़ी **टास्क** का एक पुराना फ्रेन्च प्रतिरूप **ताश** है। तालव्य **श्** के **स्क्** रूप में ग्रहीत होने पर फ्रेन्च में ही दूसरा रूप **तास्क** है। **ताश** रूप में देखा जा सकता है कि काम करने के अर्थ में **ता** क्रिया के साथ **श** प्रत्यय जोड़ा गया है। **धस्-दस्-तस्** प्रक्रिया

से भी **तास-ताश** रूप प्राप्त हो सकता है। **तक्ष और तक्षन्** में **तस्** विद्यमान है। यह **धस्त** की उसी **धस्** क्रिया का अघोष अल्पप्राण रूप है। हाथ से कारीगरी के सारे काम होते हैं, अतः कारीगर के लिए **तक्षन्** शब्द का प्रयोग होने लगा। **तस्-तश्-तक्** क्रिया में **स** प्रत्यय जोड़ा गया। इस तरह **तक्ष** शब्द का निर्माण हुआ। बढ़ई का काम कुछ गण समाजों में बहुत महत्वपूर्ण रहा होगा, इसलिए इस शब्द का प्रयोग कारीगर विशेष के लिए होने लगा। ग्रीक भाषा में उसका सम्बन्ध सामान्य कौशल से है; **तॅख्ने** अर्थात् कौशल, **तॅख्नितेस्** अर्थात् कलाकार, कारीगर। यह शब्द फ्रेन्च से होता हुआ अंग्रेज़ी में **टेकनीक्** बना; उसके आधार पर अब हिन्दी में भी **तकनीक, तकनीकी** शब्दों का प्रयोग होने लगा है। उसी **धस्** क्रिया के सघोष रूप **दस्** से बनने वाले **दक्ष** शब्द में वही कौशल वाला भाव है। **दाक्षिण्य** का अर्थ कौशल या चतुराई हुआ। कारीगरी के काम दाहने हाथ से किये जाते थे, इसलिए **दक्षिण** शब्द का प्रयोग दाहने हाथ के लिये किया जाने लगा। सूर्य की ओर मुँह करके खड़े होने पर दाहने हाथ की तरफ जो दिशा थी, उसे **दक्षिण** नाम दिया गया।

संख्यावाचक शब्दों के निर्माण में हाथ वाले शब्द की महत्वपूर्ण भूमिका है। एक हाथ में पाँच उँगलियाँ, दोनों में मिलाकर दस। हिन्दी में जो **दस** है, वह पश्तो में **लस्** है। पश्तों में इस शब्द के दोनों अर्थ हैं : **लस्** माने दस और **लस्** माने हाथ। **दस** और **लस्** में उसी तरह का ध्वनि सम्बन्ध है जैसा हिन्दी **देवर** और पश्तो **लेवर्** में। इस भाषा में दस और हाथ, दोनों के लिए **लस्** का प्रयोग होने से संस्कृत **दश** के मूल अर्थ का ज्ञान होता है।

संस्कृत में हाथ के लिए एक दूसरा शब्द है **पाणि**। इसे **पण्** क्रिया से सिद्ध किया जाता है जिसका एक अर्थ खरीदना, बेचना, विनिमय करना और मोल-भाव करना है। शब्द का यह मूल अर्थ नहीं है। मूल अर्थ है काम करना और यह अर्थ द्रविड़ भाषाओं में सुरक्षित है : तमिल **पण्** (कर्म), **पणि** (क्रिया), **पणदि** (कौशल, अलंकार), **पणिदि** (निर्मिति), **पणिक्कन्** (उस्ताद कारीगर, बढ़ई), **पणिनर्** (सेवक), **पण्णु** (बनाना, अलंकृत करना); मलयालम में **पणि** (श्रम), **पणिक्कन्** (कारीगर), **पणियुग** (निर्माण करना)। कन्नड़, तेलुगु, तोद, तुलु आदि भाषाओं में इस शृंखला के शब्द-मूल का व्यापक व्यवहार होता है, प्रथम वर्ण में सर्वत्र अकार है केवल तोद में ओकार है। एक द्रविड़ भाषा गदब है जिसमें इसी शृंखला का एक शब्द **पन्ड्** है जिसका अर्थ है योग्य होना, सक्षम होना। यह रूप उसी शृंखला का है, इसका प्रमाण पजि भाषा का **पन्ड्प्, पन्ड्त्** शब्द है जिसका अर्थ है करना, बनाना। संस्कृत शब्द **पण्डित** उसी शब्द-मूल **पण्** से सिद्ध करना चाहिए। पण्डित मूलतः वह नहीं है जो पुस्तकें पढ़ता है वरन् वह है जो हाथ से काम करने में कुशल है। **हस्त** वाली शृंखला में जो स्थिति **दक्ष** की है, वही स्थिति **पाणि** वाली शृंखला में **पण्डित** की है।

हाथ से लेन-देन का काम होता है, अतः **पण्य** उसे कहेंगे जो बेचा या खरीदा जाय। इसका एक अर्थ वह स्थान भी है जहाँ क्रय-विक्रय का यह कार्य किया जाता है, प्रतिष्ठान या दूकान। इसी शब्द-मूल का आदि वर्ण जब सघोष होता है तब उससे

बणिज् शब्द बनता है; जो क्रय-विक्रय का काम करे वह **बणिज्**। वणिज् का **व्** **ब्** का रूपान्तर हो सकता है, **प्** का भी। भारत का बनिया अपनी कंजूसी के लिए वैदिक काल से विख्यात रहा है। संस्कृत में **पणि** का एक अर्थ कंजूस, बहुत मोल-भाव करने वाला व्यक्ति भी है। **ऋग्वेद** में यही पणि अपने खजानों पर मँडराते रहते हैं, ऋषियों को उनकी झलक भी मिलने नहीं देते। जिस **पणि** का अर्थ श्रमिक था, वह अर्थ-विकास की इस प्रक्रिया के दूसरे छोर पर पहुँचकर मूल अर्थ का बिल्कुल उलटा हो गया—कंजूस जो खुद काम न करे और पैसा बटोरकर उसकी रखवाली करता रहे।

इसी शृंखला में द्रविड़ भाषाओं के अन्य शब्द हैं। तमिल **पडु** (करना), **पडइ** (निर्माण करना), **पाडु** (उद्योग), मलयालम **पडुक्कु** (पकड़ना, पाना), **पडॅक्क** (बनाना, रचना), पर्जि **पड्** (प्राप्त करना), कन्नड़ **पडि** (पाना), **पाडि** (योग्यता), तेलुगु **पाडु** (कर्म, श्रम)। **पण्** के समानान्तर **पड्** शब्द-मूल से भी द्रविड़ भाषाओं में व्यापक रूप से शब्द बनते हैं और उनका व्यवहार होता है। सम्भवत: **ण्** के रूपान्तर **ड्** से यह शब्द-मूल बना है। **पण** और **पड्** मूलत: एक होंगे।

ग्रीक भाषा में **पओमइ** (पाना), **पॉनेओ** (कठिन श्रम करना), **पोनोस्** (कठिन श्रम) सीधे उसी शब्द-मूल **पन्** से बने हैं। ग्रीक भाषा में ही **प्रास्सो** (काम करना), **प्राक्सिस्** (क्रिया), **पोलॅउओ** (बेचना), **पोलेस्** और **पोलेतेस्** (विक्रेता) इसी शृंखला में आते हैं। **पोन्** और **पोल्** एक ही शब्द के प्रतिरूप हैं। इनमें **पोल्** वाले रूप से ग्रीक शब्द **पलामे** बनता है जिसका अर्थ है हाथ, हथेली, हाथ से बनाई हुई चीज, हाथ जिससे काम ले वह औजार। लैटिन भाषा में इसी का प्रतिरूप **पल्मा** (हाथ) है। अंग्रेजी शब्द **पाम** (हथेली) इसी लैटिन शब्द का प्रतिरूप है; वर्तनी में **ल्** लिखा जाता है, उच्चारण में उसका लोप कर देते हैं।

संस्कृत **भाण्ड** के अनेक अर्थ हैं: वर्तन, औजार, अलंकार, माल, पूँजी, खजाना। **पण्** शब्द-मूल से बनने वाले रूप जिस तरह के अर्थ देते हैं, उसी तरह के अर्थ **भाण्ड** शब्द से प्राप्त होते हैं। **भाण्ड** शब्द संस्कृत की किस क्रिया से बना है, कोषकारों को इसका निश्चय नहीं है। यदि **धा** वाली शृंखला पर विचार करें तो **भा** अथवा **भन्** जैसी क्रिया के अस्तित्व पर विश्वास हो जाता है। **धन्** क्रिया से व्युत्पन्न **धन** शब्द का जो अर्थ है, वही **भाण्ड** शब्द का भी है। और दोनों का मूल अर्थ है काम करना।

प्राचीन समाज में मनुष्य के काम आने वाली एक महत्वपूर्ण वस्तु है, मिट्टी का घड़ा। **भाण्ड** का सर्वाधिक प्रचलित अर्थ यही रह गया। कन्नड़ **बान्** का अर्थ बनाना है, हर तरह की चीज बनाना नहीं, कुम्हार की तरह बनाना **बान्** है। इसी का अन्य कन्नड़ प्रतिरूप **बाम्ब** है जिसका अर्थ है वर्तन बनाना। तेलुगु में इसी का प्रतिरूप **वानु** है। तमिल **पानइ** माने बर्तन। बर्तन बनाने के साथ कारीगर उन पर चित्रकारी भी करते थे। तमिल **वनइ** (निर्मित करना, चित्रित करना) **पानइ** से सम्बद्ध है। द्रविड़ कोषकारों ने **वनइ** के प्रसंग में आर्य भाषाओं के **बन्नु, बनाउनु** शब्दों को, टर्नर का हवाला देते हुए, बहुत सही याद किया है। इनमें हिन्दी **बनाना** भी जोड़ देना चाहिए। यह शब्द-मूल **भन्** का प्रतिरूप है जहाँ आदि स्थानीय वर्ण सघोष तो बना रहा किन्तु अल्प-

प्राण हो गया। संस्कृत और ग्रीक भाषाओं में अघोष अल्पप्राण प् वाले रूप का व्यापक व्यवहार सिद्ध करता है कि वैदिक भाषा समेत इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं के निर्माण काल तक एक लम्बी अवधि बीत चुकी है जिसमें सघोष महाप्राण ध्वनियों वाली प्राचीन आर्य भाषाएँ अघोष अल्पप्राण द्रविड़ भाषाओं के सम्पर्क में आती रही हैं और दोनों समुदाय एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं। मूल रूप **धा** और **धन्** की तरह **भा** और **भन्** हैं। द्रविड़ भाषाएँ इन शब्द-मूलों को अपनाकर, अघोष अल्पप्राण रूप में, उनका व्यापक व्यवहार करती हैं। संस्कृत में सघोष महाप्राण ध्वनियों वाले मूलरूप जहाँ-तहाँ सुरक्षित हैं। ग्रीक, लैटिन आदि में केवल द्रविड़ पद्धति वाले रूप प्राप्त हैं।

हाथ के लिए एक तीसरा शब्द है **कर**। करने वाली क्रिया में यही शब्द है और टैक्स के अर्थ में उसका व्यवहार होता है। वर्ण-संकोच से प्राप्त रूप से **क्रय विक्रय** शब्द बनते हैं। तमिल में **कइ** का अर्थ है हाथ; आदि स्थानीय व्यंजन के तालव्यीकरण से **चॅय्** रूप प्राप्त होता है, उसका अर्थ है करना। केवल तमिल, मलयालम, और तेलुगु में **च्** वाले रूप हैं, द्रविड़ कोश में अन्य भाषाओं से जो शब्द दिये गये हैं, वे सभी **क्** या **ग्** से आरम्भ होते हैं। इनमें कुइ के दो रूप **किव** और **गिव** दिलचस्प हैं। दोनों का अर्थ है करना। जैसे **दा** क्रिया का अर्थ देना है, करने वाला मूल अर्थ लुप्त हो गया है, वैसे ही अंग्रेज़ी **गिव्** का अर्थ देना ही रह गया है, करने वाला अर्थ लुप्त हो गया है।

कइ का अन्य प्रतिरूप तमिल **कॉळ्** है; अर्थ है पाना, पकड़ना, खरीदना, सीखना। **कॉळ्वोन** (ग्राहक); **कॉण्डल्** (प्राप्ति), **कॉणा** (लाना, लेना), **कोळ्** (लेना, प्राप्त करना), **कोळि** (प्राप्तकर्त्ता), **कोडल्** (लेना, खरीदना, शिक्षा पाना); यह शृंखला अधिकांश द्रविड़ भाषाओं को सम्बद्ध करती है। तेलुगु में **काडु** का अर्थ सेवक है। कोलमि में **कॉद, कॉदर्**, कुइ में **कॉड** जैसे रूपों से ज्ञात होता है कि त-वर्गीय स्पर्श ध्वनि के परिवर्तन से **ड्, ल्, न्** वाले रूप प्राप्त हुए हैं।

ग्रीक भाषा में **खॅइर्** के दो अर्थ हैं, हाथ और कौशल; **खॅइरॉओ** अर्थात् हाथ में लेना, किसी वस्तु पर अधिकार करना; **खॅइरोम** अर्थात् हाथ का काम, हिंसक कार्य। मनुष्य हाथ से दूसरे का पालन करता है और हाथ से ही दूसरे को मारता है। पालन और संहार के विरोधी अर्थ एक ही शब्द-मूल से प्राप्त होते हैं जिसका सम्बन्ध हाथ से है। ग्रीक शब्द महाप्राण ध्वनि से आरम्भ होते हैं। यह महाप्राणता आर्य-द्रविड़ शब्दों के आदि-स्थानीय व्यंजन में नहीं है। यह मानने का पर्याप्त कारण है कि **भाण्ड** और **धन** की शृंखलाओं के समान एक **घट** और **घन्** वाली शृंखला भी है। संस्कृत क्रिया **हन्** इसी **घन्** का प्रतिरूप है। जैसे ग्रीक **खॅइरोम** का एक अर्थ हिंसक कार्य है, वैसे ही **घन्** का सम्बन्ध हाथ से है और उसका एक अर्थ मारना है। संस्कृत क्रिया **घट्** का अर्थ है निर्माण करना, सेवा करना, श्रम करना, व्यस्त रहना। जैसे **भन्** क्रिया से **भाण्ड** बनता है, वैसे ही **घट्** क्रिया से **घट** (घड़ा) बनता है। **घट** का अर्थ प्रयत्न और एक प्रकार की तौल भी है। **घटक** अर्थात् कुशल, **घटित** अर्थात् निर्मित, नियोजित। मराठी क्रिया **घेणें** का अर्थ लेना, पकड़ना और मारना है। यह मारने वाला अर्थ **घन्** में है। इसी **घन्** का एक ग्रीक प्रतिरूप **थॅइनो** है, अन्य रूप **फोने, फोनोस्** है जिसका अर्थ है हत्या। एक क्रिया **फेनो**

भी है जिसका अर्थ है वध करना। **थ्** और **फ्** वाले दोनों रूप संस्कृत **घन्** क्रिया के **घ्** के रूपान्तरण हैं। **घन्** या **घत्** रूप से लैटिन **कैदेस्** (हत्या, वध) आदिस्थानीय अघोष अल्पप्राण ध्वनि वाला रूप बनता है। लैटिन क्रिया **हर्पाजो** का अर्थ है किसी को पकड़कर बलात् उस पर अधिकार करना। यहाँ शब्द के आदि वर्ण का ह् सीधे संस्कृत **घत्-घर्** के घ् का सीधा रूपान्तरण हो सकता है। इसी क्रिया से ग्रीक शब्द **हार्पे** बनता है जिसका अर्थ एक प्रकार का हिंसक पक्षी है। यह पक्षी वाला अर्थ उस मूल क्रिया से वैसे ही प्राप्त होता है जैसे संस्कृत **गृध्र** (गिद्ध) पक्षी विशेष के लिए प्रयुक्त होता है। अंग्रेज़ी शब्द **ग्रास्प्** (पकड़ना, प्राप्त करना) और **ग्रोप** (हाथ से टटोलना) का सम्बन्ध एक प्राचीन रूप **ग्राप्सॅन्** से है। मूल रूप **ग्रभ्** का भ् **ग्राप्सॅन्** का प्स् है। वर्ण-विपर्यय से **स्प्** ध्वनि **ग्रास्प्** में है। अंग्रेज़ी **ग्रैब्** (पकड़ना, हथियाना) में **ग्रभ्** के **भ्** की महाप्राणता लुप्त हुई है; **ग्रिप्** (पकड़) में महाप्राणता और सघोषता दोनों का लोप हुआ है। लिथुआनियन **ग्रइबिति** (पकड़ना, अधिकार करना) अंग्रेज़ी **ग्रैब्** के समान **ग्रभ्** से व्युत्पन्न है। **ग्रभ्** का **ग्र** या **गर्** और **कर्** क्रियामूल सम्बद्ध लगते हैं।

जैसे **धा** का एक अर्थ निर्माण करना है और जब यह निर्माण कार्य विशिष्ट होता है, तब **धाम** का अर्थ वह विशेष निर्माण कार्य होगा जो मनुष्य अपने रहने के लिए करता है, वैसे ही **गर्** क्रिया का एक अर्थ निर्माण करना था, उसी का विशिष्ट हुआ अर्थ घर बनाना। इसलिए **गर्भ** का अर्थ हुआ रहने का स्थान, घर। इसी का ग्रीक प्रतिरूप **देल्फोस्** है।

कर् का एक सहज प्रतिरूप **कल्** होगा। द्रविड़ भाषाओं में **कल्** अत्यन्त महत्वपूर्ण क्रिया है। इसका अर्थ है सीखना, अभ्यास करना, कुशल होना। द्रविड़ भाषाओं में इसका व्यापक प्रसार है। **कल्** वाले रूपों के साथ **कर्** वाले रूप भी काफी संख्या में हैं और कभी-कभी एक ही भाषा में मिलते हैं। इनके अतिरिक्त कोत और तोद भाषाओं में **कत्** जैसे रूप **र्** और **ल्** को **त्** या **द्** का परिवर्तित रूप सिद्ध करते हैं। संस्कृत शब्द **कला** स्पष्ट ही इस **कल्** क्रिया से बना है। **कला** उसे कहेंगे जो हाथ से की जाती है। करना क्रिया से जो सम्बन्ध कारीगर और कारीगरी शब्दों का है, वही सम्बन्ध **कल्** क्रिया से तमिल **कलइ** और संस्कृत **कला** का है। आदि वर्ण में ओकार होने पर **कॉल्** शब्द कारीगर विशेष के लिए अनेक द्रविड़ भाषाओं में प्रयुक्त होता है। तमिल **कॉल्** अर्थात् लुहार, कन्नड़ **कॉलिमॅ** अर्थात् लुहार की भट्टी। द्रविड़ भाषाओं के **कल्** और **कॉल्** (कारीगर) का सम्बन्ध लैटिन **स्कोल** (अध्ययन को दिया हुआ समय, व्याख्यान, विवाद, अध्ययन का स्थान) से नहीं है, यह कहना कठिन होगा। अंग्रेज़ी **स्कूल** लैटिन **स्कोल** का प्रतिरूप है और इन दोनों का सम्बन्ध तमिल **कल्** और संस्कृत **कला** से होना चाहिए।

हाथ के लिए एक लैटिन शब्द है **मनुस्**। संस्कृत **मनु** और **मनुष्य** का सीधा सम्बन्ध इस **मनुस्** से है। सम्भवतः यह शब्द **पन्** या **पण्** के रूपान्तर **मन्** से बना है। जैसे तमिल **पॉक्कणम्** का प्रतिरूप **मॉक्कणि** (झोली) है, वैसे ही **पन्** का प्रतिरूप **मन्** है। लैटिन **मनुस्** संस्कृत **पाणि** का जोड़ीदार है। पुरानी जर्मन में **मुन्ड्** का अर्थ हाथ, रखना, छीनना, देना आदि था। निर्माण शब्द में **मा** क्रिया इसी **मन्** का प्रतिरूप है।

हाथ से निर्माण करने के अलावा आदमी नाप-जोख का काम भी करता है। संस्कृत क्रिया **मा** का अर्थ हुआ नापना; उसी से **माप** और **नाप** शब्द प्राप्त हुए। **मात्रा** और **मिति** के समान ग्रीक भाषा में **मेत्रोन्**, लैटिन में **मेन्सुरा**, अंग्रेज़ी में **मेझर** शब्द उसी मूल रूप से बनते हैं। संस्कृत में जैसे **पण** शब्द जुआ खेलते समय दाँव के लिए प्रयुक्त होता है, वैसे ही लैटिन में **मनुस्** शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। हाथ से किये जाने वाले बहुत से काम हैं। इनमें जो काम प्राचीन गण समाजों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण थे, उन सबके आशय लैटिन **मनुस्** से प्राप्त होते हैं। हाथ के अलावा श्रम, कारीगरी, वीरता, युद्ध और हिंसा के अर्थ भी इस शब्द से सम्बद्ध हैं। संस्कृत **मनु** शब्द का सहज अर्थ होगा वीर। **मनुज** और **मनुष्य**, वीर वाले अर्थ के द्योतक, **मनु** से निर्मित होते हैं। अंग्रेज़ी **मैन** इसी **मनु** का भाईबन्द है। अंग्रेज़ी **मेक** (बनाना) संस्कृत **मा** का प्रतिरूप है। इसी के अनुरूप जर्मन **माख़ॅन्** है जिसका अर्थ है बनाना।

यह **मन्**, **मा** वाली क्रिया द्रविड़ भाषाओं में व्यापक रूप से प्रयुक्त होती है। तमिल **मण्णु** माने करना, किसी वस्तु को अलंकृत करना; **मनइ** अर्थात् निर्माण करना, रचना; मलयालम **मनयुग, मनियुग** अर्थात् मिट्टी के बर्तन बनाना। तमिल और मलयालम में **मण्** का अर्थ है मिट्टी, संसार। संसार वाले अर्थ का सम्बन्ध मण्णु (रचना) क्रिया से है; मिट्टी वाले **मण्** से करने, बनाने का अर्थ देने वाली क्रिया का उद्‌भव नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त **मण्** और **मन्** के साथ करने, बनाने के अर्थ में **मा** क्रिया पर भी ध्यान देना चाहिए। मलयालम **मनयुग** क्रिया का सम्बन्ध कुम्भकार के पेशे से है, यह भाण्ड और घट वाली अर्थ शृंखलाओं के अनुकूल है। तमिल **मडा, मिडा** का अर्थ है घड़ा। कन्नड़ **मडकॅ, मडिकॅ** हिन्दी **मटका** का ही प्रतिरूप है। **भाण्ड** और **घट** के समान **मटका** में निर्मिति-भाव प्रधान है। मूलतः उसके अर्थ का संसर्ग मिट्टी से नहीं है। मराठी में हिन्दी **ट्** के स्थान पर **ड्** है: **मड्की, मड्के**। तमिल **मट्टम्** का वही अर्थ है जो **मिति** और **मात्रा** का है; **मट्टु** अर्थात् मात्रा, परिमाण। कन्नड़ और कुछ अन्य द्रविड़ भाषाओं में **मट्ट** शब्द बढ़ई, या थवई के गज के लिए प्रयुक्त होता है। तेलुगु में **मट्टु** का अर्थ मात्रा के अतिरिक्त सीमा भी है। **धाम** के अनुरूप तमिल **मनइ** का अर्थ है आवास, और **मनइ** धरती की एक विशेष नाप को भी कहते हैं। मलयालम **मन**, कन्नड़ **मनॅ** का अर्थ है भवन। इसी शृंखला में तमिल **मन्रु** (सभाभवन), **मन्रम्** (शाला, बड़ा कमरा) हैं; इनके साथ एक अन्य **मन्रु** है जिसका अर्थ है दण्ड देना, जुर्माना करना। इस अन्तिम शब्द का सम्बन्ध **मन्** से वैसे ही है जैसे **कर** और **दण्ड** का है। आवास वाले अर्थ से भवन में रहने के अर्थ का विकास होता है और रहने से जीने वाले अर्थ का। तेलुगु **मन** अर्थात् रहना, जीना, और इसका एक अर्थ काम करना भी है; **मनुकुव** अर्थात् भवन, **मनुगड** अर्थात् जीविका, जीवन। जैसे **पा** वाली क्रिया हाथ से सम्बन्धित होने के कारण पालन करने का अर्थ देती है, उसी प्रकार तेलुगु **मनुचु, मनुपु** का अर्थ है पालन करना, रहना, जीना, होना। आधुनिक जीवन में ये सब अलग-अलग विशिष्ट क्रियाएँ हैं किन्तु प्राचीन गण-समाजों के मनुष्य के लिए इनमें विशेष अन्तर नहीं है। अतः पर्जि **मॅन्** का अर्थ है होना। कोन्ड **मन्**, कुइ **मन्ब** कुड़ुख **मन्ना**, मल्तो **मॅनॅ**, ब्राहूइ **मन्निङ्ग**—

सभी का अर्थ है होना। **मन्** के इस अर्थविस्तार से संस्कृत क्रिया **भू** की तुलना करना चाहिए। इसका अर्थ है होना, जीना। **भू** के ही **भव्** रूप का अर्थ जन्म लेना, अस्तित्व में आना है किन्तु **भवन** शब्द का सम्बन्ध जन्म लेने से नहीं है, निर्माण से है। **भवन** का एक अर्थ जन्म, अस्तित्व में आना भी है, किन्तु यहाँ उसके सामान्य अर्थ की बात है। **भवन** का एक प्रतिरूप **भुवन** है। इन शब्दों से ज्ञात होता है कि **भू**, **भुव्**, **भव्** आदि का सम्बन्ध निर्माण करने से था। **भुवन** शब्द का एक अर्थ संसार है, जिसमें मनुष्य रहता है। अतः **भूमि** शब्द का अर्थ भी हम कर सकते हैं, वह स्थान जहाँ मनुष्य रहता है। जैसे तमिल **मण्** का अर्थ है धरती, जगत्, उसी प्रकार **मिट्टी** का मूल अर्थ हुआ संसार, धरती। कन्नड़ **मन्वि**, **मन्दं**, तुलु **मन्दि**, **मन्दे**, तेलुगु **मन्वि**, कोलमि **मन्दी** आदि का अर्थ है मानव-समुदाय। इसी प्रकार संस्कृत **भुवन** का एक अर्थ है मनुष्य, मानव-जाति। संस्कृत **धाम** का एक लैटिन प्रतिरूप **होमो है**, **होमो** का वही अर्थ है जो **भुवन** का है मानव-समुदाय, मनुष्य। इसी से **हमानुस्** (अंग्रेजी **ह्यूमैन्**) शब्द सम्बद्ध है। द्रविड़ भाषाओं में **मण्** का रूपान्तर **नण्** भी है। तमिल **नण्णु** (करना), कुड़ुख **नन्ना**, मल्तो **ननें** अर्थात् काम करना। जैसे हाथ से सम्बन्धित संस्कृत **घन्** क्रिया का अर्थ नाश करना है, वैसे ही तमिल **नडु** (नाश करना), **नन्दु** (नष्ट होना), **नुडु** (मिटाना), **नॉडु** (बुझाना, नाश करना), **नॉन्दु** (नष्ट होना), कन्नड़ **नुन्दिसु**, **नॉन्दिसु** (बुझाना), **नन्दु**, **नुन्दु**, **नॉन्दु** (बुझना, मिटना) आदि शब्द हैं।

तमिल **मण्** (जगत्) से लैटिन **मुन्दुस्** तुलनीय है जिसका वही अर्थ है संसार। इसी का फ्रान्सीसी प्रतिरूप **मोंद** है।

द्रविड़ भाषाओं में **मा** क्रिया भी प्रयुक्त होती रही है : मलयालम **माडुक** (निर्माण करना), कोत **मार्** (करना), कन्नड़ **माडु** (करना), कोडगु **माड्** (करना), भवन वाला अर्थ तमिल **माडम्** से प्राप्त होता है। कन्नड़ **माड** (इमारत), कुडगु **माडि** (अटारी), तेलुगु माडुगु (ऊँची इमारत) शब्द इसी निर्माण वाली शृंखला में आते हैं। द्रविड़ व्युत्पत्तिकोशकारों ने यहाँ संस्कृत **माडि** शब्द का स्मरण किया है जिसका अर्थ है प्रासाद। इसके साथ ही **माड्** का अर्थ है नापना, और **माड** अर्थात् मात्रा, एक नाप। तेलुगु **मेड** (कई मंजिलों वाला मकान) उसी शब्द का एकार वाला रूप है और इसके साथ द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में संस्कृत **मेट** शब्द का उल्लेख है जिसका अर्थ है पुता हुआ कई मंज़िलों का भवन। इसी शृंखला में संस्कृत **माया** शब्द स्मरणीय है। इसका एक अर्थ है **कौशल**। जैसे कौशल का एक अर्थ ऐसी कारीगरी है जो समझ में न आये, वैसे ही **माया** का एक अर्थ जादू है। माया के इस अर्थ से कन्नड़ **माड**, मलयालम **माट्टम्**, **माट्टु**, तुलु **माड** आदि तुलनीय है, इन सभी का अर्थ है जादू। **माया** का सम्बन्ध **मय** से भी है जो **मघ-मग** का रूपान्तर है। निर्माणसूचक **माया** और मग-सम्बन्धी **माया** दोनों एकाकार हो गईं; दोनों अर्थों की जगह फिर जादू और भ्रान्ति का अर्थ ही प्रमुख बन गया।

२. पो, पद, पवन

द्रविड़ भाषाओं की एक व्यापक रूप से प्रचलित क्रिया **पो** है। इसका अर्थ है जाना। इसमें ओकार है किन्तु अनेक शब्दों में अकार-इकार हैं। जाने और चलने से रास्ते का गहरा सम्बन्ध है। तमिल **पो** क्रिया के साथ **पोक्कु** शब्द भी जाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है (किसी को जाने के लिए प्रेरित करना) और उसका एक अर्थ है मार्ग। इसी शृंखला में कोत भाषा का **ओयणार्** शब्द दिया गया है और इसका भी वही अर्थ है—मार्ग। द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में यहाँ तोद **ओर्** और तमिल **आरु** का उल्लेख है। सम्भव है, **प्** के **व्** में परिवर्तित होने पर और **व्** के लोप होने पर ऐसे रूप बने हों। कन्नड़ **पादि, हादि** का अर्थ है पथ, और यहाँ कोत भाषा के एक अन्य शब्द का उल्लेख है **आदारि** (पथ)। तमिल **पाय्** का अर्थ दौड़ना, उछलना है और कन्नड़ **पादि** का सम्बन्ध कन्नड़ की ही **पाय्** क्रिया से जोड़ा गया है। **पादि** जैसा शब्द जिस **पा** क्रिया से बना है, वह **पो** का प्रतिरूप है और उसका अर्थ होगा चलना। इस शृंखला में कोलमि, नइकि, पर्जि, आदि भाषाओं का **पाव्** शब्द ध्यान देने योग्य है; इसका भी अर्थ है मार्ग। कुड़ुख में इसका **पाब्** रूप है। तमिल **पुऴइ** (पथ), तेलुगु **पुन्द**, पशुओं की राह, कन्नड़ **पॉऴ्** (मार्ग) **पो** क्रिया से सम्बद्ध हैं। **पु** क्रिया **पो** का ही रूपान्तर है। **पिऴ्** क्रिया का अर्थ काटना, विभाजित करना है किन्तु कोत **पिळ** (पथ), तोद **पिऴ्** (झाड़ियों के बीच से राह) उसी **पो** क्रिया के अन्य रूप **पि** से सम्बद्ध हैं। तमिल **परि** का अर्थ है भागना। इस शृंखला के शब्दों के साथ तुलु भाषा का **परि** (पथ) शब्द देते हुए द्रविड़ व्युत्पत्ति कोशकारों ने एक प्रश्नचिह्न लगा दिया है। इसका सम्बन्ध **पत्** क्रिया से है जो मूलतः गतिसूचक है। **पत्-पर्-पो**, यह विकास सम्भव है।

संस्कृत **पथ**, अंग्रेजी **पाथ**, रूसी **पुत्**, ग्रीक **पतोस्**, सभी मार्ग के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। इनकी आधार क्रिया **पत्** हो सकती है, **पो, पा, प** भी। संस्कृत **पद** एक नया अर्थ देता है, वह वस्तु जिसके द्वारा मनुष्य चलता है (जैसे **पथ** वह वस्तु है जिस पर मनुष्य चलता है)। ग्रीक **पॉउस्**, लैटिन **पॅस, पॅदिस्** अंग्रेजी **फुट** उसी **प** क्रिया से निर्मित होते हैं। संस्कृत **पवन** एक तीसरा अर्थ देता है, **पवन** वह जो सदा चला करे। इस शब्द को सिद्ध करने के लिए **पू** (पवित्र करना) से इसे सम्बद्ध किया जाता है। संस्कृत में एक अन्य क्रिया **पव्** भी है जिसका अर्थ है जाना। जाने-आने का अर्थ देने वाले अन्य शब्दमूलों से भी वायु का अर्थ देने वाले शब्द बनते हैं, यह देखते हुए **पवन** का सम्बन्ध **पव्** से जोड़ना चाहिए और यह **पव् पो** का ही प्रतिरूप है। **पो** क्रिया का व्यवहार नाग भाषाओं में भी होता है; इसे भारत की अत्यन्त प्राचीन और सर्वाधिक व्यापक रूप से प्रयुक्त क्रिया मानना चाहिए।

तमिल **पॉळि** का अर्थ है प्रवाह; मलयालम **पॉळि** अर्थात् बौछार; कोद **पॅय्वेर्**, पर्जि **पॅरॅद्**, मलयालम **पुऴ**, कोत **पॅय्**, तोद **पाव्**, कन्नड़ **पॉळे**—ये सभी शब्द नदी-वाचक हैं। जैसे संस्कृत **सर्** का अर्थ चलना है और उससे नदी वाचक शब्द **सरिता** बनता है, वैसे ही **पा, प, पॅ** आदि क्रियाओं से जल और नदी सूचक शब्द बनते हैं। **पय** शब्द नाग भाषाओं में भी मिलता है; संस्कृत में इसका अर्थ जल है। इटली की

प्रसिद्ध **पो** नदी भारतीय **पो** क्रिया का जल सूचक अर्थ देती है। द्रविड़ भाषाओं में आने के लिए **वर्** अथवा **वा** क्रिया का प्रयोग होता है। यह क्रिया **पर्** अथवा **पो** का ही प्रतिरूप जान पड़ती है और **पर्** स्वयं **पत्** का रूपान्तर हो सकती है। द्रविड़ भाषाओं में **प्** के स्थान पर **व्** का व्यवहार सामान्य बात है। पुनः **पत्** और **पर्** के मूल रूप **भत्** और **भर्** हो सकते हैं जिनसे **भ्रम** और **भटकने** का सम्बन्ध है। आना और जाना एक ही प्रकार की गति के दो भिन्न रूप हैं। **गम्** का **गो** रूप अंग्रेजी में जाने के लिए प्रयुक्त होने लगा; दूसरा रूप **कम्** आने के लिए प्रयुक्त हुआ। उसी प्रकार द्रविड़ भाषाओं में **पो** और **वा** में अर्थ भेद किया गया। मलयालम **पोरुग** का अर्थ आना और जाना दोनों है। कन्नड़ में तमिल **वरु** के प्रतिरूप **बर्, बार्, बा, बन्द्** (आना) हैं। ब्राहूइ में **ब, बन्निग्** (आना) कन्नड़ के समान **ब्** से आरम्भ होने वाले शब्द हैं। इनसे तुलनीय है ग्रीक रूप **बइनो** (जाना, चलना)।

वरु क्रिया से तमिल **वरबु, वारि** पथ-सूचक शब्द बनते हैं; तमिल **वळि**, कन्नड़ **बळि**, तेलुगु **वळुगु** आदि पथ के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जिस रास्ते पर बहुत लोग चलें वह समाज की रीति कहलायेगा। संस्कृत **रीति** का सम्बन्ध भी गति से है। उसी प्रकार तमिल **वाडिक्कइ,** कन्नड़ **वाडिगे** आदि का अर्थ सामाजिक चलन अथवा रीति है। अंग्रेजी शब्द **वे** का व्यवहार भी इस रूप में किया जाता है। उसका मूल अर्थ है मार्ग और वह उसी प्राचीन **वा** क्रिया से बनता है। लैटिन में इसका रूप **विआ, वॆआ** है; इसके साथ लैटिन में **वॆनिओ** (आना) क्रिया भी है जो लैटिन समुदाय की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त होती है किन्तु अंग्रेजी में नहीं है। लैटिन में एक क्रिया और है **ॲर्रो** जिसका अर्थ है भटकना। इसी से **ॲर्रोर्** (भ्रान्ति) शब्द बनता है। अंग्रेजी **ॲर्** और **एरर्** शब्द भटकने और भटकाव के लिए प्रयुक्त होते हैं। यह अर्थ विकास तमिल **बळु, वळुवु वळुम्बु** आदि भ्रान्ति सूचक शब्दों के व्यवहार से तुलनीय है। संस्कृत में **भ्रम** मूलतः चलने, घूमने वाली **भर्** क्रिया से व्युत्पन्न हुआ है। **पर्** और **वर्** इस **भर्** के रूपान्तर हो सकते हैं। **पो** के समान **वा** क्रिया से वायु और जलसूचक शब्द भी बनते हैं। तमिल **वळि**, कुइ **विलु**, गोंडी **वरि** आदि वायु के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। **विलु** जैसे रूप में **वि** क्रिया से तमिल **विण्डु** शब्द बनता है जिसका अर्थ हवा है। तमिल **विण्डु** और अंग्रेजी **विण्ड** के निर्माण और अर्थ विकास की प्रक्रिया बिल्कुल एक है। इसी शृंखला में तमिल **वीच्चु** (हवा का चलना), कोत **वीच्**, तेलुगु **वीचु**, कोडगु **बीज्** आदि उसी अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्द संस्कृत क्रिया **वीज्** से तुलनीय हैं। **व्यजन, वेग**, हिन्दी **बीजना**, रूसी **वेग्** और **वेगात्** (भागना), **द्विगात्** (गतिशील होना), **द्विझेनिए** (गति) इसी शृंखला में आते हैं। संस्कृत **वात, वायु,** फारसी **बाद**, रूसी **वेतेर्**—सभी **वा** क्रिया से सम्बद्ध हवा के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। उसी क्रिया से संस्कृत **वारि** जल-सूचक शब्द बना है। रूसी **वोद** (जल) में **पो** क्रिया का सीधा **वो** रूपान्तर विद्यमान है। संस्कृत में **व** के स्थान पर स्वर रह गया है; **उद, उदक** रूप जल के लिए प्रयुक्त होते थे। ग्रीक भाषा में इसी का **हुदोर्** (जल) रूप है। अंग्रेजी **वाटर्**, जर्मन **व्वासॅर्** उसी **वा** क्रिया से निर्मित हैं। अंग्रेजी **वॅट्** (भीगा), अवधी **ओद** या **बाद** (भीगा) का प्रतिरूप है। संस्कृत **उद** में नासिक्य

ध्वनि के निवेश से **उन्द** (लहर) शब्द बनता है। संस्कृत **ऊर्मि** गतिसूचक **ऋ** क्रिया से व्युत्पन्न माना जाता है । संस्कृत **अर्ण** का अर्थ लहर, नदी, धारा, जल-प्रवाह है । **अर्णव** शब्द समुद्र के लिए प्रयुक्त होता है । इटली की एक नदी का नाम लैटिन में **अर्नुस्** था जो अब इटैलियन में **आर्नो** कहलाती है । इस नाम का सम्बन्ध संस्कृत **अर्णव** से न हो तो आश्चर्य की बात होगी ।

तमिल **वजि** (जल), **वन्द** (नदी), **वार्** (बहना), **वारि** (नाली), **वळि** (प्रवाहित होना) **वा** क्रिया से सम्बद्ध शब्दों की शृंखला में आते हैं । **प्** की अपेक्षा **व्** रूप वाली क्रिया संस्कृत में अधिक प्रयुक्त होती है । **वी** का अर्थ निकट आना और दूर जाना दोनों हैं । **वीतराग** जैसे शब्दों में **वीत** शब्द दूर जाने के अर्थ में है । इसी से **वीथि** (पथ, पंक्ति), शब्द बनता है । तमिल **वीदि** संस्कृत वीथि का प्रतिरूप है । संस्कृत **व्रज्** (चलना), **वृत्** (जाना, घटित होना) **वर्** क्रिया से वर्णसंकोचन होने पर बनते हैं । **वर्त्मन्** (मार्ग) में **वर्त्** किया है जिसका मूल अंश **वर्** है । ग्रीक भाषा में **अएमि** क्रिया का अर्थ फूँकना, हवा का चलना है । भाषाविज्ञानी कहते हैं कि पहले यह रूप **वएमि** था । ग्रीक भाषा में **अएर्** (वायु) अंग्रेजी **एयर्** का पूर्व रूप है । **वएमि** के अनुरूप **वएर** से हिन्दी **बयार** तुलनीय है । **वरुण** का सम्बन्ध वारि से बना हुआ था; इन्हीं **वरुण** के ग्रीक प्रतिरूप **ऑउरोनोस्** थे ।

वा के समानान्तर संस्कृत में **या** क्रिया थी और **वा** की अपेक्षा इसका प्रयोग उसमें अधिक होता था । तमिल भाषा में नदी के लिए सामान्य शब्द **यारु** है । **य्** से आरम्भ होने वाले शब्द तमिल में इनेगिने हैं । **या** क्रिया से व्युत्पन्न **यारु** शब्द इस भाषा में प्रयुक्त हो, यह आर्य और द्रविड़ भाषाओं के पुरातन घनिष्ठ सम्बन्धों का परिणाम है । **य्** का लोप होने पर **आरु** रूप का प्रयोग भी होता है । कश्मीरी में **आर** नदी सूचक शब्द है । कश्मीरी और तमिल में नदी के लिए एक ही शब्द हो, यह तथ्य बहुत महत्वपूर्ण है । संस्कृत **यान** का एक अर्थ मार्ग है और दूसरा अर्थ वाहन है जिसके द्वारा मनुष्य कहीं जाता है । तमिल में इसी के प्रतिरूप **यानइ** और **आनइ** हैं जो हाथी के लिए रूढ़ हो गये हैं । संस्कृत **याम** का एक अर्थ मार्ग है । **यव** शब्द का अर्थ तेज रफ्तार है और **यवन** शब्द का अर्थ द्रुत गति अथवा तेज भागने वाला घोड़ा है । जिन लोगों को **यवन** कहा जाता था, वे सम्भवत: घुड़सवार आक्रमणकारी थे । **यवन** का ग्रीक प्रतिरूप **इओन्** है जो ग्रीक समुदाय के एक गण समाज का नाम था ।

वायु और जल के अतिरिक्त एक पदार्थ जो आदिम मानव को अपनी गति से प्रभावित करता था, वह समय था । **आयु** और **वायु** में विशेष अन्तर नहीं है; **व्** अथवा **य्** के लोप होने से **आयु** शब्द बनेगा । अनेक समय-सूचक शब्द उस क्रिया से बने हैं जिसका सम्बन्ध गति से है । संस्कृत **वार** माने समय, दिन । हिन्दी में **वार** शब्द दिन के लिए प्रयुक्त होता है, तमिल में सप्ताह के लिए । अवधी में समय अथवा अवकाश के लिए इसका प्रयोग अब भी होता है । **याम** शब्द का अर्थ मार्ग के अलावा समय का एक भाग प्रहर भी है । **यव** का अर्थ द्रुतगति के अलावा महीने का प्रथम पक्ष भी है । इसी के साथ **यव्य** शब्द महीने के लिए प्रयुक्त होता था । **समय** शब्द **अय्** क्रिया में **सम्**

उपसर्ग लगाने से बना। इसी का लैटिन समानार्थी **तेम्पुस्** है जिससे अंग्रेजी **टाइम** बना है। **अय्** क्रिया इ का प्रतिरूप है, **अय** अर्थात् गमन, **अयन** अर्थात् मार्ग, जाने का काम; **दक्षिणायन** और **उत्तरायण** मार्गों का नामकरण **अयन** के आधार पर हुआ। **अयन** का एक अर्थ है आधा वर्ष। इसके लैटिन प्रतिरूप **अन्नुस्** का अर्थ है वर्ष। इसी से अंग्रेजी का **ऐनुअल्** (वार्षिक) शब्द बनता है। अंग्रेजी **यिअर** (वर्ष) की व्युत्पत्ति पुरानी अंग्रेजी के **गेर** शब्द से बताई जाती है। वह भिन्न शब्द हो सकता है। जर्मन **यार्** (वर्ष) अंग्रेजी **यिअर्** के अधिक समीप है। नौर्वे की पुरानी भाषा में इसका प्रतिरूप **आर्** है। इसमें **य्** का लोप वैसे ही हुआ है जैसे नदी वाचक तमिल शब्द **आर्** में। संस्कृत शब्द **वर्ष** इसी प्रकार **वर्** क्रिया से बना है। यह क्रिया गमन और जल-प्रवाह दोनों के अर्थ देती है, अतः **वर्ष** में समय और जलवृष्टि दोनों के अर्थ हैं।

ग्रीक और लैटिन भाषाओं में एक **होरा** शब्द है जिसका अर्थ है वर्ष, ऋतु, वसन्त, दिन का कोई विशेष समय। समय वाचक शब्द जिस तरह की क्रियाओं से बनते हैं, वैसी कोई क्रिया ग्रीक और लैटिन में नहीं है जिससे **होरा** शब्द सिद्ध किया जा सके। द्रविड़ भाषाओं में ऐसी क्रियाएँ और उनसे व्युत्पन्न बहुत से शब्द हैं जिनसे **होरा** का सम्बन्ध है। **पो** क्रिया की शब्द शृंखला में तमिल **पॉऴ्दु, पोऴ्दु, पोदु** सूर्य और समय का अर्थ देते हैं। **द्** के स्थान पर **र्** और **पो** के स्थान पर **हो** का व्यवहार द्रविड़ समुदाय की कुछ भाषाओं के लिए सहज था। इस शृंखला के अन्य शब्द ध्यान देने योग्य हैं। समय वाचक तमिल **पॉऴ्दु** की शृंखला में कन्नड़ **पॉर्तु, पॉत्तु, हॉत्तु** रूप उल्लेखनीय है। वे **पॉर्** या **पॉऴ्** जैसे शब्द-मूल से **होरा** रूप की निर्माण-प्रक्रिया स्पष्ट करते हैं। यहाँ **वर्** क्रिया से व्युत्पन्न तमिल **वरइ**, मलयालम **वर**, कन्नड़ **वरि, वर** आदि की चर्चा करनी चाहिए जो समय-सूचक शब्द हैं। संस्कृत **वेला** इसी शृंखला में है; उसके लिए **वेल्** क्रिया की कल्पना की गई है। इस तरह की क्रिया प्रयुक्त होती थी, यह इस कारण माना जा सकता है कि तमिल **वर्** की प्रतिरूप **वल्** क्रिया कश्मीरी में अब भी प्रयुक्त होती है। **वेला** और **वरइ** दोनों शब्दों के साथ सीमा का अर्थ जुड़ा हुआ है। इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। मूल क्रिया गति-सूचक है, जहाँ वह गति समाप्त होती है, वह स्थान भी उसी क्रिया द्वारा व्यंजित किया जाता है।

समय-सूचक अनेक शब्दों का सम्बन्ध सूर्य से है। इसका कारण यह हो सकता है कि पृथ्वी जहाँ स्थिर जान पड़ती है वहाँ सूर्य चलता हुआ दिखाई देता है। अतः जो शब्द गति का अर्थ देता है वह समय और सूर्य दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकता है। तमिल **पगल्** (दिन, सूर्य), कोत **पोल** (समय) इस धारणा की पुष्टि करते हैं।

द्रविड़ भाषाओं के **काल्, कोल्, केल्** (पैर) रूपों का उल्लेख पहले हो चुका है। ये सब **का** या **गा** जैसी क्रिया से बनते हैं। संस्कृत में **गात्र** उस अंग को कहते हैं जिसके द्वारा गमन क्रिया सम्पन्न होती है। इसका मूल रूप हुआ **गात**। **ग्** को अघोष रूप में ग्रहण करने पर **कात** रूप बनेगा, फिर **त्—ल्** के परिवर्तन से **काल्** शब्द प्राप्त होगा। संस्कृत में **काल** शब्द समय के लिए प्रयुक्त होता है किन्तु उसका एक अर्थ मार्ग भी है। गीता के आठवें अध्याय में—

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥

भाष्यकारों के अनुसार यहाँ **काल** शब्द का अर्थ मार्ग है। तमिल **काल्** (प्रवाहित होना), **काल्** (वायु), **काल्** (नाली या नहर) अलग-अलग गिनाये गये हैं। वास्तव में वे एक ही क्रिया से निर्मित शब्द हैं जिसका अर्थ है चलना। पय् के जोड़ का तमिल **कयम्** (पानी, समुद्र, गहराई) है। कुवि **कॉड्ड** हिन्दी **गोड़** का प्रतिरूप है। कन्नड़ **गाळि**, तेलुगु **गालि** (वायु) तमिल **काल्** (वायु) के प्रतिरूप हैं। संस्कृत में नदी-सूचक **गंगा** शब्द है जो **गम्** क्रिया से बना है। **गंगा** का प्रतिरूप कश्मीरी और बँगला का **गाँग** है।

गा क्रिया से **गाड़ी** शब्द बनता है, गाड़ी वह साधन है जिससे आने-जाने का काम पूरा होता है। द्रविड़ भाषाओं में गाड़ी के लिए **पण्डि, वण्डि** आदि शब्द हैं। संस्कृत में इनका मूल रूप **भण्डि** है। जैसे **वर्** का प्रतिरूप **वन्** था जिससे तमिल **वन्दि**, लैटिन **वेनी** रूप बने, वैसे ही **भ्रम** और **भ्रमण** की **भर्** क्रिया का एक प्रतिरूप **भन्** था जिससे भण्डि शब्द बना। मोनियर विलियम्स ने **भण्डि** का गाड़ी वाला अर्थ नहीं दिया किन्तु उसका एक अर्थ लहर दिया है। संस्कृत में **र, ऋ** से **रथ** शब्द बनता है; उसके निर्माण की वही प्रक्रिया है जो **भण्डि** की है। तमिल **काल्** का एक अर्थ पहिया, गाड़ी है। कन्नड़ और तुलु **गालि** (पहिया) इसी के प्रतिरूप हैं। जो शब्द सामान्य गति के लिए प्रयुक्त होता है, वह एक ही जगह घूमने वाली विशेष गति के लिए भी प्रयुक्त होता है। इसलिए **काल्** माने प्रवाह, पैर, वायु और इनके साथ पहिया। यही बात हम **वर्** क्रिया के साथ देखते हैं। **वर्—वर्त्—वृत्**, घटित होने, एक स्थान पर घूमने के लिए प्रयुक्त होने वाली क्रिया है। इसी प्रकार संस्कृत **रथ** के लैटिन प्रतिरूप **रॉत** का अर्थ पहिया है और इसी से अंग्रेजी शब्द **रॉटेट** (घुमाना), **राउंड** (गोल) बनते हैं। द्रविड़ व्युत्पत्ति-कोश में **पण्डि** वाली शब्द श्रृंखला में तुलु भाषा से दो रूप दिये हैं, बण्डि और भण्डि। संस्कृत में **भण्डि** शब्द प्राप्त है, अतः यह माना जा सकता है कि इस भाषा में आर्य भाषाओं के प्रभाव से वैकल्पिक रूप में **बण्डि** के साथ **भण्डि** रूप भी स्वीकार किया गया है। जैसे **वन्** का प्रतिरूप **वर्** था, वैसे ही **गम्** का प्रतिरूप **गर्** था। इसके अघोष रूपान्तर **कर्** से अंग्रेजी **कार्ट** (गाड़ी) शब्द बना। द्रविड़ भाषाओं में इस अर्थ के सूचक अनेक शब्द गमन वाली क्रियाओं से निर्मित होते हैं यथा या माने चलना और यारु माने नदी। अतः धारा में **धा** क्रिया का अर्थ चलना, प्रवाहित होना हो सकता है।

संस्कृत अश्रु का ग्रीक प्रतिरूप दक्रु है, इसी का लैटिन प्रतिरूप द—ल के हेरफेर से लक्रुम, लक्रिम, लाक्रिम हैं। इन प्रतिरूपों को देखने से विदित होता है कि संस्कृत रूप अश्रु के आरम्भ में व्यंजन था जिसका लोप हो गया है। त या द का आदि स्थानीय लोप संस्कृत के लिए अस्वाभाविक है। अतः मानना चाहिए कि अश्रु का मूल रूप धश्रु है। आँसू उसे कहेंगे जो प्रवाहित होता है। तुलनीय है तमिल काल् जिसका एक अर्थ आँसुओं की तरह बहना है। यदि धस् जैसी क्रिया का व्यवहार यहाँ कभी होता था तो धसान किसी नदी का नाम क्यों रखा गया, यह बात आसानी से समझ में आ जाती है। धस् के प्रतिरूप धर् से धारा शब्द बनेगा। (धसान नाम वैसे ही प्राचीन

होना चाहिए जैसे घाघरा)। भर् के प्रतिरूप भस् से भासा शब्द बनेगा। प्रवाह के लिए बँगला में **भासा** शब्द है जिसका एक प्रसिद्ध प्रयोग रवीन्द्रनाथ की **निर्झरेर स्वप्न भंग** कविता में है, **भेसे गिये शेषे काँदिबे हाय, केनारा कोथाय पाबे** (बह जाने पर कली रोयेगी, उसे किनारा कहाँ मिलेगा ?)। बँगला में **भासा, भेसे,** हिन्दी में **धसान** और संस्कृत में **धारा, भण्डि** जैसे रूप इस अनुमान को पुष्ट करते हैं कि गतिसूचक शब्दों में सघोष महाप्राण ध्वनियों का व्यवहार होता था। इस दृष्टि से **भ्रम्** क्रिया मूलत: **भर्** मानी जायगी और वह इसी शृंखला में रखी जायगी। इसी के समानान्तर घूर्ण् क्रिया है जिसका शब्दमूल **घूर्** (घूमना) होगा। बँगला में **घुरनि** (इधर-उधर घूमना) **घुरोना** (घुमाना) उसी पुरानी **घुर्** अथवा **घूर्** क्रिया के प्रतिरूप हैं। हिन्दी क्रिया **घूमना, घुमाना** इसी शब्दक्रम में हैं। संस्कृत **धुर,** हिन्दी **धुरी** उस वस्तु को कहते हैं जिसके चारों ओर कोई चीज घूमती है। **ध्रुव** उस नक्षत्र का नाम है जिसके चारों ओर सारा नक्षत्र-मण्डल घूमता है। **वेला** के समान शब्द का मूल अर्थ गतिशीलता से बदलकर विरोधी छोर पर स्थिरता में परिणत हो गया।

घोड़े के लिए तमिल शब्द **कुदिरइ** और तेलुगु शब्द **कुदिर, कुदरमु** अथवा **गुर्रमु** है। ऐसा कम होता है कि आदि स्थानीय व्यंजन में जहाँ अघोषता है, उसे अपनी ओर से कोई द्रविड़ भाषा सघोषता में बदल दे। द्रविड़ भाषाओं के जिन शब्दों में आदि स्थानीय सघोष व्यंजन हैं, उनके बारे में यह सम्भावना निरन्तर बनी रहती है कि ये व्यंजन सघोष महाप्राण ध्वनि का रूपान्तर हैं। तेलुगु के अतिरिक्त कोलमि, पर्जि, कोण्ड और कुवि भाषाओं में इस शृंखला के शब्द **ग्** से आरम्भ होते हैं। इनके अतिरिक्त द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में नइकि भाषा का **घुर्रम्** रूप दिया है जहाँ आदि स्थानीय सघोषता के साथ महाप्राणता भी है। इससे अनुमान होता है कि **घोड़ा** और **कुदिरइ** एक ही मूल शब्द के विकास हैं। इस मूल शब्द की आदि स्थानीय ध्वनि सघोष महाप्राण थी : **घोद्** अर्थात् दौड़ना, कूदना; इसी से **घोटक** और **घोड़ा** रूप बने। हिन्दी क्रिया **कूदना** का मूल रूप **घूद** या **घोद्** होना चाहिए। कहीं-कहीं लोग **खूँदना** भी बोलते हैं जो मूल ध्वनि की महाप्राणता के कारण हो सकता है। तमिल **कुदि** का वही अर्थ है जो हिन्दी कूदना का है। **कुद्** से **कुर्** रूप का विकास होने पर तमिल में **कुरङ्गु** शब्द बनता है जिसका अर्थ है बन्दर। कोलमि में इसका प्रतिरूप **कोदि** है जहाँ द् ध्वनि र् में परिवर्तित नहीं हुई। कूदने और दौड़ने से बन्दर का सम्बन्ध स्पष्ट ही है। संस्कृत में **कुरङ्ग** शब्द हिरन के लिए प्रयुक्त होता है। **घोद्—कोद्—कुद्—कुर्** शब्द-मूल से बने हुए तमिल और संस्कृत शब्दों में अर्थ-प्रसार की प्रक्रिया एक ही है। लैटिन में भारतीय **कुर्** का प्रतिरूप **कुर्रो** है जिसका वही अर्थ है दौड़ना, तेजी से आगे बढ़ना। इसी से **कुर्रुस्** (रथ), **कुर्सो** (इधर-उधर दौड़ना), **कुर्सोर्** (धावक), **कुर्सुस्** (दौड़ने की क्रिया, मार्ग, यात्रा); लैटिन समुदाय की भाषाओं में इस शब्द का व्यापक प्रयोग होता है यथा फ्रांसीसी **कूर्** (दौड़ना) और अंग्रेजी **कोर्स** (पीछा करना, दौड़ना, आगे की ओर गति) तथा **कोर्सर्** (तेज घोड़ा) इसी क्रम में आते हैं। यहाँ दौड़ने, घोड़े और मार्ग की धारणाओं का आपसी सम्बन्ध देखा जा सकता है।

संस्कृत में **अध्वन्** शब्द का अर्थ है मार्ग। यह **अध्व्** या **अध्** जैसी क्रिया से बनेगा। **अध्** में **ध्** की सघोषता और महाप्राणता का लोप होने पर **अत्** क्रिया बनेगी। इसी **अत्** से **आत्मा** शब्द बनता है जिसका मूल अर्थ है वायु। नौर्वे और स्वीडन की भाषाओं में **अत्मन्** शब्द अब भी वायु के लिए प्रयुक्त होता है। इस **अत्** का एक परिवर्तित रूप **अर्** होगा। संस्कृत में **अर** का अर्थ द्रुत है। **समर** शब्द में यही **अर** है। **समर** वह कर्म है जिसमें बहुत से लोग मिलकर धावा करते हैं। अतः **अरि** वह व्यक्ति हुआ जो तेजी से धावा करता है। **अरण्य** उस स्थान को कहेंगे जहाँ मनुष्य घूमा करते हैं। अंग्रेजी शब्द **रन्** (दौड़ना) इसी **अर्** क्रिया से सम्बद्ध है। **रन्** की व्युत्पत्ति के प्रसंग में **इर्नन्** और **ऐर्नन्** शब्दों का उल्लेख किया जाता है और इन रूपों को वर्ण-विपर्यय का परिणाम कहा जाता है। **अर्** क्रिया पर ध्यान देने से विदित होता है कि वास्तव में स्वर से आरम्भ होने वाले ये शब्द मूल रूप हैं और वर्ण-विपर्यय का परिणाम **रन्** है।

३. अनल, अनिल, अलङ्कार

संस्कृत में अनेक शब्द **र्** से आरम्भ होते हैं जिनका सम्बन्ध कहीं-न-कहीं गति से है। उन सभी को वर्ण-विपर्यय का परिणाम नहीं कहा जा सकता यद्यपि यह माना जा सकता है कि **र, रा, रि, री** आदि क्रियाएँ **अर्** अथवा **इर्** जैसे शब्दों का रूपान्तर हैं। संस्कृत में **इर्** क्रिया की कल्पना की गई है जिसका अर्थ है जाना; **इरा** का अर्थ हुआ जल, कोई भी पेड़। अतः भारत के बाहर भी **इरावदी** शब्द का प्रयोग नदी के लिए हुआ। **इरिण** को **ऋ** से व्युत्पन्न माना गया है, अर्थ हैं जल-मार्ग। यह रूप सीधे **इर्** क्रिया से भी बन सकता है। **ऋतु, रीति, राह, रास्ता,** अंग्रेजी **रोड,** पुरानी अंग्रेजी **राड** (सड़क), **रिवर** (नदी) आदि शब्द इसी **र** क्रिया से निर्मित होते हैं। संस्कृत में **रय्** की कल्पना की गई है। **रय** का अर्थ हुआ द्रुत गति, नदी की धारा। **रवि** (सूर्य) का सम्बन्ध ध्वनिवाचक **रु** क्रिया से निरर्थक है किन्तु **रय्, रव्** गतिसूचक क्रिया से सम्बन्ध सार्थक है। जैसे तमिल में **पो** क्रिया से सूर्यवाचक शब्द बनता है, वैसे ही संस्कृत में **र** वाली क्रिया से **रवि** शब्द बनेगा।

अत् का एक रूपान्तर **अट्** होगा जिससे **अटवी** शब्द बनेगा, अरण्य के समान वह स्थान जहाँ मनुष्य या पशु घूमते हैं। **अटन, पर्यटन** घूमने के अर्थ में प्रयुक्त होते ही हैं। **अत्** का एक रूपान्तरण **अन्** होगा जिससे **अनिल** (वायु) शब्द बनता है। इसी **अन्** से लैटिन शब्द **अनिम** बनता है जिसका वही अर्थ है जो अनिल का है। संस्कृत में **म** प्रत्यय **अत्** वाले रूप में लगा, लैटिन में वही प्रत्यय **अन्** वाले रूप में लगा। इसी **अनिम** से लैटिन शब्द **अनिमल्** (प्राणी, पशु) शब्द बना। संस्कृत **प्राण** शब्द उसी **अन्** क्रिया में **प्र** उपसर्ग लगाने से बनता है। वायु मनुष्य का जीवन है, अतः जीव के लिए उसी शब्द का प्रयोग हुआ जो वायु के लिए प्रयुक्त होता था। इस सन्दर्भ में **अश्व, श्वान** और **श्वास** शब्दों पर विचार करें। **श्वास** का वही अर्थ है जो प्राण का है। अतः सबसे परिचित जन्तु कुत्ते के लिए **श्वन्, श्वा** शब्दों का प्रयोग हुआ। ग्रीक **कुओन्,**

लैटिन **कनिस्** शब्दों का **क्** कहीं साँस लेने, या जीने वाली क्रिया से सम्बद्ध नहीं है। मूल शब्द सकार से ही आरम्भ होता था जिसका अर्थ वायु या साँस लेना था। **अश्व** शब्द का अ उपसर्ग **अध्वर्यु** के **अ** की तरह।

वायु के लिए एक पुराना शब्द **मरुत्** है। क्या **मर्** जैसी कोई क्रिया जाने, चलने के अर्थ में यहाँ कभी प्रचलित थी? मरने के अर्थ में जिस **मर्** क्रिया का व्यवहार होता था और होता है, उसका मूल अर्थ चलना, जाना हो सकता है। द्रविड़ भाषाओं में अनेक गतिवाचक शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ मरना है यथा **पो** क्रिया का अर्थ चलने, जाने के अलावा मरना भी है। जैसे कहते हैं गुजर गये; गुजरने में एक जगह से दूसरी जगह जाने और मरने का अर्थ लिया जाता है, वैसे ही द्रविड़ भाषाओं में **पो** वाली क्रिया का व्यवहार होता है। **मार्ग** शब्द में यही **मर्** क्रिया है। **मृत्यु** का एक अर्थ मार्ग है। **मृग** शब्द किसी भी दौड़ने वाले जानवर के लिए प्रयुक्त होता था। इसी **मर्** से **मरुत्** शब्द बना होगा। किरण के अर्थ में **मरीचि** शब्द, सम्भव है, **मर्** क्रिया से बना हो। मोनियर विलियम्स ने इस सम्भावना का उल्लेख किया है कि **मरीचि** शब्द **मरुत्** से यों सम्बन्धित हो सकता है कि **मरुत्** का अर्थ प्रकाशमान् है। वायु के लिए प्रकाश की अपेक्षा तीव्र गति सहज है। प्रकाश का भाव वहाँ आता है जहाँ गति के साथ सूर्य का सम्बन्ध जुड़ता है। हो सकता है, **मरीचि** शब्द पहले सूर्य के लिए प्रयुक्त होता हो। अरण्य के समान **मरु** उस भूमि को कहेंगे जहाँ मनुष्य भटकते रहे हैं। **मरु** का एक अर्थ मृग (हिरन) भी है। **मर्कट** (बन्दर) के लिए **मर्क्** क्रिया की कल्पना की गई है और उसका अर्थ बताया है चलना, गतिशील होना। **मर्** क्रिया से भी **मर्कट** शब्द बन सकता है; संस्कृत में इस शब्द का एक अर्थ है वायु, दूसरा अर्थ है वानर। गतिसूचक शब्दों से वायु, वानर आदि के लिए ऐसे नये-नये रूप बनते हैं, अर्थ-प्रसार की कैसी प्रक्रिया काम करती है, वह **मर्कट** शब्द के दो अर्थों से जानी जाती है।

द्रविड़ व्युत्पत्ति कोशकारों ने तमिल भाषा का **मारि** शब्द दिया है जो संस्कृत **वारि** का अर्थ देता है और इसके साथ उन्होंने संस्कृत **मारि** (वर्षा) का उल्लेख किया है। मनुष्य के लिए **मर** शब्द का प्रयोग किया जाता था और स्वभावतः उसे मरने का अर्थ देने वाली क्रिया से जोड़ा जाता है। उसका मूल अर्थ होना चाहिए धावक, वीर पुरुष। फ़ारसी मर्द में यह पुरुषत्व वाला भाव विद्यमान है; मरने के अर्थ से उसका सम्बन्ध नहीं है। इसी **मर** का एक रूपान्तर **नर** है। **मर्द** में **द** कृदन्त प्रत्यय है। रूसी **नरोद्**, नर और संख्यासूचक प्रत्यय **द** के संयोग से, जनता (जन + ता) का अर्थ देता है।

मर् के रूपान्तर **नर्** से **नर्त** शब्द बनेगा जो नाचने के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा किन्तु जिसका मूल अर्थ चलना, दौड़ना रहा होगा। जो लोग समझते हैं कि **र्** के संसर्ग से संस्कृत में **त्** का मूर्धन्यीकरण होता है, वे संस्कृत **नर्त** और तमिल **नड** के सम्बन्ध पर विचार करें, **नड** (चलना, जाना, घटित होना), **नडइ** (गति, पथ, रीति)। यह शब्द द्रविड़ भाषाओं में व्यापक रूप से व्यवहृत होता है। जैसे **नर्त** से **नड**, वैसे ही **मर्त** से **मड**। तमिल **मडि** (मरना), **मडिवु** (विनाश, मृत्यु), **मडिवि** (मारना), ऐसे अनेक रूपों का सम्बन्ध संस्कृत **मर्** से है जिसका मूल अर्थ जाना, चलना था। अभिनेता के लिए **नट** शब्द का

प्रयोग नृत्य के संसर्ग से हुआ। (मूलत: **नृत्य** और **मृत्यु** में कोई अन्तर नहीं है।) हिन्दी **नटना** और **मटकना** एक ही शब्द-मूल के दो रूपों **नट** और **मट** से बनी हुई क्रियाएँ हैं। **नर्** वाली क्रिया से द्रविड़ भाषाओं में अनेक समयवाचक शब्द बनते हैं। तमिल, कन्नड़ आदि में **नाळ्** (दिन, समय), तेलुगु, **नाडु**, कोलमि **नल्**, **नट** समयवाचक हैं, कहीं **ळ्** है, कहीं उसके बदले **ट्** या **ड्** है जिससे मूल रूप में **द्** का संकेत मिलता है। तमिल **नेरम्** (समय, ऋतु), मलयालम **नेरम्** (सूर्य, दिन, प्रकाश, समय, ऋतु, घण्टा), कोडगु **नेर** (सूर्य, समय) आदि रूप उसी **नर्** क्रिया से सम्बद्ध हैं।

तमिल **तीर्** का अर्थ है जाना, पूरा होना, मरना। प्राय: सभी द्रविड़ भाषाओं में यह क्रिया पाई जाती है। कन्नड़ **तूळ्** का अर्थ है जाना, किसी का पीछा करना। इस क्रिया का व्यवहार अधिक सीमित है। कन्नड़ **तळर्** का अर्थ है आगे बढ़ना, चलना, काँपना। संस्कृत **तरल** से इसका सम्बन्ध उचित ही जोड़ा गया है। तमिल **तडम्** पथ-वाचक शब्द है; तमिल **तारि**, कन्नड़ **दारि** इसी के प्रतिरूप हैं। **धारा** में जो **धा** क्रिया गति के अर्थ में है, उससे इसका सम्बन्ध हो सकता है। तमिल **तॅरु**, **तॅरुवु** का अर्थ है गली। तमिल **तुरइ** का अर्थ है मार्ग, घाट, नदी, समुद्र। एक ही शब्द के ये अनेक अर्थ अर्थ-प्रसार की प्रक्रिया स्पष्ट करते हैं। कन्नड़ **तॉरॅ** (धारा, नदी) इसी क्रम में है और तुलु **तुदॅ** (धारा, नदी) से ज्ञात होता है कि इन शब्दों का **र्** **द्** का परिवर्तित रूप है। कुइ **दॅग**, कुवि **दॅवलि** का अर्थ दौड़ना, कूदना है। संस्कृत क्रिया **धाव्** दौड़ने के लिए प्रयुक्त होती थी और हिन्दी का **दौड़** शब्द उससे सम्बन्धित है। **पग** के समान हिन्दी का एक शब्द **डग** है और **मग** के समान मार्गसूचक डगर शब्द है। ये सब उन आर्य-द्रविड़ क्रियाओं से सम्बन्धित हैं जो **त्**, **द्**, **ध्** से आरम्भ होती हैं। संस्कृत **धाव** का ग्रीक प्रतिरूप **थेओ** (दौड़ना) है। ग्रीक शब्द **थलस्स**, **थलन्त** (समुद्र, कुँआ) उसी क्रिया से व्युत्पन्न है जिससे **धारा** शब्द बना है और **थलस्स** का **थल** और संस्कृत **जल**, सम्भव है, मूलत: **धर** हों। जैसे **ज्वल्** का मूलरूप **ध्वर्** था। संस्कृत **तीर्थम्** मलयालम में जल के अर्थ में प्रयुक्त होता है। मूल शब्द जलवाचक **तीर्** है। इसी का ब्राहुइ प्रतिरूप **दीर्** है। **तीर्-दीर्** का **त्-द्** **न्** में परिवर्तित होता है और उसी से **नीर** शब्द प्राप्त होता है। संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं पर द्रविड़ प्रभाव की चर्चा में **नीर** शब्द का उल्लेख अनेक बार किया गया है किन्तु इस प्रसंग में उसके ब्राहुइ प्रतिरूप **दीर्** को छोड़ दिया जाता है। मूल रूप **नीर** नहीं है, **तीर्** या **दीर्** है और यह **तीर्** **तीर्थ** में विद्यमान है। कोलमि, नइकि, पर्जि आदि भाषाओं में इसी का प्रतिरूप **ईर्** है जो **नी—ञी—ई** क्रम से निर्मित हुआ है। अनेक द्रविड़ भाषाओं में **ईर्**, **ईरम्**, ईरि आदि रूप भीगने, नमी आदि का अर्थ देते हैं। **नीर्** और **ईर्** दो रूप प्राप्त होने से अर्थ-भेद किया गया है। तमिल **तोय्** (नहाना, भीगना) और इस शृंखला के अन्य शब्द संस्कृत **तोय** से सम्बद्ध हैं। **तोय्** का एक अर्थ पानी में किसी चीज़ को भिगोना, उसे धोना भी है। तेलुगु **तोगु** का एक प्रतिरूप **दोगु** (नहाना, भीगना) भी है। यह **दो** वाला रूप मूल **धो** क्रिया का प्रतिरूप हो सकता है। इस प्रकार संस्कृत **तोय** का मूलरूप **धोय** होगा। जैसा कि **धोबी** शब्द से प्रकट है, नहाने धोने की यह **धो** क्रिया आर्य भाषाओं में व्यापक रूप

से प्रयुक्त होती रही है। संस्कृत में **धो** क्रिया नहीं है किन्तु **धाव्** है जिसका अर्थ है धोना। **धौत** (धुला हुआ) शब्द इसी क्रिया से बनता है। **धाव्** का एक अर्थ दौड़ना है। इसके समानान्तर एक **धव्** क्रिया मानी गई है और इसका भी अर्थ दौड़ना बताया गया है। किन्तु **धवल** (स्वच्छ, धुला हुआ) रूप न तो दौड़ने से सम्बद्ध है और न **धाव्** क्रिया से बन सकता है। **धव्** क्रिया का एक अर्थ धोना भी अवश्य रहा होगा। इस प्रकार **धव्** और **धाव्** दोनों रूप गतिसूचक हैं; एक ही तरह की अर्थ-प्रसार-प्रक्रिया से दोनों धोने, जल से सम्बद्ध क्रिया का भाव व्यक्त करने लगे। जैसे **पो** से **पवन**, वैसे ही **धो** से **धवल**; **धव्** और **धो** में विशेष अन्तर नहीं है।

त वाली क्रिया पवन-वाचक शब्दों के लिए भी कुछ भाषाओं में प्रयुक्त होती रही है। कुड़ुख **तागा** (हवा), **ताग्रना** (हवा का चलना), मल्तो **तगें** (वायु), ब्राहुइ **तहो** (उप०) गतिसूचक अन्य शब्दों की तरह इस क्रम में वायु का अर्थ देते हैं। तमिल **तडवइ**, कन्नड़ **तडवॆ**, तेलुगु **तडव**, **तडवु** शब्द समय के लिए प्रयुक्त होते हैं। तमिल **तरुवाय्** (अवसर), कन्नड़ **तरुण** (उपयुक्त समय), तेलुगु **तरि** (ऋतु, अवसर, उपयुक्त समय), **तरुणमु** (अवसर, ऋतु, समय) उसी गति-सूचक **तर्** क्रिया से व्युत्पन्न होते हैं। संस्कृत शब्द **तरुण** **तॄ** क्रिया से सिद्ध किया जाता है। इस क्रिया का अर्थ है पार करना, तैरना, कोई काम पूरा करना। क्रिया का यह रूप **तर्** से ही वर्ण संकोच होने पर प्राप्त किया गया है। यह क्रिया गति का अर्थ देती है किन्तु समय वाला अर्थ संस्कृत **तरुण** से सम्बद्ध नहीं किया गया। कन्नड़ और तेलुगु भाषाओं में **तरुण** का उपर्युक्त अवसर वाला अर्थ इस शब्द की सही व्युत्पत्ति में सहायक होता है। तमिल **तडवइ** का एक अर्थ समय के अलावा आवर्तन है। तेलुगु **तडव** का एक अर्थ आवृत्ति है। इसी प्रकार कन्नड़ **तडवॆ** का एक अर्थ आवर्तन है। समय चलता ही नहीं है, आवृत्ति भी करता है। पूर्व से जो सूर्य पश्चिम को जाता दिखाई देता है, वह प्रतिदिन उसी क्रम की आवृत्ति करता है। अंग्रेज़ी में **टेम्पो** शब्द द्रुतगति के लिए प्रयुक्त होता है। **टेम्पेस्ट** तूफान को कहते हैं जिसकी गति बहुत तीव्र होती है। इन शब्दों का मूल स्रोत लैटिन रूप **तेम्पुस्** है जिसका अर्थ है समय। इसी क्रम में लैटिन **तेम्पेस्तस्**, **तेम्पेस्तुस्** (ऋतु, समय) **तेम्पेस्तीवितस्** (उपयुक्त समय) आते हैं। **तेम्पेस्तस्** का एक अर्थ तूफान है। **तेम्पोरे** अर्थात् उपयुक्त अवसर पर; इसका एक अर्थ है कुछ समय के लिए; इसी से अंग्रेज़ी शब्द **टेम्परी** बनता है। शब्द-निर्माण और अर्थ-प्रसार की प्रक्रिया पर ध्यान दें तो लैटिन भाषा के कालवाचक शब्द द्रविड़ शब्द-शृंखला की एक कड़ी साबित होते हैं। यहाँ तोद **तॉप्** (समय, अवसर), तमिल **ताप्पु** (अपेक्षित अवसर), मलयालम **ताप्पु** (उपयुक्त समय) का उल्लेख भी कर देना उचित है। अंग्रेज़ी **टाइड** शब्द ज्वार के लिए प्रयुक्त होता है। जो शब्द समयवाचक है, वह जलवाचक भी है; वह समुद्र की क्रिया-विशेष के लिए प्रयुक्त होने लगा।

ऊपर समय के साथ आवृत्ति या आवर्तन का अर्थ देने वाले जिन शब्दों का उल्लेख किया गया है, उनसे अंग्रेज़ी शब्द **टर्न** (एक ही स्थान पर चक्कर खाना) की तुलना की जा सकती है। लैटिन क्रिया **तोर्नो** का यही अर्थ है। ग्रीक **तोर्नोस्** बढ़ई के

उस औजार को कहते हैं जिससे वह वृत्त बनाता है। अंग्रेज़ी भाषा में **टौर्नेडो** (तूफान) स्पेन से आया है। स्पेनिश में **तोर्नार्** का अर्थ है आवर्तन करना। एक दूसरी स्पैनिश क्रिया **त्रोनार्** से **त्रोनादा** (तूफान) शब्द जोड़ा गया है। **टौर्नेडो** (चक्रवात) का सीधा सम्बन्ध आवर्तन वाली **तोर्नार्** क्रिया से है। लैटिन **तोरेंओ** का एक अर्थ है जलाना, भस्म करना, दूसरा अर्थ है प्रवाहित होना। इसी से लैटिन **तोरेंन्स्** शब्द बनता है जो अंग्रेज़ी **टौरेन्ट** (धारा) का प्रतिरूप है। **करेन्ट** और **टौरेन्ट** शब्दों के बनने की प्रक्रिया एक ही है, दोनों का सम्बन्ध गतिसूचक क्रिया से है।

क्या आदिम गण समाजों का मनुष्य वायु और जल के समान अग्नि का सम्बन्ध भी गति से जोड़ता था? तमिल **ती, तीय्** (जलना, अग्नि, ऊष्मा), मलयालम **ती** (अग्नि), कोत **तीय्, तीच्** (जलना, भस्म होना), कन्नड़ **ती** (जलाना, अग्नि), **सी** (भस्म होना), तुलु **तू, सू** (अग्नि), तेलुगु **तीण्ड्र** (प्रकाश, ऊष्मा), ब्राहूइ **तीन्** (भस्म करने वाली ऊष्मा) **तीरुन्क्** (चिंगारी) शब्दों को देखने से लगता है कि जल और वायु के समान अग्नि भी (विशेषतः जंगलों में लगने वाली आग) अत्यन्त गतिशील प्रतीत होती थी।

संस्कृत **तडित्** की **तड्** क्रिया से सम्बद्ध तमिल **तळल्** (चमकना, गर्म होना, जलना, आग, अंगार) है। गोंडी में **तड्मी** (आग) संस्कृत क्रिया मूल के अधिक समीप है। कोलमि, नइकि आदि के **तर्** वाले रूप संस्कृत **तारा** की व्युत्पत्ति स्पष्ट करते हैं। **तारा** वह जो चमके, **तरल** शब्द में गतिशीलता और चमक दोनों हैं। तमिल और कन्नड़ में **तळल्** के अन्य प्रतिरूप **ताणल्** और **तणलु** हैं जिनमें **तड्** का रूपान्तर **तण्** है। जैसे **नट्** से **नट, नाटक, नटराज,** वैसे ही गतिवाचक **तण्** क्रिया से शिव का प्रसिद्ध नृत्य **ताण्डव**। जर्मन **टान्त्स्** (नाच), **टान्त्सॅन्** (नाचना), अंग्रेज़ी **डान्स्** ताण्डव वाली **तण्** क्रिया से सम्बद्ध हैं।

यहाँ **नट** और **ताण्डव** के संदर्भ में हम **भरत** शब्द का स्मरण करें। **भरत** का एक अर्थ नट है। इस अर्थ का कारण यही हो सकता है कि **भर्** क्रिया गतिवाचक थी। **नर्त** से जैसे **नट**, वैसे **भर्त** से **भट** रूप बनेगा, अर्थ होगा, धावक, योद्धा। **भर्** क्रिया का एक प्रतिरूप **धर्** था। **तरल, तळल्** आदि का मूल रूप **धद्, धड्, धर्, धव्** माना जा सकता है। संस्कृत में **दाव** शब्द जंगल में लगने वाली आग के लिए प्रयुक्त होता है। इसकी व्युत्पत्ति **दु** क्रिया से मानी जाती है और उसका अर्थ किया जाता है जलाना। ग्रीक क्रिया **दइओ** इसी का प्रतिरूप है। संस्कृत में इससे मिलती-जुलती दूसरी क्रिया **धु** या **धू** है जिसका अर्थ है जलाना, कम्पित करना। **धू** के साथ हवा चलाकर जलाने का भाव और जुड़ा हुआ है। इसके ग्रीक प्रतिरूप **थुओ** का एक अर्थ है तेजी से आगे बढ़ना (वायु वाला भाव), और दूसरा अर्थ है यज्ञ करना, बलि देना (अग्नि वाला भाव), इसी का अन्य ग्रीक रूप **थुनो** (तेजी से आगे बढ़ना है)। ग्रीक शब्द **थूमोस्** (श्वास, आत्मा, जीवन) सीधे संस्कृत क्रिया **धू** से सम्बद्ध है। ग्रीक **थुमोओ** (कुपित करना, क्रुद्ध होना), **थुमोम** (क्रोध, आवेश) आदि शब्दों में अग्नि वाला भाव है जैसा कि इस शृंखला के द्रविड़ शब्दों में बहुधा देखा जाता है। **धू** क्रिया से व्युत्पन्न संस्कृत **धूक** का एक

अर्थ वायु है, दूसरा अर्थ है समय। **धूप** उन सुगन्धित पदार्थों को कहते हैं जो अग्नि में डाले जाते हैं, उनसे जो धुँआ उठता है उसे भी कहते हैं। इसी अर्थ में **धूम** शब्द का प्रयोग भी होता है; उसका दूसरा अर्थ है धुँआ। हिन्दी में सुगन्धित द्रव्य के अलावा **धूप** शब्द का प्रयोग सूरज वाली धूप के लिए होता है। सूरज की धूप वाला अर्थ काफी पुराना है और तब का है जब **धू** क्रिया से वायु और अग्नि का सम्बन्ध स्पष्ट था। संस्कृत में **धूपि** एक प्रकार की हवाओं को कहा गया है जिनसे वर्षा होती है। **दाव** शब्द को जिस **दु** क्रिया से व्युत्पन्न बताया जाता है, उसे मूलतः **धु, धू** मानना चाहिए। संस्कृत **देव** शब्द का अर्थ है देवता, स्वर्गीय, और यह **दिव्** क्रिया से बना है। **दिव्** का एक अर्थ है जाना, दूसरा अर्थ है चमकना। ग्रीक भाषा में **देव** शब्द का एक प्रतिरूप **थेओस्** है। इसके आरम्भ में सघोष महाप्राण ध्वनि देखकर अनुमान होता है कि **दिव्** क्रिया का मूल रूप **धिव्** था, जैसे **दु** क्रिया का मूल रूप **धू** या **धु** था। **अध्वर, अध्वर्यु, अथरि, अथर्वन्, अध्वन्** शब्दों पर ध्यान देने से यह धारणा पुष्ट होती है। **अथरि** शब्द की व्युत्पत्ति बताने के लिए संस्कृत में कोई उपयुक्त धातु नहीं है। **अत्** (चलना) क्रिया अर्थ-विचार से सही है, ध्वनि-विचार से नहीं। **अथरि** (लपट, तीर की नोक) का सम्बन्ध गति से है किन्तु यहाँ **त्** के महाप्राण **थ्** बनने का कोई कारण नहीं है। **अध्वन्** (पथ, समय) में **अध्** क्रिया है। इसी **अध्** से **अध्वर** (यज्ञ) शब्द निर्मित होगा। समय, अग्नि और पथ के सूचक शब्द एक ही **अध्** क्रिया से बनते देखे जा सकते हैं। जैसे ग्रीक **थुओ** का अर्थ, अग्नि-संसर्ग के कारण, यज्ञ करना हुआ, वैसे ही **अध्वर** का मूल अर्थ अग्नि जलाना हुआ और उससे यज्ञ के अर्थ का विकास हुआ। **अध्वर्यु** वह व्यक्ति हुआ जो यज्ञ कराता है। यही अर्थ **अथर्वन्** का है, यह शब्द उन गण-समाजों का है जो भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त पर नाग भाषाओं से प्रभावित हो रहे थे। इसके समकक्ष है **अथर्य** अर्थात् जलता हुआ। फारसी में **अथर्** शब्द का अर्थ है अत्यन्त पवित्र जो यज्ञ वाले अर्थ का विकास है। प्रसिद्ध प्रदेश **आजर बैजान** का फारसी रूप **आजर बादगान** है जिसका अर्थ है अग्नि मन्दिर; **आज़रपरस्त** अग्नि पूजक को कहते हैं। **आतिश** और **आदीश** का अर्थ है अग्नि। **अत्रि** शब्द को **अद्** (खाना) क्रिया से जोड़ा जाता है और तब शब्द का अर्थ हुआ भक्षक। किन्तु यह **अत्** (चलना, जलना, जलाना) वाली क्रिया से भी सम्बद्ध किया जा सकता है, और तब **अत्रि** उस ऋषि को कहेंगे जो यज्ञ कराता है।

संस्कृत की सामान्य क्रिया **ज्वल्, ध्वर्** का रूपान्तर है। इसका एक प्रतिरूप **ज्वर्** भी है। **द्युत्** (चमकना), **दिव्, दीप, देव, ज्वल्, ज्वर्, ज्योति, तरल, तारा** आदि रूप मूलतः सघोष महाप्राण **ध्** से युक्त शब्द-मूल के विकास हैं और यह शब्द मूल गति सूचक है।

तमिल **तऴल्** (चमकना, गर्म होना) के संदर्भ में निष्कर्ष यह निकला कि इस शब्द के आरम्भ में जो **त्** है, वह मूलतः **ध्** था।

भर शब्द का एक अर्थ युद्ध है। जैसे **समर** में गति वाले अर्थ का विकास हुआ है, वैसे ही **भर** के युद्ध वाले इस अर्थ में। **भरत** (अग्नि), **भर्ग** (प्रकाश), **भृगु** (शुक्र,

सूर्य), **भ्रज** (अग्नि), **भृञ्ज्** (भूनना), **भ्राज्** (चमकना), **भा** (चमकना), **प्रभात,** हिन्दी **भोर,** संस्कृत **भग** (सूर्य, चन्द्र समृद्धि), ग्रीक **फोओस्** (प्रकाश)—ये सभी रूप उस क्रिया मूल से सम्बद्ध हैं जो गतिवाचक थी और जिसमें अग्नि, प्रकाश आदि का अर्थविस्तार हुआ है। इसी **भ्** वाले रूप में सघोषता और महाप्राणता का लोप होने पर **पुर्** जैसा रूप बनेगा। ग्रीक भाषा में **पुर्** अर्थात् बिजली, ज्वर, कामाग्नि; **पुर** अर्थात् चिता, वह स्थान जहाँ आग जलाई जाती है; **पुरा** अर्थात् जलती हुई अग्नि को देखना। दिशा-सूचक **पूर्व** शब्द को **पुरा, पुरः** (सामने) से जोड़ा जाता है। **पश्चिम** और **दक्षिण** शब्दों के अर्थ पर ध्यान देने से **पुरः, पुरा** से **पूर्व** का सम्बन्ध सही लग सकता है किन्तु जैसे **दक्षिण** में **दक्ष** का मूल अर्थ कौशल है, वैसे ही **पूर्व** के **पूर्** का मूल अर्थ अग्नि या प्रकाश हो सकता है। **पूर्व** वह दिशा हुई जहाँ प्रकाश दिखाई देता है। बँगला में **पोड़** शब्द अभी भी जलने-जलाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है; **पोड़ामुख** अर्थात् मुँहजला। चिता का अर्थ देने वाले ग्रीक शब्द **पुर** से अंग्रेज़ी **पायर** बना है और आदि व्यंजन के संघर्षी बनने पर इसी से अंग्रेज़ी **फ़ायर** (आग) रूप प्राप्त होता है।

राजा में जो **राज्** क्रिया है, उसका मूल अर्थ शासन करना नहीं है। **राज्** से **राग** शब्द बनता है जिसका एक अर्थ है लाल रंग, कामोत्तेजना। **राग** और **राजा** उस गतिसूचक **रा** क्रिया-मूल की ओर संकेत करते हैं जिसका अन्य अर्थ चमकना, जलाना, प्रकाशित होना आदि है। लैटिन में **रेक्स** (राजा), **रेगो** (शासन करना), **रेगीना** (रानी) आदि शब्द कहीं भी **राग** या **राज्** का मूल अर्थ नहीं देते। संस्कृत **हरि** (पीला, घोड़ा, सूर्य, वानर) अर्थ-प्रसार की वही प्रक्रिया प्रस्तुत कर रहा है जिसके अनेक उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। **हरिण्य** (पीला, हरा, सूर्य, हिरन), **हरित** (पीला, रक्तिम पीताभ, हरा), **हिरण्य** (सुवर्ण), **हिरण** (उप०) आदि शब्द इसी श्रृंखला में हैं जहाँ सघोष महाप्राण ध्वनि ह् में रूपान्तरित हुई है और जहाँ शब्द-मूल **घर्** गतिसूचक था।

संस्कृत **अर्चि** का अर्थ किरण, आदित्य और लपट है। **अर्क** (सूर्य, किरण, बिजली, अग्नि), **अरुण** (रक्त वर्ण, सूर्य) गतिसूचक **अर्** अथवा **ऋ** क्रिया से सम्बद्ध हैं। इस संदर्भ में कोत **अड़्च्** (लपट का उठना), तुलु **अरदॅ**, तेलुगु **अडरु** (जलना, चमकना) उल्लेखनीय हैं। अंग्रेज़ी **रे** (किरण) भी यहाँ स्मरणीय है।

अध्वन् वाली **अध्** क्रिया से गतिसूचक एक रूप **अत्** बना जिससे **आत्मा** शब्द निर्मित हुआ, उसी तरह दूसरा रूप **अन्** बना और इससे एक ओर पवनवाचक **अनिल** शब्द बना, दूसरी ओर अग्निवाचक **अनल** बना। तमिल **अनल्** (अग्नि, ऊष्मा), **अनलि** (अग्नि, सूर्य), मलयालम **अनल्, अनल्च, अनच्च, अनप्पु** (अग्नि, ऊष्मा), कन्नड़ **अनलि** (गर्मी) उसी **अन्** क्रिया से व्युत्पन्न हैं। बरो और एमेनो ने अपने कोश में संस्कृत **अनल** शब्द को द्रविड़ भाषाओं की देन माना है। वास्तव में **अनल** का आधार **अन्** उसी **अत्** क्रिया का रूपान्तर है जिससे निर्मित होने वाले **अत्मन्** जैसे शब्द यूरुप की भाषाओं में बोले जाते हैं। **अत्** का **अन्** रूप वायुवाचक लैटिन **अनिम** में विद्यमान है। भारतीय भाषाओं में यह क्रिया **अनिल** (वायु) और **अनल** (अग्नि) दोनों रूपों में व्यवहृत है। मूल **क्रिया अध्** में सघोष महाप्राण ध्वनि है, उसका अघोष अल्पप्राण ध्वनिवाला रूप आर्य

द्रविड़ परिवारों में और भारत के बाहर इंडोयूरोपियन परिवार की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त होता है।

संस्कृत **अर्चि** के **अर्** से तुलनीय है तमिल **अॅरि** (जलना, चमकना)। इसका व्यापक व्यवहार द्रविड़ भाषाओं में होता है और उनमें संस्कृत **अर्क** से मिलते-जुलते रूप भी हैं; कोलमि **अॅर्क्** (आग जलाना), गोंडी **अकि** (ज्वर); अंग्रेज़ी **रे** (किरण) के अनुरूप कुइ के रूप **रीव, रीत्** (जलना) आदि हैं। हिन्दी **अलाव अर्** के प्रतिरूप **अल्** से बना है। तमिल **अॉळि** (प्रकाश, सूर्य, चन्द्र, तारा, अग्नि, दीप, सौन्दर्य) के जो अनेक अर्थ दिए गये हैं, वे इस क्रम में अर्थ प्रसार-प्रक्रिया का बहुत अच्छा उदाहरण हैं। गति और अग्नि के साथ **अॉळि** में एक नया अर्थ जुड़ गया—सौन्दर्य। उससे पहले कामपीड़ा वाले अर्थ पर ध्यान देना चाहिए। अग्निवाचक शब्द अनेक भाषाओं में काम चेतना के लिए प्रयुक्त होते हैं। तमिल **अनल्** अर्थात् **अग्नि** और तमिल **अन्बु** (प्रेम, मैत्री), **अन्बन्** (प्रेमी, पति, मित्र), कन्नड़ **अम्मु** (चाहना) उसी **अन्** क्रिया से सम्बद्ध हैं। तमिल **अळल्** (जलना) और इसी से सम्बद्ध **अळिवु** (प्रेम); इसी प्रकार तमिल **अॉळि** का एक अर्थ अग्नि, सूर्य, चन्द्र इत्यादि, और दूसरा अर्थ सौन्दर्य है।

संस्कृत **काम** शब्द का सम्बन्ध अग्निवाचक किसी क्रिया से है या नहीं ? तमिल **कनल्** (अग्नि, जलना), **कनलि** (सूर्य), मलयालम **कनल** (अंगार), कोलमि **कन्** (दहकता लाल रंग), **कन्च्** (आग में दहकाना), कन्नड़ **कनि** (दमकना), कुइ **कम्ब** (भस्म होना)—द्रविड़ भाषाओं में **कन्** क्रिया का व्यवहार व्यापक रूप से होता है। संस्कृत में भी एक **कनल** शब्द है जिसका अर्थ है चमकीला। सोना चमकता है, इसलिए उसे **कनक** कहते हैं। संस्कृत में इसी अर्थ का सूचक **कन्दल** शब्द भी है। संस्कृत में एक क्रिया **कञ्च्** का भी उल्लेख है, अर्थ है चमकना। इसलिए **कञ्चन** का वही अर्थ हुआ जो **कनक** का है। **कञ्ज** कमल के फूल को कहा गया क्योंकि उसका रक्त-पीत वर्ण दमकता था। **कन्** क्रिया का प्रतिरूप **कम्**, उसी से **कमल**, जिसका एक अर्थ पीला लाल रंग है, दूसरा अर्थ हिरन और तीसरा अर्थ कमल नाम का फूल। इसी **कम्** क्रिया से काम शब्द बनता है। लैटिन **कोमिस्** (प्रेमपूर्ण) में वही **कम्** क्रिया है। अंग्रेज़ी शब्द **कम्ली** (सुन्दर) का संबन्ध इसी **कम्** से हो सकता है। **क्** का लोप होने पर लैटिन में **अमो** क्रिया का अधिक व्यवहार हुआ। इसका अर्थ है चाहना, त्याग करना; **अमोर्** अर्थात् प्रेम। इसी से अंग्रेजी में **एमिएबल्** (मैत्रीपूर्ण) जैसे शब्द हैं। लैटिन क्रिया **कन्देओ** का अर्थ है चमकना, इसी से लैटिन रूप **कन्देल,** अंग्रेजी **कैन्डिल** यानि कन्दील। यह **कन्** क्रिया मूलतः गति-सूचक है और **गम्** का प्रतिरूप है। तमिल **कण्ण** का अर्थ है द्रुतगति से। संस्कृत **कम्प** में गति का भाव स्पष्ट है, **कम्पन** रूप में अर्थ विकास की वही प्रक्रिया है जो **तरल** में है। संस्कृत में एक क्रिया **कम्ब्** मानी गई है जिसका अर्थ है चलना और एक शब्द है **कम्बर** जिसका अर्थ है बहुरंगी। सम्भवतः ऊन से बने हुए **कम्बल** को यह नाम इसलिए दिया गया कि उसमें अनेक रंग होते थे। **गन्धर्व** शब्द का सीधा सम्बन्ध **गम्** से है। **गन्धर्व** उसे कहेंगे जो देखने में सुन्दर हो और स्त्रियों के सहवास के लिए उत्सुक हो; इसलिए **गन्धर्व-विवाह** वह विवाह हुआ जिसका आधार केवल कामभावना है।

उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों के लोग **गन्धार** इसलिए कहलाते थे कि वे देखने में सुन्दर होते थे।

इस प्रसंग में तोद **अर्य्**, **अर्च्** पर ध्यान देना चाहिए जिसका अर्थ है नारी की काम-भावना। तमिल **अलङ्ङु** का अर्थ है चलना, काँपना; **अलइ** अर्थात् लहर। इससे तुलनीय है **अलंकार** जिसका सम्बन्ध किसी वस्तु को सुन्दर बनाने से है। **अलक** सुन्दर युवती को कहते थे और कुबेर की अलका में जो अलक लोग रहते थे, वे गन्धारों के समान सुन्दर रहे होंगे। ये सभी शब्द **अर्-अल्** क्रिया से बने हैं।

पो और **वा** क्रियाओं के **पे** और **वे** प्रतिरूपों से भी अग्नि-सूचक शब्द बनते हैं। तमिल **वे** (जलना), **वेडइ** (गर्मी), **वय्योन्** (सूर्य), मलयालम **वेद** (जलना), **वेट्टु** (गरम चीज); तोद **पोय्, पोद्**, (जलना), **पीश्** (सूर्य, धूप), **पेसॉख्य्** (ग्रीष्म ऋतु), कन्नड़ **बे, बेयु** (भस्म होना, धूप में झुलसना), **वेगें** (दावाग्नि); इस शृंखला की मूल क्रिया द्रविड़ भाषाओं में व्यापक रूप से प्रयुक्त होती है। तोद रूप **पेसॉख्य्** संस्कृत **वैशाख** से तुलनीय है। विशाखा एक नक्षत्र का नाम है। किसी नक्षत्र को **विशाखा** इसलिए न कहा जायगा कि उसमें शाखाएँ फूटती हैं या उसकी शाखाएँ नष्ट हो गई हैं। **वि** क्रिया का सम्बन्ध चमकने से है, अतः **विशाखा** और **वैशाख** नाम प्रकाश के अतिरिक्त उष्णता से सम्बद्ध हुए। आकाश को **व्योम** कहा गया क्योंकि वह प्रकाशमान रहता है। जो अर्थ **आकाश** का है, वही **व्योम** का है। **व्योम** का एक अर्थ वायु भी है। कुवि भाषा में **वॅहिनि** का अर्थ है उष्ण। इससे संस्कृत **वह्नि** तुलनीय है। अग्नि को **वह्नि** नाम इसलिए दिया गया था कि वह यज्ञ में डाली हुई वस्तु देवताओं तक ले जाती थी। उसकी व्युत्पत्ति उस क्रिया से हो सकती है जो चमकने का अर्थ देती थी। **वस्** क्रिया का एक अर्थ चमकना है। ऋतु विशेष को **वसन्त** इसलिए कहा गया कि वह प्रकाश की ऋतु है और शिशिर की अपेक्षा उसमें उष्णता होती है। वसन्त का रूसी प्रतिरूप **वेस्ना** है; **वॅसॅलीत्** (आनन्द मनाना), **वेसॅलो** (आनन्दपूर्वक) **वस्** क्रिया से निष्पन्न हैं। आदित्य, मरुत, इन्द्र, रुद्र आदि **वसु** हैं क्योंकि वे प्रकाशमान हैं। दिन को **वासर** कहा गया क्योंकि वह प्रकाशयुक्त होता है। **वासना** में यही **वस्** क्रिया है। **वस्** का प्रतिरूप **उष्** है जिसका अर्थ है जलना, जलाना, प्रभात होना। इसी से **उषा** और **उष्ण** शब्द बनते हैं। चेक भाषा में **उश्वित्** का अर्थ है प्रभात होना। **विष्णु** यदि अग्नि, विद्युत् और सूर्य के रूप में प्रकट होते हैं तो यह स्वाभाविक ही है। यदि वह कामदेव के पिता भी हों तो यह स्वाभाविक है; यदि चैत्र-मास का एक नाम विष्णु हो तो यह भी बोधगम्य है।

तमिल **वेण्डु** (चाहना), **वेऴ्** (चाह, वासना), **वेऴइच्चि** (भोग), **विऴइन्दोन्** (पति, मित्र), **विऴइबु** (सम्भोग), **वे, बे, बो, ओ** रूपों में काम सूचक इस क्रियामूल का व्यापक व्यवहार द्रविड़ भाषाओं में होता है। तमिल **वेन्दन्** का अर्थ है राजा, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वृहस्पति; यह अर्थ-प्रसार प्रक्रिया **विष्णु** के अर्थ-विस्तार से मिलती-जुलती है। गोंडी **पेन्**, कुइ **पेन** आदि देववाचक शब्द हैं। कभी-कभी किसी पर देवता आ जाते हैं और काफी परेशान करते हैं; उस अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग होता है। तमिल **पेय्** (किसी पर आने वाला देवता), मलयालम **पेन** (भूत), कन्नड़ **पे, हे** (आवेश, उन्मत्त होना) आदि शब्द उसी गतिसूचक क्रियामूल से सम्बद्ध हैं।

४. पुर, उर, नाडु

आदिम मनुष्य के लिए कृषि का आविष्कार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना थी। जो शब्द किसी स्थान पर छेद करने, किसी वस्तु को प्रविष्ट करने के लिए प्रयुक्त होते थे, उनका उपयोग कृषि के लिए किया गया। यह कहना कठिन है कि प्रजनन क्रिया से सम्बद्ध अनेक शब्द पहले कृषि के लिए प्रयुक्त होते थे और वहाँ से उधर लाये गये, अथवा पहले वे प्रजनन क्रिया के लिए प्रयुक्त होते थे और वहाँ से कृषि के क्षेत्र में लाये गये। जो भी हो, यह स्पष्ट है कि एक शब्दमूल मिलती-जुलती अनेक क्रियाओं के लिए प्रयुक्त होता था। संस्कृत **सीर** का अर्थ हल, बैल, सूर्य आदि है। **सी** क्रिया का अर्थ बताया गया है सीधी रेखा खींचना। **सीता** खेत की उस गहरी रेखा को कहते हैं जो हल खींचने से बनाई जाती है। दो स्थानों को बीच में रेखा खींचकर अलग किया जाय तो उसे **सीमा** कहेंगे। स्त्रियाँ सिर के बालों के बीच में माँग काढ़ती हैं, उसे **सीमन्त** कहा जाता था। **सू** क्रिया का अर्थ प्रेरित करना है। जो प्रेरक है, वह **सविता** है। रथ चलाने वाला व्यक्ति घोड़ों को प्रेरित करता है, अतः वह **सूत** है। **सू** क्रिया का एक अर्थ जन्म देना हुआ। अतः **सुत** और **सूनु** पुत्र के नाम हुए जिसे जन्म दिया जाता है। **सूत** शब्द का एक अर्थ हुआ पिता, दूसरा अर्थ हुआ **पुत्र**। **सूतक** अर्थात् सन्तान का जन्म; जन्म के समय स्त्री कुछ समय तक अपवित्र मानी जाती है, अतः यह अपवित्रता का भाव **सूतक** शब्द में भी आया। अवधी में **सौरि** उस स्थान को कहते हैं जहाँ माता सन्तान को जन्म देती है और **सोहर** उन गीतों को कहते हैं जो सन्तान के जन्म के समय गाये जाते हैं। संस्कृत **सूचि** उस अस्त्र को कहते हैं जिससे कपड़ा सिया जाता है, **सूत्र** उस धागे को कहते हैं जिससे सुई अपना काम करती है। हिन्दी क्रिया **सीना** का संस्कृत पूर्वरूप **सिव्** है। दर्जी के लिए एक पुराना शब्द **सिव** है।

लैटिन **सेरो** माने बुवाई करना; इस क्रिया का एक अर्थ गूँथना भी है। लैटिन **सेमेन्** अर्थात् बीज। अंग्रेज़ी **सो** क्रिया बोने का अर्थ देती है और सीने का भी, यद्यपि वह लिखी दो तरह से जाती है। अंग्रेज़ी **सीड्** उसे कहेंगे जो बोया जाता है। अंग्रेज़ी **सन्** (पुत्र) आदि शब्दों के निर्माण की वही प्रक्रिया है जो संस्कृत **सुत** और **सूनु** की है। मराठी **शेत** (खेत) का पूर्वरूप **सेत की से** क्रिया से बना। **सेत—शेत—क्षेत्र** वह भूमि है जो जोती-बोई जाती है। **क्षिति** उस भूमि को कहेंगे जिसे मनुष्य जोतता-बोता है और जहाँ वह रहता भी है। जोतने-बोने वाली क्रिया से आवास भूमि के अर्थ का विकास हुआ। संस्कृत क्रिया **क्षि** का एक अर्थ हुआ निवास करना।

से, शे क्रिया का द्रविड़ प्रतिरूप **चे, के** है। तमिल **चे, चेप्पु** (रहना, लेटना), **चेक्कइ** (निवास-स्थान, खाट), कन्नड़ **के, केद्** (लेटना, सम्भोग करना) आदि रूपों में द्रविड़ व्युत्पत्ति कोशकारों ने एक-सी दिखने वाली दो क्रियाओं को मिला दिया है। संस्कृत में एक **शे** या **शी** क्रिया वह है जिसका अर्थ लेटना है, इससे **शैया** शब्द बनता है। लेटने का अर्थ देने वाली चे-के क्रिया इस वर्ग की है। एक चे-के का अर्थ है लेटना; दूसरी चे-के का अर्थ है निवास करना। रहने का अर्थ देने वाली तमिल **चे** क्रिया उस वर्ग की है जिसमें **क्षिति** और **क्षेत्र** आते हैं। तमिल **चेंय्** (खेत), **कइदइ** (धान का खेत),

कन्नड़ **कॅय्, कय्** (खेत) आदि शब्द कृषि-सम्बन्धी उक्त शब्द शृंखला में हैं। यहाँ संस्कृत शब्द **केदार** (खेत, विशेषतः वह खेत जिसमें पानी भरा हो) स्मरणीय है। द्रविड़ भाषाओं में अनेक स्थान-वाचक शब्दों के साथ **चेरि** शब्द आता है। तमिल **चेरि** (गाँव, कस्बा, गली) उसी **से, शे** (निवास करना) क्रिया से सम्बद्ध है। तमिल **चेर्पु** (आवास), **चेर्वु** (ग्राम) को **चेर्** क्रिया से सम्बद्ध किया गया है जिसका अर्थ है संयुक्त होना। अंग्रेज़ी का **सिटी** शब्द कैसे बना? लैटिन **कितो** क्रिया का अर्थ है किसी वस्तु को बलपूर्वक प्रेरित करना। यह शब्द लैटिन **किविस्** (नागरिक) से बिल्कुल असम्बद्ध जान पड़ता है किन्तु कृषि-सम्बन्धी अर्थ-विकास की प्रक्रिया पर ध्यान दें तो सम्बद्ध लगेगा। ग्रीक भाषा में **कोमे** उस गाँव को कहते थे जिसके चारों ओर दीवाल न उठाई गई हो; कस्बे और मोहल्ले के लिए भी इस शब्द का प्रयोग होता था। **कोमेतेस्** शब्द का अर्थ देहाती था। इसी से हास्यरस के नाटक **कोमोदिग्रा** (अंग्रेज़ी **कॉमेडी**) कहलाये। इसी शृंखला में अंग्रेज़ी **सिटी** है जिसका इटालियन प्रतिरूप **चित्ता है**। भारत में **च्, क्** वाले दोनों रूप मिलते हैं। यहाँ अनेक नगरों के नाम के बाद **सोर** लगा रहता है जैसे **बालासोर, मन्दसौर**। इनमें **सोर** और **सौर** का उद्भव कृषि-सम्बन्धी **सो** क्रिया से हुआ है।

गोंडी **सेर्** (हल), कुइ **सेरु** (बैलों की गोंई), में **से** मूल क्रिया बनी हुई है। कोलमि **चेर** (हल बैल), श्रीलंका की तमिल में **चेर्** (हल, बैलों की गोई), कुवि **हेरु** (हल) में **स्** के स्थान पर **च्, ह्** है। अन्य भाषाओं में **च्** और **ह्** का लोप हुआ है। तमिल मलयालम, कोत, तोद भाषाओं में **एर्** रूप है। कन्नड़ में **एरु** का विकल्प **आर्** भी है और पर्जि में बैलों की गोई के लिए **ईरेर्** शब्द है। इन रूपों से तुलनीय है लैटिन **अरो** (हल जोतना), **अरात्रुम्** (हल), ग्रीक **अरोओ** (हल जोतना), **अरोरोन्** (हल), लैटिन **अर्वुस्** (जोता हुआ खेत), **अर्वुम्** (खेत), **अरातोर्** (हलवाहा), यूरुप की भाषाओं में इस शृंखला के अनेक शब्द हैं। **आर्य** शब्द की व्युत्पत्ति के लिए इस **अर्** क्रिया से भी काम लिया जा सकता है।

सर् क्रिया से अवधी **हरु**, हिन्दी **हल** बने; **सर्** के प्रतिरूप **हर्** से लैटिन भाषा का शब्दमूल **अर्** प्राप्त हुआ।

तमिल **चाल्** संस्कृत सीता का पर्याय है। हल चलाने से जो नाली बनती है, वह **चाल्** है। बोते समय जिस लकीर पर किसान आता-जाता है, वह भी **चाल्** है। कन्नड़ **साल्** में **स्** वाला मूल रूप है। हल जोतने से जो सीधी रेखा बनती है, उससे अर्थ प्रसार हुआ। कन्नड़ **साल्** का एक अर्थ हल से बनाई हुई रेखा हुआ, फिर किसी भी रेखा के लिए यह शब्द प्रयुक्त हुआ। कोडगु **चाल्लि**, तुलु **सालु**, तेलुगु **चालु**, मलयालम **चाल्** दोनों अर्थ देते हैं। बँगला शब्द **सारि** कतार के लिए प्रयुक्त होता है। इसका सम्बन्ध उक्त द्रविड़ रूपों से है। खेत में जो धान कतारों में लगाया गया, वह संस्कृत में **शालि** कहलाया। संस्कृत **शाल** घिरे हुए स्थान, दीवाल, दुर्ग के लिए प्रयुक्त होता है। **शालीन** वह व्यक्ति है जिसके रहने का ठीहा-ठिकाना है। अंग्रेज़ी **हौल** संस्कृत **शाल** का प्रतिरूप **है**। इसी **शाल** से **शाला** रूप बना। **शाला** का अर्थ बड़े कमरे के अलावा **घर** भी है। **शालग्राम** में काम-काज की तरह एक ही अर्थ देने वाले दो भिन्न

रूप शाल और ग्राम संयुक्त हो गये हैं। पाणिनि **शालातुर** गाँव में पैदा हुए थे। इस शब्द में **शाला** का अर्थ गाँव है और यही अर्थ **तुर** का भी होना चाहिए। संस्कृत में **तुर** का यह अर्थ नहीं है पर सम्भव है किसी समय रहा हो। **स्** ध्वनि को अनेक द्रविड़ भाषाएँ **क्-त्-प्** में परिवर्तित करती हैं। **सुर, पुर, तुर, उर, ऊरु** का मूलतः एक अर्थ सम्भव है।

द्रविड़ भाषाओं में इस शृंखला के **क्** वाले कुछ रूप इस प्रकार हैं।

मलयालम **करि, करु** (हल), तमिल **कारु** (हल का फाल), कन्नड़ **कारु** (उप०), तमिल **कॉऴु** (उप०), कोत **कॉव्** (उप०), कन्नड़ **कुळ, गुळ** (उप०), तमिल **कलप्पइ** (हल, फाल)—इन सब रूपों का सम्बन्ध हल से है किन्तु कन्नड़ **कलपु**, हल के अलावा, घर बनाने के आवश्यक सामान, और इसी प्रकार तेलुगु **कलफ** गृह-निर्माण-सम्बन्धी वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होता है। तमिल **कुत्तु** (छेद करना, सीना), तेलुगु **कुट्टु** (उप०), संस्कृत **कुद्दाल** (कुदाल), तमिल **कुन्दालि** (उप०) मिलते-जुलते शब्द हैं। तमिल **कुडि** (घर, परिवार, नगर) हिन्दी **कुटी** का प्रतिरूप है। **कुटुम्ब** शब्द का सम्बन्ध इसी शृंखला के रूपों से है। **कुडि** शब्द आवास के अतिरिक्त परिवार का भी अर्थ देता है। द्रविड़ भाषाओं में इस शब्द-मूल का व्यापक व्यवहार होता है। मन्दिर सूचक **गुडि** शब्द इसी का प्रतिरूप है। द्रविड़ भाषाओं में **कुटुम्ब** (परिवार) शब्द का व्यवहार भी होता है; तुलु भाषा में इसका **कुडुम** प्रतिरूप दिलचस्प है; विवाह-सम्बन्ध के लिए पंजाबी में **कुडमाई** का प्रयोग होना स्वाभाविक है।

संस्कृत **सुत** और **पुत्र** का एक ही अर्थ है। अन्य अनेक शब्दों के समान यहाँ भी **स्** ध्वनि **प्** में परिवर्तित हुई है। द्रविड़ भाषाओं में कृषि, प्रजनन, पुत्र, आवास आदि से सम्बन्धित शब्द **प्** से ही अधिक आरम्भ होते हैं, यह स्वाभाविक है। ये रूप द्रविड़ भाषाओं तक सीमित नहीं हैं, वे अनेक इन्डोयूरोपियन भाषाओं में मिलते हैं। इनका मूल रूप **स्** से आरम्भ होता था। तमिल **पाय्** (पौधे लगाना), **पिळ्** (विदीर्ण करना), कुइ **प्लीप** (सृजन करना), तमिल **पीरु** (विदीर्ण करना), कोत **पीर्** (बलपूर्वक प्रविष्ट करना), पर्जि **पुयिल्** (फाल), तमिल **पदि** (भीतर प्रवेश, लगाया जाने वाला पौधा, आवास), तमिल **पल्** (दाँत) और **पल्लि, पलगि** (दाँता, खेती के काम में आने वाला औजार जिसमें दाँत बने होते हैं), **परण्डु** (खरोंचना), **पिडुङ्गु** (बलपूर्वक प्रविष्ट करना), **पीरु** (विदीर्ण करना), पर्जि **पिड्क** (बीज), गोंडी **पॅडॅ** (उप०), तमिल **पुळइ** (छेद करना, छेद), कन्नड़ **हॅट्टु** (प्रविष्ट करना), **पॅट्टु** (सम्भोग करना), तमिल **पॉ** (छेद करना), **पॉत्तु** (छेद), **पोत्तु** (उप०), तेलुगु **बॉक्क** (छेद), तमिल **पॉदु** (विवाह द्वारा सम्बन्धित), **पॉरु** (संयुक्त होना, सम्भोग करना) आदि शब्द परस्पर सम्बद्ध प्रतीत होते हैं।

अंग्रेज़ी **सीड** का संस्कृत प्रतिरूप **वीज** अथवा **बीज** है। इस शब्द की व्युत्पत्ति समझने के लिए तमिल **वित्तु** (बोना, बीज) और इस शृंखला के अन्य शब्दों पर ध्यान देना चाहिए। इनमें **प्, व्** और **ब्** तीनों ध्वनियों वाले शब्द मिलते हैं। तोद **पित्** (बोना, बीज), कन्नड़ **बित्तु** (उप०), तेलुगु **वित्तु** (उप०), गोंडी **विताना** (बोना), **विज्जा, बीजा** (बीज), ये शब्द संस्कृत **बीज** के प्रतिरूप हैं और इनका सीधा सम्बन्ध

उस क्रिया-रूप से है जिसके आरम्भ में स् ध्वनि थी। **पितृ** शब्द इस सन्दर्भ में विचारणीय है। **से, सो, सव्** क्रिया **पे, पो, पव्** जैसे रूपों में परिवर्तित हुई। वर्ण विपर्यय से **पव्** के स्थान पर उत्तर-भारतीय जन **वप्** कहने लगे। यह बुवाई सम्बन्धित कृषि-कर्म के लिए संस्कृत की प्रधान क्रिया हुई। **वप्** से **बप्पा** का वैसा ही सम्बन्ध है जैसा **पित्** से **पितृ** का। संस्कृत में **वप्तृ** का अर्थ है बोने वाला, जनक, पिता। हिन्दी **बप्पा** का सम्बन्ध इस **वप्तृ** से ठीक जोड़ा जाता है। अर्थ-प्रसार की जो प्रक्रिया यहाँ दिखाई देती है, वही **पितृ** में भी है। जो क्रियामूल **प्रसव** में है, वही **सवितृ** में है। जो अर्थ **पिता** का है, वही मूल अर्थ **सवितृ** का भी है। यह शब्द सूर्य के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त होने लगा। पितृसत्ताक समाज के सूर्योपासक आर्यों ने **सवितृ** को परमपिता माना। इन शब्दों का क्रिया-मूल कृषि से सम्बन्धित है।

द्रविड़ भाषाओं में पुत्र-वर्गीय शब्दों की एक लम्बी शृंखला है। **सुत, सूनु** जैसे रूप केवल संस्कृत में हैं; **प्** वाले रूप दोनों परिवारों में हैं। तमिल **पयल्, पजल्, पइयल्, पइदल्, पइजल्, पइयन्**, कन्नड़ **पसुळ**, तुलु **पसि, पइय्य**, तेलुगु **पइद** लड़के या बच्चे के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। **पुत्र** के फारसी प्रतिरूप **पिसर** के समान मलयालम **पशकन्**, कन्नड़ **पसुळ**, तुलु **पसि** जैसे रूप हैं। यह शब्द मानव-समाज के अतिरिक्त अनेक भाषाओं में पशुओं के लिए भी प्रयुक्त होता है। तेलुगु **पेय**, पजि **पॅय्य** आदि बछड़े के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। ब्रज में गाय-भैंस के छोटे बच्चों को **पोया** कहा जाता है। अवधी में छोटे पौधे **पोया, प्वावा** कहलाते हैं। मानव-समाज, पशु-जगत् और वनस्पतियों में एक ही जीवन का आभास इस क्रम के अनेक शब्दों में देखा जाता है। अंग्रेज़ी शब्द **ब्वाय्** इसी शृंखला में है।

तमिल **पॅण्** लड़की, स्त्री, मादा पशु और वनस्पतियों के लिए प्रयुक्त होता है। **पॅण्मइ** (नारी का जन्म पाना), **पिणइ** (मादा पशु), **पिणवल्** (कुतिया, हिरनी आदि), कोडगु **पॉण्णि** (पत्नी, स्त्री), तुलु **पॉण्णु** (लड़की), तेलुगु **पॅण्डि** (मादा पशु या वनस्पति), **पण्डिलि** (विवाह), **पॅण्ड्लमु** (पत्नी)—इन शब्दों में मूल वर्ण एकार-ओकार दोनों स्वरों वाला है। इस मूलवर्ण के अन्त में **ण्** परिवर्तित ध्वनि है। **पॅद्—पॅन्—पॅण्** इस क्रम से ध्वनि-परिवर्तन हुआ है। यूरुप के जिन गण-समाजों की भाषा में **प्** ध्वनि का अभाव था, उन्होंने **अपः—अक्वा** की तरह **पॅण्** को **क्वीन्** रूप में ग्रहण किया। **क्वीन्** का सामान्य अर्थ है नारी। प्राचीन काल में यूरुप में जाकर भारतीय शब्द अधिक अर्थ गौरव अर्जित करते थे जैसे **पत्नी** यहाँ किसी भी पुरुष की स्त्री को कहा जाता था किन्तु ग्रीक भाषा में **पोत्निअ** का व्यवहार उच्चवर्गीय महिला—देवी या लेडी—की तरह होता था।

तमिल **पॅट्टइ**, लड़की के अलावा, मादा जानवरों के लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द है। हिन्दी **पिद्दी** का समकक्ष तेलुगु **पिट्ट** (चिड़िया) है; तेलुगु **पट्ट** मादा पक्षियों के लिए प्रयुक्त होता है। हिन्दी **पिल्ला** अब केवल कुत्ते के बच्चों के लिए प्रयुक्त होता है; उसका मूल अर्थ प्राणिमात्र का बच्चा है। मनुष्य ने, पशु-जगत् का स्वामी बनकर, अपनी श्रेष्ठता जताने के लिए अपने बच्चों के लिए विशेष शब्दों का व्यवहार आरम्भ

किया। हिन्दी में **पिल्ले** को कुत्ते का पुत्र कहा जाय तो लोग हँसेंगे किन्तु पंजाबी में **कुत्ता दा पुत्तर** वैसे ही आम गाली है जैसे अंग्रेज़ी में **सन् ऑफ ए बिच्**। तमिल **पिळ्ळइ** पशु और मनुष्य का बच्चा, लड़का लड़की दोनों, कोडगु में **पळ्ळॅ** केवल मादा पशुओं के लिए प्रयुक्त होता है। कोत भाषा का **पय्ळ्** बच्चे के अलावा छोटे पौधे के लिए प्रयुक्त होता है। कोलमि में **पिल्ल** के अतिरिक्त **पॅद्** शब्द भी है; **पिल्लपॅद्** अर्थात् मादा और नर। तमिल **पोत्तु** (पौधा, नई शाखा), तेलुगु **बोद** (शावक), कुवि **पोद** (लड़की), इनके साथ द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश ने संस्कृत **पोत** (छोटा पौधा या पशु) दिया है। कन्नड़ **पोर** (छोरा, छोरी), तेलुगु **पोरडु** (लड़का) त् के र् में बदलने से बने हुए रूप हैं।

इस वर्ग के शब्दों का सम्बन्ध प्रजनन, विवाह आदि के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दों से है। मूल अर्थ है खेती, सीने, पिरोने आदि की क्रिया के अन्तर्गत खोदना, प्रविष्ट करना। तमिल **पॉळि** (खोदना, छेद करना), तेलुगु **पॉडुचु** (छेदना), तमिल **पॉरुन्दु** (सम्भोग करना), तेलुगु **पॉन्दु** (उप०), तमिल **पॅरु** (पैदा करना), **पिर** (पैदा होना), **पिरप्पु** (जन्म), मलयालम **पेरु** (उप०), तुलु **पॅद्पिनि** (जन्म देना, पालना), नइकि **पॅट्ट्** (जन्म देना), इन रूपों में **त्—ट्** और **द्—र्** वाला परिवर्तन-क्रम देखा जाता है। बच्चा, बच्चे को जन्म देना, फिर वह स्थान जहाँ जन्म से पहले बच्चा रहता है। कन्नड़ **पॉट्टॅ** का अर्थ पेट के अलावा गर्भ है; इसी भाषा में **पॉडॅ** पेट और गर्भाधान की स्थिति दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। हिन्दी **पेट** इसी शृंखला में है। ओकार वाला रूप मराठी गुजराती **पोट्** तथा प्राकृत **पोट्ट** में है। ये रूप द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में उद्धृत किये गये हैं। **पेट** से सम्बद्ध जिन वस्तुओं से बच्चे का भरण-पोषण होता है, उनके लिए भी इसी शब्द-मूल के रूपों का प्रयोग होता है। तमिल **पॉदि** (स्तन), तेलुगु **पॉदुगु** (उप०), इनके साथ पोषण और समृद्धि का भाव देने वाले शब्द जुड़ते जाते हैं; तमिल **पॉदिर्** (फूलना, समृद्ध होना), **पॉदि** (पूर्णता, सुदृढ़ता), कन्नड़ **पॉदळ्** (स्रवित होना)। **पोषण** की **पुष्** क्रिया **पॉदि** आदि से सम्बद्ध हो सकती है। हिन्दी **पौधा** की सघोष महाप्राण ध्वनि इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि द्रविड़ भाषाओं के शब्दों में जहाँ **द्—ड्** है, वहाँ मूल रूप में **ध्** था। हिन्दी की सामान्य क्रिया **पैदा होना** इसी शृंखला में आती है। **पैदा** में महाप्राणता का लोप हुआ है; इसी श्रेणी के **पेड़** शब्द में **द्** का मूर्धन्यीकरण हुआ है।

समृद्धि वाला भाव व्यक्त करने वाले शब्दों में तमिल **पॉङ्गु** (बढ़ना, उर्वर होना), **पॉलि** (उप०), **पॉळि** (स्रवित होना, समृद्ध होना), इनके साथ बहुत्व-सूचक तमिल **पल** (बहुत से), **पलर्** (जन-समूह) सम्बद्ध हैं। संस्कृत **पुल** और **विपुल** का अर्थ विशद है। **पुर** और **पूर** भरने, समृद्ध करने का भाव व्यक्त करते हैं। संस्कृत में एक शब्द **पोल** (ढेर) भी है। ग्रीक **पोलुस्** (बहुत से) इन्हीं भारतीय शब्दों के गोत्र का है। मूल ध्वनि **र्** थी जैसे कि **पुरु** (बहुत से या बहुत सा), **पुरंधि** (अर्थात् बहुत सा देने वाला) में अर्थ-प्रसार की शुरूआत खेती से होती है। तमिल **पात्ति** (छोटा खेत), **पुलम्** (खेती लायक भूमि, धान का खेत), कन्नड़ **पॉल** (खेत), तेलुगु **पॉलमु** (उप०), **पॉलमरि**

(किसान), इन शब्दों से तुलनीय हैं रूसी भाषा के शब्द **पोले** जिसका अर्थ है खेत, **मैदान** और **पोलेवोद्स्त्वो** (किसानी)। कहाँ तमिल और कहाँ रूसी, कहाँ इन्डोयूरोपियन, कहाँ द्रविड़ परिवार, किन्तु खेत के लिए दोनों जगह एक ही शब्द है। यह शब्द संस्कृत में नहीं है, आधुनिक आर्य भाषाओं में नहीं है। यूरुप और भारत की भाषाओं के सामान्य तत्व वही नहीं हैं जो संस्कृत में मिलते हैं। संस्कृत **कृषि** और **कृषक** के रूसी प्रतिनिधि **क्रेस्त्यानिन्** (किसान), **क्रेस्त्यान्स्त्वो** (कृषक जनता) हैं।

संस्कृत में कन्नड़ **पॉल** (खेत) का प्रतिरूप नहीं है किन्तु **पल्लि** शब्द है। **पल्लि** अथवा **पल्ली** छोटे गाँव को कहते थे। इसका एक अर्थ घर या झोंपड़ी था और **पल्ल** वह स्थान था जहाँ अनाज एकत्र किया जाता था। वन्य जन-समाजों से भिन्न खेती करने वाले गणसमाज उसी भूमि पर रहते थे, या उसके पास रहते थे, जिस पर वे खेती करते थे। इसलिए खेत, आवास, ग्राम, नगर आदि के लिए परस्पर सम्बद्ध शब्दों का प्रयोग होने लगा। तमिल **पळ्ळि** का अर्थ झोंपड़ी के अलावा महल भी है, वह शयनगृह है और चरवाहों का गाँव भी है। मलयालम **पळ्ळि** झोंपड़ी है, वन्य जन-समाजों का छोटा गाँव है, बौद्धों आदि का मन्दिर है और राजा की शैया है। तुलु भाषा में **पळ्ळि** मस्जिद है, उसका प्रतिरूप **हळ्ळि** छोटा गाँव है। दो बातें स्पष्ट हैं : यह शब्द घर और गाँव दोनों के लिए प्रयुक्त होता था, और मन्दिर तथा महल के लिए प्रयुक्त होने से इसे वह अर्थगौरव भी प्राप्त था जो संस्कृत में नष्ट हो गया है। **पालि** भाषा **पल्ली**, अर्थात् गाँव, की भाषा है।

तमिल **पुलम्** का पर्जि प्रतिरूप **पॉलुब्र** है जिसका अर्थ है गाँव। तमिल **पाडि** (गाँव, नगर) हिन्दी **पाड़ा** से सम्बन्धित है। तमिल **पाळि** के भिन्न अर्थ देखने योग्य हैं : मन्दिर, कुटी, नगर, खेती वाली भूमि में कस्बा; इसी के प्रतिरूप कोत भाषा के **एर्, इट्, वाय्** का अर्थ है गाँव के पास के खेत जो बुबाई की रस्म के समय जोते जाते हैं। इसके तोद प्रतिरूप **ओय्** का अर्थ है गाँव के पास के खेत। आवास भूमि और कृषि-भूमि की समीपता के कारण जिस तरह का अर्थ-प्रसार होता है, वह यहाँ स्पष्ट है।

पिता और **पुत्र** से लेकर **पुर** तक आर्य-द्रविड़ भाषाओं की शब्द-शृंखला कृषि से जुड़ी हुई है।

संस्कृत **पुर** का मूल यूरोपियन प्रतिरूप **पोल** है। नगर के लिए ग्रीक शब्द **पोलिस्** है; **पोलितेस्** अर्थात् नागरिक, **पोलीतिकोस्** अर्थात् नागरिक से सम्बन्धित। अंग्रेज़ी की सारी **पौलिटिक्स** इसी ग्रीक **पोलिस्** से शुरू होती है। रूसी में जैसे **पोल** शब्द का अर्थ खेत है, वैसे ही ग्रीक भाषा में **पोलोस्** उस भूमि को कहते हैं जो जोती गई है। इसके साथ **पोलेओ** क्रिया है जिसके दो अर्थ हैं, इधर-उधर घूमना, ज़मीन को जोतना। वास्तव में दो क्रियाएँ कोशकारों ने मिला दी हैं। एक क्रिया **पो-**(चलना) शृंखला की है, दूसरी **पत्-पल्** जोतने-खोदने वाली शृंखला की। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि रूसी, ग्रीक और द्रविड़ भाषाओं में **पोल** शब्दमूल खेत के लिए प्रयुक्त होता है। ग्रीक में **पोलिज़ो** क्रिया भी है जिसका अर्थ है नगर की नींव डालना, नगर बनाकर उपनिवेश स्थापित करना। नगर के अधिष्ठाता देवता को **पोलिअस्** कहा जाता था। ग्रीक भाषा

में ल् वाला रूप प्रधान है किन्तु र् वाले रूपों का पूर्ण अभाव नहीं है। **पुर्गोम** (ऐसा नगर जो चारों ओर दीवाल से घिरा हुआ हो), **पुर्गोओ** (बुर्जों से सुरक्षित करना), **पुर्गोस्** (बुर्ज), **पुर्गिओन्** (मीनार)—इन रूपों से स्पष्ट है कि **पुर** शब्द का भी चलन यूनानियों में था और उसका दुर्ग वाला अर्थ प्रधान था जैसे संस्कृत **पुरन्दर** (दुर्ग ध्वंसक) में। **पुर** का गाँव वाला अर्थ हिन्दी में प्रचलित है। यद्यपि अनेक नगरों के नाम में यह **पुर** विद्यमान है, फिर भी उसे संस्कृत और ग्रीक में जो अर्थ गौरव प्रदान किया गया है, वह हिन्दी में नहीं है। अर्थ की गौरवहीनता प्राचीन अर्थ की सूचक है। वास्तव में मूलतः **पुर** किसानों का गाँव ही है। भारत में एक प्रसिद्ध नगर **पाटलिपुत्र** कहलाता था। यदि **पुत्र** यहाँ नगरवाचक है तो वह **पुर** का पर्याय है। दोनों का उद्भव एक ही क्रिया से हुआ है।

ग्रीक भाषा में **पुत्र** का प्रतिरूप नहीं है किन्तु लैटिन में इस शृंखला के अनेक शब्द हैं जो द्रविड़-शब्दावली से मिलते-जुलते हैं : **पुएर्** (बच्चा, लड़का), **पुएर, पुएल्ल** (लड़की), **पुएल्लुस्** (लल्ला), **पूबेद** (तारुण्य), **पुदेन्द** (लिंग), **पुदेओ** (शर्माना)।

पुर का प्राकृत रूप **वुर** है। द्रविड़ भाषाओं का स्थानवाचक **ऊर्** शब्द **पुर** का ही प्रतिरूप है। द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में इसके साथ प्राकृत रूप **ऊर** (गाँव) दिया हुआ है। इसके साथ तमिल **उऴु** (जोतना, खरोंचना), **उऴवन्** (किसान), **उऴाल्** (जुताई) ध्यान देने योग्य हैं। कोडगु रूप में **ऴ** है—**ऊऴ्** (जोतना), और तुलु में डकार है : **ऊडुनि, हूडुनि** (जोतना)। **ऊडुनि** के प्रतिरूप **हूडुनि** का हकार पूर्वरूप **पूडुनि** की सूचना दे रहा है। कोलमि और नइकि में **उर्** क्रिया का अर्थ है जोतना। जैसे **पुर** और **पूर्ण** में क्रिया के दो रूप हैं **पुर्** और **पूर्**, वैसे ही द्रविड़ भाषाओं में **प्** के **ब्** में बदलने पर समान अर्थ वाले दो शब्द बनते हैं : **उर्** और **ऊर्**। तमिल शब्द **उऴ्** का अर्थ है भीतर। इसका मूल अर्थ सम्भवतः आवास था। द्रविड़ व्युत्पत्ति कोष में इसका ब्राहूइ प्रतिरूप **उरा** दिया हुआ है जिसका अर्थ है घर। तमिल क्रिया **उरइ** का अर्थ है निवास करना; **उरइवु** अर्थात् निवास; **उर** (भीड़ का एकत्र होना), **उरु, उरवु** (मैत्री, प्रेम), **उरवि** (नातेदारी), **उरङ्ङु** (रहना), तोद **उर्फ्, उर्त्** (सम्भोग करना), कन्नड़ **ऑरल्** (प्रेम करना), **ऊरु** (रहना), तमिल **उरु** (बहुसंख्यक होना, समृद्ध), **उरइ, उरुत्तु** (फलना-फूलना), कन्नड़ **उरुवु** (विशदता), **उरऴि** (जन समूह), तुलु **उरुबु, उर्बि, उर्बु** (वृद्धि), **उर्दि** (समृद्धि)—ये सारे रूप उसी प्रकार की अर्थ-प्रक्रिया प्रदर्शित करते हैं जिस प्रकार की अर्थ-प्रक्रिया हम पुर-वर्गीय शब्दों में देख चुके हैं। तमिल **उरइ** से उत्तर प्रदेश के नगर **उरई** का नाम तुलनीय है।

अंग्रेजी में एक शब्द **अर्बन्** प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ है नागरिक। यह लैटिन **उर्बानुस्** से बना है जिसका अर्थ है नगरवासी, और लैटिन **उर्ब्स** का वही अर्थ है जो लैटिन **पुर** का है—नगर, दुर्ग या दीवाल से घेरकर सुरक्षित बनाया हुआ नगर। भारत में कश्मीर की **वुड़ी** से लेकर **तंजावूर्** तक इस **उर** शब्द का प्रसार है। हिन्दी की अनेक बोलियों में किसी वस्तु रखने का स्थान **उर** शब्द जोड़कर सूचित किया जाता है यथा अवधी में **भुसउरा**, भूसा रखने का स्थान। इस शब्द का व्यवहार **पुर** के समान

भारत के बाहर भी होता है । प्—व् वाली ध्वनि परिवर्तन-प्रक्रिया के बिना इस रूप की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

तमिल **वइ** (किसी चीज को रखना, निर्मित करना), मलयालम **वइक्कम्** (जो चीज रखी जाय, उर्वर धरती), कोत **वय** (रखना, बच्चा पैदा करना), तोद **पॉय्** (उप०), कन्नड़ **बॅसन, बॅसलॅ** (जन्म, उत्पादन), कोलमि **वाय** (छेद करके बोना), नइकि **वय्** (बोना), तमिल **वयल्** (खेत), कन्नड़ **वयलु** (उप०), कोलमि **वेगड्** (उप०), पर्जि **वाय** (उप०), गोंडी **वावूर्** (उप०)—ये सारे शब्द **प्** के समानान्तर **व्** से आरम्भ होने वाले, एक ही प्रकार की अर्थ-विकास-प्रक्रिया से सम्बद्ध, शब्द प्रस्तुत करते हैं। इसके साथ गर्भ, कामना आदि अर्थों के सूचक शब्द भी जुड़े हुए हैं। तमिल **वयिरु** (पेट, गर्भ), **वया** (गर्भ, भ्रूण), मलयालम **वयरु** (पेट, भीतर), कोत **वीर्** (पेट, गर्भावस्था), तोद **पीर्** (उप०), कन्नड़ **बसरु**, बसुरु, बसिर् (उप०)—यहाँ **प्-ब्-व्** तीनों ध्वनियों से आरम्भ होने वाले शब्द हैं जैसे तमिल **वइ** के साथ तोद, कन्नड़ आदिभाषाओं के प-वर्गीय रूप थे। पुनः तमिल **वयम्, वया** (कामना, प्रेम) के साथ कन्नड़ **बयकॅ, बवकॅ** (कामना) और इसी प्रकार अन्य द्रविड़ भाषाओं में शब्द हैं।

हिन्दी **बोना**, अवधी **बवब** संस्कृत **वप्** से सम्बद्ध हैं। संस्कृत **वप्**, स्, **सो, सव्** का प्रतिरूप है। हिन्दी में **बो, बव्** जैस रूप सीधे **सो, सव्** से प्राप्त हो सकते हैं। **वप्** वर्ण-विपर्यय का परिणाम है : **सव्-पव्-वप्**। द्रविड़ भाषा कुइ में **वाप्क** क्रिया भी है जिसका अर्थ है गड्ढे खोदकर बोना। **बीज** के समानान्तर द्रविड़ भाषाओं में बोने के लिए क्रियाएँ हैं यथा तमिल **विरइ** (बोना, पौधों का बाज, अंडकोष), **विरइप्पु** (बुवाई), **वित्तु** (बोना, बीज); तमिल शब्दमूल **वित्** का प्रतिरूप **विर्** है। इसके साथ तमिल **विरवु** (संयुक्त होना), **विरुम्बु** (कामना, प्रम), **विळइ** (उर्वर होना, परिपक्व होना, फसल), **विर** (सघन होना), कन्नड़ **वीग** (विवाह द्वारा सम्बन्धित), तमिल **वीङ्गु** (समृद्ध होना)—ये सब रूप कृषि और कृषक के पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध हैं।

यहाँ संस्कृत शब्द **उर्वर** विचारणीय है। संस्कृत में **उर** शब्द खेत के लिए प्रयुक्त नहीं होता किन्तु **उर्वरा** खेती लायक भूमि को ही कहते हैं। इसी **उर** से पृथ्वी के लिए **उर्वी** शब्द बना। **उर्वी** में जो विशदता का भाव है, वह मूलतः **उर्वरता** और समृद्धि के भाव से जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार संस्कृत **उर** वक्षस्थल के लिए प्रयुक्त होता था और **उरु** शब्द का अर्थ है विशद। ग्रीक भाषा का **एउरुस्** (विशद) इसी **उरु** का प्रतिरूप है जैसा कि मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में दिखाया है। संस्कृत में **उर्वर** की व्याख्या करने वाली **उर्** जैसी कोई क्रिया नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि आर्य-द्रविड़ परिवारों का साथ-साथ अध्ययन किये बिना किसी एक के विकास पर लिखना कितना कठिन है।

अब **प्** का एक ध्वनि प्रतिरूप **म्** भी है। जैसे द्रविड़ भाषाओं के **पल** में बहुलता का भाव है, वैसे ही तमिल **मल्** का सम्बन्ध उर्वरता, समृद्धि और शक्ति से है। तुलु भाषा में **मल्ल** शब्द का अर्थ है बड़ा। यह शब्द कृषि-प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। कुवि **मदलि**, कुइ **मड** का अर्थ है बोना। तमिल **मद** (समृद्ध होना), **मदप्पु** (भूमि के समान

उर्वर होना, वासनायुक्त होना), **मदम** (समृद्धि), **मदर्** (उर्वर होना) आदि शब्द उसी क्रिया से सम्बद्ध हैं जिसका कुइ प्रतिरूप **मड्** (बोना) है। **मद** आदि का एक अर्थ नशा करना, नशे में होना भी है। यह दो स्रोतों से आने वाले शब्द-मूलों को मिला देने से हुआ है। नशे वाले **मद** का सम्बन्ध **मधु** से है। सृजन वाली **मद्** क्रिया से पजि **माल्** (लड़की) और मलयालम **मोन्** (लड़का) रूप बने हैं।

ओकार वाले रूपों में कोत भाषा का **मोळ्** (लड़की) शब्द है जिससे बुन्देलखण्डी के **मोड़ा, मोड़ी** तुलनीय हैं और मराठी में इन्हीं से सम्बद्ध **मुलगा** (लड़का), **मुलगी** (लड़की), **मुलगें** (बच्चा) हैं। तोद भाषा में **मोत्** का अर्थ बच्चा, बेटा, बेटी, स्त्री सब कुछ है। यह **मोत्** रूप जर्मन **मुटॅर्**, अंग्रेजी **मदर्** (पुरानी अंग्रेजी **मोदोर्**) के सबसे नजदीक पहुँचता है। द्रविड़ भाषाओं में जब लिंग-भेद महत्वपूर्ण हुआ, तब इस तरह के भेद उत्पन्न हुए जैसे तुलु भाषा में **मोनु** (लड़का)। तमिल **मरम्** (वीरता), **मल्** (उर्वरता, शक्ति), **मद** (उर्वर होना), **मळ्** (युवा) आदि एक ही शृंखला के शब्द हैं। विवाह, वधू, विवाह से सम्बन्धित होने वाले व्यक्ति इस मूल क्रिया से बने हुए शब्दों द्वारा सूचित किये जाते हैं। तमिल **मरुवु** (संयुक्त होना, आलिगन करना), कोत **मर्ग्** (आसक्ति), तुलु **मर्च** (वशीकरण), तेलुगु **मरगु** (काम वासना), ब्राहुइ **मर्री** (पालतू), से फ्रेन्च भाषा के **मारी** (पति), अंग्रेज़ी **मैरी** (विवाह करना), **मैरिज्** (विवाह) की तुलना करना चाहिए। इनके पूर्वरूप लैटिन **मरीतो** (विवाहित होना), **मरीतुस्** (विवाह सम्बन्धी), **मरीत** (वधू, पत्नी) आदि शब्द हैं।

तमिल **वदुवइ** (वधू) संस्कृत **वधू** का प्रतिरूप है। इस तमिल शब्द को द्रविड़ भाषाओं के उन शब्दों के साथ दिया गया है जो **म्** से आरम्भ होते हैं। दोनों का उद्‌गम अलग-अलग है। **वधू** वह है जिसे दूसरा ले जाय। कन्नड़ **मद** (विवाह), **मदलिग** (वर), **मदवन्** (विवाह से सम्बन्धित व्यक्ति) का सम्बन्ध **मद्** क्रिया से है जो मूलतः कृषि क्रिया की सूचक है। यहाँ संस्कृत **मदन**—काम के पर्याय—का रहस्य प्रकट हो जाता है। **मदन** का सम्बन्ध नशे वाले **मद** से नहीं है, कृषि और रति वाली क्रिया से है। **मदन** खेती के पकने की ऋतु वसन्त को साथ लिए आता है, वसन्त कामदेव का सखा है, काम की पत्नी रति है, कथा-निर्माण की यह पद्धति स्वाभाविक है किन्तु **मद** शब्द का अर्थ मिलाप, या विवाह कन्नड़ जैसी द्रविड़ भाषाओं में ही है। तमिल **मदनि** (साली), **मदिनि** (जेठानी, साली, बड़े भाई की लड़की), तेलुगु, **वदिनिय, वदिनॅ** (बड़ी साली, भौजी आदि) इसी शृंखला में हैं।

लैटिन **मतेर्**, ग्रीक **मेतेर्**, दोरिक **मातेर्**, संस्कृत **मातृ** के प्रतिरूप हैं। लैटिन **मतेर्** का **अर्थ** गृहस्वामिनी भी है; **मात्रोन्** किसी भी विवाहित नारी को कहते थे (इसी का अंग्रेज़ी प्रतिरूप **मेट्रन्** है); **मात्रिक्स्** प्रजनन करने वाली नारी अथवा पशु है। **मात्रिमोनिउम्** (विवाह), अंग्रेज़ी **मैट्रिमनी** का पूर्वरूप है। लिथुआनियन भाषा में **मोतिन** (माता) के साथ, **मोतेरिस्** (नारी) शब्द भी है। रूसी भाषा में **मात्** (माता), बुल्गारियन भाषा का मारका (गर्भ, योनि, रानी) शब्द तुलनीय हैं।

तमिल भाषा में वृक्ष के लिए सामान्य शब्द **मरम्** है। ऊपर जिस तमिल **मरम्**

का अर्थ वीरता बताया गया है, उसमें अन्य प्रकार के ऱ् का व्यवहार होता है। यह भेद लेखन में होता है, बोलने में नहीं। दोनों तरह के **मरम्** (वृक्ष और वीरता) का सम्बन्ध **मद्** क्रिया से है। द्रविड़ भाषाओं में **मद्** से समृद्धि और वीरता का सम्बन्ध हम ऊपर देख ही चुके हैं; वृक्ष-सूचक **मरम्** का सम्बन्ध **मद** से है, इसका प्रमाण लिथुआनियन भाषा का **मॅदिस्** शब्द है जिसका अर्थ है वृक्ष। स्पष्ट ही द्रविड़ भाषाओं में स्पर्श ध्वनि द् ऱ् में परिवर्तित हो गई है। इन्डोयूरोपियन परिवार की एक भाषा में वृक्ष के लिए वही शब्द है जो द्रविड़ भाषाओं में है। तमिल **मरि** (पशु की सन्तान), कन्नड़ **मरि** (पशु की सन्तान, मनुष्य की सन्तान, पौधा), ब्राहुइ **मार्** (बेटा) अन्य रूपों के समान मानव-जगत्, पशु-जगत् और वनस्पति-संसार की मूल एकता सिद्ध करते हैं। इन शब्दों के साथ जो जन-समुदाय का बोध जुड़ जाता है, उसका उदाहरण कन्नड़ और तेलुगु का **मन्दि** शब्द है। इसका अर्थ है जन-समूह, किन्तु इसका एक अर्थ पशु-समूह और पशुओं को बाँधने या चरवाहों के रहने का स्थान भी है। तमिल **मन्दइ** का अर्थ पशु-समूह के अतिरिक्त गाँव की वह पंचायती भूमि भी हैं जहाँ पशु चरते हैं। अंग्रेज़ी में चरी की भूमि के लिए **मेडो** शब्द है जिसका पुराना अंग्रेज़ी रूप **मैद्** था। इसका सम्बन्ध उसी **मद्** क्रिया से हो सकता है। आवास अर्थ का सूचक तमिल **मदिल्** (दुर्ग, दीवार) है।

यहाँ संस्कृत **विश्** तथा उसके प्रतिरूपों पर विचार कर लेना चाहिए। इस शब्द का अर्थ है प्रविष्ट होना, बैठना, स्थिर रूप से बस्ती में रहना। घर, बस्ती के अलावा यह शब्द पूरे गण-राज्य के लिए भी प्रयुक्त होता था। **विशाम् पतिः** अर्थात् गण नायक। **जन** शब्द के समान **विश्** एक जन, तथा सामूहिक रूप से पूरे जन-समाज, दोनों के लिए प्रयुक्त होता था। इसका एक अर्थ सम्पत्ति भी है। **विशाल** और **विश्व** शब्दों के लिए मोनियर विलियम्स ने कल्पना की है कि सम्भवतः इनका सम्बन्ध **विश्** से है। मेरी समझ में यह कल्पना सही है। **विशाल** और **विश्व** दोनों में प्रसार का भाव है। **विश्व** का एक अर्थ है सब लोग, दूसरा अर्थ है संसार। इसके रूसी प्रतिरूप **वेस्** में केवल पहला अर्थ निहित है। कृषि और आवास से सम्बन्धित शब्द इसी प्रकार का अर्थ प्रसार प्रदर्शित करते हैं। **ग्राम** शब्द एक ओर देहात की बस्ती के लिए प्रयुक्त होता है, दूसरी ओर वह वस्तुओं, गुणों, मनुष्यों के समुदाय का सूचक भी है। यह शब्द उसी **कर, गर** क्रिया से बना है जिससे कृषि जैसे रूप बने थे। कर्षण वाली क्रिया लेखन-क्रिया भी है। अतः ग्रीक भाषा का **ग्राम्म** (रेखा, अक्षर) और **ग्राफो** (रेखा खींचना, लिखना) उसी क्रिया से व्युत्पन्न है जिससे संस्कृत **ग्राम** बना है। कुइ **ग्राम्ब** (अध्ययन करना) के समान ग्रीक **ग्राम्म** से कृषि-संसर्ग वाला भाव छूट गया है जो संस्कृत **ग्राम** में विद्यमान है। लैटिन भाषा में किसान के लिए **अग्रिकोल** शब्द है; **अग्रिकुल्तूरा** (कृषि, अंग्रेज़ी का **ऐग्रीकल्चर**) और **अगेर्** (गण समाज की भूमि); यहाँ वर्ण संकोच के बाद जो **अग्रि** रूप बना है, उसके साथ पूर्व रूप **अगेर्** भी दिखाई देता है। ग्रीक भाषा में इसके प्रतिरूप **अग्रोस्** का अर्थ खेत, देहात है। संस्कृत **अजिर** (मैदान) और अंग्रेज़ी **एकर** (एकड़) लैटिन **अगेर्** के प्रतिरूप हैं। **ग्राम** शब्द का मूल अर्थ हुआ जोती

हुई भूमि, फिर अर्थ-प्रसार से उस भूमि पर बसने वाले, बस्ती, समूह, और **सम्** उपसर्ग लगाने पर **संग्राम** से युद्ध आदि के भाव व्यक्त होने लगे।

इसी प्रकार यह सम्भव है कि **विश्** शब्द का मूल अर्थ खेती करना हो। द्रविड़ भाषाओं में इस शब्द के दो तरह के प्रतिरूप बनते हैं। एक तरह के प्रतिरूप वे हैं जहाँ **श्** के स्थान पर **ट्** या **ड्** प्राप्त होता है। संस्कृत में ही **विट्कुल** (वैश्य परिवार), **विट्पति** (जननायक) जैसे रूपों में यह परिवर्तन दिखाई देता है। दूसरी तरह के प्रतिरूप वे हैं जहाँ यह **श्** **क्** रूप में ग्रहण किया जाता है। तमिल **वीडु** (घर, बस्ती, संसार) का **विडु** (छोड़ना, मुक्त होना) क्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं है। द्रविड़ व्युत्पति कोश में दो भिन्न स्रोतों से आये हुए शब्दों को यहाँ भी मिला दिया गया है। मलयालम **वीडन्** (मुखिया), कन्नड़ **बिडदि** (आवास), **बीडु** (घर), तुलु **बीडु, बूडु** (भवन) **विश्** शब्द के अर्थ-प्रसार से मिलती-जुलती अर्थ-प्रक्रिया दिखाते हैं। **क्** वाले प्रतिरूपों में तमिल **ऑक्कल्** (सम्बन्धी), **ऑक्किलियन्** (कृपकों की एक जाति), कोत **ऑक्ल्** (परिवार), कन्नड़ **ऑक्कल्** (आवास, घर, किसान) तथा इसी प्रकार अन्य द्रविड़ भाषाओं में **क्** ध्वनि वाले प्रतिरूप हैं। मड़नी, माड़ते समय बैलों को हाँकने के लिए कोत भाषा में **ऑक्** शब्द है; पुनः **ऑक्ल्** अर्थात् अनाज की राशि को मड़नी माड़कर साफ करना। कन्नड़ **ऑक्कु** शब्द मड़नी के लिए, तथा अनाज को छड़ी से पीटकर साफ करने के लिए, प्रयुक्त होता है। मलयालम **ऑक्कुग** (गड्ढा करना), तुलु **ऑक्कुनि** (खरोंचना) का अर्थ संस्कृत **विश्** के प्रविष्ट करने वाले अर्थ के समान है। कुड़ुख **ऑक्ना** (बैठना), मल्तो **ऑकॅ** (बैठना, बसना) वैसा ही अर्थ व्यक्त करते हैं जैसे उप-विश् से होता है। तमिल **ऑक्क** (सब मिलकर), मलयालम **आक्क** (उप०, सब लोग) में विश्व वाला अर्थ है।

इन **क्** ध्वनि वाले शब्दों का ग्रीक प्रतिरूप **ओइकोस्** (घर, परिवार, जन) है; **ओइकेओ** अर्थात् बसना, निवास करना। ये ग्रीक शब्द उक्त द्रविड़ रूपों से सम्बद्ध हैं, इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं है। ग्रीक और द्रविड़ भाषाओं में **श्** की ध्वनि-परिवर्तन-प्रक्रिया एक ही है। ग्रीक **ओइकोस्** का शब्द-मूल **विश्** है जिसका प्राथमिक सम्बन्ध कृषि से है। **वैश्य** शब्द का अर्थ है धरती पर बस जाने वाला, किसान, व्यापारी। व्यापारी बनने से पहले व्यापार के लिए माल पैदा करना होगा; यह उत्पादन कृषि के प्रसार से ही सम्भव है। यह प्रसार तब होगा जब घुमन्तू जीवन छोड़कर गण-समाज खेती लायक भूमि पर या उसके पास बसेंगे। इसी कारण कृषि-कौशल के विकास के साथ आर्य-द्रविड़ परिवारों के शब्दतंत्र में गुणात्मक परिवर्तन होता है और यह परिवर्तन समस्त इंडोयूरोपियन परिवार के शब्दतंत्र को प्रभावित करता है।

तमिलनाडु में जो स्थानवाचक **नाडु** लगा है, वह कृषि से सम्बन्धित **मद्** क्रिया के रूपान्तर **नद्** से बना है। **नाडु** धरती, संसार, प्रदेश के अलावा उस भूमि का सूचक भी है जहाँ खेती की जाती है। **नाडन्** अर्थात् देशवासी, राजा; **नाट्टार्** अर्थात् किसी देश की जनता; **कर्णाटक** में यही **नाडु** है। उत्तर भारत में **करनाल** जैसे नाम निरर्थक जान पड़ते हैं। पंजाब और हरियाणा से द्रविड़ों का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। **नाडु** से

नाल रूप का विकास सहज है। दक्षिण भारत के **करनूल** नामक स्थान में **नूल** इसी **नाल** का प्रतिरूप है। **नूल** शब्द द्रविड़ भाषाओं में सूत के लिए व्यापक रूप से प्रयुक्त होता है; कुइ भाषा में **नूल्** का प्रतिरूप **नूडु** है। अनेक ऐसे शब्दों के समान यहाँ भी दूसरे वर्ण में **ड्** है जो परिवर्तित होकर अनेक द्रविड़ भाषाओं में **र्** या **ल्** बना है। **सूत** से धरती का कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु **सूत** की **सू** क्रिया कृषि के अर्थ की द्योतक है। कपड़ा सीना और धरती में गड्ढा करना मूलतः एक जैसी क्रियाएँ हैं। इसीलिए एक ही **सू** क्रिया से बोने और सीने का अर्थ व्यक्त हुआ। द्रविड़ भाषाओं के **नूल्** **नूड्** रूप से अंग्रेज़ी **नीडल्** (सुई) का सम्बन्ध है। जैसे **सूची** शब्द में **सू** (छेद करना) क्रिया है, वैसे ही **नीडल्** में **नी**, **नूड्** में **नू** क्रिया है; इसका मूल अर्थ छेद करना, प्रविष्ट करना था। तमिल क्रिया **नुऴइ** का ठीक यही अर्थ है और प्रथम वर्ण में दीर्घ स्वर का भी उपयोग होता है : **नूऴइ** अर्थात् छेद। द्रविड़ भाषाओं में इस क्रिया का व्यापक व्यवहार होता है। आर्य भाषाओं की **नथ्** क्रिया इसी वर्ग की है। इससे मिलती-जुलती एक अन्य तमिल क्रिया है **नॅट्टु**, **नॅरु** जिसका अर्थ है प्रविष्ट करना। कन्नड़ **नॅरॅ** (संयुक्त होना, सम्भोग करना), **नॅरवि** (जन समुदाय), तमिल **नरि** (भीड़ लगाना), **नेच्चि** (प्रेम), **निरम्** (वक्ष), तुलु **नॅरवु** (पुरुष के गुप्त अंग), **निरवु** (गुदा), गोंडी **नड़म्** (पशुओं का लिंग), तमिल **निरइ** (समृद्ध होना), **निलम्** (क्षेत्र, धरती) एक ही शृंखला के शब्द प्रतीत होते हैं। तमिल क्रिया **निल्** का अर्थ खड़े होना, स्थिर होना है। यह भिन्न क्रिया है। इसके साथ द्रविड़-व्युत्पत्ति-कोश में जो अन्य शब्द दिये गये हैं, वे कृषि और आवास से सम्बद्ध हैं। तमिल **निलइ** (आवास), **निरु** (सृजन करना, निर्माण करना), तोद **नॅऌप्** (गृह-भूमि), कन्नड़ **निलवु** (आवास) आदि रूपों में निवास के साथ जो निर्माण का भाव भी सम्बद्ध है, उसका खड़े होने से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त तमिल **निर्** क्रिया के दो प्रकार के अर्थ हैं : (१) समृद्ध होना, भीड़ लगाना, परिपक्व होना; इसी के साथ मलयालम निरवुग (धरती को समतल करना) रूप भी है, (२) समान रूप से विभाजित करना, व्यवस्थित करना; इसी से तमिल शब्द **निरल्** (एक पंक्ति में रखना), **निरइ** (उप०) मलयालम **निर** (पंक्ति)। **सारि** के समान **निर** में यह दूसरी तरह का अर्थ-विकास हुआ है। स्पष्ट ही हिन्दी शब्द **निराई**, **निराना** का मूल अर्थ खेत में पौधों को पंक्तिबद्ध करना है। द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में **निर** शब्द अलग-अलग दो जगह दिखाया गया है। वास्तव में दोनों जगह एक ही शब्द है और दोनों तरह के अर्थ वैसे ही एक दूसरे से सम्बद्ध हैं जैसे अन्य उदाहरणों में हम देख चुके हैं।

नद् क्रियामूल का एक प्रतिरूप **नंद्** होगा। तमिल **नन्दु** का अर्थ है उर्वर होना, समृद्ध होना। तमिल **नम्बु** (कामना) और **नच्चु** (उप०) की मूल क्रिया वही है जो **नन्दु** में है। द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में **नाडु** शब्द दो जगह दिखाया गया है। एक जगह उसका अर्थ है कामना करना, जानना, ढूँढ़ना; और दूसरी जगह अर्थ है प्रदेश, भूमि। दोनों शब्द एक ही हैं, दो भिन्न लगने वाले अर्थ सम्बद्ध हैं। **नाडु** के क्रियामूल **नद्** में जो कामना वाला अर्थ है, वही संस्कृत **आनन्द** की **नन्द्** क्रिया में है। तमिल क्रिया **नडवु** का अर्थ है पौधे रोपना और **नाट्टु** का अर्थ है प्रविष्ट करना। **नाट्टु** का

तेलुगु प्रतिरूप है **नाडु** (प्रविष्ट होना)। इस क्रम में तमिल **नड्बु** (प्रेम) और **नट्टार्** (मित्र सम्बन्धी) शब्द अन्य उदाहरणों के समान कृषि और काम-सम्बन्धी भावनाओं और क्रियाओं का सम्बन्ध व्यक्त करते हैं।

स्थानवाचक **नाटु**, **नाडु** का पूर्वरूप **नादु** था, इसका प्रमाण यह है कि कुइ में **नाडु** का प्रतिरूप **नाजु** है। ट्-ड् के ज् में बदलने की कोई सम्भावना नहीं है; द् ही ड् और ज् में बदल सकता है। **नादु** रूप **नद्** क्रिया से बनेगा। **नाजु** (गाँव) का बहुवचन रूप **नास्क** है जहाँ क बहुत्वसूचक प्रत्यय है और **नास्** **नाज्-नाज्** का रूपान्तर है। गोंडी में **नाडु** का प्रतिरूप **नार्** (गाँव) है। द्रविड़ भाषाओं में **नाडु**-वर्ग के जितने शब्द हैं, सभी का सम्बन्ध खेती और देहात से है।

हिन्दी के **नाज** और **अनाज** शब्द कुइ जैसी द्रविड़ भाषाओं के **नाजु** रूप से सम्बद्ध हो सकते हैं।

अर्थ-प्रसार की इस प्रक्रिया के उदाहरणों में शब्दों का एक वर्ग है जो **त्** से आरम्भ होता है। तमिल **तुर** (हाँकना, प्रविष्ट करना) तेलुगु **ओचु** (प्रविष्ट करना), पर्जि **तुकिप्** (धक्का देना), तमिल **तुर** (छेद करना), मलयालम **तुर** (छेद)—कोश में दो **तुर** शब्द अलग-अलग दिखाये गये हैं। वास्तव में एक ही शब्द है, दो तरह के अर्थ परस्पर संयुक्त हैं। तमिल **तुरु** (भीड़ लगाना), **तुन्नियार्** (मित्र, सम्बन्धी), मलयालम **तुरुग** (भीड़ लगाना, धक्का देना), कोत **तुर्क्** (छेद में प्रविष्ट करना), कन्नड़ **तुरुगु** (समृद्ध होना), **तुरुबु** (प्रविष्ट करना) आदि रूपों में वैसा ही अर्थ-प्रसार है जैसा पहले हमने देखा है। तमिल **तॉळ्** (छेद करना), कोत **तॉळ्** (नारी की जननेन्द्रिय), कन्नड़ **तगलु** (सम्भोग करना), तेलुगु **तगुलु** (कामना), तमिल **तऴु** (आलिंगन), **तऴुवु** (सम्भोग करना) आदि शब्द कृषि और प्रजनन क्रियाओं का सम्बन्ध प्रदर्शित करते हैं। तमिल **तोण्डु** (खोदना), **तॉडु** (खोदना, खेत), **तोट्टम्** (वाटिका), तमिल **तॉट्टि** (गाँव), **ताऴु** (विवाहित जीवन, पशु बाँधने का स्थान), **ताऴुदि** (जनसमुदाय), **ताऴिल्** (कर्म), **तॉऴुवर्** (हलवाहा), **तइ** (सीना), पुनः तइ (पेड़), **तॅळि** (बोना), मलयालम **तॉत्तु** (स्तन)—इस शब्द-शृंखला में लगभग वे सभी अर्थ आ जाते हैं जो **प्**, **म्** आदि ध्वनियों से आरम्भ होने वाले शब्दों में हमने देखे थे।

समाज और परिवार के क्षेत्र में तमिल **तऴ्ळइ** (माता), तेलुगु **तल्लि** (उप०), कोलमि **ताक्** (पिता), तमिल **तात्ता** (पिता), मलयालम **तादन्** (उप०), कन्नड़ **तात** (उप०), उसी **त्**-मूलक सर्जनार्थी क्रिया से व्युत्पन्न है। द्रविड़ भाषा परिवार में **प्** के साथ **त्** से आरम्भ होने वाले शब्दों की पूरी शृंखला विद्यमान है। संस्कृत **तात** की व्याख्या इसी शृंखला को देखकर की जा सकती है। **तात** शब्द पिता और पुत्र दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। द्रविड़ भाषाओं में पिता वाला अर्थ विशिष्ट हो गया है। तमिल **तुणइ** का अर्थ प्रसार देखने योग्य है। पति, पत्नी, भाई, बहन, साथी, विवाह-सम्बन्ध—ये सारे अर्थ एक ही शब्द से व्यक्त होते हैं।

तात के अतिरिक्त संस्कृत **तरु** और **दारु** शब्द इसी वर्ग में आते हैं। तमिल **तइ** (पेड़) का उल्लेख हो चुका है। तमिल **तॉरु** (गायों का झुण्ड), कन्नड़ **तुरु** (गाय),

तेलुगु **तॉर्रु** (उप०) देखकर संस्कृत **धेनु** शब्द याद आता है। जिस **धे** क्रिया से **धेनु** शब्द बना है, उसी के **धा** वाले प्रतिरूप से **धान्य, धाय, धान** आदि शब्द बने प्रतीत होते हैं। **धे** क्रिया का अर्थ दूध पीना लिखा है। ग्रीक भाषा में इसका व्यापक व्यवहार होता था। **थेलज़ो** (दूध पिलाना), **थेले** (स्तन), **थेलेश्रो** (फलना-फूलना), **थेलु** (मादा), **थेलुस्** (उर्वर, नारी)—इन रूपों में अर्थ-प्रसार की वैसी ही प्रक्रिया है जैसी द्रविड़ भाषाओं में। लैटिन में महाप्राण **थ्** ध्वनि नहीं है। अतः ग्रीक शब्दों के प्रतिरूप यहाँ **फ़्** से आरम्भ होते हैं। अंग्रेज़ी **फीमेल** लैटिन **फेमिना** का प्रतिरूप है। अंग्रेज़ी **फर्टाइल** (उर्वर) लैटिन **फ़र्तिलिस्** का प्रतिरूप है। ग्रीक और लैटिन भाषाओं में नारी, उर्वरता आदि के अर्थ एक ही शब्दमूल में संयुक्त दिखाये हैं।

प्राचीन मानव-समाज कृषि और प्रजनन की क्रियाओं का सम्बन्ध चन्द्रमा से जोड़ते थे। यह एक अत्यन्त रोचक तथ्य है कि जिन शब्द-मूलों का उल्लेख हमने ऊपर किया है, वे बहुधा चन्द्रमा का अर्थ भी व्यक्त करते हैं। तमिल **तिङ्गळ्** का अर्थ है चन्द्रमा, महीना। इस शृंखला के अन्य द्रविड़ शब्दों में दोनों अर्थ प्रायः साथ-साथ चलते हैं। संस्कृत में चन्द्रमा के अनुसार दिनों की जो गणना होती है, उसमें **तिथि** शब्द का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत में इसकी मूल क्रिया अलक्षित है। द्रविड़ भाषाओं में वह सुलभ है। चन्द्रमा के घटने-बढ़ने के साथ जो दो पखवारे पूरे होते हैं, वे स्त्रियों के मासिक धर्म की अवधि भी होते हैं। **ती** क्रिया से इस अर्थ के सूचक तमिल **तीटु, तीट्टम्, तीण्डल्** शब्द बनते हैं। मासिक धर्म में जो अपवित्रता का भाव है, वह कोत और तोद **तीट्** शब्द में विद्यमान है। संस्कृत **तिथि** में **ति** शब्द-मूल चन्द्रवाचक है। जैसे सूर्य का अर्थ देने वाले शब्द-मूलों से दिन का अर्थ देने वाले शब्द सम्बद्ध हैं, विशेषतः द्रविड़ भाषाओं में, वैसे ही चन्द्रवाचक **ति** से **तिथि** शब्द बना है। तमिल में एक शब्द **चाण्डु** है जिसका अर्थ है स्त्रियों का मासिक स्राव। मलयालम में इसी शब्द का अर्थ वीर्य दिया हुआ है। जो चन्द्र से सम्बन्धित हो, वह चान्द्र अथवा चाण्डु।

प् से आरम्भ होने वाले इस शृंखला के शब्दों में जहाँ तमिल **पॅरु** का अर्थ जन्म देना है, **पिर** का अर्थ पैदा होना है, वहाँ **पिरइ** का अर्थ नया चाँद है। इसी प्रकार मलयालम **पिर** का भी यही अर्थ है। **न्** से आरम्भ होने वाले कृषि-प्रजनन सम्बन्धी शब्दों में तमिल **निलवु** (चन्द्रमा), **निला** (महीना) हैं। **नॅल** रूप द्रविड़ भाषाओं का मुख्य चन्द्रसूचक शब्द है; पूर्ण चन्द्र तथा मास के लिए **मति** या **मदि** शब्द केवल तमिल और मलयालम में प्रयुक्त होता है। इस **मदि** का सम्बन्ध **चन्द्रमस्** के **मस्** से है। **मत्** क्रिया के प्रसार को देखते हुए प्रतीत होता है कि मूल शब्द में **त्** ध्वनि थी, **स्** नहीं। जहाँ अनेक शब्दों की **स्** ध्वनि द्रविड़ भाषाओं में **त्** रूप में ग्रहण की जाती है, वहाँ **मदि** रूप मूल स्पर्श ध्वनि बनाये हुए हैं, संस्कृत में वह सकार में परिवर्तित हुई है। **तिथि** के समानान्तर एक संस्कृत शब्द **तथ** है जिसका अर्थ अग्नि, प्रेम, समय, शरद है। **तथ** और **तिथि** परस्पर सम्बद्ध हैं; दोनों का सम्बन्ध **त्** से आरम्भ होने वाले चन्द्र-वाचक शब्द से है। चन्द्रवाचक ये अनेक शब्द मास का अर्थ देते हैं अथवा मासवाचक शब्द बनाने के लिए उनका प्रयोग होता है। अंग्रेज़ी **मन्थ** मत्—मन् शब्द-मूल से बना

है। चन्द्रमा अमृत का स्रोत माना गया है। जितने मधुर पदार्थ हैं, उनका मूल स्रोत प्राचीन गण समाजों के लिए चन्द्रमा था। सोमरस का सम्बन्ध भी चन्द्रमा से था। सोम शब्द चन्द्रवाचक था ही। **मधु** शब्द मीठी खाद्य या पेय वस्तु के लिए प्रयुक्त होता था। **मधु** शब्द सोम का भी पर्याय है। मेरा अनुमान है कि मधु का मूल अर्थ चन्द्रमा था। **सोम** और **मधु** दोनों पेय हैं, दोनों का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। मधुर पेय जब नशे के लिए प्रयुक्त होने लगा, तब इसी **मधु** की मूल क्रिया **मध्** से **मद्** का विकास हुआ। सम्भव है **मद** तैयार करने में द्रव पदार्थ को मथना आवश्यक रहा हो, अतः **मध्** से **मथ्** क्रिया बनी हो।

संस्कृत में **मस्** जैसा कोई शब्द नहीं है किन्तु **चन्द्रमस्** दो शब्दों के योग से बना है, **चन्द्र** और **मस्**, और दोनों का अर्थ एक ही है। इस **मस्** का एक प्रतिरूप **मास** था जो संस्कृत में व्यापक रूप से प्रयुक्त होता था। आधुनिक आर्य भाषाओं में **मास** शब्द अब केवल महीने के लिए प्रयुक्त होता है। **पूर्णमासी** में **मास** शब्द चन्द्रवाचक है। मस्, **मास्** का प्रतिरूप **मा** भी किसी समय प्रचलित रहा होगा। **अमा** वह रात्रि है जिसमें चन्द्रमा न दिखाई दे।

चन्द्रमस् के समान **चन्द्रमा** दो चन्द्रवाचक शब्दों के मेल से बना है। ग्रीक भाषा में **मेन्, मेने** तथा लैटिन **मेन** संस्कृत **मस्** और **मास्** के प्रतिरूप हैं। **मस्** रूप में **न्** का निवेश हुआ, तब **मन्स्** जैसा रूप बना। इसी से **मेन्, मेने** जैसे रूप बने। लैटिन में एक रूप **मेन्स्** भी है जिसका अर्थ है चन्द्रमा; इसी से **मेन्सिस्** (महीना अथवा वर्ष) रूप बना। ग्रीक भाषा-समुदाय में इयोलिक और दोरिक भाषाओं में **मेइस्** (चन्द्र) रूप है जहाँ अन्तर्निविष्ट **न्** नहीं है। परिनिष्ठित ग्रीक के **मेन्** शब्द का सम्प्रदान, बहुवचन रूप **मेसि** है। इन रूपों से विदित होता है कि **मस्** शब्द-मूल में न् बाद को निविष्ट हुआ है। लैटिन **मेन्स्त्रुअ** का अर्थ स्त्रियों का मासिक स्राव है।

आदिम गण समाजों के लिए चन्द्रमा का विशेष सम्बन्ध मनुष्य के मन से था। ग्रीक शब्द **मनिअ** का अर्थ है प्रमत्त होना। पागल के लिए अंग्रेज़ी का **मैड** शब्द **मत्त** का ही प्रतिरूप है। **मैड** और **मत्त** में चन्द्रमा का संसर्ग छूट गया है। किन्तु अंग्रेज़ी **लुनैटिक** का **लूना** (चन्द्र) से सम्बन्ध बहुत स्पष्ट है, लैटिन **लून** (चन्द्र, महीना), **लूनातिकुस्** (पागल)। **मधु** पीकर आदमी **मत्त** हो जाता है; **मद** के अलावा उस पर चन्द्रमा (तमिल **मदि**) का प्रभाव भी होता है। **मधु** और चन्द्रमा का सम्बन्ध पुष्ट होता प्रतीत होता है। लैटिन **मेन्स्** (मन, समझना), **मन्तिओ** (स्मरण करना) उसी चन्द्रवाचक शब्द-मूल **मत्** से व्युत्पन्न हैं। संस्कृत शब्द **मन्** इसी शृंखला में है। **मन्** का अर्थ है सोचना, **मत** वह जो सोचा जाय, **मति** अर्थात् विचार, धारणा, वह जो सोचने का काम करे, विवेक, बुद्धि। इसी **मति** का प्रतिरूप **मनस्** अथवा **मन** है। **मन्** शब्द-मूल की रचना या तो **मत्** के **त्** को **न्** में परिवर्तित करके हुई है, या **मस्** में अतिरिक्त **न्** के निवेश से। **मनसः, मनांसि** जैसे रूपों को देखकर दूसरी सम्भावना उचित जान पड़ती है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में **मति** और **मन** जैसे रूप देखकर कल्पना की गई

कि आदि इन्डोयूरोपियन भाषा में एक ऐसी ध्वनि थी जो कुछ भाषाओं में **न्** व्यंजन बनती थी, और कुछ में स्वर। यह कल्पना निराधार है। नकारयुक्त और नकारहीन दोनों प्रकार के रूप भारतीय आर्य भाषा संस्कृत तथा भारत से बाहर ग्रीक और लैटिन, दोनों ओर हैं। चन्द्रवाचक **मस्**, **मास्**, **मति** से इन शब्दों का सम्बन्ध जान लेने पर कोई समस्या नहीं रह जाती। **मति**, **मत** जैसे शब्दों में **न्** का निवेश नहीं हुआ; तमिल **मदि** और संस्कृत मति नकारहीन शब्द के रूप हैं। तमिल **मदि** अथवा **मति** का अर्थ चन्द्रमा है, यह तथ्य संस्कृत **मति** (बुद्धि) के अर्थ-प्रसार को समझने में सहायक होता है।

भारतीय भाषाओं का अत्यन्त व्यापक रूप से व्यवहृत होने वाला **अम्मा** शब्द है। द्रविड़ भाषाओं में इसका व्यवहार होता है, आर्य भाषाओं में **माता** शब्द अधिक शिष्ट मान लिया गया है। **माता** और **अम्मा** में कौन रूप अधिक पुराना है, यह कहना कठिन है। सम्भवतः दोनों का स्रोत एक ही शब्द मूल है। तमिल में **अम्बुलि** शब्द का अर्थ है चन्द्रमा। **मत्** शब्दमूल से कृषि, प्रजनन और चन्द्रमा का सम्बन्ध हम देख चुके हैं। अतः अम्बुलि और तमिल **मदि** एक-दूसरे के पर्याय हैं। या तो ये दोनों स्वतन्त्र शब्द हैं, या फिर **अ** सर्वनाम जोड़ने पर **अम्बुलि**, **अम्मा** जैसे रूप बने हैं। कुछ द्रविड़ भाषाओं में **अम्म** शब्द का अर्थ जल है। जल, चन्द्रमा, प्रजनन, ये तीनों प्रपंच प्राचीन मानव-समाजों के लिए संयुक्त हैं। संस्कृत में **अम्बु** (जल) तथा **अम्बा** (माता) एक-दूसरे से असम्बद्ध नहीं हैं। द्रविड़ भाषाओं में **अम्ब** रूप का अभाव नहीं है यथा कन्नड़ **अम्ब**, **अम्बॆ** (माता)। जल, चन्द्र, मातृत्व, इन तीन धारणाओं का सम्बन्ध स्पष्ट है। तमिल **अम्मम्** का अर्थ स्तन है। **तोय** के समान **अम्ब**, **अम्म** दूध तथा जल दोनों का अर्थ देता है। द्रविड़ व्युत्पत्ति कोष में तमिल **अम्मम्** का मराठी प्रतिरूप **अमा** (स्तन) दिया हुआ है।

आर्य-द्रविड़ भाषाओं की पारिवारिक शब्दावली का प्रसार दूर-दूर तक हुआ था। अम्मा के समानान्तर तमिल **अक्का** है जो बड़ी बहन अथवा अपने से बड़ी स्त्री के लिए प्रयुक्त होता है। इस शृंखला के अन्य शब्दों के साथ द्रविड़ व्युत्पत्ति कोष में संस्कृत **अक्का** (माता), प्राकृत **अक्का** (बहन) शब्द दिये गये हैं। **अक्का** संस्कृत का प्रचलित शब्द नहीं है किन्तु जिस समय व्याकरण और कोश निर्माण द्वारा संस्कृत को व्यवस्थित किया जा रहा था, उस समय उत्तर भारत में **अक्का** शब्द अवश्य प्रचलित था। तमिल **अक्का** के प्रतिरूप अन्य द्रविड़ भाषाओं में ह्रस्व अकारान्त **अक्क** जैसे रूप भी हैं। जैसे तुलु **अम्मॆ** का अर्थ पिता है, वैसे ही पर्जि **अक्क** का अर्थ नाना है और कुइ **अकॆ**, कुवि **अक्कु** पितामह के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। तमिल **अत्तन्** (पिता) के साथ **अत्तइ** (बुआ, सास, महिला) नारीवाचक शब्द भी है। इस शब्द-शृंखला के साथ द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में संस्कृत **अत्ता** (मा, बुआ, बड़ी बहन) शब्द दिया हुआ है, और प्राकृत **अत्ता** के साथ, मा और सास के अलावा, पुरुषवाचक फूफा का अर्थ भी दिया गया है। यह शब्द भी संस्कृत में प्रचलित नहीं है किन्तु किसी समय उत्तर भारत में इसका भी व्यापक व्यवहार होता होगा।

अत्तन् के साथ पिता के लिए तमिल **अच्चन्** (पिता) स्मरणीय है। मलयालम में **अच्चन्** (पिता) के अतिरिक्त **अच्च, अच्चि** (मा) रूप दिये हुए हैं। इनके प्रतिरूप कन्नड़ में **अज्ज** (पितामह), **अज्जि** (मातामही) हैं। हिन्दी और उसकी बोलियों में **आजा** (दादा), **आजी** (दादी) इसी वर्ग में हैं। **अत्तन्, अप्पन्, अक्का** जैसे रूपों की एक पूरी शृंखला है और **अच्चन्, अच्चि, अज्ज, अज्जि** उसी शृंखला की कड़ियाँ हैं।

अप्पन्, अप्पु (पिता), कुइ **आपा** (लड़का), **आपि** (लड़की), कुवि **अप्प** (दादी), तेलुगु **अप्प** (पिता या माता), तमिल **अप्पि** (स्वामिनी)—इन रूपों में भी पिता, माता, पुत्र आदि का अर्थ व्यापक रूप से निहित है। तमिल **अन्नइ** मा और बहन के लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द है। इसी के साथ तमिल **अण्णा** (पिता, बड़ा भाई) और कन्नड़ **अण्णु** (नारी), तेलुगु **अन्नु** (उप०) का भी उल्लेख करना चाहिए।

ग्रीक भाषा में **अत्त** शब्द पिता और अपने से बड़े लोगों के लिए प्रयुक्त होता था। द्रविड़ भाषाओं के **अत्तन्, अत्ता** आदि से इसका सम्बन्ध असंदिग्ध है। कोश में इसके समानान्तर पितावाचक **अप्प, पप्प, अप्फ** शब्द दिये हुए हैं। इन्हें बच्चों का विशेष शब्द बताया गया है। मानक शब्द **पतेर्** का उच्चारण न कर पाने पर मानों वे इस तरह की ध्वनियाँ निकालते हों। **पतेर्** का शिशु सुलभ अपभ्रंश **पप्प** समझ में आता है किन्तु **अप्प** और **अत्त** के प्रारम्भिक वर्ण में **अ** स्वर अत्यन्त स्पष्ट है। आर्य भाषाओं में **अप्प, अत्त** नहीं कहते यद्यपि यहाँ भी मानक शब्द पिता है। ग्रीक **अप्प** और तमिल **अप्पन्** एक ही शब्द हैं। ग्रीक **मम्म** शब्द स्तन के लिए प्रयुक्त होता था, **मम्मो** अर्थात् दूध पिलाना, **मम्मलिस्** अर्थात् स्तन्यजीव। मूल क्रिया से जो समृद्धि का भाव जुड़ा हुआ था, उससे धन-सम्पत्ति के देवता का नाम **मम्मोन** (अंग्रेज़ी का **मैमन**) पड़ा। **अम्मा, अप्पन्, अत्तन्, अक्का** की पूरी शृंखला द्रविड़ भाषाओं में भी है। उसकी कुछ कड़ियाँ ग्रीक और लैटिन में हैं।

५. मग, भरत, आन्ध्र

अनेक गण समाजों की भाषा की एक विशेषता यह है कि जो शब्द पुरुष, युवा, पुत्र के लिए प्रयुक्त होता है, वह पूरे गण समाज का नाम बन जाता है। द्रविड़ भाषाओं का **मक, मग** ऐसा ही शब्द है जो **मगध** में अपना गणवाचक रूप दिखाता है। तमिल **मग** पुत्र और पुत्री दोनों के लिए प्रयुक्त होता है; **मगन्** का अर्थ पुत्र के अलावा योद्धा, पति भी है। इसका बहुवचन रूप **मक्कळ्** हिन्दी शब्द जनता का अर्थ देता है। तमिल **मगन्मइ** का अर्थ है पुरुषत्व, पुत्रत्व। तेलुगु और कन्नड़ में **मग** के अतिरिक्त इसका प्रतिरूप **मोग** भी है; तोद में **मोख्** रूप है। द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में **मग** के साथ **मोत्, मोळ,** आदि भिन्न स्रोत से आये हुए शब्द मिला दिये गये हैं। **मग** का मूल रूप **मघवन्** का **मघ** है; कोलमि में **मग्वन्** (पति) शब्द **मघवन्** से मिलता-जुलता है। **मघ** शब्द शक्ति और समृद्धि का सूचक है; **मघ** नक्षत्र और **माघ** मास इस समृद्धि-भाव से जुड़े हैं। **मग** शब्द का प्रसार यूरुप तक हुआ। ब्रुगमन ने गौथिक भाषा के **मगुस्** (लड़का), ऐंग्लोसैक्सन **मगु** (उप०) का उल्लेख किया है। पुरानी आइरिश में **मक्** शब्द पुत्र के

लिए प्रयुक्त होता था। स्काटलैण्ड की वर्तमान गेलिक भाषा में पुत्र के लिए **मक्** और **मिक्** शब्द हैं। वेल्स की भाषा में **मक्वि, मक्व्य्** का अर्थ युवा, छोकरा है। स्काटलैण्ड के लोगों के नाम के साथ बहुधा जो **मैक** लगा रहता है, वह **मक** का ही रूपान्तर है। **मैकडौनैल्ड, मैक्फ़र्सन, मैक्मिलन** क्रमशः डौनैल्ड, फ़र्सन, मिलन के वंशज हुए। शक्ति और क्षमता के अर्थ में **मघ** के रूपान्तर **मग** का व्यवहार स्लाव-जर्मन समुदाय की भाषाओं में होता है किन्तु द्रविड़ भाषाओं की तरह पुत्र वाला अर्थ केवल केल्त समुदाय की भाषाओं में है। सम्भवतः यूरुप की भाषाओं में **मगध** के रूपान्तर **मगथ** का भी चलन था क्योंकि ब्रुगमन ने गौथिक भाषा के **मगथि** (युवती) रूप का उल्लेख किया है।

संस्कृत में **भर** शब्द का एक अर्थ है युद्ध, दूसरा अर्थ है जन-समुदाय (अर्थात् गण) और तीसरा अर्थ है भरण-पोषण। ये अर्थ परस्पर विरोधी, एक-दूसरे से नितान्त भिन्न जान पड़ते हैं। गणवाचक शब्दों में अन्यत्र भी ऐसा विरोध दिखाई देता है। अतः **भर** का अर्थ युद्ध और भरण-पोषण दोनों हों तो यह इस शब्द की अपनी विशेषता नहीं है। **भर** शब्द गणवाचक था; **जन** के समान वह किसी भी गण के लिए प्रयुक्त हो सकता था, साथ ही वह उस गणविशेष का सूचक था जो **भरत** नाम से विख्यात हुआ। इसका अर्थ पुरुष, पुत्र, योद्धा भी था, यह इन्डोयूरोपियन परिवार की अन्य भाषाओं में इसके प्रतिरूपों से ज्ञात होता है। पुरानी आइरिश में **फ़ॅर्**—पुरुष; स्काटलैण्ड की गेलिक भाषा में **फ़िर्, फ़ॅअर्**—पुरुष; गौथिक में **बार्न्**—बच्चा; लिथुआनियन में **बॅर्नस्**—सेवक, **बॅर्नेलिस्**—छोटा लड़का। लैटिन **फ़ेरिओ** का अर्थ है वध करना; यहाँ **भर** का युद्ध वाला अर्थ है। आइसलैण्ड की पुरानी भाषा में **बॅर्**—मारना; यहाँ **भ्** का सघोष अल्पप्राण रूप है। पुरानी स्लाव भाषा में **बोर्य**—मैं युद्ध करता हूँ; आधुनिक रूसी में **बॉरोत्स्या**—युद्ध करना; **बोर्बा**—युद्ध, संघर्ष; **बॉर्येत्स्**—योद्धा। लैटिन में सघोष अल्पप्राण ध्वनि वाला रूप **बॅल्लो**—युद्ध करना भी है; **बॅल्लतोर्**—योद्धा। इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि **मघ** के समान **भर** वीरता, समृद्धि, पुरुषत्व आदि के अर्थ व्यक्त करता था। इसी **भर** का रूपान्तर तमिल **पोर्**—युद्ध, **पॉरु**—युद्ध करना है। **भर** के आधार पर विकसित **पुरु** इतना प्रचलित हुआ कि **भर** का गणवाचक अर्थ लुप्त हो गया। **पुरुष** और **पुरुषत्व** में **पुरु** की प्रतिष्ठा हुई किन्तु **भरत, भारत** और **महाभारत** में **भर** अडिग और अचल बना रहा।

गणसमाज के लिए ग्रीक भाषा का एक शब्द है **फ्रात्र**। इसका एक वैकल्पिक रूप **फ्रातेर्** है, दूसरा है **फ्रात्रिअ**। इओनिक में **फ्रेतेर्**, दोरिक में **पात्र** प्रतिरूप हैं। ग्रीक भाषा-समुदाय के इन शब्दों का सम्बन्ध **भर** से है। **फ्रात्र** का अर्थ है कबीला। गणसमाजों के संगठन की विशेषता यह है कि उसके सभी सदस्य एक-दूसरे के भैयाचार होते हैं। **फ्रात्र** का सदस्य **फ्रातेर्, फ्रातोर्, फ्रात्रिकोस्** कहलाता था। ग्रीक **फ्रातेर्** संस्कृत **भ्रातृ** का प्रतिरूप है। ग्रीक प्रतिरूप में **भर** का गणवाचक अर्थ सुरक्षित है। **फ्रात्रिअ** रूप **भ्रातृ** से मिलता-जुलता है। एक ही **भर** अर्थात् गणसमाज के सदस्य **भ्रातृ** थे, एक ही बिरादरी के थे। **भ्रातृ** सहोदर भाई नहीं थे; वे सब एक ही गण के सदस्य

थे। दुर्योधन आदि सौ भाई आपस में **भ्रातृ** थे, सहोदर नहीं। सहोदर भाई के लिए ग्रीक भाषा में **फ्रातेर्** से भिन्न **अदेल्फोस्** शब्द था। इस प्रकार गणवाचक भर के आधार पर भ्रातृ शब्द की व्याख्या की जा सकती है। इस शब्द के प्रतिरूप इन्डो-यूरोपियन परिवार की भाषाओं में दूर-दूर तक फैले हुए हैं, यह प्राचीन भरतगण के असाधारण प्रभाव का प्रमाण है। **भर** और **भ्रातृ** शब्द भरतों की गणभाषा के शब्द थे, इसमें सन्देह नहीं हो सकता।

ग्रीक **फ्रात्रिअ** का वही अर्थ है जो लैटिन **कूरिअ** का है। दस गोत्रों के समवाय को **कूरिअ** कहते थे। **कूरो** क्रिया में भरण-पोषण करने, दूसरे की देखभाल करने का भाव था। संरक्षक के लिए **कूरातोर्** शब्द था। ग्रीक **कुरोस्** का अर्थ सार्वभौम सत्ता है; **कुरिओस्** अर्थात् मनुष्यों का स्वामी। **कुरोस्** ईरान का राजा था, ग्रीक साहित्य में जिस पर वीर-पूजा के भाव से बहुत कुछ लिखा गया है। ये शब्द भारतीय **कुरु** की व्याख्या करते हैं। गण सदस्यता से लेकर भरण-पोषण और शासन के भाव इस शब्द से जुड़े हैं। इस शब्द का प्रयोग ईरान से लेकर यूनान तक होता था किन्तु जिस गणसमाज का नाम कुरु ऐतिहासिक रूप से निश्चित है, वह भारत में रहता था।

कुरु के समान भारत के एक गणसमाज का नाम **पुरु** था। ईरान के **कुरु** की तरह भारत में **पुरु** नाम के एक राजा थे। **पुरुष** शब्द में जो वीरता का भाव है, वह **पुरु** में भी है। कन्नड़ **पुरि** का अर्थ है बल; तमिल **पिरान्**, **पॅरुमान्** का अर्थ है राजा, स्वामी, देवता। तमिल **पॅरम्** का अर्थ है महत्ता, बैल, भैंसा। बैल और भैंसा अब महत्ता का प्रतीक नहीं माने जाते किन्तु किसी समय वृषभ और महिष शारीरिक बल के प्रतीक थे। महत्ता से उनका पुराना सम्बन्ध तमिल शब्द **पॅरम्** में व्यक्त है। तमिल **पॅरु** (महान्) इसी से सम्बद्ध जान पड़ता है। तमिल भाषा का एक महत्त्वपूर्ण शब्द है **पॉरु**। इसका अर्थ है युद्ध करना। द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में यह शब्द दो जगह दिखाया गया है। एक जगह इसका अर्थ युद्ध करना है, दूसरी जगह संयुक्त होना, सम्भोग करना आदि है। दोनों शब्द मूलतः एक हो सकते हैं। कन्नड़ **पोर्** (युद्ध करना) के समानान्तर उक्त कोश में कन्नड़ **होरि** (बैल) की ओर संकेत किया गया है। यह शब्द भी तमिल **पॅरम्** के समान वृषभ और महत्ता का एक साथ सूचक हो सकता है। तमिल **पॉरुनन्** (योद्धा), **पोरि** (प्रतिद्वन्द्वी), **पोर्एरु** (वीर), तोद **पीर** (युद्ध), **पीर्एर्** (भैंसा), कोडगु **पॉळ्** (लड़ना), **पोरि** (भैंसा) आदि शब्दों से युद्ध क्रिया और शक्ति के प्रतीक महिष का सम्बन्ध व्यक्त होता है। **पुरि, पॉरु** आदि शब्दों से संस्कृत **पुरु** सम्बद्ध है। युद्धसूचक अंग्रेज़ी का **वार्** शब्द **पोर्** का प्रतिरूप है जहाँ **प्** ध्वनि **व्** में परिवर्तित हुई है। जिन भाषाओं में **प्** ध्वनि नहीं थी, उन्होंने इसे **ब्व** अथवा **ग्व** ध्वनि के साथ स्वीकार किया। फ्रान्सीसी भाषा में **वार्** का प्रतिरूप गेर है (जो गुएर् या ग्वेर लिखा जाता है)।

संस्कृत का **वीर** शब्द **पुर, पिर** जैसे शब्द का रूपान्तर प्रतीत होता है। भाषाविज्ञानियों ने कल्पना की है कि आदि इंडोयूरोपियन भाषा बोलने वाला समाज **विरोस्** कहलाता था। लैटिन में **विर्** शब्द पुरुषवाचक है, नारी के लिए **विर्** रूप है। पुरुष

सूचक अर्थ का विकास कैसे हुआ, यह इस शृंखला के लैटिन शब्दों से विदित होता है। **विरेओ** का अर्थ है शक्ति सम्पन्न होना, हरा होना, **विर्ग** अर्थात् हरी शाखा, **विरिदिस्** अर्थात् हरा, और **विर्गो** अर्थात् कन्या। स्पष्ट ही क्रिया-मूल **विर्** का सम्बन्ध कृषि और प्रजनन से है। यहाँ तुलनीय है तमिल **विरइ** (बोना, बीज, अण्डकोष)। **वीर** या **विरोस** किसी आदि इन्डोयूरोपियन गण-समाज का नाम नहीं था। वह भारतीय आर्य-द्रविड़ शब्द शृंखला की एक कड़ी है जिसका सम्बन्ध कृषि, प्रजनन और पुरुषत्व से है।

पुरु के समान संस्कृत में एक **तुर** शब्द है जिसका अर्थ है शक्तिशाली, समृद्ध। वैदिक शब्द **तुरीप** का अर्थ वीर्य बताया गया है। **कुरोस्** के समान ग्रीक भाषा में **तुरन्नोस्** (स्वामी, प्रभु), **तुरन्नेउ** (निरंकुश रूप से शासन करना), **तुरन्निस्** (निरंकुश शासन) आदि शब्द हैं; अंग्रेज़ी के **टायरेन्ट** (अत्याचारी) और **टिरेनी** (अत्याचार) शब्द उसी **तुर** मूल से बने हैं। लैटिन में इनके प्रतिरूप **तिरन्नुस्** (प्रभु), **तिरन्निस्** (निरंकुश शासन) हैं। इस वर्ग के अन्य शब्दों में जैसे पुरुषत्व के साथ राजत्व और देवत्व का भाव समाहित है, वैसे ही सम्भव है, **सुर** का मूल अर्थ रहा हो पुरुष, स्वामी। **असुर** अर्थात् वह स्वामी; **असुर** का यह अर्थ ईरान की प्राचीन भाषाओं में प्रचलित था। संस्कृत में जब **अ** निषेधार्थ के लिए सुनिश्चित हो गया, तब **सुर** और **असुर** एक दूसरे के वैरी हो गये। इस **सुर** का एक प्रतिरूप रहा होगा **सूर**। मोनियर विलियम्स ने **सूर** के बाद तुलना के लिए ग्रीक **कुरोस्** बहुत सही उद्धृत किया है। यह **सूर** बना **वीर** का पर्याय **शूर**, और **शूरसेन** नाम का एक जनपद प्रसिद्ध हुआ। इस जनपद में **सूर** नाम का गण पहले रहता होगा।

केरल शब्द काफी पुराना है; महाभारत में भारतीय गणसमाजों के नामों में इसका उल्लेख है, यह शब्द वहाँ बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है। **केरल** का **ल** स्वयं बहुवचन का सूचक है। समुद्र के **र** के समान **ल** भी बहुवचन बनाने के लिए प्रयुक्त होने वाला चिन्ह था। मूल शब्द हुआ **केर** जिसका एक प्रतिरूप होगा **चेर**। यह **चेर** शब्द पुनः उन्हीं कृषि वर्गीय शब्दों में आता है। तमिल **चेर्** (संयुक्त होना), कन्नड़ **सेर्** (उप०), तमिल **एर** (हल), तमिल **चॅरु** (युद्ध), कन्नड़ **कॅरळ्** (क्रुद्ध होना), तमिल **कॅलि** (विजय प्राप्त करना), तमिल **कळ्‌वु** (संयुक्त होना) आदि शब्दों से केरल के **केर** का अर्थ प्रकट होता है। **कुरु, तुरु, पुरु** का एक प्रतिरूप **केर** भी है।

द्रविड़ भाषा-भाषियों का एक प्रसिद्ध प्रदेश **आन्ध्र** है। इसमें सघोष महाप्राण ध्वनि है और द्रविड़-परिवार में यह ध्वनि मूलतः थी नहीं। **केरल** के समान **आन्ध्र** शब्द भी पुराना है और महाभारत में उसका उल्लेख है। **आन्ध्र** शब्द **अन्ध्र** से बना। किन्तु **अन्ध्र** का अर्थ क्या है? यदि **र** को यहाँ भी बहुवचनसूचक माना जाय तो **अन्ध** बच रहेगा। **अन्ध** नाम का एक गणसमाज यहाँ था। **वृष्णि** गण के साथ संयुक्त होने वाला **अन्धक** गण मूलतः **अन्ध** था। **अन्ध** शब्द का अर्थ अंधा है। किसी गण समाज का यह नाम रखा जाय, यह बात विचित्र है। **अन्ध्र** शब्द को कोई साधारण तेलुगुभाषी बोले तो **अन्द्र** कहेगा। ग्रीक भाषा में ठीक इसी रूप का अर्थ पुरुष है। समासों में इसका बहुधा प्रयोग होता है यथा **अन्द्रोगोनोस्** (पुरुषों का जनक), **अन्द्रोदमस्** (पुरुषों

का दमन करने वाला)। यदि नाग प्रवृत्ति के अनुसार यूनानी लोग **अन्ध्र** का उच्चारण करते तो **अन्थ्** कहते, और ठीक यही रूप उनके **अन्थ्रोपोस्** में है जिसका अर्थ है मनुष्य, मानव जाति। इसका एक प्रतिरूप **अनेर्** (पुरुष, पति) है। **अनेर्** का सम्बन्ध **अन्ध्र** से है, इसका प्रमाण यह है कि **अनेर्** का सम्बन्ध कारक रूप **अन्द्रोस्** था।

आन्ध्र शब्द जो पहले निरर्थक लगता था, गण-समाजों की नागकरण-प्रक्रिया पर विचार करने से सार्थक प्रतीत होता है। **आन्ध्र** वह जो **अन्ध्र** गण से सम्बन्धित है। **अन्ध्र** का अर्थ होगा योद्धा, वीर पुरुष, मनुष्य। **अन्ध्र** के पूर्वरूप **अन्ध** का रूपान्तरण **अन्ह** में सम्भव है। तमिल भाषा में **आण्** पुरुषवाचक शब्द है, इसका अर्थ योद्धा और पुरुषत्व भी है। तमिल में ही इसका एक प्रतिरूप **आळ्** है। कोश में एक अन्य **आळ्** दिया हुआ है जिसका अर्थ शासन करना है। इस दूसरे **आळ्** का एक प्रतिरूप **आल्** है, दूसरा **आण्**। ऊपर हमने पुरुष सूचक शब्दों में शासन का अर्थ निहित देखा है। उस पर विचार करने से दोनों प्रकार के **आळ्** एक ही ज्ञात होते हैं। **ण्** ध्वनि सभी द्रविड़ भाषा भाषियों के लिए सुगम नहीं थी। जैसे उत्तर भारत में अनेक जन **ण्** को **ड़्** रूप में सुनते और बोलते हैं, वैसे ही द्रविड़ भाषा क्षेत्रों में अनेक जन **ण्** को ळ् में रूपान्तरित कर देते थे। **आळ्** का प्रतिरूप **आण** है और यह **अन्ध** शब्द का अपभ्रंश रूप है: **अन्ध—अन्ह—आन—आण**। जहाँ **घ्** ध्वनि ह् में नहीं बदलती, वहाँ उसके स्थान पर मूर्धन्य स्पर्श ध्वनि दिखाई देती है यथा तमिल **आण्डार्** (स्वामी), **आण्डवन्**, **आण्डइ** (उप०) कन्नड़ **आण्डारि** (स्वामीगण)। यह रूप ग्रीक शब्दमूल **अन्द्र** से मिलता-जुलता है। **ण्** के स्थान पर **ळ्** का प्रयोग करते हुए एक कन्नड़ प्रतिरूप **आळ्द्** है। इसी शृंखला में तमिल **आणि** (श्रेष्ठता), **अण्णल्** (महान् व्यक्ति, राजा, देवता, महत्ता) और **आन्र** (महान् श्रेष्ठ) उल्लेखनीय हैं। ये शब्द अलग-अलग दिखाये गये हैं किन्तु वे सब एक ही शब्दमूल से सम्बद्ध हैं। संस्कृत **पञ्चाल** एक गण का नाम है। वास्तव में यह गण-संघ रहा होगा जिसमें पाँच **आल** अर्थात् गण सम्मिलित हुए थे। वैदिक **पंच जनाः** के समान एक साथ रहने वाले ये पाँच आल थे। तमिलनाडु के प्रसिद्ध **आळवार** सन्तों को यह नाम इसलिए दिया गया था कि साईं (गोसाईं, गोस्वामी, स्वामी) के समान उसमें **आळ** शब्द का अर्थ है स्वामी। गण समाजों के विघटन के बाद गणवाचक अर्थ नष्ट हो गया; पुरुषत्व और स्वामित्व वाला अर्थ अनेक भाषाओं में **अन्ध, अन्ध्र, आन्ध्र** के प्रतिरूपों में बना रहा।

कर्णाटक के बारे में कल्पना की गई है कि **कर** अथवा काली भूमि के कारण इस प्रदेश का यह नाम पड़ा है। **आन्ध्र** शब्द के विकास इतिहास को ध्यान में रखते हुए कन्नड़ **कर, करु** शब्द पर ध्यान जाता है जिसका अर्थ है महत्ता, शक्ति। तमिल **करुमइ** (शक्ति, महत्ता), मलयालम **करु** (प्रबल), **करुम** (पुरुषत्व) इस बात की ओर संकेत करते हैं कि **कर** शब्द पुरुषवाचक था। यदि यह किसी गणसमाज का नाम रहा हो तो यह बात अत्यन्त स्वाभाविक होगी। तब **करनूल, करनाल** और **कर्णाटक** का आपसी सम्बन्ध स्पष्ट होगा, धरती का रंग चाहे जैसा हो। प्राचीन भाषाओं में, और विशेषतः आधुनिक द्रविड़ भाषाओं में, जो एक ही शब्द के प्रतिरूपों में स्वर-

विविधता दिखाई देती है, उससे यह कल्पना असंगत न मानी जायगी कि **कर, कुरु, केर** वास्तव में पुरुषत्वसूचक, गणवाचक एक ही शब्द के प्रतिरूप हैं।

६. दर्शन, ज्ञान, भाषा

आदिम गण-समाजों के लिए मनुष्य की देखने की भौतिक क्रिया सहज ही प्रकाश से सम्बद्ध है। किसी वस्तु को देखने का अर्थ है उसका ज्ञान प्राप्त करना। अर्थ-प्रसार की यह प्रक्रिया द्रविड़ भाषाओं में बहुत स्पष्ट है। प्रकाश-सम्बन्धी शब्द-मूलों से आँख, दृष्टि, चिन्तन, मन, ज्ञान, सौन्दर्य आदि का अर्थ देने वाले शब्द जुड़े होते हैं। तमिल **कण्** (आँख) और **काण्** (देखना) आपस में तो सम्बद्ध हैं ही, तमिल **कनल्** (अग्नि, जलना) की **कन्** क्रिया से भी उनका सम्बन्ध है। तमिल **काण्** का प्रतिरूप कोत **कण्** (देखना), कन्नड़ **कणि** (दृष्टि, दृश्य) और तेलुगु **कनु** (देखना) भी है। **कनल्** वाली **कन्** क्रिया से **कनक, कंचन** के अलावा **कन्त, कन्द** शब्द भी बनता है। **चन्द्र** का पूर्वरूप यह **कन्द** था। **चन्द्र** का **र** बहुत्वसूचक है। **चन्द्र** का एक प्रतिरूप **श्चंद्र** है और हो सकता है, इसका पूर्वरूप **स्कंद** हो, **स्कंद** का मूल अर्थ चंद्रमा हो। **स्कन्द** के लिए कहा गया है कि वह शिव अथवा अग्नि के पुत्र थे। शिव और चन्द्रमा का सम्बन्ध स्पष्ट है, और यदि **स्कन्द** अग्नि के पुत्र थे, तो भी **कन्** क्रिया का मूल अर्थ व्यक्त होता है।

तमिल **चूऴ्** (सोचना, जानना) कन्नड़ **चूपू** (दृष्टि, दर्शन) उस क्रिया से सम्बद्ध हैं जिसका मूल अर्थ देखना है। तुलु भाषा में **त्, स्** और **ह्** तीनों ध्वनियों वाले रूप हैं, **तूपिनि, हूपिनि** (देखना), **सूकॅ** (ज्ञान)। गोंडी, कोण्ड और कुइ भाषाओं में भी **स्** वाले रूप हैं। यहाँ प्रकाश की मूल क्रिया से दृष्टि और दर्शन का सम्बन्ध व्यक्त होता है। तमिल **चूऴ्** के समानान्तर **ऊऴ्** रूप है जिसका अर्थ है सूर्य। इस तमिल शब्द का कन्नड़ प्रतिरूप **सूऴ्** (समय, ऋतु) दिया हुआ है। सूर्य से इनका सम्बन्ध असंदिग्ध है।

तमिल **तॅरि** का अर्थ है दिखाई देना, स्पष्ट करना, जानना, **तॅरिवु** अर्थात् ज्ञान; इससे तुलनीय है तमिल **तॅरु** (जलना) और तमिल **तॅळ्** (स्पष्ट होना), **तॅळि** (जानना, स्पष्टता, प्रकाश)। ये शब्द संस्कृत **दृश्** और अंग्रेज़ी **ड्रीम** से सम्बद्ध हैं। **दिर्**, क्रिया वर्ण संकोच से **दृ** या **द्री** रूप में परिवर्तित होती है, **तिर्** उसका तमिल प्रतिरूप है। आर्य-द्रविड़ दोनों परिवारों में इस क्रिया का अर्थ देखना, जानना, स्पष्ट होना है। इसी से **निद्रा** शब्द भी बनता है जहाँ **नि** उपसर्ग अभाव सूचक है। संस्कृत में **धी** क्रिया का अर्थ जानना, चिन्तन करना है। संज्ञा रूप में **धी** का अर्थ बुद्धि, ज्ञान आदि है। संस्कृत में **दिव्, द्यु** क्रिया का महत्व व्यापक है। हिन्दी में **धूप** शब्द सूर्य के प्रकाश का सूचक है। **धूम** शब्द में अग्नि का संसर्ग स्पष्ट है। **धी, धू** जैसी क्रियाएँ अवश्य ही किसी समय प्रकाशित होने, जानने, देखने के लिए प्रयुक्त होती थीं। इन्हीं के आधार पर धी का अर्थ बुद्धि, चिन्तन आदि हुआ। ब्राहूइ भाषा में **दे** शब्द समय और सूर्य का सूचक है। जैसे ब्राहूइ **दीर** का रूपान्तर **नीर** है, वैसे ही **दे** का रूपान्तर **ने** होगा। तमिल **नेरम्** अर्थात् समय, सूर्य; कन्नड़ **नेसरु** (सूर्य); तमिल **नायिरु** (उप०); तमिल

नॅरुप्पु (अग्नि); ये रूप **ने**, मूलतः **दे** क्रिया से बने हैं। **नेत्र** और **नयन** शब्दों का सम्बन्ध प्रकाशसूचक इसी **ने** शब्द-मूल से है। आँख मनुष्य को आगे ले जाती है, अतः **नी** (ले जाना) क्रिया से ये शब्द बने हैं, यह कल्पना अनावश्यक है। नाग परिवार की बोरो भाषा में **नय्** शब्द का अर्थ है देखना, और **नयन** वह वस्तु है जो देखने में सुन्दर हो। इस **नय्** से नयन का सीधा सम्बन्ध है। तमिल **निरुर** (चमकना), **निळल्** (उप०), **निरम्** (रंग), **निनइ** (सोचना) इस सम्बन्ध में विचारणीय हैं। इसी शृंखला में तमिल **नोक्कु** (देखना), कन्नड़ **नोडु** (उप०), तमिल **नाडु** (जानना, खोजना), **नाट्टम्** (आँख), **नेडु** (खोजना), कन्नड़ **निट्** (देखना) आदि भी दर्शनीय हैं। **ना, ने, नो** तीनों प्रकार के क्रिया-रूप प्रकाश तथा देखने का अर्थ देते हैं। **ने** क्रिया मूलतः **दे** है और **दे** तथा संस्कृत **दिव्** का अभिन्न सम्बन्ध है।

देखने के लिए तमिल भाषा की सामान्य क्रिया **पार्** है। इससे तुलनीय है कन्नड़ **परॅ** (भोर होना), तेलुगु **परागु** (चमकना), मल्तो **पर्चॅ** (चमकना)। संस्कृत की जिस **भर्** क्रिया से **भर्ग** (प्रकाश) शब्द बना है, उसका तमिल रूपान्तर **पर्** हो, तो यह अत्यन्त स्वाभाविक होगा। उसी **पर्** से तमिल **पार्** (देखना), **पार्वइ** (आँख, दृश्य) शब्द बने हैं। संस्कृत में **भर्** के अतिरिक्त **भस्** क्रिया का अर्थ भस्म करना, चमकना है; इसी तरह **भास्** का अर्थ चमकना, स्पष्ट होना है। **भस्** जैसा रूप परिवर्तित होकर **पश्** बना हो तो आर्य भाषाओं पर अनेक प्रकार के द्रविड़ प्रभावों में यह भी एक होगा। देखने का अर्थ देने वाली संस्कृत की इस प्रचलित **पश्** क्रिया का एक प्रतिरूप **स्पश्** है। **स्पश्** से लैटिन में **स्पेक्तो** अर्थात् देखना, **स्पेक्तुस्** और **स्पेक्त्रुम्** अर्थात् दृश्य, **स्पेक्तातोर्** अर्थात् दर्शक शब्द बने। अंग्रेज़ी के **इन्स्पेक्ट, इन्स्पेक्टर, प्रौस्पेक्ट** (सम्भावना, परिप्रेक्ष्य), **ऐस्पेक्ट** (पक्ष) आदि शब्द **स्पश्** क्रिया से सम्बद्ध हैं।

अंग्रेज़ी क्रिया **सी** (देखना) का प्रतिरूप लैटिन ग्रीक आदि भाषाओं में नहीं है। **सीड** (बीज) के समान **सी** क्रिया भी काफी पुरानी जान पड़ती है। **सूर** (सूर्य) के समानान्तर **सी** क्रिया रही होगी जिसका अर्थ प्रकाश और देखना रहा होगा। संस्कृत **सूरि** का अर्थ ज्ञानवान् है। यह अर्थ प्रकाश और ज्ञान को सम्बद्ध मानने के कारण है। देखने के लिए अंग्रेज़ी का एक अन्य शब्द **लुक्** भी है। इसका भी पूर्वरूप लैटिन या ग्रीक में नहीं है। किन्तु संस्कृत **लोक्** का अर्थ देखना, जानना है। मोनियर विलियम्स ने इस क्रिया के बाद तुलना के लिए अंग्रेज़ी **लुक्** का बहुत सही उल्लेख किया है। **लोक्** का प्रतिरूप **लोच्** है जिससे **लोचन** (प्रकाशित करने वाला, नेत्र) शब्द बनता है। वास्तव में **लोक्** और **लोच्** दोनों **रुच्** (चमकना) का रूपान्तर हैं। **रुक** (प्रकाशमान) शब्द अग्नि के लिए प्रयुक्त होता था। **रुच्** शब्द का एक अर्थ सौन्दर्य, आनन्द भी है। लोगों की रुचि भिन्न-भिन्न होती है, इस वाक्य में **रुचि** शब्द मूलतः प्रकाशवाचक है। प्रकाश से आनन्द का सम्बन्ध हुआ, फिर लोगों के आनन्द प्राप्त करने के तरीके भिन्न-भिन्न हुए। **रुचिर** अर्थात् प्रकाशमान, सुन्दर।

आँख के लिए अंग्रेज़ी का प्रचलित शब्द **आई** है। यह संस्कृत **अक्षि** का प्रतिरूप है। लैटिन में इसका रूप **ओकुलोस्**, ग्रीक में **ओस्से** तथा जर्मन में **अउगे** है। इन्डो-

यूरोपियन परिवार का यह सर्व-प्रचलित रूप है। **अक्षि** रूप के लिए **अष्** क्रिया की कल्पना की गई है जिसका अर्थ है चमकना, प्रतीत होना। मेरी समझ में यह **अष्** संस्कृत **वस्** (चमकना) का रूपान्तर है। **वस्** का एक रूपान्तर **उष्** जिससे **उषा, उष्ण** आदि शब्द बने, दूसरा **अष्** जिससे **अक्षि** शब्द बना। मूर्धन्य **ष्** पहले **क्** में परिवर्तित हुआ, फिर **स्** से संयोग होने पर **स्** का मूर्धन्यीकरण हुआ।

श्वेतवर्ण का अर्थ देने वाले शब्द स्वभावतः प्रकाश से सम्बन्धित हैं। संस्कृत **श्वेत** का रूसी प्रतिरूप **स्वेत्** है जिसका अर्थ है प्रकाश। जैसे संस्कृत **लोक** शब्द संसार के लिए प्रयुक्त होता है, वैसे ही रूसी **स्वेत्** का एक अर्थ संसार है। **स्वेतीत्** क्रिया का अर्थ है चमकना। **श्वेत** का अंग्रेज़ी प्रतिरूप **ह्वाइट्** है जहाँ **श्** ध्वनि **ह्** में परिवर्तित हुई है। यदि अन्तिम व्यंजन **ल्** में परिवर्तित हो और आदि व्यंजन का लोप हो जाय तो **श्वेत-स्वेत** से **वेल** जैसा रूप प्राप्त होगा। तमिल **वॅळ्, वॅण्** का अर्थ है श्वेत, प्रकाशमान। कन्नड़ में इसका **बॅळ** प्रतिरूप है। रूसी में **बेलुइ** (सफेद) **स्वेत-श्वेत** के आधार पर वैसे ही बना है जैसे तमिल कन्नड़ में **वॅळ्, बॅळ**। तमिल **वॅळ** का सम्बन्ध श्वेत से हो चाहे न हो, तमिल **वॅळ्** और कन्नड़ **बॅळ** से रूसी **बेलुइ** का सम्बन्ध अवश्य है।

रूसी भाषा के एक कालवाचक शब्द का उल्लेख यहाँ और कर दें। यह शब्द है **तेपेर्** (अब)। इसका कोई प्रतिरूप अन्य भाषाओं में दिखाई नहीं देता। तमिल **पॉळ्दु, पोदु** (समय, सूर्य) से इसका सम्बन्ध हो सकता है। तमिल में एक अन्य शब्द **पगल्** दिन, सूर्य, प्रकाश का वाचक है। संस्कृत **प्रहर,** हिन्दी **पहर** क्या इस **पगल्** का रूपान्तर नहीं है? समयवाचक शब्द से **हर** जैसी क्रिया का क्या सम्बन्ध हो सकता है?

वेद माने ज्ञान। **विद्** माने जानना। लैटिन **विदेओ** माने देखना। रूसी **विदात्, विदेत्** माने देखना, **विद्** अर्थात् दृश्य, प्रतीति। पुनः रूसी **वेदात्** का अर्थ है जानना। **विद्** और **वेद,** देखने और जानने, का सम्बन्ध सन्देह से परे है। इसी **वेद** के दो ग्रीक प्रतिरूप होते हैं: **एइदो** (देखना, जानना), **ओइदा** (मैं जानता हूँ, मैंने देखा है)। एक रूप में **वे** के स्थान पर **ओइ,** दूसरे रूप में **एइ;** एकार-ओकार वाली पूर्वी-पश्चिमी दोनों भारतीय प्रवृत्तियाँ यहाँ विद्यमान हैं।

यहाँ **वेद** का तमिल रूप **ओत्तु** दर्शनीय है और ग्रीक भाषा के ओकार वाले रूप से तुलनीय है। इसी क्रम में तमिल **ओदुवि** (वेद पढ़ाना), **ओदु** (मन्त्र पढ़ना) भी हैं। मलयालम, कोत, कन्नड़, तुलु भाषाओं में ओकार वाले रूप ही हैं। द्रविड़ भाषाओं में शब्द के आदि स्थान पर **व्** ध्वनि का बहुल प्रयोग होता है। इसलिए **वेद** के अधिकांश द्रविड़ प्रतिरूपों में ओकार का होना मागध प्रभाव के कारण ही हो सकता है। केवल तोद भाषा में **वीथ्** (पढ़ना), **वीत्** (मन्त्र) जैसे **व्** वाले रूप हैं। तोद स्वयं ओकार प्रधान भाषा है। उसमें **व्** वाले प्रतिरूपों का अस्तित्व सिद्ध करता है कि द्रविड़ भाषाओं में **वेद** शब्द दो भिन्न स्रोतों से पहुँचा है। अंग्रेज़ी रूप **विट्** (जानना, बुद्धि) तोद **वीथ्-वीत्** से तुलनीय है। अंग्रेजी शब्द **वाइज़्** (बुद्धिमान्), **विट्** का एक अंग्रेज़ी पूर्वरूप **विस्** (मैं जानता हूँ) है। जर्मन **ह्विसॅन्** (जानना, ज्ञान), अंग्रेज़ी **विस्, वाइज़,**

विट् इसी **वेद** के अपभ्रंश रूप हैं। द्रविड़ भाषाओं में **वेद** शब्द के प्रतिरूपों का अर्थ पढ़ने के अतिरिक्त बोलना भी है। जानना, बोलना, पढ़ना, ये तीनों क्रियाएँ सभ्यता की ओर विकास करते हुए गण-समाजों के मनुष्य के मन में परस्पर सम्बद्ध हैं : तमिल **ओदु** (पढ़ना, बोलना), **ओदुवि** (पढ़ाना), **ओदल्** (पाठ), **ओदि** (विद्या, विद्वान्); मलयालम **ओदुग** (पढ़ना, बोलना), **ओदिक्क** (पढ़ाना), **ओत्तु** (पाठ), **ओद** (पढ़ना, सीखना), कन्नड़ **ओदु** (पढ़ना, बोलना), कोडगु **ओद्** (पढ़ना), तुलु **ओदुनि** (पढ़ना)। बोलने के लिए संस्कृत में एक **वद्** क्रिया भी है। उक्त रूपों में **वद्** और **वेद** दोनों रूप मिल गये हैं। अन्य शब्दों में हम देखेंगे कि गाने, बोलने और कभी-कभी जानने के भाव सम्बद्ध रहते हैं।

गण-समाजों में जैसे-जैसे उत्पादन और विनिमय का विकास हुआ, वैसे-वैसे कुछ कुलों अथवा कुटुम्बों में सम्पत्ति का केन्द्रीकरण हुआ। इस केन्द्रीकरण का एक परिणाम यह हुआ कि देवताओं के अलावा मनुष्यों की भी स्तुति की जाने लगी। यह स्तुति अधिकतर गीत रूप में होती थी, अत: जो क्रियाएँ गाने और बोलने के लिए प्रयुक्त होती थीं, उनके साथ स्तुति वाला भाव भी जुड़ गया। **वद्** शब्द का एक अर्थ गाना, बोलना तथा स्तुति करना है। ये सारे कार्य मुँह से होते थे, इसलिए उसका एक नाम **वदन** हुआ। **वच्** क्रिया का अर्थ ध्वनि करना, बोलना है। उसी से **वाच्, वाक्** शब्द बना जिसका अर्थ भाषा, वाणी, मनुष्य का स्वर हुआ। **वदन** के समान मुख के लिए **वच्** से एक शब्द **वक्त्र** बना।

संस्कृत में एक दूसरी क्रिया है **भाष्** (बोलना, सोचना)। तमिल में इसका प्रतिरूप है **पेजु** अथवा **पेशु** (बोलना, प्रशंसा करना), **पेच्चु** (वाणी, भाषा, शब्द, स्तुति)। वेद के प्रतिरूप **ओत्तु** के समान **भाष्** के प्रतिरूप **पेच्चु** में भी संस्कृत की अपेक्षा अर्थ-प्रसार अधिक दिखाई देता है। **वेद** के समान **भाष्** शब्द भी, आवश्यक ध्वनि-परिवर्तन के बाद, द्रविड़ भाषाओं में व्यापक रूप से प्रयुक्त होता है।

संस्कृत में **भाष्** के समानान्तर एक क्रिया **भन्** अथवा **भण्** है। इसका अर्थ भी बोलना है। हिन्दी के **भनत, भनिति** जैसे रूप इसी प्राचीन **भन्** क्रिया से बने हैं। यह शब्द कविता के लिए, कवि की वाणी के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त होता है। संस्कृत में एक क्रिया **भन्द्** भी बताई गई है जिसका अर्थ है अभिनन्दित होना। यह अभिनन्दन काव्य द्वारा ही होता था, अत: **भन्** का सम्बन्ध कविता पाठ, गायन से अवश्य था। तमिल में इसके दो रूप होते हैं। एक है **पणि** (बोलना, शब्द), दूसरा **ऍन्** (बोलना)। पहले रूप में मूल **भ्** ध्वनि की महाप्राणता का लोप हुआ है, दूसरी में **भ्** के परिवर्तित रूप **प्** अथवा **ह्** अथवा **व्** का लोप हुआ है। **पण्** अथवा **पन्** क्रिया-मूल का व्यापक व्यवहार द्रविड़ भाषाओं में होता है। तोद भाषा में ओकार वाला रूप **पॉण्त्** (वाणी, गीतों में प्रयुक्त शब्द) है। इसके अर्थ में काव्य वाला संसर्ग स्पष्ट है। **ऍन्** के प्रतिरूप कन्नड़ **अन्नु** (बोलना), कुड़ुख **आन्ना** (उप०), मल्तो **अनॅ** (बोलना, सोचना) भी हैं। मूल अकार एक तरह के रूपों में सुरक्षित रहता है, दूसरे प्रकार के रूपों में एकार में बदलता है।

तमिल **पाण्** (गीत, स्तुति), **पाड्** (गीत गाना) **पणि** की मूल क्रिया से सम्बद्ध हैं। **पणि** का आदिवर्ण ह्रस्व है और **पाण्**, **पाड्** का आदिवर्ण दीर्घ है किन्तु **पणि** का कोलमि प्रतिरूप **पान** है जिसका अर्थ है भाषा। इसे उचित ही कोश में **पणि** के साथ दिया गया है। इसी के साथ ब्राहुइ के **पा, पार्, पार्निग्** (बोलना) रूपों में भी आदि वर्ण का स्वर दीर्घ है। बोलने के लिए **प्** वाले जिस क्रिया रूप का व्यवहार होता था, उसमें ह्रस्व और दीर्घ दोनों प्रकार के स्वरों का व्यवहार होता था। **पाड्** शब्द के साथ पर्जि भाषा का **पाड** शब्द भी दिया है जिसका अर्थ है—गीत, भाषा, शब्द। इन सारे शब्दों का आधार **भन्** क्रिया है। **भन्** के रूपान्तर **पण्** से **पाण** रूप बना; **पाड्** का **ड्** वस्तुतः ड़् है और **ण्** की जगह प्रयुक्त हुआ है। **पाड्** और **पाण** मूलतः एक ही शब्द हैं। यहाँ ग्रीक भाषा का **पइअन्** (गीत) शब्द तुलनीय है; इसकी आधारभूत क्रिया **भन्** होगी।

संस्कृत में पढ़ने के लिए **पठ्** क्रिया है। **पद** उसे कहते हैं जो बोला जाय या गाया जाय। सम्भवतः **पठ्** और **पद** का सामान्य आधार **पध्** क्रिया थी।

अंग्रेज़ी में कवि के लिए प्रसिद्ध शब्द **पोअॅट्** है। इसका सम्बन्ध ग्रीक क्रिया **पोइओ** (निर्माण करना) से जोड़ा गया है। (काव्य के लिए ग्रीक भाषा का जो प्रचलित **एपोस्** शब्द है, उससे **पोअॅट्** रूप का सम्बन्ध उन्होंने नहीं देखा।) **पोइओ** क्रिया का सम्बन्ध उस शब्द-मूल से है जिससे संस्कृत **पाणि** (हाथ), तमिल **पण्** (कर्म) आदि शब्द बनते हैं। गाने या कविता करने से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु रूसी भाषा में **पेत्** क्रिया का अर्थ है गीत गाना; इससे गीत के लिए **पेस्न्या**, और गायक के लिए **पेवेत्स्** शब्द बनते हैं। इसका सम्बन्ध **पध्** क्रियामूल से मानना चाहिए। ग्रीक शब्द **अअॅइदो, अदो** (गीत गाना), **अऑइदे, ओदे** (गाथा, गीत) **पद** के प्रतिरूप हैं। **प—व—अऑ/ओ/अअॅ/अ,** यह परिवर्तन हुआ। अंग्रेजी काव्यरूप **ओड** इसी ग्रीक क्रिया से व्युत्पन्न हुआ है। ग्रीक भाषा में विजय गीतों के लिए एक शब्द और प्रयुक्त होता था: **पइअन्**। इसका सम्बन्ध पद वाली क्रिया से है या नहीं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। ग्रीक भाषा में **पोइएसिस्** शब्द के दो अर्थ दिये हैं: कविता, काव्यकौशल, तथा रचना। इसी के अनुरूप **पोइएतेस्** के दो अर्थ हैं: निर्माता तथा कवि। इसी प्रकार लैटिन में **पॉएसिस्** (कविता, काव्य-कौशल) और **पॉएत** (निर्माता, कवि) शब्द हैं। मेरी समझ में निर्माण और गीत वाले दो शब्दमूलों को ग्रीक और लैटिन में मिला दिया गया है। संस्कृत पद की आधारभूत क्रिया **पध्** से कवितावाचक शब्द बने हैं।

अंग्रेज़ी शब्द **स्पीक्** (बोलना), **स्पीच्** (वाणी) संस्कृत **भाष्** के विकास हैं। मूल ध्वनि **ष्, क्** और **च्** में परिवर्तित हुई है। आदिस्थानीय **भ् प्** में परिवर्तित हुआ। फिर उसके पहले **स्** जोड़ा गया। जर्मन शब्द में एक **र्** ध्वनि और जोड़ दी गई है: **स्प्राख़े** (वाणी, भाषा), **स्प्रेख़ॅन्** (बोलना)। जर्मन रूप में भारतीय **ष्** **ख़्** में परिवर्तित हुआ है। अंग्रेज़ी **व्हायस्** (आवाज) का पूर्वरूप लैटिन **वोक्स्** है। लैटिन **वोको** (बुलाना), **वोकालिस्** (स्वर, उच्चारण क्रिया) आदि शब्द सम्बद्ध हैं। इटालियन **वोचे** का अर्थ है शब्द, वाक्य, आवाज़। इन शब्दों का सम्बन्ध संस्कृत के **वच्, वाक्** जैसे रूपों से जोड़ना स्वाभाविक

है। किन्तु तमिल **ओजइ** और मलयालम **ओष** भी विचारणीय हैं। दोनों का अर्थ है ध्वनि, आवाज़। मेरी समझ में ये शब्द संस्कृत **घोष्** के प्रतिरूप हैं। तमिल **ओजइ** को **ओषइ** भी कहते हैं। **ओषइ** तथा मलयालम **ओष** रूपों में मूल सकार ध्वनि सुरक्षित है। यह ध्वनि लैटिन में **क्** हो गई है; लैटिन तथा द्रविड़ भाषाओं में आदि ध्वनि **घ्** का लोप हो गया है।

भाषाविज्ञान में **फोनीम** का बड़ा महत्व है। यह शब्द प्राचीन भारतीय **भन्** क्रिया का वंशज है। ग्रीक **फोने** का अर्थ है आवाज़, मनुष्य का स्वर, भाषा। ग्रीक **फोनेम** का भी अर्थ है वाणी, शब्द, मनुष्य का स्वर। **भन्** के समानान्तर **भष्, भाष्** क्रियाओं के प्रतिरूपों का व्यवहार भी ग्रीक भाषा में होता था। **अफसिअ** (जिसे आजकल अंग्रेज़ी में **अफेसिआ** कहते हैं) अभाष का प्रतिरूप है, बोल न सकने की बीमारी का नाम है। ग्रीक क्रिया **फेमि** (बोलना, कहना) **भष्, भाष्** का ही प्रतिरूप है। **फेस्, फस्, फेसि, फस्थइ** आदि रूप इस क्रिया के होते हैं जिनमें मूल सकार ध्वनि विद्यमान हैं। **फेमिस्** (वाणी) का लैटिन प्रतिरूप **फाम्** (अफवाह, ख्याति, अंग्रेज़ी प्रतिरूप **फेम**) है। ग्रीक भाषा में एक शब्द **फतिस्** भी है जिसका अर्थ है वाणी। यहाँ **स्** ध्वनि **त्** में परिवर्तित हुई है। **फेमि** क्रिया का एक रूप **फन्** भी है जो **भन्** का सीधा रूपान्तर है।

तमिल **पाट्टु** (गाना) का एक प्रतिरूप **माट्टु** (शब्द) है। मूल ध्वनि **प्** यहाँ **म्** में परिवर्तित हुई है। इसी क्रम में कन्नड़ **मातु, मात,** तेलुगु **माट** वाणी और शब्द के लिए प्रयुक्त होते हैं। इनके इटालियन प्रतिरूप **मोत्तो** (शब्द, इसी से अंग्रेज़ी **मोटो**) और फ्रान्सीसी **मो** (शब्द, जो **मोत्** लिखा जाता है) हैं।

प्राचीन गण-समाजों के लिए बोलना अत्यन्त महत्वपूर्ण मानव-व्यवहार रहा होगा। इसके लिए अनेक शब्द हैं जिनमें कहीं अर्थ की विशेषता है, कहीं सामान्यता। संस्कृत क्रिया **गद्** का अर्थ बोलना है। **गद्य** वह है जो बोला जाता है। बोलने के लिए **कथ्** क्रिया भी है। जो बोली जाय, दूसरे को सुनाई जाय वह **कथा**। **थ्** और **द्** ध्वनियों वाले दोनों शब्द एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं। जैसे **पठ्** और **पद** का पूर्वरूप **पध्** सम्भव है, वैसे ही **कथ्** और **गद्** का पूर्वरूप **गध्** या **कध्** सम्भव है। **गाथिन्** का अर्थ गायक है। यह विश्वामित्र के पिता का नाम था; उनके पिता का नाम **गाधिन्** था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि **गाधि** का वही अर्थ था जो **गाथि** का था। **गध्** क्रिया से एक रूप **गाधि** बनेगा, सघोषता का लोप होने पर **गाथ** रूप बनेगा। छन्द और गीत के लिए **गाथ** शब्द का प्रयोग होता था। **गाथा** शब्द आख्यानों के लिए प्रयुक्त हुआ। गाने और बोलने के सम्बन्ध पर ध्यान दें तो **गाथा, कथा** और **गद्य** में विशेष अन्तर न दिखाई देगा। बोलने के लिए एक अन्य संस्कृत क्रिया **जल्प्** है। आधुनिक आर्य भाषाओं में इसके प्रतिरूप **गल्प्** से कथा-कहानी का अर्थ देने वाला **गल्प** शब्द बना है। पंजाबी **गल्ल** (बातचीत) और हिन्दी **गालो** और **गप्प** उसी के विकास हैं। संस्कृत **गल्भ्** क्रिया का अर्थ है साहसी होना। अभिमानी और साहसी व्यक्ति को **प्रगल्भ** कहा जाता था। सम्भव है इस शब्द का मूल अर्थ वाचाल रहा हो; **गल्भ्** अर्थात् बोलना, उसी का प्रतिरूप **गल्प्**, उसी से अन्य रूप **जल्प्**।

फ़ारसी में **गुफ़्त** (कहा हुआ), **गुफ़्तगू** (बातचीत), **गुफ़्तार** (उप०) **गभ्** जैसे मूल रूप से व्युत्पन्न हैं। रूसी भाषा में **गवरीत्** (बोलना), **गवोर्** (बातचीत की आवाज) उसी **गभ्** के विकास हैं। किन्तु **गुफ्तगू** में दो भिन्न स्रोतों से आई हुई क्रियाएँ मिल गई हैं। दूसरी क्रिया फारसी **गो** का प्रतिरूप है और इसका पूर्वरूप **घोष** का **घो** है। **गोई** (कथन), **गोइन्दा** (वक्ता), **बदगो** (बुराई करने वाला) **घो** क्रिया से बने हैं। रूसी भाषा में **स्कज़ात्** (कहना), **स्क़ाज़्** (कथा), **स्काज़्का** (उप०) **कध्** जैसे क्रिया मूल से बने हैं। **ध्** परिवर्तित होकर **ज़्** रूप में ग्रहण किया गया और प्रथम वर्ण में अतिरिक्त सकार जोड़ा गया।

कहने के लिए अंग्रेज़ी में **से** शब्द है। इसका जर्मन प्रतिरूप **ज़ागॅन्** है। अनेक अंग्रेज़ी प्रतिरूपों के समान यहाँ भी मध्यवर्ती **ग्** का लोप हुआ है। अंग्रेज़ी में एक शब्द **सागा** भी है जो आइसलैंड और नौर्वे की पुरानी गद्य कथाओं के लिए प्रयुक्त होता था। आगे चलकर किसी भी साहसपूर्ण घटना के विवरण के लिए इसका प्रयोग होने लगा। मराठी में एक क्रिया **सांगणे** है जिसका अर्थ है कहना, बोलना। जर्मन **ज़ागॅन्**, अंग्रेज़ी **से** और मराठी **सांगणे** एक ही कुल के हैं। मूल क्रिया **साग** या **सेग** है। संस्कृत क्रिया **शब्द्** का अर्थ बुलाना है। वाणी, ध्वनि, पद के लिए **शब्द** का प्रयोग होता था। मोनियर विलियम्स ने सुझाया है कि **शप्** क्रिया से **शब्द** बना होगा। यह सुझाव सही जान पड़ता है। **शाप** एक विशेष प्रकार की घोषणा है जहाँ किसी व्यक्ति को दण्ड देने की कामना है। **शपथ** भी एक प्रकार की घोषणा है किन्तु उसमें दण्ड देने का भाव नहीं है। **शपथ, शब्द, शाप** एक ही क्रिया से व्युत्पन्न हैं। यहाँ रूसी क्रिया **शुमेत्** (ध्वनि करना) का उल्लेख भी किया जा सकता है। संस्कृत **शब्द** का तमिल प्रतिरूप **केळ्वि** है, **किळवि** अर्थात् भाषा। तमिल में एक दूसरी क्रिया **चॅप्पु** बोलने के लिए है। **से** या **शे** जैसे क्रिया मूल से तमिल में एक शब्द के आरम्भ में **क्** ध्वनि का व्यवहार हुआ, दूसरे में **च्** का। लैटिन में एक शब्द **सेर्मो** (वार्ता, वाणी) है, उपदेशात्मक व्याख्यान के लिए इसी से अंग्रेजी शब्द **सर्मन्** बना है। **से, सा** क्रियामूल के समानान्तर **सो** रूप भी था। इस क्रियामूल से कन्नड़ **सॉल्, सॉल्लु** (बोलना, शब्द) **सॉल्लिसु** (कहना, कहलाना), और तमिल **चॉल्** (बोलना, शब्द), **चॉलवु** (कहावत) आदि रूप सम्बन्धित हैं। शब्द मूल का **स्** या **श्** जब **क्** में परिवर्तित होता है तब अंग्रेज़ी क्रिया **कौल्** (पुकारना) बनती है, जब **त्** में परिवर्तित होता है तब अंग्रेज़ी क्रिया **टॅल्** (कहना) बनती है। अंग्रेज़ी **टोल्ड् टॅल्** का भूतकालीन रूप माना जाता है। वास्तव में वह अन्य रूप **टोल्** में भूतकालीन प्रत्यय **ड्** जोड़कर बना है और **टॅल्** का प्रतिरूप है। तमिल **चॉल्** और अंग्रेज़ी **टोल्** एक ही शब्द मूल **सोल्** के दो भिन्न रूप हैं। **सोल्** का **सो, शब्द** और **शाप** का **शप्** परस्पर सम्बद्ध प्रतीत होते हैं।

अंग्रेज़ी **नोज़्**, संस्कृत **नासा** और हिन्दी **नाक** का एक ही उद्गम है। नाक का काम सूँघना है। संस्कृत में **नासा** से मिलती-जुलती कोई क्रिया नहीं दिखाई देती जिसका सम्बन्ध गन्ध या सूँघने से हो। किन्तु तमिल **नारु, ज़ारु** का अर्थ है सुगन्ध प्रसारित करना। इस वर्ग के अन्य शब्द दूसरी अनेक द्रविड़ भाषाओं में हैं। इनका सम्बन्ध कहीं

सुगन्ध से है, कहीं दुर्गन्ध से है। कन्नड़ **नात, नातु** जैसे रूप देखकर अनुमान होता है कि तमिल रूपों का र् पहले त् या द् था; स्वयं द्रविड़ भाषाओं में नाक के लिए **नाद** या **नातु** जैसा शब्द नहीं है। **नासु** जैसे पूर्वरूप से **नातु** और **नारु** शब्द बन सकते हैं। द्रविड़ भाषाओं के नासावाचक प्रचलित शब्द **म्** से आरम्भ होते हैं: तमिल **मूक्कु**, कन्नड़ **मूगु** आदि। या तो **न्** ध्वनि **म्** में परिवर्तित हुई है या **म्** ध्वनि **न्** में। ग्रीक भाषा में संस्कृत **नासा** का प्रतिरूप **मुक्तेर्** है। इस रूप में **म्** है, **न्** नहीं है। द्रविड़ भाषाओं में गन्धवाचक शब्द **म्** से भी आरम्भ होते हैं: कन्नड़ **मूसु** (सूँघना), तमिल **मुग** (उप०), **मोप्पम्** (गंध, नाक)। द्रविड़ भाषाओं के समान ग्रीक भाषा में गन्धवाचक अनेक शब्द **न्** और **म्** से आरम्भ होते हैं। **नर्दोस्** एक सुगन्धित वनस्पति और उसके तेल का नाम था। फारसी में जिस फूल को **नर्गिस** कहते हैं, वह ग्रीक में **नोकस्सोस्** था। सुगन्धित तेल और इत्र के लिए **मुरोन्** शब्द था, और अरब की एक वनस्पति को **मुर्तोस्** तथा उसके सुगन्धित तेल को **मुर्र** कहते थे। स्पष्ट ही **नर्** और **मुर्** शब्दमूलों का सम्बन्ध सूँघने से है। ग्रीक **नर्दोस्** का लैटिन प्रतिरूप **नर्दुस्** है। लैटिन में इसी शृंखला का एक शब्द और है **नारेस्** जिसका अर्थ है नासाछिद्र, नाक। अंग्रेजी **नोज्** और संस्कृत **नासा** उस **न्** वाली क्रिया से बने हैं जिसका अर्थ है सूँघना। **नासा** और ग्रीक **मुक्तेर्** का सम्बन्ध द्रविड़ रूपों पर ध्यान देने से समझ में आ जाता है। **नासा** वह इन्द्रिय है जिससे मनुष्य सूँघता है।

७. स्कम्भ, स्तम्भ

भारतीय आर्य भाषा परिवार में **घ, ध, भ** ये तीनों प्रत्यय मूल क्रिया में जोड़े जाते थे और इस प्रकार कृदन्त रूप बनाये जाते थे। ये कृदन्त कहीं विशुद्ध संज्ञा हैं, कहीं क्रिया हैं, कहीं क्रिया और संज्ञा दोनों हैं, कहीं कृदन्त को पुनः धातु का रूप दिया गया है, कहीं कृदन्त-प्रत्यय का मूल कार्य बदल गया है। इनके समानान्तर **क, त, प** और **ग, द, ब** प्रत्ययों का व्यवहार होता था। **च-ट, ज-ड** प्रत्यय भी हैं किन्तु उनका व्यवहार अपेक्षाकृत कम होता है। अतिरिक्त अनुनासिक ध्वनि जोड़ने से इनके वैकल्पिक रूप बनते थे। **य, व, स** आदि कुछ अन्य प्रत्यय थे। इनमें **व** कहीं-कहीं **भ, प**, या **ब** का रूपान्तर है। द्रविड़ परिवार में **घ, ध, भ** सघोष महाप्राण ध्वनि वाले प्रत्यय नहीं हैं, शेष सभी का व्यवहार द्रविड़ भाषाओं में होता है। द्रविड़ भाषाओं के लिए कहा जाता है कि उनमें संज्ञा-क्रिया का भेद महत्वपूर्ण न था; एक ही रूप क्रिया और संज्ञा दोनों की भूमिका निबाह सकता था। यह बात अंशतः सही है। किन्तु जिस समय और जिस क्षेत्र में ऐसे रूपों का निर्माण हो रहा है, उस समय और उस क्षेत्र में क्रिया संज्ञा का भेद बहुत स्पष्ट है। सैकड़ों रूप क्रियामूलों में प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं, फिर उनका व्यवहार चाहे संज्ञा रूप में हो चाहे क्रिया रूप में। क्रियामूलों के आधार पर द्रविड़ और इंडोयूरोपियन परिवारों की शब्द-रचना का अध्ययन दोनों परिवारों के घनिष्ठ सम्बन्धों और मध्यदेशीय भाषाओं की प्राचीन शब्द-रचना-प्रक्रिया को समझने में सहायक होता है।

स्था, स्थ या **स्त** क्रिया से एक रूप बना **स्तभ**। इसका रूपान्तर अंग्रेज़ी का **स्टौप्** (रुकना, रोकना, विराम) है। यहाँ बहुत स्पष्ट देखा जा सकता है कि इंडोयूरोपियन परिवार की एक भाषा का **प्** प्रत्यय **भ्** का रूपान्तर है; यह रूपान्तर संज्ञा और क्रिया दोनों में है। अंग्रेजी में **स्ट, स्टौ** जैसी कोई क्रिया नहीं है : **स्टौप्** की रचना-प्रक्रिया **स्त** (स्थ) + **भ** के स्मरण से ही समझ में आती है। अंग्रेज़ी में **स्तभ्** का एक रूपान्तर **स्टब्** (ठूँठ, पेड़ का तना, किसी लम्बी चीज़ का बचा हुआ भाग) है। यहाँ **ब्** प्रत्यय **भ** का रूपान्तर है। **स्तभ** में जब अतिरिक्त अनुनासिक ध्वनि जुड़ जाती है, तब संस्कृत का **स्तम्भ** रूप बनता है। अंग्रेज़ी में **स्तम्भ** का रूपान्तर **स्टम्प्** (ठूँठ, तना, अवशिष्ट भाग) है। यहाँ अनुनासिक ध्वनि के संयोग से एक वैकल्पिक रूप बना।

संस्कृत में **स्तंभ** और **रंभ** मिलते-जुलते शब्द हैं; अन्तर यह है कि **रंभ** में अनुनासिक ध्वनि अलग से जोड़ी नहीं गई। मूल क्रिया **रम्** है जिसका अर्थ है रुकना, रोकना। सहारे की वस्तु, लाठी आदि के लिए स्थाणु के समान **रंभ** शब्द का प्रयोग होता था। संस्कृत **दम्** क्रिया का अर्थ है विजय प्राप्त करना। इसमें **भ** प्रत्यय जोड़कर भाववाचक संज्ञा बनी **दम्भ**। संस्कृत में **भ** प्रत्यय वाले शब्द कम हैं, **प** प्रत्यय वाले भी थोड़े हैं, **ब** प्रत्यय वाले विरल हैं। तमिल **करु** (भ्रूण, बछड़ा) का सम्बन्ध तेलुगु **करि** (योनि) से है। तमिल **करुप्पइ** संस्कृत **गर्भ** का प्रतिरूप है। तमिल **करुवम्** का अर्थ हुआ गर्भस्थ जीव; **करुप्पम्** गर्भस्थान है। स्पष्ट ही संस्कृत **गर्भ** में **गर्** शब्दमूल है (वह क्रिया हो, चाहे संज्ञा) और **गर्भ** की रचना प्रक्रिया वही है जो तमिल **करुप्पम्** की है। **गर्भ** का **गर्** स्वतंत्र शब्दमूल था, यह तमिल **करु**, तेलुगु **करि** से विदित होता है। पर्जि **कॅर्ब** (अंडा), गद्ब **कॅर्ब** (उप०) में **ब** प्रत्यय है; तेलुगु **करुवु** (भ्रूण) और तमिल **करुवम्** में **व** है। यहाँ हम **भ** प्रत्यय के **ब-प्प-व** प्रतिरूपों का सम्बन्ध पहचान सकते हैं। संस्कृत **दर्भ** और **दूर्वा** परस्पर सम्बन्द्ध हो सकते हैं। यदि ऐसा हो तो **दूर्वा** का **व** मूल प्रत्यय **भ** का रूपान्तर माना जायगा। लैटिन **हॅर्ब** (घास, वनस्पति), **दर्भ** का प्रतिरूप हो तो **दर्भ** का मूलरूप **धर्भ** होगा। आर्य द्रविड़ दोनों परिवारों में **व** स्वतंत्र प्रत्यय भी है, उसे सर्वत्र **भ** का रूपान्तर मानना आवश्यक नहीं है। **प** और **ब** मूलतः **भ** प्रत्यय थे किन्तु एक बार अस्तित्व में आ जाने पर स्वतंत्र रूप से उनका व्यवहार होने लगा। **सर्प** शब्द **सर्** क्रिया में **प** प्रत्यय जोड़ने पर बना है; यह कल्पना अनावश्यक है कि **सर्प** का मूलरूप **सर्भ** था। कृदन्त प्रत्ययों से अधिकतर भाववाचक संज्ञाएँ बनतीं हैं, **दम्** और **भ** के योग से **दंभ** के समान। किन्तु **स्कंभ, स्तंभ** जैसे रूपों से सिद्ध है कि वस्तुवाचक संज्ञा रूप भी इन्हीं प्रत्ययों की सहायता से बनाये जाते थे। **सर्प** सरकने का भाव व्यक्त न करके सरकनेवाली वस्तु की ओर संकेत करता है। **सर्प** को मूल क्रिया मानकर इससे पुनः कृदन्त रूप **सर्पन्त** बना जो अंग्रेज़ी का **सर्पेन्ट्** है। संस्कृत में वर्ण-संकोचन के बाद **सर्प** से **सृप्** धातु कल्पित हुई। द्रविड़ भाषाओं में कृदन्तरूप को मूल क्रिया बना लेने की प्रवृत्ति व्यापक है, यथा तमिल में : **ॲळु**—ऊपर उठना; **ॲळुप्पु**—ऊपर उठाना; **अळ**—बातचीत करना, **अळप्पु**—बहुत बातें करना; **कड**—पार करना, **कडप्पु**—उप०। ऐसा सर्वत्र नहीं होता, संज्ञा रूप भी

बनते हैं यथा तमिल में : **अळि**—नष्ट होना, **अळिप्पु**—विनाश (इसका प्रतिरूप **अळिबु** है जहाँ मध्यवर्ती **प्** या **ब्** बच गया है; साथ ही **अळिबु** का प्रतिरूप **अळिवु** भी है); **अरु**—काटना, **अरुप्पु**—कटाई। **स्तभ-स्तंभ** के समान **अरुप्पु** का प्रतिरूप **अरुम्बु** (अकाल) है, **अळिप्पु** का प्रतिरूप **अळिम्बु** (पाप) है। तमिल रूपों का **प्प** सर्वत्र संस्कृत के **भ** या **प** प्रत्ययों का रूपान्तर नहीं है। उसका आधार संस्कृत का **त्व** प्रत्यय भी है। तमिल **अरु** (कठिन) से **अरुप्पम्** (काठिन्य) रूप बना, **गुरु** से **गुरुत्व** के समान। तमिल **अरु** क्रिया नहीं है, **गुरुत्व** के **गुरु** के समान विशेषण है; तमिल **इन्**—मधुर, इससे **इन्बम्**, **इन्बु** और **इनिप्पु** (माधुर्य)। जैसे कृदन्त रूप पुनः मूल क्रिया के समान प्रयुक्त होते हैं, वैसे ही विशेषणों से बने भाववाचक रूप पुनः विशेषणवत् प्रयुक्त होते हैं यथा तमिल **करु** (काला) और **करिम्बु** (साँवला)।

स्लाव भाषाओं में **त्व** प्रत्यय बहुत सामान्य है; इसके साथ उनमें संस्कृत और तमिल की तुलना में **ब** प्रत्यय का प्रयोग भी अधिक होता है। स्लाव **ब** संस्कृत **त्व** का प्रतिरूप है, **भ** के आधार पर भी विकसित हुआ है। रूसी **बोर्ब** (युद्ध) में तमिल **पॉरु** (युद्ध करना) की प्रतिरूप **बोर्** क्रिया है, उसमें **ब** प्रत्यय जोड़ा गया है। बाल्तिक वर्ग की लैतवियन भाषा में संस्कृत **गर्व** का प्रतिरूप **गर्व** है। पुरानी आइरिश में मृत व्यक्ति के लिए **मर्ब** रूप है। लैटिन में इससे मिलता-जुलता **मोर्बुस्** (रोग) शब्द है। सम्भव है, ऐसे रूपों का **ब** मूलतः **भ** रहा हो। स्लाव और बाल्तिक भाषाओं की क्रिया में **ब** प्रत्यय जोड़कर ऐसे संज्ञारूप बनते हैं जो अवधी रूपों से मेल खाते हैं। पुरानी स्लावोनिक में **सेत्** (बोना) क्रिया से **सेतिब** (बुवाई, 'बवबु'), **झॅनीत्** (व्याहना) से **झॅनितिब** (व्याह, 'ब्याहबु'), **ऑरात्** (जोतना) से **ऑरातिब** (जुताई, 'ज्वातबु') लैतवियन में **मज़ीत्** (सिखाना) से **मज़िब** (सीख, 'सिखवबु'), **तिकेति** (विश्वास करना), से **तिकिब** (विश्वास, 'बिस्वासबु')। जो लोग अवधी तथा मागधी समुदाय की भाषाओं के **ब** प्रत्यय का सम्बन्ध **तव्य** से स्थापित करते हैं, वे बाल्तिक-स्लाव भाषाओं में **ब** की भूमिका देखें। दोनों ओर इसका आधार **भ** प्रत्यय है। साथ ही द्रविड़ भाषाओं के समान बाल्तिक स्लाव भाषाओं में **ब** प्रत्यय **त्व** का प्रतिरूप भी है यथा पुरानी स्लावोनिक में **ज़ुलु** (दुष्ट) से **ज़ुलोब** (दुष्टता), **द्रुगु** (मित्र) से **द्रुझिब** (मैत्री), लिथुआनियन में **यउनस्** (जवान) से **यउनिबॅ** (जवानी)। **त्व** का एक प्रतिरूप **प** या **पा** है, **मिलाप** और **बुढ़ापा** जैसे शब्दों में; दूसरा **ब** है, उक्त बाल्तिक-स्लाव उदाहरणों में। **त्व** और **ब** दो स्रोतों से यूरुप की भाषाओं में पहुँचे हैं; संस्कृत में बहुलता **त्व** की है। **भ** और **त्व** के रूपान्तर द्रविड़ भाषाओं से लेकर यूरुप की भाषाओं तक प्रयुक्त होते हैं।

जैसे अंग्रेजी **स्टोप्** का मूलरूप **स्तभ्** था, वैसे ही अंग्रेज़ी **स्टेक्** का मूलरूप **स्तघ्** था। **स्टेक्** वह सीधी नुकीली लकड़ी है जो सहारे के लिए जमीन में गाड़ी जाती है। इसी प्रकार **स्तभ्** से अंग्रेज़ी का **स्टाफ़्** शब्द बना है; **स्टाफ़्** वह लकड़ी है जिसके सहारे आदमी चलता है। लैटिन की **स्तग्नो** क्रिया का अर्थ है जल का स्थिर रहना; **स्थ** में **घ** प्रत्यय जोड़ कर कृदन्त रूप को पुनः मूल क्रिया की तरह प्रयुक्त किया जाने लगा। ठहरने के लिए बँगला क्रिया **थाक्** **स्था** में **क** प्रत्यय जोड़ कर बनाई गई है;

पहले कृदन्त, फिर क्रियामूल की तरह उसका व्यवहार। कृदन्त प्रत्यय **घ** का रूपान्तर यह **क** है। हिन्दी क्षेत्र में **ठाढ़**, **खड़े** आदि **घ** प्रत्यय से बने कृदन्तों के रूपान्तर हैं किन्तु **घ** प्रत्यय से बने स्थ क्रिया के रूप हिन्दी या अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं में प्रायः नहीं हैं। इसका कारण यह है कि **घ** प्रत्यय का व्यवहार उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में अधिक होता था; इसलिए उसके आधार पर बने रूप मध्यदेशीय भाषाक्षेत्र में कठिनाई से मिलेंगे। **स्थाघ** का अवशेष **थाक्** बँगला में है, **स्टेक्**, **स्तग्नो** जैसे रूप यूरप की भाषाओं में हैं। इनके अतिरिक्त इस शृंखला के रूप द्रविड़ भाषाओं में हैं। तमिल **तगइ**, कन्नड़ **तगॅ** का अर्थ रोकना है। स्पष्ट ही ये कृदन्त रूप हैं जिन्हें क्रियामूल मान लिया गया है। इन रूपों का **ग** पुराना उत्तर भारतीय **घ** प्रत्यय था। तमिल और तेलुगु **तक्कु** (ठहरना), नइकि और कोलमि **तक्** (उप०) उसी क्रिया के प्रतिरूप हैं। संस्कृत की **स्था** या **स्थ** क्रिया का व्यवहार-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था; इसमें इंडोयूरोपियन परिवार के अतिरिक्त द्रविड़ भाषाएँ भी सिमट आती हैं। प्रत्यय भिन्न-भिन्न हैं; क्रिया एक ही है। अनुनासिक ध्वनि जोड़ने पर तमिल में **तंगु**, **तंगि** (ठहरना, स्थिर रहना), **तंगइ** (ठहराव, विराम) रूप बनते हैं। मलयालम **तङ्ङुक** (ठहरना) में **ग्** के स्पर्श तत्व का लोप हुआ है; कन्नड़ में तमिल के समान **तंगु** (ठहरना) रूप है। उत्तर भारत की आर्य भाषाओं में **घ** प्रत्यय का चलन था, उसके रूपान्तर कहीं-कहीं आर्य भाषाओं में और उससे अधिक अन्य इंडोयूरोपियन तथा द्रविड़ भाषाओं में प्रयुक्त होते थे, इसमें सन्देह नहीं रह जाता।

हिन्दी में एक शब्द **अड़ङ्गा** है। **अड़ाना** क्रिया की **अड़** धातु में **ङ्ग** प्रत्यय जोड़ा जाय तो **अड़ङ्ग**, कौरवी रूप **अड़ङ्गा** बनेगा। शब्द-निर्माण की प्रक्रिया वही है जो तमिल **तंगइ** में है। यह **अड़** क्रियामूल द्रविड़ भाषाओं में भी है। तमिल **अडइ**, कन्नड़ **अडॅ** का अर्थ अड़ाना, बंद करना, रोकना आदि है। तुलु में **अड** से कृदन्त **अडंग** बनाकर उसे क्रियारूप **अडॅङ्गुनि** में स्थापित किया गया। जो चीज़ अड़ाई जाय, उसके लिए कन्नड़ और तुलु में **आटङ्क**, **आटङ्कु** शब्द हैं। इन्हें **अड़ङ्गा** का प्रतिरूप समझना चाहिए। तेलुगु में **आटङ्कमु** के साथ **अड्डङ्कि** रूप भी है। तमिल **कुरङ्गु** (वानर), तुलु **कुरङ्ग** (उप०) और संस्कृत **कुरंग** (हिरन) दौड़ने कूदने का अर्थ देने वाली **कुर्** क्रिया से बने हैं।

तमिल क्रिया **नड्** का अर्थ है हिलना, इससे दूसरा रूप बना **नडुङ्गु**; **तोय** का अर्थ है थकना, दूसरा रूप बना **तुयुङ्गु**। दूसरे रूप का अर्थ वही है जो पहले का। किन्तु तमिल **तॉडु** का अर्थ है बाँधना; दूसरा रूप **तुडङ्गु** (बंधन) संज्ञा है। तमिल क्रिया **पो** से जैसे कृदन्त रूप **पोग** (गमन, जाते हुए) बनता है, वैसे ही लिथुआनियन में **एइ** क्रियामूल से **एइग** (जाता हुआ, गमन) रूप बनता है। **जि** (मूल रूप **जी**) से इसी भाषा में **जिग** (जीवन) रूप बनता है। फ़ारसी **जिन्दगी** में **जिन्द** पहले ही कृदन्त है, उसमें दूसरा कृदन्त प्रत्यय **ग** फिर लगाया गया। संस्कृत **अत्** के प्रतिरूप **एस्** से लिथुआनियन में **एस्क** (भूख) रूप बनता है जहाँ कृदन्त प्रत्यय अघोष ध्वनि वाला है। संस्कृत **गर्व** का लिथुआनियन प्रतिरूप **गर्बे** (प्रतिष्ठा) स्वयं कृदन्त है; इससे दूसरा कृदन्त बनता है

गर्बिङ्गस् (प्रतिष्ठित)। कृदन्त प्रत्यय अपनी मूल भूमिका से मुक्त होकर संज्ञा, विशेषण आदि किसी भी वर्ग के शब्द से जुड़कर नये-नये रूप बनाने के लिए प्रयुक्त होने लगे। **तॅल्** (दक्षिण) से तमिल में आन्ध्र जनों के लिए **तॅलगु, तॅलुङ्गु, तॅलुंगम, तॉलिंगम्** शब्द प्रयुक्त होने लगे; इन्हीं की बिरादरी का **तिलंगा** शब्द हिन्दी क्षेत्र में पहुँचा। तॅलगु, **तॅलंगु** आदि शब्द अन्य द्रविड़ भाषाओं में भी हैं; जिन्होंने भी आन्ध्रजनों के लिए इस शब्द का प्रयोग पहले पहल किया होगा, वे अवश्य तब के आन्ध्रक्षेत्र के उत्तर में रहते होंगे; अपनी भूमि से यह क्षेत्र उन्हें दक्षिण में दिखाई देता होगा। यहाँ **कलिङ्ग** शब्द विचारणीय है। यह निरर्थक सा स्थानवाचक शब्द **कल्** (पत्थर, हिन्दी **खल, खलबट्टे** वाला **खल**, संस्कृत **उलूखल** का **खल**) में **इ** स्वर के साथ **ङ्ग** प्रत्यय जोड़ कर **तॅलिङ्ग** के समान बना है। दक्षिण से जिसका सम्बन्ध हो, वह तॉलिग; पत्थरों, पथरीली भूमि से जिसका सम्बन्ध हो वह **कलिंग**। पार्वतीय प्रदेश होने से भारत के एक भाग का नाम **कलिङ्ग** पड़ा। बाल्तिक भाषाओं में नदियों के नाम **अलंग, विरंग** आदि इसी पद्धति से बने जान पड़ते हैं। रूस में **ओनेगा** नाम एक नदी का है, एक झील का है और इनके निकट बसे हुए नगर का भी है। **लदोगा** एक झील है, **कालुगा** नगर है, **वोल्गा** नदी है। इनमें अनुनासिक ध्वनिविहीन **ग** प्रत्यय है। **वोल्गा** की रचना वैसे ही हुई है जैसे **गंगा** की; **गम्** क्रिया में **ग** प्रत्यय जोड़ा गया। **वोल्गा** का **वॉल्** द्रविड़ भाषाओं की गतिसूचक प्रचलित क्रिया **वर्** का प्रतिरूप है। कश्मीरी में **वर्** का प्रतिरूप **वल्** भी प्राप्त है।

प्रीब्श और कौलिन्सन ने जर्मन भाषा पर अपनी पुस्तक द **जर्मन** लैंग्वेज् में लिखा है कि लैटिन में **पर्लामिंगि, सिलिंगि** आदि गणसूचक नाम थे, **मेरोविंगि, करोलिंगि** आदि वंशसूचक शब्द **थे**। पुरानी अंग्रेज़ी **में स्केफ** का वंशज **स्केफिंग** कहलाता था। पुरानी नौर्वीजियन या नौर्स भाषा से उक्त लेखकों ने **हद् ंग्** (परिहास) का उदाहरण दिया है जो भाववाचक संज्ञा है। जर्मन में **उंग्** प्रत्यय क्रियामूल में जोड़कर कृदन्त बनाते हैं। **बिल्डॅन्** माने बनाना; क्रियामूल **बिल्ड्** से कृदन्त रूप बना **बिल्डुंग्**—बनावट, निर्माण; **बिन्डॅन्** माने बाँधना; क्रियामूल **बिन्ड्**, कृदन्त रूप बना **बिन्डुंग्**—बन्धन। अंग्रेज़ी **बिल्डिंग्** वैसा ही कृदन्त रूप है जैसा जर्मन **बिल्डुंग्। बिल्डिंग्** इमारत है, निर्माण कार्य है, निर्माण क्रिया है। प्रीब्श और कौलिन्सन ने लिखा है कि पुरानी अंग्रेज़ी में **इंग् और उंग्** दोनों प्रत्ययों का व्यवहार होता था; **उंग्** तो जर्मन प्रत्यय है ही, इन लेखकों के अनुसार **इंग्** उसका प्रतिरूप है। अंग्रेज़ी में **बेडिंग्** (बिस्तर), **क्लोदिंग्** (वस्त्र), **फ्लोरिंग्** (फर्श) संज्ञारूप में ही अधिक प्रयुक्त होते हैं; वर्तमान काल में क्रिया की निरंतरता दिखाने के लिए इस प्रत्यय का बहुत प्रयोग होता है, **वर्किंग्** (करता हुआ), **गोइंग्** (जाता हुआ) इत्यादि। द्रविड़ परिवार में ब्राहूइ क्रियार्थी संज्ञा रूप बनाने के लिए ठीक अंग्रेज़ी की तरह **इंग्** प्रत्यय काम में लाती है : **कुट्टिंग्** (कूटना), **कन्निंग्** (करना; **कर्** से **कर्न** कृदन्त; फिर **कन्न्** का क्रियामूल मानकर कृदन्त रूप **कन्निंग्**); **कुनिंग्** (खाना पीना), **खल्लिंग्** (मारना) इत्यादि।

जैसे **स्तघ्** मूल से तमिल **तंगइ** और **तंगु** रूप बने, वैसे ही **स्तघ्** से तमिल **तडु**

(रोकना), **तडङ्ङ्** (रोका जाना), **तडि** (लाठी) और **तण्डु** (ठूंठ, तना) रूप बने हैं। द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में संस्कृत **तण्डक** (पेड़ का तना) दिया है जहां **स्त** क्रिया के **स्** का लोप हो गया है। संस्कृत **दंड** (लाठी) में उसी क्रिया का सघोष ध्वनिवाला रूप है। कन्नड़ **दंड**, तुलु **दंडु** पेड़ के तने के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं। बँगला क्रिया **दाँड़ानो** में **दाँड़** (**दंड**) का मूल अर्थ खड़े होना सुरक्षित है। तमिल क्रिया **अणइ** (निकट पहुँचना) की **अण्** धातु से **अण्डु** कृदन्त रूप बना और उसी अर्थ में क्रिया की तरह प्रयुक्त हुआ। **अण्डु** में **अण्ड्** 'धातु' से फिर कृदन्त रूप बना **अण्डइ** (सामीप्य)। संस्कृत **कम्** या **काम्** की प्रतिरूप **कान्** धातु से तमिल का एक रूप बनता है **काङ्ङइ** (ऊष्मा), दूसरा **कान्दु, कान्दि** (जलाना)। संस्कृत में **कान्ति** संज्ञा है, तमिल में क्रिया। जो प्रत्यय मूलतः **ध** था, वह **द, त, ट, ड** में परिवर्तित हुआ है। तमिल आदि द्रविड़ भाषाओं में अनुनासिक ध्वनियुक्त और उससे मुक्त दोनों तरह के रूप हैं यथा तमिल में **पोरु** (पर्याप्त होना), उससे **पोदु** (उप०), **पोन्द** (उपयुक्त, पर्याप्त), दोनों तरह के रूप प्राप्त हैं।

स्वयं संस्कृत में **ध** प्रत्यय **त** में बदल गया था, इसके प्रमाण कुछ संस्कृत शब्दों के ग्रीक प्रतिरूपों में मिलते हैं। संस्कृत **जनित्रम्** (जन्म स्थान) ग्रीक भाषा में **गॅनॅथ्लॉन्** है। इससे ब्रुगमन आदि ने सही निष्कर्ष निकाला है कि मूल उपसर्ग में **ध्** ध्वनि थी। संस्कृत में जो **त्र** और ग्रीक में **थ्ल** है, वह मूलतः **धर** था; उससे स्थान वाला अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है। बैठने के स्थान के लिए ग्रीक **ॲदॅथ्लॉन् में** यही **धर** रहा होगा; इसका लैटिन प्रतिरूप **सेदिकुलुम्** है। ब्रुगमन कहते हैं कि **त्लो** प्रत्यय आदि-इटालियन में **क्लो** हो जाता है; बाल्तिक भाषाओं—लिथुआनियन और लैतवियन—में भी इसका **क्लो** रूप हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि बाल्तिक और इतालिक भाषा-समुदायों के निर्माणकाल में कुछ बोलियाँ ऐसी थीं जिनमें **त्** ध्वनि का विकास न हुआ था। इसलिए **तर** प्रत्यय वे **कल, कुल** आदि रूपों में ग्रहण करती थीं। एक बार यह प्रत्यय चल गया, तब वह त-वर्गीय ध्वनियों वाले शब्दों के साथ जोड़ा जाने लगा, ऐसे शब्द चाहे अन्य बोलियों के हों, चाहे त-वर्गीय ध्वनियों का विकास होने पर उसी भाषा में गढ़े गए हों। ऊपर लैटिन **सेदिकुलुम्** से तमिल **अडक्कळम्** (शरण स्थान) तुलनीय हैं। तमिल में **कळम्, कळन्** स्वतंत्र शब्द भी है जिसका अर्थ है स्थान। यह **स्थलम्** का प्रतिरूप माना जायगा। (द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में खलिहान वाले **खल** के प्रतिरूप **कळम्** को सामान्य स्थानसूचक **कळम्** से मिला दिया गया है।)

तमिल में **व** प्रत्यय **प** का रूपान्तर है, स्वतंत्र प्रत्यय भी है। **शे** (मरना, सोना) क्रिया का तमिल प्रतिरूप **तेय्** (मुरझाना, मरना) है, **त्** के सघोष होने पर इसी का रूपान्तर अंग्रेज़ी का **डाइ** (मरना) शब्द प्राप्त होता है। तमिल **तेय्वु** का अर्थ है ह्रास। संस्कृत में **ऋक्** से **ऋक्व** (स्तुति) इसी प्रकार बनता है। लैटिन में **अर्** क्रियामूल का अर्थ है जोतना; उससे संज्ञा रूप बना **अर्वोम्** (खेत)। तमिल **अरि** माने काटना; **अरिवि** माने काटा हुआ धान। संस्कृत में **व** प्रत्यय का व्यवहार अपेक्षाकृत कम होता है; इसके विपरीत **य** प्रत्यय का व्यवहार—**कार्य, धैर्य, नृत्य, दृश्य, विद्या, यज्ञ** आदि में—व्यापक रूप से होता है। संस्कृत **वायु** का लिथुआनियन प्रतिरूप **वेयुस्** है। लैटिन-ग्रीक में **य्**

ध्वनि नहीं है, अतः **य** के स्थान पर **इश्रो, इउ** ध्वनियों का व्यवहार होता है। ग्रीक **पगि-आॅस्** (स्थापित, सुदृढ़) **पाश** वाली **पश्** क्रिया के रूपान्तर **पग्** से बना है, लैटिन **सोकिउस्** (**सौख्य** का प्रतिरूप) संज्ञा और विशेषण है, सखाभाव व्यक्त करता है। तमिल में **य** प्रत्यय का व्यवहार कम होता है किन्तु अन्य द्रविड़ भाषाओं में होता है। **मुरली** की **मुर** क्रिया का अर्थ है गाना, ध्वनि करना; तमिल **मुरवम्** (शोर) का तुलु प्रतिरूप **मुरिय** (चीख, क्रन्दन), **मुरियाटु** (विलाप) है। **स्थ** क्रिया से तमिल क्रियारूप **तरि** (थमना) बनता है; इसका तुलु प्रतिरूप **तरियुनि** है, कृदन्त को फिर मूल क्रिया बनाया गया है।

संस्कृत में **सघ्** की रूपान्तर **सह्** क्रिया से **साहस** शब्द बना, **वर्** क्रिया में **स** प्रत्यय लगाकर **वर्ष, वर्षा** शब्द बनाये गये, **दस्** और **शिव्** क्रियाओं से बने दक्ष और **शिक्षा** शब्दों में भी यही **स** प्रत्यय है। द्रविड़ भाषा विशेषज्ञ **स्** को द्रविड़ परिवार की मूल ध्वनि नहीं मानते किन्तु कन्नड़ तथा अन्य कई द्रविड़ भाषाओं में **स** प्रत्यय का व्यवहार खूब होता है। कन्नड़ **अरें** (पीसना) के कृदन्त रूप **अरिसु, अरयिसु** (पिसवाना) को फिर क्रिया रूप में प्रयुक्त किया गया है। कन्नड़ **अणॅ, अणि** (निकट आना) से **अणसु** (सुदृढ़ बन्धन) संज्ञा रूप बना। अड़ाने वाली कन्नड़ **अडॅ** क्रिया से **अड्डयिसु** (आड़े आना); तमिल में इसी के प्रतिरूप **अडइ** और **अडइच्चि** हैं। जिन भाषाओं में **च** प्रत्यय का व्यवहार होता है, उनमें **स्** ध्वनि **च्** रूप में ग्रहण की गई है, यह सम्भव है। फिर **च** स्वतन्त्र प्रत्यय हो गया होगा। बाल्तिक भाषाओं में **स** प्रत्यय का व्यवहार इस प्रकार होता है: भारतीय **अत्** (खाना) क्रिया से **एदेसिस्** (भोजन, चारा); **कल्ब** (भाषा) से **कल्बेसित्** (कहावत)। ग्रीक भाषा में संस्कृत क्रिया **जन्** के रूपान्तर **गॅन्** से **गॅनॅसिस्** (जन्म, उद्भव), हिन्दी **जानना,** संस्कृत **जानाति** के **जान्** क्रियामूल के ग्रीक रूपान्तर **ग्नो** से **ग्नोसिस्** (ज्ञान) इसी तरह बने।

कर्म, धर्म के **म** और **महिमा, सुषमा** के **मा** प्रत्यय द्रविड़ भाषाओं में भी प्रयुक्त होते हैं। मलयालम में **ताळ्** (झुकना) क्रियामूल से **ताळ्म, ताण्म** (नम्रता, अपमान) **म** प्रत्यय लगाकर बने; तमिल दीर्घ **आ** को संयुक्त स्वर **अइ** में बदलकर **ताळ्मइ** रूप बनाती है। क्रिया के अतिरिक्त संज्ञा-विशेषण आदि से भी ऐसे रूप बनते हैं: तमिल **तान्** (स्वयं) से **तानिमइ** (अकेलापन), मलयालम में **तनिम** (उप०)। **अत्** क्रिया से संस्कृत **आत्मन्** (मूल अर्थ वायु) इसी प्रकार बना है। **अत्** के रूपान्तर **अन्** (**अनिल** के **अन्**) से लैटिन **अनिम** (वायु, श्वास) शब्द बना। रूसी **व्रेम्य** का अर्थ है समय; पुरानी स्लावोनिक में इसका रूप **व्रेमॅ** है; **वर्** क्रिया के वर्णसंकोचन वाले रूप **व्रे** में **म** प्रत्यय जोड़कर यह शब्द बना। इस प्रकार **भर्** के रूपान्तर **ब्रे** से पुरानी स्लावोनिक में **ब्रेमॅ** (भार) शब्द बना। जहाँ **म** होगा वहाँ उसका प्रतिरूप **न** अवश्य होगा। **वर्** क्रिया से संस्कृत **वरुण** रूप बना; उसके ग्रीक प्रतिरूप **ओरनॉस्, ऑउरनॉस्** हैं। तमिल क्रिया **पर** (उड़ना) का कोडगु प्रतिरूप **पर्न्** है और संज्ञारूप **परण्** (चिड़िया) है। **पर्न** जैसे रूप से ग्रीक भाषा का **ऑर्निस्** (चिड़िया) शब्द बना है। संस्कृत **सूनु, धेनु, भानु** में **नु न** का ही प्रतिरूप है। गौथिक (पुरानी जर्मन) में **सूनुस्** रूप प्राप्त है; **तृण** का प्रतिरूप उस भाषा में **थउर्नु** (काँटा) है। पुरानी स्लावोनिक में **तिनु** रूप है। कन्नड़ **अडॅ** (अड़ाना)

से **अडनॅं, अड्डनॅं** (आड़ा), **अड्डण** (ढाल) तेलुगु में **अड्डनमु** (उप०) रूप मिलते हैं। ढाल के लिए **अड्डन** शब्द संस्कृत कोशों में दिया है, इसका उल्लेख द्रविड़ व्युत्पत्ति कोशकारों ने किया है। तमिल **काण्** (देखना) से **कण्णु** (विचार करना) रूप न बनेगा; **कण्** क्रिया भी देखने के लिए प्रयुक्त होती होगी। अब **कण्** का संज्ञा वाला अर्थ आँख रह गया है। संस्कृत का **कथन**, पुरानी अवधी और वर्तमान कनौजी का **करन**, मानक हिन्दी का **कहना**, इन सब में क्रियार्थी संज्ञा बनाने के लिए **न** प्रत्यय का व्यवहार किया गया है। गोंडी जैसी द्रविड़ भाषाओं में इसका व्यवहार हिन्दी की तरह होता है : तमिल **नो** (दुखना) का गोंडी प्रतिरूप **नॉइयाना** है, कन्नड़ **मूसु** (सूँघना) का गोंडी प्रतिरूप **मुस्काना** है। इस तरह कन्नड **के** (लेटना) का कुड़ुख प्रतिरूप **कीद्ना** है, तेलुगु **चीरु** (चीरना) का कुड़ुख प्रतिरूप हिन्दी के समान **चीरना** है। जर्मन क्रियार्थी संज्ञा रूप **बिलडॅन्** (बनाना), **बिन्डॅन्** (बाँधना) में **न्** उसी प्राचीन कृदन्त प्रत्यय **न** का संक्षिप्त संस्करण है।

कुछ अन्य प्रत्यय इस प्रकार हैं।

अंग्रज़ी **मौर्टर्** वह पात्र है जिसमें रखकर कोई चीज़ कूटी जाती है। इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित कही गई है। **मौर्ट्** संस्कृत **मर्द** का प्रतिरूप है। जिसमें किसी वस्तु का मर्दन हो, कुटाई हो, वह **मौर्टर्** है। तमिल में ऐसे पात्र के लिए **उरल्** शब्द है; तमिल क्रिया **उरइ** का अर्थ है कूटना, पीसना। **उरल्** और **मौर्टर्** की निर्माण-प्रक्रिया एक है; अंग्रेज़ी प्रत्यय **अर्** और तमिल **अल्** सम्बन्धित हैं। गोंडी के **मस्सोर्, मॉसॉर्** (नाक) शब्दों में **अर्** प्रत्यय लगा है, धातु है **मुस्** (यथा कन्नड़ **मूसु**—सूँघना)। यहाँ कर्ताभाव दिखाने के लिए **अर्** प्रत्यय का प्रयोग हुआ जैसे **वर्कर्** (**वर्क्**—काम करना, **वर्कर्**—श्रमिक) में **अर्** का प्रयोग है। यह प्रत्यय क्रिया के अलावा संज्ञा शब्दों में भी लगता है। जिसका बोतलों से सम्बन्ध हो, वह अंग्रेज़ी में **बट्लर्** (मुख्य सेवक) कहलाया; जिसका सम्बन्ध गाड़ी (लैटिन **कार्पेन्तुम्**) से था, वह अंग्रेज़ी में **कॉर्पेन्टर्** (बढ़ई) कहलाया। मलयालम **पॅट्ट** का अर्थ है गंजी चाँद; कोलमि **पॅट्टिअर्** का अर्थ हुआ गंजी चाँद वाला।

इन्डोयूरोपियन परिवार की प्राचीन भाषाओं का एक प्रतिष्ठित प्रत्यय **मान** था। ब्रुगमन ने संस्कृत **बोधमानः** का ग्रीक प्रतिरूप **पॅउथॉमॅनॉस्** दिया है। तमिल इस प्रत्यय का उपयोग अपने ढंग से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए करती है : **तेय्**—नष्ट होना, **तेय्मानम्**—विनाश; **तीर्**—समाप्त होना, **तीर्मानम्**—समाप्ति, परिणाम।

द्रविड़ भाषाओं में निर्देशक सर्वनामों **अ, इ, उ** की भूमिका जितनी स्पष्ट है, उतनी इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं में अन्यत्र नहीं है। इनके मूल रूपों में **स्** ध्वनि थी; इसीलिए मराठी, भोजपुरी जैसी भारतीय आर्य भाषाओं में, इन्डोयूरोपियन परिवार की स्वीडिश और नौर्वीजियन, ग्रीक और लैटिन भाषाओं में इनके ह् ध्वनि वाले रूप भी मिलते हैं। इनमें **ध, घ, भ** प्रत्यय लगाकर देश-काल-व्यक्ति-वस्तुसूचक निर्देशक सर्वनाम बनाये जाते हैं और सम्बन्धक शब्द भी। इनमें सर्वाधिक प्रयोग **ध** और उसके रूपान्तर **त-द** का होता है। अनेक सम्बन्धक शब्द और सर्वनाम कारक

चिन्हों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। यूरुप की भाषाओं में जो निश्चयबोधक विशेषक लगाये जाते हैं, वे भी मूलतः सर्वनाम हैं।

ग्रीक भाषा में **हो, हे** निर्देशक सर्वनाम हैं; वे निश्चयबोधक विशेषकों की तरह भी प्रयुक्त होते हैं। मराठी के निर्देशक सर्वनाम **हा** (पुं०), **ही** (स्त्री०), **हें** (नपु०) उन्हीं **स्** मूलक रूपों से बने हैं जिनसे ग्रीक शब्द बने हैं। स्वीडिश भाषा के **हन्** (वह, पुं०), **होन्** (वह, स्त्री०), नौर्वीजियन के **हन्** (वह, पुं०), **हुन्** (वह, स्त्री०) व्यक्ति-वाचक सर्वनाम हैं, ये भी उसी शृंखला के हैं। संथाली में **हन्** निर्देशक सर्वनाम है; रूसी का **अन्** या **ऑन्** (वह, पुं०) इसी का प्रतिरूप है। दूर का स्थान बताने के लिए संथाली रूप **हन्ते** (वहाँ) का लैटिन प्रतिरूप कालवाचक **अन्ते** (दूर का समय, पहले का समय) है। तमिल **अन्द** (वहाँ) संथाली **हन्ते** और **हन्डे** के समान स्थानवाचक है। संस्कृत **इदम्**, तमिल **इदु**, लैटिन **इदॅम्** समानार्थी शब्द हैं। लैटिन **इदॅम्** में **दॅम्** को दिनवाचक **दिएस्** से सम्बद्ध करना आवश्यक नहीं है। **इबीदॅम्** (वही स्थान) में **दॅम्** काल के स्थान पर देश की सूचना देता है। **इद** का लैटिन प्रतिरूप **इल्लॅ**, हिन्दी वह के समान, व्यक्ति और वस्तु दोनों की ओर संकेत करता है। फ्रान्सीसी भाषा का **इल्** (वह, पुं०) इसी **इद** का रूपान्तर है। स्पेनी भाषा का निश्चयबोधक **ऍल्** **इद** से सम्बद्ध है। **ल, लो** आदि अन्य रूप इसी शृंखला के हैं।

तमिल **नान्** (मैं), **नीम्, नीर्** (हम), ग्रीक **नो** (हम दोनों), लैटिन **नोस्तेर्** (हमारा), फ्रान्सीसी **नू** (हम), रूसी **नास्** (हमें), संस्कृत **नः** (हमारा) इत्यादि एक ही स्रोत के शब्द हैं। संस्कृत **मम** का **म**, फारसी **मन्** उत्तम पुरुष सर्वनाम के एकवचन रूप भी उसी स्रोत के हैं। द्रविड़ भाषाओं में तेलुगु **मीरु**, गोंडी **मीमत्**, कुवि **मीम्बु** उत्तम पुरुष सर्वनाम के बहुवचन रूप हैं जिनमें पुराना एकवचन **मी** रूप सुरक्षित है। मराठी का **मी** (मैं) कर्तारूप है; अंग्रेजी का **मी** (मुझे) कर्म या सम्प्रदान रूप। तेलुगु **मीरु** के **मी** से यह भिन्न नहीं है।

इस प्रकार शब्द निर्माण प्रक्रिया तथा शब्द भण्डार के अनेक स्तरों पर हम द्रविड़ तथा इन्डोयूरोपियन परिवारों में समानता देखते हैं।

३

भारतीय भाषा परिवार और इंडोयूरोपियन रूपतंत्र

१. क्रियापद रचना

आर्य भाषाओं के वाक्यतंत्र की मूल विशेषता यह है कि वह क्रिया-केन्द्रित है। वाक्य के सारे अवयव क्रिया की ओर उन्मुख होते हैं।

संस्कृत, ग्रीक आदि भाषाओं में क्रियारूप के बाद पुरुषवाचक सर्वनाम या उसका चिन्ह संयुक्त रहता है। जैसे हम कहें **पठामि**, तो इस क्रिया के पहले कर्त्ता का उल्लेख करना अनावश्यक है, क्रिया में कर्त्ता सर्वनाम चिन्ह लगा है। सर्वनाम-सूचक **मि** से पता चल जाता है कि कर्त्ता उत्तम पुरुष है, **पठामि** अर्थात् मैं पढ़ता हूँ। एक दूसरा रूप लें **पठति**। यदि कर्त्ता अन्य पुरुष सर्वनाम है तो उसका उल्लेख आवश्यक नहीं है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति विशेष कर्त्ता है तो उसका उल्लेख आवश्यक होगा और यह उल्लेख वाक्य के आरम्भ में होगा यथा **रामः पठति, राम पढ़ता है**। जिस समय संस्कृत, ग्रीक आदि भाषाओं का निर्माण हो रहा था, उस समय क्रिया के अन्त में आनेवाला सर्वनाम-तत्व क्षीण हो रहा था। उसका उपयोग पुरुष की सूचना देने के लिए रह गया था। इसके अतिरिक्त विभिन्न लकारों में जो सर्वनाम चिन्ह लगते हैं, वे एक से नहीं हैं। उनका उपयोग अंशतः लकार भेद के लिए किया जाने लगा है।

सर्वनाम जोड़ने की प्रक्रिया अनेक भाषा परिवारों में है। फिनोउग्रियन परिवार की फिन भाषा में संज्ञा और क्रिया दोनों में सर्वनाम चिन्ह जोड़े जाते हैं। **तलोनि** (मेरा घर), **कैलॅनि** (मेरा हाथ), **लउलन्** (मैं गाता हूँ), **लउलत्** (तू गाता है)। उज़बेकिस्तान में तुर्की भाषा बोली जाती है। इसका क्षेत्र फिनलैंड से बहुत दूर है। इसमें भी **शहरिम्** (मेरा शहर), **यज़मन्** (मैं लिख रहा हूँ), संज्ञा और क्रिया के बाद सर्वनाम चिन्ह जोड़ने की वही पद्धति है। कौल्डवेल ने इस बात पर ध्यान दिया था कि सामी परिवार की हीब्रू भाषा में भी सर्वनाम चिन्ह जोड़ने का ऐसा ही चलन है। द्रविड़ भाषाओं में मलयालम इस तरह के पुरुषवाचक सर्वनाम चिन्ह नहीं जोड़ती, अन्य द्रविड़ भाषाएँ जोड़ती हैं।

ग्रियर्सन ने सिन्धी, कश्मीरी, पश्चिमी पंजाबी को दरद भाषा समुदाय का क्षेत्र माना था। उनकी स्थापना थी कि इस क्षेत्र पर भारतीय नहीं, ईरानी प्रभाव था। फ़ारसी में भी क्रियापदों के साथ सर्वनाम चिन्ह जोड़े जाते हैं। दरद भाषाओं का एक

लक्षण यह भी बताया गया है। किन्तु यह लक्षण जितना फारसी में है, उतना ग्रीक और संस्कृत में भी है, और जितना इन भाषाओं में है, उससे कुछ ज्यादा ही फिनोउग्रियन, तुर्क-मंगोल, हीब्रू आदि भाषाओं में है। वह प्रवृत्ति अंशतः द्रविड़ भाषाओं में है। ऐसी विलक्षण प्रवृत्ति ऐसे विविध भाषा-परिवारों में स्वतः उत्पन्न नहीं हो सकती। स्पष्ट ही अत्यन्त प्राचीनकाल में ऐसा भाषा-क्षेत्र रहा है जहाँ अपने निर्माणकाल में ये विभिन्न भाषा-परिवार एक दूसरे के सम्पर्क में रहे हैं। यह क्षेत्र मध्य एशिया का वह भाग था जिसे बृहत्तर भारत का अंग, उत्तराखंड कहते थे। यहीं विभिन्न जन-समुदाय अपनी विविध भाषा-प्रवृत्तियाँ लिए हुए एक दूसरे को प्रभावित करते रहे थे। सर्वनाम चिन्ह जोड़ने की विलक्षण प्रवृत्ति किसी भाषा परिवार की मूल प्रवृत्ति मानी जायगी। यहाँ फिर सिद्ध होता है कि किसी भी भाषा परिवार का निर्माण और विकास एकान्त शून्य की स्थिति में नहीं होता। जिन्हें हम भाषा-परिवार की मूल प्रवृत्तियाँ मानते हैं, वे भी परस्पर सम्पर्क तथा आदान-प्रदान का परिणाम हो सकती हैं, वे भी परिवर्तनशील होती हैं। संज्ञा और क्रिया में सर्वनाम चिन्ह जोड़ने की प्रक्रिया वाक्यतंत्र के अन्तर्गत है। ध्वनितंत्र और शब्दतंत्र के समान वाक्यतंत्र भी भाषा परिवारों के विकास, उनके भेद और उनके सम्बन्ध समझने में सहायक होता है।

जिन भाषा-परिवारों में उक्त लक्षण है, उन सभी में अब कर्त्ता क्रिया के पहले ही आता है, तथा संज्ञा और क्रिया से जुड़नेवाले चिन्हों से स्वतन्त्र सर्वनामों की पृथक् सत्ता है। मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया और यूरुप के भाषाई मानचित्र पर ध्यान दें तो विदित होगा कि उक्त सर्वनामी प्रवृत्ति क्रमशः क्षीण होती गई है। इस क्षीणता का एक कारण उक्त भाषाई मानचित्र में इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं का निरन्तर बढ़ता हुआ प्राधान्य है। स्वयं इस इन्डोयूरोपियन परिवार के विकास में भारतीय आर्य भाषाओं की भूमिका निर्णायक रही है और इन आर्य भाषाओं में कुरु गण समुदाय का प्रभाव निरंतर बढ़ता गया है। यही कारण है कि मध्यदेश की सर्वनामाङ्कित तिङन्त क्रियापद रचना क्रमशः बदलती गई और कृदन्त पद रचना का प्रसार होता गया। कृदन्त पद्धति सर्वनाम चिन्हों से मुक्त थी। भारतीय आर्य भाषा-परिवार में आरम्भ से एक विरोधी कौरवी प्रवृत्ति रही है जो संज्ञा और क्रिया को सर्वनामों के बन्धन से मुक्त रखती थी। यह प्रवृत्ति उत्तराखण्ड की भाषाओं को निरंतर प्रभावित करती रही थी। आर्य भाषाओं के प्राचीन केन्द्र मध्यदेश में थे और अब भी यहाँ तिङन्त रूपों का अपेक्षाकृत अधिक व्यवहार होता है।

तमिल **पो** क्रिया के **पोग** कृदन्त रूप में **एन्** सर्वनाम चिन्ह जोड़कर **पोगिरेन्** रूप बनाती है किन्तु कुछ द्रविड़ भाषाएँ कृदन्त के बाद सर्वनाम चिन्ह लगाती ही नहीं हैं। इनमें एक मलयालम है। **ञान् वरुन्नु** (मैं आता हूँ), **नी वरुन्नु** (तू आता है), **अवन् वरुन्नु** (वह आता है), **अवळ् वरुन्नु** (वह आती है), **नम्मळ् वरुन्नु** (हम आते हैं), **निङ्ङळ् वरुन्नु** (तुम आते हो), **अवर् वरुन्नु** (वे आते हैं)—इन वाक्यों में सर्वनाम बदलते रहते हैं, क्रियारूप निर्विकार अपरिवर्तित बना रहता है। **मैंने मारा, तुमने मारा, लड़कियों ने मारा, लड़कों ने मारा,** इन हिन्दी वाक्यों में जो स्थिति **मारा** की है, उससे

मिलती-जुलती स्थिति मलयालम **वरन्नु** की है।

भूतकाल के लिए अनेक भाषाएँ कृदन्तों का व्यवहार करती हैं। स्वयं संस्कृत में भूतकालीन कृदन्त, शेष कालसूचक कृदन्तों की अपेक्षा, अधिक हैं। भूतकालीन कृदन्त के लिए जिस प्रत्यय का सबसे अधिक व्यवहार होता था, वह **त** है। यही प्रत्यय तमिल भाषा में भूतकालीन रूपों का चिन्ह है। वह **द, त्त** और **न** रूपों में प्रयुक्त होता है; उससे संज्ञा-रूप भी बनाये जाते हैं किन्तु संस्कृत और तमिल भाषाओं में भूतकालीन कृदन्त के निर्माण की प्रक्रिया एक-सी है। जैसे संस्कृत में **श्रुतः, गतः** रूप होते हैं, वैसे ही तमिल में **चॅय्द** (कृतः, किया), **वन्द** (यातः, आया या गया) रूप होते हैं। क्रियार्थी संज्ञा की तरह इनका स्वतन्त्र प्रयोग होता है और सामान्य क्रिया रूपों की तरह सर्वनाम चिन्ह जोड़कर भी उनका प्रयोग होता है। अवधी में **गैन** (गये) जैसे रूप में **त्** ध्वनि **न्** में परिवर्तित हुई है। भोजपुरी के **गयल**, बँगला के **गेल** जैसे रूपों में वही **त्** ध्वनि **ल्** में परिवर्तित हुई है।

इस तरह के **ल्** ध्वनिवाले भूतकालीन कृदन्त रूप भारत में एक ओर बंगाल, दूसरी ओर महाराष्ट्र में प्रयुक्त होते हैं। भारत से बाहर रूसी भाषा में भूतकाल के लिए इस तरह के कृदन्त का व्यवहार सामान्य है। वर्तमानकालिक रूसी रूप **गवरीत्** (बोलता है) में लिंगानुसार कोई परिवर्तन नहीं होता किन्तु भूतकालीन रूप में **गवरील्** (पुंल्लिग) **गवरीला** (स्त्रीलिंग) जैसे भेद हैं। ठीक इसी तरह का परिवर्तन मराठी में होता है। बंगाल से लेकर रूस तक केवल भूतकाल के लिए **ल्** ध्वनि वाले कृदन्त का व्यवहार होता है; यह इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं पर भारतीय आर्य भाषाओं के प्रभाव का अकाट्य प्रमाण है। यही कृदन्त संस्कृत में है, केवल वहाँ **ल्** का पूर्वरूप **त्** है। द्रविड़ भाषाओं में **त्** अथवा उसके **न्** रूपान्तर का प्रयोग होता है, **ल्** का नहीं। अंग्रेज़ी के **डीड्** में **द्** प्रत्यय है किन्तु **डन्** में **त्** का रूपान्तर **न्** है। तमिल में वर्तमान काल के लिए जो क्रिया रूप बनाये जाते हैं, उनमें कृदन्त चिन्ह **क** या **ग** रहता है। **पोग** (जाना) या **पोगिर** जैसे रूप का व्यवहार वर्तमान कालीन क्रिया बोध के लिए संस्कृत, मराठी, बँगला, रूसी आदि भाषाओं में नहीं होता। किन्तु अंग्रेज़ी में **वाक्** (wal-k) जैसी क्रिया वस्तुतः **पोग** के समान कृदन्त है; **वर्** के रूपान्तर **वल्** में **क** प्रत्यय जोड़ा गया। फिर कृदन्त को मूल क्रिया मान लिया गया।

हिन्दीभाषी प्रदेश में द्रविड़ कृदन्तों से सम्बन्धित स्थिति अवलोकनीय है। **प्** या **ब्** वाला कृदन्त रूप भविष्य काल के लिए पूरबी बोलियों में सुरक्षित हो गया। भविष्यकाल के अतिरिक्त क्रियार्थी संज्ञा के लिए भी उसका प्रयोग होता है। **त्** या **न्** वाला कृदन्त रूप **गयल, गैन** जैसे रूपों में प्रयुक्त होता है। **क्** या **ग्** ध्वनिवाले कृदन्त प्रत्यय का व्यवहार भविष्यकाल के लिए हिन्दी प्रदेश की पश्चिमी बोलियों में हुआ। यह भविष्यकाल अनेक परिस्थितियों में वर्तमान का भाव भी लिये रहता है।

संस्कृत में क्रियार्थी संज्ञाओं का इतिहास इस संदर्भ में शिक्षाप्रद है। मैकडनल ने वैदिक भाषा के व्याकरण में बताया है कि क्रियार्थी संज्ञा ('इनफिनिटिव्') पहले क्रिया के आधार पर बना हुआ संज्ञा शब्द था। अन्य संज्ञा शब्दों की तरह इसमें भी

कारक चिन्ह लगते थे। कर्म और सम्प्रदान कारक मुख्य थे यथा **युधये, एतवे, वाचे**; इनका सम्प्रदान कारक के अनुरूप अर्थ था लड़ने के लिए, जाने के लिए, बोलने के लिए। वैदिककाल में क्रिया वाला अर्थ प्रधान हो गया, अतः क्रियार्थी संज्ञा रूप में इनका अर्थ हुआ लड़ना, जाना, बोलना। इस तथ्य से विदित होता है कि एक समय क्रिया के आधार पर बने हुए शब्द में संज्ञा तत्व की प्रधानता हो जाती है, वैदिककाल में क्रिया तत्व को प्रधानता देनेवाली प्रवृत्ति फिर प्रबल होती है। अतः कारक वाला भाव लुप्त होता गया और क्रियार्थी संज्ञा रूप में कारक चिन्ह युक्त शब्दों का प्रयोग होने लगा। कारक चिन्ह शब्द से जुड़ा रहा, क्रिया का भाव प्रधान होने पर उसकी सार्थकता नष्ट हो गई।

संस्कृत पर अपने ग्रन्थ में बरो कहते हैं कि वैदिक भाषा के क्रियार्थी संज्ञा रूप बाद की संस्कृत में लुप्त हो गये। विभिन्न कारक-चिन्हों से युक्त अनेक रूपों में कर्म-कारक वाले रूप—**कर्तुम्, भवितुम्, दातुम्** (करने, होने, देने को)—का चलन शेष रहा किन्तु कर्म कारक में सम्प्रदान वाला भाव सिमट आया और कर्म वाला भाव क्षीण हो गया। बरो ने लिखा है कि बाद की संस्कृत में क्रियार्थी संज्ञा (इनफिनिटिव्) का रूप संज्ञा-निर्माण-प्रक्रिया ('नौमिनल् फौर्मेशन्') से स्वतन्त्र हो जाता है। वाक्य में क्रिया को प्रधानता देने वाले मध्यदेशीय तत्व और भी सक्रिय होते हैं; वैदिक काल से पहले संज्ञा-तत्व की जो प्रधानता बढ़ रही थी, वह एक स्तर पर निर्बल पड़ जाती है।

संस्कृत के कृदन्त रूपों के लिए बरो ने लिखा है कि वे संज्ञा रूप ('नौमिनल फौर्म') थे, वे क्रिया व्यवस्था में घुल-मिल गये किन्तु उतना नहीं घुले-मिले जितना ग्रीक भाषा में। क्रिया व्यवस्था में संज्ञा तत्वों की यह घुलनशीलता अकारण नहीं है। यदि वैदिक भाषा के विविध कृदन्त रूपों की तुलना उत्तरकालीन संस्कृत से की जाय तो विदित होगा कि संज्ञा और विशेषण का कार्य करने वाले वैदिक कृदन्तों में बड़ी विविधता है। यह विविधता क्रमशः कम होती जाती है और जैसे-जैसे मध्यदेश की मूल प्रवृत्तियाँ उभरती हैं, वैसे-वैसे साहित्य-रचना में दो शैलियाँ अलग दिखाई देने लगती हैं; एक कृदन्त प्रधान उत्तर-पश्चिमी शैली, दूसरी तिङन्त प्रधान मध्यदेशीय शैली। इस उत्तरकालीन कृदन्त शैली में बहुत थोड़े कृदन्त रह गये हैं। भूतकालीन कृदन्त **पतित, गत, श्रुत** जैसे रूपों का चलन अधिक हुआ, **त्** की परिवर्तित ध्वनि **न्** से **भग्न, छिन्न, क्षीण** जैसे रूपों का चलन हुआ। अनेक विद्वानों के समान बरो ने भी यह मत प्रकट किया है कि मध्य भारतीय आर्य-भाषाओं में पुराने संस्कृत क्रिया रूपों का लोप हो गया और उनके स्थान पर सर्वत्र कृदन्तों का व्यवहार होने लगा। यह बात सही नहीं है। पहले तो इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि जिन्हें नव्य आर्य भाषाएँ कहा जाता है, उनमें कृदन्त रूपों का व्यवहार करते समय क्रिया-भाव की प्रधानता होती है, संज्ञा भाव की नहीं। दूसरी बात यह है कि तथाकथित मध्य आर्य भाषाएँ वास्तविक भाषाई स्थिति प्रतिबिम्बित नहीं करतीं। तीसरी बात यह कि हिन्दी प्रदेश की अनेक उपभाषाओं में भूतकालीन क्रिया रूपों में कृदन्तों का प्रयोग नहीं होता। बरो ने लिखा है कि नव्य आर्य भाषाओं में भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनों कालों के क्रिया रूप भूत-

कालीन कर्मवाच्य कृदन्त के आधार पर बनते हैं। **रामचरित मानस** से अतीतकाल के कुछ रूप देखें। अयोध्या काण्ड में : **पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू; रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु; कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु।** यहाँ **सि** वाले रूप उस कर्त्ता के लिए हैं जो स्त्री है। इसी काण्ड में आगे चलकर निषाद के लिए लिखा है : **दोना भरि भरि राखेसि पानी।** कर्त्ता के अनुसार क्रिया में लिंग सूचक परिवर्तन नहीं होता। **कथा कहिसि** और **कपट प्रबोधु कीन्हेसि**—यहाँ कर्म स्त्रीलिंग और पुंल्लिग हैं, उनके अनुसार क्रिया में परिवर्तन नहीं होता। क्रिया की यह स्थिति मध्यदेशीय गण-भाषाओं की मूल प्रवृत्तियों का प्रमाण है।

इन्डोयूरोपियन भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए ग्रीक और लैटिन भाषाओं के व्याकरण में बक ने लिखा है कि इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं में जो रूप क्रियार्थी संज्ञा बनकर प्रतिष्ठित हुए, उनमें बड़ी भिन्नता है। वैदिक भाषा के आधार पर उन्होंने कल्पना की है कि आदि इन्डोयूरोपियन भाषा में संज्ञा शब्द क्रियार्थी संज्ञा बन गया, अपने कारक चिन्ह के साथ वह क्रिया व्यवस्था से संलग्न हो गया, क्रिया के समान वह काल, वाच्य आदि रूपों के भेद व्यक्त करने लगा। बक के अनुसार आदि भाषा में यह प्रक्रिया आरम्भ हो गई थी किन्तु किन्हीं विशिष्ट रूपों को क्रियार्थी संज्ञा बनाकर स्थिर न किया गया था।

यहाँ ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की स्थापनाएँ बहुत साफ कमज़ोर दिखाई देती हैं। पहले क्रिया के आधार पर संज्ञा शब्दों का निर्माण, कारक रूपों में उनका व्यवहार, फिर कारक तत्व अर्थात् संज्ञातत्व की क्षीणता और क्रिया व्यवस्था में उन क्रियामूलक शब्दों का प्रवेश—ये सारे परिवर्तन अकारण होते हैं, एक सीमित क्षेत्र की भाषा में होते हैं जो भिन्न प्रकृति वाले भाषा परिवारों के सम्पर्क में नहीं आई। इस सारी प्रक्रिया के साथ मध्यदेशीय और कौरवी भाषाओं का सम्बन्ध जोड़ दीजिये तो कारणों का पता चल जाता है। प्राग् वैदिक काल से लेकर आधुनिक आर्य भाषाओं तक भारत के भाषाई मानचित्र पर निगाह डालिए और क्रिया व्यवस्था में परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों पर विचार कीजिए तो जिस प्रक्रिया का पहले कोई आधार या कारण दिखाई न देता था, उसका आधार और कारण प्रकट हो जाता है, काल्पनिक आदि इन्डोयूरोपियन भाषा के स्थान पर अनेक गण समाजों की यथार्थ भाषाएँ सामने आ जाती हैं।

बक ने लिखा है कि क्रियार्थी संज्ञा रूपों में इतनी विविधता है कि ग्रीक और लैटिन में ही समानता नहीं है। स्वयं ग्रीक समुदाय में उसकी बोलियों के क्रियार्थी संज्ञा-रूपों में भेद है, और लैटिन समुदाय में एक ओर लैटिन, दूसरी ओर ओस्कन-उम्ब्रियन, दोनों के रूपों में भेद है। हमारे विचार से इस तरह की विविधता स्वाभाविक है, वह भाषा के अन्य स्तरों पर भी देखी जाती है। इस विविधता में दो विरोधी मूल प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं, एक वह जो वाक्य में संज्ञा तत्व को प्रधान मानती है, दूसरी वह जो क्रियातत्व को प्रधान मानती है।

ब्रुगमन ने अपने तुलनात्मक व्याकरण के चौथे खण्ड में लिखा है कि विधेय के रूप में कृदन्त का प्रयोग, सहायक क्रिया के साथ अथवा उसके बिना, समग्र इन्डोजर्मेनिक

क्षेत्र में पाया जाता है। उनके विचार से इस तरह का प्रयोग मूल जननी भाषा में विद्यमान था, और जब किसी कार्य की अवधि पर ऐसा जोर देना होता था जो सामान्य क्रिया रूपों से व्यक्त न हो सकता था, तब इस तरह का प्रयोग होता था। (पृष्ठ ४४४)। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि इन्डोजर्मैनिक अर्थात् इन्डोयूरोपियन भाषाओं के क्षेत्र में दो भिन्न प्रवृत्तियाँ काम कर रही थीं। कृदन्त का व्यवहार इस क्षेत्र से बाहर भारतीय आर्य-द्रविड़ भाषाओं में भी होता था। यूरुप की भाषाओं के कृदन्त प्रयोग भारतीय पद्धति से प्रभावित हैं, इसका प्रमाण यही नहीं है कि दोनों ओर एक सामान्य प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं, इसका प्रमाण यह भी है कि दोनों ओर अनेक कृदन्त रूप बिल्कुल मिलते-जुलते हैं। बाल्तिक भाषाओं में लिथुआनियन भाषा ऐसी है जिसमें प्राचीनता के लक्षण सबसे ज्यादा पाये जाते हैं, विद्वानों का ऐसा कहना है। इसमें **क** और **ग** वाले कृदन्त रूप तमिल रूपों का स्मरण कराते हैं। **ग** और **इङ्ग, अङ्ग** प्रत्यय मूलतः एक हैं। अंग्रेजी में क्रिया की निरन्तरता सूचक **इंग** प्रत्यय वाले रूप—**वर्किंग्** (काम कर रहा) आदि—ब्राहूइ कृदन्तों के समान हैं, पहले कहा जा चुका है।

संस्कृत, इन्डोयूरोपियन परिवार की अन्य भाषाओं और द्रविड़ परिवार की भाषाओं की एक विशेषता यह है कि इनमें बहुत सी क्रियाएँ ऐसी हैं जिनका मूल रूप प्रच्छन्न हो गया है, मूल रूप को कृदन्त बनाया गया है और यह कृदन्त रूप पुनः क्रियामूल अथवा धातु के रूप में प्रयुक्त होता है।

संस्कृत में यह तथ्य उन क्रियारूपों को देखने से बहुत आसानी से समझ में आ सकता है जिनके अन्त में **क्ष्** व्यंजनयुग्म आता है। **भक्ष्, मोक्ष्, दक्ष्, शिक्ष्**—इन क्रियाओं का मूल रूप **भस्, मुच्, दश्** (धस्त का **धस्**, फिर **दस्**, फिर **दश्**) और **शिष्** हैं। **शिक्ष्** का सम्बन्ध **शास्** (आज्ञा देना) से जोड़ा जाता है। **शिष्य** को आज्ञा भी दी जाती है पर उसका मुख्य काम शिक्षा पाना है। अतः मूलक्रिया **शिष्** हुई। इन क्रियाओं की **स्, च्, श्** और **ष्** ध्वनियाँ **क्** में परिवर्तित होती हैं। क्रियारूपों के बाद संज्ञा बनाने के लिए **स** प्रत्यय जोड़ा जाता है। उसका मूर्धन्यीकरण होता है, इस प्रकार संज्ञारूप को पुनः क्रियारूप बनाया जाता है। **वर्ष्** क्रिया का मूलरूप **वृष्** माना जाता है। क्रियामूल **वर्** है जिससे **वारि** शब्द बनता है। वर्णसंकोच के कारण **वर्** को **वृ** रूप दिया गया है। एक क्रिया है **अंग्** (चलना), यह क्रियामूल **अन्** का कृदन्त रूप है, ठीक **पो** से **पोग्** के समान। यह वही **अन्** क्रिया है जिससे **अनिल** शब्द बनता है। **लुञ्च्** (नोंचना, काटना) **लू** क्रिया का कृदन्त रूप है जिससे लुनाति रूप बनता है। **विज्, वीज्** (चलना, पंखा) रूप **वि** क्रियामूल से व्युत्पन्न है जिससे वायु, वात और अंग्रेजी **विन्ड** शब्द बनता है। **पद्** माने चलना, इसकी मूल क्रिया **प** है जिससे **पथ** शब्द बनता है। **पथ** के समान एक शब्द **गाध** है जिसका अर्थ है वह स्थान जिसे पार किया जा सके। समुद्र **अगाध** होता है, इसलिए कि उथले पानी की तरह उसे सामान्य गमन क्रिया द्वारा पार नहीं किया जा सकता। **गाध** और **अगाध** में क्रिया मूल **गा** है। फिर **गाध्** क्रिया बनाई गई और उसका अर्थ किया गया ठहरना, किसी स्थान के लिए प्रयाण करना। संस्कृत क्रिया **स्पृध्** (होड़ करना) में क्रियामूल **पुर्** है। **स्** उपसर्ग है, कृदन्त

रूप बनाने के लिए **ध** प्रत्यय जोड़ा गया, **पुर्** (युद्ध करना) में वर्णसंकोच के कारण रूपान्तर हुआ और एक नई क्रिया **स्पृध्** का निर्माण हुआ। यह **पुर्** वही है जो तमिल में **पॉरु** है।

क्रियाओं से **मोक्ष, दक्ष** आदि जो रूप बनते हैं, वे संज्ञा हैं। उनमें क्रिया का अर्थ भी रहता है, इसलिए उन्हें कृदन्त कहना उचित है। जब हम **सर्प** शब्द कहते हैं तो हमारे मन में रेंगने की क्रिया नहीं होती। **सर्प** अब विशुद्ध संज्ञा है किन्तु प्राचीन-काल में **सर्प** कहते हुए क्रिया का भाव इतना प्रमुख था कि **सर्प** को पुनः **सृप्** क्रिया में रूपान्तरित किया गया। अवश्य **सृप्, सर्प्** क्रिया का व्यवहार करने वाले इस बात के प्रति सदैव सचेत न थे कि वे एक क्रिया से व्युत्पन्न कृदन्त रूप को पुनः क्रिया बना रहे हैं। मूल क्रिया के कृदन्त बनने का कारण कौरवी प्रभाव है। कृदन्त रूप के पुनः क्रियामूल बनने का कारण मध्यदेश की पुरानी तिङन्त क्रिया-पद्धति है। द्रविड़ भाषाएँ भी इस प्रवृत्ति से प्रभावित होकर अपने कृदन्तों को पुनः क्रियामूल बनाती हैं।

यह व्यापार उस समय का है जब आर्य और द्रविड़ परिवारों का निर्माण हो रहा है, जब इस निर्माण के साथ-साथ पश्चिमी एशिया, मध्य एशिया और यूरुप को भारतीय भाषातत्वों का निर्यात हो रहा है। एक रूप **गा,** इसका अंग्रेज़ी प्रतिरूप **गो** (जाना); दूसरा रूप **गम्**, इसका अंग्रेज़ी रूपान्तर **कम्** (आना), तीसरा रूप **गश्** इसका जर्मन रूपान्तर **गेहॅन्** (चलना, जाना); अंग्रेज़ी में **कौल्** (पुकारना) जैसी क्रियाएँ तमिल **चॉल्** का प्रतिरूप हैं। यहाँ मूल क्रिया **सो** में **ल** प्रत्यय जोड़कर कृदन्त रूप बनाया गया। अंग्रेज़ी **टेल** (कथा) में यही **ल** प्रत्यय है। इसी का प्रतिरूप **टॅल्** (कहना) क्रिया है, जिसे वस्तुतः संज्ञा से क्रियामूल में परिवर्तित किया गया है। **सो** क्रियामूल का एक रूपान्तर **तो** हुआ, इसमें **ल** प्रत्यय जोड़ा गया, **तोल्** रूप बना। उसमें फिर **द** जोड़कर कृदन्त बनाया गया। क्रियामूल—कृदन्त—क्रियामूल—कृदन्त, इस क्रम से अंग्रेज़ी **टोल्ड** (कहा) प्राप्त हुआ। वर्तमान और भूतकाल का भेद करने वाले अंग्रेज़ी के क्रियारूपों में जहाँ स्वर-परिवर्तन दिखाई देता है—यथा **टॅल्** और **टोल्ड, सिग्** और **सैंग्**—वहाँ वास्तव में क्रिया के दो रूप हैं जिनका वर्तमान या अतीत के भेद से कोई सम्बन्ध नहीं है। **से** और **सो** क्रियामूलों के रूपान्तर **ते** और **तो** हैं। इनसे **टॅल्** और **टोल्** रूप बने। दोनों ही कृदन्त हैं। **टॅल्** से **टेल्ड** रूप भी बन सकता है, और **टोल्** का प्रयोग वर्तमान काल के लिए भी हो सकता है। अंग्रेज़ी ने एक रूप को वर्तमान के लिए रखा, दूसरे का उपयोग अतीत के लिए किया।

तमिल कृदन्त **वन्द** का अंग्रेज़ी प्रतिरूप **वेन्ट्** है। यह **गो** क्रिया के साथ नत्थी कर दिया गया। जर्मन **ज़ागॅन्** (कहना) का पूर्वरूप **साग** है। **साग** और मराठी **सांगणें** परस्पर सम्बन्धित हैं। मूल क्रिया **सा** में **ग** जोड़कर—**पोग** की तरह—यह कृदन्त रूप बना। संज्ञा रूप में **सागा** प्रयुक्त होता ही है।

ग्रीक भाषा में **लम्पो** शब्द का अर्थ है चमकना। इसी क्रम में अंग्रेज़ी **लैम्प** आता है। मूल क्रिया **दम्** है जो दामिनी, हिन्दी दमकना में है। **द्** ध्वनि **ल्** रूप में ग्रहण की गई। कृदन्त रूप बनाने के लिए **प** प्रत्यय जोड़ा गया। फिर कृदन्त रूप को

मूल क्रिया माना गया। डरने के लिए ग्रीक क्रिया **फोबेओमइ** है। इसमें क्रियामूल **फोब्** है जो **भव** अथवा **भय** का प्रतिरूप है। यहाँ भी क्रिया—संज्ञा—क्रिया वाला क्रम दिखाई देता है। खाने के लिए ग्रीक क्रिया **एस्थिओ** है। **अत्** का प्रतिरूप **एस्**, फिर उसमें **थ** प्रत्यय जोड़कर कृदन्त रूप बना, फिर उसे क्रिया बनाया। निर्माण के लिए ग्रीक क्रिया **देमो** है जो **धाम** का प्रतिरूप है। **धाम** में क्रियामूल **धा** है। निर्माण के लिए एक अन्य ग्रीक शब्द **तॅक्तइनो** है। इसमें क्रियामूल **तॅक्त्** संस्कृत **तक्ष्** का प्रतिरूप है और यह संस्कृत रूप स्वयं **तस्** जैसे क्रियामूल से व्युत्पन्न है। **तक्ष्** के अन्य ग्रीक प्रतिरूप से **तॅइखिज़ो** (निर्माण करना) क्रिया बनी है। यहाँ भी **तॅइख्** मूल क्रिया का कृदन्तीय रूपान्तरण है। लैटिन में सपना देखने के लिए **सोम्निओ** क्रिया है। इसमें **सोम्न** शब्द मूल संस्कृत **स्वप्न** का प्रतिरूप है। लैटिन **पोतो** का अर्थ पीना है। यहाँ **पो** क्रियामूल में **तो** जुड़ा है जो कृदन्त रूप की सूचना देता है। संस्कृत **स्पश्** (देखना) का एक लैटिन प्रतिरूप **स्पेकिओ** है, दूसरा है **स्पेक्तो**। इस दूसरे प्रतिरूप में भी **पोतो** के समान कृदन्तीय **त** स्पष्ट है।

अंग्रेज़ी क्रिया **स्टैन्ड** (खड़े होना) खड़े की तरह कृदन्तीय रूप है। मूल क्रिया है **स्थ** अथवा **स्त**। इससे **स्कन्ध** के समान कृदन्त रूप **स्तन्ध** बना। फिर यह क्रियामूल के समान **स्टैन्ड** रूप में प्रयुक्त होने लगा। जर्मन में इसका प्रतिरूप **श्तेहॅन्** है। यह **स्तध्** का प्रतिरूप है जहाँ नासिक्य ध्वनि का अभाव है और **ध्** का रूपान्तरण ह् में हुआ है। जर्मन भाषा में एक सामान्य क्रिया **व्हर्दॅन्** है। इसका अर्थ है होना। यह संस्कृत **वर्त्** का प्रतिरूप है और **वर्त्** की मूल क्रिया **वर्** है। तमिल **वरु** का एक अर्थ घटित होना भी है। अंग्रेज़ी शब्द **वान्डर्** (घूमना) **वर्** के कृदन्तीय **वन्द्** जैसे प्रतिरूप का विकास है। इसका जर्मन प्रतिरूप **वन्डॅल्न्** है। इससे मिलता-जुलता शब्द **वॅन्डॅन्** (घुमाना, आवर्तन करना) है। संस्कृत आवर्तन में **वर्त्** क्रिया का जो भाव है, वही यहाँ **वॅन्ड्** में है। इस **वॅन्ड्** का अकार वाला रूप उसी जर्मन क्रिया के भूतकालीन रूप **वन्ड्टॅ** में है। रूसी भाषा में **देलात्** (बनाना) जैसी क्रियाएँ कृदन्त का रूपान्तरण हैं जैसा कि रूसी शब्द **देलो** (कार्य) से विदित होता है। संस्कृत **वर्त्** के समान रूसी क्रिया **प्रेव्रतीत्** (आवर्तन करना) है। रूसी और संस्कृत दोनों क्रियारूपों का आधार कृदन्त है। **स्तोयात्** (खड़े होना) में **य** कृदन्त चिन्ह है। **गवरीत्** (बातें करना) में **र्** वैसा ही चिन्ह है जैसा कि संज्ञा **गवोर्** (बातचीत की आवाज़) में है।

कृदन्त रूपों को पुनः क्रियामूल बनाने की प्रक्रिया संस्कृत में अत्यन्त सीमित है, द्रविड़ भाषाओं तथा फ़ारसी, रूसी, जर्मन, अंग्रेज़ी, ग्रीक, लैटिन आदि में यह प्रक्रिया अधिक व्यापक है। किसी समय कौरवी प्रभाव से—या वैसे ही किन्हीं अन्य भाषाओं के प्रभाव से—बहुत बड़े पैमाने पर कृदन्त निर्माण कार्य हुआ। फिर कृदन्तों को सामान्य क्रिया मान लिया गया जैसे कि मगही आदि में कृदन्तों का तिङन्तीकरण हुआ। क्रमशः कृदन्त-तिङन्त पद्धतियों ने सन्तुलन स्थापित करके इन्डोयूरोपियन भाषाओं की क्रियापद रचना को उसका विशिष्ट रूप प्रदान किया।

हिन्दी क्रियाओं में उपसर्ग नहीं लगते, द्रविड़ क्रियाओं में भी नहीं लगते।

इसके विपरीत संस्कृत में लगते हैं। ऊपर से देखने में प्रतीत होता है कि हिन्दी और अन्य आधुनिक आर्य भाषाएँ संस्कृत से दूर पहुँच गई हैं और उन्होंने द्रविड़ प्रवृत्ति अपना ली है। वास्तव में उपसर्ग के कार्य पर विचार किया जाय तो विदित होगा कि आधुनिक आर्य भाषाओं और संस्कृत में अब भी बड़ी समानता है और द्रविड़ परिवार में अंशतः भिन्न प्रवृत्ति काम करती है।

वाक्यतन्त्र के विचार से उपसर्ग का कार्य क्या है? क्रिया के विशेषण के समान वह उसके मूल अर्थ में हेरफेर करता है, वह क्रिया की विशेषता ही नहीं बताता, उसके मूल अर्थ में परिवर्तन भी करता है। संस्कृत में क्रिया के पहले जो उपसर्ग रखे जाते हैं, वे ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से स्वतन्त्र शब्द हैं। **अति, अधि, अनु, अभि** आदि उपसर्गों को बरो ने किसी समय के स्वतन्त्र विशेषक ('ऐडवर्ब्') कहा है। **ऋग्वेद** में ये सर्वत्र क्रिया से संलग्न रहें, ऐसा नहीं होता। होमर की भाषा में भी इससे मिलती-जुलती स्थिति है, वे क्रियाबद्ध और क्रियामुक्त दोनों हैं। मुख्य बात यह है कि ये उपसर्ग जो पहले स्वतन्त्र रूप थे, वाक्य में क्रिया से पहले प्रयुक्त होते थे। बरो ने लिखा है कि **ऋग्वेद** में कभी-कभी वे क्रिया के बाद भी आते हैं। यह सामान्य प्रवृत्ति नहीं है। निरन्तर क्रिया से पहले प्रयुक्त होने के कारण वे क्रिया का अभिन्न अंग समझे जाने लगे। भाषाविज्ञान में संस्कृत जैसी संश्लेषणात्मक भाषा तथा तुर्की जैसी संयोगात्मक भाषा में भेद किया जाता है। यह भेद सापेक्ष है, मौलिक नहीं। जो तत्व संयोग की अवस्था में भिन्न-भिन्न पहचाने जा सकते हैं, वे दूसरी मंजिल में ऐसी दृढ़ता से संयुक्त हो जाते हैं कि अलग नहीं किये जा सकते। कारक चिन्हों, क्रियारूपों में काम आने वाले प्रत्ययों, क्रिया में जुड़ने वाले उपसर्गों के साथ यही बात होती है। अपनी पूर्वावस्था में वे स्वतन्त्र शब्द दिखाई देते हैं, निरन्तर संयुक्त होने के कारण वे क्रमशः अपनी स्वतन्त्रता खो देते हैं, उनके रूप में भी परिवर्तन होता है और वे अर्थ प्रबोधक ध्वनिचिन्ह मात्र रह जाते हैं। इस प्रकार जो भाषा पहले संयोगात्मक दिखाई देती है, वह संश्लेषणात्मक बन जाती है। बरो ने क्रियामूलक संज्ञा शब्दों का उल्लेख करते हुए बताया है कि इनमें उपसर्ग पूरी तरह मूल शब्द से सम्बद्ध हो गया है।

तमिल भाषा में एक अर्थप्रबोधक ध्वनि चिन्ह **उम्** है। वाक्य में इसका अनेक प्रकार से प्रयोग होता है। कृदन्त के साथ इसके व्यवहार का एक उदाहरण यह है: **नी पडित्तुम् पयन्इल्ले** (यद्यपि तुमने पढ़ाई की, फिर भी फल कुछ न निकला।) इस वाक्य में **उम्** कृदन्त के बाद आता है और उसके अर्थ में परिवर्तन करता है। आन्द्रोनोव ने अपने तमिल व्याकरण में इसके प्रयोग के अनेक उदाहरण दिये हैं। यदि सम्भावना व्यक्त करनी हो तो इसी **उम्** का प्रयोग इस प्रकार होगा: **तिरुम्बि वरुवदर्गु इरण्डु मून्रु नाळ् आनालुम् आगलाम्** (सम्भव है, वापस आने में दो या तीन दिन लगें)। इस वाक्य में कृदन्त **आनाल** के बाद **उम्** का प्रयोग हुआ है। क्रिया द्वारा व्यक्त काल-सम्बन्धी सूचना में परिवर्तन करने के लिए इसका व्यवहार होता है यथा: **तोनित्तुरइ वन्ददुन् कुदिरइ निर्किरदु** (जैसे ही नाव आई, वैसे ही घोड़ा रुक गया।) यहाँ कृदन्त **वन्दद** के बाद **उम्** का प्रयोग किया गया है।

तमिल में प्रश्नवाचक **आ** वाक्य के अन्त में आकर उसके अर्थ में परिवर्तन करता है। **नी अॅन्नइ पार्त्ताय्** (तुमने मुझे देखा), **नी अॅन्नइ पार्त्ताया ?** (क्या तुमने मुझे देखा ?), यहाँ वाक्य के अन्त में **आ** के प्रयोग से पूरे वाक्य के अर्थ में परिवर्तन हुआ। इसी प्रकार सन्देह का भाव व्यक्त करने के लिए **कोल्** का प्रयोग किया जाता है। **नॅडुन्दइग कळिन्दमइ यरिया तिन्रुम वरुङ्गोल् पानरदु कडुम्बे** (चारणों का दल आज भी शायद ही आये क्योंकि उन्हें अपने स्वामी की मृत्यु का पता नहीं है।) एक अन्य प्रत्यय **एन्** है। **चॉल्लु** अर्थात् बोलो, इस आज्ञा भाव में परिशोधन के लिए **एन्** शब्द जोड़ा गया : **चॉल्लेन्**—जरा बोलो तो। इस तरह की अनेक स्थितियों में जहाँ अन्य भाषाएँ उपसर्ग से काम लेती हैं, वहाँ तमिल प्रत्यय से काम लेती हैं। हिन्दी में क्रिया का अर्थ बदलने के लिए या उसे विशेषता प्रदान करने के लिए जो भी शब्द प्रयुक्त होते हैं, वे क्रिया से पहले आते हैं। उनका स्थान वाक्य में वहीं होता है, जहाँ संस्कृत के वाक्य में उपसर्ग का स्थान होता है।

इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं में क्रिया से संलग्न होने वाले उपसर्ग की भूमिका भिन्न-भिन्न है किन्तु जहाँ भी वह प्रयुक्त होता है, वह अर्थ-संवर्धक का काम करता है। रूसी भाषा में इसका प्रयोग रोचक है। भाषाविज्ञानियों का कहना है कि रूसी क्रिया की अपनी विशेषता कार्य की पूर्णता, अपूर्णता आदि का बोध कराना है। अंग्रेज़ी में इसके लिए ऐस्पेक्ट शब्द का व्यवहार होता है। कार्य की प्रगति, अवधि, आवृत्ति आदि सूचित करने के लिए क्रिया का एक रूप होता है, कार्य की पूर्णता, उसका आरम्भ या अवसान सूचित करने के लिए दूसरा रूप होता है। विलगेलमिनीना ने रूसी क्रिया पर अपनी पुस्तक में इस तरह के उदाहरण दिये हैं : **रबोचिये 'स्त्रोइली' दोम्** (मजदूर एक मकान बना रहे थे), **रबोचिये 'पस्त्रोइली' दोम्** (मजदूरों ने मकान बनाया); **देवुश्का 'पिसाला' पीस्मो** (लड़की पत्र लिख रही थी), **देवुश्का 'नपिसाला' पीस्मो** (लड़की ने पत्र लिखा था)। यहाँ उपसर्ग लगाकर क्रिया के अर्थ में परिवर्तन किया गया है। इस तरह का भेद उपसर्ग के द्वारा ही नहीं दिखाया जाता किन्तु सामान्यतः ऐसा होता है। रूसी क्रिया **मीत्** का अर्थ है धोना, उपसर्ग लगाकर **ओमीत्** रूप बना जिसका अर्थ हुआ स्वच्छ धोना। यहाँ उपसर्ग क्रिया के अर्थ को वैसे ही प्रभावित करता है जैसे तमिल में प्रत्यय प्रभावित करता है।

भारत में कोल परिवार की भाषाएँ प्रत्यय और उपसर्ग दोनों का उपयोग करके क्रिया के अर्थ में परिवर्तन करती हैं। बिलिगिरि ने खरिया भाषा पर अपनी पुस्तक में इस तरह के उदाहरण दिये हैं : **उड्** (पीना), **ओवुड्** (पिलाना), **पिज्** (तोड़ना), **ओग्पिज्** (तुड़वाना), **गिल्** (मारना), **कोलगिल्** (एक-दूसरे को मारना); यहाँ उपसर्ग से क्रिया के अर्थ में परिवर्तन किया गया। **उपुल्** (उठाना), **उपुल्क** (एक-दूसरे के लिए उठाना), **करय्** (करना), **करय्क** (एक-दूसरे के लिए करना); **बोतोङ्** (डरना), **बोतोङ् गोड्** (बहुत डरना); यहाँ उपसर्ग के बदले वैसा ही काम प्रत्यय से लिया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि उपसर्ग और प्रत्यय जोड़कर क्रिया के अर्थ को बदलने की पद्धति एक से अधिक भाषापरिवारों में विद्यमान रही है। हिन्दी तथा आधुनिक आर्य

भाषाओं ने भले ही उपसर्ग का त्याग कर दिया हो, कोल भाषाओं में उसका व्यवहार किसी तरह कम नहीं हुआ।

यह कल्पना करना कठिन है कि आर्य द्रविड़ भाषाएँ जब एक-दूसरे से इतना सम्बद्ध रही हों, तब द्रविड़ भाषाओं में क्रिया के साथ उपसर्ग का प्रयोग कभी हुआ ही न हो। द्रविड़ क्रियाओं की छानबीन करने से पता चलता है कि अनेक क्रियाओं के साथ किसी समय उपसर्ग प्रयुक्त होते थे। जैसे हिन्दी में ये उपसर्ग अलग से नहीं पहचाने जाते, वैसे ही द्रविड़ भाषाओं में वे पहचान में नहीं आते। कन्नड़ **कप्पु** का अर्थ है गड्ढा खोदना, मलयालम **निकप्पु** का अर्थ है भरना। मूल क्रिया एक ही है, **नि** उपसर्ग लगाकर अर्थ में परिवर्तन किया गया है। तमिल क्रिया **कल** का अर्थ है फैलाना (जैसे समाचार), **अगल** का अर्थ है विस्तार करना, फैलाना, **अगलम्** का अर्थ हुआ विस्तार। यहाँ **कल** क्रिया में **अ** उपसर्ग जोड़ा गया है। तमिल **नॅरुप्पु** (अग्नि), **ञॅलि** (लकड़ी घिसकर आग पैदा करना) रूपों को देखने से ज्ञात होता है कि **नर्** अथवा **नल्** क्रियामूल का सम्बन्ध अग्नि से, लकड़ियाँ घिसकर आग पैदा करने से है। अब इस क्रियामूल में **अ** उपसर्ग जोड़ा गया : **अनरु** (गरमाना), **अनगंल्** (अनल्+कल् यानी आग और पत्थर, पूरे शब्द का अर्थ हुआ चकमक पत्थर)। यहाँ **अ** उपसर्ग निषेधवाचक नहीं है। तमिल **अमिऴ्** का अर्थ है डूबना; सम्भव है संस्कृत **मृज्** में **अ** उपसर्ग जोड़कर इस तरह का रूप बना हो। कोडगु **मिन्द** (तैरना), कोद **निन्ज्** (उप०) तमिल **नीन्दु** (उप०), **नीत्तम्** (सैलाब, समुद्र) रूपों को देखने से उक्त सम्भावना पुष्ट होती है। तमिल **निकर** का अर्थ है चमकना, **कदिर्** का भी यही अर्थ है। कन्नड़ **कदुरु** का अर्थ है चमक। मूल क्रिया **कद्** रूपान्तरित होकर **कर** बनी, **नि** उपसर्ग लगाकर **निकर** रूप बना। पर यह बात सही है कि आधुनिक भाषाओं में केवल कोल परिवार की भाषाएँ उपसर्गों का प्रयोग जमकर करती हैं। इस दृष्टि से आधुनिक आर्य भाषाओं की अपेक्षा वे संस्कृत के अधिक निकट हैं।

जर्मन भाषा में क्रिया के साथ **ग, गे** उपसर्ग जोड़ा जाता है जो तमिल कृदन्त प्रत्यय **ग** से मिलता-जुलता है। प्रीब्श और कौलिन्सन ने जर्मन भाषा पर अपनी पुस्तक में बताया है कि यह लैटिन **कुम्, कोम्** का प्रतिरूप है। इसका मूल अर्थ समूह का सूचक था और यह उपसर्ग संज्ञा तथा क्रिया दोनों में लगता था। जर्मन शाखा की भाषाओं में इसका व्यवहार क्रिया को सम्पूर्णता प्रदान करने के लिए होता है। घटना-क्रम किसी निश्चित समय पर हुआ, आरम्भ हुआ या समाप्त हुआ, इसकी सूचना अथवा काल और अवधि पर ध्यान दिये बिना घटनामात्र की सूचना देना इसका कार्य है। मध्यकालीन पहाड़ी जर्मन से उन्होंने इस तरह के उदाहरण दिये हैं : **श्तान्** (खड़े होना), **गेश्तान्** (खड़े हो जाना)। इससे उन्होंने आधुनिक जर्मन रूपों की तुलना की है : **लिगॅन्** (लेटना), **गेलिगॅन्** (लेट जाना)। जर्मन में कोल भाषाओं के समान प्रत्यय उपसर्ग दोनों प्रयुक्त होते हैं।

इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं के क्रियारूपों का सही ढंग से ऐतिहासिक मूल्याङ्कन तभी सम्भव है जब इस युग में भी प्रचलित नाग-कोल क्रियारूपों की विविधता

ध्यान में रखी जाय। शंकर भट ने बोरो की एक क्रिया **ज** (खाना) के पैंसठ रूप दिये हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं—**ज** (खाना), **जक** (खाना खत्म करना), **जकङ** (खाने को तैयार होना), **जकोन्** (खाना और गन्दा करना), **जक्म** (चुपके-चुपके खाना), **जक्रे** (कुछ भी खा लेना), **जजेंर्** (खाना और बिखराना), **जदे** (कृपया खाइये), **जपदे** (किसी के साथ खाइये), **जलोय्** (पुरुष खायें), **जहय्** (स्त्रियाँ और बच्चे खायें), **जदों** (पूरा समूह खाये), **दज** (मत खाओ), **जका** (तुमने क्यों नहीं खाया), **जनि** (हम खायें), **जतोंङ्** (वह खाये), **जयों** (वह खाता है), **जदोंङ्** (वह खा रहा है), **जगोंन्** (वह खायगा), **जबय्** (उसने खाया है), **जगोंव्** (उसने खाया होगा), **जय्** (वह नहीं खाता), **जदिय** (उसने नहीं खाया), **जलिय** (वह नहीं खायगा), **जन** (खाने के बाद), **जब** (यदि वह खाये), **जयसें** (खाये बिना)—वाक्य में सबसे पहले क्रिया, फिर उससे सम्बन्धित अनेक बातें प्रत्ययों द्वारा क्रमशः जोड़ी जाती गईं। इस प्रकार एक क्रिया रूप दो, तीन, चार, पाँच, छह प्रत्यय तक जोड़ता चला जाता है और खासा वाक्य बन जाता है। यथा उक्त **ज** क्रिया से **जजेंर्** (खाना और बिखराना), **जजेंर्पिन्** (खाना और फिर बिखराना), **जजेंर्पिन्जलय्** (फिर उसी चीज को खाना और बिखराना), **जजेंर्पिन्जलय्जेंन्** (फिर उसी चीज को खाना बिखराना शुरू करना), **जजेंर्पिन्ज्लय्जन्प** (किसी के साथ फिर उसी चीज को खाना बिखराना शुरू करना), **जजेंर्पिन्जलय्जन्पमर्** (अवश्य ही किसी के साथ फिर उसी चीज़ को खाना-बिखराना शुरू करना)।

कोल और नाग भाषाओं की क्रियापद रचना में काफी समानता है। कोल भाषाओं के समान अनेक नाग भाषाएँ प्रत्यय-उपसर्ग द्वारा क्रिया के अर्थ में परिवर्तन करती हैं। असम में बोली जाने वाली नाग भाषा बोरो पर अपनी पुस्तक में शंकर भट ने उन क्रियापदों की चर्चा की है जिनमें उपसर्ग लगाने से अर्थ परिवर्तन होता है। कोल भाषाओं के समान बोरो में भी उपसर्ग और प्रत्यय दोनों लगते हैं। **रन्** (सूखना), **परन्** (सुखाना), **देर्** (बड़ा होना), **पॅदेर्** (बड़ा करना), **जो** (बैठना), **पोजो** (बिठाना), **गि** (डरना), **सिगि** (डराना); यहाँ उपसर्ग लगाकर क्रिया को प्रेरणार्थक रूप दिया गया है। **बहि** (बहना), **बहय्** (बहाना), **मिलि** (मिलना), **मिलय्** (मिलाना), **बुजि** (बूझना), **बुजय्** (बुझाना); यहाँ प्रत्यय लगाकर वैसा ही परिवर्तन किया गया है। स्पष्ट ही यहाँ आर्य परिवार की असमिया भाषा ने बोरो को प्रभावित किया है। उक्त रूप मिलना, मिलाना, बूझना, बुझाना, बहना, बहाना जैसी हिन्दी क्रियाओं से मिलते-जुलते हैं; इसका कारण असमिया और हिन्दी की आन्तरिक समानता है।

संस्कृत, विशेषतः वैदिक भाषा, में क्रियारूपों का विस्तार देखकर अनेक भाषा-विज्ञानी इस बात पर क्षोभ प्रकट करते हैं कि आधुनिक आर्य भाषाओं में यह विविधता समाप्त हो गई है। नाग और कोल भाषाओं में क्रियारूपों की विविधता पर सरसरी निगाह डालने से भी यह स्पष्ट हो जायगा कि आर्य भाषाओं ने चाहे जो कुछ खोया हो, नाग और कोल भाषाओं ने क्रियारूपों की बहुलता और विविधता बरकरार रखी है, सम्भव है कुछ इजाफा भी किया हो। इस विविधता को समझने के लिए यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि नाग और कोल भाषाओं में क्रिया के भिन्न रूप केवल काल-

भेद प्रदर्शित नहीं करते वरन् कार्य की विशेषता, उसकी गति की दिशा, कर्त्ता, कर्म आदि से उसका सम्बन्ध, कभी-कभी साथ सम्पन्न होने वाली अन्य क्रिया की भी सूचना देते हैं। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन में जो भिन्न क्रियारूप दिखाई देते हैं, उनका मूल कार्य कालभेद प्रदर्शित करना नहीं है वरन् क्रिया की अवस्था (ऐस्पेक्ट) सूचित करना है। अंग्रेज़ी का टेन्स शब्द कालभेद से जुड़ा हुआ है। वर्तमानकाल, भूतकाल, भविष्यकाल प्रेज़ेन्ट टेन्स, पास्ट टेन्स, फ्यूचर टेन्स के पर्याय हैं। इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं में कालभेद की व्यंजना के रूप क्रमशः विकसित हुए। यह बाद की मंजिल है। उससे पहले मुख्य भेद क्रिया की अवस्थाओं को लेकर किया जाता था। पामर ने ग्रीक और लैटिन क्रियापदों के लिए लिखा है कि अधिकांश रूप कालभेद सूचित नहीं करते; कार्य किस प्रकार का है, वे इसकी सूचना देते हैं। जिसे वर्तमान कालीन क्रियापद कहा जाता है, वह इस बात की सूचना देता है कि कार्य अभी चालू है। इसी प्रकार अन्य रूप यह बताते हैं कि कार्य थोड़ी ही देर में हुआ, कार्य का परिणाम क्या हुआ, इत्यादि। यह स्थिति प्राचीन भाषाओं में ही नहीं है, रूसी जैसी आधुनिक भाषा में भी बहुत कुछ विद्यमान है। क्रियापदों का यह पक्ष तो नाग और कोल भाषाओं में है ही, इसके अलावा क्रिया से सम्बद्ध और बहुत-सी बातों की सूचना क्रियारूपों से प्राप्त होती है। जैसे-जैसे कालभेद महत्वपूर्ण माना गया, वैसे-वैसे अन्य रूप छूटते गये और कालसूचक भेद मुख्य बन गये।

लिगुआ (संख्या १५,१९६५) में बिलिगिरि ने सोर भाषा के क्रियापदों पर एक लेख लिखा है। जिन्हें पहले शबर कहा जाता था, उन्हीं की भाषा सवर या सोर है। यह कोल परिवार की भाषा है। इस लेख में बिलिगिरि ने बताया है कि बहुत से शब्द जो क्रिया के बाद कर्म रूप में प्रयुक्त होते हैं, वे बहुधा संक्षिप्त हो जाते हैं और क्रिया से अभिन्न रूप में जुड़ जाते हैं। बिलिगिरि ने ऐसे तीन सौ शब्द इकट्ठे किये थे। ये शब्द एक से अधिक वर्णों के थे। संक्षिप्त करके इन्हें एक वर्णी बनाया गया। एक वर्ण वाले इस रूप का प्रयोग क्रिया से अलग रहकर नहीं होता। एक शब्द है **रॅनॅङ्** जिसका अर्थ है पंख। कर्म रूप में क्रिया के साथ संलग्न होने पर केवल **रॅङ्** कहना काफी है। एक शब्द है **ओमोद्** (धुँआ), क्रिया के साथ केवल **मोद्** कहना काफी है। संक्षिप्त करने की प्रक्रियाएँ अनेक हैं किन्तु संक्षिप्त रूप मूल क्रिया के बाद ही आता है। कर्म के रूप में संज्ञा शब्द वैसे ही संक्षिप्त किये गये हैं जैसे सर्वनाम रूप। सर्वनाम क्रिया के अन्त में कर्म रूप में आ सकता है, कर्त्ता रूप में भी। क्रिया के बाद कर्त्ता और कर्म दोनों को रखने की प्रवृत्ति कोल भाषाओं में है। संस्कृत में केवल कर्त्ता सर्वनाम-चिन्ह क्रिया के बाद आता है; सर्वनामों को संक्षिप्त करके पुरुषसूचक चिन्हों का निर्माण किया गया है। संज्ञा शब्द क्रिया के बाद आयें, संक्षिप्त होकर उससे संलग्न हो जायँ, ऐसा संस्कृत में नहीं होना। कोल भाषाओं में क्रियारूपों के निर्माण की कर्त्ता-कर्म-सर्वनाम-संज्ञा-संयुक्त जो विशाल प्रक्रिया है, उसकी झलकभर संस्कृत, ग्रीक आदि भाषाओं में मिलती है, उसका पूरा प्रसार कोल भाषाओं में दिखाई देता है।

नौर्मन एच० ज़ाइड नाम के अमरीकी विद्वान् ने कोल भाषाओं पर एक ग्रन्थ

सम्पादित किया है—**स्टडीज् इन्, कम्पैरेटिव् आस्ट्रो एशियाटिक् लिंग्विस्टिक्स्** (१९६६)। इसमें पिनोव् ने कोल भाषाओं के क्रियारूपों के बारे में बताया है कि इस तरह के रूपों का विस्तार और उनमें परस्पर भेद सभी मुण्डा भाषाओं की विशेषता है। ये भाषाएँ क्रियाओं में प्रत्यय-उपसर्ग जोड़ती हैं, प्रत्यय-उपसर्ग के अलावा क्रिया के बीच में ध्वनि का निवेश करती हैं, सर्वनाम जोड़ती हैं, क्रिया की आवृत्ति करके रूप बनाती हैं, संयुक्त क्रियाओं का व्यवहार करती हैं। मूल क्रिया के अर्थ में परिवर्तन करने के लिए, काल, वृत्ति (मूड), कार्य की अवस्था (ऐस्पेक्ट) की सूचना देने के लिए, सकर्मक-अकर्मक क्रियाओं में भेद करने के लिए प्रत्ययों और उपसर्गों का उपयोग होता है; कार्य किस बिन्दु से आरम्भ हुआ है, उसका अवसान किस बिन्दु पर होगा, इन बातों की सूचना के लिए सर्वनाम चिन्ह जोड़े जाते हैं। पिनोव् कहते हैं कि यह निश्चय करना सदा सम्भव नहीं होता कि क्रिया के साथ कोई प्रत्यय शिथिल ढँग से जोड़ दिया गया है या वह स्वतन्त्र चिन्ह है। पिनोव् ने बताया है कि क्रिया के साथ जिन तत्वों का बार-बार संयोग होता है, वे संक्षिप्त हो जाते हैं, सन्धि द्वारा उनका रूप बदल जाता है और इस प्रकार वे प्रत्यय (ऐफिक्स) का दर्जा पा जाते हैं; कोल भाषाओं में जो अब प्रत्यय जान पड़ते हैं, वे मूलतः दो स्वतन्त्र रूपों का संयोग थे। जहाँ तक सर्वनामी प्रत्ययों का सम्बन्ध है, पिनोव् के अनुसार, वे निस्सन्देह स्वतन्त्र सर्वनाम थे। पिनोव् ने जो प्रक्रिया यहाँ दिखाई है, उसी की पुष्टि बिलिगिरि के लेख से होती है। संस्कृत तथा इन्डोयूरोपियन भाषाओं के प्रत्यय चाहे क्रिया में लगें, चाहे संज्ञा में, वे मूलतः स्वतन्त्र शब्द थे। कोल भाषाओं में प्रत्यय-निर्माण-प्रक्रिया देखकर उसी तरह की इन्डोयूरोपियन भाषाओं की प्रक्रिया का विवेचन करने में आसानी होती है।

खरिया भाषा में क्रियार्थी संज्ञा के निर्माण के लिए **न** प्रत्यय जोड़ा जाता है यथा **ओल्न** (लाना)। पिनोव् ने लिखा है कि अनेक कोल भाषाएँ **गे** और **ग** चिन्हों का प्रयोग करती हैं, उद्देश्य होता है पूरे क्रियारूप की व्यंजना पर बल देना। इनका उपयोग कृदन्त-रूप ('पार्टीसिपिल्') बनाने के लिए भी होता है। यह व्यापार भी हम आर्य द्रविड़ भाषाओं में देख चुके हैं। बिलिगिरि ने लिखा है कि सोर भाषा की धातु में प्रत्यय जोड़कर क्रियापद का निर्माण होता है और यह क्रियापद पुनः धातु के रूप में प्रयुक्त होता है। यह प्रक्रिया उस प्रवृत्ति से मिलती जुलती है जिसके अनुसार इन्डोयूरोपियन भाषा में कृदन्तों को मूल क्रिया माना गया है। बिलिगिरि के अनुसार कोल भाषाओं में मुख्य भेद भूतकाल तथा अभूतकाल को लेकर है। आन्द्रोनोव के अनुसार तमिल में भी मूल भेद इसी प्रकार का है। बक के अनुसार लैटिन में मुख्य कालभेद भूत और अभूत को लेकर था। यह भेद कोल भाषाओं के कालभेद से मिलता है।

कोल भाषाओं में एक प्रवृत्ति क्रिया को दोहराने की है यथा संथाल भाषा में **दल** का अर्थ मारना है तो **ददल** का अर्थ अधिक मारना है। इसी अर्थ में खरिया भाषा **गिल** क्रिया का प्रयोग करती है तो **गिलगिल** रूप से अर्थ-सघनता उत्पन्न होती है। आवृत्ति के अनेक रूप हैं। कहीं आदिस्थानीय स्वर की आवृत्ति होती है, कहीं आदि-स्थानीय वर्ण की होती है, कहीं पूरी क्रिया दोहराई जाती है। कोई कार्य अक्सर किया

जाता है या अभी हो रहा है या ज़ोर से किया जा रहा है, आवृत्ति द्वारा इस तरह की कार्यावस्था सूचित की जाती है। यह प्रवृत्ति संस्कृत में भी है। कहीं क्रिया का आदि व्यंजन दोहराया जाता है, उसके साथ एक स्वर जोड़ दिया जाता है, यह स्वर क्रिया मूल में विद्यमान हो यह आवश्यक नहीं, कहीं क्रिया में दो आदिस्थानीय व्यंजन हैं तो पहले व्यंजन की आवृत्ति होगी, सघोष महाप्राण ध्वनि है तो आवृत्ति में एक रूप अल्प-प्राण कर दिया जायगा और यह रूप पहले आयेगा। **चकार, जगाम, दधाति** आदि क्रियारूप इसी आवृत्ति वाली पद्धति के अनुरूप बने हैं। कहीं-कहीं आवृत्ति वाले रूप इतने प्रचलित हुए कि सादे रूपों का व्यवहार समाप्त हो गया या कम हो गया। **पिबति** (पीता है), **ददाति** (देता है) रूपों में मूल क्रिया की आवृत्ति की गई है। **दान** और **पान** जैसे शब्द देखकर याद आता है कि मूल क्रिया **पिब्** या **दद्** नहीं है। **जागर्ति** और हिन्दी **जागना** में भी क्रिया की आवृत्ति है किन्तु सादी क्रिया का व्यवहार समाप्त हो गया है। इस तरह के आवृत्ति मूलक क्रियारूप ग्रीक भाषा में बहुत थे, लैटिन में भी उनका चलन था यद्यपि ग्रीक की अपेक्षा कम था, पुरानी जर्मन भाषा गौथिक में उनका व्यवहार होता था और इस तरह की आवृत्ति तमिल में भी होती है। आन्द्रोनोव ने लिखा है कि तमिल में किसी कार्य की दीर्घकालीन अवस्था या उसका बार-बार होना सूचित करना हो तो कृदन्त को दोहराया जाता है। आधुनिक आर्य भाषाओं में यह प्रवृत्ति विद्यमान है। भारत और यूरुप की भाषाओं में इस प्रवृत्ति का अध्ययन करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्रीक जैसी प्राचीन भाषा में इस तरह के प्रयोग काफी होते थे, अन्य भाषाओं में वे बहुत सीमित थे। भारत में वैदिक भाषा से लेकर आधुनिक कोल, द्रविड़, आर्य भाषाओं तक ऐसे प्रयोग व्यापक रूप से होते आये हैं। क्रिया की आवृत्ति करना एक भारतीय पद्धति है, उसका सर्वाधिक प्रसार कोलभाषा परिवार में है।

आधुनिक आर्य भाषाएँ क्रिया और संज्ञा, दोनों में केवल एकवचन और बहुवचन का भेद करती हैं। संस्कृत और ग्रीक में द्विवचन भी है। आधुनिक आर्य भाषाओं में इसका लोप हो गया है। इसे भी भाषागत ह्रास का चिन्ह माना जा सकता है। किन्तु प्राचीन भाषाओं में यह द्विवचन लैटिन में नहीं है। लैटिन और ग्रीक भाषाएँ एक दूसरे से बहुत मिलती-जुलती हैं किन्तु द्विवचन को लेकर दोनों में भेद है। इस दृष्टि से लैटिन की अपेक्षा ग्रीक भाषा संस्कृत के अधिक समीप है। ग्रीक और संस्कृत में द्विवचन का अस्तित्व देखकर भाषाविज्ञानियों ने कल्पना की कि आदि इन्डोयूरोपियन भाषा में द्विवचन अवश्य रहा होगा। इस संदर्भ में बक ने ग्रीक-लैटिन व्याकरण पर अपनी पुस्तक में लिखा है कि एकवचन और बहुवचन के अलावा जननी भाषा में दो या जोड़े की सूचना देने वाला द्विवचन भी था। अधिकांश इन्डोयूरोपियन भाषाओं की सबसे पहले वाली मंज़िलों में द्विवचन का प्रयोग दिखाई देता है किन्तु ऐतिहासिक काल में [अर्थात् उस समय जब इन भाषाओं का उपयोग लिखित रूप में होने लगा] उसका प्रयोग निरन्तर घटता गया, यहाँ तक कि प्रायः सभी में उसका लोप हो गया (लिथुआनियन, स्लोवीनियन और वेन्डिश में उसका चलन अब भी है) [वेन्डिश स्लाव समुदाय की एक भाषा है जो जर्मनी के कुछ भागों में बोली जाती है]। होमर से लेकर

क्लासिकी युग तक की ग्रीक में तथा ग्रीक समुदाय की अनेक बोलियों में टंकित अभिलेखों में इसका प्रयोग हुआ है। बाद की हेलेनिस्टिक ग्रीक में, यथा बाइबिल के नये टेस्टामेन्ट वाले भाग में, उसका प्रयोग नहीं हुआ। लैटिन तथा अन्य इतालिक बोलियों से, एक निश्चित कोटि के रूप में, इसका लोप प्रागैतिहासिक काल में ही हो गया था, यद्यपि कुछ लैटिन रूप द्विवचन वाले उद्गम के हैं यथा दुओ और अम्बो=ग्रीक अम्फो। [दुओ और अम्बो अर्थात् द्वि और उभय]।

द्विवचन का यह तथाकथित लोप भारत और यूरुप दोनों जगह दिखाई देता है; क्या यह अकारण है? अनेक स्तरों पर भारत और यूरुप में एक जैसी विरोधी प्रवृत्तियाँ काम करती दिखाई देती हैं। इस तरह की समानता अकारण नहीं हो सकती। यदि द्विवचन की समाप्ति भाषाओं के विकास का कोई सामान्य नियम होता तो लिथुआनियन और कोल भाषाओं में अभी तक उसका प्रयोग न बना रहता। दूसरी ओर सभी प्राचीन भाषाओं में उसका चलन रहा हो, इसका प्रमाण नहीं है। अनेक विद्वानों के अनुसार ग्रीक भाषा की अपेक्षा लैटिन में प्राचीनता के लक्षण अधिक हैं किन्तु उसमें द्विवचन का प्रयोग न होता था। जिन शब्दों को द्विवचन रूपों का अवशेष माना गया है, वे भारत से आयात किये हुए रूप हैं। स्पष्ट ही लैटिन में विरोधी प्रवृत्ति है जो द्विवचन को अनावश्यक मानती है।

लैटिन के अलावा एक प्राचीन भाषा हित्ती है। इसमें भी द्विवचन का अभाव है। इसे तो भाषाविज्ञानी वैदिक भाषा से अधिक प्राचीन मानते हैं, इसमें आदि इन्डोयूरोपियन भाषा के द्विवचन का लोप कैसे हो गया? तुखारी भाषा के दस्तावेज बहुत बाद के हैं किन्तु उसमें प्राचीनता के लक्षण हित्ती के समान हैं। उसमें भी द्विवचन का अभाव है।

इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं में दो तरह के समुदाय हैं। एक समुदाय द्विवचन का प्रयोग करता है, दूसरा नहीं करता, करता है तो किसी बाह्य प्रभाव के कारण करता है और यह प्रभाव कुछ समय बाद क्षीण हो जाता है। आर्य गण भाषाओं में परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ काम करती रही हैं। संस्कृत, पालि, प्राकृतों और आधुनिक आर्य भाषाओं में द्विवचन का लोप, उक्त दृष्टिकोण से, स्वाभाविक जान पड़ता है। द्विवचन के प्रयोग से कोल भाषाओं का सम्बन्ध अवश्य है। उसके प्रयोग की प्रवृत्ति इस परिवार की अनेक भाषाओं में गहराई से जड़ जमाये हुए है। वैदिक भाषा के उत्तर पश्चिमी केन्द्रों से कोल भाषाएँ बहुत दूर जान पड़ती हैं। किन्तु कोल भाषाओं के आधुनिक केन्द्रों पर ध्यान देने से ही ऐसा प्रतीत होता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्राचीन काल में भी इनके केन्द्र वहीं रहे हों जहाँ वे आज हैं। मध्यदेश के चारों ओर नाग, द्रविड़ और कोल भाषाओं का जमघट था, इसके अनेक संकेत मिलते हैं। लिथुआनियन आदि भाषाएँ आज भारत से बहुत दूर दिखाई देती हैं किन्तु बीज रूप में विद्यमान इनकी पूर्ववर्ती भाषाएँ भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्तों पर अवश्य बोली जाती थीं।

द्विवचन के प्रयोग का सम्बन्ध सर्वनामों के प्रयोग की एक विशेष पद्धति से हो

सकता है। द्रविड़ भाषाओं में वक्ता और श्रोता दोनों को सम्मिलित करने वाला सर्वनाम अलग होगा और श्रोता को अलग रखने वाला सर्वनाम भिन्न होगा। यथा तमिल **नाङ्गळ्** (हम लोग) में श्रोता का अलगाव है किन्तु **नाम्** (हम) में श्रोता को सम्मिलित किया गया है। इस तरह की प्रवृत्ति कोल भाषाओं में भी है। कोलभाषाओं में सर्वनामों का व्यवहार जिस व्यापक ढंग से होता है, उसे देखते हुए अनुमान यह होता है कि उक्त सर्वनाम-भेद कोल भाषा परिवार की अपनी विशेषता है।

इस भेद के बारे में विद्वानों की सम्मति जो भी हो, यह निर्विवाद है कि कोल भाषाओं में मूल क्रिया के बाद सर्वनाम रूप जोड़े जाते हैं और ये रूप पुरुष के अनुसार ही भिन्न नहीं हैं, वचन के अनुसार भी भिन्न हैं। क्रिया के बाद भिन्न पुरुष सूचक द्विवचन सर्वनाम भी जोड़ा जाता है। खरिया भाषा की एक क्रिया है **गिल्** (मारना)। इसके कुछ रूप अवलोकनीय हैं। पहले वर्तमान काल में उत्तम, मध्यम तथा अन्य पुरुषों के रूप—

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
गिल्तिञ्	**गिल्तेनङ्** **गिल्तेजर्**	**गिल्तेनिङ्** **गिल्तेले**
गिल्तेम्	**गिल्तेबर्**	**गिल्तेपे**
गिल्ते	**गिल्तेकियर्**	**गिल्तेमोय्**

अब उसी क्रम से भूतकालीन रूप—

गिलोज्	**गिलोग्नङ्** **गिलोग्जर्**	**गिलोगनिङ्** **गिलोग्ले**
गिलोब्	**गिलोग्बर्**	**गिलोग्पे**
गिलोग्	**गिलोग्कियर्**	**गिलोगमोय्**

इसी प्रकार भविष्य के रूप हैं। द्विवचन के रूपों से संस्कृत क्रियापदों में विविधता और बहुलता दिखाई देती है, वह कोल भाषाओं में आज भी विद्यमान है।

नाग, द्रविड़, कोल भाषाओं के बारे में कहा गया है कि इनमें क्रिया और संज्ञा शब्दों में विशेष अन्तर नहीं होता। ऐसी भाषाओं के लिए यह प्रक्रिया सहज है कि वे किसी कार्य की सूचना देते समय उसकी अवस्था का वर्णन करें। क्रिया किस काल में हुई, होगी या हो रही है, इसका बोध सन्दर्भ से होता है। बरो ने अन्य भाषाविज्ञानियों के समान यह माना है कि इन्डोयूरोपियन क्रिया व्यवस्था में सबसे प्राचीन और बुनियादी विभाजन पूर्णभूत तथा शेष रूपों में है अर्थात् मूल भेद भूत और अभूत का है। यही भेद उन्होंने संस्कृत के क्रियारूपों में माना है। आगे वह पूर्णभूत (परफेक्ट) की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि संस्कृत और ग्रीक की तुलना करने पर जो तथ्य सामने आता है और जो अन्य इन्डोयूरोपियन भाषाओं द्वारा पुष्ट होता है, वह यह है कि पूर्णभूत कोई दशा व्यंजित करता है जबकि वर्तमान किसी प्रक्रिया की व्यंजना करता है। **बिभाय** अर्थात् वह भीत है, **भयते** अर्थात् वह डरता है। कार्य की निरन्तरता भी पूर्णभूत द्वारा सूचित होती है। **पप्तुः** अर्थात् वे उड़ते हैं, निरन्तर उड़ते रहते हैं। बरो ने **पप्तुः**, **तस्थौ**

(खड़ा है), **चिकेत** (जानता है) जैसे पूर्णभूत रूपों का अर्थ अंग्रेज़ी के वर्तमानकालीन क्रियारूपों द्वारा किया है और निष्कर्ष निकाला है कि पूर्णभूत मूलतः एक विशेष कोटि का वर्तमान काल है, वह अतीतकालीन रूप नहीं है, इसलिए सामान्यतः उसके अनुवाद में अंग्रेज़ी के वर्तमान का व्यवहार करना चाहिए। इस प्रकार संस्कृत तथा इन्डोयूरोपियन भाषाओं में मुख्य भेद कालगत न होकर अवस्थागत सिद्ध होता है।

किन्तु पूर्णभूत वाला रूप शीघ्र ही अतीत का भाव अर्जित करने लगता है क्योंकि किसी कार्य की दशा विशेष पूर्व प्रक्रिया का परिणाम ही हो सकती है अर्थात् वह कार्य हो चुका होता है, तब उसकी दशा का वर्णन किया जाता है। पूर्णभूत क्रिया-रूप यह इंगित करता है कि कार्य पूरा हो चुका है, इससे मतलब नहीं कि किस मंजिल में पूरा हुआ है।

कोई भाषा इस तरह क्रमशः क्रियारूपों द्वारा कालभेद सूचित करे, यह बिल्कुल सम्भव है। साथ ही यह भी सम्भव है कि क्रिया-व्यवस्था में दो विरोधी प्रवृत्तियाँ काम करती रही हों। यदि हम प्राचीन और आधुनिक इन्डोयूरोपियन भाषाओं के क्रिया-रूपों की तुलना करें तो विदित होगा कि सबसे अधिक समानता उन क्रियारूपों में है जिन्हें वर्तमान काल से सम्बद्ध किया जाता है। इसके विपरीत अतीतकालीन रूपों में भेद है, भविष्यकालीन रूपों में और भी अधिक भेद है। इसीलिए भूत और अभूत के भेद को प्रधान भेद न मानकर वर्तमान और अवर्तमान के भेद को मुख्य भेद मानना उचित जान पड़ता है। प्राचीन इन्डोयूरोपियन भाषाओं में क्रियारूप कार्य की अवस्था (ऐस्पेक्ट) सूचित करते हैं, कालभेद (टेन्स) भी सूचित करते हैं। अवस्थासूचक प्रवृत्ति यथेष्ट प्रबल है। उसी का परिणाम है कि बरो ने संस्कृत के पूर्णभूत रूप को एक विशेष कोटि का वर्तमान कहा है। यह अवस्थागत भेद रूसी जैसी स्लाव भाषा में सर्वाधिक विद्यमान है। इन्डोयूरोपियन परिवार में अनेक विशेषताएँ ऐसी हैं जो प्राचीन काल में प्रबल हैं, व्यापक स्तर पर आगे चलकर वे क्षीण हो गई हैं किन्तु कुछ क्षेत्रों में उनका महत्व अब भी बना हुआ है। जैसे द्विवचन का प्रयोग पहले होता था, फिर क्षीण हो गया, लिथुआनियन जैसी कुछ भाषाओं में अब भी होता है, वैसे ही क्रियारूपों का अवस्थागत भेद है। जैसे द्विवचन का प्रयोग आर्येतर कोल भाषाओं में विद्यमान है, वैसे ही अवस्था सूचक सूक्ष्म भेद कोल भाषाओं के क्रियारूपों में अब भी विद्यमान है और यह सम्भव है कि जिन भाषाओं में क्रिया और संज्ञा शब्दों में विशेष भेद नहीं था, उनके वाक्यतन्त्र में कार्य की दशा व्यंजित की जाती थी। जिन आर्य गण भाषाओं में क्रिया और संज्ञा का भेद महत्वपूर्ण था, उनके वाक्यतन्त्र में क्रिया की दशा से अधिक प्रक्रिया पर ज़ोर था। वाक्यतन्त्र में कोई क्रिया-रूप किसी कार्य की स्थिर दशा सूचित नहीं करता, वह कार्य की प्रवहमानता सूचित करता है। इस तरह दो प्रकार के वाक्यतन्त्र हुए, वाक्यतन्त्र में क्रिया के व्यवहार की दो पद्धतियाँ हुईं। एक तरह का वाक्यतन्त्र कार्य की दशा सूचित करता है, दूसरी तरह का वाक्यतन्त्र कार्य की प्रवहमानता सूचित करता है। एक ही भाषाई परिवेश में दोनों प्रवृत्तियाँ क्रियाशील हैं, दोनों तरह के वाक्यतन्त्र एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। संस्कृत के वर्तमानकालीन

रूप प्रक्रिया पर बल देते हैं, बरो का यह कथन मध्यदेशीय आर्य भाषाओं की मूल प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है। कोल भाषाएँ अपने वाक्यतन्त्र में कार्य की अवस्था को प्रधान मानती हैं। इन्डोयूरोपियन भाषाओं में अवस्थागत भेद से कालगत भेद की ओर प्रगति मध्यदेशीय प्रवृत्ति के क्रमश: प्रभावी होने का परिणाम हो सकती है। इसी प्रकार आर्येतर भारतीय भाषाओं में कालभेद की धारणा आर्य भाषाओं के प्रभाव का परिणाम हो सकती है।

कोल भाषा के क्रियापदों पर पिनोव् ने यह तर्क किया है कि कर्म रूप में सर्वनाम क्रिया के बाद आता है, अतः एक स्थिति ऐसी अवश्य होगी कि संज्ञा भी कर्म-रूप में क्रिया के बाद आती होगी। आर्य-द्रविड़ प्रभाव से यह स्थिति अब बदल गई है। भारतीय भाषा परिवारों में अब यह जबर्दस्त आन्तरिक एकता है कि कर्म क्रिया से पहले आता है। आर्य, द्रविड़, कोल, नाग भाषाओं में यह सामान्य प्रवृत्ति है। अवश्य ही इसके कुछ अपवाद हैं किन्तु इस प्रवृत्ति के व्यापक होने में कोई सन्देह नहीं है। कुछ कोल भाषाओं में कभी-कभी उनकी पुरानी प्रवृत्ति के अनुसार कर्म (संज्ञा रूप में) क्रिया का अनुसरण करता है। यूरुप की भाषाओं में क्रिया के बाद कर्म को स्थान देने की प्रवृत्ति 'प्रिपोज़ीशन' के प्रयोग के समान है। भारत के सभी भाषा-परिवारों में पूर्व-सम्बन्धक के स्थान पर पश्च-सम्बन्धक का व्यवहार होता है। भारत से बाहर कोल भाषाओं से सम्बन्धित कम्बोज आदि में पूर्व सम्बन्धक का व्यवहार अब भी होता है। इसी प्रकार उनमें कर्म का स्थान क्रिया के बाद होता है। यह प्रवृत्ति कोल भाषाओं में रही है।

ग्रीक भाषा के वाक्यतन्त्र में क्रिया की स्थिति कहाँ थी, यह विवाद का विषय है। कुछ विद्वानों का मत है कि ग्रीक वाक्य-रचना में किसी निश्चित शब्द क्रम का पता नहीं चलता। यदि संस्कृत गद्य और ग्रीक गद्य के सौ पचास वाक्य नमूने के तौर पर छाँट लिए जाएँ तो एक बात स्पष्ट हो जायगी कि संस्कृत में क्रिया जहाँ अधिकतर वाक्य के अन्त में आती है, वहाँ ग्रीक भाषा में वह अन्त से पहले आती है। दोनों ही भाषाओं के वाक्यतन्त्र में कर्त्ता की स्थिति अधिकतर वाक्य के आरम्भ में होती है। ग्रीक से मिलती-जुलती स्थिति लैटिन की है। अंग्रेज़ी, फ्रेन्च आदि भाषाओं में कर्म का स्थान क्रिया के बाद होता है। एक तरह से क्रिया को वाक्य के मध्य में स्थान देने की प्रवृत्ति दो भिन्न वाक्यतन्त्रों की विशेषताओं का समन्वय है। जर्मन भाषा के वाक्य-तन्त्र में अंग्रेज़ी वाली पद्धति का चलन है, क्रिया के बाद कर्म आता है किन्तु अंग्रेज़ी से भिन्न उसमें कुछ कोटियों के वाक्य ऐसे भी होते हैं जिनमें भारतीय आर्य भाषाओं के अनुरूप क्रिया वाक्य के अन्त में आती है।

प्राचीन कौरवी और मध्यदेशीय भाषाओं के वाक्यतन्त्र में महत्वपूर्ण भेद रहा है। मध्यदेशीय भाषाएँ वाक्य में सबसे पहले क्रिया (अथवा कार्य) पर ध्यान केन्द्रित करती हैं। उसके उल्लेख के बाद अन्य सम्बन्धित उपकरणों का उल्लेख होता है। इसके विपरीत कौरवी भाषाएँ सबसे पहले कर्त्ता पर ध्यान केन्द्रित करती हैं। क्रिया आरम्भ से ही वक्ता के परिप्रेक्ष्य में रहती है, क्रिया को ध्यान में रखे बिना वाक्य रचना हो

ही नहीं सकती। वाक्य के आरम्भ में जो वस्तु परिप्रेक्ष्य में है, वह वाक्य के अन्त में व्यक्त होती है। चाहे तो कह सकते हैं कि कौरवी भाषाएँ बोलने वाले पहले से क्रिया सोच लेते हैं, क्रिया से उल्टा चलते हुए वाक्य के आरम्भ तक आते हैं और इस अव्यक्त वाक्य रचना को पुन: कर्त्ता से आरम्भ करके क्रिया की मंजिल तक पहुँच कर व्यक्त करते हैं। ऊपर से देखने में यह सारा तन्त्र बड़ा अटपटा लगेगा। किन्तु इससे भिन्न तन्त्र में क्रिया का उल्लेख करने के बाद वक्ता यह सोचने नहीं बैठता कि क्रिया किसने सम्पन्न की। कर्त्ता के बिना क्रिया हो ही नहीं सकती, अत: यदि कोई सोचे कि पहले क्रिया का उल्लेख, फिर कर्त्ता-कर्म आदि का विवरण मनुष्य के लिए अधिक स्वाभाविक व्यापार है, तो यह उसका भ्रम होगा। आधुनिक आर्य भाषाओं के वाक्यतन्त्र में कर्त्ता और क्रियारूप वाक्य के आदि और अन्त में स्थित होकर उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव के समान अपनी गुरुत्वाकर्षण क्षमता से वाक्यभूमि को दृढ़तापूर्वक भीतर से बाँधे रहते हैं। वाक्य के अन्य उपकरण इन दो ध्रुवों से सम्बद्ध रहते हैं। समूचे वाक्यतन्त्र में क्रिया की भूमिका निर्णायक होती है।

२. कारक-प्रक्रिया

क्रियाप्रधान वाक्यतन्त्र में कारक का सम्बन्ध क्रिया से होगा, संज्ञाप्रधान वाक्यतन्त्र की अपेक्षा क्रियाप्रधान वाक्यतन्त्र में कारक की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होगी। आर्य भाषाओं के वाक्यतन्त्र में एक सिरे पर कर्त्ता और दूसरे सिरे पर क्रिया होती है। वाक्यतन्त्र में प्रधानता क्रिया की है, अत: कारक का मूल सम्बन्ध क्रिया से है। एक तरह से हर भाषा में कारक होते हैं। शब्दों का परस्पर सम्बन्ध, क्रिया से कर्त्ता आदि का सम्बन्ध कहीं स्पष्ट चिन्हों द्वारा, कहीं सम्बन्धक शब्दों द्वारा और कहीं शब्दक्रम द्वारा जाना जाता है। शब्दों के अन्त में जो कारक चिन्ह दिखाई देते हैं, वे किसी समय स्वतन्त्र शब्द थे। विशेष स्थिति में बार-बार प्रयुक्त होने से उनकी स्वतन्त्रता समाप्त हो गई। क्रियारूपों के सर्वनामों की तरह वे चिन्ह मात्र रह गये। पर इसी से कारक का महत्त्व प्रकट होता है। कारक चिन्हों को लेकर कोल द्रविड़ भाषाओं से संस्कृत मूलत: भिन्न नहीं है।

कुछ लोगों का कहना है कि सम्बन्ध कारक वास्तविक कारक नहीं है, वह क्रिया से किसी वस्तु का सम्बन्ध प्रकट नहीं करता। वह बहुत कुछ विशेषण का कार्य करता है। संस्कृत और ग्रीक भाषाओं में सम्बन्ध कारक के प्रयोग पर ध्यान देने से विदित होता है कि अनेक तरह के प्रयोगों में उसका सीधा सम्बन्ध क्रिया से था। कारक-चिन्ह एक ही होने से यह भ्रान्ति होती है कि क्रिया के साथ संलग्न होने पर सम्बन्ध कारक अपना मूल कार्य छोड़ रहा है। वाक्यतन्त्र में क्रिया और कर्त्ता के कार्य अनेक हैं, उनकी तुलना में कारक-चिन्ह थोड़े हैं। अत: सम्बन्ध कारक ही नहीं, अन्य कारक भी अनेक कार्य करते हैं। कभी ये कार्य एक ही कारक के उपभेद माने जाते हैं और कभी वे अन्य कारकों के अपनाये हुए कार्य माने जाते हैं। सम्बन्ध कारक क्रिया के अर्थ की पूर्ति में सहायक नहीं था, यह उसका ओढ़ा हुआ कार्य है, यह मानने का कोई कारण नहीं है।

व्हिटने ने अपने संस्कृत व्याकरण में लिखा है कि सम्बन्ध कारक का अपना मूल्य विशेषण का है। उसका सम्बन्ध संज्ञा से होता है और वह उसकी विशेषता प्रकट करता है। व्हिटने ने जो उदाहरण दिये हैं, उनसे ज्ञात होता है कि कर्म, करण, अपादान, सम्प्रदान, अधिकरण, प्राय: सभी कारकों के स्थान पर क्रिया के साथ सम्बन्ध कारक का प्रयोग हो सकता था। ऐसा लगता है कि संस्कृत में किसी समय प्राथमिक और मूल भेद कर्त्ता और सम्बन्ध कारकों में था, शेष कारकों का विकास बाद में हुआ। सम्बन्ध कारक जैसा किसी अन्य कारक का व्यापक प्रयोग नहीं दिखाई देता।

राज्ञोनिवेदितम् (राजा सूचित किया गया)—यहाँ राज्ञो रूप सम्बन्ध कारक में है किन्तु किसी अन्य संज्ञा से वह राजा का सम्बन्ध व्यक्त नहीं करता। **ददातनो अमृतस्य** (हमें अमरता दो), यहाँ जो वस्तु दी जाएगी, वह अमरता है किन्तु उसके साथ जिस कारक का प्रयोग किया गया है, वह सम्बन्ध है।

व्हिटने ने अन्य उदाहरणों में अपादान के स्थान पर सम्बन्ध कारक का व्यवहार होते बताया है। **शृणु मे**—इसका अनुवाद उन्होंने किया है, मुझसे सीखो (लर्न फ्रौम् मी)। हिन्दी में इसका सीधा अनुवाद हो सकता है : मेरी सुन। अपादान का भाव वाक्य में प्रतीत नहीं होता, कर्म वाला भाव ही प्रकट होता है। यदि यह मान लिया जाय कि स्थान और समय की सूचना देना अधिकरण अथवा अपादान कारक का काम है तो यह काम सम्बन्ध कारक द्वारा सम्पन्न होते माना जा सकता है। **कस्य चित् कालस्य** (कुछ समय उपरान्त), **वस्तोः** (दिन में), **यत्र क्व च कुरुक्षेत्रस्य** (कुरुक्षेत्र के किसी भी भाग में)—यहाँ सम्बन्ध कारक का उपयोग देश-काल-सम्बन्धी सूचना देने के लिए किया गया है। कृदन्तों के साथ सम्बन्ध कारक का प्रयोग बहुत रोचक है। कृदन्त में क्रिया और संज्ञा दोनों का भाव रहता है। उसके साथ जब सम्बन्ध कारक का प्रयोग हो, तब यह कारक क्रिया और संज्ञा दोनों की अर्थपूर्ति में अपनी क्षमता व्यंजित करता है। **पश्यतो बक मूर्खस्य नकुलैर्भक्षिताः सुताः** (मूर्ख बक के देखते नेवले ने बच्चे खा डाले)—यहाँ **बक मूर्खस्य** सम्बन्ध कारक **पश्यतो** कृदन्त की अर्थपूर्ति करता है। हिन्दी में **उसके देखते** आदि प्रयोग ठीक संस्कृत पद्धति के अनुरूप हैं। जैसे-जैसे भाषा में कृदन्त-प्रयोग अधिक होने लगे, वैसे-वैसे उनके साथ उन कारकों का प्रयोग होने लगा जो कर्त्ता का स्थान लेते थे। अस्तु, संस्कृत के उदाहरणों से विदित है कि सम्बन्ध कारक ऐसा कारक नहीं था जो क्रिया से असम्बद्ध हो। वैसे जब वह असम्बद्ध दिखाई देता है, तब भी उसे कारक मानना उचित है क्योंकि वाक्य में कर्त्ता और क्रिया दो छोर पर हैं और सम्बन्ध कारक इन्हीं के अर्थ को किसी न किसी रूप में विस्तार देगा।

रदरफोर्ड ने उन ग्रीक क्रियाओं की सूची दी है जिनके साथ सम्बन्ध कारक का व्यवहार होता है। किसी को बधाई देना, किसी से ईर्ष्या करना, किसी को दोष देना या फिर दोषमुक्त करना, याद करना, भूलना, चिन्ता करना, चाहना आदि-आदि अनेक प्रकार के क्रिया भाव हैं जिनके साथ ग्रीक भाषा में सम्बन्ध कारक का व्यवहार होता था। सामान्यतः अन्य भाषाओं में यहाँ कर्म कारक का प्रयोग होगा। कुछ क्रियापदों के साथ सम्बन्ध कारक का व्यवहार क्यों होता है, रदरफोर्ड ने इसकी व्याख्या करने

का प्रयत्न किया है। वह व्याख्या कुछ-कुछ इस प्रकार की है कि 'वह सोचता है,' इस वाक्य में किसी की चिन्ता करने का भाव है, अतः सम्बन्ध कारक का प्रयोग हुआ। फिर भी ऐसी अनेक क्रियाएँ रह जाती हैं जिनके साथ सम्बन्ध कारक के व्यवहार की व्याख्या करना रदरफोर्ड के लिए कठिन है। उन्होंने लिखा है कि अक्सर ऐसा देखा जाता है कि **फेरेइन्** (संस्कृत **भर्**) या **दिदोनइ** (संस्कृत **दा**) आदि जो क्रियाएँ सामान्यतः कर्मकारक के साथ प्रयुक्त होती हैं, वे सम्बन्ध कारक का साथ करती हैं। ऐसा तब होता है जब कार्य का अर्थ पूरे कर्म को नहीं समझाता वरन् उसके किसी विशेष बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करता है। **फेरेइन् तोन् लिथोन्** (कुछ पत्थर लाना)—यहाँ सारे पत्थर नहीं लाये जायँगे, कुछ ही पत्थर लाये जायँगे, इस कारण सम्बन्ध कारक का प्रयोग हुआ। यह व्याख्या सन्तोषजनक नहीं है पर इतना तो स्पष्ट है कि सम्बन्ध कारक यहाँ कर्म भाव व्यक्त कर रहा है। ग्रीक और संस्कृत दोनों में सम्बन्ध कारक का व्यवहार कर्मभाव व्यंजित करने के लिए हो, यह स्थिति दोनों भाषाओं में कर्म और सम्बन्ध कारकों के मूल अभेद को सूचित करती है।

कर्म के अलावा अपादान का भाव व्यंजित करने के लिए सम्बन्ध कारक का व्यवहार होता था। यह व्यवहार इतना सामान्य था कि वैयाकरणों ने कल्पना की कि पहले अपादान कारक का व्यवहार होता था, उसका लोप हो गया है, और उसके स्थान पर सम्बन्ध कारक का व्यवहार होने लगा। कारक-पद्धति क्रमशः विकसित हुई है, इस पर ध्यान नहीं दिया गया। संस्कृत में जितने कारक हैं, वे 'आदि' इन्डोयूरोपियन भाषा में भी रहे होंगे, यह मानकर अपादान के लोप की कल्पना की गई। ग्रीक भाषा की जो क्रियाएँ एक स्थान से हटने, जुदा होने का भाव प्रकट करती हैं, उनके साथ सम्बन्ध कारक का व्यवहार होता था। इसके अतिरिक्त कुछ क्रियाओं के साथ सम्प्रदान के स्थान पर सम्बन्ध कारक का व्यवहार होता था, कुछ सम्बन्ध सूचक शब्द ऐसे थे कि क्रिया के साथ उनकी संगति तभी होती थी जब सम्बन्ध कारक का व्यवहार हो। कुल मिलाकर ग्रीक भाषा की वही स्थिति है जो संस्कृत की है। प्राथमिक और मूल भेद कर्त्ता और सम्बन्ध कारकों में हैं, यह सम्बन्ध कारक क्रिया के अर्थ की पूर्ति करता है, एक से अधिक कारकों का कार्य सम्पन्न करता है और संज्ञा की अर्थ पूर्ति का अपना सीमित कार्य भी सम्पन्न करता है।

तमिल भाषा में इससे भिन्न स्थिति है। यहाँ कर्त्ता कारक प्रायः अन्य सभी कारकों के स्थान में प्रयुक्त हो सकता है। आन्द्रोनोव ने अपने तमिल व्याकरण में विधेय-सूचक-कर्त्ता, कर्म-सूचक कर्त्ता, अधिकार-सूचक कर्त्ता, और इसी प्रकार विशेषता-सूचक, स्थान-सूचक, दिशा-सूचक, उपकरण-सूचक, काल-सूचक आदि-आदि कर्त्ता रूपों का उल्लेख किया है। कर्त्ता की तुलना में कर्म, करण आदि का व्यवहार अधिक सीमित है। कर्त्ता रूप बहुत कुछ शब्द का मूल रूप है। जैसे क्रिया आज्ञावृत्ति में अपने निर्विकार रूप में दिखाई देती है, वैसे ही संज्ञा कर्त्ता रूप में अपना सहज अस्तित्व प्रकट करती है। संस्कृत तथा नाग भाषाओं में कर्त्ता के साथ बहुधा विशेष चिन्ह लगाया जाता है, तमिल में कर्त्ता प्रायः अचिन्हित रहता है। संस्कृत और हिन्दी में जहाँ सम्बन्ध कारक

अनिवार्य होगा, वहाँ तमिल में कर्त्ता रूप—अर्थात् कारक के अभाव—से काम चल जायगा। क्रियाभाव व्यक्त करने वाले कृदन्त रूपों के प्रयोग में यह भिन्नता स्पष्ट देखी जाती है। **अवन् पोनपिन् नान् वीट्टुक्कुप्पोनेन्** (उसके चले जाने पर मैं घर गया), तमिल वाक्य में कर्त्ता रूप **अवन्** (वह) काफी है, हिन्दी रूपान्तर में सम्बन्ध कारक अनिवार्य है। **ताय् चॉन्न चॉल्लइत्तट्टादे** (माँ की कही बात का मखौल न करो), यहाँ तमिल वाक्य में कर्त्ता **ताय्** (माँ) अपने सहज निर्विकार रूप में है, हिन्दी रूपान्तर में सम्बन्ध कारक का प्रयोग आवश्यक है। कहा जा सकता है कि आर्य भाषाओं में जो महत्व सम्बन्ध कारक का है, द्रविड़ भाषाओं में वह महत्व कर्ता कारक का है।

वाक्य में कारक की स्थिति कैसी है, यह इस पर निर्भर है कि उसमें क्रिया की स्थिति कैसी है। वाक्य में क्रिया की स्थिति कमज़ोर होगी तो कारक की स्थिति भी कमज़ोर होगी। ग्रीक-लैटिन व्याकरण में बक ने लिखा है कि आदि इन्डोयूरोपियन भाषा में आठ कारक थे। ये आठ कारक भारत-ईरानी शाखा में सुरक्षित रहे, स्लाव समुदाय में सात कारक हैं, इटली की ओस्कन-उम्ब्रियन भाषाओं में भी सात थे, लैटिन में इनकी संख्या छह थी, ग्रीक में पाँच ही थी, आधुनिक ग्रीक में चार रह गई है, केल्त और जर्मन शाखाओं में चार, आधुनिक अंग्रेज़ी में दो, फ्रेन्च, इटैलियन और स्पैनिश में केवल एक कारक बचा है। (बक यहाँ संज्ञा के ही कारकों का उल्लेख कर रहे हैं, सर्वनामों में कुछ रूढ़ कारक रूप अब भी चले आते हैं।) कारकों की संख्या घटने का कारण यह बताया गया है कि एक दो या अधिक कारक घुल-मिल कर एक हो जाते हैं। इस एक हो जाने का यह कारण भी है कि कारक जिस बात की सूचना देते हैं, वह सूचना सम्बन्धक शब्दों (प्रिपोज़ीशन) से प्राप्त होने लगती है।

यहाँ दो तरह के वाक्यतन्त्रों का भेद स्वीकार करना होगा। एक तरह के वाक्यतन्त्र में कारक प्रधान है, मूल शब्द के बाद कारक चिन्ह जोड़ा जाता है। दूसरी तरह के वाक्यतन्त्र में सम्बन्धक शब्द मूल शब्द के पहले आता है। पहली तरह का वाक्यतन्त्र उन भाषाओं की विशेषता है जो संश्लिष्ट कहलाती हैं, दूसरी तरह का वाक्य-तन्त्र उन भाषाओं में पाया जाता है जो विश्लिष्ट कहलाती हैं। संश्लिष्ट भाषाओं की एक पहचान यह है कि कारक चिन्ह मूल शब्द से ऐसा जुड़ा होता है कि उसे अलग नहीं किया जा सकता अथवा अलग से उसका प्रयोग नहीं किया जाता। विश्लिष्ट भाषाओं में वह स्वतन्त्र होता है।

वास्तव में यह कोई मौलिक भेद नहीं है। जैसा कि हमने क्रियारूपों में देखा था, जो पहले स्वतन्त्र सर्वनाम थे, वे क्रिया से निरन्तर संलग्न रहने के कारण क्रिया-रूपों का अभिन्न अंग बन गये। यही स्थिति उन स्वतन्त्र सम्बन्धकों की है जो नाम शब्दों के साथ निरन्तर संलग्न रहने के कारण कारक-चिन्ह बन गये। महत्वपूर्ण भेद यह है कि सम्बन्धक या कारक चिन्ह मूल शब्द से पहले आते हैं या बाद को।

इस प्रसंग में कोल भाषाओं के क्रियारूपों का विवेचन करते हुए पिनोव् ने आस्ट्रोएशियाटिक परिवार के बारे में जो बातें कही हैं, वे ध्यान देने योग्य हैं। आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार का एक विभाग भारतीय कोल समुदाय है, दूसरा विभाग ख्मेर

और निकोबारी है जिसकी भाषाएँ, कम्पूचिया, इन्दोनीशिया आदि दक्षिण पूर्वी एशिया के प्रदेशों में बोली जाती हैं। इनमें ख्मेर-निकोबारी विभाग विश्लिष्ट वर्ग का है; कोल समुदाय संश्लिष्ट कोटि का है। पिनोव् का कहना है कि मूलतः कोल समुदाय भी विश्लिष्ट था। वह आर्य-द्रविड़ भाषाओं के प्रभाव से संश्लिष्ट बना है। मूल स्थिति यह थी कि कारक चिन्हों का व्यवहार न होता था, वाक्य में शब्द किस स्थान पर है, इससे उसके कार्य का बोध हो जाता था। वाक्य में शब्द क्रम यह रहता था: कर्त्ता, विधेय (अथवा क्रिया) और कर्म।

पिनोव् ने संश्लिष्ट और विश्लिष्ट भाषाओं में यह भेद देखा है कि पहली प्रकार की भाषाओं में कारक चिन्ह होते हैं, दूसरी प्रकार की भाषाओं में इनका अभाव होता है, वाक्य में शब्द के स्थान से उसका कार्य जाना जाता है। यह बात नई नहीं है। नई बात यह है कि उन्होंने वाक्य में सम्बन्धक का स्थान भाषा की संश्लिष्ट-अश्लिष्ट प्रकृति से जोड़ा है। विश्लिष्ट भाषाओं में सम्बन्धक 'प्रिपोज़ीशन' होता है, मूल शब्द से पहले आता है, संश्लिष्ट भाषाओं में वह 'पोस्टपोज़ीशन' होता है, मूल शब्द के बाद आता है। ख्मेर-निकोबारी भाषाओं में पोस्टपोज़ीशन ही होता है, ये भाषाएँ विश्लिष्ट हैं, इनमें कारक-चिन्ह नहीं होता, इसलिए मूल शब्द से जुड़ जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। अंग्रेजी जैसी भाषाएँ भी विश्लिष्ट हैं, इनमें भी सम्बन्धक मूल शब्द के पहले आता है। कुछ भाषाविज्ञानी यह मानते हैं कि आरम्भ में भाषाएँ संश्लिष्ट थीं, विकास और प्रगति का यह लक्षण है कि वे क्रमशः विश्लिष्ट होती गयीं। किन्तु ख्मेर-निकोबारी समुदाय की भाषाएँ विश्लिष्ट हैं, उनसे सम्बन्धित भारतीय कोल भाषाएँ भी पहले विश्लिष्ट थीं, आर्य-द्रविड़ सम्पर्क से वे संश्लिष्ट बनी, पूर्णतः नहीं तो अंशतः वे अब संश्लिष्ट हैं। विश्लिष्ट होना भाषा के विकास का प्रमाण नहीं है।

यहाँ कौल्डवेल के मत का भी उल्लेख कर देना चाहिए। उन्होंने लिखा है कि इन्डोयूरोपियन भाषाओं में कारक-चिन्ह शब्दमूल से जोड़े जाते थे। क्रमशः इनका भी लोप हो गया और 'प्रिपोज़ीशनों' का प्रयोग होने लगा जैसा कि सामी भाषाओं में होता है। मूल इन्डोयूरोपियन बोलियों में ये कारक चिन्ह स्वतन्त्र 'पोस्टपोज़ीशन'—पश्च सम्बन्धक थे। इन्डोयूरोपियन और शक परिवार दोनों ही आरम्भ में पोस्टपोज़ीशनों का प्रयोग करते थे। शक भाषाओं में वे अब भी स्वतन्त्र हैं। द्रविड़ भाषाओं में पोस्ट-पोज़ीशन स्वतन्त्र शब्द नहीं रह गये। पहले वे अन्य शक भाषाओं की तरह स्वतन्त्र शब्द थे किन्तु अब वे कारक चिन्ह (केससाइन) मात्र रह गये हैं। यहाँ तक कौल्डवेल का मत हुआ।

कौल्डवेल ने सामी भाषाओं का उल्लेख मौके से किया है। यूरुप की भाषाओं और सामी भाषाओं में पूर्वस्थानीय सम्बन्धक प्रयोग करने की ज़बर्दस्त प्रवृत्ति है। किन्तु सामी भाषाएँ विश्लिष्ट नहीं हैं, उनमें कारक चिन्ह मूल शब्द के बाद आता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि 'प्रिपोज़ीशन' के व्यवहार का कोई विशेष सम्बन्ध भाषा के संश्लिष्ट या विश्लिष्ट चरित्र से नहीं है। कौल्डवेल एशिया और यूरुप के एक विशाल भाषा-समुदाय को 'सिथियन' कहते थे। यह नामकरण अच्छा है। इस समुदाय की

भाषाएँ एक ही आदिभाषा से उत्पन्न हुई हैं, यह धारणा एक तरफ हटा दी जाय, तो तुर्क मंगोल और फिनोउग्रियन भाषाओं की सामान्य विशेषताएँ 'सिथियन' शब्द के अन्तर्गत आ जाती हैं। इसके भारतीय प्रतिरूप शक से हम लोग वैसे ही भलीभाँति परिचित हैं जैसे नाग और कोल शब्दों से। एशिया का यह शक-परिवार यूरुप में फिनलैंड और हंगरी तक चला गया है, उत्तर-पूर्वी एशिया के बहुत बड़े भाग में शक-परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। एक ओर यूराल पर्वत, दूसरी ओर अल्ताई, दोनों को मिलाकर यूरालअल्ताई नाम रखा गया है। इसके लिए शक नाम अच्छा है क्योंकि यह शब्द पहाड़ों के लिए नहीं, जन-समुदाय के लिए प्रयुक्त होता था। इन्डोयूरोपियन, चीनी-तिब्बती, तिब्बती-बर्मी, मुण्डा, द्रविड़ आदि-आदि नामों में कहीं भी पर्वतों का उल्लेख नहीं है। तब शक-समुदाय के लिए ही पहाड़ों का सहारा क्यों लिया जाय ?

कौल्डवेल ने द्रविड़ भाषाओं में कारक-निर्माण पर जो कुछ लिखा है, उससे स्पष्ट है कि विशाल शक-परिवार और इन्डोयूरोपियन परिवार मूलशब्द के बाद ही सम्बन्धक रखते थे। ये सम्बन्धक चाहे स्वतन्त्र हों, चाहे स्वतन्त्रता खोकर चिन्ह मात्र रह गये हों, उनकी स्थिति मूलशब्द के बाद ही थी। वाक्यतन्त्र में शब्द-क्रम-सम्बन्धी दो पद्धतियाँ हमारे सामने आती हैं। एक पद्धति शक और आर्य भाषाओं की है जो कारक-चिन्ह और सम्बन्धक को मूल शब्द के बाद जगह देती है। दूसरी पद्धति आस्ट्रोएशियाटिक अथवा कोल परिवार की है जो सम्बन्धक को मूलशब्द से पहले स्थान देती है। भारत में आर्य-द्रविड़ भाषाओं के निरन्तर सम्पर्क के कारण, पिनोव् के अनुसार, जो शब्द 'प्रिपोज़ीशन' थे, वे 'पोस्टपोज़ीशन' बन गये, बहुधा कारक-चिन्ह मात्र रह गये। यह बात सही मानी जा सकती है कि विश्लिष्ट भाषाओं में 'प्रिपोज़ीशनों' की प्रधानता है। यदि संश्लिष्ट भाषाएँ इनसे प्रभावित होंगी तो कारक-चिन्ह जुड़े रहने पर भी उनमें 'प्रिपोज़ीशनों' का व्यवहार होने लगेगा।

देखना यह चाहिए कि भारतीय भाषाओं में, सबसे पहले संस्कृत में कारक-चिन्ह से भिन्न जब सम्बन्धक का व्यवहार होता है, तब वह मूलशब्द के पहले आता है या बाद को। संस्कृत में **सह, बिना, प्रति** आदि सम्बन्धकों का व्यवहार होता है, सर्वत्र कारक-चिन्ह यथेष्ट नहीं होता, सम्बन्धक कारक का अर्थ विस्तार करता है, उसे पुष्ट करता है। जो स्वतन्त्र शब्द संक्षिप्त होकर कारक-चिन्ह बन गया है, वह भी मूलशब्द के बाद आता है, जो स्वतन्त्र है, संक्षिप्त नहीं हुआ है, वह भी मूलशब्द के बाद आता है। आर्य भाषाओं में प्राचीन काल से लेकर अब तक वाक्यतन्त्र में यह अटूट तारतम्य बना हुआ है। 'पोस्टपोज़ीशन' ने 'प्रिपोज़ीशन' को प्रवेश नहीं करने दिया। (बिना के हिन्दी प्रयोग में फ़ारसी के प्रभाव से कभी-कभी पूर्वस्थानीय पद्धति दिखाई देती है; इस प्रवृत्ति को जन्म देने वाली फ़ारसी ने स्वयं उसे अरबी से ग्रहण किया है। अरबी स्वयं कारक-चिन्हों को मूलशब्द के बाद लगाती है, सम्बन्धक को पहले रखती है।)

सामी भाषाओं तथा भारत से बाहर की इन्डोयूरोपियन भाषाओं में दो विरोधी प्रवृत्तियों का वैषम्य साफ दिखाई देता है। यूरुप की भाषाओं में 'प्रिपोज़ीशन' के चलन की व्याख्या यह कहकर नहीं की जा सकती कि सामी भाषाओं ने उन्हें प्रभावित किया है।

सामी भाषाएँ स्वयं किसी से प्रभावित हैं, उनकी मूल प्रवृत्ति आर्य और शक भाषाओं के समान ही पोस्ट पोज़ीशन का व्यवहार करने की है। यह 'पोस्ट पोज़ीशन'—स्वतन्त्र सम्बन्धक—संक्षिप्त होकर हीब्रू, अरबी आदि सामी भाषाओं में वैसे ही कारक-चिन्ह मात्र रह गया है जैसे आर्य भाषाओं में। जो लोग भाषाविज्ञान में महत्वपूर्ण व्याकरणिक समानताओं को आकस्मिक मान लेते हैं, उनके लिए यह कोई चर्चा के योग्य विषय नहीं है कि ग्रीक और अरबी दोनों में कारक-चिन्ह मूल शब्द के बाद आते हैं—पश्चगामी हैं—किन्तु सम्बन्धक पूर्वगामी हैं—मूल शब्द से पहले आते हैं। यदि बृहत्तर भाषाई परिवेश में इस विषय पर विचार किया जाय तो यह सारा प्रपंच आकस्मिक न लगेगा।

एशिया में एक ख्मेर भाषा समुदाय है। यह 'प्रिपोज़ीशन' का व्यवहार वैसे ही करता है जैसे अंग्रेज़ी यथा कम्बोजी भाषा में **मन् काल** (समय में, समय पर)। यहाँ **काल** भारतीय शब्द है और हिन्दी **में** का प्रतिरूप **मन्** है; हिन्दी वाक्य में **काल** पहले आयेगा, **में** बाद को, कम्बोजी में **काल** बाद को आयेगा, **मन्** पहले। जहाँ अब कम्बूचिया अथवा कम्बोज राज्य है, वहाँ किसी समय आर्य भाषाभाषियों ने अपने सांस्कृतिक केन्द्र स्थापित किये थे। कम्बोज देश से भारत का सम्बन्ध काफी पुराना है। किसी समय कम्बोज गण-समाज उत्तर भारत में रहते थे। जिस युग में सामी और इन्डोयूरोपियन परिवारों की प्राचीन भाषाओं का निर्माण हुआ, उस युग में कोल समुदाय के सम्बन्धी कम्बोजगण उत्तराखण्ड में फैले हुए थे। इनके अतिरिक्त कोल परिवार की अन्य भाषाएँ किसी समय 'प्रिपोज़ीशनों' का ही प्रयोग करती थीं। उत्तराखंड वह भूभाग है जहाँ अनेक भाषाई प्रवृत्तियाँ एक दूसरे को प्रभावित करती रही हैं। सामी भाषाओं का पुराना केन्द्र बाबुल इस भूखंड से बहुत दूर नहीं है। ग्रीक, लैटिन आदि यूरुप की भाषाओं और सामी, शक परिवारों की भाषाओं में कारक-चिन्हों का पश्चगामी प्रयोग भारतीय आर्य प्रभावों के कारण हो सकता है। संसार की संश्लिष्ट भाषाओं में, सामी और इन्डोयूरोपियन सभी में, यह अद्भुत समानता है कि कारक-चिन्ह मूल शब्द के बाद आता है। इस प्रवृत्ति का स्रोत सम्भवतः एक भाषा-परिवार था। इसके विरोध में कोल भाषाओं की मूल प्रवृत्ति है जो सम्बन्धक को पूर्वगामी बनाती है। आर्य द्रविड़ भाषाओं के प्रभाव से यह प्रवृत्ति लगभग समाप्त हो गई है किन्तु किसी समय यह प्रवृत्ति अत्यन्त बलवती थी, उत्तराखंड में नाग और द्रविड़ जनों के साथ कोल (कम्बोज आदि) गण-समाज फैले हुए थे। इन्होंने इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं को ही प्रभावित नहीं किया, सामी भाषाओं पर भी गहरा असर डाला।

यहाँ इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं से कारक-चिन्हों के साथ प्रयुक्त होने वाले सम्बन्धकों के कुछ उदाहरण देना समीचीन होगा। लैटिन भाषा में एक सम्बन्धक है **कुम्** (साथ)। सर्वनाम के साथ इसका प्रयोग पश्चगामी होता है। **मेकुम्** अर्थात् मेरे साथ, भारतीय पद्धति के अनुरूप स्वतन्त्र सम्बन्धक मूल शब्द के बाद आया है। किन्तु संज्ञा शब्दों के साथ इसका स्थान बदल जाता है : **कुम्लेगिओने** अर्थात् सेना सहित। इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं में जिस तरह के प्रयोग सर्वनामों से सम्बद्ध हैं, वे

अधिक प्राचीन सिद्ध होते हैं। लैटिन में स्पष्ट है कि सर्वनामों के साथ बार-बार प्रयुक्त होने से सम्बन्धक का स्थान रूढ़ हो गया है, उसे बदलना बहुत कठिन है। पर संज्ञा शब्दों के साथ यह स्थिति नहीं है, इसलिए विरोधी प्रवृत्ति आसानी से सम्बन्धक को पूर्वगामी बना देती है। ग्रीक भाषा में **एइस् अथेनास्** का अर्थ है **एथेन्स को**। यहाँ **अथेनास्** कर्म कारक है, उसके पहले **एइस्** सम्बन्धक लगा हुआ है। **अप् अथेनोन्** का अर्थ है एथेन्स से। यहाँ **अथेनोन्** सम्बन्ध कारक है, उससे पहले **अप्** सम्बन्धक आया है। **एन् अथेनइस्** का अर्थ है एथेन्स में। **अथेनइस्** सम्प्रदान कारक है, उससे पहले **एन्** सम्बन्धक लगा हुआ है। रूसी में **व् नदेल्यू** का अर्थ है हफ्ते में। **व्** सम्बन्धक है, मूल शब्द कर्म कारक में है। **इज़् देरॅवा** (लकड़ी से), सम्बन्धक **इज़्** के साथ मूल शब्द सम्बन्ध कारक में है। **अत् वक्ज़ाला** (स्टेशन से), यहाँ भी सम्बन्धक **अत्** के साथ मूल शब्द सम्बन्ध कारक में है। जर्मन भाषा में **बिनॅन् आइनॅर् श्टुन्डे** (एक घण्टे में), यहाँ सम्बन्धक **बिनॅन्** के साथ मूल शब्द सम्बन्ध कारक में है। **अउस् डेर् श्टाट्** (शहर से बाहर) यहाँ सम्बन्धक **अउस्** के साथ मूल शब्द सम्प्रदान कारक में है। **फ्यूर् डास् फ़ाटॅर्लान्ट्** (अपने देश के लिए), यहाँ सम्बन्धक **फ्यूर्** के साथ मूल शब्द कर्म कारक में है। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा कि कारक-चिन्ह के रहते हुए भी विरोधी प्रवृत्ति के प्रभाव से यूरुप की संश्लिष्ट भाषाएँ 'प्रिपोज़ीशनों' का व्यवहार करती हैं। अंग्रेज़ी की तरह जो भाषाएँ विश्लिष्ट हैं, उनमें तो पूर्वगामी सम्बन्धकों का व्यवहार होता ही है।

संस्कृत में अनेक संज्ञा शब्द कर्ता रूप में **अस्** या **अन्** प्रत्यय जोड़ते हैं। ग्रीक भाषा में **अस्** के प्रतिरूप **ओस्, एस्** प्रत्यय जोड़े जाते हैं। ये **अस् अम्** मूलतः क्या हैं ? क्या कर्ता को अन्य शब्दों से अलग दिखाने के लिए इनका व्यवहार होता है ? भारतीय भाषाई परिवेश में इस समस्या पर विचार करना चाहिए।

तमिल भाषा में अनेक शब्दों के बाद **अम्** प्रत्यय जुड़ा हुआ दिखाई देता है जैसे **मरम्** (पेड़)। अनेक शब्दों के अन्त में **अम्** के स्थान पर **अन्** दिखाई देता है। कौल्ड-वेल ने द्रविड़ भाषाओं के **अम्** को संस्कृत **ज्ञानम्** आदि के **अम्** से भिन्न माना है किन्तु उन्होंने दो बातें पते की कही हैं। पहली यह कि **अम्** किसी समय स्वतन्त्र निश्चय-बोधक सर्वनाम था, और दूसरी यह कि **अम्** और **अन्** मूलतः एक ही रूप हैं। पहली बात का महत्व इस बात को ध्यान में रखने से विदित होगा कि आर्य, द्रविड़, कोल परिवार न्यूनाधिक मात्रा में क्रिया और संज्ञा शब्दों के अन्त में सर्वनाम जोड़ते रहे हैं। सिन्धी भाषा में सम्बन्ध कारक वाले सर्वनाम चिन्ह अब भी जोड़े जाते हैं। अतः यह नितान्त सम्भव है कि कर्ता शब्द के साथ भी किसी समय सर्वनाम—स्वतन्त्र या चिन्ह रूप में—जोड़ा जाता था। **अन्** और **अम्** का प्रसार—किसी न किसी रूप में—आर्य द्रविड़ परिवारों के बाहर भी हुआ। ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण में असम की नाग भाषाओं के प्रसंग में बताया गया है कि इनमें से कुछ भाषाओं में सकर्मक क्रिया के कर्ता के बाद **ना** जोड़ा जाता है। कभी-कभी अकर्मक क्रियाओं के कर्ता के साथ भी इस चिन्ह का उपयोग होता है। **यिना दाइ** (मैं मारता हूँ); **नो नउना पेए** (छोटे ने कहा), इन

वाक्यों में सकर्मक क्रिया के कर्ता के साथ **ना** चिन्ह् का प्रयोग हुआ है। यह **ना** हिन्दी के कर्ता चिन्ह् **ने** से मिलता-जुलता है, यह ग्रियर्सन के ध्यान में था। **ने** चिन्ह् वाले कर्ता को वह करण कारक मान चुके थे। यहाँ भी इस **ना** को करण कारक का चिन्ह् माना जाय या नहीं ?

ग्रियर्सन ने लिखा : "सही बात यह है कि **ना** करण कारक का प्रत्यय है। जिन वाक्यों में इसका प्रयोग होता है, वे वास्तव में कर्मवाच्य हैं।" उन्होंने तिब्बती भाषा का उल्लेख भी किया है जिसमें इस तरह की संरचना सामान्य ठहराई गई है। मेरे द्वारा तुम्हारे सम्बन्ध में पिटाई होती है, मूल संरचना इस प्रकार की होगी, भावार्थ होगा, मैं तुम्हें पीटता हूँ। ग्रियर्सन की यह बात सही मानी जाय तो कम से कम दो भाषा परिवारों—आर्य और नाग—का घनिष्ठ सम्बन्ध सिद्ध हो ही जाता है, प्राचीन आर्य परिवार न सही तो आधुनिक ही सही। एक कठिनाई है कि ग्रियर्सन ने जिन नाग भाषाओं में **ना** के प्रयोग की चर्चा की है, उनमें वह अकर्मक क्रियाओं के संदर्भ में भी प्रयुक्त होता है; यह सच है कि सर्वत्र ऐसा नहीं होता, फिर भी जहाँ तहाँ होता तो है ही। उन्होंने ऊपर उद्धृत उदाहरणों के साथ इस तरह के वाक्य दिये हैं : **यिना सोए** (मैं हूँ)। मेरे द्वारा मुझसे सम्बन्धित होने की क्रिया सम्पन्न होती है—इस तरह की संरचना निरर्थक है। यह मानना अधिक समीचीन होगा कि **ना** का कार्य निश्चय-बोधक सर्वनाम का है। उसकी आवश्यकता सकर्मक क्रिया के सन्दर्भ में अधिक होती है, अकर्मक क्रिया के सन्दर्भ में कम। पंजाब, हरियाणा आदि की भाषाओं और परिनिष्ठित हिन्दी के अलावा अवध से लेकर मिथिला तक **ने** का व्यवहार नहीं होता। ब्रजभाषा में उसका व्यवहार पछाहीं प्रभाव से होने लगा है। पुरानी ब्रजभाषा ही नहीं, पुरानी हिन्दी (सौदा, मीर आदि की उर्दू) में अपेक्षित **ने** का अभाव जब-तब दिखाई देता है। यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि उत्तर-पूर्व की नाग भाषाएँ, दक्षिण की द्रविड़ भाषाएँ, उत्तर-पश्चिम की बाँगरू, पंजाबी आदि आधुनिक आर्य भाषाएँ और संस्कृत (कम से कम नपुंसक लिंग में) **ना, अन्, अम्** जैसे प्रत्ययों का व्यवहार करती हैं। भाषा के अनेक लक्षण उत्तर-पश्चिम, दक्षिण और उत्तर-पूर्व में मिलते हैं, मध्यदेश में नहीं मिलते। इस स्थिति को ध्यान में रखकर **ना, ने, अन्, अम्** के प्राचीन और आधुनिक व्यवहार पर विचार करना चाहिए।

ये चिन्ह् मूलतः सर्वनाम हैं। इस बात का पता लगाने का श्रेय कौल्डवेल को है। वह संस्कृत कारक-चिन्हों के उद्भव और विकास से अनभिज्ञ रहते हैं, इसका कारण यह है कि इन्डोयूरोपियन वादियों की तरह वे द्रविड़वादी बन गये, भारतीय आर्य भाषाएँ इन्डोयूरोपियन परिवार की शाखा थीं तो द्रविड़ भाषाएँ शक परिवार की शाखा होंगी। अखिल भारतीय सन्दर्भ में उन्होंने द्रविड़ परिवार के निर्माण पर विचार नहीं किया।

कारक-चिन्ह् पुराने सम्बन्धक हैं, यह बात सही है। पर कर्ता कारक के साथ किस तरह के 'प्रिपोज़ीशन' की जरूरत होगी ? करण कारक के साथ **द्वारा** की जरूरत होती है, सम्बन्ध कारक के साथ **का** की, अधिकरण के साथ **में, पर** आदि की। कर्ता के

साथ इस कोटि का कौन-सा सम्बन्धक जोड़ा जायगा ?

अंग्रेज़ी में कर्ता कारक के बाद **औन्** (ऊपर), **औफ्** (का), **टु** (को) जैसा कोई शब्द न आयेगा किन्तु **ए** (एक), **ऐन्** (उप०), **दि** (वह) जैसे शब्द आते हैं। ये सब विशेषक का कार्य करने वाले निश्चय अथवा अनिश्चयबोधक सर्वनाम हैं (या उस कोटि में इन्हें गिना जा सकता है)। अंग्रेज़ी में एक निश्चयबोधक **दि है**; जर्मन में तीन लिंगों के लिए **डेर, डी, डास्** तीन रूप हैं। इनका तीन रूपों में होना उनके विशेषक वाले कार्य की सूचना देता है। कर्ता कारक के चिन्ह का मूल कार्य जानने के लिए उपर्युक्त **ए, ऐन्, दि** पर थोड़ा और विचार किया जाय।

निश्चय अनिश्चयबोधक इन सर्वनामों को अंग्रेज़ी में आर्टिकल् कहते हैं, डेफिनिट् (निश्चयबोधक), इनडेफिनिट् (अनिश्चयबोधक)। इन्डोयूरोपियन परिवार की संस्कृत, लैटिन तथा स्लाव समुदाय की भाषाओं में संज्ञा के पहले आर्टिकल् जैसी किसी चीज का प्रयोग नहीं होता। किन्तु पुरानी ग्रीक में, जर्मन समुदाय की भाषाओं में और लैटिन कुल की आधुनिक भाषाओं में आर्टिकल् का व्यवहार होता है। सामी भाषाओं में भी उसका व्यवहार होता है। जैसे यूरुप की अनेक भाषाओं तथा सामी परिवार में 'प्रिपोज़ीशन' को लेकर समानता है, वैसे ही 'आर्टिकल्' के व्यवहार को लेकर भी समानता है। सामी भाषाएँ संज्ञा शब्दों के बाद सर्वनाम-चिन्हों का प्रयोग करती हैं, फिर उन्हें संज्ञा से पहले 'आर्टिकल्' लगाने की जरूरत क्यों हुई ? यह जरूरत वैसे ही पैदा हुई जैसे शब्द के बाद कारक-चिन्ह लगाने वाली सामी भाषाएँ शब्द से पहले 'प्रिपोज़ीशन' जोड़ने लगीं। यूरुप की भाषाओं तथा सामी परिवार की समानता केवल 'आर्टिकल्' के व्यवहार को लेकर नहीं है, कुछ भाषाओं में 'आर्टिकल्' का रूप भी मिलता-जुलता है। अरबी के **अल्** से मिलता-जुलता स्पैनिश **ऍल्**, इटालियन **ला, लो**, फ्रेन्च **ल, ला, ले** आदि एक ही गोत्र के शब्द हैं। फ्रेन्च **इल्**, **ऍल** स्वतन्त्र सर्वनाम हैं, पहला पुंल्लिग, दूसरा स्त्रीलिंग, अन्य पुरुष के लिए उनका व्यवहार होता है। इन्हीं के संक्षिप्त रूप **ल, ला** आदि हैं। जर्मन में **ल** वाले रूप नहीं हैं, **ड्** वाले रूप हैं जो अंग्रेज़ी **दि** की तरह पहले दन्त्य ध्वनि वाले रूप थे। एक समुदाय में **द** वाला रूप, दूसरे समुदाय में **ल** वाला रूप, यह स्थिति भारत की भाषाई प्रक्रिया की याद दिलाती है : एक समुदाय में **द्वादश**, दूसरे में **बारह**, एक समुदाय में **षोडश**, दूसरे में **सोलह**। **अद, इद** वाले सर्वनामों को याद करें। इनके प्रतिरूप **अल** और **इल** होंगे। **अद, इद** संक्षिप्त होकर **द** रह जायेंगे, **अल** और **इल** संक्षिप्त होकर **ल** रह जायेंगे।

वैसे **दि** स्वतन्त्र सर्वनाम भी था और उसका रूपान्तर **लि, ल** होगा।

कर्ता कारक के चिन्ह तथा 'आर्टिकल्' के व्यवहार पर विचार करने से निष्कर्ष यह निकलता है कि **अस्** या **अम्** संस्कृत में सम्बन्धक या कारक-चिन्ह नहीं हैं, निश्चयबोधक सर्वनाम हैं। इनमें **अम्** का प्रसार **अन्, ना** आदि रूपों में द्रविड़ और नाग भाषाओं तक है। **अस्** का व्यवहार भी संस्कृत तक सीमित नहीं था।

भारत के उत्तर-पूर्वी सीमान्त पर इदु नाग भाषा बोली जाती है। सकर्मक क्रिया के सन्दर्भ में वह कर्ता के बाद **मे** जोड़ती है। यह **मे** हिन्दी **ने** का प्रतिरूप है। एच

इमु मे बिरि अजिजि (यह आदमी बीड़ी जलाता है)। मनुष्यवाचक **इमु** शब्द के बाद **मे** चिन्ह जोड़ा गया है। क्रिया वर्तमानकाल की सूचना देती है, उसे भूतकालीन कृदन्त नहीं कहा जा सकता। हिन्दी में **ने** का प्रयोग भूतकाल में ही सम्भव है। यहाँ भूत-वर्तमान दोनों कालों में उसका प्रयोग होता है। **ङमे अखला** (मैंने रखा है)—यहाँ कर्ता सर्वनाम ङ के बाद **मे** चिन्ह जोड़ा गया है, क्रिया भूतकालीन है और **ल** चिन्ह उसके कृदन्त रूप होने की भी सूचना देता है। इससे सिद्ध हुआ कि **ने** के प्रतिरूप **मे** का व्यवहार वर्तमान और भूत, दोनों कालों के लिए, सकर्मक और अकर्मक, दोनों प्रकार की क्रियाओं के लिए होता है। उसका करण कारक तथा भूतकालीन कृदन्त से अभिन्न सम्बन्ध नहीं है। अन्य नाग भाषा तनखुर में कर्ता के साथ **न** चिन्ह जोर देने के लिए जोड़ा जाता है यथा **इन वय्** (मैं जाता हूँ)। यहाँ उत्तम पुरुष एकवचन **इ** सर्वनाम के बाद **न** जोड़ा गया है।

कोल, द्रविड़, नागभाषाओं के बारे में विद्वानों ने मत प्रकट किया है कि इनमें क्रिया-संज्ञा वाला भेद वैसा स्पष्ट नहीं है जैसा इन्डोयूरोपियन भाषाओं में है। स्वयं इन्डोयूरोपियन भाषाओं में ऐसे शब्द-मूल हैं जिनके बारे में ब्रुगमन ने लिखा है कि यह तय करना मुश्किल है कि वे मूलतः संज्ञा हैं या क्रिया। जैसे **दिव्** शब्द का अर्थ है चमकना, दूसरा अर्थ है चमकने वाला स्थान अर्थात् स्वर्ग। संस्कृत में क्रियाओं की प्रधानता है, अधिकांश शब्दों को किसी क्रियामूल से व्युत्पन्न माना जाता है। क्रिया का यह महत्व एक ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है; कार्य-सूचक शब्द वाक्य के विशिष्ट स्थान में निरन्तर आने से, संज्ञा से भिन्न, क्रियारूप में स्वीकृत हुए। जिन भाषाओं में कर्ता और क्रिया वाक्य के दो ध्रुव नहीं हैं, उनमें संज्ञा और क्रिया का वैसा भेद उत्पन्न न होगा जैसा आर्यभाषाओं में है। इसी प्रकार शब्दों की अन्य श्रेणियों का विकास भी क्रमशः हुआ है। तमिल में विशेषण का अस्तित्व संज्ञा से भिन्न है या नहीं, यह अब भी विवाद का विषय है। लिंग-वचन-सम्बन्धी विविधता इसी प्रकार भाषाओं की विभिन्न विकास-प्रक्रिया से जुड़ी हुई है। कारक कितने हैं, किस भाषा का काम कारक-चिन्हों के बिना नहीं चलता, किसका चल जाता है, ये बातें भी विकास-क्रम में निर्धारित होती हैं। कोई भाषा अनेक कारकों के लिए एक ही या एक जैसे कारक-चिन्हों का प्रयोग करे तो उससे निष्कर्ष यह निकलता है कि कारक-भेद क्रमशः विकसित हो रहा है और यह सम्भव है कि उस भाषा के लिए दो कारकों का भेद बहुत महत्वपूर्ण न हो। संस्कृत में जैसे सर्वनाम अनेक स्रोतों से आकर एक व्यवस्था में घुलमिल गये हैं, वैसे ही कारक-चिन्ह अनेक स्रोतों से आये हैं। किस कारक के साथ कौनसा चिन्ह जुड़े, यह बात तय होते-होते होती है। जैसे कोई सम्बन्धक एक से अधिक कारकों के साथ प्रयुक्त हो सकता है, वैसे ही कारक-चिन्ह एक से अधिक कारकों के साथ जोड़ा जा सकता है। कुछ नागभाषाएँ **न्** ध्वनि वाले चिन्ह को सम्बन्ध या कर्मकारक के लिए प्रयुक्त करती हैं। असम की नागभाषाओं से ग्रियर्सन के सर्वेक्षण ग्रन्थ में इस तरह के उदाहरण दिये गये हैं: **नङ नी** (तेरा), **अङ नु** (मुझको)। **देशनी** (देश का), **दिननी** (दिनों का) जैसे शब्दबन्ध देखकर गुजराती की याद आती है। गलोङ भाषा में कर्मकारक के लिए **एम्**

चिन्ह का प्रयोग होता है। यह **भी न्** ध्वनि पर आधारित चिन्ह का परिवर्तित रूप जान पड़ता है। संस्कृत में पुंल्लिग संज्ञा शब्दों के सम्बन्धकारक बहुवचन में **न** जुड़ा हुआ दिखाई देता है यथा **ज्ञानिनाम्, रामाणाम्**; यह **न** सम्बन्ध कारक का चिन्ह है। पंजाबी तथा पंजाबी प्रभावित हिन्दी में मुझे के स्थान पर **मैंने** का व्यवहार होता है अर्थात् **ने** का प्रयोग आधुनिक आर्य भाषाओं में एक से अधिक कारकों के लिए होता है। अंग्रेज़ी में एक सर्वनाम है **दाउ**। इसका एक सम्बन्ध कारक रूप **दाइ** (तेरा) हुआ, दूसरा रूप है **दाइन्**। इसमें **न्** का संयोग कैसे हुआ ? **मी** (मुझे) का सम्बन्ध कारक रूप **माई**, दूसरा रूप **माइन्**; यहाँ भी प्रश्न है, **न्** क्यों जोड़ा गया ? नाग भाषाओं का **न**, गुजराती और संस्कृत के **न** वाले कारक रूप और अंग्रेज़ी के इन सर्वनामों के सम्बन्ध कारक में **न** का व्यवहार आकस्मिक नहीं है। अंग्रेज़ी 'प्रिपोज़ीशन' लगाती है, ऊपर के सर्वनाम रूपों में भारतीय पद्धति के अनुसार 'पोस्टपोज़ीशन' लगा हुआ है जो संक्षिप्त होकर कारक चिन्हमात्र रह गया है।

यहाँ तमिल सम्बन्धकारक **इन्** का भी उल्लेख करना चाहिए। **पैयन्** (लड़का), **पैयनिन्** (लड़के का); यह **इन्** ऊपर की कारक-चिन्ह श्रृंखला के अन्तर्गत है। अंग्रेज़ी **इन्** (अन्दर) और तमिल **इन्** एक-दूसरे से बहुत दूर नहीं जान पड़ते। अनेक रूसी नामों के अन्त में यह **इन्** दिखाई देता है जैसे **स्तालिन्**। **स्तालिन्** शब्द **स्ताल्** से बना है। **स्ताल्** माने फौलाद और **स्तालिन्** माने **फौलादी**। यहाँ **इन्** प्रत्यय **स्ताल्** को सम्बन्ध कारक का रूप देकर उसे विशेषण बनाता है। रूसी भाषा में भी पूर्व सम्बन्धकों का व्यवहार व्यापक रूप से होता है किन्तु इस प्रकार सम्बन्ध कारक वाला चिन्ह जोड़कर संज्ञा से विशेषण बनाने का ढंग पुराना है और भारतीय है।

अंग्रेज़ी में एक सर्वनाम है **यू** (तुम)। इसका सम्बन्ध कारक रूप होता है **योर्** (तुम्हारा); **यू** सर्वनाम संस्कृत **यूयम्** का प्रतिरूप है किन्तु इस **योर्** में **र्** क्यों जोड़ा गया; उसका स्रोत क्या है ? **मेरा, तेरा, हमारा, तुम्हारा** जैसे रूप भारत में कब से प्रचलित हैं ? कम से कम तब से जब से अंग्रेज़ी भाषा में **योर्** का चलन हुआ।

सन्थाली में सम्बन्ध कारक के लिए **अक्** चिन्ह का प्रयोग तब होता है जब सम्बन्धित वस्तु निर्जीव हो। सजीव होने पर **रन्, रान्, रेन्** आदि का प्रयोग होता है। निर्जीव वस्तु से सम्बन्ध जताने के लिए **रेअक्** का भी प्रयोग होता है जहाँ **र्** और **क्** दोनों चिन्हों का संयोग हुआ है। बँगला, गुजराती, हिन्दी आदि के **र्, न्, क्** ध्वनियों वाले कारक चिन्हों से सन्थाली भाषा के **अक्, रन्** आदि असम्बद्ध नहीं हैं। अन्य भाषाओं के समान इस भाषा में भी एक ही चिन्ह एक से अधिक कारकों के लिए प्रयुक्त होता है यथा **राँ, रे** अधिकरण कारक के चिन्ह हैं अथवा स्थानसूचक सम्बन्धक हैं यथा **ओतेरे** अर्थात् खेत में। अपादान कारक के लिए सन्थाली में **एते** चिन्ह का प्रयोग होता है; **सबॅन् को एते** अर्थात् सब लोगों से। रूसी भाषा में अपादान कारक चिन्ह का भाव व्यक्त करनेवाला सम्बन्धक **अत्** है यथा **अत् कुदा** (कहाँ से), **अत् वग्जाला** (स्टेशन से)। **कुदा** संस्कृत **कुतः** (कहाँ से) का प्रतिरूप है, उसके पहले एक सम्बन्धक और जोड़ा गया है। संस्कृत के जिन शब्दों के साथ अपादान कारक में **अत्** जोड़ा जाता

है—यथा **रामात्** (राम से), वहाँ उसी सम्बन्धक के दर्शन होते हैं जो रूसी में स्वतन्त्र है और संस्कृत में परतन्त्र होकर कारक चिन्ह मात्र रह गया है। **अत् वकुजाला** में कर्म कारक के साथ अपादान भावसूचक **अत्** का प्रयोग किया गया है।

तमिल में **कु** चिन्ह का प्रयोग सम्प्रदान कारक के लिए होता है। विद्वानों ने हिन्दी **को** से इसकी भिन्नता सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। एक तर्क यह है कि तमिल में वह सम्प्रदान के लिए प्रयुक्त होता है किन्तु हिन्दी में वह कर्म कारक का चिन्ह है। पहले तो हिन्दी में भी सम्प्रदान कारक के लिए उसका प्रयोग होता है। **यह किताब राम को दे दो**—इस वाक्य में जो चीज दी जायगी, वह राम नहीं है, किताब है। दूसरे मगही आदि में सम्प्रदान कारक का चिन्ह कर्म कारक के चिन्ह से अब भी भिन्न है। रूसी सम्बन्धक **क**, हिन्दी **को**, तमिल **कु** परस्पर सम्बद्ध हैं।

तमिल में कर्म के लिए **अइ** अथवा **अय्** चिन्ह का प्रयोग होता है: **पुस्तकत्तइ** अर्थात् पुस्तक को। यह संस्कृत के सम्प्रदानसूचक **अइ, आय्** का प्रतिरूप है: **तस्मै** (**तस्मइ** अर्थात् उसके लिए), **रामाय** (राम के लिए या राम को)। संस्कृत के सम्प्रदान और तमिल के कर्म कारक चिन्हों में अवश्य सम्बन्ध होना चाहिए। जो लोग हिन्दी **को** से तमिल **कु** को भिन्न मानते हैं, उन्हें ब्रजभाषा के कर्मसूचक **अय्** का उल्लेख करना चाहिए: **छोराय बुलइयो** अर्थात् लड़के को बुलाना। यहाँ तमिल और ब्रजभाषा के कर्म कारक चिन्हों में कोई अन्तर नहीं है। संस्कृत **मह्यम्** सम्प्रदान कारक है। इसका हिन्दी प्रतिरूप **मुझे** सम्प्रदान और कर्म दोनों कारकों के लिए प्रयुक्त होता है। उसी तरह संस्कृत का सम्प्रदान चिन्ह **आय** ब्रजभाषा में सम्प्रदान और कर्म कारकों के लिए प्रयुक्त होता है। लैटिन में **अऍ** चिन्ह कुछ शब्दों के साथ सम्प्रदान कारक में प्रयुक्त होता है यथा **पुएल्लअॅ** (लड़की को, लड़की के लिए), **हस्तअॅ** (भाले को, भाले के लिए)। लैटिन में मुख्य भेद कर्म और सम्प्रदान कारकों में नहीं है। लैटिन में सम्प्रदान कारक का यही एकवचन रूप सम्बन्ध कारक में भी होता है। सम्बन्ध कारक बहुवचन में यह भाषा र् ध्वनि जोड़ती है: **पुएल्लारुम्** (लड़कियों का)। भारतीय भाषाओं में सम्बन्ध कारक के लिए **र्** ध्वनि वाले चिन्ह का व्यापक व्यवहार होता है, लैटिन में सम्बन्ध कारक के बहुवचन में उसका व्यवहार आकस्मिक नहीं है। **पुएल्ला** के अतिरिक्त अन्य वर्गों के साथ भी उसका प्रयोग जहाँ-तहाँ होता है यथा **विर्** (वीर, पुरुष) का सम्बन्ध कारक बहुवचन **विरोरुम्**।

संस्कृत में नपुंसक लिंग के कर्ता-कर्म रूप एक से होते हैं। यह स्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि कर्ता और कर्म को एक-दूसरे से भिन्न दिखाना सदा आवश्यक नहीं रहा। कर्म कारक (एकवचन) का चिन्ह वास्तव में वही सर्वनाम **अम्** है। **अस्** सर्वनाम से भिन्न जब इसका प्रयोग नपुंसक लिंग के लिए सुरक्षित हो गया, तब पुंल्लिग शब्दों के कर्म कारक (एकवचन) के लिए उसका प्रयोग होने लगा। जो शब्द कर्ता रूप से हटकर कर्म बनेगा, वह क्रिया के सन्दर्भ में निष्क्रिय हो जायगा, अतः उसके लिए नपुंसक लिंग से सम्बद्ध सर्वनाम का व्यवहार हुआ। ग्रीक और लैटिन **अम्** अथवा **म्** चिन्ह का व्यवहार बहुधा कर्म कारक एकवचन के लिए करती हैं किन्तु बहुवचन में

लैटिन **पुएल्लम्** का कर्मरूप **पुएल्लास्** है। इस बहुवचन रूप में **अस्** वही सर्वनाम है जो संस्कृत के पुंल्लिग एकवचन रूप में दिखाई देता है। लैटिन **फीलिउस्** (पुत्र) का बहुवचन कर्ता रूप **फीलिई** है। एकवचन रूप का **उस्** अथवा **स्** संस्कृत **अस्** का प्रतिरूप है।

क्रियापद रचना और कारक निर्माणप्रक्रिया, दोनों में इन्डोयूरोपियन भाषाएँ भारतीय भाषा परिवारों से घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध हैं।

४

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के परिवर्तित परिप्रेक्ष्य और हिन्दी

१. परिप्रेक्ष्य

१९वीं सदी में इन्डोयूरोपियन भाषाओं से भारत की आर्येतर भाषाओं के सम्बन्ध पर विचार करना अवैज्ञानिक कार्य न माना जाता था। भाषा परिवारों को एक-दूसरे से अलग रखकर उनका विश्लेषण करने की पद्धति जड़ीभूत न हुई थी। इन्डोयूरोपियन परिवार के विशेषज्ञों ने अपने दायरे से निकलकर इधर-उधर ज़रा कम देखा पर जो लोग अन्य परिवारों की छानबीन कर रहे थे, उनका ध्यान अपने दायरे के बाहर अवश्य गया। इनमें सर्वप्रथम स्थान कौल्डवेल का है जिन्होंने द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके उनका व्याकरण लिखा था। कौल्डवेल को जितनी चिन्ता संस्कृत से द्रविड़ भाषाओं की भिन्नता दिखाने की थी, उतनी इन्डोयूरोपियन भाषाओं से उनकी भिन्नता दिखाने की न थी। इन्डोयूरोपियनवादियों ने जैसे संस्कृत को एक बड़े परिवार की शाखा सिद्ध किया था, वैसे ही वह द्रविड़ समुदाय को शक परिवार की शाखा सिद्ध करना चाहते थे।

इन्डोयूरोपियन परिवार से द्रविड़ भाषाओं का सम्बन्ध हो तो भारतीय आर्य-भाषाओं से उनका सम्बन्ध होना ही चाहिए। किन्तु कौल्डवेल के लिए यह अनिवार्य नहीं था क्योंकि द्रविड़ों का सम्पर्क इन्डोयूरोपियन भाषाएँ बोलने वालों से भारत के बाहर भी हुआ हो, यह सम्भव था। दो परिवारों में उल्लेखनीय सम्बन्ध हो तो उनका एक ही आदि स्रोत होना चाहिए, भाषाविज्ञान का यह पूर्वाग्रह पहले से चला आ रहा था और कौल्डवेल भी उससे ग्रस्त थे। भाषा-समुदायों में, और एक ही समुदाय की भाषाओं में, परस्पर अनेक प्रकार के सम्बन्ध हो सकते हैं, इसकी व्याख्या और विश्लेषण को ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में बहुत कम जगह मिली है। कौल्डवेल के चिन्तन की इन सीमाओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें इस बात का पूरा श्रेय देना चाहिए कि उन्होंने द्रविड़ परिवार से इन्डोयूरोपियन भाषाओं के घनिष्ठ सम्बन्ध को पहचाना।

अपने तुलनात्मक व्याकरण में उन्होंने १८५९ में मद्रास से प्रकाशित डॉ० पोप की पुस्तक **तमिल हैन्डबुक** का हवाला दिया है जिसमें डा० पोप ने कहा था : "दक्षिण-भारत की भाषाओं का अध्ययन जितना ही गहराई से किया जायगा, उतना ही संस्कृत से उनकी घनिष्ठता प्रकट होगी, उतना ही स्पष्ट होगा कि इन्डोयूरोपियन समुदाय की

भाषाओं से उनका आदिम और बहुत नज़दीकी सम्बन्ध है। पर वे (द्रविड़ भाषाएँ) प्राकृतें मात्र नहीं हैं, संस्कृत का अपभ्रंश नहीं हैं। मेरी मान्यता सदा यह रही है कि उनका स्थान उपर्युक्त परिवार के सदस्यों में है; सम्भवतः वे संस्कृत के समानान्तर व्यवहृत होने वाली भाषा का विलग हो जाने वाला अंग हैं। उनका उद्भव वही था जो संस्कृत का था। इसमें सन्देह नहीं कि ग्रीक, गौथिक, फ़ारसी और उस परिवार की अन्य भाषाओं से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है और उन बातों को लेकर है जिनको लेकर उनमें और संस्कृत में समानता नहीं है।"

डा० पोप ने संस्कृत से द्रविड़ भाषाओं की समानता पहचानी थी। उस समानता के बारे में उन विद्वानों ने भी लिखा है जो उसका कारण द्रविड़ों पर आर्यों की विजय मानते थे। पोप ने यूरुप की भाषाओं और भारत की पड़ोसी ईरानी भाषा से द्रविड़ भाषाओं की समानता पर ध्यान दिया था। यूरुप में द्रविड़ रहते थे और वहाँ भी आर्यों ने आकर उन्हें पराजित किया, यह किसी ने नहीं कहा। किन्तु भारत में आर्य-द्रविड़ भाषाओं की समानताएँ देखकर आर्य-विजय द्रविड़-पराजय का सिद्धान्त मान लिया गया। कुछ लोगों को इस बात से गहरी दिलचस्पी थी कि यूरुप की भाषाओं से द्रविड़ समुदाय के सम्बन्ध पर विचार न किया जाय। सारा ध्यान आर्य-द्रविड़ संघर्ष पर, और उसके भाषागत परिणाम पर, केन्द्रित किया जाय। किन्तु १९वीं सदी में अभी यह दृष्टिकोण सर्व-प्रभुत्व-सम्पन्न न हुआ था। १८६० में डा० पोप ने ईसा मसीह के एक उपदेश—सर्मन ऑन् द माउन्ट—का अनुवाद चार द्रविड़ भाषाओं में प्रकाशित किया था। उसके साथ उन्होंने शब्द-सूची और रूप विकारों की सरणियाँ प्रस्तुत की थीं। इसकी भूमिका में उन्होंने इन भाषाओं से केल्त और जर्मन भाषाओं के सुप्रतिष्ठित सम्बन्धों (डीप सीटेड ऐफ़ीनिटीज़) का उल्लेख किया था।

थोड़े हेरफेर से कौल्डवेल सम्बन्धों की यह बात मानते थे, केवल उनका कहना था कि शक परिवार से द्रविड़ भाषाओं का सम्बन्ध और भी घनिष्ठ है। यूरुप की भाषाओं में उन्होंने केल्त समुदाय को शक परिवार के सबसे निकट माना। उन्होंने इस सम्भावना का उल्लेख किया कि फिन परिवार की भाषाएँ यूरुप में केल्तों के पहुँचने से पहले व्यापक रूप से बोली जाती रही होंगी। उन्होंने कहा यह बहुत सम्भव है कि द्रविड़ भाषाओं के कुछ व्याकरण रूप, और उनसे कुछ अधिक शब्द-मूल, उसी स्रोत से उत्पन्न हुए हैं जिससे इन्डोयूरोपियन भाषाओं के वैसे ही रूप और शब्द-मूल उत्पन्न हुए हैं।

कौल्डवेल ने डा० ब्लीक नाम के विद्वान् का हवाला दिया जिन्होंने इन्डो-यूरोपियन और द्रविड़ भाषाओं में नपुंसक लिंग के व्यवहार को एक महत्वपूर्ण समानता माना था। उनका कहना था कि यही दो भाषा-परिवार हैं जिनमें तीन लिंग हैं; यह सम्भव नहीं लगता कि इन्होंने एक-दूसरे से स्वतन्त्र रहकर नपुंसक लिंग का विकास किया हो। ब्लीक का हवाला देने के बाद कौल्डवेल ने लिखा कि द्रविड़ भाषाओं में लिंगभेद उनके विकास में बाद की मंजिल की बात है पर बहुत दिन साथ रहने से संस्कृत के जो तत्व द्रविड़ भाषाओं में आ गये हैं, उन्हें अलग रखते हुए हमें द्रविड़

भाषाओं में ऐसे शब्द-मूल आदि प्राप्त होते हैं जो इन्डोयूरोपियन भाषाओं की मूल संरचना और उनके आदिम शब्द-भण्डार में पाये जाते हैं। द्रविड़ और इन्डोयूरोपियन भाषाओं की समानताएँ इन परिवारों की जड़ तक पहुँचती हैं, यह मानते हुए उन्होंने लिखा कि इसका कारण सुदूर या आंशिक सम्बन्ध ही हो सकता है। ये समानताएँ केवल संस्कृत से नहीं हैं, यूरुप की भाषाओं से भी है, इस स्थिति पर ज़ोर देते हुए उन्होंने लिखा : "जहाँ ऐसी समानताएँ मिलती हैं, वहाँ शब्द या रूप केवल संस्कृत से नहीं, पूरे इन्डोयूरोपियन परिवार से सम्बन्धित हैं। ऐसे रूप और शब्द कम नहीं हैं जहाँ संस्कृत से समानता नहीं है पर ग्रीक और लैटिन से है। बहुत जगह जहाँ संस्कृत से समानता घनिष्ठतम है, वहाँ यह समानता सुसंस्कृत उच्चारण वाली व्यवस्थित भाषा से नहीं है, जो लिखित रचनाओं में मिलती है, वरन् उस मूल संस्कृत से है जो अनगढ़ है, जिसका पता तुलना और विश्लेषण करने से चलता है, जो हमबोल्ट की जनभाषा है।"

कौल्डवेल का यह कहना सही है कि द्रविड़ भाषाओं से संस्कृत की समानता अत्यन्त प्राचीन है, लिखित साहित्य में भाषा का जो रूप मिलता है, उससे पहले की है। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि संस्कृत से द्रविड़ भाषाओं का सम्बन्ध पहचानने के लिए संस्कृत के विकास का, उसके विकास की विभिन्न मंज़िलों का ज्ञान आवश्यक है। ग्रीक, लैटिन या संस्कृत के विकास का इस प्रकार मंज़िलों के हिसाब से अध्ययन किसी ने नहीं किया पर वह आवश्यक है। पोप के समान कौल्डवेल ने भी ग्रीक और लैटिन से द्रविड़ भाषाओं की वह समानता देखी जो उनमें और संस्कृत में नहीं है।

कौल्डवेल के अनुसार द्रविड़ भाषाओं ने इन्डोयूरोपियन परिवार की जो आदिम विशेषताएँ इन्डोयूरोपियन भाषाओं से नहीं, वरन् उनके आदि स्रोत से प्राप्त की हैं, वे इस प्रकार हैं :

१. ग्रीक भाषा की तरह दो स्वरों को टकराने से बचाने के लिए द्रविड़ भाषाएँ भी **न्** का व्यवहार करती हैं।

२. अन्य पुरुष के सर्वनामों और क्रियापदों में लिंग-भेद प्रदर्शित किया जाता है। नपुंसक लिंग का भेद विशेष महत्वपूर्ण है।

३. निश्चयबोधक सर्वनाम के नपुंसक लिंग एकवचन अथवा अन्य पुरुष के सर्वनामों का चिन्ह **द्** या **त्** है।

४. लैटिन के समान नपुंसक लिंग का एक बहुवचन रूप है जिसमें ह्रस्व **अ** का व्यवहार होता है।

५. दूरस्थ वस्तु के लिए निश्चयबोधक सर्वनाम का आधार **अ** है और समीपस्थ वस्तु के लिए **इ** है।

६. फ़ारसी के समान अधिकांश भूतकालीन रूपों का निर्माण **द्** जोड़कर किया जाता है।

७. कुछ भूतकालीन रूपों का निर्माण धातु के एक अंश की आवृत्ति करके किया जाता है।

८. क्रिया के आधार पर बहुत से संज्ञारूपों का निर्माण धातु के स्वर को दीर्घ

करके किया जाता है।

इनके अलावा शब्द-भण्डार में भी समानताएँ हैं। कौल्डवेल ने लिखा कि द्रविड़ भाषाएँ बहुत दिनों से संस्कृत की पड़ोसी हैं। फिर भी उनमें बहुत से शब्दमूल ऐसे हैं जो पश्चिमी इन्डोयूरोपियन भाषाओं के शब्दमूलों से सम्बन्धित हैं। द्रविड़ भाषाएँ शक परिवार के अन्तर्गत हैं, यह घोषित करने के बाद उन्होंने लिखा : "मेरी समझ में शक परिवार की सभी भाषाओं में द्रविड़ भाषाएँ ही इन्डोयूरोपियन भाषाओं से सबसे ज्यादा समानताएँ प्रस्तुत करती हैं, जो समानताएँ सबसे प्राचीन और रोचक भी हैं।" (पृष्ठ ७४)। शक परिवार की अन्य भाषाएँ मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया अथवा यूरुप में कहीं भी पश्चिमी इन्डोयूरोपियन भाषाओं के सम्पर्क में आ सकती थीं। फिनोउग्रियन परिवार की कुछ भाषाएँ यूरुप में बोली ही जाती हैं। पर समानता के विचार से इन सबका स्थान द्रविड़ भाषाओं के बाद आता है; सर्वप्रथम स्थान भारतीय द्रविड़ भाषाओं का है। पश्चिमी यूरुप की भाषाओं से इन्हीं का सम्बन्ध सबसे गहरा है। द्रविड़ भाषाएँ अब भारत में बोली जाती हैं और कौल्डवेल जिन इन्डोयूरोपियन भाषाओं की चर्चा कर रहे हैं, वे पश्चिमी यूरुप में बोली जाती हैं। दोनों भाषा-क्षेत्रों में बहुत बड़ा भौगोलिक अन्तराल है पर दोनों में कौल्डवेल के अनुसार गहरा भाषाई सम्बन्ध है। स्पष्ट ही प्राचीनकाल में इनके भाषाक्षेत्र भिन्न थे, उनमें इतना बड़ा अन्तराल न था। कौल्डवेल कहते हैं कि ये इन्डोयूरोपियन समानताएँ "उस युग में ले जाती हैं जो इतिहास-मात्र की पहुँच से बाहर है"। (पृष्ठ ७४)। कुछ लोग इसे प्रागैतिहासिक काल कहेंगे। किन्तु इतिहास के बाहर कुछ नहीं है, अतः प्रागैतिहासिक काल जैसा कोई काल नहीं होता। हमारे ज्ञान की वहाँ पहुँच नहीं है, वह बात अलग है। यह सत्य है कि द्रविड़ परिवार से इन्डोयूरोपियन भाषाओं का सम्बन्ध उस समय शुरू होता है जब इन भाषाओं की निर्माण-प्रक्रिया अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है पर यह सम्बन्ध उस अवस्था तक सीमित नहीं है। यह प्रारम्भिक अवस्था स्वयं काफी दीर्घकालीन है; उसके बाद भी यह सम्बन्ध कायम रहता है। मानव-सभ्यता के इतिहास में कृषितन्त्र का विकास महत्वपूर्ण मंज़िल है। गण-समाजों के जीवन में दीर्घकालीन विकास के बाद यह मंज़िल आती है। इन्डोयूरोपियन और द्रविड़ भाषाएँ इस मंज़िल तक किसी न किसी रूप में एक-दूसरे के सम्पर्क मेंर ही हैं, इसके प्रमाण दिये जा चुके हैं। अतः इन्डोयूरोपियन-द्रविड़ सम्बन्ध को अत्यन्त प्राचीन ही नहीं, दीर्घकालीन, विकास की अनेक मंज़िलों में कायम रहने वाला सम्बन्ध मानना चाहिए। द्रविड़ परिवार में भिन्न प्रकृति वाली अनेक भाषाएँ थीं, वैसे ही इन्डोयूरोपियन समुदाय में, अत्यन्त प्राचीनकाल में भी, भिन्न प्रकृति वाली भाषाएँ थीं। (पुराने सम्बन्धों में यह भिन्नता पहचानी जा सकती है यथा तेलुगु-कन्नड़भाषियों के पूर्वजों का जो सम्बन्ध आर्मीनियन और आइरिश भाषाएँ बोलने वालों से था, वह तमिल-ग्रीक सम्बन्ध से भिन्न कोटि का था।) कौल्डवेल भाषा-परिवारों, मूल-स्रोतों, आदि-भाषाओं की कल्पना से अभिभूत थे। इसलिए वे बोलियों या गणभाषाओं के स्तर पर अनेक स्तरों के द्रविड़-इन्डोयूरोपियन सम्बन्धों पर विचार नहीं करते। वे इन सम्बन्धों को उस आदि महास्रोत से जोड़ देते

हैं जिसके अन्तर्गत शक और इन्डोयूरोपियन दोनों परिवार हैं; उनके लिए द्रविड़-इन्डोयूरोपियन सम्बन्ध उस समय के हैं जब शक और इन्डोयूरोपियन धाराएँ उस महास्रोत से फूटकर अलग-अलग प्रवाहित नहीं हुईं।

इस दूरस्थ, अति प्राचीन वंशगत सम्बन्ध के बारे में फिर कहते हैं : "इन्डो-यूरोपियन समानताएँ द्रविड़ भाषाओं के जीवन-सत्व और उनकी अस्मिता से इस प्रकार घनिष्ठ रूप में जुड़ी हुई हैं कि यह कल्पना करना कठिन है कि ये समानताएँ केवल पुराने सम्पर्क का परिणाम हैं, यह सम्पर्क चाहे जितना घनिष्ठ रहा हो।" (पृष्ठ ७५)। कौल्डवेल के लिए घनिष्ठ सम्पर्क काफी नहीं है; समानताएँ इतनी गहरी और व्यापक हैं, द्रविड़ भाषाओं की मूल विशेषताओं से उनका सम्बन्ध इतना गहरा है कि कौल्डवेल के अनुसार उनका एक मूल स्रोत होना ही चाहिए।

कोल भाषाओं तथा इन्डोयूरोपियन परिवार के सम्बन्धों पर हौफमन ने लिखा था। कौल्डवेल के समान इन्होंने पूरे भाषा-परिवार पर काम न किया था, कोल परिवार की एक भाषा मुंडारी पर ही उन्होंने गहराई से काम किया था और अपनी सामग्री **एन्साइक्लोपिडिया मुंडारिका** नाम के ग्रन्थ में प्रकाशित की थी। इसकी भूमिका में १९२४ का साल दिया हुआ है, पटना से प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ में प्रकाशन का वर्ष १९५० है। कौल्डवेल से लगभग आधी शताब्दी बाद हौफमन मुंडारी भाषा पर काम कर रहे थे। वह इस सीमा तक कौल्डवेल की परम्परा का अनुसरण करते हैं कि भारतीय आर्येतर भाषाओं से यूरुप की भाषाओं के सम्बन्ध को विचारणीय मानते हैं। अपनी **एन्साइक्लोपिडिया** की भूमिका में उन्होंने लिखा है : "बहुत-सी तथाकथित आर्य धातुएँ मुंडारी में हैं। इनमें से बहुत-सी संस्कृत तथा सम्बन्धित भारतीय भाषाओं में हैं।" फिर यूरुप की भाषाओं की चर्चा करते हुए कहते हैं : "पर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इनमें से काफी ऐसी हैं जो इन्डोजर्मैनिक भाषाओं की भारतीय शाखाओं में नहीं मिलतीं किन्तु उस परिवार की अभारतीय भाषाओं में मिलती हैं।" हौफमन की समझ में इन्डोयूरोपियन परिवार की भारतीय और अभारतीय शाखाओं में मुंडारी के इतने शब्दमूल मिलते थे कि आर्य और कोल भाषाओं के सामान्य स्रोत की कल्पना पर विचार किया जा सकता था। कौल्डवेल के समान हौफमन भी सामान्य भाषा तत्वों का एक ही कारण सोच सकते थे—दोनों परिवारों का एक ही स्रोत होगा। उनके साथ वान डेन बोश नाम के दूसरे पादरी काम कर रहे थे। उन्होंने हौफमन को एक शब्द-सूची भेजी थी जिसमें यूरुप की भाषाओं तथा मुंडारी के सामान्य शब्द दिये हुए थे। यूरुप की जिन भाषाओं में उन्हें सामान्य शब्द मिले थे, उनमें ग्रीक, लैटिन जर्मन, अंग्रेज़ी, आइरिश, फ्लेमिश आदि भाषाएँ हैं। हौफमन ने यह सूची एक स्थान पर उद्धृत की है और एक टिप्पणी में उन्होंने मूल ध्वनि **स्** के **क्** और **ह्** में परिवर्तित होने की बात कही है। मुंडारी में **हृदय** के लिए **सुद्** या **सुरुद्** शब्द है। लैटिन में **कोर्, कोर्दिस्,** जर्मन में **हर्स्** और अंग्रेज़ी में **हार्ट** इसके प्रतिरूप हैं। यह स्वीकार करके कि मुंडारी भाषा का शब्द लैटिन और जर्मन रूपों से सम्बद्ध है, उन्होंने लिखा कि मुंडारी भाषा का आदिस्थानीय **स्** लैटिन में **क्** तथा जर्मन समुदाय में **ह्** हो जाता है। वह इन

शब्दों के साथ **श्रद्धा** के **श्रद्** और **हृदय** को भी जोड़ सकते थे। भारतीय सकार यूरुप की किसी भाषा में **क्** अथवा **ह्** रूप में ग्रहण किया जाता है, यह स्थापना बड़े महत्व की थी। द्रविड़ भाषाओं की अपेक्षा कोल परिवार पर बहुत कम काम हुआ है। स्वभावतः यूरुप की भाषाओं से कोल परिवार के सम्बन्ध पर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी का हिन्दी शब्दानुशासन ग्रन्थ देखकर डा. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने उन्हें लिखा था कि इसकी स्थापनाएँ मान ली जायँ तो अब तक भाषाविज्ञान की जो प्रचलित मान्यताएँ रही हैं, उन्हें छोड़ना होगा। यह बात सही होगी पर यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की अनेक मान्यताएँ बदलती रही हैं और यदि वे पूर्वकाल में परिवर्तित हुई हैं तो वर्तमान और भविष्य में भी हो सकती हैं। जो नई स्थापना आये, उसका विवेकपूर्ण परीक्षण करना चाहिए, आवश्यकता हो तो पुरानी 'वैज्ञानिक' मान्यता को बदलना चाहिए। विज्ञान जड़ नहीं है और प्रत्येक वैज्ञानिक स्थापना में परिवर्तन-परिशोधन की गुंजाइश हो सकती है।

किसी समय इस वैज्ञानिक स्थापना पर विद्वानों को दृढ़ विश्वास था कि आदि इन्डोयूरोपियन भाषा की दो शाखाएँ हुईं, एक केन्तुम् वाली पश्चिमी शाखा और दूसरी शतम् वाली पूर्वी शाखा। यद्यपि यूरुप में अल्बानिया की भाषा शतम्वादी है और पूर्वी पश्चिमी का यह भेद खंडित करने के लिए काफी थी, फिर भी उसे अपवाद मानकर विद्वान् पूर्वी पश्चिमी शाखाओं वाले भेद पर डटे रहे। पूर्वी जर्मनी में पहले स्लाव समुदाय की एक शतम्वादी भाषा का चलन था। इसके दस्तावेज सुलभ थे। अल्बानिया की तरह प्राचीन प्रुशियन को भी अपवादों में डाल दिया गया। प्रथम महायुद्ध के दौरान तुर्की के एक गाँव में जब ईसा मसीह से पूर्व दूसरी सहस्त्राब्दी के दस्तावेज प्राप्त हुए, तब पुरानी मान्यताओं में परिशोधन अनिवार्य हो गया। यहाँ की हित्ती भाषा का अध्ययन करने वालों के एक दल ने आदि इन्डोयूरोपियन भाषा के बदले आदि इन्डोहित्ताइत भाषा की कल्पना की। इसकी दो शाखाएँ हुईं, एक हित्ती, दूसरी इन्डोयूरोपियन, और फिर इस इन्डोयूरोपियन से केन्तुम्-शतम् शाखाएँ, उनकी प्रशाखाएँ फूटीं। इस धारणा के मुख्य समर्थक अमरीकी विद्वान् स्टुर्टेवेन्ट हैं। ऐतिहासिक भाषाविज्ञानियों में यह दल अल्पसंख्यक है। बहुसंख्यक दल ने आदि इन्डोयूरोपियन भाषा की स्थापना तो नहीं छोड़ी पर उसकी पूर्वी पश्चिमी शाखाओं के बारे में जो कल्पना की गई थी, उसमें परिवर्तन की आवश्यकता उसने स्वीकार की। इस मत का प्रतिनिधित्व करने वाले एक विद्वान् बरो हैं। **संस्कृत** नामक ग्रन्थ में उन्होंने लिखा है : तुखारी और हित्ती भाषाओं का पता लगने से पहले इस धारणा का चलन था कि केन्तुम्-सतम् भेद पश्चिमी तथा पूर्वी इन्डोयूरोपियन का भेद है। यह भी माना जाता था कि सतम् भाषाओं की तरह केन्तुम् भाषाओं का भी एक संयुक्त समुदाय था। यह धारणा कभी भी पूरी तरह सन्तोषजनक नहीं थी। ग्रीक तथा पश्चिमी इन्डोयूरोपियन भाषाओं के बीच में अल्बानिया आ जाता है। इसके सिवा ग्रीक भाषा तथा पश्चिमी इन्डोयूरोपियन भाषाओं में

कोई खास समानताएँ नहीं हैं, इसके विपरीत ऐसी समानताएँ सतम् भाषाओं से हैं। तुखारी और हित्ती असंदिग्ध रूप से केन्तुम् भाषाएँ थीं। इनका पता लगने से पूर्व-पश्चिम वाले विभाजन की बात करना अब असम्भव हो गया, और यह भी स्पष्ट हो गया कि केन्तुम् समुदाय जैसा कोई संयुक्त भाषा-समुदाय नहीं था। केन्तुम् भाषाएँ मूल तालव्य क्, ग्, घ् को सुरक्षित बनाये हैं। यह समानता उनमें है पर भाषाविज्ञान का यह सुपरिचित सिद्धान्त है कि इस तरह की विशेषताओं का सुरक्षित बना रहना अनिवार्यतः यह सिद्ध नहीं करता कि वे भाषाएँ या बोलियाँ एक दूसरे से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित हैं।

बरो इस पुरानी मान्यता पर आरूढ़ हैं कि संस्कृत **शतम्** का **श्** मूलतः तालव्य **क्** था। इस तालव्य **क्** को केन्तुम् भाषाएँ सुरक्षित बनाये रहीं यद्यपि इस ध्वनि के उच्चारण में कोई तालव्य लक्षण नहीं है, पहले कभी था इसका प्रमाण नहीं है। पर वे यह मानने पर बाध्य हैं कि केन्तुम्-शतम् विभाजन अब पूर्वी-पश्चिमी शाखाओं का विभाजन नहीं माना जा सकता। भारत के उत्तर में तुखारी, भारत के पश्चिम में और यूनान के पड़ोस में हित्ती शतम् शाखा के प्रसार-क्षेत्र को खंडित करती हैं। अतः बरो ने यह माना कि इन्डोयूरोपियन भाषा परिवार में एक केन्द्रीय समुदाय (सेन्ट्रल ग्रुप) है और उसके सीमान्तों पर चार अन्य भाषा-समुदाय हैं। यह केन्द्रीय समुदाय कौन-सा है? यह केन्द्रीय समुदाय वही है जिसे शतम् शाखा कहा जाता है। ऊपर से देखने में यह कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन न हुआ, शतम्-केन्तुम् का भेद बना रहा, तालव्य **क्** से शतम् शाखा के सकारों का विकास मान्य रहा, आदिभाषा वाली स्थापना अडिग रही। वास्तव में यहाँ इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं का आपसी सम्बन्ध मूलतः बदल गया है। इस परिवार के 'केन्द्र' में केन्तुम् समुदाय के स्थान पर शतम् समुदाय प्रतिष्ठित हो गया है। इस शतम् समुदाय के मुख्य केन्द्र यूरुप में नहीं एशिया में हैं, एशिया में इनका प्रमुख केन्द्र भारत है। अतः भाषा-तत्वों के प्रसार-केन्द्रों का अध्ययन करते समय परिप्रेक्ष्य ही बदल गया, अनुसन्धानकर्ता का दृष्टिकोण ही बदल गया। बरो ने पुराने ढाँचे में थोड़ी-सी तब्दीली करके उसमें नये तथ्य जमा देने का प्रयत्न किया। पर वह ढाँचा ऐसा है कि उसमें थोड़ी तब्दीली करने पर आमूल परिवर्तन अनिवार्य हो जाता है।

बरो ने जिन चार सीमान्त भाषा-समुदायों (पॅरीफॅरल् डायलेक्ट-ग्रूप्स) का उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैः (१) पश्चिम इन्डोयूरोपियन समुदाय जिसमें इतालिक, केल्तिक और जर्मेनिक हैं; (२) ग्रीक जो केन्द्रीय समुदाय से विशेष सम्बन्ध व्यक्त करती है; (३) पूर्वी इन्डोयूरोपियन जो तुखारी के रूप में बच रही है; (४) हित्ती तथा लघु एशिया की अन्य इन्डोयूरोपियन भाषाएँ जो मूल स्रोत से सर्वप्रथम विलग हुई थीं।

इस वर्गीकरण में तुखारी और हित्ती को सीमान्त भाषाएँ कहा गया है। पर वह केन्द्र कहाँ है जिसे देखते ये सीमान्त भाषाएँ कही जा सकती हैं? इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर बरो की पुस्तक में नहीं है। इन्डोयूरोपियन परिवार की जो भाषाएँ यूरुप

ग्रौर एशिया में इस समय जहाँ बोली जाती हैं, बरो की कल्पना में लगभग वैसी ही स्थिति उनकी उस समय थी जब उनका व्यवहार-क्षेत्र सीमित था। जर्मन भाषा-समुदाय ग्रीक क्षेत्र के उत्तर में इस समय है, तो पहले भी था; संस्कृत ग्रीक क्षेत्र के पूर्व में इस समय है तो पहले भी थी। केवल संस्कृत का व्यवहारक्षेत्र, बरो के ग्रनुसार, मूलतः बदला हुग्रा है। ग्रार्य लोगों ने उत्तर पश्चिम से ग्राकर भारत में प्रवेश किया ग्रौर नया भाषा-क्षेत्र स्थापित किया। बरो कहते हैं कि इन्डोयूरोपियन भाषाग्रों का ऐतिहासिक वितरण उनके वर्गीकरण के ग्रनुरूप है किन्तु संस्कृत के सम्बन्ध में यह ग्रपवाद है कि ग्रपेक्षाकृत बाद के समय में ग्रार्यगण इन्डोयूरोपियन भाषा-क्षेत्र से हटकर धुर पूर्व में ग्राकर बस गये। इस बाद वाले समय से पहले, बरो के ग्रनुसार, ग्रादिम इन्डोईरानियन भाषा की स्थिति बहुत कुछ केन्द्रीय रही होगी। यह समुदाय शतम् वर्ग की बोलियों के सीधे सम्पर्क में था। उसके पूर्व में इन्डोयूरोपियन का वह रूप था जो ग्रन्ततः चीनी तुर्किस्तान की तुखारी बोली बना। इस समुदाय से बाल्तो-स्लावोनिक वर्ग का जो विशेष सम्बन्ध है, उस पर ध्यान दें तो इस केन्द्रीय समुदाय की भौगोलिक स्थिति ग्रौर भी निश्चित की जा सकती है। बाल्त ग्रौर स्लाव गण ग्रपने प्राचीनतम लिखित इतिहास में जहाँ बसे हुए बताये गये हैं, वहाँ से वे दूर चले गये होंगे, इसकी सम्भावना कम है। ग्रतः इन्डोईरानियन का मूल भौगोलिक क्षेत्र बाल्त स्लाव भूमि खंड के दक्षिण पूर्व में रहा होगा, इसकी सम्भावना बहुत बढ़ जाती है।

बाल्त-स्लाव प्रदेश का दक्षिण पूर्वी क्षेत्र भारत के ग्रासपास माना जा सकता है। 'दक्षिण पूर्वी' में, दक्षिण की तुलना में, पूर्व पर ग्रधिक बल देना होगा। बाल्त-स्लाव गणों का लिखित इतिहास जितना प्राचीन है, उससे ग्रधिक प्राचीन भारतीय ग्रार्य गण का ऋग्वेद है जो स्वयं इतिहास नहीं, तो इतिहास की स्रोत सामग्री का भंडार ग्रवश्य है। पर यह सारी तर्कना इस कल्पना पर ग्राधारित है कि जिसके पूरब-पच्छिम में इन्डोयूरोपियन भाषा-समुदाय पहले थे, उसके पूरब-पच्छिम में ग्राज भी हैं, केवल उनका व्यवहारक्षेत्र बढ़ गया है। यह ग्रावश्यक नहीं है कि किसी केन्द्र से चारों ही दिशाग्रों में भाषा तत्वों का प्रसार हो। ग्रंग्रेज़ी भाषा ग्रमरीका ग्रौर ग्रास्ट्रेलिया में पहुँच गई है। उसका प्रसार केन्द्र इंग्लैंड था। इंग्लैंड के उत्तर में उसका कितना प्रसार हुग्रा है? निकटवर्ती यूरुप में उसका व्यवहार-क्षेत्र कितना है? रूसी भाषा ग्रपने मूल क्षेत्र से पूरब की ग्रोर साइबेरिया तक फैलती चली गई है, पश्चिमी यूरुप में उसका कितना प्रसार हुग्रा है? ग्रतः बरो ने जिस कल्पना के ग्राधार पर इन्डो-ईरानियन का ग्रादि क्षेत्र निश्चित किया है, ग्रौर उस केन्द्र के पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खिन में जो सीमान्त माने हैं, उनका कोई पुष्ट ग्राधार नहीं है।

यदि ग्रार्य गण-भाषाग्रों का केन्द्र मध्यदेश माना जाय तो भारत-ईरानी शाखा का कल्पित केन्द्रीय क्षेत्र सीमान्त प्रदेश दिखाई देने लगेगा। इस मध्य देश के पूर्व में नाग भाषाएँ हैं। विन्ध्याचल के दक्षिण में द्रविड़ भाषाएँ ग्रादिकाल से बोली जाती रही हों, चाहे द्रविड़गण वहाँ बाद में ग्राकर बसे हों, यह निश्चित है कि जिस समय ग्रीक, लैटिन, जर्मन ग्रादि भाषाग्रों का निर्माण हो रहा था, उस समय दक्षिण भारत जनशून्य

नहीं था। किन्तु आर्य गण-भाषाओं का एक केन्द्र नहीं है, अनेक केन्द्र हैं, उन प्राचीन केन्द्रों की विशिष्टता और विविधता मगध से लेकर पठानों के देश तक आज भी दिखाई देती है। वृहत्तर भारत के किसी एकमात्र केन्द्र से भाषा तत्वों का निर्यात नहीं हुआ। इसीलिए यूरुप की भाषाओं से भारतीय आर्य भाषाओं की समानता अनेक प्रकार की है, अनेक स्तरों की है, यह समानता अलग-अलग आर्य भाषाओं को लेकर बंटी हुई है, यद्यपि मध्यदेशीय आर्य भाषाओं की भूमिका यहाँ निर्णायक है। भारत में जो अन्य भाषा-परिवार थे, उनके चिन्ह निर्यात किये हुए भाषा तत्वों में विद्यमान हैं। स्वयं भारत में जिन भाषा परिवारों का भौगोलिक क्षेत्र इस समय जैसा दिखाई देता है, पहले भी वैसा ही नहीं था। उत्तराखंड में नाग-द्रविड़-कोल बस्तियाँ थीं। चीनी तुर्किस्तान नाग-क्षेत्र है, पहले था, अब भी है। वहाँ आर्य भाषा तुखारी का व्यवहार होता था। शतम् समुदाय से भिन्न यह इन्डोयूरोपियन की पूर्वी शाखा है, यह कहने से पहले उसके व्यवहारक्षेत्र की नाग भाषाओं की विशेषता पहचानना चाहिए। यदि भारत के पूर्वी सीमान्त पर नाग भाषाएँ तालव्य श् को क् रूप में ग्रहण करती हों, तो यह मानना चाहिए कि तुखारी में केन्तुम् शाखा के लक्षण नाग भाषाओं की देन है।

आर्य गण भाषाओं के निर्माण में मध्यदेश की भूमिका निर्णायक है किन्तु वह भाषा तत्वों का मुख्य प्रसार केन्द्र नहीं है। मुख्य प्रसार केन्द्र उत्तराखंड है जो द्रविड़-कोल गणों के साथ नाग जन-संकुल है। इस केन्द्र से होते हुए जो मध्यदेशीय भाषा तत्व पश्चिमी एशिया अथवा लघु एशिया पहुँचते हैं, वे नाग प्रभाव लिये होते हैं। हित्ती, ग्रीक, लैटिन और पश्चिमी यूरुप की अन्य भाषाओं में इसी कारण वे लक्षण दिखाई देते हैं जो नाग क्षेत्र की आर्य भाषा तुखारी में है। इससे भिन्न जो तत्व मध्य और पश्चिमी एशिया में नागेतर क्षेत्रों के आर्य केन्द्रों से पहुँचते हैं, उनमें मध्यदेश की आर्य भाषाओं के प्राचीन लक्षण अधिक सुरक्षित हैं। ये तत्व एक ओर ईरान, आर्मीनिया में दिखाई देते हैं, दूसरी ओर इनका प्रसार पूर्वी यूरुप में होता है और इस कारण अल्बानिया, पूर्वी जर्मनी शतम् समुदाय के केन्द्र हैं या पहले कभी थे। भारत के पूरे भाषाई परिवेश को ध्यान में रखते हुए जब हम विभिन्न इन्डोयूरोपियन भाषा-समुदायों के आपसी सम्बन्धों पर विचार करते हैं, तब उक्त स्थापना पुष्ट होती है, ध्वनि-परिवर्तन से लेकर व्याकरण-सम्बन्धी समानता और भिन्नता के कारण समझ में आने लगते हैं। ईरानी भाषाओं का क्षेत्र वर्तमान ईरान तक सीमित नहीं है। पामीर से लेकर कोहकाफ तक इसका विस्तार है। आर्मीनिया की भाषा के अलावा इराक और तुर्की के उत्तरी पार्वतीय प्रदेशों में रहने वाले कुर्द गणों की भाषा ईरानी समुदाय से मिलती-जुलती है। स्वभावत: स्लाव तथा ग्रीक समुदायों से ईरानी समुदाय का घनिष्ठ सम्बन्ध है और ईरानी समुदाय का घनिष्ठ सम्बन्ध भारतीय आर्य भाषाओं से है।

बरो कहते हैं कि पश्चिमी इन्डोयूरोपियन भाषाओं—इतालिक, केल्तिक और जर्मैनिक—के शब्द-भंडार और व्याकरण में कुछ सामान्य विशेषताएँ हैं। इतालिक और केल्तिक समुदाय एक दूसरे के अधिक नजदीक हैं यद्यपि दोनों को किसी एक सामान्य इतालिक-केल्तिक भाषा से उत्पन्न नहीं माना जा सकता। इनसे जर्मैनिक

समुदाय का सम्बन्ध निश्चित है पर शिथिल है। उधर उसके कुछ विशेष सम्बन्ध स्लावोनिक से हैं, इसके अलावा सामान्य रूप में केन्द्रीय समुदाय से भी हैं। बरो की इस टिप्पणी से ज्ञात होगा कि शाखाओं वाला विभाजन कितना भ्रामक हो सकता है। अनेक गण-समुदाय हैं, उनकी भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध अनेक प्रकार के हैं।

यूरुप की संस्कृति का प्राचीनतम स्रोत यूनान माना जाता है। भाषा के विचार से प्राचीन यूनान तथा यूरुप—विशेषत: पश्चिमी यूरुप—के बीच किस तरह का सम्बन्ध है ? क्या प्राचीन ग्रीक को यूरोपियन भाषा कहा जा सकता है ?

इस सन्दर्भ में बरो ने लिखा है कि ग्रीक में केन्तुम् समुदाय से घनिष्ठ सम्बन्ध के कोई लक्षण नहीं हैं। इसके विपरीत उसका घनिष्ठतम सम्बन्ध शतम् भाषाओं से—विशेषत: इन्डोईरानियन और आर्मीनियन से—प्रतीत होता है। संस्कृत के तुलनात्मक व्याकरण पर दृष्टिपात करते ही विदित हो जाता है कि इन्डोईरानियन से बाहर किसी भी भाषा से संस्कृत की इतनी समानताएँ नहीं हैं जितनी ग्रीक से हैं। विशेष रूप से क्रिया रूपों के निर्माण में बहुत बड़ी समानता है। इन दोनों भाषाओं के दस्तावेज बहुत पुराने हैं, इसलिए भी ऐसी समानताएँ झलकती हैं किन्तु कुछ सामान्य लक्षणों का उद्भव उत्तर इन्डोयूरोपियन काल का है; मानना चाहिए कि ये लक्षण आदिकाल के नहीं हैं, उत्तरकाल में ग्रीक तथा इन्डोईरानियन ने सामान्य रूप से इनका सृजन किया है। दूसरी ओर शतम् समुदाय में जो विशिष्ट ध्वनि-परिवर्तन हुए हैं, वे ग्रीक भाषा में नहीं हैं। अत: निष्कर्ष यह निकलता है कि जिस मूल इन्डोयूरोपियन बोली के आधार पर ग्रीक भाषा का निर्माण हुआ है, वह केन्द्रीय बोलियों के समुदाय के घनिष्ठतम सम्पर्क में थी किन्तु यह सम्पर्क शतम् समुदाय में होने वाले ध्वनि-परिवर्तनों से पहले टूट गया था।

बरो के उक्त विवेचन में इन्डोयूरोपियन युग को पूर्व और उत्तर कालों में बाँटा गया है। एक तरह से यह इन्डोयूरोपियन भाषाओं के विकास की विभिन्न मंज़िलें स्वीकार करने के समान हैं। इसके सिवा यह माना गया है कि ग्रीक भाषा केन्द्रीय समुदाय से सम्बद्ध है। वह केन्तुम् समुदाय में केवल इसलिए शामिल की जाती है कि उसमें तालव्य श् का अभाव है, अत: शतम् समुदाय के कल्पित ध्वनिपरिवर्तनों से वह मुक्त है। वह व्याकरण और शब्द-भंडार की दृष्टि से शतम् समुदाय—और इस समुदाय में संस्कृत—से अभिन्न रूपेण सम्बद्ध है। पश्चिमी यूरुप की भाषाएँ केन्द्रीय समुदाय के विचार से सीमान्त भाषाएँ हैं। उनसे ग्रीक भाषा का निकट सम्बन्ध नहीं है। अत: जिस अर्थ में जर्मन या अंग्रेज़ी यूरोपियन भाषाएँ हैं, उस अर्थ में ग्रीक यूरोपियन भाषा नहीं है।

इन्डोयूरोपियन समुदाय के केन्द्र में ग्रीक और संस्कृत हैं। इस धुरी के चारों ओर अन्य भाषाओं का चक्र घूमता है। तुखारी भाषा को बरो पूर्वी सीमान्त की भाषा मानते हैं। पश्चिमी छोर पर केल्तिक, जर्मैनिक आदि हैं। इस मानचित्र में बरो जिसे आदि जननी भाषा कहेंगे, वह केन्द्रीय समुदाय की आदि जननी भाषा होगी ("...the parent dialect of Indo Iranian was originally a central dialect")। बरो

के अनुसार इन्डोईरानियन की जननी भाषा मूलत: एक केन्द्रीय बोली थी। अर्थात् जिस केन्द्रीय भाषा से तमाम इन्डोयूरोपियन भाषाओं का जन्म हुआ है, उसका सीधा और निकटतम सम्बन्ध भारत-ईरानी शाखा से है। बरो ने इन्डोईरानियन की जननी भाषा का उल्लेख किया है, ग्रीक और इन्डोईरानियन घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं, अत: वह ग्रीक की भी जननी भाषा होगी। तुखारी और केल्तिक आदि सीमान्तों पर हैं, अत: इस केन्द्रीय भाषा को ही उन सभी की जननी भाषा कहा जायगा। ये स्थापनाएँ उस धारणा के बहुत निकट हैं जिसके अनुसार इन्डोयूरोपियन परिवार के निर्माण में भारतीय आर्य भाषाओं की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

हित्ती और उससे सम्बन्धित भाषाओं के बारे में बरो का कहना है कि मूल इन्डोयूरोपियन समवाय से इनका बिलगाव सबसे पहले हुआ था। इन भाषाओं की जानकारी से पहले ग्रीक, लैटिन संस्कृत आदि के आधार पर जिस आदि इन्डोयूरोपियन भाषा की कल्पना की गई थी, उससे हित्ती आदि भाषाएँ बहुत भिन्न हैं। भारत के भाषावैज्ञानिकों ने हित्ती पर बहुत कम ध्यान दिया है। उनके लिए १९वीं सदी में तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर आदि भाषा का जो रूप रचा गया था, वह अब भी अक्षुण्ण बना हुआ है। वे समझते हैं कि पुराने ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में जहाँ-तहाँ छोटी-मोटी बातें जोड़ी जा सकती हैं, मूल मान्यताओं में और विश्लेषण की पद्धति में कोई परिवर्तन आवश्यक नहीं है। किन्तु १९वीं सदी के विद्वानों ने तुलनात्मक विवेचन करके आदि इन्डोयूरोपियन भाषा का जो रूप स्थिर किया था, वह हित्ती की जानकारी के बाद ढह गया है। हित्ती में एक ख् ध्वनि है जो अंग्रेज़ी वर्णमाला के ऐच् वर्ण के नीचे अर्धचन्द्र लगाकर व्यक्त की जाती है। अन्य भाषाओं के प्रतिरूपों में यह ध्वनि नहीं है। ध्वनितन्त्र के जो अटल नियम बनाये गये थे, उनमें आमूल परिवर्तन आवश्यक हो गया। काकल्य ध्वनियों को लेकर बहुत-सा साहित्य रचा गया, उसका एक विशेष वर्ग ही बन गया। इसके सिवा व्याकरण-सम्बन्धी विशेषताएँ हैं। स्त्रीलिंग के भेद का विकास नहीं हुआ। संस्कृत की तुलना में संज्ञा शब्दों का रूप-विन्यास बहुत सरल है। बरो कहते हैं कि यह समझने का कोई कारण नहीं कि पहले रूप-विकार में विविधता थी और हित्ती ने उसे खो दिया। संस्कृत की तुलना में आधुनिक भाषाएँ जहाँ भी क्रिया-संज्ञा-रूपों में सरल दिखाई देती हैं, विद्वान् मान लेते हैं कि इन्होंने पुरानी सम्पदा खो दी है और यह ह्रास का लक्षण है। पर वैसी ही सरलता यदि हित्ती में दिखाई दे तो उसे भी सम्पदा का विनाश और ह्रास कहने का साहस उन्हें नहीं होता। ग्रीक और संस्कृत के आधार पर भाषाविज्ञानियों ने आदिम इन्डोयूरोपियन भाषा के क्रिया रूपों का चित्र बनाया था। हित्ती भाषा के क्रिया रूप उस चित्र से बहुत भिन्न हैं। हित्ती ने क्रिया रूपों को खोया नहीं, और उसके क्रिया रूप उस कल्पित चित्र से मिलते नहीं हैं, इससे एक ही निष्कर्ष निकलता है कि तुलनात्मक विश्लेषण की पद्धति से पुराने रूपों का जो चित्र बनाया गया था, वह गलत था। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की आधारभूत मान्यताओं में इससे बड़ा परिवर्तन और क्या हो सकता है? भारत के भाषाविज्ञानी उसकी तरफ से बेखबर रहें तो यह उनके वैज्ञानिक

होने का प्रमाण नहीं है।

हित्ती की जानकारी से जो परिस्थिति उत्पन्न हुई, उससे कुछ लोगों ने पूर्व मान्यता को पूरी तरह बदल दिया। आदि इन्डोयूरोपियन के बदले उन्होंने आदि इन्डो-हित्ताइत की कल्पना की। इसकी दो शाखाएँ हुईं, हित्ती और इन्डोयूरोपियन। इन्डो-यूरोपियन शाखा का वह सारा विकास क्रम स्थिर रहा जो १९वीं सदी में कायम किया गया था। केवल जो पहले आदि इन्डोयूरोपियन भाषा थी, वह अब स्वयं एक आदि भाषा की शाखा बन गई। बरो इस इन्डोहित्ताइत आदि भाषा की धारणा को अस्वीकार करते हुए इन्डोयूरोपियन को दो हिस्सों में अथवा दो मंजिलों में बाँट देते हैं। पहली मंजिल में हित्ती शेष समुदाय से अलग नहीं हुई, दूसरी मंजिल में वह अलग हो गई। उन्होंने लिखा है : "महत्वपूर्ण भेद अब [अर्थात् हित्ती की जानकारी के बाद] यह है कि आदिम इन्डोयूरोपियन की ही धारणा को लेकर विवेचन करने के बदले अब हमें प्राचीन तथा उत्तरकालीन इन्डोयूरोपियन में भेद करना होगा। प्राचीन इन्डो-यूरोपियन उस समय की है जब हित्ती अलग न हुई थी। उत्तरकालीन इन्डोयूरोपियन में विकास की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो निश्चित की जा सकती हैं, इस विकास में विभिन्न बोलियाँ साथ-साथ विकसित होती हुई क्रमशः विभिन्न भाषाओं का रूप लेने लगती हैं।" यहाँ शब्दों का हेरफेर ही अधिक है, मूल स्थापना में अन्तर कम है। इन्डोहित्ताइत और इन्डोयूरोपियन, ये दो मंजिलें हुईं; इनके बदले, बरो के अनुसार, प्राचीन इन्डोयूरोपियन और उत्तरकालीन इन्डोयूरोपियन, ये दो मंजिलें हुईं। बरो ने हित्ती की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए प्राचीन इन्डोयूरोपियन भाषा का रूप निश्चित करने का प्रयत्न नहीं किया। संस्कृत पर उनकी पुस्तक मूलतः इन्डोयूरोपियन परिवार की पुरानी कल्पना पर आधारित है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के लिए हित्ती का महत्व युगान्तरकारी है, अतः उस पर संक्षेप में अलग से विचार कर लेना उचित होगा।

२. हित्ती

हित्ती भाषा के विशेषज्ञ स्टुर्टेवैन्ट ने इस भाषा के व्याकरण पर अपनी पुस्तक में लिखा है कि आधुनिक तुर्की में जहाँ बोगाज़कोय गाँव है, वहाँ दूसरी सहस्राब्दी में हित्तियों की प्राचीन राजधानी उरु हतुसस् थी। यहाँ जो दस्तावेज मिले, वे विधि-व्यवस्था, राजाज्ञापत्रों, सन्धियों, धार्मिक आचार, ओषधि-उपचार आदि से सम्बन्धित हैं। इनका समय १७०० से १२०० ई० पूर्व तक है। यहाँ हित्ती के अलावा अन्य भाषाएँ भी बोली जाती थीं। यहाँ हुर्री जाति के लोग रहते थे जिन पर भारतीय उद्भव का अभिजात वर्ग शासन करता था अथवा यह हुर्री जाति उस तरह के अभिजात वर्ग से बहुत प्रभावित थी। इसी कारण सीरिया (शाम) और उत्तरी मेसोपोटामिया (इराक) में दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के मध्य में बहुत से संस्कृत नाम पाये जाते हैं। अश्वारोहण-कौशल से सम्बन्धित दस्तावेजों में भारतीय शब्द मिलते हैं, मितन्नी नाम की जाति से जो सन्धि की गई थी, उसमें वैदिक देवताओं के नाम मिलते हैं। कुछ विद्वानों के

अनुसार इन हित्तियों ने लघु एशिया में पूर्व की ओर से प्रवेश किया था।

हित्ती शब्द हीब्रू भाषा का है। मूल शब्द **हत्ती** या **हत्ति** था। यह संस्कृत **हस्ति** से बहुत मिलता-जुलता है और **हस्तिनापुर** की याद दिलाता है जिसमें **ना** सम्बन्ध कारक का चिन्ह है; **हस्तिनापुर** का अर्थ होगा हस्तिगण का पुर। भारत में कुछ गण-समाजों के लिए हाथी एक पवित्र पशु था, उनका गण चिन्ह अथवा गण प्रतीक था, यह गणेश की उपासना से सिद्ध है। हस्तिनापुर में हस्तिगण रहता था या नहीं, इस गण से लघु एशिया के हत्तियों का सम्बन्ध है या नहीं, यह सब अभी कल्पना-मात्र है, विवेचन के लिए प्रमाणों का अभाव है। जो बात निश्चित है, वह यह कि हित्तियों के दस्तावेजों में उन वैदिक देवताओं का उल्लेख है जिनका नाम उस ग्रीक भाषा में नहीं है जो हित्ती की अपेक्षा संस्कृत से बहुत मिलती-जुलती है।

स्टुर्टेवैन्ट के अनुसार दो तरह के हत्ती थे। एक मूल निवासी और दूसरे बाहर से आकर वहाँ बस जाने वाले। उन्होंने लिखा है कि मूल हत्ती लघु एशिया के निवासी थे। बाद वाले हित्तियों ने उनका नाम अपना लिया, उनके कुछ देवताओं को अपने देवमण्डल में मिला लिया और उनकी राजधानी हन्तुस् या खन्तुस् पर अधिकार कर लिया। मूल हत्तियों की भाषा से हित्ती दस्तावेज़ों में जहाँ-तहाँ अनुवाद किया गया है।

हित्ती के साथ उससे मिलती-जुलती जो अन्य भाषाएँ वहाँ बोली जाती थीं, उनमें एक भाषा लुवियन थी। इसकी एक रोचक विशेषता यह थी कि सम्बन्ध कारक के बदले अधिकार सूचक विशेषण का प्रयोग होता था। यह विशेषण लिंग-वचन में विशेष्य के अनुरूप होता था। यह विशेषता सुमेरियन भाषा में भी थी और सुमेरियन का क्षेत्र हित्तियों के पड़ोस में था। सुमेरियन भाषा ज्ञात भाषा-परिवारों से भिन्न मानी जाती है, फिर भी उसमें तथा आर्य भाषाओं में अनेक समानताएँ हैं। सुमेरियन, लुवियन, और हिन्दी जैसी आधुनिक आर्य भाषाओं में यह समानता है कि सम्बन्ध कारक विशेषण के समान प्रयुक्त होता है और उसी की तरह रूप बदलता है।

पलाइक, लिकियन, लीदियन आदि कुल मिलाकर यहाँ की छह भाषाओं का पता लगा है जिन्हें एक सामान्य नाम अनातोलियन दिया गया है। इनके साथ कुछ लोग फ्रिजियन भाषा का उल्लेख करते हैं। फ्रिजिया का ग्रीक उच्चारण फ्रुगिआ होगा और डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने इसका सम्बन्ध संस्कृत गोत्रनाम **भृगु** से जोड़ा है। स्टुर्टेवैन्ट ने आदि इन्डोहित्ताइत भाषा की कल्पना की, इसकी एक शाखा आदि इन्डोयूरोपियन हुई, दूसरी शाखा आदि अनातोलियन हुई। इस दूसरी शाखा के अन्तर्गत ये सब भाषाएँ तथा हित्ती परिगणित हुईं। इस विभाजन में हित्ती भाषा भारतीय आर्य भाषाओं से बहुत दूर जा पड़ती है तथा ग्रीक भाषा अनातोलियन समुदाय से दूर जा पड़ती है। बरो और स्टुर्टेवैन्ट के वर्गीकरण में दो बातें सामान्य हैं। ये लोग ध्वनि-तन्त्र, शब्द निर्माण प्रक्रिया और व्याकरण रूपों के क्रमिक विकास पर बहुत कम ध्यान देते हैं, वृहत्तर भाषाई परिवेश की ओर भी कम ध्यान देते हैं।

हित्ती के ध्वनितन्त्र में सबसे महत्वपूर्ण विशेषता महाप्राण ध्वनियों का अभाव है। स्टुर्टेवैन्ट ने लिखा है कि सभी अनातोलियन भाषाएँ ऐसी हैं जिनमें महाप्राण और

अल्पप्राण ध्वनियों का भेद नहीं है। यह बात काफी आश्चर्यजनक है क्योंकि इन्डो-यूरोपियन परिवार की अधिकांश भाषाएँ ऐसी हैं जिनमें कोई न कोई महाप्राण ध्वनि है। यह हो सकता है कि जो महाप्राण ध्वनियाँ हों, वे अवरोधी न होकर संघर्षी हों। हित्ती में जिस ध्वनि को अंग्रेज़ी के **ऐच्** अक्षर के नीचे अर्धचन्द्र लगाकर सूचित किया जाता है, वह निस्सन्देह संघर्षी थी। स्टुर्टेवैन्ट ने संघर्षी **क़्** या **ग़्** में भेद दिखाया है। हित्ती भाषा में सघोष ध्वनियाँ थीं या नहीं, यह स्वयं विवादास्पद प्रश्न है। ऐच् वाला चिन्ह कितनी ध्वनियों का सूचक है, इस बारे में अनेक मत हैं। यह सम्भव है कि लैटिन के समान हित्ती में एक ही संघर्षी महाप्राण ध्वनि हो और वह सघोष महाप्राण तथा अघोष महाप्राण दोनों ध्वनियों वाले शब्दों के प्रतिरूपों में काम आती हो। हित्ती में **ह्** ध्वनि का अभाव है। अतः आर्य भाषाओं से प्राप्त ह् ध्वनि वाले शब्दों में भी उसी चिन्ह का व्यवहार होगा।

संस्कृत में एक शब्द है **पृथु** जिसका अर्थ है चौड़ा, विशद। हित्ती में इसका प्रतिरूप है **पल्ख़िस्**। यहाँ जिस ध्वनि के लिए ख़् लिखा गया है, यह संघर्षी **थ़्** हो सकती है। यह भी सम्भव है कि संघर्षी **थ़्** के लिए **ख़्** ध्वनि का ही प्रयोग होता हो। संस्कृत **भर्ग** (प्रकाशमान, श्वेत) का हित्ती प्रतिरूप **ख़र्किस्** है। यहाँ जिस ध्वनि के लिए **ख़्** लिखा गया है, वह संघर्षी फ़् हो सकती है। तमिल **कन्** (चमकना, गरम होना) और संस्कृत **कस्** (उप०) का हित्ती प्रतिरूप **ख़न्तइस्** (ऊष्मा) है। यहाँ सम्भव है अवरोधी **क्** संघर्षी **ख़्** रूप में ग्रहण किया गया हो। संस्कृत सारस का हित्ती प्रतिरूप **ख़रस्** (बाज) है। यहाँ **स्** ध्वनि **ख़्** में परिवर्तित है। संस्कृत **अस्थि** के हित्ती प्रतिरूप **ख़स्तइ** (कंकाल) में **ख़्** या तो ह् के बदले प्रयुक्त हुआ है या **कस्ति** रूप के अवरोधी **क्** के लिए जो **ख़्** में बदल गया था। अनेक ध्वनियों के प्रतिरूप के लिए एक ही ध्वनि चिन्ह का व्यवहार हो तो भाषा के ध्वनितन्त्र की छानबीन करने में कठिनाई होंगी ही। दो बातें निश्चित हैं। पहली यह कि द्रविड़ भाषाओं के समान हित्ती में महाप्राण ध्वनियों की कमी है; दूसरी यह कि नाग भाषाओं के समान इसमें अनेक संघर्षी ध्वनियाँ हैं। ख़् के अलावा एक ध्वनि **त्स्** है जिसे अंग्रेज़ी में **ज़ेड्** अक्षर द्वारा सूचित करते हैं। **अकुवन्त्सि** का अर्थ है वे पीते हैं; यह रूप संस्कृत **पठन्ति** आदि के समान है, केवल **त्** अवरोधी के बदले संघर्षी हो गया है। परिवर्तित ध्वनि को **च़्** चिन्ह के द्वारा भी व्यक्त कर सकते हैं। नाग भाषाओं में संघर्षी ध्वनियों की प्रचुरता है, साथ ही महाप्राण ध्वनियाँ भी हैं। अतः सम्भावना यही है कि हित्ती में महाप्राणध्वनियाँ थीं यद्यपि उनकी संख्या बहुत सीमित थी और वे अवरोधी के बदले संघर्षी थीं।

भारतीय भाषाई परिवेश में यदि हित्ती के ध्वनितन्त्र की विशेषताओं पर विचार करें तो प्रतीत होगा कि उसमें **ह्** समेत महाप्राण ध्वनियों का अभाव द्रविड़ प्रभाव का सूचक है। शब्द-भण्डार और व्याकरण-रूपों के विचार से हित्ती निस्सन्देह इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषा है किन्तु उसके ध्वनितन्त्र पर द्रविड़ भाषाओं का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। स्वयं द्रविड़ भाषाओं में संघर्षीकरण की प्रवृत्ति है। हित्ती और द्रविड़ भाषाएँ दोनों ही नाग भाषाओं से प्रभावित मानी जा सकती हैं। भारतीय

महाप्राण ध्वनियों के रूपान्तरण में यहाँ वही प्रक्रिया दिखाई देती है जो लैटिन में है।

हित्ती भाषा की दूसरी विशेषता सघोष ध्वनियों का अभाव है। स्टुर्टेवैन्ट के अनुसार अनातोलियन भाषाएँ हित्ती समेत सघोष और अघोष ध्वनियों में भेद करती हैं। इसके साथ ही वह यह भी कहते हैं कि लिपिकारों ने **क्-त्-प्** और **ग्-द्-ब्** लिखने में विवेक से काम नहीं लिया। यह एक आश्चर्य की बात है क्योंकि हित्ती के लिए जिस लिपि का उपयोग किया गया है वह सामी भाषा अक्कादी की लिपि है। इस सामी लिपि में सघोष और अघोष ध्वनियों का भेद व्यक्त किया जाता था। उस लिपि काव्यवहार करने वाले हित्ती किसी नियम के अनुसार सघोष-अघोष ध्वनियों का भेद न दिखायें, इसका एक ही कारण हो सकता है कि इस भाषा में इस तरह का भेद महत्वपूर्ण न था। हित्ती की एक पड़ोसी भाषा सुमेरियन थी। इस भाषा के ध्वनितन्त्र के बारे में स्टुर्टेवैन्ट ने लिखा है कि उसमें सघोष-अघोष अवरोधी ध्वनियों में कोई अर्थ-विच्छेदक भेद नहीं था। हित्ती भाषा के दस्तावेजों में कहीं-कहीं सुमेरियन लिपि चिन्हों का व्यवहार किया गया है, इस प्रकार दोनों का सम्पर्क प्रमाणित है। द्रविड़ों के अलावा हित्ती के परिवेश में प्राचीन काल की महत्वपूर्ण भाषा सुमेरियन है। अतः हित्ती में महाप्राणता के साथ सघोषता का अभाव हो या अत्यन्त सीमित व्यवहार होता हो तो यह स्थिति स्वाभाविक होगी।

हित्ती ध्वनितन्त्र की तीसरी विशेषता यह है कि उसमें कोई भी शब्द **र्** या **ल्** ध्वनि से आरम्भ नहीं होता। आर्य भाषा परिवार से भिन्न यह द्रविड़ परिवार, विशेषतः तमिल का स्पष्ट लक्षण है। चौथी विशेषता यह है कि अनेक शब्दों में त् ध्वनि ल् या **न्** में परिवर्तित होती है। **मधु** शब्द का हित्ती प्रतिरूप **मिलित्** है। यहाँ **ध्** पहले अघोष अल्पप्राण **त्** बना, पुनः ल् रूप में उसका कायाकल्प हुआ। यही प्रक्रिया **मधु** के लैटिन प्रतिरूप **मेल्** में दिखाई देती है। हित्ती में एक क्रियामूल **नि** है जिसका सम्बन्ध पीने से है; **निक् ओरत्सि** अर्थात् पी जाना। यह **नि** भारतीय **नीर** से सम्बद्ध है और यह **नीर** मूलतः **तीर्थ** का **तीर** था। **तीर** की मूलक्रिया **ती** हित्ती **नि** में परिवर्तित हुई। **त्** ध्वनि का इस प्रकार **ल्** और **न्** में परिवर्तन द्रविड़ भाषाओं में सामान्य है।

हित्ती ध्वनितन्त्र की पाँचवीं विशेषता यह है कि **श्** ध्वनि वाले अनेक भारतीय शब्दों के हित्ती प्रतिरूपों में **क्** ध्वनि का व्यवहार हुआ है। हृदय के पूर्वरूप **श्रद्** का हित्ती प्रतिरूप **कर्तस्** अथवा **किर्** है। इसी प्रकार संस्कृत क्रिया **शे** (लेटना) का हित्ती प्रतिरूप **कित** है। छठी विशेषता यह है कि नासिक्य ध्वनियों में **म्** की अपेक्षा **न्** का व्यवहार अधिक होता है; भारतीय रूपों में जहाँ **म्** है, वहाँ हित्ती रूपों में बहुधा **न्** दिखाई देता है। नपुंसक लिंग वाले संस्कृत के संज्ञा शब्द जहाँ **म्** का व्यवहार करते हैं, वहाँ हित्ती में **न्** का व्यवहार होता है। यही प्रवृत्ति ग्रीक भाषा में दिखाई देती है। स्वभावतः **म्** ध्वनि वाले सर्वनामों के साथ **न्** ध्वनि वाले सर्वनामों का व्यवहार भी होता है, संस्कृत **मम** और **नः** रूपों के समान। लैटिन के समान **अहम्** का हित्ती प्रतिरूप **एग्** (अथवा **एक्**), **एगोम्** है। कर्मकारक में इसके एकवचन रूप **मे**, **एमे**, **मोइ** हैं। कर्म कारक का बहुवचन रूप **नोस्** तथा तिर्यक् रूप **नो** है। यहाँ **म्** ध्वनि **न्** रूप में अनेक

द्रविड़ भाषाओं के समान ग्रहण की जाती है। हित्ती भाषा की सर्वनाम-व्यवस्था में अनेक स्रोतों से भाषा-तत्व आये हैं; उससे संस्कृत, ग्रीक, द्रविड़ भाषाओं की मिश्रित सर्वनाम-व्यवस्था समझने में सहायता मिलती है। हित्ती तथा अन्य इन्डोयूरोपियन भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर आदि इन्डोहित्ताइत भाषा के सर्वनामों के बारे में जो धारणा बनाई जा सकती है, उसके बारे में हित्ती भाषा के व्याकरण में स्टुर्टेवैन्ट ने लिखा है : "यहाँ बहुत स्पष्ट सात सर्वनामों—मूलतः आठ—का साँचा दिखाई देता है। ये सर्वनाम एक दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र थे, उन्हें बाद को एक ही व्यवस्था में शामिल किया गया था।" (पृष्ठ १०३)।

म् और **न्** सर्वनामों का भेद होने पर जहाँ-तहाँ उनसे वचन-भेद के लिए काम लिया गया। संस्कृत **अद्** (खाना) क्रिया के प्रतिरूप से **एइत्मि** (मैं खाता हूँ) और **अतुएनि** (हम खाते हैं) रूप बनते हैं।

हित्ती ध्वनितन्त्र की सातवीं विशेषता यह है कि यह भाषा एकारवादी है। अनेक भारतीय शब्दों में जहाँ अकार है, वहाँ हित्ती में एकार है। यह उत्तर-पश्चिमी आर्य गण भाषाओं की प्रवृत्ति है जिसने तमिल आदि अनेक द्रविड़ भाषाओं को प्रभावित किया था। किन्तु एकार ने अकार का बहिष्कार नहीं किया, अनेक वैकल्पिक रूपों में दोनों ध्वनियों का प्रयोग मिलता है। संस्कृत क्रिया **अस्** का एक हित्ती रूप **एस्त्सि** (है) है, दूसरा रूप **असन्त्सि** (हैं) है। एक रूप में **अ**, दूसरे में **ए**। इन रूपों को देखने से ज्ञात होता है कि ग्रीक भाषा के बहुत से शब्दों में संस्कृत **अ** के बदले **ए** क्यों है।

हित्ती ध्वनितन्त्र की आठवीं विशेषता यह है कि अनेक रूपों में **म्** के स्थान पर **व्** का व्यवहार होता है। क्रिया से संज्ञा रूप बनाने में कहीं **मर्** प्रत्यय दिखाई देगा, कहीं **वर्**, क्रियार्थी संज्ञा-रूपों के अर्थ में कहीं **मन्त्सि है**, कहीं **वन्त्सि**। यह वही प्रवृत्ति है जिसके कारण **बुद्धिमान्** का प्रतिरूप हिन्दी की बोलियों में **बुद्धिवान्** होता है। संस्कृत में **वसुमन्त, सखिवन्त** आदि रूपों में यही विकल्प देखा जाता है। अनेक द्रविड़ भाषाएँ **प्** के अवरोधीतत्व का लोप करके उसे **व्** में परिवर्तित कर देती हैं, उसी तरह यह **मन्त** और **वन्त** वाला परिवर्तन है। स्टुर्टेवैन्ट ने **व्** वाले रूपों को मूल रूप माना है। वर्तमान कालिक क्रिया रूप (उत्तम पुरुष, एकवचन) में हित्ती **मि** सर्वनाम चिन्ह लगाती है किन्तु पड़ोसी लुवियन भाषा में **वि** सर्वनाम चिन्ह लगता है। इसके लिए स्टुर्टेवैन्ट ने लिखा है कि हित्ती तथा इन्डोयूरोपियन में **मि** का प्रसार हुआ किन्तु मूल रूप **वि** लुवियन में सुरक्षित रहा (पृष्ठ ४५)। व्यापक परिवेश में विचार करें तो मूल रूप **म्** ध्वनि वाला प्रतीत होता है, **व्** ध्वनि वाला रूप एक निश्चित ध्वनिपरिवर्तन की प्रक्रिया की ओर संकेत करता है। हित्ती के क्रियारूपों में उत्तम पुरुष बहुवचन का एक चिन्ह **मेनि** है, दूसरा चिन्ह **वेनि** है। यह सारा व्यापार देखकर समझ में आ जाता है कि अंग्रेज़ी में उत्तम पुरुष सर्वनाम का एक रूप **मी** (मुझे) और दूसरा रूप **वी** (हम) क्यों है। संस्कृत **वयम्** का मूलरूप **मयम्** रहा होगा, **आवाम्** का मूल रूप **आमाम्** रहा होगा। **पठामि** का द्विवचन रूप **पठावः** है। जिस समय द्विवचन का भेद व्याकरण-व्यवस्था में शामिल न किया गया था, उस समय **पठामः** एक मात्र

बहुवचन रूप था; **म्, व्** ध्वनियों वाले दो सर्वनाम रूप मिलने पर वचन-भेद के लिए उनका प्रयोग किया गया।

हित्ती में मूर्धन्य ध्वनियों का अभाव है। यह भाषा द्रविड़ समुदाय के ध्वनितन्त्र से प्रभावित है, अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दूसरी सहस्राब्दी में द्रविड़ भाषाएँ मूर्धन्यीकरण से प्रभावित न हुई थीं। हित्ती में तालव्य ध्वनियों का भी अभाव है। सम्भवतः यहाँ भी द्रविड़ समुदाय के बारे में यह निष्कर्ष निकलेगा कि उसमें अभी **च्** ध्वनि का निवेश न हुआ था। इन्डोयूरोपियन परिवार में आर्य, ईरानी और स्लाव समुदायों से मिलकर जिस केन्द्रीय भाषा-समवाय का निर्माण होता है, उसमें **च्** ध्वनि सर्वत्र है। हित्ती में या तो इस **च्** ध्वनि को **क्** में परिवर्तित किया गया है अथवा यह भाषा केन्द्रीय समवाय की तालव्य वृत्ति से प्रभावित नहीं हुई। स्टुर्टेवैन्ट का यह उल्लेख महत्वपूर्ण है कि आदि इन्डोयूरोपियन भाषा की कल्पित तालव्य **क्** (**क्य्**) ध्वनि हित्ती में सामान्य **क्** से कहीं भिन्न दिखाई नहीं देती। स्टुर्टेवैन्ट ओष्ठ्य **क्** (**क्व्**) का अस्तित्व मानते हैं किन्तु हित्ती में इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। जहाँ **क्** के साथ **व्** का व्यवहार माना गया है, वहाँ **कु** लिखा हुआ मिलता है। इस **कु** के बाद **इ, ए** आदि किसी स्वर के आने पर **क्व** की कल्पना की गई है। एक स्थान पर वे लिखते हैं कि मान लेना चाहिए कि आदि इन्डोहित्ताइत भाषा में **क्** और **ग्** के बाद **व्** अथवा **उ** का व्यवहार होता था। इस कल्पना का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। भारत की उत्तर-पश्चिमी बोलियों के समान हित्ती के भी अनेक शब्दों में मूल **र्** के स्थान पर **ल्** है यथा रोचते का प्रतिरूप, ग्रीक **लेउकोस्** (प्रकाशमान) के समान, **लुअक्त्सि** है।

शब्द-भण्डार की कुछ विशेषताएँ द्रविड़ भाषाओं का स्मरण कराती हैं। **पउअर्** अथवा **पवर्** का अर्थ है जाना, **पइत्** अर्थात् वह गया। यह द्रविड़ भाषाओं की **पो** क्रिया है जो आर्य भाषाओं के **पद, पथ, पवन** आदि में विद्यमान है। हित्ती में जाने के लिए एक **अइ** क्रिया भी है जो भारतीय **याति, एति** आदि का प्रतिरूप है। आधुनिक आर्य भाषाओं में संयुक्त क्रियाओं का व्यवहार बहुत होता है। इनमें जाना क्रिया का प्रयोग अधिक होता है। हित्ती में संयुक्त क्रियाओं का व्यवहार तो होता ही है, इनमें बहुधा गमन-सूचक **अइ** क्रिया का व्यवहार भी होता है यथा **अप्पइ** (समाप्त हो जाना), **मअइ** (पक जाना)। **पो, पव्** या **प्** के साथ **अइ** का व्यवहार भिन्न स्रोतों से आये हुए शब्दों का मिश्रण सूचित करता है। **उएन्त्सि** अथवा **उवन्त्सि** (वे आते हैं) में **वर्** (आना) क्रिया अपने **वन्** रूप में है। हित्ती में **वर्** रूप का व्यवहार भी होता है।

हित्ती में बोलने के लिए **म** या **मय्** क्रिया है, **मेमइ** अर्थात् वह कहता है। यह वही क्रिया है जो कन्नड़ **मातु** (भाषा) में है। क्रिया की आवृत्ति से **मेमइ** रूप बनता है। मूल क्रिया में **अ** स्वर है किन्तु आवृत्ति होने पर प्रथम **म** एकारवादी वृत्ति के प्रभाव से **मे** हो गया है। हित्ती में आर्य भाषाओं के समान **मर्** क्रिया है: **मेर्इत** अर्थात् मृत। इसके साथ **अकि** (वह मरता है) में द्रविड़ भाषाओं की **स्-च्-क्** ध्वनियों वाली क्रिया है: मलतो **कॅयॅ**, कुइ **साव**, तेलुगु **चच्चु**, कन्नड़ **साय्**, तमिल **चा** (मरना)। (**अकि** रूप में **अ** क्रिया का अंश नहीं है।) यहाँ भी दो स्रोतों से आये हुए शब्द घुलते-मिलते

दिखाई देते हैं। हित्ती में **दा** क्रिया देने के बदले लेने के अर्थ में प्रयुक्त होती है, **दग्रइ** (वह लेता है)। इसके साथ **पाणि** और **पण्य** वाली **पण्** क्रिया के प्रतिरूप **प** का देने के अर्थ में व्यवहार होता है : **पग्रइ** (वह देता है)। **धा** क्रिया से **धाम** के समान हित्ती में इस **प** क्रिया से **पर्न** (घर) शब्द बनता है। **नीर** में पीने का अर्थ देने वाली **नि** क्रिया का उल्लेख पहले हो चुका है। हित्ती में एक **कु** क्रिया भी है जिसका अर्थ है पीना : **अकुएनि** (हम पीते हैं), **अकुतरस्** (पीने वाला)। यह क्रिया तमिल **कुडि** (पीना) आदि से सम्बद्ध हो सकती है। **कुडम्** (घड़ा) जैसे द्रविड़ शब्द इसी क्रिया से सम्बद्ध हैं। द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में **कुडि** के साथ संस्कृत **कुटी** (शराब), **कुडम्** के साथ संस्कृत **कूट** (घड़ा), और इसी तरह तमिल **कुट्रम्**, **कुन्डु** (तालाब; गड्ढा, गहराई) के साथ संस्कृत **कुण्ड** शब्द दिया हुआ है। स्टुर्टवैन्ट ने हित्ती क्रिया के साथ जलवाचक लैटिन **अक्व** का स्मरण किया है। हित्ती रूपों में जो आदिस्थानीय **अ** दिखाई देता है, वह मेरी समझ में उपसर्ग है, मूल क्रिया का अंश नहीं है। उड़ने का अर्थ देने वाली **पत्** क्रिया आर्य द्रविड़, दोनों समुदायों में है। **पित्** रूप में वह हित्ती में है। हल चलाने के लिए एक क्रिया **तेर्** है : **तेरिप्प्सि**(हल चलाना)। द्रविड़ भाषाओं में बोने, बीज डालने के अर्थ में इससे मिलती-जुलती क्रिया का व्यवहार होता है : कन्नड़ **तळि**, तमिल **तॅळि**, इत्यादि। द्रविड़ भाषाओं से सम्पर्क का प्रमाण **अत्तन्** या **अतन्** (पिता), **अत्तस्** या **अतस्** (उप०) और **अन्नस्** या **अनस्** (माता) शब्द हैं। द्रविड़ भाषाओं के समान हित्ती में संज्ञा शब्द विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं और द्रविड़ कोल भाषाओं के समान यहाँ संज्ञा और क्रिया में स्पष्ट भेद नहीं है। लिंग-भेद में निर्जीव और सजीव का भेद मुख्य है। आर्य द्रविड़ भाषाओं के समान नपुंसक लिंग का चिन्ह **द्** है।

आर्य भाषा परिवार के बहुत से शब्द हित्ती में है, यह स्वाभाविक है। व्याकरण की विशेषताओं में कुछ बातें उल्लेखनीय हैं। संयुक्त क्रियाओं का निर्माण आर्य भाषाओं के अलावा द्रविड़ और कोल भाषाओं की विशेषता भी है। यह भारतीय पद्धति हित्ती में है। आर्य तथा कोल भाषाएँ मूल क्रिया की आवृत्ति करके अर्थ पर बल देती हैं। यह प्रवृत्ति हित्ती में भी है। कृदन्त रूपों में, विशेषतः भूतकालीन कृदन्तों में, **त** वाले प्रत्यय का व्यवहार होता है। क्रिया के बहुवचन रूपों में बहुत्व-सूचक **र्** बहुधा प्रयुक्त होता है : **एतेइर्** (उन्होंने खाया), **पख्सिर्** (उन्होंने रक्षा की)। स्टुर्टवैन्ट के अनुसार हित्ती में मुख्य काल-भेद वर्तमान तथा अतीत का है। भविष्य काल का विकास न हुआ हो, यह स्थिति स्वाभाविक है। आर्य-द्रविड़ भाषाओं के समान हित्ती क्रियाओं में प्रत्यय जोड़कर क्रियार्थी संज्ञाओं का निर्माण होता है। जो कृदन्त रूप हैं, उनसे काल-भेद का स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। वास्तव में कृदन्त रूप मूलतः काल-भेद से मुक्त थे; काल-भेद सूचित करने के लिए उनका उपयोग बाद में किया जाने लगा।

हित्ती में भारतीय भाषाओं के समान पश्च सम्बन्धक (पोस्ट पोज़ीशन) होते हैं, पूर्व सम्बन्धक (प्रिपोज़ीशन) नहीं। यह तथ्य हित्ती को दृढ़तापूर्वक भारतीय भाषाओं से सम्बद्ध करता है और यूरुप की भाषाओं से उसे विलग करता है। पश्च सम्बन्धकों के अनुरूप कारक-चिन्ह भी मूलशब्द के बाद प्रयुक्त होते हैं। सभी शब्दों के साथ एक से

कारक-चिन्ह प्रयुक्त नहीं होते। अनेक कारक-चिन्ह संस्कृत के कारक-चिन्हों से मिलते-जुलते हैं। कर्ता के लिए स्, कर्म के लिए **अन्** (संस्कृत **अम्** का प्रतिरूप), सम्प्रदान के लिए **ए, इ, अइ** (आर्य द्रविड़ परिवारों के सम्प्रदान चिन्ह से मिलता-जुलता है), अपादान के लिए त्स् (संस्कृत का **अत्**), सम्बन्ध कारक के लिए **अस्**, ये समानताएँ आकस्मिक नहीं हैं। सम्बन्ध कारक विशेषण के समान प्रयुक्त होता है, हिन्दी और हित्ती की यह समानता भी आकस्मिक नहीं है। स्टुर्टेवैन्ट ने अपनी पुस्तक (पृष्ठ १०८) में लिखा है कि हित्ती सर्वनामों में **अस्** सर्वनाम सबसे ज्यादा प्रयुक्त होता था। इससे यह स्थापना पुष्ट होती है कि **रामस्** (अथवा **रामः**) जैसे रूपों में मूल शब्द के बाद सर्वनाम चिन्ह जोड़ा गया है। हित्ती में **अस्** के समानान्तर नपुंसक लिंग का एकवचन सर्वनाम-चिन्ह **अत्** है। हित्ती की वाक्य-रचना आर्य भाषाओं से बहुत मिलती-जुलती है। **कुइस्** कि **पअन्त्स** (पवन्त) **एस्त** (कोई भी नहीं गया है), इस वाक्य में **पअन्त्स्** कृदन्त रूप के बाद **अस्** क्रिया का प्रयोग हुआ है। **इस्खिउल् किसन् इयन् एस्दु** (सन्धि इस प्रकार निर्मित हो), यहाँ भी कृदन्त रूप **इयन्** के बाद **अस्** क्रिया का प्रयोग हुआ है। इस तरह की क्रियापद-रचना संस्कृत से भी अधिक आधुनिक आर्य भाषाओं में होती है। आधुनिक आर्य भाषाओं की ऐसी विशेषताएँ अत्यन्त प्राचीन हैं, यह हित्ती के विवेचन से प्रमाणित होता है।

हित्तियों का पड़ोसी एक मितन्नी नाम का गणसमाज था। सम्भव है, **मित्र** (सूर्य) की उपासना करने से इनका नाम **मितन्नी** पड़ा हो। **नी** सम्बन्धसूचक चिन्ह होगा। दूसरी सहस्राब्दी के उत्तरार्द्ध से अक्कादी लिपि में इनसे सम्बन्धित जो दस्तावेज लिखे जाने लगे थे, वे मिलते हैं। कीलाक्षरी लिपि के ये दस्तावेज ईंटों पर अंकित थे और मुख्यतः बोगाज़कोय तथा अल्अमर्ना स्थानों में प्राप्त हुए थे। हित्ती और मितन्नी दोनों के दस्तावेजों से एक बात बहुत स्पष्ट होती है : पश्चिमी एशिया में आर्य और सामी भाषाएँ बोलने वाले समाज निरन्तर एक-दूसरे के सम्पर्क में आ रहे थे। मितन्नी दस्तावेजों में वैदिक देवताओं के नाम हैं, यह तथ्य असंदिग्ध है। ग्रियर्सन के सहयोगी स्टेन कोनोव् ने मितन्नी देवों को १६२१ में भारतीय आर्य देवता घोषित किया था। जो लोग यह मानते रहे थे कि ऋग्वेद की रचना १२०० ईसापूर्व में हुई थी, उनके लिए एक कठिनाई पैदा हुई कि ऋग्वेद की रचना से पहले, भारत में आर्यों के आने से पहले, वैदिक देवताओं की उपासना लघु एशिया में कैसे होने लगी। कुछ विद्वानों ने यह आवश्यक समझा कि आर्य-अभियान सम्बन्धी स्थापनाओं में संशोधन किया जाय; कुछ अन्य विद्वानों ने इस समस्या की ओर से आँखें मूँद लेना उचित समझा।

जर्नल औफ़ द अमेरिकन ओरिएन्टल सोसाइटी (१६६०) में पौल थूनियर ने एक लेख लिखा : **द एर्यन गौड्स औफ़् द मितन्नी ट्रीटीज**। इसमें उन्होंने लिखा कि मितन्नी राजा किक्कुलि ने हित्ती में अश्वारोहण शिक्षा पर जो पुस्तक लिखी, उसमें निस्सन्देह अनेक आर्य देवताओं के नाम थे। इसमें घोड़े के चक्कर लगाने के लिए **वर्तन** शब्द का प्रयोग किया गया था; **ऐक** (एक), **तेर** (तीन), **पंज** (पाँच), **सत्त** (सात), **न** (नौ) आदि संख्यावाचक शब्दों का प्रयोग हुआ था। घोड़े के लिए **अश्व** (अथवा **अस्व**),

ाब्द का प्रयोग हुआ था।

थूनियर ने उसी लेख में आगे बताया है कि १४०० ई० पू० में मितन्नियों और हत्तियों के बीच एक सन्धि हुई थी, उसमें आर्य देवताओं के नाम हैं। इस दस्तावेज की भाषा के बारे में एक दिलचस्प बात यह है कि जो भारतीय स् प्राचीन ईरानी में ह् रूप में ग्रहण होता है, यहाँ वह स् या श् रूप में विद्यमान है। भारतीय देवनाम **नासत्य** अवेस्ता में **नाहथ्य** है किन्तु मितन्नी सन्धि में वह **नशत्तिइअ** है। आर्य लोग ईरान होकर लघु एशिया पहुँचे तो ह् के बदले स् या श् का उच्चारण कैसे करने लगे, और ईरान से होकर भारत आये, तो यहाँ वह उच्चारण-पद्धति कैसे बदल गई? आर्यों का कोई ऐसा समुदाय था जो एकरूप भाषा बोलता था और किसी एक केन्द्र से पूरब-पच्छिम गया था, यह कल्पना छोड़नी होगी। इसके बदले यह मानना होगा कि अनेक गण-समाज थे, उनकी अपनी-अपनी भाषाएँ थीं और वे एक-दूसरे को प्रभावित कर रही थीं।

जर्नल आफ द अमेरिकन ओरिएन्टल सोसाइटी में पी० ई० ड्यूमोन्ट ने एक लेख लिखा था: **इन्डोएर्यन् नेम्स फ्रौम मितन्नी, नूज़ी ऐन्ड सीरियन डौक्यूमेन्ट्स्।** इसमें उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया था कि मितन्नी दस्तावेजों की भाषा प्राचीन ईरानी की अपेक्षा प्राचीन भारतीय अधिक है। शब्दों में आदिस्थानीय स् है जहाँ ईरानी में ह् दिखाई देता है। अवेस्ता के **अस्पो** के बदले यहाँ **अश्व है**। किन्तु भारतीय **ज्** के बदले यहाँ **ज़्** है जैसे कि अवेस्ता में है। पुनः अवेस्ता के समान भारतीय **ऋ** के बदले यहाँ **अर्** है। आदिस्थानीय **व्** के बदले यहाँ **ब्** लिखा जाता है, वह था **व्** ही। कहीं-कहीं आदिस्थानीय **व्** भी है। अधिकांश नाम बहुव्रीहि या तत्पुरुष समास के रूप में हैं; पिता के नाम पर रखे हुए पुत्र के नाम के प्रथम वर्ण को स्वर-वृद्धि द्वारा पुष्ट किया जाता है। ये लोग इन्द्र, वायु, सोम आदि की उपासना करते थे। एक जगह **वसदात** नाम आया है। ड्यूमोन्ट ने लिखा है कि यदि यह नाम **वसुदात** है तो ये लोग **वसु** की पूजा भी करते थे। इसी प्रकार एक नाम **स्वरदात** है जिसका अर्थ स्वर अथवा स्वर्ग द्वारा प्रदत्त होगा। (**स्वर** का अर्थ देव भी हो सकता है, **स्वरदात** देवदत्त से मिलता-जुलता नाम है।)

कुछ अन्य नामों की व्याख्या ड्यूमोन्ट के अनुसार इस प्रकार है: **बीरसेन**—वीरों की सेनावाला; **उरु दीति**—विशद प्रकाश वाला; **बिरिदाश्व**—बहुत से घोड़ों वाला; **बीर्यशुर**—वीरता वाला शूर; **बायव**—वायुपुत्र; **अर्तदाम** (अर्थात् ऋतधाम) दैवी नियमों का पालन करने वाला; **अर्तमन्य**—दैवी नियमों को मानने वाला (ऋतमन्य); **सम्माल**—सुन्दर मालाओं सहित; **सौमती**—सुमती का पुत्र; **कल्मशूर**—कर्मशूर; **क्षैमशूर**—क्षेमशूर; **बीर्यसौम** (वीर्यसोम)—वीर्यवान् सोमदेव; **पुर्दाय** (पुरुदाय)—बहुत देने वाला; **रुसमन्य** (रुचिमन्य)—प्रकाशपूजक।

हो सकता है, कुछ नामों की व्याख्या सही न हो, पर अब ऐसे विद्वान् काफी संख्या में हैं जो यह मानते हैं कि ये देवता भारतीय उद्भव के थे, इनके नाम ही नहीं, मनुष्यों के नामकरण की पद्धति भी भारतीय है। ये दस्तावेज १४०० ई० पू० के हैं।

स्पष्ट है ऋग्वेद का रचनाकाल १२०० ई० पू० से बहुत पहले होना चाहिए ।

तुखारी भाषा के दस्तावेज हित्ती दस्तावेजों से बहुत बाद के हैं किन्तु इस भाषा का व्यवहार-क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से भारत के बहुत निकट है । ये दस्तावेज चीनी तुर्किस्तान में प्राप्त हुए थे और इनका समय छठी से दसवीं ईस्वी शताब्दी तक है । अरबों ने जब भारत पर आक्रमण किया था, तब भारत के उत्तर में तुखारी भाषा का व्यवहार हो रहा था जो हित्ती के समान प्राचीनता के लक्षणों से सम्पन्न है । जैसे लघु एशिया में आर्य और सामी भाषाएँ बोलने वालों का सम्पर्क बहुत साफ दिखाई देता है, वैसे ही चीनी तुर्किस्तान में आर्य और नाग भाषाएँ बोलने वालों का सम्पर्क भी साफ दिखाई देता है । चीनी तुर्किस्तान में प्राचीन लक्षणों वाली एक आर्य भाषा के केन्द्र होने का अर्थ है आर्य भाषा का तुर्क-मंगोल समुदाय से सम्पर्क होना । एक ओर सामी परिवार, दूसरी ओर तुर्क-मंगोल, इनके बीच में आर्य, द्रविड़, नाग —बृहत्तर भाषाई परिवेश में भाषा-परिवारों के निर्माण और विकास का अध्ययन करना क्यों जरूरी है, उक्त स्थिति को ध्यान में रखने से ज्ञात होगा ।

लैंग्वेज (खण्ड ९, १९३३) में वाल्टर पीटर्सन ने हित्ती और तुखारी भाषाओं पर एक लेख लिखा था और उसमें उन्होंने इन दोनों भाषाओं के कुछ सामान्य लक्षणों की चर्चा की थी । दोनों भाषाओं में महाप्राणता का अभाव है । हित्ती में सम्भवत: **ख्** ध्वनि थी, यह पहले कहा जा चुका है । हित्ती में सघोषता की भूमिका संदिग्ध हो सकती है पर यहाँ सन्देह की गुंजाइश नहीं है; सर्वत्र अघोष अवरोधी ध्वनियों का ही व्यवहार होता है । तालव्य **क्** का व्यवहार यहाँ भी नहीं होता । भाषाविज्ञानी जिन शब्दों में तालव्य क-वर्गीय ध्वनियाँ मानते हैं, उनमें यहाँ सामान्य क-वर्गीय ध्वनियाँ ही हैं । हित्ती से भिन्न तुखारी में **च्** ध्वनि का व्यवहार होता है यद्यपि यह **च्** बहुधा भारतीय **त्** के स्थान पर प्रयुक्त होता है । हित्ती से भिन्न तुखारी में तालव्य नासिक्य ध्वनि भी है । बहुत जगह यह भारतीय **न्** के स्थान पर प्रयुक्त होती है और शब्द के आदि स्थान पर भी उसका व्यवहार होता है । इससे यह धारणा पुष्ट होती है कि तालव्य नासिक्य ध्वनि का प्रसार-केन्द्र नागभाषा क्षेत्र रहा है । कुछ शब्दों में **स्** ध्वनि **ष्** में परिवर्तित दिखाई देती है । ऐसा परिवर्तन हित्ती में भी है ।

तुखारी में दो बोलियाँ हैं जो एक-दूसरे से बहुत मिलती-जुलती हैं । नीचे के उदाहरणों में यह बताना आवश्यक नहीं है कि तुखारी शब्द **ए** बोली का है या **बी** बोली का । पहले हम संस्कृत रूप देते हैं, उसके बाद तुखारी : **भरति—ऱ्तर्** (ले जाया जाता है); **बाहु—पोके; भ्रातर्—प्रचर्; भाल—स्पाल; वात—वन्त्; दुहितर्—च्काचर्; रुधिर—तर्र; ज्ञान—क्नान** (तू जानता है); **चक्र—कुकल्** (गाड़ी); **वाक्—वक्; अक्षि—अक्** (आँख); **पिंशति—पिकिञ्च्** (उन्होंने लिखा, चित्र बनाया); **दश—शक्; जम्भ—कम्** (दाँत); **पचति—पक्** (पकाता है); **भाग—पाक्; गोत्र—कोतर्** (गाय बाँधने का स्थान, परिवार) । कुछ शब्द ऐसे हैं जो हित्ती और तुखारी में बहुत मिलते-जुलते हैं जैसे संस्कृत **भर्ग** का हित्ती प्रतिरूप **खर्किस्**, तुखारी **आर्कि** (श्वेत) है । कुछ शब्द यूरुप की भाषाओं से मिलते-जुलते हैं जैसे दूध के लिए **मल्के**,

अंग्रेज़ी **मिल्क** की तरह। ऊपर के उदाहरणों में **भाल** का प्रतिरूप **स्पाल्** है, यहाँ अतिरिक्त **स्** जोड़ा गया है। **वन्** क्रिया से तुखारी **वन्त्** (वायु) शब्द बना है जिसका हित्ती प्रतिरूप **ख़ुवन्तिस्** हैं; तहाँ **ख़ु** उपसर्ग है, मूल शब्द कृदन्त प्रक्रिया से बना है अंग्रेज़ी **विन्ड्** के समान। **पोक्के** (बाहु) जैसे रूप उस समय के हैं जब आर्य गण भाषाओं की मध्यवर्ती सघोष महाप्राण ध्वनियाँ **ह्** में परिवर्तित न होने लगी थीं। **कुकल्** (चक्र) उस समय की उपलब्धि है जिस समय कुछ आर्य भाषाओं में, **च्** ध्वनि का विकास न हुआ था। **च्काचर्** (दुहितर्) रूप **त्** को **च्** में परिवर्तित दिखलाता है और **प्रचर्** (भ्रातर्), **पिकिञ्च्** (लिखा है) के समान, **त्—च्** ध्वनि-परिवर्तन का व्यापक प्रभाव सूचित करता है। हिन्दी **पकना** के समान यहाँ भी **पक्** क्रिया है। **रुधिर, ज्ञान** आदि के **तर्, क्नान** जैसे प्रतिरूपों में वर्ण-संकोच की प्रवृत्ति दिखाई देती है। **पिकिञ्च्** जैसे रूपों में तालव्य **श्**, **क्** रूप में ग्रहण किया गया है। बोलने का अर्थ देने वाली हित्ती **मेमे** क्रिया यहाँ **वेञ** रूप में मिलती है। **वेञ** में मूल क्रिया की आवृत्ति हुई है, यह हित्ती रूप से जाना जाता है। तुखारी रूप में प्रथम **म्**, **व्** में परिवर्तित हुआ है, और दूसरा **म्**, **ञ्** में। अनेक शब्दों में आदिस्थानीय **न्**, **ञ्** में परिवर्तित होता है यथा **नाम** का प्रतिरूप **ञोम्** है। **दारु** का प्रतिरूप **तरु** तुखारी और संस्कृत दोनों में है किन्तु **धाम** का प्रतिरूप संस्कृत में **दम** तो है पर तुखारी के समान **तम्** नहीं है। तुखारी की एक बोली में **तम्** रूप है, दूसरी में **तेम्** अथवा **तॅम्**। ऐसे वैकल्पिक रूपों से सिद्ध होता है कि तुखारी पर एकारवादी प्रवृत्ति का आंशिक प्रभाव ही है। संस्कृत क्रिया **अंचति** (मुड़ता है, चलता है) के दो प्रतिरूप हैं **अञ्चॅल्** और **अङ्कर्**। यहाँ **च्** और **क्** वाले रूप घुलते-मिलते दिखाई देते हैं। अकार-एकार के समान एकार-ओकार का विकल्प भी दिखाई देता है यथा **ञेम्** (नाम), **ञोम्**। **नव** का प्रतिरूप **ञु** तालव्य नासिक्य के व्यापक व्यवहार का प्रमाण है। संस्कृत **ज्ञान** का **ज्ञा** स्वयं वर्णसंकोचन का उदाहरण है; तुखारी **क्ना** ग्रीक जर्मन आदि में वर्ण-संकोच वाले इस गोत्र के शब्दों का प्रतिनिधि है। संस्कृत **गम्** का तुखारी प्रतिरूप **कम्** जर्मन अंग्रेज़ी आदि के **कोमॅन्, कम्** (आना) के विकास की कथा कहता है। इसी प्रकार संस्कृत **गो** के तुखारी प्रतिरूपों **को, कउ** से अंग्रेज़ी **काउ** की व्याख्या होती है। उत्तर-पश्चिमी बोलियों के समान तुखारी में बहुत जगह संस्कृत **र्** के स्थान पर **ल्** का व्यवहार हुआ है यथा **मूर्धन्** का तुखारी प्रतिरूप **मल्तो** है।

लैटिन के विपरीत हित्ती और तुखारी दोनों में संस्कृत **पंच** के प्रतिरूप **प्** ध्वनि वाले हैं। हित्ती **पंत** संस्कृत रूप से मिलता-जुलता है। तुखारी की एक बोली में **पेञ्** रूप है दूसरी में **मिस्** जिससे सिद्ध होता है कि ये संख्यावाचक रूप उस क्रियामूल से बने हैं जिसका अर्थ करना है और जिससे **पाणि** शब्द बना है। तुखारी में संस्कृत **छाया** का प्रतिरूप **स्कियो** है। मूल रूप **शाया** माना जाय तो यहाँ **श्**, **स्क्** में परिवर्तित होता दिखाई देगा। तुखारी में एक दिलचस्प शब्द है **लस्तर्न** जिसका अर्थ है तुम रख रहे हो। जो शब्द हाथ से सम्बन्धित हैं, उनका एक अर्थ रखना भी होता है। तुखारी रूप में क्रियामूल **लस्** है जो स्पष्ट ही पश्तो **लस** के समान संस्कृत **दश** का प्रतिरूप है और

उसका सम्बन्ध हस्त के मूलरूप **धस्त** की **धस्** क्रिया से है। अनेक आर्य-द्रविड़ भाषाओं के समान यहाँ दन्त्य अवरोधी ध्वनि **द्** पार्श्विक **ल्** में परिवर्तित हुई है।

लैंग्वेज पत्रिका (अप्रैल-जून, १९६२) में वर्नर विन्टर ने तुखारी भाषा के संज्ञा सर्वनाम द्विवचन रूपों पर विचार किया है। उसमें उन्होंने **लस्लन्** रूप के सकार के ऊपर अर्धचन्द्र लगाकर उसके तालव्य होने की सूचना दी है। अन्य लेखकों ने भी तुखारी में दो तरह के सकार चिन्ह दिखाये हैं। यदि तुखारी में यह भेद था तो मानना होगा कि कुछ रूपों में भारतीय **श्** के बदले **क्** है और कुछ में मूल तालव्य ध्वनि सुरक्षित है। इस स्थिति में **दश** का **द** ही परिवर्तित हुआ, **श्** सुरक्षित रहा।

भिन्न लेखकों ने तुखारी के जो शब्द अपने लेखों, पुस्तकों आदि में दिये हैं, उनमें कहीं-कहीं भिन्नता है। पीटर्सन वाले लेख में **चक्र** का प्रतिरूप **कुकल्** है किन्तु विन्टर के लेख में **चाक्कर्** या **चक्कर्** रूप है। **मित्र** के प्रतिरूप **मित्तर्** में **चक्कर** की तरह **क्** और **र्** संयुक्त व्यंजनों को अलग किया गया है। विन्टर ने एक शब्द **लक्शाम्** दिया है जिसका अर्थ लक्षण या चिन्ह है। यहाँ संस्कृत **क्ष्** लगभग अपने मूल रूप में विद्यमान है, केवल मूर्धन्य **ष्** के स्थान पर तालव्य **श्** का व्यवहार हुआ है। संस्कृत **षष्** (छह) का तुखारी प्रतिरूप **श्कास्** बताया गया है। मेरी समझ में यह **स्कस्** होगा जहाँ मूर्धन्य **ष्** तालव्य **श्** वत् ग्रहण किये जाने के बाद **स्क्** में परिवर्तित हुआ है। तुखारी **पेते** (देना) क्रिया में **पाणि** और **पंच** की आधारभूत क्रिया है। तुखारी **अस्तरे** (प्रकाशमान) में आर्य-द्रविड़ भाषाओं की **तर्** (चमकना) क्रिया है जो **तारा**, अंग्रेजी **स्टार** आदि में विद्यमान है। इसी अर्थ का सूचक एक शब्द **पेर्ने** है जिसमें **पेर्** क्रियामूल अग्नि और प्रभात का अर्थ देने वाले अनेक हिन्दी-तुखारी-ग्रीक शब्दों में विद्यमान हैं। संस्कृत में सर्वनाम रूप **नः** केवल बहुवचन में प्रयुक्त होता है किन्तु तुखारी में **नस्** एकवचन है। तुखारी में बहुत से शब्द हित्ती से मिलते-जुलते हैं और बहुत से संस्कृत तथा आधुनिक आर्य भाषाओं से। **उसाश्शे** का अर्थ है स्वर्णिम और यह स्पष्ट ही **उषा** से सम्बद्ध है। **ञाक्चिये** का अर्थ है स्वर्गीय और यहाँ **नाक** शब्द का **न्**, **ञ्** में परिवर्तित हुआ है। **पइये** (पैर) में **पो** गोत्र वाली क्रिया है। **असाम्** **आसन** का प्रतिरूप है। **इन्द्रि** सुपरिचित **इन्द्रिय** है। **क्लेश्** भारतीय भाषाओं का क्लेश है, **मिस** आर्य भाषाओं का **आमिष** है।

तुखारी भाषा की एक विशेषता संज्ञा, सर्वनाम शब्दों के द्विवचन रूपों का प्रयोग है। जिस समय भारत के उत्तर में इस भाषा का व्यवहार हो रहा था, उस समय भारत के भीतर द्विवचन का प्रयोग आर्य भाषाओं में समाप्त हो गया था किन्तु कोल भाषाओं में वह अब भी होता है। इससे इन उत्तरी भाषाओं पर कोल भाषा समुदाय के प्रभाव का पता चलता है। अन्य आर्य भाषाओं के समान तुखारी में सम्बन्धक मूल-शब्द के बाद आते हैं। **वेसञ्‌ ञाके शर् नेने केकमु नेस्त्** (हमारे हाथों में तुम आये हो अब)—यहाँ **जगाम** के समान **केकमु** में क्रिया की आवृत्ति की गई है। इसी प्रकार **वेवेञ्‌ु** (कहा गया) में **वे** (मूल रूप **मे**) की आवृत्ति हुई है। ऐसी आवृत्ति कोल भाषाओं में भी होती है।

चीनी तुर्किस्तान में तुखारी भाषा का व्यवहार होता था, इसी प्रदेश में एक भारतीय प्राकृत का व्यवहार भी होता था जिसके दस्तावेज खरोष्ठी लिपि में हैं। तुखारी भाषा के दस्तावेज छठी से दसवीं शताब्दी के हैं, खरोष्ठी लिपिवाले दस्तावेज उससे पहले तीसरी शताब्दी के हैं। दस्तावेजों के इस काल-भेद से यह सिद्ध नहीं होता कि तुखारी की अपेक्षा यह प्राकृत अधिक प्राचीन है। यह अवश्य सिद्ध होता है कि प्राचीन लक्षणों वाली तुखारी भाषा तीसरी शताब्दी से पहले की है, भले ही उसमें लिखा हुआ कोई और पुराना दस्तावेज सुलभ न हो। अन्य भारतीय प्राकृतों के समान यह प्राकृत भी शब्द-भण्डार और व्याकरण में अधिकतर संस्कृत का अनुकरण करती है, यद्यपि इसमें कुछ विशेषताएँ आधुनिक भाषाओं की हैं। यह तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि चीनी तुर्किस्तान में जब तुखारी का व्यवहार हो रहा था, उससे बहुत पहले वहाँ एक भारतीय प्राकृत का व्यवहार हो चुका था। तुखारी के दस्तावेज छठी शताब्दी से शुरू होते हैं। ३०० साल पहले खरोष्ठी लिपि में वहाँ एक भारतीय प्राकृत का व्यवहार हो चुका है। लगभग ८०० वर्ष तक मध्यएशिया के एक क्षेत्र में उन भाषाओं का धार्मिक-राजनीतिक कार्यों के लिए प्रयोग होता रहा जिनका गहरा सम्बन्ध भारत से है। भाषा-विज्ञानी तुखारी को इन्डोयूरोपियन समुदाय के पूर्वी छोर की अभारतीय भाषा मानते हैं किन्तु उक्त प्राकृत को उन्हें भारतीय मानना ही पड़ता है। यदि तीसरी शताब्दी में एक भारतीय भाषा का व्यवहार चीनी तुर्किस्तान में होता है, तो सम्भावना इसी की है कि छठी शताब्दी में वहाँ जिस तुखारी भाषा का व्यवहार हुआ, वह भारतीय उद्भव की भाषा थी। दोनों भाषाओं का व्यवहार करने वाले बौद्ध थे। भारत से सम्पर्क में आये बिना चीनी तुर्किस्तान के निवासियों को बौद्ध धर्म की प्राप्ति न हो सकती थी। गौतम बुद्ध के जन्म के बाद इस तरह का सम्पर्क था, इसमें तो सन्देह ही नहीं है, उनके जन्म से पहले भी यह सम्पर्क था, इसके अनेक लक्षण हैं।

इनमें सबसे महत्वपूर्ण लक्षण तुखारी और खरोष्ठी प्राकृत में सघोषता और महाप्राणता का अभाव है। इसका कारण नाग-द्रविड़ प्रभाव ही हो सकता है। तुखारी और खरोष्ठी के इस लक्षण से हित्ती ध्वनितन्त्र की तुलना करने पर उस विशद भाषाई परिवेश का ज्ञान होता है जिसमें २००० ई० पू० से लेकर सन् १००० तक—तीन हजार वर्षों की दीर्घ सुनिश्चित अवधि में—इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं का निर्माण होता रहा था। हित्ती का जन्म इन्डोहित्ताइत से हुआ, इन्डोहित्ताइत से एक शाखा इन्डोयूरोपियन फूटी, आदि आदि स्थापनाएँ प्रस्तुत करते समय उक्त भाषाई परिवेश को ध्यान में रखना उचित है।

५

स्लाव-केल्त भाषा-समुदाय और भारत

१. प्राचीन भाषाई मानचित्र और स्लाव-केल्त समुदाय

इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाएँ वैदिक काल के आस-पास जितने क्षेत्र में फैली थीं, उसमें इनके चार समुदाय प्रमुख थे : पहला भारतीय, दूसरा ईरानी, तीसरा स्लाव और चौथा केल्त। भारतीय भाषा समुदाय मगध से लेकर कश्मीर और उत्तर पश्चिमी सीमान्त तक फैला हुआ था। जहाँ तुखारी भाषा का व्यवहार होता था, वह मध्य एशिया का भाग है। तुखारी भाषा के अभिलेख बहुत बाद के हैं किन्तु इस भाषा में प्राचीन आर्य भाषाओं के लक्षण माने गए हैं, इसलिए यह मानना चाहिए कि वैदिक काल में ही नहीं, उससे पहले भी मध्य एशिया में तुखारी की आधारभूत भारतीय आर्य भाषाओं का व्यवहार होता था। उधर पश्चिमी एशिया में दूसरी सहस्राब्दी ईसापूर्व के आरम्भ में भारतीय मूल की हित्ती भाषा का व्यवहार हो रहा था। इस प्रकार उत्तर भारत तथा मध्य और पश्चिमी एशिया के अनेक भागों में भारतीय आर्य भाषाओं का व्यवहार होता था। ये आर्य भाषाएँ अनेक समुदायों की थीं, उनके ध्वनितन्त्र, शब्दतन्त्र और विन्यासतन्त्र में अनेक भेद थे। फिर भी उनमें इतनी समानताएँ थीं कि उन्हें एक ही विशाल भारतीय भाषा-समवाय के अन्तर्गत माना जा सके।

दूसरा विभाग ईरानी भाषा समुदाय का है। इसका मुख्य केन्द्र ईरान है किन्तु इस समुदाय की भाषाएँ एक ओर मध्य एशिया में चीन की सीमाओं तक फैली हुई हैं, दूसरी ओर दक्खिनी रूस की सीमाओं को छूती हैं। भारत और ईरानी भाषा समुदाय एक दूसरे के बहुत निकट हैं। फ्रान्सिसी भाषाविद् मेइये का मत था कि ईरानी और भारतीय आर्य भाषाएँ एक दूसरे से घनिष्ठ रूप में अत्यन्त संगत ढँग से इस तरह सम्बद्ध हैं जिस तरह अन्य कोई इन्डोयूरोपियन भाषा इनसे सम्बद्ध नहीं है। (देखें अन्त्वान मेइये **दि इन्डोयूरोपियन डायलॅक्ट्स्**; फ्रान्सिसी से अंग्रेज़ी में रोज़नबर्ग द्वारा अनुवादित; १९६७, पृष्ठ ४३)। बरो संस्कृत भाषा पर अपने ग्रन्थ में प्राचीन ईरानी भाषा के लिए कहते हैं कि वेद की भाषा से यह इतना मिलती-जुलती है कि इनमें किसी एक का अध्ययन दूसरी का भी अध्ययन किये बिना सन्तोषजनक हो नहीं सकता; व्याकरण की दृष्टि से भिन्नता बहुत ही कम है और दोनों का अधिकांश शब्द-भण्डार सामान्य है, दोनों में काफ़ी ऐसे शब्द हैं जो अन्य आर्य भाषाओं में नहीं हैं। बरो कहते हैं कि अवेस्ता के प्राचीनतम अंश में ऐसे छन्द ढूँढ़ निकालना बिल्कुल सम्भव है जिनकी भाषा को निश्चित नियमों के अनुसार, थोड़े से ध्वनि-परिवर्तनों के बाद, बोधगम्य संस्कृत में बदला

जा सकता है। इस प्रकार प्राचीनकाल में ईरानी और भारतीय आर्य भाषाओं में ध्वनितन्त्रीय भेद है, शब्द भण्डार और व्याकरण की दृष्टि से वे प्रायः एक ही भाषा हैं। यदि ईरानी और भारतीय आर्य भाषा क्षेत्रों को मिला दिया जाय तो विदित होगा कि इन्डोयूरोपियन परिवार के भाषा क्षेत्र का आधे से अधिक भाग ऐसा था जिसमें दो बहुत घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध भाषा समुदाय बोले जाते थे। इन दो समुदायों की जो दो प्राचीनतम भाषाएँ उपलब्ध हैं, वे व्याकरण और शब्द भण्डार की दृष्टि से प्रायः एक हैं। इन्डोयूरोपियन परिवार के निर्माण में भारतीय आर्य भाषा समुदाय की भूमिका समझने के लिए प्राचीनकाल का यह भाषाई भूगोल याद रखना चाहिए।

प्राचीन ईरानी और वैदिक भाषाओं में ध्वनितन्त्रीय भेद हैं। इन भेदों के अध्ययन से पता चलता है कि अवेस्ता में मूल रूप नहीं हैं; परिवर्तित रूप हैं। मूल रूप वैदिक भाषा में हैं या फिर वे दोनों भाषाओं में बदल गए हैं। स्-ह् वाले परिवर्तन बहुत स्पष्ट बता देते हैं कि मूल रूप कहाँ से आये हैं और परिवर्तित रूप किस भाषा में हैं: **सेना—हएना, असुर—अहुर, सोम—हओम** आदि रूपों में स् वाले रूप मूल हैं; जहाँ ह् ध्वनि है, वे परिवर्तित रूप हैं। स् ध्वनि वाले शब्द ह् क्षेत्र में गए हैं, ह् ध्वनि भारतीय क्षेत्र में आकर इन शब्दों में स् नहीं बन गई। अवेस्ता के बाद भी पहलवी, फ़ारसी तथा ईरानी क्षेत्र की अन्य भाषाएँ भारतीय आर्य भाषाओं के घनिष्ठ सम्पर्क से विकसित होती रही हैं। भारत-ईरानी शाखा में भारतीय और ईरानी दोनों समुदायों का महत्व एक-सा नहीं है; निर्णायक महत्व भारतीय भाषा-समुदाय का है।

यूरुप की भाषाओं में प्राचीनतम अभिलेख ग्रीक भाषा-समुदाय के हैं। यह ग्रीक भाषा भारतीय ईरानी धुरी से दृढ़तापूर्वक जुड़ी हुई है। मेइये ने ग्रीक भाषाओं की क्रियापद-रचना का विवेचन करते हुए बताया है कि इन दोनों में कुछ समानताएँ ऐसी हैं, जैसे परोक्षभूत में धातु के प्रथम व्यंजन की आवृत्ति, जो अन्य इन्डोयूरोपियन भाषाओं में नहीं है। बरो ने और भी स्पष्ट कहा है कि ग्रीक भाषा का सम्बन्ध केन्तुम् अर्थात् पश्चिमी भाषा-समुदाय से नहीं के बराबर है किन्तु शतम् समुदाय से उसका गहरा सम्बन्ध है विशेषकर भारत-ईरानी और आर्मीनियन शाखाओं से। वह कहते हैं कि तुलनात्मक व्याकरण पर दृष्टिपात करते ही पता चल जाता है कि ग्रीक और संस्कृत में जितनी समानताएँ हैं, उतनी भारत-ईरानी शाखा के बाहर ग्रीक तथा किसी अन्य भाषा में नहीं हैं। इसका अर्थ यह है कि ग्रीक भाषा, व्याकरण की दृष्टि से, जितना संस्कृत से मिलती है, उतना यूरुप की किसी अन्य भाषा से नहीं मिलती। भारतीय और ईरानी भाषाओं में ध्वनितन्त्र का भेद है; प्राचीनकाल में उपलब्ध इन भाषाओं का व्याकरण प्रायः एक है। ग्रीक और भारतीय भाषाओं में भी ध्वनितन्त्रीय भेद है किन्तु व्याकरण में बहुत बड़ी समानता है। संरचना की दृष्टि से ग्रीक भाषा-समुदाय भारतीय आर्य भाषाओं से अभिन्न रूप में जुड़ा हुआ है। इन्डोयूरोपियन परिवार में भारतीय-ईरानी-ग्रीक समुदाय का केन्द्रीय महत्व स्पष्ट हो जाता है।

इस अध्याय के आरम्भ में जिन चार विशाल समुदायों की बात कही गई है, उनमें तीसरा है स्लाव। यूरुप के बाल्तिक प्रदेशों में रहने वाले स्लाव जनों से सम्बद्ध

हैं। भाषाविज्ञानी बाल्तिक-स्लाव समुदाय की बात करते हैं। दोनों को ही स्लाव कहा जाय तो अनुचित नहीं है। स्लाव जन मध्य एशिया में फैले हुए हैं, रूस की भूमि उनका मुख्य केन्द्र है, मध्य और पश्चिमी यूरुप के विशाल भागों में ये रहते रहे हैं। पूर्वी जर्मनी का वह भाग जो प्रुशिया कहलाता है, १७वीं सदी तक स्लाव (बाल्तिक विभाग) भाषा-भाषी था। यह सम्भव है कि जर्मनी के अन्य भागों में भी स्लावजन रहते रहे हों। मारियो पेइ ने अपनी पुस्तक **लेंग्वेज् फ़ौर् अंब्रीबौडी** (१९६५) में लिखा है : "एक समय एल्ब नदी के पूर्व का लगभग समस्त जर्मनी स्लावभाषी था; इसका पता इस बात से चलता है कि पूर्वी जर्मनी के बहुत से नगरों के नाम स्लाव स्रोत के हैं और इन नगरों में स्वयं बर्लिन नगर भी है।" (पृष्ठ १४४)। इस प्रकार स्लावजन एशिया और यूरुप के विशाल भागों में फैले हुए थे। भारत-ईरानी समुदाय से इनका विशिष्ट सम्बन्ध है, यह हम अभी देखेंगे।

चौथा समुदाय केल्त जनों का है। ये अब आयर्लैण्ड, स्काटलैण्ड और वेल्स में सिमट आये हैं। कुछ बस्तियाँ फ्रान्स में हैं। किसी समय ये इटली, फ्रान्स और स्पेन के विशाल भागों में फैले हुए थे। मारियो पेइ के अनुसार पश्चिमी एशिया (लघु एशिया) और दक्खिनी रूस में भी कभी ये फैले हुए थे। उन्होंने लिखा है : "स्थानों के केल्त नाम न केवल इंग्लैन्ड और आयर्लैन्ड में हैं, फ्रान्स, स्पेन और उत्तरी इटली में हैं, वरन् रूस, लघु एशिया और दैन्यूब नदी की तट भूमि में हैं।" (पृष्ठ १४४)। भारत-ईरानी शाखा से इनका कोई विशिष्ट सम्बन्ध होगा, कोई नहीं कहता। किन्तु ऐसा सम्बन्ध था। इन्डोयूरोपियन भाषातन्त्र की कुछ समस्याएँ केल्त समुदाय के विवेचन से सुलझाई जा सकती हैं।

केल्त भाषाओं से भारत-ईरानी शाखा का सम्बन्ध चाहे जिस कोटि का हो, बाल्तिक-स्लाव भाषाओं से इस शाखा के सम्बन्ध के बारे में अनेक भाषाविज्ञानियों को शंका नहीं है; विद्वानों ने स्लाव और ईरानी शब्द-भण्डार की समानता पर विशेष ध्यान दिया है। मेइये ने उक्त ग्रन्थ में कहा है : "जितना ही शब्द-भण्डार की इन समानताओं पर हम ध्यानपूर्वक विचार करते हैं, उतना ही भारत-ईरानी, बाल्तिक और स्लाव शब्द-भण्डारों का निकट सम्बन्ध और भी स्पष्ट हो जाता है।"(पृष्ठ १६०)। मेइये ने पुरानी स्लाव धर्म-भाषा (अर्थात् पुरानी बुल्गारियन भाषा) तथा ईरानी भाषाओं से अनेक सामान्य शब्द देकर स्लाव और ईरानी भाषाओं के विशेष सम्बन्ध पर ज़ोर दिया है। सभ्यता और संस्कृति से सम्बद्ध शब्दावली की परीक्षा करने के बाद उन्होंने लिखा है : "भारत-ईरानी, बाल्तिक और स्लाव भाषाओं में इन्डोयूरोपियन के एक ही विभाग की शब्दावली का प्रसार है।" (पृष्ठ १५८)। सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से भारत-ईरानी और बाल्तिक स्लाव भाषा-समुदाय एक ही वृत्त में आते हैं। यह वृत्त इन्डोयूरोपियन भाषाक्षेत्र का बहुत बड़ा भाग है।

बरो यह मानते हैं कि शतम् समुदाय में भारत-ईरानी शाखा की स्थिति प्राचीन काल में क्या थी, यह ठीक निश्चित करना सम्भव नहीं है। किन्तु वह मानते हैं कि किसी समय भारत-ईरानी तथा उन इन्डोयूरोपियन बोलियों में स्पष्ट ही विशेष सम्बन्ध था

जो आगे चलकर बाल्तिक और स्लाव भाषाओं के रूप में विकसित हुईं। बरो ने दोनों समुदायों की कुछ व्याकरणगत समानताओं का उल्लेख किया है। जैसे संस्कृत में **माता**, कर्ता रूप में, र्-विहीन है, वैसे ही लिथुआनियन में **मोते** और पुरानी स्लाव में **मति** रूप हैं। अधिकरणकारक के बहुवचन में **सु** प्रत्यय का व्यवहार केवल इन दो समुदायों में होता है : संस्कृत **वृक्षेषु**, पुरानी स्लाव **व्लुचेछु**; ग्रीक भाषा में **सि** प्रत्यय है। द्विवचन रूपों में ऐसी समानताएँ हैं जो अन्यत्र नहीं मिलतीं : कर्ताकारक में संस्कृत **बाले, युगे, नामनी, मनसी, अक्षी, सूनू** के अनुरूप पुरानी स्लाव में **भ्ऱ्ने, इभ्ऱे, इमेनि, तेलेसि, ओचि** (लिथुआनियन **अकि**), **सिनि** (लिथुआनियन **सूनू**) रूप हैं; सम्बन्ध और सम्प्रदानकारकों में द्विवचन रूप संस्कृत **तयोः, द्वयोः** की तरह पुरानी स्लाव में **तोयु, द्वोयु** रूप हैं। स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों के एकवचन आकारान्त रूपों में ऐसा ही विकास दिखाई देता है, यथा करणकारक में संस्कृत **तया, सेनया**, पुरानी स्लाव में **तोयो, रोकोयो**; अधिकरण में संस्कृत **सेनायाम्**, अवेस्ता **हृयेनय**, लिथुआनियन **रंकोये**। इकारान्त-उकारान्त शब्दों की रूप-रचना में ऐसी ही समानता है, जैसे सम्प्रदानकारक का एकवचन रूप संस्कृत में **सूनवे** है, पुरानी स्लाव में **सिनोवि**।

सर्वनामों और विशेषकों में अनेक समानताएँ हैं। व्यक्तिवाचक उत्तम पुरुष सर्वनाम का कर्ता रूप संस्कृत में **अहम्**, पुरानी स्लाव में **अज़ु** है; करणकारक में संस्कृत **माम्**, पुरानी स्लाव में **मे**, सम्बन्धकारक में संस्कृत **मम** से भिन्न अवेस्ता **मन**, पुरानी स्लाव में **मॅनॅ** है। इसी प्रकार निर्देशक सर्वनामों में **तस्मै** जैसे रूप से पुरानी प्रुशियन के **कस्मु, स्तेस्मु**, पुरानी स्लाव के **तोमु** रूप मिलते हैं। स्त्रीलिंग में संस्कृत **तस्यै** से पुरानी प्रुशियन का **स्तेस्सियेइ** मिलता है। प्रश्नवाचक सर्वनामों में संस्कृत के समान **क्** ध्वनि वाले रूप हैं। कुछ सर्वनाम-मूल सामान्य हैं यथा अवेस्ता का **अव** पुरानी स्लाव में **ऑवु** है [**अव** सर्वनाम वैदिक भाषा में भी है और **अयम्** का प्रतिरूप है; तमिल **अवन्** में यही **अव** है]; संस्कृत और अवेस्ता का **अन** लिथुआनियन में **अनस्** और पुरानी स्लाव में **ऑनु** है। अनेक विशेषक मिलते-जुलते हैं : संस्कृत **कुह**, अवेस्ता **कुदा** (कहाँ), पुरानी स्लाव में **कुदॅ**, संस्कृत **कदा** (कब) **तदा** (तब), लिथुआनियन **कद, तद**, संस्कृत **न** (समान), लिथुआनियन **नॅइ**, संस्कृत **बहिस्** (बाहर), पुरानी स्लाव में **बॅज़ु** (बिना), संस्कृत **विना**, पुरानी स्लाव में **वुनॅ** (बाहर), पुरानी फ़ारसी में **रादि** (कारण से), पुरानी स्लाव में **रदि**। भविष्यकाल-सूचक **स्य** केवल संस्कृत और लिथुआनियन में असंदिग्ध रूप से मिलता है : संस्कृत **दास्यामि** (मैं दूँगा), लिथुआनियन **दुओसिउ**। दोनों समुदायों में प्रेरणार्थक क्रिया मिलती-जुलती है : संस्कृत **बोधयति** (वह जगाता है), पुरानी स्लाव में **बुज्दॉ, बुदिति**।

बरो कहते हैं कि भारत-ईरानी और बाल्तिक-स्लाव समुदायों में ऐसे काफी शब्द सामान्य हैं जो अन्य समुदायों में नहीं मिलते। इससे इन दोनों समुदायों के प्राचीन सम्बन्धों का ज्ञान होता है। संस्कृत **अजिन** (चर्म) **अजा** से ब ा है और पहले उसका अर्थ था बकरी का चमड़ा। **अजा** का लिथुआनियन प्रतिरूप **ऑझ़िस्** है और पुरानी स्लाव में **अजिन** का प्रतिरूप **अझ़िनु** है। ऐसे अनेक शब्द हैं जिनकी धातु अन्य

इन्डोयूरोपियन भाषाओं में है किन्तु प्रत्यय केवल आर्य स्लाव समुदायों में सामान्य है : संस्कृत **फेन**, लिथुआनियन **स्पइनँ**, संस्कृत **दक्षिण**, पुरानी स्लाव में **दँसिनु**, लिथुआनियन **दँशिनँ**, संस्कृत **ग्रीवा**, पुरानी स्लाव में **ग्रिव** (अयाल), संस्कृत **मज्जन**, पुरानी स्लाव में **मॉझ्दन**, पुरानी प्रुशियन में **मुज्गँनाँ**। संस्कृत **मिश्र** से बिल्कुल मिलता-जुलता रूप केवल लिथुआनियन में है **मिलस्**। जागने के अर्थ में **बुध्** क्रिया का व्यवहार केवल बाल्तिक-स्लाव भाषाओं में होता है। लिखने के लिए ईरानी **पिस्** क्रिया पुरानी स्लाव के **पिसति** रूप में है। बरो ने जो अन्य महत्वपूर्ण सामान्य शब्द दिए हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं : संस्कृत **सव्य** (बायाँ), पुरानी स्लाव में **शुयि**; संस्कृत **र्बाह** (कुशासन), अवेस्ता **बरज्जिश्** (तकिया), स्लाव **ब्लजिन** (उप०); संस्कृत **कृष्ण**, पुरानी प्रुशियन में **किर्सनन्** (काला); संस्कृत **भर** (युद्ध), स्लाव **बॉर्यां** (लड़ना), संस्कृत **ओष्ठ**, स्लाव **उस्त**, प्रुशियन **अउस्तिन्** (मुख); संस्कृत **गिरि**, स्लाव **गोर** (उप०), लिथुआनियन **गिरिअ** (जंगल); संस्कृत **तूष्णीम्** (चुपचाप), प्रुशियन **तुस्नन्**; संस्कृत **तुच्छ्या** (खाली), स्लाव **तुश्ति**, लिथुआनियन **तुश्चिअस्** (उप०); संस्कृत **दधि**, सम्बन्धकारक में **दध्नः**, प्रुशियन **ददन्**; संस्कृत **पयः** (दूध), लिथुआनियन **प्योनस्**; संस्कृत **अंगार**, स्लाव **ऑग्लि**, रूसी **उगोल्**; संस्कृत **ब्रध्न** (पीताभ), स्लाव **ब्रॉनु** (सफ़ेद); संस्कृत **अर्भ** (छोटा, बच्चा), रूसी **रॅब्योनॉक्** (बच्चा); संस्कृत **व्रत**, स्लाव **रॉत** (शपथ); संस्कृत **पांसु** (धूलि), स्लाव **पॅशुकु** (रेत); संस्कृत **धाना** (धान्य), फ़ारसी **दान**, लिथुआनियन **दुऑन** (रोटी), संस्कृत **श्याम**, लिथुआनियन **श्योमस्**; संस्कृत **विश्पति** (गण का नेता), अवेस्ता **वीस्पइति**, लिथुआनियन **विएश्पत्स्** (स्वामी); अवेस्ता **सरत** (शीतल), [संस्कृत **शरद्**], लिथुआनियन **शल्तस्**; संस्कृत **शाक**, लिथुआनियन **शेकस्** (हरा चारा); संस्कृत **शफर**, लिथुआनियन **शपलस्** (एक मछली); संस्कृत **शकुन** (पक्षी), स्लाव **सॉकॉलु** (बाज); संस्कृत **भंग** (लहर), लिथुआनियन **बंग**; संस्कृत **ह्वते** (पुकारता है), स्लाव **ज़ॉवॅतु**; संस्कृत **श्वित्** (चमकना), लिथुआनियन **श्वितेति**, स्लाव **स्वितेति**; संस्कृत **भयते** (डरना), स्लाव **बॉयॉ सॅ**, लिथुआनियन **बियउस्**; संस्कृत **प्रुष्** (छिड़कना), स्लाव **प्रिस्नोति**; संस्कृत **धम्, ध्मा** (हवा फूंकना), स्लाव **दुमॉ, दॉति**, लिथुआनियन **दुमिउ, दुम्ति**; संस्कृत **मुच्** (मुक्त करना), लिथुआनियन **मुक्ति, मुंकु** (छूटना); संस्कृत **गृणाति** (स्तुति करता है), प्रुशियन **गिर्त्वेंइ** (स्तुति करना), लिथुआनियन **गिरिउ, गिर्ति**।

शब्दावली पर बरो की टिप्पणी है कि सामान्य शब्दों और अन्य सामान्य लक्षणों की सूची स्पष्ट ही प्रभावशाली है और इस समानता का सम्बन्ध आदिम भारत-ईरानी काल से है, किन्तु जब हम स्लाव या बाल्तिक भाषा-समुदाय से स्वयं ईरानी के विशेष सम्पर्क के चिन्ह ढूँढ़ते हैं, तो इनका प्रायः पूर्ण अभाव पाते हैं; यह सत्य है कि सूची में कुछ शब्द ऐसे हैं जो केवल ईरानी में हैं और संस्कृत में नहीं हैं पर इस तरह अन्य शब्द बताये जा सकते हैं जो संस्कृत में हैं और ईरानी में नहीं हैं। बरो के अनुसार स्लाव समुदाय में ईरानी से उधार लिए शब्दों को खोजने के प्रयत्न असफल हुए हैं; देवता के लिए पुरानी फ़ारसी के **बग** और पुरानी स्लाव के **बॉगु** में अवश्य समानता है किन्तु ये एक ही मूल शब्द के विकास हो सकते हैं, स्लाव भाषा ने यह शब्द ईरानी से उधार न

लिया होगा। बरो कहते हैं कि शक कबीले बार-बार यूरुप पर हमला करते रहे हैं और दैन्यूब नदी तक की विशाल भूमि पर वर्षों तक अधिकार जमाए रहे हैं, इसलिए स्लाव भाषाओं पर ईरानी प्रभाव का अभाव आश्चर्यजनक है। इस उत्तरकाल में स्लावजन, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप में, ईरानियों से लगभग पूर्णतः अप्रभावित रहे होंगे। दूसरी ओर पूर्वतरकाल में (लगभग २००० ई० पू० में) जब आदिम ईरानियों ने अपनी यूरोपियन आवास भूमि छोड़ी न थी, तब भारत-ईरानीजन और आदि बाल्तिक स्लाव-जन काफी समय तक नजदीकी पड़ोसी रहे होंगे। दोनों समुदायों में जो भी सम्पर्क हुआ, वह इसी काल में हुआ।

बरो की इस टिप्पणी से निष्कर्ष निकलता है कि ईरानी लोग यूरुप में रहते थे, वहाँ से वे ईरान आये। ईरान से वे बार-बार यूरुप पर हमले करते रहे और वहाँ वर्षों तक अधिकार भी जमाये रहे। जब वे यूरुप में थे, तब तो पड़ोसी स्लावजनों को प्रभावित करते रहे, जब ईरान आ गए तब उन पर अधिकार जमा लेने पर भी उन्हें प्रभावित करने की वह क्षमता समाप्त हो गई। किन्तु स्लाव और आर्य भाषाओं में जो समानता है, वह केवल ईरानी-स्लाव समानता नहीं है, वह भारतीय-स्लाव समानता भी है। **बग**, **बॉगु** जैसे सामान्य शब्द मूल भारतीय रूप **भग** के विकास हैं।

आदिम ईरानी और स्लाव भाषाओं में समानता है, इसलिए आदिम ईरानी मूलतः यूरुप के निवासी रहे होंगे, यह कल्पना निराधार है। आदिम स्लावजन मध्य-एशिया में ईरानियों के पड़ोसी रहे हों, यह भी सम्भव है। जो शब्द भारतीय और ईरानी भाषाओं में सामान्य हैं, उनमें मूल रूप अधिकतर भारतीय हैं। संस्कृत **भर**, **दधि**, **व्रध्न**, **अर्भ**, **धाना**, **भंग**, **भयते**, **धम्**, **ध्मा** आदि के बारे में माथापच्ची की जरूरत नहीं है। इनमें सघोष महाप्राण ध्वनियाँ हैं और इस कोटि की ध्वनियाँ न प्राचीन ईरानी में हैं, न पुरानी स्लाव में। संस्कृत **धाना** और फ़ारसी **दान** को बराबर तौलकर बरो ने सब धान बाईस पसेरी कर दिये हैं।

जिसे बरो प्राचीन भारत-ईरानी काल कहते हैं, वह प्राचीन भारतीय काल है। भारतीय शब्द ईरानी और स्लाव दोनों भाषाओं में गए हैं। निस्सन्देह प्राचीन आर्य भाषाओं के बहुत से शब्द संस्कृत में परिवर्तित हो गए हैं किन्तु उनके मूल रूप, भारतीय आर्य भाषाओं के ध्वनितन्त्र पर विचार करने से, भारतीय उद्गम के ही सिद्ध होते हैं। उल्लेखनीय है कि स्वयं बरो के अनुसार अनेक शब्द केवल संस्कृत और स्लाव भाषाओं में सामान्य हैं यथा **अजा**, **अजिन**, **दक्षिण**, **ग्रीवा**, **मिश्र**। ये भारतीय शब्द किसी कल्पित भारत-ईरानी शाखा के नहीं हैं, वे विशुद्ध भारतीय हैं : भविष्यकालिक **दास्यामि** के **दुआॅसिउ** जैसे स्लाव प्रतिरूप प्राचीन भारतीय काल के हैं।

२. स्लाव भाषा-समुदाय

(क) ध्वनितन्त्र

आर्य और स्लाव भाषाओं में तालव्य ध्वनियों की बहुलता है। इन ध्वनियों का प्रसार केन्द्र कहाँ था, इस बारे में अनेक मत हैं। विश्व में भाषाविज्ञान की स्थिति

का सर्वेक्षण करने वाले ग्रन्थ **करेन्ट् ट्रेन्ड्स् इन् लिंग्विस्टिक्स्** के नवें खंड में ओसवाल्ड चेमेरेन्यी ने तुलनात्मक भाषाविज्ञान पर अपने निबन्ध में बताया है कि १९वीं सदी के नव्य वैयाकरण मानते थे कि आदि इन्डोयूरोपियन भाषा में तालव्य ध्वनियाँ विद्यमान थीं जो पश्चिमी भाषाओं में तालव्य अंश छोड़कर कंठ्य ध्वनियाँ बन गईं और पूर्वी भाषाओं में कंठ्य अंश छूट गया और तालव्य अंश का विकास हुआ। चेमेरेन्यी के अनुसार इस कल्पना को अब अमान्य ठहराया गया है। तालव्यीकरण की प्रक्रिया भारत-ईरानी क्षेत्र में पूर्ण हुई है; जितना ही पश्चिम की ओर चलते हैं, उतना ही तालव्य क्षेत्र की भाषाओं में ध्वनिसम्बन्धी अपवाद बढ़ते जाते हैं। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि तालव्य ध्वनियों का विकास-केन्द्र आर्य भाषा क्षेत्र में था। योसेफ श्मिद्त (१९१२) का मत था कि इन्डोयूरोपियन भाषा-क्षेत्र की चरम पूर्वी सीमा से तालव्यीकरण और संघर्षीकरण की लहरें पश्चिम की ओर बढ़ीं और जितना ही आगे बढ़ती गईं, उतना ही उनका वेग कम होता गया। इस पूर्वी सीमा में कुछ लोग ईरान को केन्द्र मानते हैं, कुछ लोग स्लाव क्षेत्र को; अन्य विद्वान् स्लाव और आर्य भाषाओं में तालव्य ध्वनियों का विकास अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से हुआ, यह मानते हैं।

आर्य और स्लाव भाषाएँ परस्पर इतने घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध हैं कि ध्वनि-तन्त्र में समान प्रवृत्तियाँ हों तो उनके विकास को स्वतन्त्र मानने का कोई कारण नहीं है। जो लोग आदि इन्डोयूरोपियन भाषा के एकरूप ध्वनितन्त्र की कल्पना करते हैं, वे यह सोच ही नहीं सकते कि तालव्य और अतालव्य ध्वनियों के दो केन्द्र एक ही काल में हो सकते हैं। बाल्तिक स्लाव भाषाओं में इस स्थापना के उदाहरण भरे पड़े हैं कि कंठ्य और दन्त्य ध्वनियों के भिन्न विकास केन्द्र थे और उनके परस्पर सम्पर्क से इन भाषाओं के ध्वनितन्त्र में दोनों कोटि की ध्वनियों को स्थान मिला है। लिथुआनियन की बोलियों में एक शब्द है **तित्नगस्** (चकमक पत्थर), इसका प्रतिरूप है **तिक्नगस्**। एक रूप में **त्**, दूसरे में **क्**। लैतविया की बोलियों में एक रूप है **कॅर्त्** (ग्रहण करना), दूसरा रूप है **त्वॅर्त्**। इसी भाषा की बोलियों में एक शब्द है **मॅग्निस्** (काला मुर्गा), दूसरा रूप है **मॅद्निस्**। इसी प्रकार उक्रैनी में महाप्राण ध्वनियों में केवल **ख्** है जबकि रूसी में **ख्** और **फ्** दोनों हैं। इसलिए प्राचीन काल में तालव्य और तालव्येतर ध्वनियों के दो भिन्न केन्द्र थे, यह मानने में संकोच न होना चाहिए।

भारतीय आर्य भाषाओं में तालव्य ध्वनियों का पूर्ण विकास हुआ है। **श्** को छोड़ दें, केवल स्पर्श-संघर्षी च-वर्गीय ध्वनियों को लें, तो देखेंगे कि इन ध्वनियों का पूर्ण विकास न तो स्लाव क्षेत्र में है, न ईरानी क्षेत्र में। स्लाव क्षेत्र में **ज्** नहीं है; ईरानी क्षेत्र में **छ्** नहीं हैं। **झ्** का अभाव दोनों में है। अतः इन ध्वनियों का विकास-केन्द्र भारत है, ऐसा मानना चाहिए। भारतीय भाषाओं की तरह स्लाव भाषाओं में तालव्य और कंठ्य ध्वनियाँ सम्बद्ध शब्दों में अर्थ-भेदक ढँग से प्रयुक्त होती हैं। एक क्रिया है **युज्**; इससे एक ओर **युज्यति, योजना** आदि शब्द बनते हैं तो दूसरी ओर **योग, योग्य** आदि शब्द भी बनते हैं। इसी प्रकार चेक भाषा में **रिकात्** माने बातें करना, सम्बद्ध शब्द **रेच्** माने भाषा। बुलगारियन भाषा में **रेक** माने नदी और **रेचेन्**

माने नदी से सम्बन्धित। बाल्तिक-स्लाव भाषाओं में तालव्य ध्वनियों का प्रसार एक-सा नहीं हुआ। बाल्तिक भाषाओं की अपेक्षा स्लाव भाषाओं में इन ध्वनियों का प्रसार अधिक हुआ है, यथा लिथुआनियन **वकरस्** (सन्ध्या) का रूसी प्रतिरूप **वेचॅर्** है। बाल्तिक भाषाओं में ही लिथुआनियन की अपेक्षा लैतवियन में तालव्य ध्वनियों का विकास अधिक हुआ है यथा लिथुआनियन **अकिस्** (आँख) का लैतवियन प्रतिरूप **अचिस्** है। जहाँ भी शब्द के एक रूप में कंठ्य ध्वनि हो और दूसरे में तालव्य, वहाँ कंठ्य ध्वनि वाला रूप ही पुराना होगा, यह मानने का कोई कारण नहीं है। लिथुआनियन **गीवस्** (जीवित) का लैतवियन प्रतिरूप **जीवस्** है। लिथुआनियन रूप मूल नहीं है। **जीव** के प्रतिरूप **दीव** से अंग्रेज़ी का **लिव्** बना है। **लिव्** और **जीव** का सम्बन्ध पहचान कर कोई **गीवस्** को प्राचीनतम रूप न कहेगा। **अकिस्** और **अचिस्** दोनों का पूर्वरूप **अक्षि** है। लिथुआनियन में **गंमु** (मैं जन्म लेता हूँ) में आदि व्यंजन कंठ्य है। किन्तु संस्कृत **जलज, द्विज** के ज के समान लिथुआनियन में **त्** ध्वनि पर आधारित प्रत्यय है यथा **शुनितिस्** (कुत्ते का पिल्ला), **कुमुतीतिस्** (कुमुतीस् का पुत्र)। यहाँ **ग्** ध्वनि वाली क्रिया से यह प्रत्यय नहीं बना। ज् के अघोष रूप **च्** को **त्** में वैसे ही बदला गया है जैसे अंग्रेज़ी **लिव्** के पूर्वरूप **दीव्** में **जीव्** के **ज** को **द्** में बदला गया था। वही **ज्** अन्य स्लाव भाषाओं में **च्** रूप में प्रयुक्त होता है। **इलिया** का पुत्र रूसी में **इलिच्** हुआ। **भग** अर्थात् भगवान का पुत्र स्लाव समुदाय की सर्ब भाषा में **बॉफ़िच्** हुआ। लिथुआनियन में भतीजी और भांजी के लिए मिलते-जुलते शब्द हैं : **ब्रॉलेचिग्र** और **सॅसॅरेचिग्र**। यहाँ भी **च्** का पूर्वरूप **ज्** है। इससे विदित होता है कि लिथुआनियन कहीं तो तालव्य ध्वनि स्वीकार करती है और कहीं उसे कंठ्य या दंत्य ध्वनि के रूप में ग्रहण करती है।

स्लाव और बाल्तिक भाषाओं में **श्**, **स्** ध्वनियाँ खूब प्रयुक्त होती हैं लेकिन कभी-कभी इनके स्थान पर **च्** का व्यवहार भी होता है। रूसी **स्यूदा** (यहाँ) का लिथुआनियन प्रतिरूप **चिश्रोन्** है। लिथुआनियन भाषा की बोलियों में दन्त्य **स्** वाले शब्दों के प्रतिरूपों में **च्** का व्यवहार होता है यथा **गस्परोदुस्** (श्रीमान्) का अपरिनिष्ठित प्रतिरूप **गच्परोदुस्** है। दन्त्य **स्** कभी-कभी सघोष **ज्** भी हो जाता है। लिथुआनियन बोलियों में एक रूप **विस्केति** (झूलना) है तो अन्य रूप **विज्गेति** है। अनेक शब्द ऐसे हैं जहाँ संस्कृत रूप में **श्** है तो बाल्तिक रूप में **स्** है। संस्कृत **आश्विन** का पुरानी प्रुशियन में प्रतिरूप **अससनिस्** है और रूसी में **ऑसॅन्**। यहाँ तालव्य ध्वनि दन्त्य में परिवर्तित हुई है। सीने के लिए लिथुआनियन रूप **सीउते** है और लैतवियन रूप **शूत्**। यहाँ मूल रूप में **स्** था। छाया के लिए लैतवियन रूप **सेय** है, पुरानी स्लाव में रूप है **शेन्**। यहाँ भी मूल रूप में दन्त्य ध्वनि थी, तालव्य स्वर के संसर्ग से पुरानी स्लाव में **स्** का तालव्यीकरण हुआ है। भारतीय आर्य भाषाओं के समान बाल्तिक भाषाओं में कहीं **स्** है, कहीं **श्**। लैतवियन में **सिर्द्स्** है तो लिथुआनियन में **शिर्दिस्** (हृदय)। किन्तु जैसे व्रज से मिथिला तक केवल दन्त्य **स्** का क्षेत्र है और परिनिष्ठित बँगला में केवल तालव्य **श्** का साम्राज्य है, वैसा विभाजन बाल्तिक-स्लाव क्षेत्र में कहीं नहीं है।

इसीलिए अनुमान यह होता है कि ये भाषाएँ मूलतः दन्त्य स् के ध्वनि क्षेत्र की हैं, ष् और श् दोनों ध्वनियों का प्रसार वहाँ भारतीय स्रोत से हुआ है।

यूरुप की अन्य भाषाओं के समान बाल्तिक-स्लाव भाषाओं में महाप्राण ध्वनियाँ भारत से गई हैं। यहाँ ख्, ह् ध्वनियों का व्यवहार होता है; घ्, ध्, भ् ध्वनियाँ जिन भारतीय शब्दों में हैं, उनके बाल्तिक-स्लाव प्रतिरूपों में ग्, द्, ब् का व्यवहार होता है। किन्तु लैतवियन **सिर्द्स्** (हृदय) का प्रतिरूप पुरानी प्रशियन में **संयर्** है जिससे विदित होता है कि मूल रूप का **ध्** पहले ह् में परिवर्तित हुआ, फिर ह् के स्थान पर **य्** का व्यवहार हुआ। बाल्तिक-स्लाव भाषाओं में संघर्षीकरण की प्रवृत्ति प्रबल है और अनेक शब्दों में **घ्** ध्वनि **ज्** या **झ्** रूप में ग्रहण की गई है। संस्कृत **हिम** के पूर्वरूप **घिम** का लैतवियन रूप **ज़ीएम** है, लिथुआनियन प्रतिरूप **झीएम** है। **ज्** अघोष हुआ तो पुरानी प्रुशियन में **सेमॉ** रूप बना। **हिम** का पूर्वरूप **घिम** है, इसका बोध ग्रीक **खेंइम** से होता है। **सेमॉ** जैसे रूप से **शिमला** का **शिम** और बरफ के लिए कश्मीरी का **शीन** रूप बना। संस्कृत क्रिया **वह्** (ढोना) का पूर्वरूप **वघ्** था जिससे अंग्रेजी का **वैगन** शब्द बना। यह लैतवियन में **वेज्** है, लिथुआनियन में **वेझ्**। इस प्रकार सघोष महाप्राण ध्वनियाँ कहीं-कहीं संघर्षी रूप में भी ग्रहण की जाती हैं। त-वर्गीय ध्वनियाँ बाल्तिक-स्लाव भाषाओं में सुप्रतिष्ठित हैं किन्तु कहीं-कहीं उनमें भारतीय भाषाओं जैसे परिवर्तन होते हैं। जनता के लिए लिथुआनियन **तउत** का वैकल्पिक रूप **लिअउदिस्** है और लैतवियन रूप **लउदिस्** है। यह द्—र् जैसा परिवर्तन है। बाल्तिक और स्लाव भाषाओं में एक महत्वपूर्ण भेद यह है कि बाल्तिक भाषाओं में जहाँ शब्द रूप अजन्त मिलते हैं, वहाँ स्लाव भाषाओं में उनके हलन्त रूप हैं। **मधु** शब्द का लिथुआनियन प्रतिरूप **मॅदु** है किन्तु पुरानी स्लाव में इसका रूप है **मॅद्**। रूसी रूप है **म्योद्**, बुल्गारियन रूप है **मॅद्**। यही रूप चेक में है। अजन्त शब्दों को हलन्त बोलने की प्रवृत्ति मागधी और कौरवी समुदायों की प्रवृत्ति से मिलती-जुलती है। लिथुआनियन भाषा में स्वरतानों का व्यवहार भी होता है। यह प्रवृत्ति वैदिक भाषा में भी थी।

बरो ने बाल्तिक-स्लाव और आर्य भाषाओं की एक भिन्नता का उल्लेख किया है। सम्प्रदानकारक में **भ्यस्** के **भ्** के बदले इन भाषाओं में **म्** का व्यवहार होता है यथा संस्कृत **वृकेभ्यः** का लिथुआनियन प्रतिरूप **विल्कम्स्** है, स्लाव रूप **व्लुकोमु** है। इस बात में जर्मन समुदाय की भाषाएँ बाल्तिक-स्लाव भाषाओं से मिलती हैं। **वृकेभ्यः** का पुराना जर्मन प्रतिरूप **वुल्फम्** है। कहते हैं कि लिथुआनियन में प्राचीन भाषा-रूप संस्कृत की अपेक्षा अधिक हैं, किन्तु संस्कृत **भ्** के स्थान पर वहाँ उसका रूपान्तर **म्** है। सामान्यतः बाल्तिक-स्लाव भाषाओं में **भ्** के स्थान पर **ब्** का व्यवहार होता है। यदि आर्य लोग बाल्तिक-स्लाव प्रदेशों से भारत में आये, तो क्या पहले **भ्यस्** की जगह **म्स्** बोलने लगे, फिर भारत आने पर पूर्ववत् **भ्यस्** के **अभ्यस्त** हो गये?

बरो कहते हैं कि इन्डोयूरोपियन भाषाओं का यह **भ्-म्** वाला पुराना भेद है जो उनके सामान्य बोली-वर्गों की सीमाओं का उल्लंघन करता है [**द संस्कृत लैंग्वेज**, पृष्ठ १६]। यह स्थापना महत्वपूर्ण है। तथाकथित शाखाओं के विकास पर इतने विभिन्न

स्रोतों से प्रभाव पड़े हैं कि शाखाओं का वर्गीकरण छिन्न-भिन्न हो जाता है। यह समस्या केवल बाल्तिक-स्लाव और जर्मन भाषा-समुदाय की नहीं है। केल्त भाषाओं में भी ऐसे परिवर्तन देखे जाते हैं। संस्कृत **नभ** का प्रतिरूप पुरानी आइरिश भाषा में **नॅम्** है। संस्कृत **कुभा** (नदी) का **कुभ** वक्रता का अर्थ देता था; केल्त समुदाय की वेल्श भाषा में इसका प्रतिरूप **कम्** (मुड़ना) है। घाटी के लिए इसी भाषा का **कुम्** शब्द **कुभ्** का ही रूपान्तर है; **कुमाऊं** नामक भारतीय क्षेत्र में यही **कुम्** है। वेल्स के निवासी अपने प्रदेश को **कम्रु** कहते हैं।

भ् ध्वनि सीधे **म्** में परिवर्तित नहीं होती; पहले उसकी महाप्राणता और सघोषता का लोप होता है, फिर **प्** ध्वनि **म्** में बदलती है। अवधी में पानी पीने का बर्तन **आमखोरा, अम्खोरवा** कहलाता है; इसका पूर्वरूप फ़ारसी **आबखोर** है और **आब** का पूर्वरूप **आप** है। **अप** तथा **आप** का मूल रूप **अभ**—**अंभ** वाला **अभ**—है। **भ्** ध्वनि **ब्, प्, म्** में परिवर्तित हुई। इसी प्रकार **कुभा, ककुभ** का **कुभ्, कुब्ज, कुबड़ा** का **कुब्, कुमाऊं** का **कुम्** मूलतः एक हैं। **प्** ध्वनि का **म्** में रूपान्तरण अखिल भारतीय भाषाई प्रपञ्च है। तमिल **पण्णु** और **मण्णु** का एक ही अर्थ है बनाना, निर्माण करना। तमिल **पणि** (बोलना), आहूइ **पानिग्** (उप०) का तेलुगु प्रतिरूप **माटलाडु** (उप०) है; तेलुगु **माट** (शब्द), कन्नड़ **मात** (उप०) इसी से सम्बद्ध हैं। **पणि** से मिलती-जुलती **भण्** क्रिया संस्कृत में है; अतः **पणि** और **माट** की **प् म्** ध्वनियाँ मूलतः **भ्** थीं। संस्कृत **भाण्ड** में **भण्** क्रिया निर्माण सूचक है; उसके प्रतिरूप **पण्णु** और **मण्णु** हैं। **भण्** से जैसे तमिल **पण्णु** और **मण्णु** सम्बद्ध हैं, वैसे ही संस्कृत **पाणि** से लैटिन **मनुस्** (हाथ) सम्बद्ध है। लैटिन **पोनो** (निर्माण करना, रखना) संस्कृत **पाणि**, तमिल **पण्णु** की शृंखला में है किन्तु हाथ के लिए **प्** ध्वनि वाला नहीं, **म्** ध्वनि वाला शब्द लैटिन में प्रचलित हुआ। भारतीय भाषा क्षेत्र में **पण्णु** और **पाणि** दोनों हैं।

पुरानी आइरिश का **बॅन्** (स्त्री), तमिल **पॅण्** (स्त्री, लड़की) का प्रतिरूप है। सम्बन्धकारक में इसका **म्नो** रूप होता है। यहाँ यह सम्भावना है कि नासिक्य ध्वनि **न्** के संसर्ग से स्पर्श ध्वनि **प् म्** में परिवर्तित हो। संस्कृत **स्वप्न** के लैटिन प्रतिरूप **सॉम्नुस्** (नींद) के **म्** के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। किन्तु वेल्श **ब्रॉ** (भूमि) का पुराना आइरिश प्रतिरूप **म्रॉगि** है। यहाँ नासिक्य ध्वनि के संसर्ग का प्रश्न नहीं है। अंग्रेजी **मोर** (अधिक), प्राचीन आइरिश के **मार** और **मोर** (महान्) संस्कृत **पुरु** के प्रतिरूप हैं। तमिल **पल** (बहुत से) और ग्रीक **पॉलुस्** (उप०) दोनों **पुरु** से सम्बद्ध हैं; ग्रीक भाषा में तमिल **पल** का रूपान्तर **मल** (बहुत, अधिक) भी है (**मल पॉल्ल** अर्थात् खूब सारे)। परिनिष्ठित ग्रीक **मॅत** (साथ, मध्य) अन्य ग्रीक बोलियों, यथा इयोलिक, में **पॅद** है। संस्कृत **मेदिनी** और ग्रीक **पॅदॉन्** (धरती) अवश्य ही एक-दूसरे के प्रतिरूप हैं।

संस्कृत **मृदु** का लैटिन प्रतिरूप **मॉल्लिस्** (कोमल) है किन्तु ग्रीक प्रतिरूप **ब्रदुस्** (धीमा) है। संस्कृत **मर्त्य** के समानान्तर लैटिन में **मॉर्तुउस्** (मृत) शब्द है किन्तु ग्रीक प्रतिरूप **ब्रॉतॉस्** (मर्त्य, मर्द, पुरुष) है। संस्कृत में **स्पृश्** और **मृश्** दो क्रियाएँ हैं

और दोनों का एक ही अर्थ है छूना ।

इस प्रकार **प्-ब्** तथा **म्** ध्वनियों वाले प्रतिरूप आर्य, द्रविड़, केल्त, जर्मन, बाल्तिक-स्लाव, ग्रीक, लैटिन भाषा-समुदायों में हैं । जहाँ मूल शब्द में **भ** ध्वनि का पता चल जाता है, वहाँ निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि **प्** या **ब्** ध्वनि **म्** में परिवर्तित हुई है । अन्यत्र **म्** ध्वनि के **प्** में बदलने की सम्भावना स्वीकार करनी होगी । जो बात असम्भव है, वह यह कि बाल्तिक-स्लाव प्रदेशों में जो लोग **भ्यस्** को **म्स्** कहने लगे थे, वे भारत आकर **म्स्** को पुनः **भ्यस्** कहने लगे ।

(ख) शब्दतन्त्र

भारत में अनेक आर्य भाषाएँ थीं, वैसे ही उनके पड़ोस में अनेक स्लाव भाषाएँ थीं । ऐसा नहीं था कि एक आदि आर्यभाषा यहाँ है, एक आदि स्लाव भाषा वहाँ है, और इन दोनों के परस्पर सम्पर्क से भाषातत्वों के आदान-प्रदान का कार्य पूरा हो गया । अनेक स्लाव भाषाओं से अनेक आर्य भाषाओं का सम्पर्क विविध प्रकार का है। यह बात ध्वनितन्त्र के विश्लेषण से ज्ञात होती है और शब्द-भण्डार के विश्लेषण से उसकी पुष्टि होती है । इन भाषा समुदायों का सम्पर्क प्राचीन होते हुए भी दीर्घकालीन है । एक ओर ऋग्वेद की **ऋक्** से सम्बद्ध चेक भाषा की **रिकात्** क्रिया है, दूसरी ओर हिन्दी बोलना से सम्बद्ध रूसी क्रिया **बोल्तात्** (बहुत बातें करना) । एक ओर **ऋचा** से सम्बद्ध चेक **रेच्** (भाषा) है, दूसरी ओर हिन्दी **बातून** की तरह रूसी **बोल्तून्** है । दोनों शब्दों का अर्थ एक है । बाल्तिक-स्लाव भाषाओं में अनेक शब्द ऐसे हैं जिनके ध्वनि-रूप संस्कृत रूपों से काफी मिलते हैं यथा **अग्नि**, **कृमि** और **तमस्** के लिथुआनियन प्रतिरूप **उग्निस्**, **किर्मुओ** और **तुम्स** । किन्तु सबसे रोचक शब्द वे हैं जो अर्थ-विचार की दृष्टि से प्राचीन प्रयोगों की याद दिलाते हैं ।

इन भाषाओं में **से** (बोना) क्रिया और उससे सम्बद्ध शब्दों का व्यापक व्यवहार होता है । लिथुआनियन में इसका कृदन्त रूप **सेति** सामान्य क्रिया के समान प्रयुक्त होता है । जिस टोकरी से बीज लेकर बोते हैं, उसे **सितुवस्** कहते हैं। पुरानी प्रुशियन में बीज को **सॅमॅन्** कहते थे और खेत के लिए शब्द था **सम्यॅन्** । धरती के लिए **सॅम्मॆ** शब्द था जिससे **ज्मा**, **क्ष्मा**, **ज़मीन** आदि शब्द सम्बद्ध हैं। **स्** के सघोष होने पर **ज्** वाले रूप मिले; इसके **च्** में बदलने और सघोष होने पर **ज्** वाले रूप मिले, और **स्** के तालव्य होने पर, अतिरिक्त **क्** के साथ उसके पुनः मूर्धन्य होने पर, **क्ष्** वाले रूप मिले । **से** क्रिया में **त** प्रत्यय जोडने पर **सेत**, मराठी रूपान्तर **शेत** और संस्कृत प्रतिरूप **क्षेत्र** इसी प्रकार प्राप्त होते हैं । **सेत** का **त** जब **ल** में परिवर्तित हुआ तब गाँव के लिए रूसी में **सॅलो**, **सॅलेनिये** शब्द बने । रूसी में कहीं बस जाने के लिए शब्द है **सॅलीत्स्या**; बीज के लिए **सॅम्या** है । **सॅम्या**, **सॅमेइस्त्वॉ** परिवार का अर्थ देते हैं । रूसी में खेत के लिए **पोलॆ** शब्द भी है और **पालि**, **पल्लि** आदि से सम्बद्ध है। खेत के लिए तमिल में भी **पोल** शब्द है । यह सम्भव है कि **पोल** का **प्** बोने वाली **सो** क्रिया के **स्** का रूपान्तर हो । बुल्गारियन में किसान के लिए **सॅल्यानिन्** शब्द है और **सॅल्याक्** का अर्थ है गँवार । रूसी में किसान

के लिए **क्रेस्त्यानिन्** शब्द भी है जो संस्कृत **कृष्टि** से सम्बद्ध है। हल चलाने के लिए बाल्तिक, स्लाव तथा लैटिन आदि में **अर्** क्रियामूल का व्यवहार होता था। लिथुआनियन **अरिमस्** का अर्थ है जोतने का कार्य। **अर्ति** माने हल चलाना और **अर्क्लस्** का अर्थ है हल। इससे किसान के लिए लैतवियन भाषा में शब्द बना **अरायस्, अरेयस्**। पहला रूप पेशेवर किसान के लिए प्रयुक्त होता है और दूसरा जब-तब हल चलाने के लिए। लिथुआनियन में इसका प्रतिरूप है **अर्तोयस्**। जो दूसरे के लिए हल नहीं चलाता, वह अपनी खेती का स्वामी है। इस प्रकार **अर्** क्रिया से बने भारतीय आर्य शब्द में स्वामित्व का भाव जुड़ गया, पुनः स्वतन्त्रता, सभ्यता, बड़प्पन आदि के भाव भी इससे सम्बद्ध हो गये। लिथुआनियन **शक** संस्कृत **शाखा** का प्रतिरूप है और दोनों का अर्थ एक ही है। रूसी में इसका रूपान्तर **कॉसा** है जिसका अर्थ है लकड़ी का हल। इसका पुराना जर्मन प्रतिरूप **होह** है। इससे विदित होता है कि प्राचीनकाल में पेड़ की डाल काटकर उससे भूमि जोतने का काम लिया गया था। इसी प्रकार कश्मीरी **लंग** (डाल) और बँगला **लाङ्गल** (हल) परस्पर सम्बद्ध हैं।

लिथुआनियन **बॅर्नस्** (युवक) में शब्दमूल **बॅर** संस्कृत **भर** का रूपान्तर है। **भर** का अर्थ है युद्ध; इसका अर्थ योद्धा, युवक, पुत्र भी था। लैतवियन **बॅर्न्स्** का अर्थ है बच्चा। लिथुआनियन **वीरस्**, पुरानी प्रशियन का **वीरन्स्** पुरुषवाचक शब्द हैं और संस्कृत वीर के प्रतिरूप हैं। पुरुष में शब्द मूल **पुरु** का सम्बन्ध युद्ध और योद्धा से है। तमिल **पॉर** (लड़ना) का रूसी प्रतिरूप **पोलेत्** है। लिथुआनियन में **करस्** का अर्थ है युद्ध। जैसे **पॉर** और **पुरु** परस्पर सम्बद्ध हैं, वैसे ही **करस्** और **कुरु** परस्पर सम्बद्ध हैं। **कुरु** का अर्थ **पुरु** के समान योद्धा, युवक था। पुरानी फ़ारसी में **कार** का अर्थ है सेना। वह लिथुआनियन **करस्** से सम्बद्ध है।

लिथुआनियन **वॅर्ति** का अर्थ है द्वार खोलना या बन्द करना। स्पष्ट ही इस क्रिया का सम्बन्ध घूमने का अर्थ देने वाली **वर्** और उससे निर्मित कृदन्त **वर्त** से है। **वर्** क्रिया आने-जाने का सामान्य अर्थ देने लगी किन्तु **वृत्त** में उसकी वक्र गति का अर्थ स्पष्ट है। **द्वार** शब्द **वर्** क्रिया से बना है। **व** के पहले अतिरिक्त **द्** जोड़ा गया है। रूसी में फाटक के लिए **वॉरॉत** शब्द है जो अवधी **बरोठा** (दहलीज) से तुलनीय है। रूसी में ऐसे अनेक शब्द हैं जिनके एक रूप में **व** है और दूसरी में **द्व**। **वॉरॉत** के समकक्ष उसमें **द्वोर्** (प्राङ्गण), **द्वेर्** (द्वार) शब्द भी हैं। संस्कृत **वेग** से सम्बद्ध **द्विगात्** (संचालित करना), **द्विझेनिये** (गति) शब्द हैं, **बेगात्** (भागना) क्रिया भी है, लिथुआनियन में इसका प्रतिरूप **बेग्ति** है। गतिसूचक **पो** क्रिया से जैसे **पथ** शब्द बनता है, वैसे ही लिथुआनियन में **बेग्** से **बेगिस्** (पथ) शब्द बना है। भारतीय **वर्** क्रिया से **वारि** शब्द बना, वैसे ही **वर्** के प्रतिरूप **वन्** से कृदन्त रूप **वन्द** बना। लिथुआनियन **वन्दुओ** का अर्थ है जल। **वन्द** का न्-ध्वनिहीन रूप **वद** हुआ, इसी का रूपान्तर है **उद**। **वन्द** के रूपान्तर **उन्द** से अंग्रेज़ी का **इनन्डेट** (बाढ़ आना) शब्द बना है। लैटिन में **उन्द** का अर्थ है जल। **उद** में बहुत्वसूचक **र** लगने से **उद्र** रूप बनता है जो **समुद्र** में है। इस **उद्र** का ग्रीक प्रतिरूप **हुद्रॉस्** है जो जल के अलावा सर्प के लिए भी प्रयुक्त होता था, ठीक

भारतीय **नाग** की तरह। लिथुआनियन **उपिस्** का सम्बन्ध संस्कृत **अप** से है। **उपि,** और **उपॅ** रूप **ऑभि** के रूपान्तर हैं जिससे ग्रीक **ओफिस्** (नाग) और संस्कृत **अहि** सम्बद्ध हैं। संस्कृत **कुल्या** की शृंखला में लिथुआनियन **कूलिअव** (झरना) है।

लिथुआनियन **स्ततिति** (निर्माण करता है) में वही क्रिया है जिससे संस्कृत **स्थपति** (थवई) शब्द बनता है। धूलि के रूपान्तर **दूलि** से लिथुआनियन **दुल्के** (धूल) शब्द बना है। **कल्निउस्** का अर्थ है पर्वतारोही। इसमें पर्वत सूचक वही **कल** है जो प्रसिद्ध **कलिंग** में है। तमिल में **कल** का अर्थ है पत्थर। लिथुआनियन में **कुलिस्** का अर्थ है सुअर। रामचरितमानस में **कोल** शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी भाषा में **बूत्** का अर्थ है घर; जैसे **भू** से **भवन**, वैसे ही **भू** के प्रतिरूप **बू** से **बूत्**। छाया के लिए **सेय** शब्द में **से** क्रिया है जिसका मूल अर्थ था शयन करना। इसी का रूपान्तर **शे** है जिससे अंग्रेजी **शेड** (छाया), संस्कृत **शयन, शैया** आदि शब्द बने हैं। वायु में जैसे **वा** क्रिया है, वैसे ही लिथुआनियन **वेयस्** (वायु) में **वे** क्रिया है जो **वा** का प्रतिरूप है। बाल्तिक भाषाओं को जो बाल्तिक नाम दिया गया है, वह लिथुआनियन में **बल्तस्** है जिसका अर्थ है श्वेत, प्रकाशमान। **श्वेत** का प्रतिरूप **बेल** हुआ; रूसी **बेलुए** का अर्थ श्वेत है। **बेलुए, बल्तस्** तमिल **वॅळ्** का प्रतिरूप **श्वेत** है। **पति** शब्द स्वामित्व के भाव से जुड़ा हुआ था किन्तु स्त्री या पुरुष में कौन स्वामी है, पहले इसका भेद न था। अतः लिथुआनियन में **पति** शब्द का अर्थ है स्वामिनी। **धा** क्रिया का एक अर्थ था रखना। इससे लिथुआनियन की **देति** क्रिया बनी है। हिन्दी **डूबना** से बहुत मिलती हुई लैतवियन क्रिया है **दुब्त्**। इसी से लिथुआनियन विशेषण बना है **दुबुस्** (गहरा), जिससे अंग्रेज़ी **डीप्** (गहरा) तुलनीय है। ज्ञान और जानने का अर्थ देने वाले **विद्, वेद** आदि शब्द यहाँ व्यापक रूप से प्रयुक्त होते हैं। पुरानी प्रुशियन में **वइदिमइ** (हम जानते हैं) रूप है। रूसी **वेद्** का अर्थ है तुम जानते हो या देखते हो, **वेदात्** क्रिया का अर्थ है जानना। अनेक शब्दों के अन्त में **वेद** शब्द जोड़ देते हैं जहाँ उसका अर्थ होता है ज्ञाता यथा **यज़िकोवेद्** (भाषाविद्)। खूँटी के लिए लिथुआनियन **कॅम्बॅ** संस्कृत **स्कम्भ** का ही प्रतिरूप है। **मार्ग** के लिए लिथुआनियन **तकस्** शब्द **तक** या **त** क्रिया से बना है जिसका अर्थ चलना होगा। हिन्दी **डग** और **डगर** इससे तुलनीय हैं। लिथुआनियन **अंगिस्** (सर्प) में वक्रता का भाव है जैसे **भुजंग** में है। **भंग, बंक, वंक, अंग** सब वक्रता का अर्थ देने वाले शब्द हैं। **अंगिस्** से मिलता-जुलता शब्द संस्कृत **अंगुलि** है। **कन्दिस्** (पतंग, शलभ) में **कन्** क्रिया है जिसका अर्थ है जलना। **प्रगल्भ** के समान **कल्बुस्** (वाचाल) शब्द **गद्** क्रिया के रूपान्तर **कल्** से बना है। संस्कृत में ही **गद्** के **द्** का रूपान्तर **ल्** हुआ और **गल्भ, गल्प** शब्द बने। **कल्बुस्** का प्रतिरूप **गल्वुस्** भी है। **कल्वुस्** का अर्थ है वाचाल और **गल्वुस्** का अर्थ है बुद्धिमान किन्तु यह सम्भव है कि इस दूसरे शब्द का सम्बन्ध **गल्ब** (सिर) से हो। **पेलुस्** (भूसा), अवधी **पैरा,** मानक हिन्दी के **पुआल** से सम्बद्ध है। जैसे लिथुआनियन में **पति** शब्द स्त्रीवाचक है, वैसे ही **वधू** से मिलता-जुलता शब्द **वेदिस्** (दूल्हा) पुरुषवाचक है। कारण यह है कि दोनों का सम्बन्ध **वध्** क्रिया से है जिसका अर्थ है ले चलना। लिथुआनियन का एक रोचक

शब्द है **तइसेयस्** (निर्माता)। इसमें क्रियामूल **तइ** का सम्बन्ध **धन्धा, दस्त, दास, दक्ष, तक्षन्** आदि के क्रियामूल **दस्-तस्** से है। **बल** शब्द सम्भवतः **वर** रूप में भी प्रयुक्त होता था। लैतवियन **वर** का अर्थ है **बल**।

बाल्तिक-स्लाव भाषाओं के सर्वनाम-रूप महत्वपूर्ण हैं। लिथुआनियन **शिस्** का अर्थ है यह। इसका रूसी प्रतिरूप है **सेइ**। लिथुआनियन **शिस्तस्** का अर्थ है यह, वह। **क्**-मूलक सर्वनाम प्रश्नवाचक हैं, साथ ही दूरस्थ वस्तु की ओर संकेत भी करते हैं; लिथुआनियन **क** का अर्थ है वह, साथ ही **कुर्** का अर्थ है कहाँ। यह **कुर्** **कुद** या **कुत** की दन्त्य ध्वनि के **र्** में बदलने से बना है।

लिथुआनियन की शब्द-रचना में कृदन्त प्रत्यय **ब** का व्यवहार संस्कृत से भिन्न मागधी भाषाओं से मिलता-जुलता है। क्रिया है **गिवेन्ति** (जीना); इससे संज्ञा रूप बना **गिविब** (जीवन, अवधी रूप होगा **जियब**)। क्रिया है **वेंदिन्ति** (ब्याहना), संज्ञा रूप बना **वेंदिबॉस्** (अवधी ब्याहब)। क्रिया है **तिकिन्ति** (आस्था उत्पन्न करना), संज्ञा रूप बना **तिकिब** (धर्म, आस्था)। यह **ब** कहीं **बे** रूप में है, कही **बो** रूप में; मूल प्रत्यय एक ही है। इससे मागधी भाषाओं के **ब** प्रत्यय की प्राचीनता का बोध होता है। रूसी में मागधी भाषाओं के समान **ल** प्रत्यय जोड़कर भूतकालिक कृदन्त बनाते हैं यथा **चितात्** (पढ़ना), भूतकालिक रूप **चिताल** (पढ़ा)। लिथुआनियन में **ल** प्रत्यय से अन्य कोटि के संज्ञा रूप बनते हैं। **कस्ति** (खोदना) में क्रियामूल **कस्** से कृदन्त रूप बना **कसलस्** (जो खोदा जा सके)। **गिर्तौति** (पीना) में क्रियामूल **गिर्** से संज्ञा-रूप बना **गिरलस्** (पेय)। बाल्तिक भाषाओं के **ग** और **ङ्ग** कृदन्त प्रत्ययों का उल्लेख पहले हो चुका है। ये दोनों प्रत्यय द्रविड़ भाषाओं में अधिक प्रयुक्त होते हैं। फ़ारसी **जिन्दगी** में जो स्त्रीलिंग प्रत्यय **गी** है, वही लैतवियन में **ज़ीग** (जीवन) का **ग** है। **इङ्ग** प्रत्यय वस्तु से सम्बन्ध भी सूचित करता है जैसे **अक् मेनिगस्** (पत्थरों से भरा हुआ; ठीक यही अर्थ **कलिंग** का है)।

बाल्तिक भाषाओं में **त** प्रत्यय का व्यवहार बहुत होता है। इस **त** प्रत्यय को जोड़कर कृदन्त रूप बनता है और वह कृदन्त पुनः क्रियामूल के समान प्रयुक्त होता है जैसे **वर्** क्रिया से पहले **वर्त** कृदन्त रूप बने और फिर उसे मूल क्रिया मानकर **वर्तते** रूप बनाया जाय। लिथुआनियन में कृदन्तों के आधार पर नये क्रियार्थी संज्ञा रूप बनते हैं जैसे **गिर्** (पीना) क्रियामूल से कृदन्त रूप बना **गिर्त**, फिर इससे क्रियार्थी संज्ञा रूप बना **गिर्तौति**। **त, ती** प्रत्यय संज्ञा रूप बनाने के लिए प्रयुक्त होते हैं यथा **गिव्** क्रिया-मूल से **गिवत** (जीवन); **बू** (संस्कृत **भू**) क्रिया से **बूतिस्** (अस्तित्व)। रूसी में **त्व** प्रत्यय का संस्कृत के समान बहुत प्रयोग होता है। इसका उपयोग भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए होता है यथा **ब्रात्** (भाई), **ब्रात्स्त्वॉ** (भ्रातृत्व)। **त्वॉरीत्** (निर्माण करना) से संज्ञा रूप **त्वॉर्केस्त्वॉ** (रचनात्मक कार्य)।

३. केल्त भाषा-समुदाय

(क) ध्वनितन्त्र

केल्त भाषा-समुदाय के ध्वनितन्त्र के बारे में सबसे रोचक तथ्य यह है कि इसके एक विभाग की भाषाओं में जहाँ **क्** है, वहाँ अन्य विभाग की भाषाओं में **प्** है। पुरानी आइरिश और स्काटलैन्ड की गेलिक भाषा के शब्दों में जहाँ **क्** है, वहाँ वेल्श में **प्** है। जैसे पुरानी आइरिश में **कंन्** (सिर) है तो वेल्श में उसका प्रतिरूप **पंन्** है। गेलिक में प्रश्नवाचक सर्वनाम और विशेषक **क्** से आरम्भ होते हैं—**किम्र** (कौन सी चीज), **को** (कौन व्यक्ति), **कइत्** (कहाँ), **कुइन्** (कब), **किम्रांद्** (क्या), **किम्रमर्** (कैसे)—तो वेल्श में इस वर्ग के शब्द **प्** से आरम्भ होते हैं—**प** (क्या), **पहम्** (क्यों), **पन्** (कब), **पुइ** (कौन), **प मॉर्** (कैसे)। भाषाविज्ञानी कहते हैं कि दोनों विभागों के शब्द ओष्ठ्य **क्** से आरम्भ होते थे। इस ध्वनि का कंठ्य **क्**-तत्व एक विभाग में प्रयुक्त होने लगा और ओष्ठ्य **व्**-तत्व अन्य विभाग में। यह बात उन शब्दों के लिए भी कही जाती है जिनके लैटिन रूप में **क्** है किन्तु ग्रीक रूप में **प्** है। लैटिन **क्वि** (कौन, क्या) में **क्** के साथ ओष्ठ्य शब्द भी है, संस्कृत के **कः**, **किम्** में केवल **क्** तत्व बचा है, ग्रीक के **पॉइऑस्** (कैसा), **पॉइ** (कहाँ), **पॉथेन्** (कहाँ से) आदि में **प्** तत्व बचा है जो **व्** का रूपान्तर माना जाता है।

पहली बात ध्यान देने की यह है कि गेलिक और आइरिश में **क्** तत्व शेष रहता है तो ये भाषाएँ ग्रीक की अपेक्षा संस्कृत के अधिक निकट हैं। इस स्थिति में यह कहना भ्रामक होगा कि **शतम्** शाखा की भाषाएँ ओष्ठ्य तत्व का लोप करती हैं और केन्तुम् शाखा की भाषाएँ ओष्ठ्य तत्व बनाये रहती हैं। केन्तुम्-शतम् शाखाओं वाला विभाजन यहाँ टूट जाता है। दूसरी बात : केल्त समुदाय केन्तुम्-विभाग की शाखा है। इस शाखा की गेलिक और वेल्श नामक दो भाषाओं में उतना ही फ़ासला है जितना दो मुख्य शाखाओं की ग्रीक और संस्कृत भाषाओं में। शाखाओं का वर्गीकरण और भी असन्तोषजनक प्रतीत होने लगता है। तीसरी बात : ग्रीक भाषा-समुदाय में ही एक रूप में **क्** है तो दूसरे में **प्**। मानक ग्रीक **पे** (किसी प्रकार) का इओनिक प्रतिरूप **के** है; ग्रीक **पॉइऑस्** का इओनिक प्रतिरूप **कॉइऑस्** (कैसा) है। ग्रीक **ब्लॅफरॉन्** (पलक) का दोरिक प्रतिरूप **ग्लॅफरॉन्** है। इसका अर्थ यह हुआ कि जितना अन्तर ग्रीक और संस्कृत में है, उतना अन्तर ग्रीक भाषा की ही दो बोलियों में है, उतना ही अन्तर केल्त समुदाय की दो भाषाओं में है। जहाँ क-वर्गीय प-वर्गीय ध्वनियों वाले दोनों रूप मानक भाषा में आ गये हैं, वहाँ उनके आधार पर ग्रीक भाषा में ध्वनि-परिवर्तन का नियम स्थिर करना असम्भव है। **लगरॉस्** और **लपरॉस्** (शिथिल) दोनों रूप मानक भाषा में स्वीकृत थे। चौथी बात : जहाँ ग्रीक रूप में **क्** है और लैटिन में **प्** है, वहाँ लैटिन-ग्रीक भाषाओं के अपने-अपने ध्वनि-नियम उलट जाते हैं। संस्कृत **वृक** का ग्रीक रूपान्तर **लुकॉस्** है किन्तु लैटिन प्रतिरूप **लुपुस्** है। वेल्श **करिओ**, अंग्रेज़ी **कैरी** (वहन करना, ले चलना) में तो **क्** है, लैटिन प्रतिरूप **फ़ॅरॉ** में **फ़्** है, **पॉर्तॉ** में **प्** है। वेल्श में पूछने के लिए एक शब्द **कॅइसिग्रॉ** है किन्तु लैटिन प्रतिरूप **पॉस्कॉ** है।

लैटिन **प्** ध्वनि वाली बोलियों से घिरी हुई थी, अतः उसमें **क्** के स्थान पर **प्** का व्यवहार आश्चर्यजनक नहीं है। केल्तिक भाषा-समुदाय में जैसे **क्-प्** ध्वनियों वाले दो विभाग हैं, वैसे ही इतालिक में दो विभाग थे। **क्** वाले विभाग में लैटिन है, **प्** वाले विभाग में इटली की पुरानी ओस्कन और उम्ब्रिअन भाषाएँ हैं। लैटिन **क्विस्** (कौन) के समानान्तर इनमें **पिस्** है; लैटिन **क्वट्टु** (चार), **क्वीन्क्वॅ** (पाँच) के समानान्तर उम्ब्रियन में **पॅतुर, पुम्पॅ** हैं। इतालिक भाषा-समुदाय के दो विभागों के समान ग्रीक समुदाय में भी दो विभाग थे। इनमें अत्तिक **प्**-विभाग की भाषा है, इओनिक-दोरिक **क्** विभाग की। मानक ग्रीक का विकास अत्तिक के आधार पर हुआ; इसी कारण **पे, पॉइओस्, ब्लॅफरॉन्** आदि रूप मानक ग्रीक में हैं, **के, कॉइऑस, ग्लॅफरॉन्** आदि रूप इओनिक-दोरिक में हैं।

क् और **प्** के ये विभाग यूरुप के भाषा-समुदायों के अलावा भारतीय भाषाओं में पाये जाते हैं और आर्य-द्रविड़ परिवारों की सीमाएँ लाँघ जाते हैं। तमिल **पाण्, पाणु** (गीत) और संस्कृत-हिन्दी **गान**; तमिल **पुरइ** (कुटिया), अवधी **कुरिया**; तमिल **पुण्ड** (गुंडा), मलयालम **कुण्ड** (गुलाम, गन्दी औरत), कन्नड़ **गुंड** (चाकर) और हिन्दी **गुण्डा**; तमिल **पुल्, पुलि** (बाघ) और सन्थाली **कुल्** (बाघ); मुंडारी **बोका** और इसी भाषा में **कोका** (मूर्ख); मुंडारी में ही **बुचङ्** और **गुचङ्** (जलता हुआ लक्कड़); **बुतुरुम्** और **गुतुरुम्** (अड्डा); **बज्** और **कुज्** (बच्ची); **बुनुम्** और **गोनुम्** (दीमकों का बिल)। संस्कृत क्रिया **भस्** से **भक्ष्** रूप बना; **घस्** का अर्थ भी भक्षण करना है। संस्कृत **स्तंभ** का अंग्रेजी तद्भव रूप **थम्ब्** (अँगूठा) है; हिन्दी **ठेंगा** का प्राचीन पूर्व रूप **स्तंघ** था। जर्मन **स्तङ्ग** का वही अर्थ है जो **स्तंभ** का। प्राचीन आर्य भाषाओं में **भ** और **घ** दोनों प्रत्यय कृदन्त रूप बनाने के लिए क्रिया में जोड़े जाते थे।

क्-प् ध्वनियों वाले विभाग जहाँ भाषा-परिवारों की सीमाएँ लाँघ जाते हैं, वह क्षेत्र भारत है। **क्व** जैसी मूल ध्वनि से कुछ भाषाओं में **क्** शेष रहा, कुछ में **व् प्** में बदल गया, इस कल्पना के सहारे इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं के विकास की व्याख्या नहीं की जा सकती; जब अखिल भारतीय भाषाई परिवेश में हम उसे परखते हैं, वह नितान्त निराधार सिद्ध होती है। **क्-प्** ध्वनियों के विभागों से जिस सिद्धान्त की पुष्टि होती है, वह यह है कि इन ध्वनियों के स्वतन्त्र विकास-केन्द्र थे; इन केन्द्रों के सम्पर्क से दोनों ध्वनियों का समावेश विभिन्न भाषा-समुदायों में हुआ। थुर्नेसॅन ने पुरानी आइरिश पर अपने व्याकरण ग्रन्थ **ए ग्रामर ऑफ़ ओल्ड आइरिश** में लिखा है कि आइरिश भाषा की पूर्वतर अवस्थाओं में **प्** ध्वनि नहीं थी (पृ. ५७०)। आदि-इन्डोयूरोपियन भाषा में एक स्वतन्त्र **प्** ध्वनि थी। इस **प्** का क्या हुआ? यह **प्** पुरानी आइरिश की पूर्वतर अवस्थाओं में नहीं है। या तो उसके स्थान पर **क्** है या उसका लोप हो गया है। इस स्थिति से **क्-प्** ध्वनियों के दो स्वतन्त्र केन्द्रों वाली स्थापना पुष्ट होती है।

प्रश्न केवल **क्** और **प्** ध्वनियों का नहीं है, इनके साथ **त्** का भी है। मानक ग्रीक में **तॅस्सरॅस्** (चार) है तो इओलिक में **पिसुरॅस्**; मानक ग्रीक में **पॅन्तॅ** (पाँच) है

तो इग्रोलिक और दोरिक में **पॅम्पं** है; मानक ग्रीक में एक ओर प्रश्नवाचक **तिस्** (कौन, क्या) रूप है, दूसरी ओर **पॉइ** (कहाँ), **पॉइग्रॉस्** (कैसा) आदि में प्रश्नवाचक सर्वनाम-मूल **पॉ** है। वेल्श **प** (क्या) का गेलिक प्रतिरूप **दे** है; संस्कृत **दूर** का ग्रीक प्रतिरूप **तेलॅ** है, वेल्श में इसका प्रतिरूप **पंल्** है। इसलिए ग्रीक आधार पर बने अंग्रेज़ी शब्द **टेलीग्राफ़** के लिए वेल्श का अपना शब्द है **पंलंबर्**। स्वच्छन्द संचरण की स्थिति में **त्** के साथ **प्** ही नहीं है, **क्** भी है। लिथुआनियन में **तिक्नगस्** के साथ **तित्नगस्** (चकमक पत्थर) है; संस्कृत **पुत्र** का ओस्कन प्रतिरूप **पुक्लों** है; लैटिन में एक क्रिया **ग्रॅक्स्ग्रन्क्लारॅ** (बाहर निकालना) है तो उसका ग्रीक प्रतिरूप **ग्रॅक्स्ग्रन्त्लॅइन्** है। गेलिक में एक सम्बन्धक **दॉ** (को; अंग्रेज़ी टु) है और उसी भाषा में उसका प्रतिरूप **गॉ** है; वेल्श में एक रूप **नक्** (नहीं) है, दूसरा **नत्**। इन उदाहरणों से सिद्ध है कि अनेक शब्दों में **क्** और **प्** को ही एक मूल ध्वनि का विकास सिद्ध करना पर्याप्त नहीं है, **क्** और **त्** को, **त्** और **प्** को भी अनेक शब्दों में एक ही मूल ध्वनि का विकास दिखाना होगा।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के लिए संख्यासूचक **पंच** अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का शब्द है। इसका सम्बन्ध **पन्** (करना) क्रिया से है। यह क्रिया **पण्** रूप में तमिल में, **पॉनों** रूप में लैटिन में विद्यमान है। इस क्रिया से हाथ के लिए एक शब्द बना **पाणि** जो संस्कृत में प्राप्त है, दूसरा शब्द बना **पन्त** जिसका व्यवहार हाथ के अर्थ में किसी समय होता होगा। जैसे **धस्** क्रिया में **त** प्रत्यय जोड़कर **धस्त** शब्द बना था, जिसके रूपान्तर **दस्त** और **हस्त** हैं, वैसे ही **पन्** क्रिया से **पन्त** बना था जिसके रूपान्तर ग्रीक **पॅन्तॅ** और संस्कृत **पंच** हैं। जैसे संख्यासूचक **दश** का सम्बन्ध हाथ से है—जो पश्तो के **लस** (दस, हाथ) रूप से प्रमाणित है—वैसे ही **पन्त, पञ्च** शब्द मूलतः हाथ का अर्थ देता था। शब्द-निर्माण में अर्थ-प्रक्रिया के महत्व पर ध्यान न देने से भाषाविज्ञानी संज्ञा हाथ, क्रिया **करना** और संख्या **पाँच—पाणि, पण्** और **पंच**—का सम्बन्ध नहीं पहचान सके। अब **पंच** का अन्तरराष्ट्रीय महत्व यह है कि इसके लैटिन प्रतिरूप **क्वीन्क्वॅ** में **क्वीन्** का सम्बन्ध न तो हाथ से है, न करने से; ऐसा सम्बन्ध न लैटिन में है, न अन्य किसी भाषा में। न **क्व** प्रत्यय लैटिन में शब्द-निर्माण प्रक्रिया का आवश्यक तत्व है। **क्वीन्क्वॅ** शब्द पाँच का अर्थ क्यों देने लगा, इसका उत्तर परम्परागत भाषाविज्ञान के पास नहीं है। किन्तु **दस्** और **पन्** दोनों क्रियाओं का सम्बन्ध हाथ, संख्या और करने से है, यह स्पष्ट है। लैटिन **प्** विभाग की भाषाओं से घिरी हुई थी। उसने **पॅम्पॅ** जैसे रूप के आधार पर **क्वीन्क्वॅ** रूप का निर्माण किया। ग्रीक समुदाय की दोरिक भाषा में **पॅम्पॅ है,** इसके अलावा ओस्कन और उम्ब्रियन में **पुम्पॅरिग्रस्** रूप है, वेल्श रूप **पुम्प्** है और गौथिक में इसका प्रतिरूप **फ़िम्फ़्** है जिसका आधार पुरानी वेल्श का **पिम्प्** है। इस प्रकार जर्मन, ग्रीक, केल्त और इतालिक भाषा-समुदायों में **पुम्प्, पिम्प्** जैसे रूपों का चलन था, आदिस्थान में **प्** था और दूसरे वर्ण में अथवा अन्त्य स्थान में भी **प्** था, **त्** के अभाव में। आर्य-स्लाव क्षेत्र **च्** ही नहीं **त्** की विकास-भूमि था। इस कारण रूसी में **पॅत्**, संस्कृत में **पंच** रूप हैं; संस्कृत ग्रीक में जिस

व्याकरणिक समानता का उल्लेख बरो ने किया है, उसके साथ ध्वनिगत समानता की पुष्टि मानक ग्रीक रूप **पॅन्तॅ** से होती है। जर्मन, ग्रीक, केल्त और इतालिक के साथ आर्य-स्लाव भाषाएँ **प्**-मूलक संख्या शब्द का व्यवहार करती हैं। इनमें स्लाव और मानक ग्रीक भाषाएँ शब्द के अन्त में, या दूसरे वर्ण में, **त्** का व्यवहार करती हैं, संस्कृत **च्** का, और शेष भाषाएँ **प्** (या **फ़्**) का।

पुरानी आइरिश में **पंच** का प्रतिरूप, लैटिन के समान क्-मूलक है—**कोइक्**। इसी तरह गेलिक में **कोइग्** रूप है। यह सम्भव है कि इनकी रचना संज्ञा **कर** (हाथ), क्रिया **कर्** (करना) के आधार पर हुई हो।

मगध के **मग** — मूलरूप **मघ**—का प्रतिरूप **मक्** (पुत्र) पुरानी आइरिश में प्राप्त है; गेलिक में **मक्**, **मिक्** (बहु०) और वेल्श में **मकुइ** (युवा) रूप हैं। वेल्श में **मब्** (पुत्र, युवा, पुरुष) रूप भी है जिससे सिद्ध है कि इस भाषा में दो स्रोतों से यह शब्द पहुँचा है। केल्त समुदाय की ब्रितानिक और पिक्तिश भाषाओं में **मप्** और **मफ़न्** रूप थे। तमिल में **मग** (वत्स, तरुण), **मगन्** (पुत्र) शब्द हैं; इनके साथ **पॅण्** (पुत्री, लड़की, स्त्री, पत्नी) शब्द है जिसका प्रतिरूप पुरानी आइरिश में **बॅन्** (स्त्री), और गेलिक में **बॅअन्** (पत्नी) है। हिन्दी में **बन्ना** (दूल्हा), **बन्नी** (दुलहिन), **बनरा** (विवाह सम्बन्धी गीत), गुजराती **बणी** (पत्नी) आदि इसी शृंखला में हैं। ग्रीक समुदाय की एक बोली में **बना** शब्द था; वर्णसंकोच से ब्ना और इसके रूपान्तर **म्ना** से मानक ग्रीक क्रिया **म्नआँमइ** (पत्नी बनाने को प्रेम निवेदन करना) बनी। जर्मन समुदाय में गौथिक **क्वेन्स्** (पत्नी), अंग्रेजी **क्वीन्** (रानी), आइसलैण्ड की भाषा का पुराना रूप **कॉन** (पत्नी) केल्तिक **बॅन्** आदि के प्रतिरूप हैं।

ब्रुगमन ने कल्पना की थी कि गौथिक **क्वेन्स्** का मूल रूप **ग्वेनि** था जिससे संस्कृत **जानिः** का विकास हुआ। **ग्वेनि** रूप किसी भाषा में प्रयुक्त नहीं हुआ और उक्त कल्पना अनावश्यक है। न तो **ग्वेनि** का **व्** संस्कृत में **प्** बना, न **ग्** **ज्** में परिवर्तित हुआ। केल्त भाषाएँ **च्** या **ज्** ध्वनि वाले शब्दों को किस रूप में ग्रहण करती हैं, इसका अध्ययन भारतीय और यूरप की भाषाओं के सम्बन्ध पहचानने में सहायक होगा। वेल्श **दर्वॅनि** (नया जन्म देना) **बॅन्** क्रिया के प्रथम व्यंजन की आवृत्ति से बना हुआ रूप है। **दीन्** (जन, पुरुष) स्पष्ट ही **जन** का रूपान्तर है। इसी से सम्बद्ध **दीनॅस्** (नारी), **दीनॉल्** (मानवीय) आदि में द् मूल ज्-ध्वनि का स्थान लेता है। पुरानी आइरिश में **गॅइन्** (जन्म), **गॅइनॅ** (जन्मे) में ज् ध्वनि ग् रूप में ग्रहण की गई है। वेल्श और आइरिश भाषाओं में यहाँ समानता के फलस्वरूप द् वाले रूप आइरिश में मिलेंगे और ग् (या **क्**) वाले रूप वेल्श में। पुरानी आइरिश **दुइनॅ** (पुरुष, जन), **दॉइनि** (मानवता) में वेल्श के समान **ज्** को द् रूप में ग्रहण करती है; उधर वेल्श में **कॅन्-हॅदलु** (जन्म देना), **कॅनॅदल्** (जाति, संतान) यह दिखाते हैं कि **ज्** ध्वनि ग् रूप में ग्रहण की गई, फिर उसे अघोष किया गया। वेल्श **किउदाद** (गण, जाति) में वैसी ही ध्वनि प्रक्रिया है। लिथुआनियन **तउत** (जन०) में **ज्** का रूपान्तर **द्** अघोष रूप में प्रतिष्ठित है। इसी का पुराना जर्मन प्रतिरूप दिओत (जन, जनता) है जिसमें एक ओर **डच**, **ड्वाओंतश्**,

[**ड्वाअॅच्** (जर्मन, हौलैन्ड-सम्बन्धी) शब्द बने, दूसरी ओर आदि व्यंजन के अघोष होने पर ट्उटॉन्, ट्यूटन् (जर्मन) शब्द बने। **दिअॉत** जैसे रूप का द्—दवर-लेविर के समान—**ल्** में परिवर्तित हुआ, तब रूसी **ल्यूदि**, चेक **लीद्**, **लीदॅ** आदि रूप बने जिनका अर्थ है जनता। इस प्रकार केल्त, जर्मन और बाल्तिक-स्लाव भाषाओं में जन-गण-वाचक शब्दों का आधार प्राचीन भारतीय क्रिया **जन्** है।

वेल्श **ज्** ध्वनि को **स्** रूप में भी ग्रहण करती है। अंग्रेजी **जेन** और **जेम्स** क्रमशः **सिआन्** और **सॅउमस्** बोले जाते हैं। इसी प्रकार गेलिक में **जोन** और **जेम्स सीनें** और **सॅउमस्** (अथवा **शॅउमस्**) हैं। इसके साथ **जौन्** के वेल्श और गेलिक प्रतिरूप **इऑअन्** और **इऐन्** भी हैं जैसे लैटिन में **द्युपितर्** का रूपान्तर—**जुपितर्** की मंजिल पार करते हुए—**इऊपितर्** है। किसी एक भाषा में जब अनेक बोलियों की ध्वनि-प्रकृतियों का समावेश होता है, तब उसमें वैसा ही बहुविध ध्वनि-प्रपंच दिखाई देता है जैसा वेल्श में है, **ज्** कहीं द्, कहीं **क्**, कहीं **स्**, कहीं **इअ** रूप में ग्रहण किया जाता है।

केल्त तथा बाल्तिक-स्लाव भाषाओं में **क्-प्** समीकरण से हमें कुछ भारतीय शब्दों का विकास समझने में सहायता मिलती है। हाथ के लिए भारतीय **कर** से सम्बद्ध **कृ** से क्रय-विक्रय भाव व्यक्त करने वाला **क्री** रूप बना। संस्कृत **क्रीणाति** का पुराना आइरिश प्रतिरूप **क्रॅनिद्**, **क्रॅनइद्** (खरीदता है) है; (फ़ारसी **ख़रीद** संस्कृत **क्रीत** का रूपान्तर है)। **क्रीत** का वेल्श प्रतिरूप **प्रीन्** (खरीदा हुआ) है, **प्रिनु** का अर्थ हुआ खरीदना। इससे सम्बद्ध है ग्रीक **प्रिअस्थइ** (खरीदना)। **क्री** के समानान्तर **प्री** क्रिया का व्यवहार होता था, **कर** (हाथ) के समानान्तर उसी अर्थ में **पर** का व्यवहार भी अवश्य होता रहा होगा। फ़ारसी **फ़रोख़्तन्** (बेचना), **फ़रोश्** (विक्रेता) में वही क्रिया-मूल **पर्** अथवा **पिर्** है। संस्कृत में क्रय-विक्रय भाव से सम्बद्ध **पर्** क्रिया नहीं है किन्तु तमिल में **पण्** है और इससे बने **पण, पण्य** आदि शब्द संस्कृत में हैं। **पण्** (या **पन्**) और **पर्** क्रियाएँ मूलतः एक हैं जैसे **वर्** और **वन्** (**वन्द** कृदन्त रूप की मूल क्रिया गतिसूचक **वन्**) एक हैं।

पुरानी आइरिश क्रिया **कनिद्** (गाता है) का आधार संस्कृत **गान** का आइरिश प्रतिरूप **कन** है; आइरिश कृदन्त **केतॅ गीत** का रूपान्तर है। संज्ञा रूप **केतल्** में कृदन्त के बाद एक और संज्ञासूचक प्रत्यय जोड़ा गया है। गेलिक **कॅओल्** (संगीत), **कॅइलॅइर्** (गीत गाना, विशेषतः पक्षियों का गाना) इसी शृंखला में है। मुर्गा अंग्रेज़ी में **कौक्**, गेलिक में **कॉइलॅअख़्** है क्योंकि वह सबेरा होते ही गाता है। (मुर्गे के लिए फ्रान्सीसी स्रोत से आया हुआ अंग्रेजी का एक कवित्वपूर्ण शब्द **चान्टीक्लिअर्** है जिसमें उसके गाने की क्रिया पर बल है।) **कोकिल** और **कवि** में गाने का अर्थ देनेवाली **को** या **कव्** क्रिया है। **कोकिल** हमारे यहाँ **पिक** भी है। वेल्श में अंग्रेज़ी **कौक्** के लिए एक शब्द है **कॉकिऑ**, दूसरा है **पिकिऑ**। **पिक** और **पिकिऑ**, दोनों शब्द पक्षियों के लिए उनके संगीत के कारण प्रयुक्त हुए हैं। **कोकिल** के लिए अंग्रेज़ी शब्द **कुक्कू** में वही गीतसूचक क्रिया है। ऐसा नहीं है कि अंग्रेज़ी मुर्गा कें-कें करता है, इसलिए **कौक्** कहलाया और वेल्श मुर्गा पें-पें करता है, इसलिए **पिकिऑ** कहलाया। संस्कृत में मोर की पुकार

(अर्थात् उसका संगीत) **केका** कहलाया, **कव्** के प्रतिरूप **कय्** के आधार पर। वेल्श **प्** विभाग की भाषा है, उसमें गान के लिए तमिल **पाण** जैसा शब्द होना चाहिए था पर आइरिश प्रभाव से **कान्** (गान), **कनिश्रद्** (गायन, गीत, कविता), **कनिग्** (गीत), **कुन्दिद्** (उप०), **कन्तॉर्** (गायक), **कन्तुर्** (उप०) आदि गान-श्रृंखला के शब्द भरे पड़े हैं। अपने संगीत के लिए प्रसिद्ध अंग्रेजी कविता में नाइटिंगेल् नाम से विख्यात पक्षी वेल्श में **कॉस्** है। किन्तु गीत के लिए वेल्श में **पिल्** शब्द भी है और एक पक्षी का नाम—जिसे अंग्रेज़ी में मैगपाइ कहते हैं—**पि, पिश्र** है। **मैगपाइ** में **मैग** तो अंग्रेज़ी नाम **मारगरॅट्** का संक्षेप है, उस पक्षी के लिए मूलशब्द है **पाइ**। इस **पाइ** का स्रोत है लैटिन **पिक**, और वही स्रोत है वेल्श **पिश्र** का। भारतीय प्राकृतों के समान **पिक** के **क** के स्थान पर वेल्श में **श्र** साफ दिखाई दे रहा है। सिद्ध हुआ कि लैटिन, केल्त और आर्य भाषा-समुदायों में **पिक** शब्द उन पक्षियों के लिए प्रयुक्त होता था जो विशेष संगीत-प्रिय जान पड़ते थे।

पपीहा ? इसी **पिक** से सम्बद्ध हो सकता है। प्रथम व्यंजन की आवृत्ति हुई। ह का मूलरूप **घ** हो अर्थात् **पिक** का पूर्वरूप **पिघ** हो, यह सम्भव है। **कव्, कय, को, के** के समान **पे, पि, पो, पु** क्रिया गाने के लिए प्रयुक्त होती थी, इसके अनेक प्रमाण हैं। **पि** क्रिया में कृदन्त प्रत्यय **घ** लगने से **पिघ** मूलरूप बना; उसका तद्भव रूप हुआ **पिक**। रूसी **पेस्न्या** (गीत), **पेनिये** (गायन, गीत, मुर्गे का बाँग देना!), **पेत्** (गीत गाना), **पॉयूत्** अथवा **पयूत्** (गाता है), **पॅवेत्स्** (गायक) आदि में वही क्रियामूल है जो **पिक** में है। ग्रीक **पइअन्, पइएओन्** विजयगीत है, काव्य देवता अपोलो को सम्बोधित करके गाया हुआ गीत है। ग्रीक क्रिया **पॉइअॅओ** का अर्थ है निर्माण करना, काव्य रचना; यहाँ दो भिन्न क्रियाएँ एकरूप हो गई हैं। काव्य रचना वाली क्रिया रूसी **पॉयूत्** श्रृंखला की है, निर्माण वाली क्रिया भारतीय **पण्** श्रृंखला की। **पॉइएतेस्** का अर्थ निर्माता है, कवि (अर्थात् गायक) भी। **पॉइएम** कृति है, कविता (अर्थात् गीत) भी। लैटिन में निर्माण अर्थ वाली क्रिया **पोनॉ** है; यहाँ भ्रम की गुंजाइश नहीं है। **पॉएत** (कवि), **पॉएम** (कविता), **पॉएसिस्** (काव्य) आदि कवि और काव्य का अर्थ देने वाले शब्द हैं, निर्माण या निर्माता का नहीं।

लैटिन में **गान**-श्रृंखला के शब्द भी हैं: **कनो, कन्तो** (गीत गाना), **कन्तुस्** (गायन), **कनोर्, कन्तोर्** (गायक), **कनोरुस्** (संगीतमय) इत्यादि।

संस्कृत में **पिक** और **कोकिल** के समान **पद-पद्य, कविता-काव्य** दोनों विभागों के शब्द हैं।

लिथुआनियन में स्लाव समुदाय के विपरीत **पेत्** से भिन्न **गीत-वर्ग** की **गिएदोति** क्रिया है, **गिएस्मॅ** (गीत), **गिएदोयिमस्** (गायन) आदि संज्ञा शब्द हैं। जिन बाल्तिक बोलियों में **ग्** ध्वनि नहीं थी, उन्होंने लिथुआनियन को **द्** ध्वनि वाले प्रतिरूप दिये: **दइनुओति** (गीत गाना), **दइना** (गीत), **दइनिउस्** (गायक, कवि)। लिथुआनियन में मुर्गे के लिए, रूसी **पॅतुख्** के समान, गायक का अर्थ देने वाला **गइदिस्** शब्द है। सम्भव है, अंग्रेज़ी **कुक्कू** की तरह भारतीय **कुक्कुट** भी मूलतः संगीतव्यंजक नाम हो।

जिन प्राचीन भाषाओं में **स्-श्** ध्वनियाँ नहीं थीं, उनके लिए स्वाभाविक था कि **क्-त्-प्** में जो ध्वनि सुलभ हो, उसका व्यवहार वे उनके स्थान पर करें। पुरानी आइरिश में **शत** का प्रतिरूप **केत्** है; आधुनिक आइरिश में **कॅअद्, कॅउद्** रूप हैं। गेलिक में भी **कॅउद्** रूप है; वेल्श में, लैटिन प्रभाव से, **कन्त्** रूप है। **श्रु** क्रिया पर आधारित पुरानी आइरिश में **कुअलअ** (उसने सुना), **क्लॉथ्** (कीर्ति), वेल्श में **क्लउ** (श्रव्य), **क्लॉद्** (कीर्ति), **क्लुस्त्** (कान) रूप हैं; संस्कृत **श्रोणि** का वेल्श प्रतिरूप **क्लुन्** (नितम्ब) है। संस्कृत **श्वान्** के लिए पुरानी आइरिश में **कु**, वेल्श में **कि** हिन्दी **कूकुर** से सम्बद्ध हैं। शाखा के लिए पुरानी आइरिश के **गेक्** रूप में प्रथम व्यंजन सघोष है। इसी प्रकार **दश** के वेल्श प्रतिरूप **दॅग्** में अन्तिम व्यंजन सघोष है। पुरानी आइरिश में **दश** के लिए **दॅइख्**, **अश्व** के लिए **अॅख्** में अन्तिम व्यंजन संघर्षी और अघोष है। **श्वास** के लिए वेल्श में **खुइथ्**, **श्वश्रू** के लिए **ख्वॅग्**, **श्वशुर** के लिए **ख्वॅग्रुन्** प्रथम व्यंजन को अघोष और संघर्षी रखते हैं। इसी तरह गेलिक **खुअल** (श्रुत, सुना) में प्रथम व्यंजन संघर्षी है। इन सब रूपों में श् का स्थान कंठ्य ध्वनि लेती है और उसमें महाप्राणता का भी योग रहता है।

श् के अतिरिक्त स् ध्वनि भी उक्त प्रकार से ग्रहण की जाती है। अंग्रेज़ी नाम **मौरिस** का एक वेल्श रूपान्तर **मॅउरिग्** है, **क्रौस** के लिए एक वेल्श रूप **क्रोग्** है। **स्वप्** क्रिया पर आधारित वेल्श रूप **कुस्ग्** है और पुरानी आइरिश में **कॉतलुद्** (सोना) रूप है। **सृज्** क्रिया का वेल्श प्रतिरूप **क्रॅअद्** है, और इस प्रकार अंग्रेज़ी **क्रिएट**, लैटिन **क्रॅआॅ** (रचना, जन्म देना) **सृज्** के रूपान्तर सिद्ध होते हैं। अनेक आधुनिक नामों में जहाँ **स्** है, वहाँ गेलिक भाषा वर्ग के प्रभाव से, वेल्श **क्** ध्वनि का व्यवहार करती है, यथा **फ्रान्स** के लिए **फ्रान्क** रूप में। संस्कृत **कृमि** (कीड़ा) सर् के रूपान्तर कर्, कृ से बना था। अनेक प्राचीन क्रियाएँ पहले विशेष प्रकार की गति सूचित करती थीं; आगे चलकर वे सामान्य गति का बोध कराने लगीं। इनमें एक **सर्** क्रिया थी। यह वक्र गति सूचित करती थी, इसीलिए नदी और नाग दोनों के लिए **सरिता** और **सर्प** जैसे शब्द एक ही क्रिया से बने। **सर्** और **सृ** के रूपान्तर **कृ** से एक ओर पुरानी आइरिश में **क्रुइम्** (कृमि) शब्द बना, दूसरी ओर वेल्श में **प्रीव्**, अन्य केल्त भाषा ब्रेतों में **प्रॅन्व्** रूप बने। **स्** ध्वनि **क्** और **प्** दो रूपों में ग्रहण की जाती है। **सर्** का एक रूपान्तर हुआ **कर्**, तो दूसरा रूपान्तर हुआ **पर्**। इसी **पर्** से **वर्** रूप मिला जो वक्र गति का अर्थ देता था। वेल्श में **क्रीमु** (वक्र होना, झुकना) क्रिया भी है जिसका अंग्रेजी प्रतिरूप **क्रीप्** (रेंगना) है। इससे अनुमान होता है कि **क्रिएट** के मूलाधार **सृज्** में जैसे स् है, वैसे ही **क्रीप्** का पूर्व रूप संस्कृत **सृप्** है जिसका वही अर्थ है जो **क्रीप्** का है। लैटिन क्रिया **सॅर्पो**, ग्रीक **ॲर्पो** संस्कृत **सृप्** का प्रतिरूप हैं किन्तु इन सबमें **प्** कृदन्त चिन्ह है; कृदन्त को पुनः क्रियामूल बनाया गया है। मूल क्रिया तो सर्, सृ है। इसके रूपान्तर **कृ** से **कृमि** आदि रूप बने, **पृ** से **प्रीव्** आदि।

संस्कृत **स्वसृ** (बहन) का गेलिक प्रतिरूप **पिउथर्** है। स् ध्वनि इन्डोयूरोपियन परिवार की कुछ भाषाओं में **प्** रूप में भी ग्रहण की जाती थी, गेलिक **पिउथर्** इसका

स्पष्टतम प्रमाण है। भारतीय आर्य-द्रविड़ शब्दों के मूल ध्वनि-रूपों को पहचानने के लिए यह तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गेलिक में यह रूप प्-विभाग की भाषाओं से आया है। इधर वेल्श में **स्वसृ** का प्रतिरूप **ख्वओॅर्** क्-विभाग की भाषाओं से आया है। संस्कृत **स्रुत** (प्रवाह) के वेल्श प्रतिरूप **फ़्रुद्** में **प्** के महाप्राण रूप ने **स्** का स्थान लिया है। जर्मन **फ़्लुत्**, अंग्रेजी **फ्लड्** इसी **फ़्रुद्** के रूपान्तर हैं। लैटिन **फ़्लुओ**, अंग्रेजी **फ़्लो** (बहना) का पूर्वरूप संस्कृत **प्लु** है; जर्मन **फ़्लुत्** का पूर्वरूप संस्कृत **प्लुत्** (जल-मग्न) है। **प्लु** और **फ़्लु** क्रियामूलों का आदि रूप **स्रु** केवल संस्कृत में है। स्लाव प्रदेशों की **प्रुथ्** नदी का पूर्वरूप **स्रुत** है।

संस्कृत में एक क्रिया है **सु** (जन्म देना) जिससे **सुत** शब्द बना। इसी का प्रतिरूप है **सू** जिससे **सूत, सून, सूनु** शब्द बने। **सू** (जनक) संज्ञा भी है। **सूत** का प्रतिरूप होगा **पूत**, **सुत** का प्रतिरूप होगा **पुत** जिसमें अतिरिक्त **र्** के संयोग से **पुत्र** प्राप्त हुआ। यह आश्चर्य की बात है कि प्-विभागीय केल्त भाषाओं में **पुत, पुत्र** जैसा रूप नहीं है। अंग्रेजी आदि में **सन्** (पुत्र) जैसे शब्द मूल **स्** ध्वनि वाले हैं। किन्तु इतालिक समुदाय की प्-विभागीय ऑस्कन में **पुक्लॉ** शब्द है। जन्म देने, बीज डालने के लिए लिथुआनियन **सॅय**, रूसी **सॅद्** (बुवाई) आदि से **सु** के वैकल्पिक रूप **सि, से** का बोध होता है। तब **सुत** के वैकल्पिक रूप **सित** का प्-विभागीय रूपान्तर होगा **पित**, **त्** के सघोष होने पर **पिद**। **द्** यदि **ल्** में परिवर्तित हुआ तो **पित, पिद** का रूपान्तर होगा **पिल**। जो अर्थ **सुत** और **पुत्र** का है, वही अर्थ द्रविड़ भाषाओं के **पिल्ल, पिळ्ळ, पिळ्ळइ** आदि का है। लैटिन **फ़िलिउस्** (पुत्र) **पिल** का रूपान्तर है। नइकि **पॅद्द** (पुरुष), तेलुगु **पॅद्द** (नर) में **ल्-ळ्** ध्वनियों का पूर्वरूप **द्** विद्यमान है। पुत्र-युवक-पुरुष एक ही अर्थवृत्त में हैं जैसाकि **मग** के इन तीनों अर्थों से स्पष्ट है। **सि** क्रिया के कृदन्त **सित** को फिर क्रियामूल बनाया गया; इसका रूपान्तर **पित्, पिद्, पिल्, पिर्** हुआ। तमिल **पिर्** (पैदा होना), **पॅरु** (पैदा करना), **पॅरॅवन्** (पिता) इसी शृंखला के शब्द हैं। तुलु **पॅद्पिनि, पॅद्दुनि** (जन्म देना) में **र्** का पूर्व ध्वनिरूप **द्** विद्यमान है। संस्कृत **पितृ** में **पित्** क्रिया है जो **सित्** का रूपान्तर है। **पिता** और **पुत्र** दोनों, **सविता** और **सुत** के समान, परस्पर सम्बद्ध हैं।

केल्त समुदाय में **सुत** और **पुत्र** शृंखला के शब्द नहीं हैं किन्तु **पितृ** शृंखला के हैं। पुरानी आइरिश में **अथइर्, अथिर्**, गेलिक में **अथइर्, अथर्** रूप हैं। आदि वर्ण **प**, पहले **ह**, फिर **अ** में परिवर्तित हुआ। यह शब्द प्-विभाग की भाषाओं से आइरिश और गेलिक में आया है। वेल्श में **तात** शृंखला का **तद्** शब्द है। आधुनिक आइरिश में **पइदिर्** लैटिन स्रोत से आया है, पुराना रूप **अथिर्** है। पुरानी आइरिश में अनेक ऐसे शब्द हैं जिनमें **प्** ध्वनि का इसी प्रकार लोप हुआ है। संस्कृत **पुरु**, ग्रीक **पॉलुस्** का पुराना आइरिश प्रतिरूप है **इल्** (बहुत से)। संस्कृत उपसर्ग **प्र** पुरानी आइरिश का सम्बन्धक **रॉ** है। संस्कृत **प्रथु**, ग्रीक **प्लतुस्** पुरानी आइरिश में **लॅथन्** (चौड़ा) है। संस्कृत **पथ**, अंग्रेज़ी **पाथ्** इस भाषा में **आथ्** है। इन्डोयूरोपियन परिवार में एक भाषा और है जो इसी प्रकार **प्** ध्वनि को **ह्** में बदलती है। यह भाषा ईरानी समुदाय की

पड़ोसी आर्मीनियन है। ग्रीक **पतेर्** (पिता), संस्कृत **पद, पंच** यहाँ क्रमशः **हद्रर्, हॅत्, हिंग्** हैं। आर्मीनियन में **ह्** का लोप नहीं हुआ, आइरिश में उसका लोप हो गया है। आइरिश **प्**-विभाग की भाषा नहीं है, अतः उसके जिन शब्दों में **प्** ध्वनि का लोप हुआ है, उनका पूर्वी स्रोत असंदिग्ध है। इस पूर्वी स्रोत का प्रमाण आर्मीनियन ही नहीं, कन्नड़ भी है, जिसमें आदिस्थानीय **प्** ध्वनि **ह्** में बदलती है, और जनसाधारण की बोलचाल में इस **ह्** का भी लोप हो जाता है। **पो** क्रिया से कन्नड़ में एक रूप **पोगु** (जाना), दूसरा **होगु**, तीसरा **ओगु**। कन्नड़ में ऐसे परिवर्तन बहुत संगत ढंग से होते हैं किन्तु अन्य द्रविड़ भाषाओं में भी ऐसा ही ध्वनि-प्रपंच देखा जाता है: तमिल **पुलि**, बदग **हुलि**, तोद **उलि** (बाघ); तमिल **पाळ्**, तुलु **पाळु** और **हाळु**, कोल **हाळ्**; तुलु **पेसिगॅ**, कॉडगु **हेसिगॅ** (जुगुप्सा)। पुरानी आइरिश में **अथिर्** आदि रूप—और आर्मीनियन में **हइर्** आदि रूप—उस भाषाक्षेत्र से पहुँचे हैं जहाँ आर्य-द्रविड़ भाषा-स्रोतों का संगम था।

यह प्रपंच स्पर्श ध्वनियों के संघर्षीकरण—अल्पप्राण हों तो उन्हें महाप्राण करने—से घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध है। **प्** महाप्राण होकर संघर्षी बना, तब ग्रीक **पतेर्** का अंग्रेज़ी रूपान्तर **फ़ादर्** हुआ। भाषाविज्ञानी यह मान कर चलते हैं कि आदि इन्डोयूरोपियन भाषा से केल्त-जर्मन-ग्रीक आदि भाषा समुदाय, शाखाओं के रूप में, फूट निकले; अतः इनमें किसी एक समुदाय के निर्माण में जो दूसरे समुदायों का योगदान है, उसे वे अनदेखा करते हैं। बहुत से बहुत कुछ उधार लिए हुए शब्दों की चर्चा इस सन्दर्भ में वे करते हैं। तथाकथित आदि केल्त, आदि जर्मन आदि ग्रीक भाषाओं का ध्वनितंत्र परस्पर सम्पर्क से विकसित होता नहीं दिखाया गया; उसके विकास में पूर्वी क्षेत्र की भाषाओं का योगदान उनके लिए कल्पनातीत है।

फ़ारसी का पूर्वरूप **पारसी** है। फ़ारसी **ख़रीद** संस्कृत **क्रीत** का रूपान्तर है। **क्री** के वैकल्पिक रूप **प्री, पिर** से **फ़रोश्, फ़िरोश्** रूप फ़ारसी में बने हैं। **हफ़्ता** का मूल रूप **सप्ताह** है। तमिल **परि** (भागना), संस्कृत **पलायन** के क्रियामूल **पल्** से सम्बद्ध **फ़र्** से फ़ारसी **फ़रार्** (भागा हुआ) बना (अरबी **फ़िरार्** का स्रोत ईरानी है)। नाज की बालों का गुच्छा फ़ारसी में **ख़ोश्** है जो **कोश** का रूपान्तर है। **फ़रदा** (आगामी कल) का आधार **पर दिवस, परद्यौस्** जैसा रूप है। **ख़रख़शा** (झगड़ा) का आधार **कर्कश** है, **ख़राश** का आधार **कर्ष** है। **शराब** के लिए प्रयुक्त **ख़ुम्** शब्द मूलतः घटवाचक है और **कुम्भ** का रूपान्तर है। **ख़म्** (वक्रता), **ख़मीदा** (नत) का पूर्वरूप **कम** है जो मूलतः **कुभ** है। जैसे केल्त **कुम्** (घाटी) में **भ्** ने **म्** रूप धारण किया है, वैसे ही फ़ारसी **ख़म्** में। (**ख़ुम्** अरबी का अपना शब्द नहीं है।) फ़ारसी में **क्** और **प्** दोनों ध्वनि **ख़्** और **फ़्** में बदलती दिखाई देती हैं। यह प्रवृत्ति केल्त भाषाओं में भी है। पुरानी आइरिश में प्राचीन आर्य सम्बन्धक **पर** (ऊपर) के प्रतिरूप **फ़र्, फ़ुर्, फ़ॉर्** हैं। **प्रति** के लिए इसी भाषा में **फ़्रिथ्** (विरुद्ध) रूप है। **स्वसृ** का एक रूपान्तर **सिउर्** है, दूसरा **फ़िउर्**, जहाँ **स्** पहले **प्** में परिवर्तित हुआ है, गेलिक **पिउथर्** के समान। संस्कृत **स्रुत, प्लुत** की मंजिल पार करता हुआ, वेल्श में **फ़्रुउद** बना। संस्कृत **सर्प** वेल्श में **सर्फ़** है। **लैटिन**

कॉर्पुस् (शरीर) का वेल्श प्रतिरूप **कॉर्फ़्** है। इसी प्रकार लैटिन **क्वर्तुस्** (चौथाई) अंग्रेज़ी में **क्वार्ट** (एक नाप) है किन्तु वेल्श में **खुअर्त्** है; अंग्रेज़ी **क्वार्टर्** वेल्श में **खुअर्तर्** है। लैटिन **कॉर्पुस्** पुरानी आइरिश में **खॉर्प्** है।

थुर्नेसॅन ने पुरानी आइरिश के व्याकरण में लिखा है कि स्वर के बाद आनेवाली **क्-त्** ध्वनियाँ **ख्**, **थ्** हो जाती हैं। लैटिन से उधार लिए हुए अनेक शब्दों में ऐसा परिवर्तन हुआ है : लैटिन **मॅन्दीकुस्** पुरानी आइरिश में **मिन्दॅख्** हुआ, लैटिन **स्त्रतुर्** (घोड़े की जीन, भूल) **स्रथर्** बना। मध्यवर्ती **त्** ध्वनि प्राचीन ईरानी बोलियों में बहुधा **थ्** में बदलती है, मध्यवर्ती **क्** तमिल में **ह्** (या **ख्**) में बदलता है, आदिस्थानीय **प्** ध्वनि कन्नड़ में **ह्** में बदलती दिखाई देती है। ये समानताएँ आकस्मिक नहीं हैं। उनका विकास एक ऐसे भाषाक्षेत्र में हुआ है जहाँ अनेक भाषापरिवार सम्पर्क में हैं।

पुरानी आइरिश में स्वरों के बाद आने पर, मूल शब्दों की **ग्**, **द्** ध्वनियाँ, संघर्षी रूप धारण करती हैं। यह स्थिति पुनः तमिल के ध्वनितन्त्र से तुलनीय है; विशेषरूप से मध्यवर्ती **ग्** सामान्य तमिलजनों के उच्चारण में **ग़्** बोला जाता है। यहाँ, कुछ केल्त भाषाओं की यह प्रवृत्ति भी उल्लेखनीय है कि वे मध्यवर्ती स्पर्श ध्वनि को, अथवा स्वर के बाद आने वाली ऐसी ध्वनि को, सघोष करती हैं। अंग्रेज़ी के **पैट्रिक**, **पीटर** और **सैटर्न** वेल्श में **पद्रिग्** **पॅद्र**, **सदुर्न** हैं; **ब्रिटेन** भी **प्रिदॅन** हो जाता है; अंग्रेज़ी **ग्रैन्ड** का वेल्श रूपान्तर है **क्रान्द**! शेक्सपियर के **हेनरी द फ़िफ्थ** नाटक में एक वेल्श पात्र **बिग्** (बड़ा) को **पिग्** कहता है; वैसे ही **ग्रैन्ड** का प्रतिरूप **क्रान्द** है। और जैसे संस्कृत **दन्त** तमिल में **तन्दम्** है, वैसे ही **ब्रिटेन** वेल्श में **प्रिदॅन** है।

तमिल, वेल्श, अंग्रेज़ी, फ़ारसी आदि भाषाओं की आधारभूत बोलियाँ कभी ऐसे भाषा क्षेत्र के गहरे सम्पर्क में रही थीं जिसमें मध्यवर्ती स्पर्श ध्वनि को नियमित रूप से सघोष बोला जाता था। इस क्षेत्र में **क्-च्-ट्-त्-प्** के अतिरिक्त इनके महाप्राण रूपों **ख्-छ्-ठ्-थ्-फ्** को भी सुसंगत रूप से सघोष किया जाता था। प्राकृतों के ध्वनितन्त्र की यह विशेषता संस्कृत पर आधारित नहीं है; वह उस ध्वनितन्त्र की अपनी विशेषता है जो तमिल, फ़ारसी, वेल्श आदि में भी झलक दिखाती है। पुनः केल्त भाषाओं के पूर्वी स्रोतों की ओर हमें बाध्य होकर ध्यान देना होगा।

भारत का जो उत्तर-पश्चिमी प्रदेश प्राकृतों का क्षेत्र है, वह **स्** ध्वनि के **ह्** में बदलने का क्षेत्र भी है। यह प्रवृत्ति इस क्षेत्र में वैदिक काल में थी और आज भी है। **स्-ह्** वाले ध्वनि-परिवर्तन की छाप, केल्त भाषाओं में सर्वाधिक, वेल्श के ध्वनितन्त्र पर है। **सनातन** का **सन**, **स्वप्न**, सर्वनाम **सि** यहाँ **हॅन्**, **हुन्**, **हि** हैं; अंग्रेज़ी **सो** (बोना), **सीड** (बीज), **साल्ट** (नमक), **सन्** (सूर्य) वेल्श में **हउ**, **हद्**, **हाल्त्**, **हउल्** हैं। पुरानी आइरिश में **सन्ति** का प्रतिरूप **इत्** है; **समे** के आधार पर निर्मित **समइल्** (समानता) का रूपान्तर **अमइल्**, **अमल्** है; **सि** सर्वनाम मूल पर आधारित निर्देशक सर्वनाम **सिन्द्** का रूपान्तर **इन्द्** है। **सिन्द** का यह रूपान्तर तमिल **इन्द** से तुलनीय है।

प्राकृतों में मध्यवर्ती स्पर्श ध्वनि के लोप होने की प्रवृत्ति सामान्य है। कहीं-कहीं इस प्रवृत्ति के दर्शन केल्त भाषाओं में होते हैं। अंग्रेज़ी का अगस्त महीना—लैटिन

रूप **अउगुस्तुस्**—वेल्श में **अउस्त्** है; लैटिन **अर्गेन्तुम्** (चाँदी) वेल्श में **अरिअन्** है; अंग्रेज़ी में वर्जिल नाम से प्रसिद्ध लैटिन कवि वॅर्गिलिउस् वेल्श में फ़रिल् है, यद्यपि अन्य रूप—अंग्रेज़ी **वर्जिल** के ज् को स् रूप में ग्रहण करते हुए—**वसिल्** भी है। **औगस्टीन, मारगैरेट, मैगडलीन, डबलिन्, पेम्ब्रोक्** जैसे नाम वेल्श में क्रमशः **अनुस्तिन्, मॅरॅरिद्, मॉद्लॅन्, दुलिन, पैन्ब्रो** हैं।

पश्तो, लैटिन आदि के समान पुरानी आइरिश अनेक शब्दों के द् को ल् रूप में ग्रहण करती है। अंग्रेज़ी **सीड्** (बीज) का प्रतिरूप **सील्** हिन्दी **सीला** (फसल काटते समय खेत में गिरे हुए दाने) से तुलनीय है (अवधी में **सीड** का मूलरूप **सीत, सीतु** चावल के दानों के लिए अब भी प्रयुक्त होता है)। अंग्रेज़ी डेयर् (साहस करना) का आधार संस्कृत **धर्ष्** या **धृष्** है और उसका पुराना आइरिश प्रतिरूप लेतिउ है। हाथ के लिए पश्तो **लस्** के समानान्तर पुरानी आइरिश में **लम्** है जिसका मूलरूप **धन्ध, धम्भ, दम्भ** हो सकता है। **मधु** के प्रतिरूप पुरानी आइरिश में **मिद्** और **मिल्** दोनों हैं। दिन के लिए इसी भाषा के ल, लथॅ का सम्बन्ध दिवस शृंखला के किसी शब्द से है। अंग्रेज़ी के अनेक शब्दों में जहाँ र् है, वह पहले द् था, यह वेल्श रूपों से ज्ञात होता है; अंग्रेज़ी **बोर्** (सुअर), **कवर्** (आवरण) वेल्श में **बअॅद्, कअॅअद्** हैं। हिन्दी **ग्यारह, बारह** में **दस** का द् जैसे र् में बदला है, वैसे ही वेल्श द् अंग्रेज़ी शब्दों में र् बना है।

र् से आरम्भ होने वाले शब्दों के पहले जैसे तमिल अतिरिक्त स्वर लगाती है, वैसे ही कुछ वेल्श शब्दों में र् के पहले ऐसा स्वर दिखाई देता है। लैटिन **रेनॅस्** (आँतें) का वेल्श प्रतिरूप **अरॅन्** है। संस्कृत **ऋक्ष** के ग्रीक रूपान्तर **अर्कतॉस्** के समान वेल्श प्रतिरूप **अर्थ्** है। आर्य-स्लाव भाषाओं की **ऋक्** (बोलना) क्रिया वेल्श में **अरइथॉ** है, **अरउद्** का अर्थ है वाणी। वेल्श में ऐसे रूप अन्य स्रोतों से आये हैं; वेल्श की अपनी विशेषता है आदि स्थानीय र् के साथ ह् ध्वनि का प्रयोग। यह ह् ध्वनि स्वर के स्थान पर प्रयुक्त होती है; सम्भव है, ग्रीक के समान, उसका उच्चारण र् के पहले होता हो (या पहले होता रहा हो)। वेल्श भाषा में कोई भी उसका अपना शब्द ह् को साथ लिए बिना र् से आरम्भ नहीं होता। **रुधिर** का **रुध**—अंग्रेज़ी **रॅड्**—यहाँ **ह्रॅद्** है; संस्कृत **रथ** का प्रतिरूप **र्होद्** (चक्र) है, लैटिन **रॅक्स्** (राजा) का प्रतिरूप **र्ही** है। **रिचार्ड** और **रौबर्ट** जैसे नाम भी **ह्रिसिअर्त, ह्रॉबिर्त** बन जाते हैं। जैसे आधुनिक तमिल में अनेक बाहर से आये हुए शब्द अब र् से आरम्भ होते हैं वैसे ही वेल्श में। **रबर, रिबन्, रेकर्ड** जैसे अंग्रेज़ी से आये हुए शब्द र् से आरम्भ होते हैं। ग्रीक भाषा में, वेल्श के समान, कोई शब्द ह् को साथ लिये बिना र् से आरम्भ नहीं होता। केल्त समुदाय की किसी अन्य भाषा में यह विशेषता नहीं है, न ग्रीक के अतिरिक्त वह इन्डोयूरोपियन परिवार की किसी अन्य भाषा में दिखाई देती है। ग्रीक और वेल्श पहले किसी भाषा क्षेत्र में पड़ोसी रही हैं और यह भाषा क्षेत्र ऐसा था जिसमें महाप्राण ह् ध्वनि की प्रचुरता थी, यूरप की भाषाओं के समान उसमें ह् को क्षीण करके उसका लोप करने की प्रवृत्ति न थी।

ह् से मिलती-जुलती ख़् ध्वनि वेल्श में आदि स्थानीय ल् से पहले लगाई जाती

है। लातिन् (लैटिन भाषा) का वेल्श नाम ख़्लादिन् है : लन्दन शहर को वेल्श में ख़्लुन्दैन् कहेंगे। यह ख़् ध्वनि ल् के पहले आती है, इस बारे में सन्देह नहीं है। इससे यह धारणा पुष्ट होती है कि ह् ध्वनि भी र् के पहले बोली जाती थी। तमिल में र्, ल् के पहले अतिरिक्त स्वर लगाते हैं, वेल्श में व्यंजन ह् और ख़्।

संयुक्त ह् ध्वनि का एक स्रोत प्र् है। ह्राग् (पहले, पूर्व) ठीक संस्कृत प्राक् का रूपान्तर है। ह्रागइबोद् (पहले से जानना, पूर्वज्ञान होगा) प्राग्बोध का प्रतिरूप है। अनेक वेल्श शब्दों के पहले प्रत्यय रूप में प्रयुक्त होकर ह्राग् संस्कृत पूर्व का अर्थ देता है। वेल्श प् विभाग की भाषा है, अतः प्राक् का रूपान्तर ह्राग् उस अन्य भाषाई प्रभाव का परिणाम है जिसमें प् ध्वनि ह् में बदलती थी। ह् ध्वनि का दूसरा स्रोत स्र् है। सर्, स्रु, स्रव शब्द प्रवाह का भाव व्यक्त करते थे।

ह्अंअद्र् (प्रवाहित होना), ह्अंअद्र् (निर्झर), र्हंदंग् (बहना, दौड़ना), ह्रुग्ल् (प्रवाहपूर्ण), ह्रींवर्थुइ (धारा, प्लावन) में स्रु, स्रव आधारभूत भारतीय शब्दमूल हैं। ग्रीक र्हेओ (बहना, दौड़ना), र्हेउम (प्रवाह), र्हेइथ्रॉन् (नदी), र्हेओस् (नदी), र्होए (उप०), ह्रुतॉस् (स्रुत, प्रवाह) का स्रोत स्पष्ट है। जर्मनी की प्रसिद्ध नदी है ह्राइन्, फ्रान्स की प्रसिद्ध नदी है ह्रोन्। ये नाम जर्मनी और फ्रान्स की भूमि से केल्तजनों के घनिष्ठ प्राचीन सम्बन्धों के प्रमाण हैं। ह्राइन् लैटिन में ह्रेनुस् है, ह्रोन्, र्होदनुस् है। ह् ध्वनि ग्रीक के लिए जितनी सहज है, उतनी ही लैटिन के लिए असहज। ह् ध्वनि वाले नाम लैटिन में केल्त-ग्रीक प्रभाव से आये हैं। ह्रोन् नदी के किनारे बसे हुए एक नगर का लैटिन नाम र्होद था। वह बाद को रोसस् कहलाया। जिन भाषाओं के लिए ह् ध्वनि असहज थी, उनके लिए ह् का लोप करके र् का व्यवहार करना स्वाभाविक था। लैटिन रीवुस् (बहना, निर्झर, छोटी नदी), अंग्रेज़ी रिवर् (नदी), इतालवी रिवो, स्पेनी-पुर्तगाली रिओ (नदी) का आधार सर्, स्रु, स्रि क्रिया है। यूरुप की अनेक भाषाओं के लिए शब्द के आरम्भ में स्र् ध्वनि का व्यवहार असहज था। लीविस और शौर्ट द्वारा संशोधित-परिवर्धित जर्मन कोशकार फ्राअॅन्ड की—तीन-तीन कालम वाले दो हज़ार उन्नीस पृष्ठों की—लैटिन डिक्शनरी में एक भी शब्द के आरम्भ में स्र् ध्वनि नहीं है। प्राचीन ग्रीक भाषा में एक भी शब्द संयुक्त व्यंजन-ध्वनि स्र् से आरम्भ नहीं होता। अंग्रेज़ी के किसी भी शब्द के आरम्भ में स्र् नहीं है। यही स्थिति फ्रान्सीसी की है, जर्मन की है। इसलिए अंग्रेज़ी में एक ओर स्ट्रीम् है, दूसरी ओर रिवर्; इन नदीवाचक शब्दों में एक स्थिति स्र् को सुगम बनाने के लिए त् (ट्) का संयोग है, दूसरी स्थिति स्र के रूपान्तर ह्र में ह् का लोप है। लैटिन-जर्मन भाषा समुदायों के विशाल क्षेत्र में र्, स्र् ध्वनि वाले नदीवाचक शब्द उनके अपने नहीं हैं; उनके मूल रूपों का आदि स्थानीय स्र् इन भाषा-समुदायों की ध्वनि प्रकृति के विरुद्ध है। यह तथ्य प्रमाणित करता है कि ऐसे शब्द पूर्व से पश्चिम को गये हैं, पश्चिम से पूर्व नहीं पहुँचे।

लिथुआनियन में स्रॉवें, स्रुओग, स्रूति शब्द नदी और प्रवाह का अर्थ देते हैं किन्तु लातविअन में अंग्रेज़ी स्ट्रीम की तरह नदीवाचक स्त्राव शब्द भी हैं। इसका अर्थ यह है कि बाल्तिक समुदाय की भाषाओं में ही एक वर्ग आदि स्थानीय स्र् को अस्वीकार

करता था। यानिस एन्द्ज़ेल्निस ने बाल्तिक भाषाओं पर अपनी पुस्तक में लिखा है कि इन्डोयूरोपियन **स्त्र्**, स्लाव-प्रुशियन-लातवियन में **स्त्र्** हो जाता है। लिथुआनियन-रूसी कोश (**लितोव्स्को-रुस्किइ स्लोवार्**) के दो कालम वाले ३६१ पृष्ठों में केवल १४ शब्दों के आरम्भ में **स्त्र्** ध्वनि है। मोनियर विलियम्स के संस्कृत कोश में ३६ शब्द केवल **स्त्रु** क्रिया से सम्बद्ध हैं। इससे लिथुआनियन और संस्कृत, बाल्तिक-स्लाव और भारतीय आर्य भाषाओं के आपसी सम्बन्धों का ज्ञान हो जायगा। **स्त्रु** क्रिया से सम्बद्ध शब्दों में एक है **स्त्रवण** (प्रवाहित)। इसका मूल रूप होगा **स्त्रवन**; इसका रूपान्तर **स्त्रोन**, उससे नदीवाचक **ह्रोन्** शब्द बना।

हो सकता है कि नदी किनारे बसे होने से प्रसिद्ध नगर **रोम** का यह नाम पड़ा हो। फ्रान्स के नगर **रोआन्** के नाम का कारण भी यही हो सकता है। फ्रान्स में एक नदी **सओन्** है; यह **स्त्रवन** का ऐसा रूपान्तर प्रतीत होता है जिसमें **र्** का लोप हो गया है। भारत में **सोन** जैसी नदियों के नाम का आधार **स्वर्ण** की अपेक्षा **स्त्रवन** अधिक विश्वसनीय है। फ्रान्स में एक नदी **सोम** है। **सोन** और **सोम** दोनों का **सो** प्रवाह सूचक है।

पुरानी आइरिश के कुछ शब्दों में जहाँ आदिस्थानीय **फ़्** है, वहाँ उनके संस्कृत प्रतिरूपों में **प्** है किन्तु यह **फ़्** सीधा **प्** का रूपान्तर नहीं है। वेल्श प्रतिरूपों से ज्ञात होता है कि वह पहले **व्** में परिवर्तित हुआ, फिर **फ़्** रूप में ग्रहण किया गया। तमिल में आदिस्थानीय **प्** बहुधा **व्** में बदलता है। संस्कृत **बल**, तोद **पलिम** तमिल में **वल्** है। इसी प्रवृत्ति के अनुरूप हिन्दी सम्बन्धक **पर** मराठी में **वर** है। **पर** और **वर** दोनों बहुत पुराने रूप हैं। इनका पुराना आइरिश प्रतिरूप **फ़ॉर्** है। यहाँ **फ़् व्** का रूपान्तर है, इसका ज्ञान वेल्श **गॉर्** रूप से होता है (जिसका पूर्वरूप **गुऑर्** था)। वेल्श में कोई शब्द **व्** से आरम्भ नहीं होता; उसके पहले **ग्** ध्वनि जोड़ी जाएगी। पुरानी आइरिश में **पर** के शब्दमूल **प** से सम्बद्ध **फ़ॉ** (नीचे) सम्बन्धक है; यह रूसी **पॉद्** (नीचे) का प्रतिरूप है। (रूसी **पॉ** भीतर, ऊपर आदि का अर्थ देता है।) यह **फ़ॉ** भी **व** का रूपान्तर है, यह वेल्श प्रतिरूप **गुअ, गॉ** से ज्ञात होता है। अन्य कोटि के शब्द वे हैं जहाँ पुरानी आइरिश का आदिस्थानीय **फ़्** मूल ध्वनि **व्** का रूपान्तर है। संस्कृत **विधवा** पुरानी आइरिश में **फ़ॅद्ब्** है, वेल्स में **गुऍदु**। संस्कृत **विद्** (देखना, जानना) का पुराना आइरिश प्रतिरूप **फ़िल्** है, पुरानी वेल्श का रूप **गुऍलॅत्** (देखना) है। दोनों जगह **द्** ध्वनि **ल्** में परिवर्तित हुई है। वेल्श **गूइर्** (जानता है) में **द्** ध्वनि **र्** में परिवर्तित हुई है। संस्कृत **वीर**, लैटिन **विर्** (मर्द), पुरानी आइरिश में **फ़ॅर्**, वेल्श में **गुर्** है। विद्यमानता का अर्थ देने वाली **विद्** क्रिया से पुरानी आइरिश में **फ़ीअद्** (उसकी विद्यमानता में), वेल्श में **गूइद्** (विद्यमानता) रूप बने हैं।

आर्य भाषाओं की एक पुरानी क्रिया **वे** (बुनना) है जिसका कृदन्त रूप **वीव्** अंग्रेज़ी में मूल क्रिया की तरह प्रयुक्त होता है। इसका आइरिश प्रतिरूप **फ़िगॅ** है, वेल्श प्रतिरूप **गुऍउ** है। आर्य-द्रविड़ भाषाओं की **वर्** क्रिया मूलत: वक्र गति सूचक थी। इसीलिए **वृत्त** का अर्थ है **चक्र**। इस **वर्** का वैकल्पिक रूप थी **वल्** क्रिया। **वलन** का

अर्थ हुआ चक्रगति, वलय अर्थात् कंगन, अँगूठी। पुरानी आइरिश में वलय के आधार पर फ़ॉइल् (कंगन) रूप निर्मित हुआ, फ़ान्स में बोली जानेवाली केल्त समुदाय की ब्रेतों-भाषा में इसका प्रतिरूप है गुअलॅन् (अँगूठी)। तमिल में वर् के प्रतिरूप वल् के ल् को मूर्धन्य करके वळइ रूप बना जिसका अर्थ है चक्र, चक्कर लगाना। इससे वळइयम् शब्द बना जिसका अर्थ है, कंगन, अँगूठी, चक्र। इण्डो-यूरोपियन परिवार के आर्य और केल्त समुदाय और भारतीय भाषा परिवार के आर्य और द्रविड़ समुदाय कितने घनिष्ठ रूप में परस्पर सम्बद्ध हैं, इसका प्रमाण वल् क्रिया और उसके आधार पर निर्मित शब्द हैं। भारतीय सभ्यता से कंगन का गहरा सम्बन्ध है; केल्त समुदाय ने उस आभूषण का उपयोग और उसका ध्वनि प्रतीक भारत से प्राप्त किया था। आर्य-केल्त सम्बन्धों की पुष्टि एक अन्य शब्द से भी होती है—संस्कृत मुद्रा, मुद्रिका से। इसका वेल्श प्रतिरूप है मॉद्रुइ—अँगूठी!

केल्त समुदाय की जिन भाषाओं का सर्वाधिक नाश हुआ है, वे वेल्श के समान प्-विभाग की हैं, जो व् के पहले ग् ध्वनि जोड़ती रही हैं। जैसे पुराने आइरिश किम्र (कौन, क्या) का पुराना वेल्श प्रतिरूप पुइ है, वैसे ही ब्रेतों में पिम्रॉउ, कौर्निश में पिउ रूप हैं। ब्रेतों फ़ान्स में अब भी बोली जाती है यद्यपि उसे भाषारूप में मान्यता प्राप्त नहीं है, कौर्निश इंगलैण्ड के उस भाग में बोली जाती थी जिसे कौर्नवाल कहते हैं। अंग्रेज़ों ने इस भाषा का नाश कर दिया। संस्कृत प्रति का पुराना आइरिश प्रतिरूप फ्रिथ् है; कौर्निश रूप गॉर्थ् है, वेल्श रूप गुर्थ् है। प्रति का प् पहले व् में परिवर्तित हुआ, तब ये रूप निर्मित हुए हैं। पर् का प्रतिरूप पुरानी आइरिश में फ़ॉर् है, ब्रेतों और वेल्श में गॉर्। इन उदाहरणों से ज्ञात होगा कि व् के पहले ग् व्यंजन जोड़ने की प्रवृत्ति यूरुप और ब्रिटेन की भाषाओं में व्यापक रूप से फैली हुई थी। यह व् बहुत से शब्दों में प् का रूपान्तर है; इससे विदित होगा कि जो भाषाएँ प् का स्पर्श तत्व लोप करती थीं, उनका गहरा प्रभाव केल्त समुदाय पर पड़ा है, यह प्रवृत्ति द्रविड़ भाषाओं में है। प् चाहे ह् रूप में ग्रहण किया जाए, चाहे व् रूप में, मुख्य बात स्पर्श तत्व का लोप है।

आइरिश सामान्यतः व् ध्वनि को स्पर्श संघर्षी फ़् रूप में ग्रहण करती है किन्तु कुछ रूपों में वह उसे पार्श्विक ध्वनि ल् में भी बदलती है। पुरानी आइरिश में स्लान् (ध्वनि) संस्कृत स्वन का रूपान्तर है। इसी प्रवृत्ति के अनुरूप संस्कृत स्वप् का अंग्रेज़ी प्रतिरूप स्लीप (सोना) है। हिन्दी क्षेत्र की उत्तर-पश्चिमी बोलियों में ऐसे परिवर्तन बहुत होते हैं। अवधी सोवावत है, मानक हिन्दी में सुलाता है; अवधी में खवावत है, मानक हिन्दी में खिलाता है; व् ही नहीं, मिलती-जुलती स्थिति में य् के स्थान पर भी ल् का व्यवहार होता है यथा अवधी में सियत है, मानक हिन्दी में सिलता है। इन्डो-यूरोपियन परिवार से सम्बद्ध यूरुप की भाषाओं के आदिम निर्माणकाल में संस्कृत की क्ष् ध्वनि का विकास हो चुका था, इसका प्रमाण केल्त भाषाओं से भी मिलता है। क्षुर, क्षार से सम्बद्ध वेल्श ख़ुअॅर में क्ष् ध्वनि ख़् रूप में ग्रहण की गई है, फ़ारसी ख़ार् के ख़् की तरह।

केल्त भाषाओं के ध्वनितन्त्र में स्वरों की स्थिति शिक्षाप्रद है। लैटिन दोनुम्

और संस्कृत **दान** के प्रथम वर्ण में दो भिन्न स्वर हैं। **दा** और **दो** एक ही अर्थ देने वाले वैकल्पिक रूप थे, यह मानने के बदले भाषाविज्ञानी कहते हैं कि इन रूपों में मूल स्वर **ओ** था जो संस्कृत में **आ** हो गया। मानो संस्कृतभाषियों को **दोन** कहने में ही कठिनाई होती थी, **द्रोण** कहने में नहीं। पुरानी आइरिश, लैटिन के समान, केन्तुम् शाखा की भाषा है, किन्तु यहाँ लैटिन **दोनुम्** का प्रतिरूप **दान्** है, संस्कृत **दान** के समान। किन्तु पुरानी आइरिश में ही एक रूप है **आश्रंस्**, दूसरा **ओश्रंस्** (आयु); एक रूप है **अईस्**, दूसरा **ऑईस्** (बिश, जनता)। विशेषज्ञ सोचता है कि रूप तो एक ही होगा, कातिब लापरवाही से ओकार-अकार में भेद नहीं करते! आइरिश लोगों की पुरानी लिपि कुछ बातों में अंग्रेज़ों की आधुनिक लिपि से अधिक वैज्ञानिक थी; उसमें ह्रस्व और दीर्घ स्वरों का भेद करने के लिए सामान्यतः अक्षर के ऊपर चिन्ह लगा देते थे। अकार-ओकार के मामले में लिपिकों ने बहुत गफलत की होगी, विश्वास नहीं होता। अकार-ओकार के समान अकार-एकार में भी इसी तरह की स्वच्छन्दता जहाँ-तहाँ देखी जाती हैं: **ऍइर्ग्-अइर्ग्** (जाना), **ऍइत्-अइत्** (त्वरित), **दॅग्-दग्** (अच्छा), **तॅन्-तल्** (ले जाना)। पुरानी आइरिश में इस स्वच्छन्दता का कारण **अ**, **ॲ**, **ऑ** स्वरों के विभिन्न प्राचीन व्यवहार क्षेत्र हैं जो एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं। यह स्थिति अन्य भाषाओं में भी है।

पुरानी आइरिश के ध्वनितन्त्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता प्रथम वर्ण पर बलाघात है। यह विशेषता उसे लैटिन से सम्बद्ध करती है; वेल्श में बलाघात अन्तिम से पहले वाले वर्ण पर होता है जो उसे फ्रान्सीसी आदि से मिलाती है। इस तरह का भेद भारत की मागधी और मध्यदेशीय भाषाओं में रहा है; मागधी की आदि वर्ण बलाघात वाली प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व अब बँगला करती है। भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त की अनेक प्राचीन भाषाओं के समान वर्णसंकोचन के उदाहरण पुरानी आइरिश में मिलते हैं यथा वर्षा के प्रतिरूप **फ़स्**, **भर्** क्रिया से संस्कृत **भृति** के समान **ब्रिथ्**, **ब्रॅथ्** (भरण) रूपों में।

वेल्श भाषा की एक विशेषता का उल्लेख पहले हो चुका है, उस पर यहाँ विस्तार से विचार करना आवश्यक है। वह विशेषता यह है कि आदिस्थानीय **व्** ध्वनि वाले शब्दों को स्वीकार करते समय वह उनके पहले **ग्** व्यंजन जोड़ देती है। अंग्रेज़ी **वाल्** (दीवाल), **वैगन्** (गाड़ी), **वाइन्** (शराब) वेल्श में क्रमशः **गुआल्**, **गुअगॅन्**, **गुइन्** हैं; **वाल्टर्** और **विलियम्** जैसे नाम **गुआल्तर्** और **गुइलीम्** हैं। यह स्थिति वैसी है जैसी आगरा जिले में कहीं-कहीं सर्वनाम **वह** की है जो **ग्वु** बोला जाता है। अंग्रेज़ी में अनेक शब्द ऐसे हैं जो **व्** से आरम्भ होते हैं किन्तु जिनके अंग्रेज़ी प्रतिरूपों में **ग** है। इस **ग्** के बाद वर्तनी में **उ** होता है और **उ** के बाद एक स्वर और होता है। **ग्** के बाद वाला **उ** स्वर अब बोला नहीं जाता किन्तु पहले बोला जाता था। **वार्ड्—गार्ड्** (**गुआर्ड्**—देखभाल करना, देखभाल करने वाला), **वाइल—गाइल** (**गुइल**—छल, धूर्तता), **वारन्ट—गैरन्टी** (**गुआरन्टी**—प्रमाण, प्रमाणित करना), **वाइज़—गाइज़** (**गुइज़**—प्रकार, राह); **ग्** ध्वनि वाले इस तरह के शब्द जर्मन समुदाय की अंग्रेज़ी भाषा पर

केल्त प्रभाव सूचित करते हैं। जर्मन में **व्** के स्थानापन्न **ग्** से आरम्भ होने वाले ऐसे शब्दों का नितान्त अभाव है। अंग्रेज़ी में ऐसे शब्द वेल्श और उस वर्ग की उन पुरानी बोलियों के प्रभाव के कारण हो सकते हैं जिनका अस्तित्व अब मिट गया है; वे इतालवी-स्पेनी-फ्रान्सीसी प्रभाव के कारण भी हो सकते हैं।

अंग्रेज़ी **वार** (युद्ध) का स्पेनी इतालवी प्रतिरूप **गुएर्र** है; प्रसिद्ध **गुरिल्ला** शब्द **गुएर्र** का ही लघुतासूचक प्रतिरूप है। संस्कृत क्रिया **विद्** (देखना, जानना) के आधार पर स्पेनी और पुर्तगाली में **गुइअ** (पथ दर्शाना) और अंग्रेज़ी में **गाइड** (उभ०, पथ दिखाना) रूप बने। इतालवी **गुइदारे** (पथ दिखाना) अंग्रेज़ी **गाइड** का प्रतिरूप है। अंग्रेज़ी में **ग्** ध्वनिमूलक ऐसे शब्द केल्त प्रभाव से आये हैं। यह प्रभाव लैटिन समुदाय की भाषाओं पर और भी गहरा है। अंग्रेज़ी **वेस्ट**, इतालवी **गुआस्तारे** (नष्ट करना); अंग्रेज़ी **वेड**, इतालवी **गुआदारे** (उथली जगह नदी पार करना); अंग्रेज़ी **वास्प**, फ्रान्सीसी **गेप** (ततैया); अंग्रेज़ी **वो** (शोक), इतालवी **गुअइ**, वेल्श **गुअअं**। इन उदाहरणों से विदित होता है कि इतालवी, फ्रान्सीसी, स्पेनी, पुर्तगाली पर केल्त समुदाय का गहरा प्रभाव है। किन्तु ये सब भाषाएँ लैटिन की पुत्रियाँ मानी जाती हैं और लैटिन में **व्** के स्थानापन्न **ग्** से आरम्भ होने वाले शब्दों का वैसे ही अभाव है जैसे जर्मन में। लैटिन-जर्मन वर्गों की भाषाओं ने केल्त क्षेत्र पर व्यापक रूप में अपना प्रसार किया है, फिर भी केल्त भाषाओं के चिन्ह स्पेन से लेकर इटली तक बिखरे पड़े हैं।

उक्त उदाहरणों में अनेक शब्द भारतीय उद्भव के हैं। अंग्रेज़ी वार (युद्ध) का पूर्वरूप तमिल **पॉरु** (युद्ध करना), **पोर्** (योद्धा) है और इन दोनों का मूलरूप संस्कृत **भर** (युद्ध) है। जैसे **पोर्** का **प्** **व्** में परिवर्तित हुआ और फिर **गुएर्र** का **गु** बना, वैसे ही तमिल **पार्** (देखना) का **प्** पहले **व्** में परिवर्तित हुआ, फिर द प्रत्यय जोड़ने से अंग्रेज़ी **वार्ड** शब्द बना। पुन: **व्** के पहले **ग्** जोड़कर इतालवी **गुआर्दो** (दृश्य), **गुआर्द** (निरीक्षक), **गुआर्दारे** (देखभाल करना) रूप बने। इनमें मूल क्रिया कहीं नहीं है, सब कृदन्त रूप के आधार पर बने हैं; कृदन्त को क्रियामूल के रूप में स्वीकार किया गया था। उक्त रूपों का सम्बन्ध तमिल **पार्** से है, इसका प्रमाण लैटिन **पारॅओ** (दृश्यमान होना) है; अंग्रेज़ी **ट्रान्सपैरेन्ट्** (पारदर्शी) में यही **पार्** क्रियामूल है। तमिल **पार्**, लैटिन **पारॅओ** का मूल रूप सम्भवत: संस्कृत **भास्** (प्रकाशित होना) है।

ग् के समान अन्य व्यंजन **द्** भी प्राचीन काल में आदि स्थानीय **व्** ध्वनि वाले शब्दों को ग्रहण करते समय कुछ भाषाओं में जोड़ा जाता था। संस्कृत **द्वि** का मूल रूप **वि** है जो **विंश** में विद्यमान है। संस्कृत **वेग** की **विग्** या **विज्** तीव्रगति सूचक क्रिया रूसी में **द्विग्** है, **द्विगात्** (गतिशील होना), **द्विझेनिये** (गति)। रूसी **बेग्** (दौड़), **बॅगात्** (दौड़ना) का आधार संस्कृत **वेग** है। जैसे **व्** यहाँ **ब्** रूप में ग्रहण किया गया है, वैसे ही संस्कृत **वि** लैटिन में **बि** है। **द्वि** ने **वि** को इस तरह विस्थापित किया कि लैटिन **बि** और संस्कृत **वि** का, दो के अर्थ में, स्वतन्त्र रूप से प्रयोग बन्द हो गया। लैटिन **विगिन्ति** (बीस) में **विंश** के समान **वि** है किन्तु दो का अर्थ देने वाला लैटिन उपसर्ग **बि** है (अंग्रेज़ी के **बाइवीकली, बाइसिकिल्** आदि में वही **बि** है)। जर्मन समुदाय की

भाषाओं में **ब, बो, बॅइ** जैसे स्वतन्त्र रूप पहले थे जिनसे जर्मन **बाइदॅ**, अंग्रेज़ी **बोथ्** (दोनों) शब्द बने। गुजराती में **बॅइ** (दो) का व्यवहार अब भी होता है और अपभ्रंश में इसी रूप, या ऐसे ही **ब्** ध्वनि वाले रूप का चलन था।

जैसे अंग्रेज़ी **वार** (युद्ध) का पूर्वरूप तमिल **पॉरु** है और **पॉरु** का मूल रूप संस्कृत **भर** है, वैसे ही यह सम्भव है कि संस्कृत **विंश** के **वि** और गुजराती **बॅइ** के **बॅ** का मूल रूप **भि** हो। लैटिन **विगिन्ति** का **वि** और उपसर्ग **बि** दो स्रोतों से आये हुए रूप हो सकते हैं। **वि** होगा **पि** का रूपान्तर और **बि** होगा **भि** का। **वि** बदलकर **बि** हो गया हो, इसकी सम्भावना कम है क्योंकि लैटिन में आदिस्थानीय **ब्** का व्यवहार बहुत कम शब्दों में होता है, लैटिन शब्दों की निर्माण-प्रक्रिया में इस ध्वनि की भूमिका महत्वपूर्ण नहीं है। इसके विपरीत ग्रीक भाषा की शब्द-निर्माण-प्रक्रिया में **ब्** ध्वनि की भूमिका महत्वपूर्ण है और वह बहुत से शब्दों के आदिस्थान में प्रयुक्त है। किन्तु ग्रीक में संख्यासूचक **बि** का अभाव है। उसमें **विंश** का प्रतिरूप **ऍइकॉसि** है जहाँ **वि** का रूपान्तर **ऍइ** है (क्योंकि ग्रीक में **व्** ध्वनि का अभाव है), **द्वि** का प्रतिरूप **दुऑ** है। किन्तु इस भाषा में एक सम्बन्धक **अम्फि** है जिसका **फि** संख्यासूचक है।

अम्फि में **अम्** क्रिया का अर्थ था घेरना और **फि** का अर्थ था दो। **अम्फि** का अर्थ हुआ दो तरफ से घिरा हुआ। **अम्फिबिआ** वे प्राणी हैं जो जल और थल, दोनों में रहते हैं। इस **अम्फि** का लैटिन प्रतिरूप **अम्बि** है; **अम्बिफ़ारिउस्** उसे कहेंगे जिसके दो पक्ष हों। **अम्** क्रिया के घेरने वाले भाव के कारण अनेक ग्रीक शब्दों में—उनसे भी अधिक लैटिन शब्दों में—**अम्फि** और **अम्बि** के **फि** और **बि** में निहित दो वाला अर्थ क्षीण हो गया है। **अम्फि** और **अम्बि** का अर्थ हो गया है चारों ओर। फिर भी ग्रीक भाषा में ऐसे काफी शब्द हैं जिनमें दो का अर्थ स्पष्ट है। इस प्रकार दो का अर्थ देने वाले **वि, बि** और **फि**, ये तीन रूप मिले। ग्रीक **फि** की महाप्राणता बताती है कि इनका मूलरूप था **भि**। **भि** से आरम्भ करके, **वि** की मंजिल पार करते हुए, **द्वि** ने अपने विकास की यात्रा पूरी की।

इटालियन में **अम्बे, अम्बो** का अर्थ है दोनों; **दुए, दुओ** जोड़कर एक और शब्द बना **अम्बेदुए, अम्बेदुओ**। अर्थ वही रहा—दोनों।

अवधी में बैलों की जोड़ी को **गोईं** कहते हैं। संस्कृत **द्वा** के प्रतिरूप **ग्वा** से **गोईं** रूप बनेगा। **गोईं** के समानान्तर अवधी का **गॉइयाँ** शब्द है; दो सखियाँ एक-दूसरे की **गॉइयाँ** होती हैं। संस्कृत **वृक** (भेड़िया) **वर्** क्रिया से बना है; इसका पूर्व रूप होगा **वर्क**। **वृक** का फ़ारसी प्रतिरूप है **गुर्ग** जो स्पष्ट ही **व** के पहले **ग्** जोड़ने से बना है। संस्कृत **वात** का बलूची प्रतिरूप **ग्वात्** है; फ़ारसी **बारिश्** के समानान्तर संस्कृत **वर्षा** का बलूची प्रतिरूप **ग्वारिश्** है। मानना होगा कि ईरानी क्षेत्र की भाषाओं में **व्** के पहले **ग्** जोड़ने की प्रवृत्ति बलशाली है; यही प्रवृत्ति केल्त समुदाय की भाषा में है, केल्त-प्रभावित लैटिन-समुदाय की अन्य आधुनिक भाषाओं में है। इस प्रवृत्ति का केन्द्र बृहत्तर भारत का उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र है।

अपभ्रंश में मध्यम पुरुष सर्वनाम का एकवचन रूप **पइँ** है और अपभ्रंश में

ही इसका प्रतिरूप **तइँ** है। **पइँ** से **तइँ** का विकास नहीं हो सकता; **तइँ** से **पइँ** का विकास नहीं हो सकता। वेल्श रूप है **खुइ** (तू)। **खुइ** का विकास **तइँ** से नहीं हो सकता; **पइँ** से भी नहीं हो सकता। किन्तु **पइँ** के रूपान्तर **वइँ** से **तइँ** और **खुइ** दोनों का विकास हो सकता है। **वइँ** के पहले **त्** जोड़ने से **त्वइँ**, और **ख्** जोड़ने से **ख्वइँ** रूप बने; इनसे **तइँ** और **खुइ** का विकास सहज है।

प्राकृतों में मध्यम पुरुष सर्वनाम का, कर्मकारक बहुवचन में, एक रूप होता है **भे**, दूसरा **वो**। यहाँ **भ** और **व**, इन सर्वनाम मूलों का सम्बन्ध साफ दिखाई देता है। यह बिलकुल सम्भव है कि अपभ्रंश **पइँ** और **तइँ** तथा वेल्श **खुइ** के पूर्वरूप **वइँ** अथवा **वम्** का मूलरूप रहा हो **भम्**।

आर्मीनियन में एक प्रश्नवाचक सर्वनाम है **ओ** (कौन)। लैटिन में इसका प्रतिरूप है **उ** जो **उबि** (कहाँ), **उत्तॅर्** (कौन सी वस्तु) में प्राप्त है। ब्रुगमन ने लिखा है कि अभी तक इन **ओ** और **उ** सर्वनामों की व्याख्या सन्तोषजनक ढंग से नहीं की गई। इसका कारण यह है कि ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में ऐसे प्रश्नवाचक सर्वनामों की आदि-स्थानीय ध्वनि **क्व्** या **ग्व्** मानी जाती रही है। **ओ** और **उ** का पूर्वरूप **व** है; लैटिन और आर्मीनियन के उक्त रूपों में **व** के पहले आने वाले **क्** या **ग्** का लोप क्यों हो गया, इसकी कैफियत देना असम्भव था। किन्तु **व** को आधारभूत रूप मानने से यह बात आसानी से समझ में आ जाती है कि **व** के पहले **क्** जोड़कर **क्व** रूप बनेगा क्योंकि ईरानी और केल्त समुदायों की अनेक भाषाएँ **व्** के पहले इस तरह एक व्यंजन अब तक जोड़ती हैं। संस्कृत **क्व** (कहाँ), लैटिन **क्वा** (कैसे), **क्वि** (कौन) का पूर्वरूप **व** मानना चाहिए।

लैटिन **क्वि** का उम्ब्रियन प्रतिरूप **पॉइ** है। **प्** ध्वनि सीधे **क्व्** में बदल सकती है, **प्** के रूपान्तर **व्** में **क्** जोड़ने से भी प्राप्त हो सकती है। ग्रीक भाषा के **पॉइऑस्** (कैसे) आदिरूपों में यही सर्वनाम **पॉ** है। इधर भारत की द्रविड़ भाषाओं में गोंडी के प्रश्नवाचक सर्वनाम **ब्** ध्वनि से आरम्भ होते हैं: **बद्**, **बोर्**, **बोल्** (कौन), **बार्**, **बाह्** (क्या), **बातोल्** (कैसा), **बाद्रा** (कब), **बारी** (क्यों), **बेगा** (कहाँ)। जहाँ **प्**, **ब्**, **व्**, इन तीन ध्वनियों से आरम्भ होनेवाले एक ही अर्थ के सूचक शब्द द्रविड़ तथा इन्डोयूरोपियन भाषाओं में प्राप्त हों, वहाँ यह सम्भावना विचारणीय है कि इनका मूलरूप **भ्** ध्वनि से आरम्भ होता होगा। द्रविड़ भाषा तुलु में **वा** का अर्थ है (क्या) और यही अर्थ इस भाषा के **ऑवु** का है। यहाँ **व** और **ओ** का सम्बन्ध स्पष्ट है।

आर्मीनियन में एक प्रश्नवाचक सर्वनाम इ (क्या) भी है। संस्कृत में इसका प्रतिरूप **किम्** है, ग्रीक में **तिस्**, औस्कन में **पिस्**। यदि **पि** का पूर्वरूप **भि** हो, तो **कि** और **ति** के पूर्वरूप **घि** और **धि** हो सकते हैं। ये सर्वनाम मूलतः प्रश्नवाचक नहीं थे, सामान्य निर्देशक थे, इसलिए उक्त कल्पना असंगत नहीं है; **धि** का रूपान्तर **दि** इन्डोयूरोपियन सर्वनाम रूपों में प्राप्त है। **कि** का पूर्वरूप **घि** था, इस कल्पना को एक ओर उठा रखें, इस बात पर विचार करें कि ग्रीक **तिस्** के समान द्रविड़ भाषा कोलमि में **त्** ध्वनि से आरम्भ होने वाले प्रश्नवाचक सर्वनाम रूप है: **तानॅद्**, **तन्द्** (क्या),

तन्दुङ्, **ताङ्** (क्यों)। इसी प्रकार तुलु में **द्** से आरम्भ होनेवाले रूप हैं : **दा, दानँ** (क्या), **दायँ** (क्यों) । एक द्रविड़ भाषा में **त्** से, दूसरी में **ब्** से आरम्भ होने वाले प्रश्नवाचक सर्वनाम हैं, ग्रीक में **त्** और **प्** से आरम्भ होने वाले सर्वनाम हैं, यह समानता आकस्मिक नहीं हो सकती ।

द्रविड़ भाषाओं का सामान्य प्रश्नवाचक सर्वनाम **या** है । तमिल **या** (क्या), **याडु** (कैसे), **यार्** (कौन) आदि रूपों में यह सर्वनाम है । जब **य्** का लोप होता है, तब तमिल के **एडु** (क्या, कैसे, क्यों), **एन्** (उप०) जैसे रूप प्राप्त होते हैं । आदिस्थानीय स्वर के ह्रस्व होने पर द्रविड़ भाषा तोद का **इन्** (क्या, क्यों) रूप प्राप्त होता है । **इन्** का प्रश्नवाचक सर्वनाम मूल **इ** आमीनिपन **इ** से भिन्न नहीं माना जा सकता ।

द्रविड़ भाषाओं का **य्** ध्वनि वाला प्रश्नवाचक सर्वनाम संस्कृत **यद्** से भिन्न नहीं है, इसका प्रमाण यह है कि तमिल **यावुम्** (सब लोग), **यारुम्** (कोई व्यक्ति), **एदुम्** (कोई चीज़) में यह सर्वनाम सामान्य निर्देशक का काम करता है । इसी प्रकार प्रश्नवाचक **इ** संस्कृत **इदम्** के **इ** से भिन्न नहीं है ।

यदि प्रश्नवाचक **या** में **क्** ध्वनि जोड़ी जाय, जैसे कि **व** के पहले अनेक भाषाएँ **क्** या **ग्** जोड़ती हैं, तो हिन्दी का प्रश्नवाचक रूप **क्या** प्राप्त होगा । इस प्रक्रिया से पुरानी आइरिश का प्रश्नवाचक सर्वनाम **कीअ** (कौन) प्राप्त होगा जो हिन्दी **क्या** से मिलता-जुलता है ।

लैटिन क्रिया **वॅनिऑ** (आना) का आधार **वन्** है जो **वर्** का प्रतिरूप है । इस **वॅनिऑ** का गाथिक प्रतिरूप **क्विमन्** है । स्पष्ट ही यहाँ **व्** के पहले **क्** जोड़ा गया है । जो विद्वान् **वॅनिऑ** के **वॅन्** का आधार **ग्वन्** मानते हैं, वे यह नहीं बताते कि जर्मन में **क्** क्यों बना रहा और लैटिन से उसका लोप क्यों हो गया ।

केल्त भाषाओं का गहरा प्रभाव जर्मन आदि यूरुप की भाषाओं पर पड़ा है, इसलिए **वॅनिऑ, क्विमन्** जैसे प्रतिरूपों का प्रपंच दिखाई देता है । यह प्रपंच भारतीय आर्य-द्रविड़ तथा ईरानी भाषा समुदायों के ध्वनितन्त्र से सम्बन्धित है ।

तमिल क्रिया **वॅल्** का अर्थ है जीतना, परास्त करना; तमिल क्रिया **कॅलि**, कन्नड़ **गॅलि** का भी यही अर्थ है । **व्** के पहले **क्, ग्** जोड़ने से **कॅलि, गॅलि** रूप बने हैं । अंग्रेज़ी में **क्वॅल्** क्रिया का अर्थ है दबाना, परास्त करना । **वॅल्, कॅलि, क्वॅल्** असम्बद्ध रूप नहीं हैं ।

(ख) शब्दतन्त्र

प्राचीन आर्य-द्रविड़ भाषाओं की एक बहुप्रयुक्त क्रिया है **वर्** । यह क्रिया मूलतः वक्र गति की सूचना देती थी, आगे चलकर सामान्य गति के लिए भी इसका प्रयोग होने लगा । **वृत्त** का अर्थ है चक्र; इसकी आधारभूत क्रिया **वृत्** मानी गई है जो वास्तव में **वर्** का कृदन्त रूप है । **वर्त**—वर्णसंकोच से **वृत**—को फिर क्रियामूल बनाया गया । **वृत्** का अर्थ है चलना । संस्कृत में **वर्** क्रिया से **वार्, वारि** जलसूचक शब्द बने । गोलाकार वस्तुएँ आवेष्टन, आवरण का काम करती थीं; अतः **वार** वह स्थान

हुआ जो पशुओं और मनुष्यों की रक्षा के लिए बनाया गया। हिन्दी **बाड़ा** संस्कृत **वार** का रूपान्तर है; इसी का स्त्रीलिंग रूप **बाड़ी** (घर) बँगला में प्रचलित हुआ। **बाड़ा** का प्रतिरूप **पाड़ा** हिन्दी में मुहल्ले के नामों के साथ प्रयुक्त होता है। अंग्रेज़ी **वाल्** (दीवाल) **वार** का ही रूपान्तर है। संस्कृत **वार** में रोकने, घेरने, ढकने के अनेक परस्पर सम्बद्ध अर्थ हैं। **वार** का एक अर्थ है सिंहद्वार। तमिल **वारि** (द्वार) इसी **वार** का प्रतिरूप है। **वार** में जब अतिरिक्त द् ध्वनि जोड़ी गई तब **द्वार** रूप बना। संस्कृत **वार** का रूसी प्रतिरूप **वॉरोत्** (सिंहद्वार) है। हिन्दी **बरोठा** इसी **वॉरोत्** से सम्बद्ध है। **वार** का फ़ारसी प्रतिरूप **बार** (द्वार) है। **द्वार** का फ़ारसी प्रतिरूप **दर** है जो **वर** के रूपान्तर **द्वर** से बना है। संस्कृत **द्वार** का रूसी प्रतिरूप **द्वेर्** है। यद्यपि **वार** और **द्वार** मूलतः एक हैं किन्तु **द्वार** तो साधारण द्वारों के लिए प्रयुक्त होने लगा, **वार** बड़े द्वारों, सिंहद्वारों के लिए। रूसी **द्वेर्** सामान्य द्वार का अर्थ देता है, इसका वैकल्पिक रूप **द्वोर्** प्राङ्गण का। जहाँ प्राङ्गण हो, रूसी में वह स्थान **द्वॉरेत्स्** अर्थात् प्रासाद है। जो प्रासादों में रहें वे, रूसी में, **द्वॉर्यानीन्** (राजन्य) हैं, जो प्रासादों में उनकी सेवा करें, ये **द्वोर्न्या** (सेवक) हैं। फारसी ने **दर** और **बार** को जोड़कर **दरबार** शब्द बनाया। जो दरबार के बाहर सेवकभाव से खड़ा रहे, वह दरबान है, **द्वारपाल** है।

यद्यपि **वर्** क्रिया का व्यवहार भारतीय आर्य द्रविड़ भाषाओं में तथा इन्डो-यूरोपियन परिवार की अन्य भाषाओं में व्यापक रूप से होता था, फिर भी यह क्रिया एक अन्य **पर्** क्रिया का रूपान्तर है और यह **पर्** अन्य क्रिया **सर्** का रूपान्तर है। प्राचीन भाषाओं ने विकास की कितनी मंजिलें पार की हैं, उनमें कितने भिन्न स्रोतों से आये हुए भाषातत्वों का समन्वय हुआ है, इसका कुछ अनुमान **सर्-पर्-वर्** के परिवर्तन को देखने से ज्ञात होगा। ध्वनिरूप भिन्न हैं किन्तु सम्बद्ध शब्दों की अर्थ प्रक्रिया एक सी है। **सर्** क्रिया मूलतः वक्र गतिसूचक है। **वारि** के समान **सरिता, सरस्वती सर** जलसूचक शब्द हैं। जन्तु विशेष को **सर्प** कहते हैं क्योंकि वह वक्रगति से चलता है। वैदिक **वृत्र** भी सर्प है। **सर्** क्रिया से **सर्क** रूप बना, उससे फारसी **चर्ख**, संस्कृत **चक्र** बने। जो अर्थ **वृत्त** का है, वही **चक्र** का। अंग्रेजी **सर्क्‌ल्** (चक्र) सीधे **सर्** क्रिया से नहीं बना। इसका आधार लैटिन **किर्कुस्** (चक्र) है। स् ध्वनि **क्** रूप में ग्रहण की गई, तब लैटिन में **किर्कुस्**, ग्रीक में **किर्कॉस्** रूप बने। वर्णसंकोच से ग्रीक **किर्कॉस्** का एक वैकल्पिक रूप **क्रिकॉस्** भी बना। इन रूपों में **सर्** क्रिया की मूलध्वनि **र्** सुरक्षित रही किन्तु जहाँ वह ल् रूप में ग्रहण की गई, वहाँ ग्रीक रूप **कुक्लॉस्** बना। **चक्र** और **कुक्लॉस्** तथा **किर्कॉस्** की आधारभूत क्रिया **सर्** है।

संस्कृत में **परि** एक सम्बन्धक और उपसर्ग है जिसका अर्थ है चारों ओर, गोलाकार। **परिधि** का वही अर्थ है जो **बाड़ा** का है। **परि** का ग्रीक प्रतिरूप **पॅरि** है और इसका वही अर्थ है जो संस्कृत **परि** का है। जैसे **वर्** से कृदन्त **वर्त** बना, वैसे ही **पर्** से कृदन्त **पर्त** बनेगा। मूर्धन्य र् के संसर्ग से त् मूर्धन्य ट् में परिवर्तित होगा। **पर्त** के रूपान्तर होंगे **पट्ट, पट**। संस्कृत में **पट, पटल** आदि रूपों की व्याख्या के लिए **पट्** क्रिया की कल्पना की गई है और इसका अर्थ बताया गया है चलना। **पट** का अर्थ है वस्त्र। वस्त्र

का सम्बन्ध चलने से क्या हो सकता है ? किन्तु **पट्** का अर्थ चलना वैयाकरणों ने बिलकुल ठीक किया था। अभी वे **वर्त** और **पट** का सम्बन्ध भूले न थे, इसलिए उन्होंने **पट्** का वैसा अर्थ किया। **वर्** सामान्य गति की नहीं, वक्र गति की सूचक क्रिया है। इसीलिए उससे आवरण, वेष्टन आदि का अर्थ देने वाले शब्द बने। **पट** एक आवरण है, वह शरीर के चारों ओर लपेटा जाता है, इसलिए **पट** है। जो आवरण है, वह **पटल** है। जो **पटल** है, वह फ़ारसी में **पर्दा** है। तमिल में **पटल्, पटलइ** (अथवा पडल्, पडलइ) का अर्थ है ताड़ के पत्तों या काँटों की बनी टट्टी, पशुओं की रक्षा के लिए बनाया हुआ बाड़ा; कन्नड़ **पडि** का अर्थ है द्वार ! अवधी में **पटइला** उस लकड़ी के उपकरण को कहते हैं जिससे दोनों किवाड़े बन्द कर दिये जाते हैं।

जैसे **सर्** के रूपान्तर **पर्** से कृदन्त **पर्द** बना, वैसे ही **सर्** के रूपान्तर **कर्** से कृदन्त **कर्द** बना। कन्नड़ में **कद** का अर्थ है द्वार। कन्नड़ में **कद** से ही **कदवु** रूप भी बना; **कदवु** तमिल में भी है, अर्थ है वही—द्वार। **कर्द** से **कद**, वैसे ही **पर्द** से **पद**। तमिल में द्वार का अर्थ देने वाला **पद** शब्द नहीं है किन्तु **पुद** है। **पुद, पुदा, पुदवु, पुदवम्**—इन सभी तमिल रूपों का अर्थ है द्वार। जब **पर्** क्रिया में **त** या **द** के बदले कृदन्त प्रत्यय **क** या **ग** लगा, तब **पुद** के समानान्तर **पुग** रूप बना। तमिल में **पुगुदि** (मुख्य द्वार), **पुगुडि** (द्वार मार्ग), कन्नड़ में **पुगिल्** (द्वार) उसी **पर्** क्रिया से बने हैं।

जब **स्** ध्वनि **त्** रूप में ग्रहण की गई, तब **सर्** का रूपान्तर **तर्** हुआ। **तर्** के कृदन्त रूप **तर्त, तर्द** से तमिल की **तडु** क्रिया बनी जिसका अर्थ है रोकना; **तडइ** का अर्थ हुआ व्यवधान, द्वार, बाँध; **तडवु** का अर्थ है कारागार। जो अर्थ-प्रक्रिया संस्कृत **कारा** की है, वही तमिल **तडवु** की। जिस जलाशय के चारों ओर गोल बाँध बनाया जाय, वह संस्कृत **तटाक, तडाग** है। घास, लकड़ियों, पत्तियों आदि से जो व्यवधान बनाया जाय, वह तमिल में **तट्टि** है, हिन्दी में **टट्टी, टट्टर**।

आर्य-द्रविड़ भाषाओं की शब्द निर्माण-प्रक्रिया अर्थविचार से बहुत कुछ एक-सी है, इसका प्रमाण **सर्** क्रिया से बनने वाले संस्कृत शब्द हैं। द्रविड़ भाषाओं में **सर्** के रूपान्तर **पर्** और **पर्** के रूपान्तर **वर्** से बनने वाले शब्दों में ठीक वही अर्थ-प्रक्रिया दिखाई देती है जो संस्कृत में है। इन्डोयूरोपियन भाषाओं के अनेक शब्दों की व्याख्या **सर्-पर्-वर्** का सम्बन्ध पहचानने से की जा सकती है। **सर्** का अर्थ है वक्रगति से चलना, प्रवाहित होना, तेजी से चलना, सरकना, रेंगना। **सर्प** का उल्लेख पहले हो चुका है। संस्कृत **सरड** का अर्थ है साँप का रेंगना। **सार** का अर्थ है गति, मार्ग; जो निरन्तर गतिशील हो वह **संसार** है। **सारणी** का अर्थ है धारा; **सरट, सरघ्** हवा का अर्थ देते हैं। **सरट** या **सरटु** छिपकली है। **सारस** जलपक्षी है। **सर्** क्रिया से कृदन्त रूप **सर्ग** बना जिसका अर्थ है प्रवाह, हवा का झोंका, नदी, सृष्टि। **सर्ग** के प्रतिरूप **सर्ज** से पुनः क्रियामूल **सृज्** बना जिसका अर्थ है प्रवाहित होना, प्रवाहित करना; रचना इसका गौण अर्थ है। **विसर्जन** में **सृज्** का मूल अर्थ निहित है। **सर्** क्रिया में वक्रता का भाव है, अतः **सृगाल**—इसे और सुसंस्कृत किया तो **शृगाल**—का अर्थ हुआ वह पशु जो अपनी चतुराई या धूर्तता के लिए विख्यात है। **सर्** क्रिया तीव्र गति द्योतक है, अतः

सरंग, सारंग का व्यवहार हिरन के लिए हुआ, **कुरंग** के समान। **साल** का अर्थ है दीवाल, हाता; **साला** शब्द घर के लिए प्रयुक्त होता था, अंग्रेज़ी **हाल्** इस **साल** का रूपान्तर है। **स्** का तालव्यीकरण होने से **शाल** रूप मिला—बाड़ा, दीवाल, दरवार, अनेक सम्बद्ध अर्थ इसमें निहित हैं। **शाल** का प्रतिरूप है **शाला**—बड़ा कक्ष, घर, अस्तबल। संस्कृत में **सल्** क्रिया भी है जिसका अर्थ है चलना किन्तु संस्कृत मूलतः **र्** क्षेत्र की भाषा है, अतः उसमें **सर्** के आधार पर ही अधिक शब्द बने हैं। **सर** शब्द के गतिसूचक अनेक अर्थ हुए : गमन, वायु, झरना, जलाशय। **सरणि**—मार्ग; **सरण्यु**—वायु, जल, बादल, द्रुतगति; **सरण्य**—दौड़ना; **सरयू**—नदी विशेष (**गम्** क्रिया से **गंगा** के समान); **सरिर**—समुद्र, प्रवाह, **सलिल** के समान; **सरि**—झरना; **सरित्**—नदी; **सर्** क्रिया का जैसा वैभव संस्कृत में है, वैसा इन्डोयूरोपियन परिवार में अन्यत्र नहीं है। **स्रु** क्रिया **सर्** का ही प्रतिरूप है जिससे **स्रव, स्रवण, स्राव, स्रावण, स्रोत** आदि प्रवाहसूचक शब्द बने हैं। **स्रावण** के **स्** का तालव्यीकरण हुआ, तब वर्षा ऋतु का **श्रावण** मास प्राप्त हुआ।

सर् के रूपान्तर **पर्** का पूर्ण वैभव द्रविड़ भाषाओं में है। **पर्** मूलतः वक्रगति-सूचक है, अतः संस्कृत **सर्प** के समान कन्नड़ **पावु**, तमिल **पाम्बु** का हुआ अर्थ नाग। यहाँ **पा** क्रिया **पर्** का रूपान्तर है। द्रविड़ भाषाओं में **पर्** का **र्** बना रहता है और उसका लोप भी होता है। जब लोप होता है तब वह पूर्ववर्ती **अ** को **आ, ए** अथवा **ओ** में बदलता है। तमिल **पर**—उड़ना, तेज़ी से चलना; **परवइ**—पक्षी; **परि**—प्रवाहित होना; **परइ**—उड़ान, पक्षी; **पारु**—दौड़ना; तेलुगु **परवु**—सैलाब; तमिल **पाय**—दौड़ना, उड़ना, बहना; तमिल **पॆय्**—बरसना; **पॆयॆर्**—मुड़ना; **पॉळि**—प्रवाहित होना; **पोक्कु**—मार्ग; **पोक्किरि**—दुष्ट, कुटिल; **पोर्**—आवेष्टित करना; **पो**—जाना; **पोरु**—जाना; कन्नड़ **पाय्**—जाना; **परि**—प्रवाह, नदी; तुलू **परि**—मार्ग; तेलुगु **पारु**—दौड़ना, उड़ना; तमिल **पल्लि**—छिपकली; **पाडि**—नगर आदि शब्दों की आधारभूत क्रिया **पर्** है।

पर् की अपेक्षा उसके रूपान्तर **वर्** से संस्कृत में अधिक शब्द बने हैं किन्तु उसका व्यापक व्यवहार द्रविड़ भाषाओं में होता है। तमिल **वारि**—द्वार, पथ; **वरवु**—पथ, **वरि**—आवरण; **वरइप्पु**—दीवाल, बाड़ा; **वेय्**—आवृत करना; **वेलि**—दीवाल, हाता; **विरइ**—तीव्र गमन; **वायिल्**—सिंहद्वार, दरबार; **वाय्दल्**—द्वार; **वार्**—बहना; **वारि**—जल-मार्ग; **वळि**—मार्ग; **वळइ**—घेरना, चक्र, कंगन; **वळइप्पु**—प्राङ्गण; **वळइवु**—वृत्त; **वळइ**—वक्र होना; मोड़ना; मलयालम **वळप्पु**—हाता; ये शब्द संस्कृत **वल्**—घूमना, **वलय**—चक्र, कंगन से सम्बद्ध हैं। **वर्** के प्रतिरूप **वन्** से तमिल वन्द (सरिता) बना; लैटिन उन्द (जल, प्रवाह, लहर) इसी **वन्द** का रूपान्तर है। उन्द के **न्** का लोप होने पर संस्कृत **उद** (जल) रूप प्राप्त हुआ और इसे फिर **उद्** क्रिया बनाया गया। **उद्** क्रिया के **उन्दते** आदि रूपों में **न्** विद्यमान है। **उद्** से बहुत्वसूचक **उद्र**, फिर **समुद्र**। तमिल में एक नदीवाचक **वन्दि** शब्द है जहाँ **वर्** और **वन्** क्रियारूप मानो मिल गये हैं। वैसे **वर्** का कृदन्त रूप **वन्द** मज़े में बन सकता है। **वन्दि**

उन अपवाद रूपों में हैं जहाँ शब्द के आरम्भ में तमिल ने दो व्यंजन एक साथ रखे हैं। **वन्** क्रिया से वर्षा के लिए तमिल में **वाण्** शब्द बना; बँगला में **बन्या** और **बान** शब्द जलप्लावन के लिए प्रयुक्त होते हैं। ये उसी **वन्** क्रिया से बने हैं। **वन्** के वैकल्पिक रूप **विन्** से तमिल **विण्डु** (हवा) शब्द बना; अंग्रेजी **विन्ड्** (हवा) का आधार भी **वन्** क्रिया है। **वन्** के अन्य वैकल्पिक रूप **वा** से संस्कृत **वायु** बना जैसे **पो** (अथवा) **पव्** से **पवन** बना।

लैटिन **वॅर्तो, वॉर्तो** (घूमना, बदलना) **वर्** क्रिया के कृदन्त रूप हैं। इनसे **वॅर्तॅक्स्, वॉर्तॅक्स्** (भँवर), **वॅर्तीगो** (चक्कर खाना, चक्कर आना) शब्द बने हैं। **वॅर्तो** के वैकल्पिक रूप **वॅर्सो** से **वॅर्सुस्** (पंक्ति, कतार) शब्द बना। इसका मूल अर्थ है मुड़ना, उलटना। यह शब्द हल चलाने से बनी नाली के लिए प्रयुक्त होता था; वहाँ से कतार वाले अर्थ का विकास हुआ। तमिल **पाळि** का अर्थ है कतार, (नियमित मार्ग)। इसका संस्कृत प्रतिरूप **पालि** है। बँगला में **सारि-सारि** का अर्थ है कतारें। **सारि** का प्रतिरूप है **पालि**। **पर्** क्रिया के रूपान्तर **वर्** से लैटिन का **वॅर्सुस्** शब्द बना। लैटिन में **पर्** के वैकल्पिक रूप **पॉर्** से **पॉर्त** (द्वार) शब्द बना। वेल्श में **द्वार** का प्रतिरूप **दोर्** है, वर्णसंकोच से **द्रुस्** भी; लैटिन **पॉर्त** का वेल्श प्रतिरूप **पॉर्थ्** है। **वर्त** के आधार पर वेल्श में **कुअर्द्** (किवाड़) शब्द है। **पर्, वर्, द्वर्, क्वर्**—चार आधारभूत रूपों से वेल्श में चार द्वार-सूचक शब्द बने जिनकी अर्थ-प्रक्रिया एक है। **कुअर्द्** से संस्कृत **कपाट** की रचना-प्रक्रिया समझ में आती है। **कपाट** में **पर्** क्रिया नहीं है, **वर्** है; **वर्** के **व्** के पहले अतिरिक्त व्यंजन **क्** जोड़ा गया। **क्वर्त—कवट्ट—कपट्ट—कपाट,** कुछ इस तरह की प्रक्रिया से **कपाट** शब्द बना। पुनः **वर्** क्रिया में जो वक्रता का भाव है, उससे **कपट** शब्द धूर्तता का सूचक बना। (आगे देखेंगे कि **धूर्त** शब्द में इसी प्रकार अर्थ-निवेश हुआ है।) तमिल **पोक्किरि** का अर्थ दुष्ट इसलिए है कि **पो** क्रिया, सामान्य गति नहीं, मूलतः वक्र गतिसूचक थी।

सर्-पर्-वर् का सम्बन्ध जल से है, अतः संस्कृत **पोत** साधारण यान नहीं है वरन् जलयान है। **पो** क्रिया में आवेष्टन का भाव है, अतः संस्कृत **पोत** का एक अर्थ वस्त्र है, तेलुगु **पोरुव** (वस्त्र), तमिल **पोर्वइ** (उत्तरीय) के समान। ग्रीक **पॉरॉस्** का अर्थ है जलमार्ग, मार्ग जल के ऊपर से हो सकता है, जल को मँझाते हुए भी। **पो** क्रिया के कृदन्त रूप **पोत** से ग्रीक भाषा का नदीवाचक शब्द **पॉतमॉस्** बना। मलयालम **पॉळिल्** (रेतीला किनारा, भीगी हुई भूमि), कन्नड़ **पुळिल्** (तटभूमि) के साथ द्रविड़ व्युत्पत्तिकोश के लेखकों ने संस्कृत **पुलिन** को ठीक याद किया है। इसके साथ ग्रीक **पॉन्तॉस्**, लैटिन **पॉन्तुस्** (समुद्र) और **पॉन्स्** (पुल) का स्मरण करना भी उचित है। ग्रीक **पॉरॅइअ** का अर्थ है गमन, समुद्र-यात्रा, नदी पार जाना। संस्कृत **पंथ** मूलतः जलमार्ग का सूचक रहा है; **पर्** के प्रतिरूप **पन्** से यह शब्द बना। **न्** के लोप होने पर **पथ** रूप का भी चलन हुआ। **सर्** के रूपान्तर से से संस्कृत **सेतु** बना। **सर्** के रूपान्तर **पल्** से तमिल **पालम्** (पुल)। फ़ारसी **पुल** और तमिल **पालम्** एक दूसरे के प्रतिरूप हैं।

सर् क्रिया का **स्** जहाँ **क्** रूप में ग्रहण किया गया है, वहाँ सम्बद्ध शब्द द्रविड़ भाषाओं में प्राप्त है। कन्नड़ **कड** (जलमार्ग, नाव); तमिल **कडल्** (समुद्र); **कडवु**

(मार्ग); **कडवन्** (खेत में काटी हुई नाली); **कडइ** (द्वार); **कडावु** (प्रवाहित करना); तुलु **कडपुनि** (जल पार करना); तमिल **कडगम्** (कंगन); **कप्पल्** (जलपोत); **कप्पु** (आवृत करना); **कदळ्** (तेज़ भागना) की अर्थप्रक्रिया **वर्** क्रिया से सम्बद्ध शब्दों से मिलती-जुलती है। ये रूप **व्** के पहले **क्** जोड़ने से नहीं बने, **कर्** के कृदन्त रूप **कर्त** और **कर्प** को क्रिया मानकर इन रूपों की रचना की गई है। इसी शृंखला में संस्कृत **कटक** (कंगन, अँगूठी, करधनी) है।

पर् का एक रूपान्तर **मर्** था जिससे संस्कृत के **मृग** और **मार्ग** शब्द बने। अंग्रेज़ी **मार्च** (चलना) में यही **मर्** क्रिया है।

द्रविड़ भाषाओं में **वर्** का एक रूपान्तर **ओ** अथवा **ओर्** भी होता है। **सृगाल** के **सृ** में जैसे धूर्तता का भाव है, वैसे ही तमिल **ओरि** (सियार) की आधारभूत क्रिया **वर्** में है। एक अन्य पशु—भेड़िया—अपनी दुष्टता के लिए विख्यात था; **वर्** क्रिया के आधार पर उसे संस्कृत में **वृक** संज्ञा दी गई। **वृक** के प्रतिरूप अनेक इन्डोयूरोपियन भाषाओं में हैं; उसकी रचना-प्रक्रिया भारतीय **वर्** क्रिया को ध्यान में रखने से समझ में आती है। तमिल **ओ-नाय्** (भेड़िया) में **ओ** कपट और दुष्टता का सूचक है, **नाय्** का अर्थ है कुत्ता। प्राचीन गणसमाजों के लिए भेड़िया और सियार दोनों दुष्ट प्रकृति के पशु थे, इसका प्रमाण कन्नड़ **तोळ** (भेड़िया) है जिसके **ब्राहूइ** प्रतिरूप **तोल़** का अर्थ है सियार।

तमिल **ओडम्** (नाव) **पोत** का प्रतिरूप है। द्रविड़ व्युत्पत्तिकोश में तुलना के लिए संस्कृत **होड, वेडा, बेडा, वेटी** शब्द दिये गये हैं। तमिल **ओडम्** इसी **पो** अथवा **वो** से बनेगा। तमिल **ओडु** का एक अर्थ दौड़ना है, दूसरा नाव का चलना; **ओडइ** (जलाशय), **ओट्टम्** (धारा), **ओट्टु** (नाव का चलना) आदि से **ओडम्** और **ओडु** के सम्बन्ध का ज्ञान होता है। तमिल **ओ** जलप्रवाह रोकने का टट्टर है; मलयालम **ओगु, ओवु** जल के निकास का द्वार है। संस्कृत **ओघ** (जलप्रवाह) में यही **ओ** क्रिया हो सकती है। कुड़ुख **ओग्ना**, मल्तो **ओगे** का अर्थ तैरना है। संस्कृत क्रिया **ओज्** (समृद्ध होना, शक्तिशाली होना) में मूलतः प्रवाह का भाव है; तमिल **ओक्कु** (उठाना), **ओङ्गु** (ऊँचे उठना, बढ़ना) **ओज्** से सम्बद्ध प्रतीत होते हैं। **ओज्** का एक संस्कृत प्रतिरूप **एज्** (गतिशील होना) है जिससे तमिल **एगु** (चलना), **एरु** (उठना, चढ़ना), **ए** (समृद्धि), **एन्दु** (ऊँचे उठना) तुलनीय हैं। तमिल **ओदम्** (समुद्र, लहर, नमी) संस्कृत **उद** का प्रतिरूप है; **ओज्** और **एज्** के समान तुलु में एक रूप है **ओंद्दे**, दूसरा **वेंद्दे**; दोनों का अर्थ है गीला। इनका अवधी प्रतिरूप है **बाद** (गीला)। कन्नड़ **ओर, ओरॅ** का अर्थ है वक्रता, ढलान, दुष्टता; कन्नड़ **बार, बारॅ** का अर्थ है ढलानयुक्त। यहाँ **वर्, ओ, ओर्** का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। संस्कृत **वन्द्** का मूल अर्थ झुकना था जिससे सम्मान प्रदर्शित करने का अर्थ विकसित हुआ। अंग्रेज़ी **बॅन्ड्** में झुकने, मोड़ने का अर्थ निहित है। फ़ारसी **बन्दगी**, तमिल **वणक्कम्** (प्रणाम, पूजा) परस्पर सम्बद्ध हैं। तमिल **वणङ्गु** (झुकना) में अंग्रेज़ी **बॅन्ड्** की तरह क्रिया का मूल अर्थ निहित है।

वक्रता और ढलान का सम्बन्ध पहाड़ों से है। तमिल **वरइ** (पहाड़, पहाड़ी की

ढलान) में **वर्** का वक्रता वाला भाव है; तमिल **वरइ** (रोकना), **वारि** (द्वार, पथ) **वर्** क्रिया का भिन्न अर्थ सूचित करते हैं। तमिल **विन्डु** (पहाड़) में **वर्-वन्** की प्रतिरूप **विन्** क्रिया है। तमिल के **पॉरइ, परम्बु, वरइ, ओङ्गल** रूप **पर्, वर्, ओ** सम्बद्ध क्रियाओं से बने हैं और सभी का अर्थ है पहाड़। **पर्** के रूपान्तर **मर्** से कृदन्त **मर्त, मर्द, मद्द, मद** रूप बने। **मद्द** के आधार पर तमिल **माडु**, कन्नड़ **मेडु** और **मिट्ट**, गोंडी **मट्टा** रूप बने जिनका अर्थ है पहाड़, पहाड़ी। **मद** में अतिरिक्त **र** लगने से भारतीय गणवाचक नाम **मद्र** बना। नाम से सिद्ध है कि ये पहाड़ों के रहने वाले लोग थे। **मद्र** का रूपान्तर है **मल्ल** जिसका अर्थ इनके अच्छे योद्धा होने का प्रमाण है। **मल्ल** का मूल अर्थ है पहाड़ी। तमिल **मल्, मल्लम्** का अर्थ है कुश्ती, **मलइ** का अर्थ है लड़ना किन्तु तमिल में **मलइ** का अर्थ पहाड़ भी है। यही भारतीय काव्य का प्रसिद्ध **मलय** पर्वत है। **मलयालम्** उन लोगों की भाषा है जो पहाड़ों के रहने वाले थे। **मलइ** आदि शब्दों का सम्बन्ध **वर्** क्रिया के मूल अर्थों से है, यह तथ्य द्रविड़ भाषाओं की सम्बद्ध शब्दावली से प्रमाणित है। कन्नड़ **मलकु** (मोड़); **मल्लणि** (मुड़ना, इधर-उधर घूमना); तेलुगु **मलागु** (टेढ़ा होना, घूमना); **मलावु** (वापस लौटना); **मलाचु** (मोड़ना); **मलयु** (घूमना, ऐंठना); कन्नड़ **मलगु, मलंगु** (झुकना); तमिल **मळइ** (वर्षा, जल); **मर** (ढकना); **मरइप्पु** (पर्दा); तेलुगु **मॉरागु** (धोखा, धोखा देना, धोखा देने वाला); तमिल **मरि** (झुकना, लहर की तरह उठना, इधर-उधर चलना); **मरुगु** (चक्कर खाना, घूमना); **मरम्** (युद्ध); **मरवन्** (पहाड़ी प्रदेश का निवासी, योद्धा, दुष्ट); **मरुगु** (गली) आदि में **मर्, मल्, मळ्, मॉर्** क्रियाओं से वैसे ही अर्थ सम्बद्ध हैं, जैसे **वर्** और **पर्** से।

पुराणों में विख्यात एक पर्वत का नाम **मन्दर** था, दूसरे का **मेरु**। दोनों की आधारभूत क्रिया होगी **मन्, मर्**। लैटिन **मुन्दुस्** का एक अर्थ है संसार, दूसरा नारी के वस्त्र। दुनिया गोल है, गोल होने से उसे **मुन्दुस्** कहा गया; वस्त्रों को शरीर पर लपेटा जाता है, उनसे शरीर ढँका जाता है, अत: वे भी **मुन्दुस्** हुए। जैसे **उन्द** से **उद**, वैसे ही **न्** के लोप होने पर **मुन्द** से **मुद**। संस्कृत **मुद्रा** में **मुद्** का चक्र गति वाला भाव है। **मुद्रा** का वेल्श प्रतिरूप है **मॉद्रइ** (अँगूठी)। पहाड़ के लिए लैटिन शब्द है **मॉन्स्**। **मॉन्स्** और **मन्दर** एक ही **मन्** क्रिया से बने हैं। अंग्रेजी **माउन्टॅन्** (पहाड़), **माउन्ड्** (टीला) का आधार **मन्** क्रिया है। अंग्रेज़ी **माउन्ड्** का एक अर्थ सोने की गेंद है जो धरती या मुकुट का प्रतीक होती है। लैटिन **मुन्दुस्** की तरह यहाँ गोलाकृति वाला भाव बना हुआ है। जैसे संस्कृत **मुद्रा** शब्द सिक्कों का अर्थ देने लगा, वैसे ही लैटिन **मॉनेत** का अर्थ है सिक्के, जिससे अंग्रेज़ी **मनी** (रुपया पैसा) बना। लैटिन **मॉर** (रुकावट), **मोतॉ** (चलते रहना), **मोतुस्** (गति), **मोस्** (चलन, राह) इसी शृंखला के शब्द हैं।

संस्कृत **शृंग** का अर्थ सींग है, पहाड़ की चोटी भी। कारण है **सर्** क्रिया से सम्बद्ध वक्रता, ढलान का भाव। **शृंग** का वेल्श प्रतिरूप **कॉर्न्** (सींग) है और **क्रुग्** (पहाड़ी)। अंग्रेज़ी **क्रैग्** (पहाड़ी) वेल्श **क्रुग्** का प्रतिरूप है। वेल्श **क्रुन्** (गोल), **क्रुइद्रॉ** (घूमना), **क्रिमु** (झुकना), **कोर्दि** (घुमाना, मथना), **कॉर्नन्त्** (झरना), **कॉरुइन्त्** (चक्रवात)

में **सर्** के सुपरिचित अर्थ निहित हैं। **कॉरुइन्त्** का पूर्वरूप होगा **कॉरुविन्द**। जो अर्थ अंग्रेज़ी **विन्ड्** का है, वही इस **विन्द** का। **कॉरुविन्द** का शब्दश: अर्थ होगा **चक्रवात**। अंग्रेज़ी **क्रुक्** (मुड़ना, धूर्त) में वक्रता का भाव है। संस्कृत क्रिया **मंथ्** का अर्थ मथना इसलिए है कि मथानी चक्रगति में घूमती है। **मंथ्** के **न्** का लोप होने पर **मथ्** वैकल्पिक रूप बना।

जैसे **विश** के **वि** का पूर्वरूप **भि** था, वैसे यह बिलकुल सम्भव है कि **पर्** क्रिया का पूर्वरूप **भर्** हो। संस्कृत क्रिया **भ्रम्** घूमने, चक्कर लगाने का अर्थ देती है; कृदन्त रूप **भ्रम** को मूल क्रिया बनाया गया है। **भ्रम** की आधारभूत क्रिया है **भर्**। **भ्रम्** से जैसे **भ्रमर** शब्द बनता है, वैसे ही **भर्** से **भ्रमर** का अर्थ देने वाला संस्कृत का **भृङ्ग** शब्द बनता है। जैसे **सर्** (**शर्**) से **शृङ्ग**, वैसे ही **भर्** से **भृङ्ग**। जैसे **शृंग** के लिए **श्रम्** क्रिया की कल्पना व्यर्थ है, वैसे ही **भृङ्ग** के लिए **भ्रम्** क्रिया की कल्पना व्यर्थ है। **भ्रू** (भौंह) में यही **भर्** क्रिया है; **भ्रू** का सम्बन्ध भी **भ्रम्** क्रिया से जोड़ा गया है जो अनावश्यक है। **भ्रू** में जो वक्रता का भाव है, वह **भ्रम्** क्रिया को आधार मानने से स्वीकृत हुआ है।

भर्, भो, भन् आदि क्रियामूलों से संस्कृत के अनेक शब्द बने हैं जिनके अर्थ मिलते-जुलते हैं। **भंज्** का अर्थ तोड़ने के अलावा मोड़ना भी है। **भंग** का अर्थ है मोड़, धूर्तता, बोलने का घुमावदार ढंग। **भंग** सर्प विशेष का नाम भी है। **भुज्** (झुकाना, मोड़ना), **भुज, भुजा** (लपेट, बाँह), **भोग** (लपेट, सर्प), **भृगु** (ढलान) परस्पर सम्बद्ध शब्द हैं। **भृगु** (ढलान) का पूर्वरूप होगा **भर्ग**; इस भर्ग का रूपान्तर है जर्मन **बॅर्ग** (पहाड़)। संस्कृत **वंक** का पूर्वरूप है **भंग**; **पंगु** का मूल अर्थ होना चाहिए वक्र या विकृत आकार का प्राणी। **भंग** से **पंग**, **पंग** से **वंक** के विकास की कल्पना की जा सकती है। **पन्** जैसा रूप कभी प्रचलित था, इसकी कल्पना लैटिन क्रिया **पन्दो** से होती है जिसका अर्थ है झुकना, मोड़ना। **पन्** में कृदन्त प्रत्यय **द** जोड़ा गया, तब **पन्द** रूप बना, उससे लैटिन क्रिया **पन्दो** की रचना हुई; **पन्** में कृदन्त प्रत्यय **ग** जोड़ा गया, तब **पंग** रूप बना, उससे संस्कृत **पंगु** की रचना हुई। **पंग** या **पंक** का रूपान्तर होगा **वङ्क**। **भंग, पंग, वंक** की शृंखला सूचित करती है कि **पर्** और **वर्** क्रियाएँ, **सर्** के अलावा, **भर्** का विकास भी हो सकती हैं। **वंक** का समानार्थी रूप है **वक्र** जिसमें **वर्** क्रिया है। जैसे **सर्** या **चर्** से पहले **सर्क** या **चर्क** रूप बना, फिर उससे **चक्र** का विकास हुआ, वैसे ही **वर्** से पहले **वर्क** रूप बना, फिर उससे **वक्र** का विकास हुआ। जैसे **वन्** से **वंक**, वैसे ही **क** के स्थान पर **च** जोड़ने से **वंच**। **वंच** को मूल क्रिया बनाकर अर्थ किया घूमना, भटकना, ठगना। **वंचक, वंचित** आदि में क्रिया का वही वक्र गति वाला भाव है।

संस्कृत की एक क्रिया **धूर्व्** है जिसका अर्थ है झुकाना, मोड़ना। एक अन्य क्रिया है **ध्वृ**। उसका भी यही अर्थ है। ऐसा लगता है कि **धुर्** या **धूर्** क्रिया से **धुर्व** या **धूर्व** कृदन्त रूप बना; फिर उसे क्रियामूल मानकर **धूर्व्** और **ध्वृ** रूप रचे गये। संस्कृत **द्वार** का ग्रीक प्रतिरूप **थुर** है। यह **थुर** प्राचीन क्रिया **धुर्** से बना है। **धुर्** में जो वक्र गति का भाव है, वह संस्कृत **धूर्त** में सुरक्षित है। इसके अलावा संस्कृत **धुर**, हिन्दी **धुरी** वह लकड़ी है जिसके चारों ओर पहिया घूमता है। **ध्रुव** उस नक्षत्र को कहा गया जिसके

चारों ओर समस्त नक्षत्र घूमते प्रतीत होते हैं। **धर** और **धारा** शब्दों की सिद्धि के लिए **धाव्** (दौड़ना) या **धाव्** (धोना) क्रिया की कल्पना अनावश्यक है। जैसे **सर्** से **सरिता**, वैसे ही **धर्** से नदीवाचक **धारा**। **धारा** का अर्थ है पहिये की नेमि, पर्वत की चोटी, बगीचे के चारों ओर लगाई हुई बाड़। इन अर्थों का सम्बन्ध न तो दौड़ने से है, न धोने से, किन्तु वक्र गति से है। अतः **धुर्** के समानान्तर वक्र गतिसूचक **धर्** क्रिया की कल्पना करना युक्तिसंगत है। **धर्** की प्रतिरूप **धन्** क्रिया का चलन था, यह **धनु** (धनुष) से सिद्ध है। **धनु** में झुकने, मोड़ने वाला भाव स्पष्ट है।

धर् के वैकल्पिक रूप **धॉर्** से लैटिन और ग्रीक भाषाओं के **तॉर्** क्रियामूल का विकास हुआ। कारीगर अपना औजार घुमाता है, यह क्रिया लैटिन **तोर्नो** द्वारा व्यक्त होती है। ग्रीक **तॉर्नॉस्** बढ़ई का वह औजार है जिससे वह वृत्त बनाता है। स्पैनिश भाषा में **तोनरि्** का अर्थ है घुमाना। अंग्रेजी **टर्न** (मुड़ना, घुमाना) इसी शृंखला में है।

धर् और **धुर्** से **तर्** और **तुर्** जैसे रूपों का ही विकास नहीं होता, **सर्** और **सुर्** जैसे रूपों का विकास भी सम्भव है। संस्कृत **ध्वन** (ध्वनि) का आधार **ध्वन्** क्रिया है। संस्कृत **स्वन** का आधार **स्वन्** क्रिया है। जो अर्थ **ध्वन** का है, वही **स्वन** का है। **ध्वन** और **स्वन** का रूसी प्रतिरूप **ज़्वॉन्** है मानो यह दोनों के बीच की कड़ी हो। **धारा** जलवाचक शब्द है; जलवाचक **सर** का पूर्वरूप **धर** वैसे ही सम्भव है जैसे **स्वन** का पूर्वरूप **ध्वन** सम्भव है। तब **पर्** क्रिया का एक पूर्वरूप **भर्** हो सकता है, दूसरा **सर्**; इस **सर्** का पूर्वरूप **धर्** हो सकता है। अतः **वर्** क्रिया का विकास **भर्** से सम्भव है, **धर्** से भी।

संस्कृत **पुर** का अर्थ है दुर्ग। किसी स्थान को घेरकर जो गोल दीवार बनाई जाय, वह **पुर** है। ऐसा घिरा हुआ सुरक्षित स्थान **पुर** है, दुर्ग है। **दुर्ग** रूप बनेगा **दुर्** क्रिया से; **दुर्** का पूर्वरूप होगा **धुर्** जिसके अर्थ हम ऊपर देख चुके हैं। **पुर** रूप बनेगा **पुर्** क्रिया से, **पुर्** का पूर्वरूप होगा **भुर्**। **भृंग, भ्रू** आदि में **भर्** या **भुर्** क्रिया है। क़िले की दीवार में जो गोल रक्षास्थान बनाया जाता है, वह अरबी में **बुर्ज** है। पुरानी जर्मन में **पुरग्** और **बुर्ग्** दो रूप थे जिनका अर्थ था दुर्ग, नगर। **पुर, पुरग्, बुर्ग्** उस नगर को कहेंगे जिसके चारों ओर दीवाल हो। ग्रामसूचक **पुर** इससे भिन्न है। लैटिन में **उर्ब्स्** उस नगर को कहते थे जिसके चारों ओर दीवाल हो। स्पष्ट ही **पुर** के रूपान्तर **वुर** से इस **उर्ब्स्** की रचना हुई है। **पुर, बुर्ग्, बुर्ज, उर्ब्स्** का आधार **भुर्** है।

तमिल **अरण्** का अर्थ है दुर्ग। बरो और एमेनो ने संस्कृत **शरण** को इसका मूलरूप माना है। **शरण** में सुरक्षित स्थान का भाव तो है, दुर्ग वाला अर्थ क्षीण हो गया है। **शरण** का अर्थ दुर्ग था, यह तमिल **अरण्** से ज्ञात होता है। **शरण** की **शर्** क्रिया के प्रतिरूप **शल्** से **शाला** रूप बनेगा। **शाला** में घिरा हुआ स्थान, बाड़ा, दीवाल आदि अर्थ सुरक्षित हैं। **साल** (दीवाल, हाता), **साला** (घर) में **सल्** क्रिया है। **शल्, शर्, सल्, सर्** का पूर्वरूप **धर्** हो, यह सम्भव है।

धुर् के समान एक क्रिया **घुर्** थी जिससे संस्कृत रूप **घूर्ण** बना। बँगला **घुरनि** (घूमना), **घुरानो** (घुमाना), **घुरने** (चक्रवात), सिन्धी **घोरारो** (फेरीवाला) में वही **घुर्**

क्रियामूल है। हिन्दी **घूमना** का आधार **घूर्म** जैसा रूप हो सकता है, **घुम्** जैसा क्रियामूल भी। संस्कृत **घुंड** का वही अर्थ है जो **भ्रमर** का। **घुंड** की आधारभूत क्रिया होगी **घुण्**, **घुन्** या **घुम्**। **घुंड** का अन्य रूप **धंड** है। इस **घुंड** की आधारभूत **घन्** क्रिया को **घर्** का वैकल्पिक रूप मानना चाहिए। संस्कृत **घंस्** का अर्थ है बहना, धारा। यहाँ भी वही **घन्** क्रियामूल है। **झर्**, **क्षर्** आदि का मूल रूप **घर्** है, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। **घ्** ध्वनि **ज्** और **स्** में बदलती है, अतः **सर्** का पूर्वरूप **घर्** भी हो सकता है। संस्कृत **हिम** का मूल रूप **घिम** था, इसका ज्ञान **हिम** के ग्रीक प्रतिरूप **खेइम** से होता है। **हिम** के रूसी प्रतिरूप **जिम** में **घ्** ध्वनि **ज्** रूप में ग्रहण की गई है। **हिम** और **जिम** का कश्मीरी प्रतिरूप है **शीन्**। **ज्** ध्वनि अघोष होकर **स्** बनी, फिर **ई** स्वर के संसर्ग से उसका तालव्यीकरण हुआ। अतः **घर्** से **सर्** के विकास की सम्भावना ध्यान में रखनी चाहिए।

हिन्दी **घिरना**, **घेरना** के समान यदि प्राचीन क्रिया **घर्** का व्यवहार घेरने के अर्थ में होता रहा हो तो हिन्दी **घर** से इसका सम्बन्ध जोड़ना आकर्षक लगेगा। किन्तु **घर्** का सम्बन्ध अग्नि से, जलने से भी है। हिन्दी **घर** और संस्कृत **हर्म्य** का आधार अग्नि से सम्बद्ध **घर्** शब्दमूल है। मोनियर विलियम्स ने **हर्म्य** का सम्बन्ध **घृ** और **घर्म** से ठीक जोड़ा है; उन्होंने सही सुझाव रखा है कि **हर्म्य** का मूल अर्थ अग्निस्थान था। संस्कृत **गृह** की व्याख्या भी इसी प्रकार सम्भव है। **गृह** का **गृ** अग्निवाचक है जैसे **ग्रीष्म** का **ग्री** ऊष्मा का सूचक है। **गृ** और **ग्री** दोनों का आधार था **घर्**। **गृह** का पूर्वरूप होगा **गृध**; **गृध** उस स्थान को कहेंगे जहाँ अग्नि रखी जाय।

किन्तु संस्कृत **अगार**, **आगार** का आधार घेरने का अर्थ देनेवाली **घर्** क्रिया हो सकती है। **अजिर** रूप भी उसी क्रिया से बनेगा। लैटिन प्रतिरूप **अगॅर्** (मैदान) का एक अर्थ घाटी भी है। इन सब रूपों में **अ** उपसर्ग है और वह निषेधात्मक न होकर अर्थघनत्व का सूचक है। **कारागार** दो शब्दों के मेल से बना है; **कारा** और **आगार** या **अगार**, दोनों का अर्थ होगा घिरा हुआ स्थान। दोनों का मूलभूत आधार होगी **घर्** क्रिया। तमिल **काप्पु** (हाता, किला, कारागार) में वही क्रिया है जो संस्कृत **कारा** में है। एक अन्य **घर्** (वहन करना) क्रिया की चर्चा आगे होगी।

कहना अनावश्यक है कि जहाँ भी **क्-त्-प्** या **ग्-द्-ब्** से आरम्भ होनेवाले समानार्थी शब्द मिलें, वहाँ यह कल्पना न करनी चाहिए कि मूल शब्द **व्** से आरम्भ होता था और उसमें अतिरिक्त व्यंजन जोड़कर समानार्थी रूप बनाये गये हैं, और न यह मानना चाहिए कि भारतीय आर्य भाषाओं में **क्व**, **क्या** जैसे रूप प्राप्त हैं, अतः **क** स्वतन्त्र सर्वनाम मूल न था। भारतीय आर्य भाषाओं का **गरु** (संस्कृत **गुरु**) और ग्रीक **बरुस्** (भारी) एक दूसरे के प्रतिरूप हैं। इनका मूलरूप **वरु** नहीं है; **ग्-ब्** जोड़कर **ग्वरु**, **ब्वरु** जैसे रूप नहीं बनाये गये। **बरुस्** का आधार **भर्** क्रिया है, वहन करने के अर्थ में, और **भर्** किसी **भ्वर्** का रूपान्तर नहीं है। संस्कृत में संज्ञा रूप **भार** है; **गरु** के समान आर्य भाषाओं में **भरु** विशेषण नहीं है। ऐसा रूप प्रचलित था, इसका प्रमाण ग्रीक **बरुस्** है; ग्रीक रूप में आदि व्यंजन की महाप्राणता का लोप हो गया है, हिन्दी **भारी**

में वह सुरक्षित है। **भर्** के समानान्तर यहाँ **घर्** क्रिया प्रचलित थी; उससे **घरु** विशेषण बना। जैसे भर् से **बरु**, वैसे ही **घर्** से **गरु**। किन्तु भाषाविज्ञानी कहते हैं कि **गरु** और **बरु** का आदि व्यंजन मूलतः एक था—**ग्व्**। यह **ग्व्** अन्तस्थ **व्** में स्पर्श **ग्** जोड़ने से नहीं बना; वह भाषाविज्ञानियों के कल्पित क्ववर्ग की ध्वनि है, ग्रीक ने **व्** लिया और उसे **ब्** बनाया, संस्कृत ने **व्** छोड़ा, ग् से सन्तोष किया। ग्रीक **बरुस्** का सम्बन्ध उन्होंने संस्कृत भर् से नहीं जोड़ा, क्योंकि संस्कृत ध्वनि **भ्** की ग्रीक प्रतिध्वनि **फ्** है, यह नियम खण्डित होता था। **घर्** क्रिया से **गरु** का सम्बन्ध कल्पनातीत था।

वेल्श में **करिग्रॉ** क्रिया का अर्थ है वहन करना। **करिग्रॉ** और अंग्रेजी **कैरी** का आधार है प्राचीन **घर्** क्रिया। **घर्** और **भर्** दोनों क्रियाएँ गर्भ धारण करने, बच्चे को जन्म देने और उसका पालन करने से सम्बद्ध हैं। वेल्श में **गर्भ** के लिए दो शब्द हैं: **कॉथ्** और **ब्रु**। इनका मूल आधार **घर्** और **भर्** क्रियाएँ हैं। अंग्रेजी **मिस्कैरिज** (गर्भ-पात) में **कैरी** का गर्भ धारण वाला भाव विद्यमान है। **घर्** के रूपान्तर **गर्** से जैसे **गरु** विशेषण बना, वैसे ही **गर्** में **भ** प्रत्यय जोड़कर **गर्भ** बना। **गर्भ** का ग्रीक प्रतिरूप **दॅल्फ़ुस्** है। इसका आधार **धर्** (या **धृ**) क्रिया है। **भर्** के समान **धर्** का अर्थ भी वहन करना, पोषण करना है। जैसे **गर्** से **गर्भ** बना, वैसे ही **धर्** के रूपान्तर **दर्**—ग्रीक प्रतिरूप **दॅल्**—से **दॅल्फ़ुस्** बना। **गर्** से संस्कृत में भाववाचक संज्ञा **गर्व** बनी, वैसे ही **दर्** से गुरुत्वसूचक संज्ञा **दर्प** बनी। भारतीय **गरु** और ग्रीक **बरुस्** एक दूसरे के प्रतिरूप हैं; संस्कृत के **गर्व** और **दर्प** भी एक दूसरे के प्रतिरूप हैं। अति प्राचीनकाल में **घर्** और **धर्** क्रियाओं का व्यवहार होता था; फिर इनके रूपान्तर **गर्** और **दर्** का चलन भी हुआ। **भर्** के रूपान्तर **फॅर्** और **बर्** ग्रीक भाषा में पहुँचे; संस्कृत में **भर्** और **धर्** क्रियाएँ सुरक्षित रहीं; **घर्** क्रिया वहन करने के अर्थ में लुप्त हो गई, इसलिए कि आर्य भाषा केन्द्रों में **घ्**-क्षेत्र उत्तर में था और आर्येतर गणों, विशेषतः द्रविड़ों, से सर्वाधिक प्रभावित हुआ था। स्वाभाविक है, **घर्** के रूपान्तर **कर्** के आधार पर द्रविड़ भाषाओं में **गर्भ** आदि के प्रतिरूप बने हों। तमिल **करु** (भ्रूण), **करुप्पइ** (गर्भ), **करुवम्** (भ्रूण), तेलुगु **करुवु** (उप०) संस्कृत **गर्भ** से ही अपना सम्बन्ध सिद्ध नहीं करते, वे यह भी प्रमाणित करते हैं कि **घर्** क्रिया का प्रतिरूप **कर्**—वेल्श **करिग्रॉ**—केल्त भाषाओं में द्रविड़ प्रभाव से पहुँचा है।

भ्रूण में **भर्** क्रिया की वही भूमिका है जो **गर्भ** और **करुप्पइ** में **घर्** की है। वहन करने से भार और बड़प्पन के भाव सम्बद्ध हैं। इस कारण **घर्** से एक ओर गुरुत्व सूचक **घरु** बना जिसके रूपान्तर **गरु** और **गुरु** हैं, दूसरी ओर कन्नड़ **कर**, **करु** बने जिनका अर्थ है गुरुत्व, समृद्धि और शक्ति। **करु** से तमिल **करुमइ** (गरिमा, शक्ति) रूप बना। जैसे **गरु** में स्वर सामंजस्य उत्पन्न करके संस्कृत रूप **गुरु** बनाया गया, वैसे ही **करु** का संस्कृत रूप **कुरु** हुआ। **कुरु** (योद्धा, युवा, पुत्र) की व्याख्या **घर्** की रूपान्तर **कर्** क्रिया से बहुत अच्छी तरह हो जाती है। पुरानी आइरिश के **कुर्**, **कउर्** (वीर) भारतीय **कुरु** के प्रतिरूप हैं। अंग्रेज़ी **चाइल्ड्** (बच्चा) का पुराना रूप **किल्द्**, गौथिक **किल्थॅइ** (गर्भ), वेल्श **कॉथ्** (गर्भ), पुरानी आइरिश का **क्लन्द्** (बच्चे), तमिल **कळन्दइ**

(बचपन), कुळ (तरुण), पंजाबी कुड़ी (लड़की) संस्कृत कुरु से सम्बद्ध हैं। वेल्श कुथ् (समूह), कुर्द् (सभा), अंग्रेज़ी क्राउड् (भीड़) में कुरु का गणवाचक अर्थ निहित है। पुरानी फ़ारसी का कार् (सेना), पुरानी आइरिश का कॉरॅ (उप०), लिथुआनियन करस् (युद्ध) मूल क्रिया घर्—उसके रूपान्तर कर्—से वैसे ही सम्बद्ध हैं जैसे संस्कृत भर (युद्ध) की मूल क्रिया भर्—उसके रूपान्तर पर्—से तमिल पॉरु (लड़ना), पोर् (युद्ध) सम्बद्ध हैं। पर् से परु रूप बना, फिर स्वर-सामंजस्य के लिए वह पुरु में परिवर्तित हुआ, जैसे गरु रूप गुरु में परिवर्तित हुआ। कुरु और पुरु के समान तुर्वस, तुर्वसु प्राचीन गणवाचक भारतीय शब्द हैं। संस्कृत में तुर्, त्वर् का अर्थ है जीतना, परास्त करना; तुर का अर्थ है शक्तिशाली। जैसे भारतीय शक शब्द शक्तिशाली विदेशी गण-समाजों के लिए प्रयुक्त हुआ, वैसे ही तुरुक, तुरक, तुरुष्क, तुरष्क आदि शब्द विदेशी गणों के लिए प्रयुक्त हुए। वेल्श तुर् (समूह), तमिल तुरु (उप०), मलयालम तुरुक (उप०), कन्नड़ तुरुग (उप०) में तुरु का गणवाला अर्थ वैसे ही निहित है जैसे कुरु से सम्बद्ध शब्दावली में। जैसे कुरु की आधारभूत मूल क्रिया घर् है, वैसे ही तुरु की आधारभूत मूल क्रिया होगी धर्। अवधी (छत्तीसगढ़ी) टूरा (बच्चा) का सम्बन्ध तुरु से है। वेल्श प्लॅन्तिन् (बच्चा) का सम्बन्ध पुरु से है। आइरिश क्लन्द् (बच्च) का सम्बन्ध कुरु से है। कुरु-पुरु-तुरु की आधारभूत क्रियाएँ हैं घर्-भर्-धर्।

वेल्श ब्रुइद्रॉ (लड़ना), ब्रुइद्र् (युद्ध), ब्रुइद्रुर् (योद्धा), बुर् (शक्तिशाली), बुरु (मारना), ब्रेइर् (अभिजात), ब्रि (गौरव), ब्रु (गर्भ), ब्रगद् (सेना, युद्ध, सन्तान)—ये सब एक ही गोत्र के शब्द हैं और इनका आधार भर् क्रिया है। ब्रगद् रूप में युद्ध और सन्तान के दोनों अर्थ निहित हैं। रूसी में बॅरॅमॅनेत् (गर्भवती होना), बॉरोत्स्य (लड़ना), बॉर्ब (संघर्ष), बॅरॅच् (रक्षा करना), पुरानी जर्मन में बर्म (गर्भ), अंग्रेज़ी और गेलिक में बैर्न् (बच्चा), अंग्रेज़ी में बॅअर् (वहन करना), बर्थ् (जन्म), तमिल में पॉरु (लड़ना), अंग्रेज़ी में वार् (युद्ध)—ये समस्त रूप प्राचीन क्रिया भर् की शृंखला में हैं।

द्रविड़ भाषाओं में पॅर्, पॅद्, पॅन् जैसी क्रियाएँ प्रचलित थीं जिनका अर्थ था जन्म देना। तमिल पॅरु (जन्म देना), पेरु (शिशु का जन्म), पिर् (पैदा होना), पॅरवन् (पिता) का आधार पॅर् क्रिया है। पॅर् के प्रतिरूप पॅन् से तमिल पॅण् (लड़की, नारी) जैसे शब्द बने। पुरानी आइरिश का नारीवाचक शब्द बॅन् तमिल पॅण् का प्रतिरूप है। अरबी का बिन् (पुत्र) इसी शब्दक्रम में स्मरणीय है। द्रविड़ भाषा कोत में पॅड् (नारी), कोलमि में पॅद् (पुरुष) हिन्दी के बेटा, बेटी से तुलनीय हैं।

वेलश भाषा में कुम् का अर्थ है घाटी; कुमन् का अर्थ है झुकाव, कुम्पस् का अर्थ है गोल। कुम् का पूर्वरूप था कुभ्; यह वक्र गति सूचित करने वाली क्रिया थी। इससे संस्कृत में नदी विशेष का कुभा नाम पड़ा जिसके किनारे काबुल नगर बसा हुआ है। लैटिन कुब्रॉ का अर्थ है ढलान। ग्रीक क्रिया कुप्तो का अर्थ है आगे की ओर झुकना, कूफॉस् का अर्थ है झुका हुआ। कुप्तो के कुप् और कूफॉस् के कूफ् का आधार कुभ् है। स्लाव प्रदेशों की कुबान् नदी, कुभा के समान, कुभ् क्रिया से सम्बद्ध है। संस्कृत ककुभ में शब्द के आदिस्थानीय व्यंजन की आवृत्ति हुई है। ककुभ का एक अर्थ पर्वत है, दूसरा

वाद्ययन्त्र का मुड़ा हुआ काठ। इससे तुलनीय है ग्रीक **कुफोन्** जिसका अर्थ है मुड़ा हुआ काठ। संस्कृत **कुब्ज**, हिन्दी **कूबड़, कुबड़ा** का आधार वही **कुभ्** है। संस्कृत कोशों में एक शब्द **कुम्प** मिलता है जिनका अर्थ है टेढ़ी बाहों वाला। यहाँ **कुभ्** की **भ्** ध्वनि **म्** में परिवर्तित हुई है, वेल्श **कुम्** की तरह।

अब भारतीय **द्रविड़** और केल्त भाषाओं के **द्रुइद्** शब्दों की समानता पर विचार किया जाय। **द्रुइद्** का अर्थ है जादूगर; पुरानी आइरिश में यह कर्ताकारक का बहुवचन रूप है, एकवचन रूप **द्रुई** है। **द्रुइद्** के **द्** का लोप होने से **द्रुई** रूप बना है; **द्रुइद्** एकवचन रूप ही था, यह थुर्नेसँन की व्युत्पत्ति से स्पष्ट है: **द्रु + विद् = द्रुइद्**। केल्त समुदाय की भाषाओं में **विद्** क्रिया का व्यवहार व्यापक रूप से होता था, अतः यह व्युत्पत्ति विश्वसनीय है। उत्तर भारत की अनेक भाषाओं के समान पुरानी आइरिश में वर्णसंकोच की प्रवृत्ति है; **द्रु** का पूर्वरूप **दरु, दॅरु** हो सकता है। लैटिन में **द्रुइदॅस्** रूप केल्त भाषाओं से पहुँचा है; फ्रांस में रहने वाले केल्त जनों के गुरु, पुरोहित आदि के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता था। जैसे **मग** ईरानी जनों के पुरोहित और ऋषि थे, किन्तु **मग** से जादू का सम्बन्ध जुड़ गया और अंग्रेज़ी का **मॅजिक** शब्द बना, वैसे ही द्रुइद् का मूल अर्थ था ज्ञानी गुरु; फिर वह शब्द जादूगर के लिए प्रयुक्त होने लगा।

यदि द्रु का आधार **दर, दॅर** जैसा शब्द हो तो उसका पता लगाने में पुरानी आइरिश के **दॅर्ब्, दॅर्बश्रॅ, ईर्बॅ** (सुनिश्चित) रूपों से सहायता मिलती है। इनमें क्रिया-मूल **दॅर्** है जिससे मिलता-जुलता वेल्श रूप **तेर्** (स्पष्ट, शुद्ध) है। इसकी तुलना करनी चाहिए तमिल तॅरि (दिखाई देना, जानना), कन्नड़ तॅर (स्पष्ट या प्रकाशित होने की स्थिति) से। वेल्श **तेर्**, आइरिश **दॅर्**, तमिल तॅरि का अर्थ मिलता-जुलता है। भारत में ज्ञान उसे कहते हैं जिसकी खोज मनुष्य स्वयं करे, जिसे वह स्वयं देखे और पहचाने। तमिल **तॅरि** से संज्ञा रूप बना **तॅरिवु** (ज्ञान, विवेक)। **दॅरविद्, तॅरविद्** का अर्थ होगा ज्ञानी, ऋषि, **वेदविद्** के समान।

संस्कृत की **दृश्** क्रिया का आधार **दिर्** है, वर्णसंकोच से दृ, कृदन्त रूप दृश, पुनः क्रियारूप **दृश्**। अंग्रेज़ी **ड्रीम्** संज्ञा और क्रिया दोनों है, उसका आधार वही **दिर्** क्रिया है। इस प्राचीन **दिर्** का प्रतिरूप है तमिल **तॅरि**। द्रविड़ का पूर्वरूप हुआ **दॅरविद्, दॅर** का अर्थ हुआ दर्शन, ज्ञान; **द्रविड़** रूप **विद्** के **द्** के मूर्धन्यीकरण से बना; **विड़** ने **विद्** क्रिया को प्रच्छन्न कर दिया। **द्रविड़** का मूल अर्थ हुआ ज्ञानी, ऋषि, पुरोहित। **आन्ध्र** के समान **द्रविड़**, अपने अर्थ से विलग होकर, दक्षिण पहुँचा। किन्तु संस्कृत की भाषाई, दार्शनिक, साहित्यिक परम्परा में द्रविड़ शब्द का ज्ञान से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रह गया, इसके महत्वपूर्ण कारण हैं।

यहाँ ज्ञान की दो परम्पराएँ थीं, एक आप्तवाक्यमूलक, दूसरी विवेचनामूलक। ऋषियों ने जो कहा है, वह सत्य है, इस आस्था के अनुरूप ज्ञान का प्रतीक शब्द हुआ **वेद**। मनुष्य अपने विवेक से, संसार के प्रपंचों का विवेचन करके ज्ञान प्राप्त करता है, इस दृष्टिकोण के अनुरूप ज्ञान का प्रतीक शब्द हुआ **थेर**। बौद्ध साहित्य में **थेर, थेरवाद**

शब्द प्रचलित हैं। **थेर** शब्द को संस्कृत **स्थविर** का रूपान्तर माना गया है। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत अनेक मत हैं; उनमें एक **थेर** है। **स्थविर** तो सभी बौद्ध मतों में थे; किसी एक मत से उनका सम्बद्ध जोड़ना आश्चर्यजनक है। **थेरवाद** की विशेषता यह थी कि वह विवेक, विवेचन-पद्धति को ज्ञान का आधार मानता था। इसीलिए उसका अन्य नाम **विभज्जवाद** था। **विभज्ज** अर्थात् **विभाजन** करके भले-बुरे की पहचान करना **विभज्जवाद** है। इस तरह के ज्ञान का **स्थविर** शब्द से कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु तमिल **तॅरि** से उसका भरपूर सम्बन्ध है। **तॅरि** शब्द का अर्थ दिखाई देना, जानना के अतिरिक्त विभाजन करना, विवेचन करना, सुनकर ज्ञान प्राप्त करना भी है। ज्ञान-प्रक्रिया से सम्बद्ध होने के कारण **तॅरि** का अर्थ लिखना, व्याख्या करना भी है। यदि इस शब्द के आधार पर **तॅरिवाद** जैसा पारिभाषिक शब्द बनाया जाए तो उसकी वही व्यंजना होगी जो **थेरवाद** की है। **तॅरि** और **थेर** (सम्भवतः **थॅर**) को सम्बद्ध मानना चाहिए। इस स्थापना के लिए अन्य आधार भी हैं।

ग्रीक क्रिया **थॅओरॅओ** का अर्थ है देखना। संस्कृत में देखने के लिए सामान्य क्रियाएं **पश्** और **दृश्** हैं, **थ्** या **ध्** व्यंजन से आरम्भ होने वाली संस्कृत की कोई ऐसी क्रिया नहीं है जिसे **थॅओरॅओ** का प्रतिरूप कहा जा सके। ग्रीक भाषा में जहाँ महाप्राण ध्वनि हो, वहाँ यह सम्भावना बनी रहती है कि भारतीय आर्य भाषाओं में उसका प्रतिरूप होगा और इस प्रतिरूप में सघोष महाप्राण ध्वनि होगी। जैसे ग्रीक **अन्थ्रोपोस्** का कोई भारतीय प्रतिरूप भाषाविज्ञानियों ने नहीं बताया किन्तु वह **अन्ध्र**, **आन्ध्र** शब्दों से सम्बद्ध है, वैसे ही उन्होंने **थॅओरिओ** का कोई प्रतिरूप नहीं बताया किन्तु वह पालि **थेर** (अथवा **थॅर**) से सम्बद्ध है। **थॅर**, **थॅओरिओ** की आधारभूत भारतीय क्रिया होगी **धिर्**, **धॅर्**। ऐसी क्रिया यहाँ प्रचलित थी। इससे **धीर** शब्द बना। संस्कृत में दो भिन्न **धीर** हैं। एक **धीर** का अर्थ है धैर्ययुक्त; इसका सम्बन्ध स्थिरता के भाव से है। दूसरे **धीर** का अर्थ है बुद्धिमान, ज्ञानी। बुद्ध का एक नाम **धीर** है, उनकी विशिष्ट ज्ञान-पद्धति के कारण। इस **धीर** को **धी** (सोचना) से व्युत्पन्न माना गया है। **धी** स्वयं **धिर्** का वैकल्पिक रूप वैसे ही है जैसे **वर्** का वैकल्पिक रूप **वा** है। जैसे ऊपर विवेचित **विर्** क्रिया से **वीर** शब्द बना, वैसे ही **धिर्** से **धीर** बना। जैसे **आन्ध्र** का एक ग्रीक प्रतिरूप महाप्राण ध्वनि वाला **अन्थ्रोपोस्**, दूसरा अल्पप्राण ध्वनिवाला **अन्द्रॉस्**, उसी प्रकार **धिर्** क्रिया का एक भारतीय प्रतिरूप **थिर्** था, दूसरा **दिर्**। **दिर्** का सम्बन्ध **दृश्** से है, **थिर्** का **थेर** से। पालि **थेर** के समान और तमिल **तॅरि** के समान, ग्रीक **थॅओरॅओ** का अर्थ चिन्तन करना भी है। अंग्रेजी **थ्योरी** (सिद्धान्त) का आधार यही क्रिया है। जैसे **दिर्** के आधार पर अंग्रेजी **ड्रीम्** (स्वप्न) रूप बना, वैसे ही **थॅओर्** के आधार पर ग्रीक रूप **थॅओरेम** (दृश्य) बना। **थॅओरेम** का अर्थ चिन्तन का विषय, चिन्तन का निष्कर्ष अर्थात् सिद्धान्त भी है।

संस्कृत में एक शब्द **धिषण** है जिसका अर्थ है ज्ञान, ज्ञानी, गुरु, बुद्धिमान, वाणी। इसके लिए **धिष्** क्रिया की कल्पना की गई है। **धिष्** का पूर्वरूप होगा **धिस्** और इसका **स्**, **धिर्** के **र्** का ही विकल्प है। एक क्रिया **ध्यै** मानी गई है जिससे **ध्यायति** क्रिया रूप

बनता है, **ध्या** (चिन्तन), **ध्यान** आदि संज्ञा रूप। ग्रीक **थॅओरॅओ** में भी किसी वस्तु का ध्यान करने का भाव निहित है। **धी** (चिन्तन करना; ध्यान; चिन्तन; बुद्धि), **ध्यै, धिष्**, अनुमानित क्रिया **धिर्** परस्पर सम्बद्ध हैं। ये क्रियाएँ ध्यान, चिन्तन आदि के लिए संस्कृत में प्रयुक्त होती रहीं, किन्तु **थॅर्, थिर्, थेर** रूप अवैदिक ज्ञान परम्परा से सम्बद्ध हो गये।

केल्त भाषाओं के **द्रुइद्** की व्युत्पत्ति **विद्** क्रिया के आधार पर की गई है; इससे **द्रविड़** शब्द की व्युत्पत्ति और उसका मूल अर्थ समझने में सहायता मिलती है। यहाँ उल्लेखनीय है कि तमिल भाषा का कोई अपना शब्द न तो **द्** जैसी सघोष ध्वनि से आरम्भ होता है, न उसके आरम्भ में **द्-र्** जैसे दो संयुक्त व्यंजन आ सकते हैं। किन्तु **द्रविड़** शब्द तमिल **तॅरि** से सम्बद्ध अवश्य है और यह तॅरि ज्ञान की विवेचनात्मक परम्परा वाले पालि **थेर** से। इन्हीं से सम्बद्ध हैं वेल्श **तॅरु** (स्पष्ट करना), **तेर्** (स्पष्ट), **दॅअल्** (समझना)। आइरिश द्रुइद् के वेल्श प्रतिरूप **दॅरुइद्** में **दॅर्** क्रियामूल स्पष्ट है।

वेल्श में दॅर का अर्थ राक्षस है। राक्षस मायावी कहे जाते थे; वेल्श **दॅरुइद्** जादूगर थे। **दॅर** और **दॅर्** सम्बद्ध रूप हैं। अर्थविस्तार की दृष्टि से वेल्श भाषा का **अन्द्रस्** (शैतान) रूप तुलनीय है; इसका आधार **आन्ध्र** शब्द है। **द्रविड़** और **आन्ध्र,** दोनों से सम्बद्ध रूप राक्षसों का अर्थ देने लगे। वेल्श में **दॅर्** क्रिया के प्रथम व्यंजन को अघोष करने पर **तॅरु** (स्पष्ट करना, शुद्ध करना), **तेर्** (स्पष्ट, विशुद्ध) रूप बने, साथ ही भारतीय **दृश्** के आधार पर वेल्श में **द्रिख्** (दृश्य, दर्पण), **द्रिखवॅदुल्** (विचार, कल्पना), **द्रिखिओॅलअॅथ्** (प्रेत, मिथ्या प्रतीति) रूप बने। देखने की क्रिया से वास्तविक और मिथ्या प्रतीति, ज्ञान और माया, दोनों का सम्बन्ध है। लैटिन **दीवीनो** का अर्थ है भविष्य देखना, भविष्याणी करना। अंग्रेज़ी क्रिया **डिवाइन** इसी के आधार पर बनी है और उसका अर्थ भी वही है। वेल्श **दॅउइन्** का अर्थ है भविष्यवक्ता, जादूगर; **दॅउइनॅस्** का अर्थ है डायन। देवों-देवियों से जो बात करता था, वह भविष्य बताता था; इस तरह भारतीय **दिव्** क्रिया के आधार पर अर्थविस्तार करते हुए लैटिनो **दीवीनो,** वेल्श **दॅउइन्** रूप बने। जैसे **देव** शब्द ईरानी क्षेत्र में दानव का अर्थ देने लगा, वैसे ही वेल्श **दॅउइनॅस्** का अर्थ हुआ डायन। हिन्दी **डायन** भी, वेल्श **दॅउइनॅस्** के समान, देवी-देवता से सम्बद्ध है।

धॅर्, धिर् के रूपान्तर **दॅर्, दिर्** से वेल्श **दॅरुइद्**, आइरिश **द्रुइद्**, भारतीय **द्रविड़** शब्द बने। मूल अर्थ था ज्ञानी, विवेचक, गुरु; गौण अर्थ हुआ जादूगर। भारत में **द्रविड़** शब्द का अर्थ लुप्त हो गया।

केल्त भाषाओं के अध्ययन से अनेक भारतीय शब्दों के अर्थतत्व के विवेचन में सहायता मिलती है।

मगध के **मग** के समान अवध का **अव** भी गणवाचक होना चाहिए। वेल्श **अब्, अप्** भारतीय **अव** का रूपान्तर हैं। अर्थ है पुत्र। केल्त भाषाओं में **मक्** के समान इसे भी पिता के नाम के साथ जोड़ा जाता है। पुरानी आइरिश में **आउअ** (नाती) का आधार, थुर्नेसॅन के अनुसार, **अविओ** था जिसका सम्बन्धकारक रूप प्राचीन **ओगम्** अभिलेखों में **अवि, अव्वि** था। यहाँ मूल शब्द **अव्** और वेल्श **अप्** का सम्बन्ध देखा जा

सकता है। हिन्दी क्षेत्र में इस शब्द का अर्थ लुप्त हो गया है किन्तु नाग परिवार की **गलोङ्** भाषा में **अग्रों** का अर्थ है पुत्र। जैसे **लोगबाग** के **बाग** का अर्थ हिन्दी क्षेत्र में लुप्त हो गया है किन्तु नाग परिवार की **मॉन्पा** भाषा में इसका अर्थ जन बना हुआ है और यह रूप बहुवचन बनाने के लिए प्रयुक्त होता है—यथा **सोङ्ग बग्** (आदमी लोग) —वैसे ही **अव** का अर्थ गलोङ् में बना हुआ है। यही नहीं, यह गणवाचक शब्द नाग प्रदेश के एक प्रसिद्ध गण **आग्रों** या **अग्रों** के लिए प्रयुक्त भी होता है। लैटिन **अवुस्** (पितामह, पूर्वपुरुष) इसी शृंखला में है। जैसे तमिल **पॅण्** का अर्थ पुत्री और पत्नी दोनों है, **मगन्** का अर्थ पुत्र और पति दोनों हैं, वैसे ही **अव्** का मूल अर्थ जहाँ पुत्र है, वहाँ लैटिन में उसका अर्थ पितामह है। भारत में कई जगह **दादा** बड़े भाई को कहते हैं, पितामह को भी; संस्कृत **तात** पिता और पुत्र दोनों के लिए प्रयुक्त होता था। लैटिन **अवुस्** का लघुतासूचक रूप **अवन्कुलुस्** है जिसका अंग्रेज़ी रूपान्तर **अंकल्** अब पंजाबी प्रभावित हिन्दी में **अंकल्जी** बनकर प्रतिष्ठित है। जैसे मग जनों का स्थान **मगध** कहलाया, वैसे ही अव जनों का स्थान **अवध** कहलाया।

(ग) रूपतन्त्र

इन्डोयूरोपियन परिवार की अनेक भाषाओं के समान पुरानी आइरिश, क्रियापद रचना में, सर्वनाम-चिन्हों द्वारा कर्ता के पुरुष की सूचना देती है; इसके अतिरिक्त वह एक अतिरिक्त सर्वनाम चिन्ह जोड़कर उस सूचना को और पुष्ट करती है। **गुइद्मीनी** (हम प्रार्थना करते हैं)—यहाँ **मि** उत्तम पुरुष सर्वनाम की सूचना देने के लिए विद्यमान है; उस सूचना की पुष्टि हुई अतिरिक्त सर्वनाम चिन्ह **नी** से। पुरानी आइरिश क्रिया के बाद कर्ता सर्वनाम का व्यवहार इस प्रकार करती है: **इस्मे** (मैं हूँ); **इस् तू** (तू है)। क्रिया है **इस्**; उसके बाद सर्वनाम रूप **मे, तू** जोड़े गये। संस्कृत के **अस्मि** आदि रूप कैसे बने, यह केल्त भाषाओं की क्रियापद रचना देखकर समझा जा सकता है। मगही-मैथिली और कोल भाषाओं के समान पुरानी आइरिश में क्रिया के साथ प्रयुक्त सर्वनाम-चिन्ह कर्ता और कर्म दोनों की सूचना दे सकते हैं। **रॉ-म्-गब्**—उसने मुझे ग्रहण किया; **रॉ-न्न्-हीक्क्**—उसने हमें बचाया है; यहाँ **रॉ** उपसर्ग है, **म्** और **न्** कर्मसूचक सर्वनाम हैं। यहाँ कर्म क्रिया के पहले आया जैसे कि हिन्दी में आता है और अंग्रेज़ी में नहीं आता। **बॅइर्थ्-इ** (वह उसे ढोता है), **गॅग्न्-इ** (उसने उसे मारा)—यहाँ **इ** कर्मसूचक सर्वनाम है और, उक्त भारतीय भाषाओं के समान, क्रिया का अनुगमन करता है। **इ** सर्वनाम पुल्लिग और नपुंसक लिंग के एकवचन रूपों में प्रयुक्त होगा। **मोर्थ्-उस्** (उसे बड़ा करता है)—यहाँ **उस्** स्त्रीलिंग (एकवचन) का सूचक है। अनेक आर्य-द्रविड़ भाषाओं के समान—और अंग्रेज़ी से भिन्न—पुरानी आइरिश में क्रियारूप लिंग भी सूचित कर सकता है। **मोर्सुस्** (उन्हें बड़ा किया) में **उस्** बहुवचन है और तीनों लिंगों में अपरिवर्तित रहता है।

कर्मसूचक सर्वनाम क्रिया से पहले आता है, बाद को भी आता है, यह वाक्यतन्त्र की दो भिन्न पद्धतियों के मिलन का परिणाम है। केल्त भाषाओं के वाक्यतन्त्र में विधेय

का स्थान पहले होता है, उद्देश्य का बाद को। इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं के अन्य समुदायों में क्रिया से आरम्भ होने वाले वाक्य अपवादमात्र रह गये हैं, सर्वत्र सामान्य नियम है उद्देश्य पहले, विधेय बाद को। केल्त भाषाओं का सामान्य नियम है विधेय पहले, उद्देश्य बाद को। थुर्नेसॅन ने पुरानी आइरिश की क्रियापद रचना के प्रसंग में लिखा है कि क्रिया सदा वाक्य के आरम्भ में आती है। ध्वनितन्त्र के प्रसंग में उन्होंने यह भी लिखा है कि जहाँ क्रिया वाक्य के अन्त में आती है, वह रचना-पद्धति पुरानी पड़ चुकी थी। वास्तव में यह पुरानी पड़ चुकी पद्धति न थी, वरन् एक भिन्न पद्धति थी जिसने पुरानी आइरिश को बहुत कम प्रभावित किया। **पठामि**—संस्कृत का यह क्रियारूप पूर्ण वाक्य है जिसमें क्रिया पहले है, कर्ता बाद को है। **अहं पठामि**—यहाँ भिन्न पद्धति के अनुसार कर्ता **अहम्** पहले है, **पठामि** के **मि** का अवमूल्यन हो चुका है। **ख़ूनिक्** (देखा) **मी** (मैंने) **कू** (कुत्ता)—गेलिक का यह वाक्य केल्त भाषाओं की सामान्य वाक्यरचना पद्धति के अनुरूप है।

आयर्लैन्ड, स्काटलैन्ड और वेल्स के निवासियों ने अपनी भाषाओं की रक्षा के लिए भगीरथ प्रयत्न किया है। आयर्लैन्ड अंग्रेज़ों का उपनिवेश बन गया, स्काटलैन्ड और वेल्स एक ही राज्य के प्रदेश बन गये किन्तु आइरिश, गेलिक और वेल्श का वाक्यतन्त्र अंग्रेज़ी पद्धति से स्वतन्त्र रहा। मेरा अनुमान है कि हिन्दी के अनेक लेखक अंग्रेज़ी की वाक्यरचना से जितना प्रभावित हैं, उतना उससे वेल्श-गेलिक-आइरिश बोलने वाले सामान्यजन प्रभावित नहीं होते। स्वयं अंग्रेज़ों ने अपनी भाषा को लैटिन और फ्रान्सीसी से जितना प्रभावित होने दिया है, उतना उनसे इन केल्त भाषाओं ने स्वयं को प्रभावित होने नहीं दिया। अंग्रेज़ी की उच्चस्तरीय—कभी-कभी सामान्य—सामाजिक-सांस्कृतिक शब्दावली लैटिन और फ्रान्सीसी के सहारे बनी है; वेल्श ने ऐसी शब्दावली अपने भाषातत्वों से रची है। पारिभाषिक शब्दों के लिए वह ग्रीक-लैटिन का मुँह नहीं जोहती। ध्वनिशास्त्र के लिए ग्रीक **फोने** (ध्वनि) के आधार पर अंग्रेज़ी ने **फ़ोनेटिक्स्** शब्द बनाया किन्तु वेल्श ने अपनी क्रिया **सॅइनिऑ** के आधार पर **सॅइनॅग्** रूप बनाया। विभिन्न सामाजिक-प्राकृतिक विज्ञानों में यही स्थिति है। अंग्रेज़ी में **फ़िलौसफ़ी** है तो वेल्श में **अथ्रानिऐथ्**; अंग्रेज़ी में **जिऑलौजी** है तो वेल्श में **दैअरॅग्**। जहाँ ग्रीक-लैटिन मूल का शब्द आया है, वहाँ बहुधा वेल्श मूल का शब्द भी उसके साथ प्रयुक्त होता है जैसे **ऐटम्** के साथ **ग्रॉनन्**। कहीं-कहीं शब्द एक से हैं किन्तु उच्चारण में अन्तर है; अंग्रेज़ी **बाल्** (गेंद) वेल्श में **पेल्** है।

हिन्दी तथा भारत की अधिकांश भाषाओं में अंग्रेज़ी के ऐसे पचीसों शब्द आ गये हैं जिन्हें अपढ़ लोग भी बोलते और समझते हैं। **डायरी**, **बिल्डिग्**, **केमिस्ट**, **सर्टीफिकेट**, **इन्टरव्यू**, **जज**, **जंक्शन**, **लायब्रेरी**, **लाइसेंस**, **रिवौल्वर**, **रेलवे**, **प्लैटफार्म**, **युनिवर्सिटी**, **गवर्नमेंट**, **गवर्नर**, **कमीटी**, **एन्जिनियर**, **डिनर**, **एडीटर**, **डायरेक्टर**, **कर्फ्यू** आदि के लिए वेल्श के अपने शब्द हैं। **क्रिस्मस्** जैसे धार्मिक पर्व के लिए भी वेल्श का अपना शब्द है **नदॉलिग्**।

ब्रिटेन में हम भारतवासियों के सीखने के लिए अंग्रेज़ी के अलावा भी बहुत

कुछ है। ब्रिटिश राज्य का अंग बन जाने पर भी वेल्स अपनी भाषा की जातीय विशेषताओं की रक्षा करता रहा है। स्वाधीन भारत के नागरिकों के लिए यह तथ्य कम शिक्षाप्रद नहीं है।

केल्त भाषाओं से भारत की प्राचीन आर्य भाषाओं का गहरा सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध वैसा ही नहीं है जैसा इन भाषाओं से अंग्रेज़ी का है। यूरुप में लैटिन-जर्मन समुदायों की भाषाओं का जैसा प्रसार आज है, वैसा सदा नहीं था। इनके वर्तमान क्षेत्र के बहुत बड़े भाग में पहले केल्त-स्लाव भाषाएँ बोली जाती थीं। इन्डोयूरोपियन परिवार के निर्माण में प्राचीन भारतीय भाषाओं की भूमिका किस कोटि की है, यह जानने के लिए यूरुप के उस मानचित्र को सामने रखना चाहिए जिसमें केल्त-स्लाव भाषाओं का पुराना व्यवहार-क्षेत्र साफ दिखाई देता हो। आर्य-केल्त-स्लाव—यह सब पूरब है, एशिया है। बरो ने पूरब से, ईरान से ग्रीक भाषा-समुदाय का सम्बन्ध पहचाना; ग्रीक के साथ केल्त-स्लाव जोड़ देने से यूरुप के भाषाई मानचित्र में बहुत छोटा क्षेत्र बचता है। यह क्षेत्र लैटिन और जर्मन समुदायों का है। यह पश्चिम है, यूरुप है। एक बार भारतीय आर्य, ईरानी, ग्रीक, बाल्तिक-स्लाव और केल्त समुदायों की एशियाई विशेषताएँ समझ में आ जायें तो लैटिन-जर्मन समेत यूरुप के समस्त भाषा-समुदायों की एशियाई पृष्ठभूमि दिखाई देने लगेगी। इस पृष्ठभूमि में निर्णायक भूमिका भारत की प्राचीन आर्यभाषाओं की है।

६

ईरानी भाषा-क्षेत्र और भारत

१. पुरातत्व, सिन्धु घाटी, पुराणकथा

कहते हैं, आर्य लोग जब भारत आ रहे थे, तब पहले वे ईरान में रुके थे। उस समय तक भारतीय आर्य और ईरानी आर्य इन्डोयूरोपियन वृक्ष की एक ही शाखा थे। इस भारत-ईरानी शाखा के फल कहीं देखने को नहीं मिलते। ईरानियों की जो सबसे पुरानी पुस्तक है, वह ऋग्वेद से सैकड़ों साल बाद की है और उसमें भाषा का जो रूप है, वह विभक्त शाखा का है, संयुक्त शाखा का नहीं। वैदिक भाषा और अवेस्ता की भाषा मिलाकर संयुक्त शाखा बना ली जाय, तो यह प्रयत्न वैसे ही होगा जैसे कोई हिन्दी और मराठी को मिलाकर संस्कृत का रूप स्थिर करे। यद्यपि तुर्कों के आक्रमण ईरान से होकर नहीं हुए, उत्तरी मार्गों से हुए हैं, फिर भी कल्पना यह की गई है कि पश्चिमी एशिया के लोग भारत में ईरान होकर आते रहे हैं। ईरान में संयुक्त शाखा के आर्य विभक्त होकर जब भारत में आए, तब वे ठीक-ठीक किस मार्ग से आए, इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। जो भी हो, ईरान और भारत का सम्बन्ध वैसा ही माना गया है जैसा भारत में आर्यों और द्रविड़ों का। एक विजेता, दूसरा विजित; ईरानी विजेता, भारतीय विजित। संयुक्त शाखा के आर्य जब ईरान पहुँचे, तब वहाँ के किन आदिवासियों से उनका संघर्ष हुआ, इसके विवेचन से भाषाविज्ञानियों को दिलचस्पी नहीं है।

वैदिक आर्यों का सम्बन्ध ईरान के आर्यों से था, ऐतिहासिक भाषाविज्ञानियों की यह सामान्य धारणा है। वैदिक आर्यों से पहले सिन्धु घाटी की सभ्यता को ईरान से जोड़ना पुरातत्वज्ञों का काम है। और यहाँ भी सभ्यता का मूल केन्द्र ईरान है, भारत वहाँ से सभ्यता के तत्व प्राप्त करने वाला सांस्कृतिक दृष्टि से विजित और पराधीन देश है। किसी कारण संयुक्त शाखा के जो आर्य ईरान में रह गए, उनमें अनेक प्रकार की रचनात्मक क्षमता का विकास हुआ, और भारत में जो आर्य आए, उनकी रचनात्मक क्षमता नष्ट हो गई, शायद द्रविड़ों के सम्पर्क से। यह बात अलग है कि भारतीय आर्यों के ऋग्वेद को साहित्य, इतिहास और भाषाविज्ञान में जैसा महत्व प्राप्त है, वैसा ईरान के किसी ग्रन्थ को प्राप्त नहीं हुआ और द्रविड़ों में तमिल भाषा का साहित्य जितना पुराना है, उतना फ़ारसी का नहीं। भारत में पुरातत्व विभाग में महानिदेशक के पद पर किसी समय आर. ई. ऐम. व्हीलर नाम के सज्जन काम करते थे। वह नवम्बर १९४५ में भारत की अंग्रेज़ सरकार के सांस्कृतिक शिष्टमण्डल के नेता होकर ईरान गये थे। वहाँ उन्होंने भारत और इस्लाम से पहले के ईरान पर एक व्याख्यान दिया

जो भारत के पुरातत्व विभाग की पत्रिका **ऐन्शेन्ट् इन्डिया** (जुलाई १९४७-जनवरी १९४८) में प्रकाशित हुआ। स्वाधीन भारत में प्रकाशित होने वाला इस पत्रिका का यह पहला अंक है और व्हीलर का व्याख्यान पुरातत्व में अंग्रेजों द्वारा स्थापित परम्परा का ऐसा प्रतीक है जो स्वाधीन भारत में भी सार्थक बना हुआ है।

इस व्याख्यान में व्हीलर ने कहा कि ईरानी पठार एशियाई संस्कृतियों के संचरण का मार्ग बहुत दिनों से रहा है। भारत की प्राचीनतम सभ्यता, ईसापूर्व तीसरी सहस्राब्दी में सिन्धु घाटी की सभ्यता, का कुछ सम्बन्ध उस युग की ईरानी सभ्यताओं से रहा है यद्यपि उस सम्बन्ध की रूपरेखा अभी अनिश्चित है। इसके बाद कल्पना करनी होगी कि जिन आर्य आक्रमणों की बात बहुत कही जाती है, उनका कुछ न कुछ सांस्कृतिक प्रभाव पूर्वी ईरान और उत्तर-पश्चिमी भारत पर अवश्य पड़ा होगा। फिर ५१८ ई० पू० के बाद ईरानी साम्राज्य भारत में भी फैला और जब ३२६ ई० पू० में इस साम्राज्य का उत्तराधिकारी बनकर सिकन्दर ने भारत में प्रवेश किया, तब उसने पूर्व में यूनानी प्रभाव के विस्तार के लिए ही मार्ग प्रशस्त नहीं किया वरन् भारत और ईरान के पारम्परिक सम्बन्धों को भी पुष्ट किया।

व्हीलर के इस विवरण में नादिरशाह का नाम और जोड़ देना चाहिए; इससे अंग्रेजों के राजा बनने से पहले तक भारत ईरान की ऐतिहासिक परम्परा का विवरण पूरा हो जाएगा। अपने व्याख्यान में व्हीलर ने आगे कहा कि मोएन्जोदड़ो और हड़प्पा में नागरिक जीवन का जो चित्र मिलता है, वह उस समय का है जब ऐसे जीवन के नमूने बहुत थोड़े थे। यह निश्चित है कि दक्षिण-पश्चिमी ईरान तथा इराक में ऐसा विकास पहले हुआ था और भारत में वैसा विकास बाद में हुआ। इससे यह निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि दोनों में कोई कार्यकारण वाला सम्बन्ध अवश्य था। पश्चिमी एशिया के प्राचीन नगर उर के विपरीत मोएन्जोदड़ो में नागरिक सभ्यता अचानक अपनी पूर्णता में दिखाई देती है। इससे विदित होता है कि नागरिक सभ्यता की पूर्व परिष्कृत योजना कहीं बाहर से लाकर यहाँ स्थापित की गई है। यह सही है कि मोएन्जोदड़ो के निम्नतम स्तरों की छानबीन अभी नहीं हुई, इसलिए एक नाजुक मंज़िल पर हमारी जानकारी अधूरी है। फिर भी काफी गहरी खुदाई करने पर जो समकोण आवासों की पंक्तियाँ मिली हैं, लम्बी सीधी, जल-प्रवाह के लिए अच्छी व्यवस्था वाली वीथियाँ मिली हैं, उनसे नगर-निर्माण के लिए एक सुनिश्चित ढाँचे का पता चलता है और पता चलता है कि इस सभ्यता के शुरूआती दौर में ही अनुभवी स्थापत्यकार निर्माण योजना का संचालन कर रहे थे। इसके विपरीत उर में टेढ़ी-मेढ़ी गलियाँ हैं, उनसे पता चलता है कि बुनियादी ढाँचा एक गाँव का है और नगर-निर्माण उसी के आधार पर विकसित हुआ है। यह बराबर मानते हुए कि हमारी जानकारी अधूरी है, ऐसा प्रतीत होता है कि इराक में एक धारणा का प्राचीन विकास दिखाई देता है, वही धारणा परिष्कृत होकर बाद को भारत में स्थापित हुई है। यदि यह निष्कर्ष सही हो तो हमें कल्पना करना पड़ेगा कि नगरनिर्माण की धारणा किसी न किसी रूप में इराक या दक्षिण पश्चिमी ईरान से भारत में आई; भारत ने, उससे भिन्न सभ्यता के परिवेश

में, उसे संशोधित किया और वह परिवेश तत्वतः भारतीय था। भारत की प्रतिभा जिस ढँग से काम करती रही है, यह भी उसी के अनुरूप है। आगे चलकर ईरानी स्थापत्य के नमूने भारत पहुँचे और हिन्दुस्तान के परिवेश के अनुरूप हिन्दू मानस ने उन्हें नया रूप दिया। इसी पद्धति को ध्यान में रखते हुए सिन्धु घाटी की सभ्यता से ईरान और इराक की समकालीन तथा पूर्वकालीन सभ्यता के सम्बन्ध की कल्पना करना उत्तम होगा।

ईरानी प्रभाव से, व्हीलर के अनुसार, सिन्धु घाटी की सभ्यता का विकास हुआ और फिर ईरान से आने वाले आर्यों ने इस सभ्यता का नाश कर दिया मानो मुगलों की दिल्ली पहले तो ईरानी स्थापत्य से प्रभावित हुई हो और फिर नादिरशाह ने आकर उसका नाश कर दिया हो। व्हीलर कहते हैं, मैं इस पर लिख चुका हूँ कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के विध्वंस के लिए ईरान से पहुँचने वाले आर्य आक्रमणकारी हो सकते हैं। यह कल्पना नयी नहीं है किन्तु सिन्धु घाटी के दो प्रमुख नगरों में जो भारी किलेबन्दी अभी हाल में पहचानी गई है, उससे यह कल्पना कुछ और पुष्ट होती है। दूसरी सहस्राब्दी के आरम्भ में सिन्धु घाटी की सभ्यता अभी बनी हुई थी, इसके पुरातात्विक प्रमाण हैं। पंजाब में आर्यों के मुख्य अभियान का सामान्य स्वीकृत समय पन्द्रहवीं सदी ई० पू० है। यह समय उक्त काल के निकट है। आर्य-अभियान के उक्त काल से मार्शल की यह तर्क-संगत स्थापना मेल खाती है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता तत्वतः अनार्य थी। ऋग्वेद में सप्तसिन्धु देश में महान् अभियान का कुछ चित्र मिलता है। उसमें पुरों या दुर्गों का निरन्तर उल्लेख है, जो पुर या दुर्ग आक्रमणकारियों के मार्ग में पड़ते थे। आर्यों के युद्धदेवता इन्द्र पुरन्दर हैं; उन्होंने नब्बे, निन्यानबे, एक सौ दुर्गों का विध्वंस किया। मोएन्जोदड़ो की सबसे ऊपर वाली सतहों में पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे मिलते हैं जिनका संहार किया गया था। व्हीलर पूछते हैं : सिन्धु घाटी के नगरों को छोड़कर ऐसे अनार्य दुर्ग और कहाँ थे जिन पर इन्द्र और उनके आर्य अनुगामी अपनी शक्ति की परीक्षा करते ? फिर कहते हैं, इनके किन्हीं प्रतिद्वन्द्वी दावेदारों का हमें ज्ञान नहीं है (अर्थात् सिन्धु घाटी के से मजबूत किले दूसरी जगह नहीं हैं)। ज्ञान की वर्तमान स्थिति में यह निष्कर्ष उचित है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता जब बुढ़ा गई, तब उन लोगों ने उसका नाश कर दिया जिन्होंने ईरान को यह नाम दिया था (अर्थात् आर्य शब्द से ईरान नाम पड़ा और इन ईरानी आर्यों ने भारत की प्राचीन सिन्धु सभ्यता का नाश किया)। यह पड़ोसियों के अति उत्साह का एक कार्य था जिससे भारत ने एक प्राचीन सभ्यता खोई। यह सभ्यता प्राचीन होने के साथ शायद जराजीर्ण हो चुकी थी। ईरान ने इसका नाश किया किन्तु एक अधिक आधुनिक सभ्यता के नये अनगढ़ उपकरण भी दिए।

आगरा नागरी प्रचारणी सभा के भूतपूर्व अध्यापक द्वारिकाप्रसाद द्वारिकेश कई वर्षों से अमरीका में भाषावैज्ञानिक काम कर रहे हैं। पिछले साल (१६७७ में) भारत आए थे तो उन्होंने यह सूचना दी कि उन्होंने वहाँ पुरातात्विक भाषाविज्ञान की नयी लीक चलाई है। पुरातत्व के ज्ञान के बिना ऐतिहासिक भाषाविज्ञान अनैतिहासिक

अविज्ञान रहता है । इस बात का उल्लेख मैंने सिर्फ इसलिए किया कि सिन्धु घाटी और व्हीलर का उल्लेख पाठकों को अप्रासंगिक न लगे । वैसे भाषाओं के विवेचन में कहीं-कहीं पाठकों को समाजशास्त्रीय दृष्टि परेशान कर सकती है । इसके लिए भी मैं कह दूँ कि डाक्टर डी० पी० द्वारिकेश ने मुझे बताया कि अमरीका पहुँचकर उन्होंने ही पहले सोशियो लिंग्विस्टिक्स (समाजी भाषाविज्ञान) की नींव डाली थी; वह ढर्रा पुराना पड़ गया, इसलिए उन्होंने पुरातात्विक भाषाविज्ञान की नयी लीक चलाई ।

अस्तु; व्हीलर की तर्कयोजना उस विवेचन-पद्धति का अच्छा नमूना है जिसमें अर्वाचीन इतिहास-सम्बन्धी धारणाएँ प्राचीन इतिहास पर आरोपित की जाती हैं। पुरातत्व कहाँ समाप्त होता है और पौराणिक गाथा कहाँ शुरू होती है, यह कहना कठिन है। सिन्धु घाटी का विनाश इन्द्र के अनुगामी आर्यों ने किया, इसका मुख्य प्रमाण **पुरन्दर** शब्द है । इस प्रकार व्हीलर ने द्वारिकेशजी से पहले ऐतिहासिक भाषाविज्ञान और पुरातत्व का सम्बन्ध स्थापित कर दिया था । इस **पुर** का प्राकृत रूप **वुर** प्रसिद्ध है। कश्मीर में इसी का स्त्रीलिंग रूप **वुड़ी** अब भी कायम है । **उर** स्थानवाचक शब्द के रूप में सारे भारत में, विशेषतः दक्षिण भारत में, मिलता है । यही **उर** इराक में है जिसकी खुदाई में गाँव का ढाँचा मिला था। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान को यह तै करना है कि **पुर** और **उर** का आपस में सम्बन्ध है या नहीं और यदि है तो पूर्वरूप **उर** है या **पुर** । भारत के भाषायी परिवेश में ध्वनि-परिवर्तन की वह पद्धति प्राकृत में खूब सुरक्षित है जो **वुर** का पूर्वरूप **पुर** मानती है। इसके सिवा द्रविड़ भाषाओं में **प्-व्** वाला परिवर्तन बहुत जगह देखने को मिलता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान की दृष्टि से **पुर** शब्द प्राचीन है, वह भारत से इराक पहुँचा है और अपने प्राकृत रूपान्तर **उर** नाम से प्रसिद्ध हुआ है । **उर** की ओर से आने वाले आर्य आक्रमणकारियों को **उरन्दर** का उपासक होना चाहिए था पर वे इन्द्र को **पुरन्दर** कहते थे ।

दुर्ग-निर्माण और दुर्ग-विध्वंस की कथाएँ वैदिक साहित्य तक सीमित नहीं हैं । उनका विस्तार महाकाव्यों और पुराणों में और भी अधिक है । रावण लंका नगरी में रहता था और यह नगरी परकोटे से घिरी हुई थी । हनुमान इस पुर अथवा दुर्ग में दीवाल फाँदकर पहुँचे थे और राम की सेना के लिए विभीषण की सहायता के बिना लंकाविजय कठिन होती । नगर-निर्माण से मयदानव का नाम जुड़ा हुआ है । यह **मय** **मग** का प्राकृत रूपान्तर है। मगध के जरासन्ध से कृष्ण आदि महापुरुषों का बैर था पर कृष्णजी ने इन्द्र का विरोध करते हुए गोवर्धन पर्वत की महिमा बढ़ाई थी । पुरन्दर का विरोध करने वाले सिन्धु घाटी में रहे हों चाहे न रहे हों, शूरसेन जनपद में अवश्य थे । मगध आर्येतर अर्थात् अवैदिक विचार-परम्पराओं का केन्द्र रहा है। मगध के मग ईरान पहुँचे थे और वहाँ उन्होंने पुरोहितों का काम किया था, यह इतिहास का स्वीकृत तथ्य है । ईरान में ये अपनी तन्त्र विद्या भी ले गए थे, इसका प्रमाण अंग्रेज़ी का **मैजिक** शब्द है जो ईरान के मार्ग से, मग संसर्ग प्रमाणित करता हुआ, इंग्लैंड पहुँचा था; पहले यूनान, फिर यूरुप पार करके इंग्लैंड । सिन्धु घाटी की सभ्यता में योग, लिंग और नाग-पूजा के जो चिन्ह हैं, उन्हें इतिहासकार अवैदिक तो मानते हैं पर मगध से उनका

सम्बन्ध नहीं जोड़ते। आर्यभाषाएँ बोलने वाले सभी कबीले वैदिक रीति पर चलते थे, यह आर्य आक्रमण के कथावाचकों ने पहले से मान लिया है। जो अवैदिक है, वह भाषा की दृष्टि से आर्येतर भी हो, यह आवश्यक नहीं है। आर्यभाषाएँ बोलना एक बात है, उन बोलने वालों का एक ही संस्कृति में दीक्षित होना और बात है।

इन्द्र पुरन्दर है, उरन्दर नहीं। उर-निवासी आर्य इन्द्र नाम से परिचित थे या नहीं या अकस्मात् भारत में आकर उन्हें इस देवता का ज्ञान हुआ और वे उसकी जै बोलते हुए किले पर किला फतह करते चले गए? ईरान में इन्द्र की उपासना होती थी, इसका प्रमाण नहीं है। अग्नि की पूजा अनेक गण समाज करते थे और ऋग्वेद में भी अग्नि युद्ध में सेना के आगे चलने वाला पुरोहित है। सिन्धु घाटी की नगर-निर्माण-कला भारतवासियों ने ईरान-इराक में सीखी थी; दुर्ग-विध्वंस का कौशल आक्रमणकारी आर्यों ने कहाँ सीखा था? दुर्ग तो भारत में थे; गांव के नमूने पर बने हुए नगरों में रहने वाले ईरानी आर्य अचानक दुर्ग-विध्वंस कौशल कैसे सीख गये? १९४७ ई० से पहले भी पुरातत्वज्ञ यह जानते थे कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के दो ही केन्द्र नहीं हैं; उसके अवशेष और बहुत से स्थानों में मिले थे। इसीलिए ह्वीलर ने मोहनजोदड़ो और हड़प्पा को सिन्धु घाटी के दो प्रमुख नगर कहा है। अन्य नगर, उपनगर, ग्राम आदि उस सभ्यता के क्रमिक विकास का परिचय दे सकते हैं जिसकी उत्कृष्ट परिणति दो प्रमुख नगरों में हुई। इन नगरों के निम्नतम स्तरों की छानबीन के अभाव में यह और भी आवश्यक है कि अन्य स्थानों पर सिन्धु-सभ्यता के जो अवशेष मिलते हैं, उनका तुलनात्मक अध्ययन किया जाए। ताजमहल जैसी इमारत का पहला नमूना इस इमारत के नीचे ही खोदने पर मिलेगा, यह आवश्यक नहीं है। आगरे से दूर उत्तर में हुमायूँ का मकबरा जैसी इमारत उसका पहला नमूना है। और आगरे से दूर दक्खिन में औरंगज़ेब का मकबरा उसका दूसरा नमूना है जिसमें ताजमहल की भोंड़ी नकल की गई है। यह नकल अपरिपक्व कौशल का नमूना है, उससे यह सिद्ध नहीं होता कि औरंगज़ेब का मकबरा देखकर उसके बाप ने आगरे में अपनी बेगम का मकबरा बनवाया था।

ईरान से आने वाले आक्रमणकारी आर्य सिन्धु को सिन्धु ही कहते थे या हिन्दु कहते थे?

२. प्राचीन ईरानी

सिन्धु घाटी की सभ्यता, सिन्धु नदी अथवा सिन्धु प्रदेश से सम्पर्क होने पर ईरानी लोग हिन्दु शब्द का प्रयोग ही करते थे, यह प्रमाणित तथ्य है। इस ध्वनि-परिवर्तन में दो बातें ध्यान देने की हैं। पहली यह कि सकार ह् ध्वनि में परिवर्तित हुआ है। दूसरी यह कि सघोष महाप्राण ध् की महाप्राणता का लोप हो गया है। हिन्दु शब्द अवेस्ता में प्रयुक्त हुआ है। इसलिए उसकी प्राचीनता असंदिग्ध है। यद्यपि अवेस्ता ऋग्वेद की तुलना में बहुत बाद का है, पर यहाँ हम मान लेते हैं कि उसमें प्राचीन ईरानी भाषा रूप सुरक्षित हैं। प्रश्न यह है कि ईरानी आक्रमणकारी भारत में आकर हिन्दु को सिन्धु कहना कैसे सीख गये। **ऋग्वेद में सप्त सिन्धवः हैं, हप्त हिन्दवः नहीं।** जो लोग यह मानते हैं

कि स् को ह् में बदलने की प्रवृत्ति खास ईरानी है, वे सूर्य के ग्रीक प्रतिरूप हेलिग्रोस् से लेकर अंग्रेज़ी हार्ट् और हंड्रेड् तक उन शब्दों को याद कर लें जिनमें स् ध्वनि ह् में परिवर्तित हुई है। भारत में गुजरात, राजस्थान और कश्मीर में बहुत जगह स् ध्वनि ह् में बदलती है और असम में निरपवाद रूप से स् को ख (या ह्) कहने की प्रवृत्ति है। इस सबको ईरानी प्रभाव माना जा सकता है यदि भाषाविज्ञानी यह मान लें कि यूरुप की भाषाओं में ऐसे ध्वनि-परिवर्तन ईरानी प्रभाव से हुए हैं।

यदि पश्चिमी एशिया के प्राचीन भाषायी मानचित्र पर ध्यान दें तो विदित होगा कि हित्ती भाषा में स् का ह् या ख् में परिवर्तन प्राचीन ईरानी की तुलना में अधिक विरल है, तुखारी में वैसा परिवर्तन और भी कम होता है। पश्चिमी एशिया के भाषायी मानचित्र में कोई ऐसी लीक नहीं बनती जिसके सहारे अनातोलिया से ईरान होते हुए कुरुक्षेत्र तक पहुँचा जाए और ध्वनिपरिवर्तन की एक सुसंगत शृंखला का पता लगाया जाए। इसके विपरीत वैदिक भाषा में वे अधिकांश मूल ध्वनियों वाले रूप सुरक्षित हैं जिनके परिवर्तित प्रतिरूप ईरान, अनातोलिया, यूनान और रोम तक मिलते हैं। इनमें कोई ऐसा ध्वनि-परिवर्तन नहीं है जिसकी व्याख्या समग्र भारतीय भाषायी परिवेश को ध्यान में रखते हुए न की जा सके। विविध ज्ञात और अज्ञात परिवारों की भाषाएँ एक दूसरे को प्रभावित करती रही हैं, ध्वनि-परिवर्तनों का यह मूल कारण है। भारत में विभिन्न स्रोतों की गणभाषाओं की जैसी विविधता रही है, वैसी मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया और यूरुप के किसी भाग में नहीं रही। इन भारतीय गण भाषाओं के अन्तरपारिवारिक तत्व पश्चिमी एशिया और यूरुप की अनेक भाषाओं में मिलते हैं। उन तत्वों की समग्रता भारत में है। इन तत्वों में स् का ह् या ख् में बदलना शामिल है।

जैसे हित्ती भाषा और उसके अभिलेख इस बात का प्रमाण हैं कि पश्चिमी एशिया में भारतीय मूल के लोग रहते थे, अनेक वैदिक देवताओं की उपासना करते थे, वहाँ प्राप्त कीलाक्षरी लिपि वाले अभिलेखों से विदित है कि भारतीय मूल के विशेषज्ञ अश्वचालन की शिक्षा देते थे, वैसे ही अवेस्ता को इस बात का प्रमाण मानना चाहिए कि वहाँ भारतीय मूल के लोग जाकर बसे थे और अंशतः वैदिक उपासना-पद्धति का अनुसरण करते थे। ईरान इस समय भारत से भिन्न देश है, नेपाल और मौरीशस भी भारत से भिन्न देश हैं। इस राजनीतिक भिन्नता को भाषायी विश्लेषण से अलग रखना चाहिए। नेपाल और मौरीशस भारत से भिन्न देश हैं, इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि वहाँ भारतीय आर्य समुदाय की भाषाएँ बोलने वाले लोग जाकर नहीं बसे। संस्कृत से अवेस्ता की भाषा का लगभग वैसा ही सम्बन्ध है जैसा किसी भी प्राकृत का है। अन्तर यह है कि प्राकृतें, विशेषतः नाटकों की प्राकृतें, अधिक रूढ़िबद्ध हैं। पर रूढ़िबद्ध या स्वतन्त्र, प्राकृतों और संस्कृत में मूल अन्तर ध्वनिपरिवर्तन का है, रूपतन्त्र सम्बन्धी परिवर्तन इतना ही है कि संस्कृत के रूप—क्रियाओं के लकार, संज्ञा-सर्वनामों के कारक आदि—संख्या के विचार से सीमित कर दिए गए हैं। शब्दतन्त्र-सम्बन्धी परिवर्तन और भी कम हैं। प्राकृतों से (जिनमें पालि को भी गिन लें) कभी-कभी ऐसे शब्द मिल जाते हैं जो संस्कृत से भिन्न प्राचीन मध्यदेशीय भाषा के रूपों की ओर संकेत करते हैं। यही स्थिति

अवेस्ता की भाषा की है। ध्वनितन्त्र-सम्बन्धी परिवर्तन कर दिया जाय तो वह भाषा वैसे ही वैदिक संस्कृत बन जाएगी जैसे प्राकृतों में ध्वनि-सम्बन्धी परिवर्तन करने से वे संस्कृत बन जाती हैं। प्राचीन ईरान की भाषा का अपना रूपतन्त्र और शब्दतन्त्र न हो, यह बात समझ में नहीं आती। दो पड़ोसी, एक ही परिवार की दो, गणभाषाओं में यथेष्ट सामान्य तत्व हो सकते हैं, फिर भी उनके व्याकरण और शब्द भण्डार में इतनी भिन्नता होती है कि वे अलग से दो भाषाओं के रूप में पहचानी जाती हैं। यूनान के छोटे से क्षेत्र में प्राचीन गण भाषाओं के नमूने काफी मिलते हैं। इनमें शब्द भण्डार और व्याकरण को लेकर जैसी भिन्नता है, वैसी भिन्नता भी **ऋग्वेद** और अवेस्ता की भाषाओं में नहीं है। इसीलिए यह निष्कर्ष अनिवार्य है कि वैदिक संस्कृति को मानने वाले कुछ गणसमाज ईरान में जाकर बस गए थे। वे अपने साथ ध्वनिपरिवर्तन की विशेषताएँ भी ले गए। जैसे इंग्लैंड और इटली में लैटिन पढ़ने का ढँग अलग-अलग है, जैसे बंगाल और केरल में संस्कृत पढ़ने का ढँग अलग-अलग है, वैसे ही वेद-मन्त्र पढ़ने का ढँग अलग-अलग था। जब वर्ण-व्यवस्था सुदृढ़ हुई तब इस बात का विशेष प्रयत्न किया गया कि वेद-मन्त्रों का पाठ शुद्ध शुद्ध ही किया जाए। किन्तु वेद-मन्त्र मूलत: गणव्यवस्था के युग की रचना हैं। जिस पाठ को भी शुद्ध माना गया, उसमें भी काफी विविधता मिलेगी। फिर जिस समय गणसमाज स्वतन्त्र हों, एक ही प्रशिक्षित पुरोहित वर्ग विभिन्न गण-समाजों को अपने नियन्त्रण में न रखता हो, उस समय ध्वनिपरिवर्तन सम्बन्धी भिन्नता और भी स्वाभाविक है।

संस्कृत और अवेस्ता की भाषा में इस प्रकार की समानता है : **सम—हम** (समान, बराबर), **सेना—हएना, असुर—अहुर, शुष्क—हुश्क, यासु—याहु** (**यद्** सर्वनाम का बहुवचन अधिकरण रूप), **भरसि—बरहि** (**भर्** क्रिया का वर्तमानकालिक मध्यम पुरुष एकवचन रूप), **सरस्वती—हरख्वती**। इन उदाहरणों में **स्** ध्वनि **ह्** में बदलती है और अन्तिम उदाहरण में **ख्** में भी। **स्** के अतिरिक्त **श्** में भी ऐसा परिवर्तन होता है। **श्वशुर** का प्रतिरूप **ख्वसुर** है। **हुश्क** के समानान्तर कुछ लोग, **ख्वसुर** की तरह, **खुश्क** भी बोलते रहे होंगे। फ़ारसी **खुश्क** निस्सन्देह **हुश्क** का रूपान्तर नहीं है। अवेस्ता और फ़ारसी दोनों के रूप पहचानने के लिए **शुष्क** का ज्ञान आवश्यक है। इसी प्रकार संस्कृत **स्व** अवेस्ता में **ख्व** है किन्तु ईरान की गाथा-भाषा में **ह्** है। इससे सकार के दो तरह के प्राचीन परिवर्तन सिद्ध होते हैं।

अवेस्ता की भाषा और संस्कृत का ध्वनि-सम्बन्धी मौलिक अन्तर सघोष महाप्राण स्पर्श ध्वनियों को लेकर है। ऐसी ध्वनियाँ केवल संस्कृत और भारतीय आर्य भाषाओं में हैं। भारत से बाहर इन्डोयूरोपियन परिवार की किसी भी प्राचीन या नवीन भाषा में इन ध्वनियों का अर्थभेदक व्यवहार नहीं होता। यही स्थिति **अवेस्ता** की भाषा की भी है। **घ्-ध्-भ्** इन्डोयूरोपियन परिवार की मूल ध्वनियाँ हैं, भाषाविज्ञानी यह मानते हैं। ईरान के आक्रमणकारी आर्य भारत में आकर घ्-ध्-भ् बोलने लगे, पर पश्चिमी एशिया में रहते समय भी वे इन ध्वनियों का उच्चारण कर लेते थे, इसका प्रमाण न तो **अवेस्ता** में है और न उन हित्ती दस्तावेज़ों में जिन्हें विद्वान् **ऋग्वेद** से भी

अधिक प्राचीन कहते हैं। व्हीलर, एमेनो आदि जो विद्वान् ईरान को भारतीय आर्यों की प्रस्थान-भूमि मानते हैं, उनके लिए यह एक बड़ी कठिनाई होनी चाहिए थी कि सिन्धु को हिन्दु कहने वाले ईरानी आर्य भारत में आकर स् ही नहीं ष् का भी उच्चारण कैसे करने लगे। इस समस्या को उन्होंने बहुत आसानी से हल कर लिया है। वे उसकी तरफ देखते ही नहीं।

संस्कृत और अवेस्ता की भाषा में सघोष महाप्राण ध्वनियों से सम्बन्धित परिवर्तन इस प्रकार होते हैं : भाग—बाग, घर्म—गरम, दीर्घ—दरग, भवति—बवइति, भूमि—बूमि, भ्राता—ब्रात। इन सब उदाहरणों में सघोष महाप्राण स्पर्श ध्वनि में महाप्राणता का लोप होता है, सघोषता बनी रहती है। एक दूसरी तरह का परिवर्तन वह है जहाँ सघोष ध्वनि-तत्व तो कायम रहता ही है किन्तु महाप्राणता का प्रतिनिधित्व करने के लिए संघर्षी ज् का व्यवहार किया जाता है। अवेस्ता की भाषा में ध् के स्थान पर द् के अतिरिक्त ज़्द् का व्यवहार भी होता है। आध्वम् का प्रतिरूप हुआ आज़्दूम्। इसी प्रकार संस्कृत देहि का प्रतिरूप दज़्दि है जिससे पता चलता है कि देहि का मूल रूप देधि था। संस्कृत नेदीयः का प्रतिरूप नज़्दय है। यह वही शब्द है जिससे बोलचाल का परिचित नज़दीक रूप बना है। अवेस्ता के प्रतिरूप से ज्ञात होता है कि निकटतासूचक मूल शब्द नध था। इसी प्रकार संस्कृत सद् (बैठना) के अवेस्ता प्रतिरूप हज़्द से मूल सध् रूप का ज्ञान होता है। मज्जा का अर्थ देने वाला अवेस्ता का शब्द मज़्ग है। सम्भव है, मज्जा के समानान्तर इसी अर्थ में मघ रूप का व्यवहार होता रहा हो। जैसे सध् से हज़्द, वैसे ही मघ से मज़्ग।

घ्, ध्, भ्—इन ध्वनियों में अन्य प्रकार के परिवर्तन भी होते हैं। संस्कृत हन्ति का अवेस्ता-रूप जनइति है। हन्ति का पूर्वरूप घन्ति था। घ् पहले अल्पप्राण होकर ग् बना, फिर उसका तालव्यीकरण हुआ। यह प्रवृत्ति भारत के उत्तर-पश्चिमी भाषा क्षेत्रों की है। मधु का अवेस्ता रूप मदु है। यहाँ ध् अल्पप्राण होकर द् बना, फिर संघर्षी हुआ। यह उन आर्यभाषाओं की प्रवृत्ति है जो नाग भाषाओं से प्रभावित हुई थीं। अवेस्ता में एक ओर क-वर्गीय ध्वनियों के तालव्यीकरण की प्रवृत्ति है, दूसरी ओर उनको संघर्षी रूप भी दिया जाता है; अघोष ध्वनियों में महाप्राणता का संयोग भी होता है। संस्कृत उक्त अवेस्ता में उख़्त है, शुक्र का रूपान्तर सुख़्र है जिससे, वर्ण-विपर्यय की राह से, सुर्ख़ रूप प्राप्त हुआ। वक्ष्यामि के दूसरे वर्ण में क् व्यंजन ख़् में बदला, ष् तालव्य श् रूप में ग्रहण किया गया, तब गाथा-भाषा में वख़्श्या रूप बना। संस्कृत आप (जल) अवेस्ता में आफ़्श् है। फ़ारसी का आब संस्कृत आप से सम्बन्धित है, अवेस्ता वाले रूप से नहीं। अश्व शब्द अवेस्ता में अस्पो है।

३. पुरानी फ़ारसी

इसके बाद प्राचीन फ़ारसी के दस्तावेज मिलते हैं। रोनैल्ड जी० केन्ट ने ओल्ड पर्शियन (१९५३) नामक पुस्तक में बताया है कि पुरानी फ़ारसी या पहलवी दक्षिण-पश्चिमी ईरान की भाषा थी और शासक वर्ग की बोलचाल की भाषा थी। इसके

नमूने शासकों के शिलालेखों में मिलते हैं। केन्ट ने लिखा है कि **अवेस्ता** और गाथा की भाषाएँ उत्तर-पश्चिमी अथवा उत्तर-पूर्वी ईरान की भाषाएँ है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन ईरानी और पुरानी फ़ारसी दो भिन्न क्षेत्रों की भाषाएँ हैं। केन्ट उन थोड़े से भाषाविज्ञानियों में हैं जो प्राचीन काल में विभिन्न क्षेत्रों की भाषा-विविधता पर ध्यान देते हैं। केन्ट कहते हैं कि पुरानी फ़ारसी में विभिन्न बोलियों के मिश्रण के प्रमाण मिलते हैं। इस भाषा की विन्यास-सम्बन्धी विशेषता यह है कि कृदन्तों का प्रयोग अधिक होता है और पूर्ण क्रिया का व्यवहार किये बिना भी वाक्य पूरे किए जाते हैं। केन्ट कहते हैं कि पुरानी फ़ारसी में कालसूचक भेद बहुत महत्वपूर्ण नहीं था। समापिका क्रिया आमतौर से छोड़ दी जाती थी। **त्य मना कर्तम्**—जो मेरे द्वारा किया गया था; यहाँ **था** के लिए कोई शब्द नहीं है, कृदन्त रूप **कर्तम्** काफी है। तिङन्त प्रयोग इस प्रकार होगा : **त्य अदम् अकुनवम्** जो मैंने किया। यह सारा विकास संस्कृत से मिलता-जुलता है। **अवेस्ता**-काल के बाद भारत और ईरान की भाषाओं का सम्पर्क टूट नहीं गया। जो प्रभाव संस्कृत का रूप निश्चित कर रहे थे, वे पुरानी फ़ारसी का रूप भी निश्चित कर रहे थे। जितनी भिन्नता ध्वनितन्त्र में है, उतनी भिन्नता रूप-तन्त्र और वाक्यतन्त्र में नहीं है। पुरानी फ़ारसी में कारक वही हैं जो संस्कृत और अवेस्ता में हैं, केवल सम्प्रदान कारक का लोप हो गया है। अनेक आधुनिक आर्य-भाषाओं में भी सम्प्रदान और कर्म कारकों के रूप एक हो गए हैं।

पुरानी फ़ारसी का व्यवहार करने वालों में ईरान के प्रतापी राजा **कूरु** थे। यह शब्द स्पष्ट ही **कुरु** का वैकल्पिक रूप है। इनके पिता का नाम **कम्बूजिय** था। दक्षिण-पूर्वी एशिया में **कम्पूचिया** नाम का देश है जिसे अंग्रेज़ी में कम्बोडिया कहते हैं। यह पुराना भारतीय **कम्बोज** शब्द है। दक्षिण-पूर्वी एशिया में आस्ट्रिक भाषाएँ बोलने वाले—विशेषतः शासक—भारतीय उद्भव के नाम रखते हैं। इसलिए ईरान में **कुरु, कम्बोज** नामों का व्यवहार आश्चर्यजनक नहीं है। पुरानी फ़ारसी बोलने वाले ईरान के राज-वंश का नाम **पहलवी** था। यह शब्द **पर्थव** से बना है। केन्ट ने लिखा है कि **पर्थव** नाम किसी बाहरी स्रोत से आरोपित किया हुआ प्रतीत हुआ है (**द नेम सीम्स टु हेव बीन् इम्पोज्ड बाइ ऐन् आउट् साइड् सोर्स**, पृष्ठ ६)। पुरानी फ़ारसी के लिए जो निकट-तम बाहरी स्रोत सांस्कृतिक दृष्टि से प्रभावित करने वाला हो सकता था, वह भारत है। अर्जुन को **पार्थ** भी कहते थे। **पार्थ** का सम्बन्ध पृथा से जोड़ लिया गया है किन्तु **पार्थ** भारत का रूपान्तर भी हो सकता है। जितने **कुरु** थे, वे सब भरत थे। अर्जुन **पार्थ** हैं, भारत भी हैं। **पार्थ** शब्द में आदिस्थानीय मूल सघोष महाप्राण ध्वनि अघोष अल्पप्राण है जैसे संस्कृत **धरा** लैटिन में **तॅर** है। पैशाची प्राकृत में अघोषीकरण वाली प्रवृत्ति है। भारत के अन्तिम वर्ण में महाप्राणता का संयोग करके उसे संघर्षी रूप दिया गया है जैसे संस्कृत **मित्र** (सूर्य) पुरानी फ़ारसी में **मिथ्र** है। इस प्रकार **पार्थ भारत** का रूपान्तर हो सकता है। ईरान का एक प्रदेश **पार्थिया** नाम से प्रसिद्ध हुआ। **फ़ारस** शब्द का अपना कोई अर्थ नहीं है; **भारत** का रूपान्तर होने से वह सार्थक हो सकता है। यदि **भारत** का **त्** संघर्षी ध्वनि में परिवर्तित हो जैसे **पुत्र** का पालि रूप **पुत्तो**

पुरानी फ़ारसी में **पुस्सो** है, और आदिस्थानीय **भ्** के रूपान्तर **प्** को भी संघर्षी रूप दिया जाए जैसे **प्रथम** पुरानी फ़ारसी में **फ़तम** है तो **भारत** का रूपान्तर **फ़ारस** होगा। पुरानी फ़ारसी बोलने वाले अपने देश को **पार्स** कहते थे। यह **पार्स पार्थ**, **भारत** और **फारस** का प्रतिरूप है। इसी से ग्रीक भाषा के **पॅर्सेस्**, **पॅर्सिआ**, भारतीय **पारस**, **पारसीक** आदि शब्द बने। इस व्याख्या को छोड़ने पर **पार्स** और **पार्थ** असम्बद्ध ही नहीं रहते, निरर्थक भी हो जाते हैं। जैसे **ईरान** शब्द का सम्बन्ध **आर्य** से है, वैसे ही **पार्स** और **पार्थ** का सम्बन्ध **भारत** से है। भरत-गण युद्ध के लिए विख्यात थे, **महाभारत** शब्द महायुद्ध का पर्याय बन गया। प्राचीन फ़ारसी में **पर्तर** शब्द का अर्थ है युद्ध। यह शब्द भरत से सम्बद्ध है। पुरानी फ़ारसी में **मगु** शब्द उन लोगों के लिए आता है जो पुरोहित वर्ग के थे। ये लोग उस प्रदेश में रहते थे जो अंग्रेज़ी में **मीडिया** कहलाता था। **मग** लोगों का सम्बन्ध मगध वाले मगों से है। **मघ** का एक प्रतिरूप **मध** था। **मघ** में जो महत्ता और शक्ति का भाव है, वही **मध** में था। पुरानी फ़ारसी में इसका रूपान्तर **मथ्** है; **मथिश्त** का अर्थ हुआ सर्वाधिक महान्। अन्य रूपान्तर **मद** था। पुरानी फ़ारसी में **माद** शब्द उन लोगों के लिए प्रयुक्त होता था जो मीडिया के रहने वाले थे। सामान्य जन समाज था **माद**, उसके पुरोहित थे **मगु**; **मग** और **मद** के स्रोत हैं **मघ** और **मध**। यूनानी भाषा में **माद** जनों को **मेनोइ** कहते थे। **मद** से **मीडिया**, **मीडियन** आदि शब्द बने हैं।

ईरानी लोग क्षत्र, **क्षत्रिय** आदि शब्दों को बहुत गौरवपूर्ण मानते थे। **माद** लोगों में सम्राट् के प्रति विद्रोह करने वाले एक योद्धा ने अपना नाम **ख़शथ्रित** अर्थात् **क्षत्रित** रखा था। ग्रीक भाषा में जिस सम्राट् का नाम क्सेर्क्सेस् था, उसे पुरानी फ़ारसी में ख़शयार्शन् कहते थे। केन्ट ने लिखा है कि इस नाम का पूर्व भाग **ख़शय** है जिसका अर्थ है राजा और उत्तर भाग **अर्शन्** का अर्थ है पुरुष। केन्ट ने फ़ारसी शब्द **शहर** को **क्षत्र** का विकास बताया है। उसी तरह **ख़शय** से **शाह** शब्द बना। यह **ख़शयार्शन्** नाम का सम्राट् स्वयम् को **पार्स**, **पार्सह्या**, **पुस्स** कहता था। भारतीय विद्वान् डा. सुकुमार सेन ने **ओल्ड् पर्शियन् इन्स्क्रिप्शन्स् ऑफ़ दि अकैमेनियन् एम्परर्स्** (कलकत्ता, १९४१) में उक्त उपाधि की व्याख्या करते हुए बताया है कि सम्राट् स्वयम् को पार्स का पुत्र पार्स कहता है। ईरान के शासक वर्ग के लिए अपने पार्थ वंश की श्रेष्ठता घोषित करना आवश्यक था। एक अन्य सम्राट् **अर्तख़्शस्सा** था जिसका मूलरूप सेन के अनुसार **ऋतक्षत्रः** है।

पुरानी फ़ारसी में उत्तर-पश्चिमी भारतीय भाषाओं के समान बहुत जगह ह् का लोप हो जाता है। **अहुर मज़्द** का रूपान्तर **अउर मज़्द** हो गया है। जैसे प्राकृतों में **ऋ** ध्वनि बहुत जगह उ में बदल जाती है, वैसे ही **अकृत** यहाँ **अउत** है, **अकृणोत्** यहाँ **अकुनउश्** है। सघोष महाप्राण ध्वनियाँ अनेक रूप धारण करती हैं। **अगृभ्यत अग्रबाय** बना, यहाँ महाप्राणता का लोप हुआ। **अहनम्** (मूलरूप **अघनम्**) का रूपान्तर **अजनम्** हुआ। यहाँ **घ्** की महाप्राणता के लोप के बाद सघोष ध्वनि **ग्** का तालव्यीकरण हुआ। पुरानी फ़ारसी में एक शब्द है **अवदा** जिसका अर्थ है वहाँ। डा० सेन ने इसका मूलरूप

अवधा लिखा है। जैसे **सर्वदा** वैसे **अवदा**। **धा**—**बहुधा** के **धा** के समान—स्थान-कालादि का संकेत करता है; **अव** सर्वनाम है जो ऋग्वेद में है, जो तमिल के **अवन्** (वह) में है। **अवधा** का रूपान्तर हुआ **अवदा**। एक अन्य शब्द **अवथ** है जिसका अर्थ है इस प्रकार। इसका निर्माण भी वस्तु-स्थानादि सूचक **थ** के साथ **अव** सर्वनाम जोड़कर हुआ है। जैसे संस्कृत में **अथ, यथा** आदि शब्द बने थे, वैसे ही पुरानी फ़ारसी में **अवथ** रूप बना था। तालव्य **श्** भी **थ्** रूप में ग्रहण किया जाता है। **शरदम्** पुरानी फ़ारसी में **थर्दम्** (वर्ष) है। **त्** ध्वनि **थ्** रूप में जहाँ-तहाँ ग्रहण की जाती है। **थ्वान्** (तुम्हें), **त्वम्** (तुम) दोनों रूप मिलते हैं।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के समान पुरानी फ़ारसी में प्राचीन आर्यभाषाओं के ऐसे रूप भी मिलते हैं जो संस्कृत में नहीं हैं। अन्य पुरुष एकवचन सर्वनाम रूप **धि** ऐसा ही प्राचीन शब्द है, जिसका रूपान्तर **दि** पुरानी फ़ारसी में है। **दिम्** कर्मकारक का एकवचन रूप है। इसके मूलरूप **धिम्** से अंग्रेज़ी **हिम्** बनेगा। पुरानी फ़ारसी का **दइय्** कर्मकारक बहुवचन रूप है और अंग्रेज़ी के **देम्** कर्ताकारक **दे** की शृंखला का है। यह रूप पुल्लिग है। स्त्रीलिंग में कर्मकारक का बहुवचन रूप **दिश्** है। **दूरदश** का संस्कृत रूपान्तर होगा **दूरतः** (दूर से)। डा. सेन ने **दूरदश** का मूलरूप **दूरधः** बिलकुल ठीक दिया है। **ध** वस्तुस्थानसूचक सर्वनामों के निर्माण में काम आता है, और उससे सम्बन्धक, प्रत्यय तथा स्वतन्त्र सम्बन्धक शब्द भी बनाए जाते हैं। **दरनियम्** संस्कृत **हिरण्यम्** का पर्याय है। मूल शब्द में **घ्** या **ध्** ध्वनि थी जो यहाँ **द्** में परिवर्तित हुई है। एक ओर पुरानी फ़ारसी में **ग्** को भी **ज्** में बोलने की प्रवृत्ति है, दूसरी ओर जहाँ संस्कृत में **ज्** है, उसके स्थान में **द्** का प्रयोग होता है। संस्कृत **जोष्टा** का प्रतिरूप **दउश्ता** है जिसका आधुनिक रूप **दोस्त** है। **ध्** तो **द्** में बदलता ही है जैसे **धारयवसुः** पुरानी फ़ारसी में **दारय वहुश्** (अथवा **दारय वउश्**) है; यही **दारा**, राजा के अंग्रेज़ी नाम **डेरियस्** का पूर्वरूप है। **घ्** भी सर्वत्र **ज्** में परिवर्तित नहीं होता यथा **घोषा** यहाँ **गउशा** (कान), **गोश** है। **गन्धार** यहाँ **गन्दार** रूप में **ग्** को अपरिवर्तित रखता है। कहीं-कहीं एक शब्द किसी एक कारक में एक ध्वनिवाला रूप दिखाता है, दूसरे कारक में भिन्न ध्वनि वाला रूप दिखलाता है। पिता कर्ताकरक में संस्कृत के समान है किन्तु सम्बन्धकारक एकवचन में **पितुः** का प्रतिरूप **पिस्स** है। संस्कृत सर्वनाम **सः** का पूर्वरूप **सध** था यह पुरानी फ़ारसी के **हदा** प्रतिरूप से सिद्ध होता है। पुरानी फ़ारसी में ध्वनिपरिवर्तन की जो प्रक्रिया घटित होती है, वह संस्कृत के आधार पर ही विश्लेषित हो सकती है; अधिकतर मूल रूप संस्कृत में हैं, न कि पुरानी फ़ारसी में। ध्वनि-परिवर्तन जितने प्रकार से होता है, वे प्रकार अधिकतर भारतीय भाषाओं में मिल जाते हैं। इसलिए बृहत्तर भारत के भाषायी संदर्भ में ही पुरानी फ़ारसी के विकास की व्याख्या की जा सकती है। डा. सुकुमार सेन ने बहुत अच्छा कहा है कि **अवेस्ता** की भाषा का जैसा सम्बन्ध वैदिक भाषा से है, वैसा ही सम्बन्ध लौकिक संस्कृत से पुरानी फ़ारसी का है। वैदिक भाषा के, अथवा **ऋग्वेद** के समय और **अवेस्ता** के समय में लगभग एक सहस्र वर्षों का अन्तर है। यदि **ऋग्वेद** की रचना के एक हज़ार साल बाद भारत की वैदिक भाषा, ध्वनितन्त्रीय

परिवर्तनों के साथ, ईरान में अभी जीवन्त भाषा बनी हुई थी, तो इससे भारत में उसकी सुदीर्घ परम्परा का अनुमान किया जा सकता है। ऋग्वेद के रचनाकाल से भी काफ़ी पहले उस भाषा का स्वरूप निश्चित हुआ होगा, यह मान लेना चाहिए। ईरान कहने से भारत की तुलना में अपेक्षाकृत एक छोटे देश का बिम्ब मन में उभरता है। वास्तव में ईरानी भाषा-समुदाय का क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से बहुत बड़ा है। पामीर, तुर्की और कोहकाफ़ के विशाल त्रिकोण में ईरानी समुदाय की भाषाओं का प्रसार हुआ है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि इस विशाल क्षेत्र में अवेस्ता की संस्कृति का भी वैसा प्रसार नहीं हुआ जैसा वैदिक संस्कृति का प्रसार भारत में हुआ। इसका एक कारण यह है कि सामी, तुर्की आदि भाषाएँ बोलने वालों का जैसा दबाव ईरानी क्षेत्र पर रहा है, वैसा भारत पर नहीं। दूसरा कारण यह है कि भारत में जितने व्यवस्थित रूप से वैदिक संस्कृति का प्रसार किया गया, उतने व्यवस्थित रूप से ईरानी क्षेत्र में नहीं किया गया। तीसरा कारण यह है कि वैदिक संस्कृति और वैदिक भाषा की जड़ें भारत में थीं। उस वृक्ष की एक शाखा ईरान में पहुँची थी। वह शाखा उतनी पुष्ट नहीं थी जितना उस वृक्ष का तना था। यहाँ भिन्न भाषाएँ बोलने वालों में भी वैदिक संस्कृति का प्रसार हुआ, ईरानी समुदाय के क्षेत्र में समान भाषाएँ बोलने वालों के बीच भी अवेस्ता-संस्कृति का वैसा प्रसार नहीं हुआ। अरबों का आक्रमण होने पर ईरान के अग्नि-पूजकों ने भारत में आकर शरण ली और उनकी संस्कृति बची, यहाँ अब भी जीवित है जबकि ईरान में वह निर्मूल सी हो चुकी है। इस सारी सांस्कृतिक और भाषायी पृष्ठ-भूमि को ध्यान में रखने से भारत और ईरान के सामान्य सम्बन्ध, और भाषागत विशेष सम्बन्ध समझने में सहायता मिलेगी। इन्द्र आदि कुछ देवताओं की तरह अन्य भारतीय उद्भव के शब्द ईरानी भाषाओं में निन्द्य और पतित सन्दर्भों में प्रयुक्त होते हैं। इनमें क्षत्र-वर्ग वाले राज्य-सम्बन्धी शब्द **यज्ञ** और **यज्** क्रियावाले धर्म सम्बन्धी शब्द प्रमुख हैं।

मध्य एशिया में एक प्रदेश खोतान कहलाता है। इसका मूल रूप **गोस्थान** प्रतीत होता है। बौद्ध साहित्य में **गोस्तन** शब्द आता है। एच० डब्लू० बेली ने जर्नल **ऑफ़ रायल एशियाटिक सोसायटी** (सन् १९७२, संख्या २) में भारत-ईरान-सम्बन्धी शोधकार्यों पर एक लेख लिखा था : **ए हाफ़ सेन्चुरी ऑफ़** इरानो इण्डियन **स्टडीज़**। इसमें **खोतान** और **गोस्तन** के अतिरिक्त उन्होंने कुछ और दिलचस्प बातें कही हैं। **अवेस्ता** के लिए उन्होंने बताया है कि यह बृहत्तर साहित्य का अंश मात्र है जिसे मगु पुरोहित बचा सके थे और इसका एक भाग, रूप की दृष्टि से, प्राचीनतम वैदिक भाषा के अत्यन्त निकट है यद्यपि ध्वनितन्त्र, शब्दभण्डार और रूपविकार ईरानी ढंग के हैं। इससे विदित होता है कि वेदों की रक्षा जैसे भारत में की जा सकी, वैसे ही अवेस्ता-साहित्य की रक्षा ईरान में नहीं की जा सकी। जितना अंश बचाया जा सका, उसे बचाने का श्रेय भारतीय उद्भव के मग पुरोहितों को है। इस मंत्रसाहित्य की रक्षा के लिए जो विकट संघर्ष किया गया, उसका एक रूप यह था कि वेदपाठी ब्राह्मणों ने वेद कण्ठस्थ किए। जब पुस्तक मिलेगी ही नहीं तो नष्ट किसे करोगे ? इस संघर्ष की स्मृति इस पौराणिक कथा में बनी हुई है कि ईश्वर ने अवतार लेकर वेदों का उद्धार

किया। बेली ने लिखा है कि अधिकांश ईरानी धर्म-ग्रन्थ ईरान से भारत लौट आए। जो वस्तु मूलतः जहाँ से गई थी, वहीं लौट आई।

भारतीय इतिहास में शक लोगों का बहुत उल्लेख मिलता है। ईरानी समुदाय की भाषाएँ बोलने वाले मध्य एशियाई जन-समूहों को भारतीय उद्भव के शक्तिसूचक इस **शक** शब्द द्वारा अभिहित किया गया। **शक** शब्द का मूल रूप **सघ** था जो **साहस** में परिवर्तित होकर विद्यमान है। इन्द्र को **शक्त** कहते थे, उसके शक्तिशाली होने के कारण। ग्रीक भाषा में तालव्य श् नहीं है, अतः **शक** का रूपान्तर **स्कूइ** है। खोतान में शक लोग ही रहते थे जो मक्खन को **नीयक** (नवनीत) कहते थे। बेली ने इसका सम्बन्ध भारतीय शब्द **नीत** (मथा हुआ) से ठीक जोड़ा है। शकों से युद्ध हुआ और जिन्होंने शकों को परास्त किया, वे भारतीय इतिहास-परम्परा में विक्रमादित्य हो गए। स्वाधीन भारत में विक्रम सम्वत् के साथ शक सम्वत् भी लिखा जाता है, ऐसा दोहरा सम्बन्ध भारत और ईरान का है।

बेली ने मध्य एशिया की सोग्दिअन और सक (शक) जातियों का उल्लेख किया है। शक प्रभाव इतना विस्तृत था कि प्राचीन ग्रीक भाषा की पुस्तकों में अनेक शक नाम मिलते हैं। बौद्ध पुस्तकों से खोतान की भाषा में बहुत से ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। तीन सौ ई० से खोतानी में अनेक ग्रन्थ लिखे गए। प्रथम ईसवी सहस्राब्दी के आरम्भ में जब तुर्कों ने खोतान पर अधिकार किया, तब तक खोतान के लोग अपनी भाषा का व्यवहार करते रहे थे। ख् को ह् में बदलकर वे अपनी भाषा को **ह्वातनउ** कहते थे। जो ब्राह्मी लिपि भारत में प्रयुक्त होती थी, उसी का किंचित् परिवर्तित रूप खोतानी भाषा के लिए प्रयुक्त होता था। इस प्रकार जिन क्षेत्रों से पहले वैदिक संस्कृति का सम्पर्क था, उनसे आगे चलकर बौद्ध संस्कृति का सम्बन्ध बना रहा। मध्य एशिया से सहस्राब्दियों तक कायम रहने वाले भारत के सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए भारत और ईरान के प्राचीन भाषायी सम्बन्धों को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

बेली ने लिखा है कि पामीर के घुमन्तू कबीले डैन्यूब नदी से लेकर उत्तर-पश्चिमी चीन के कान्सू प्रदेश तक धावा मारते थे। यह भी एक सूत्र है जिससे स्लाव, ईरानी और चीनी भाषाओं के सम्बन्ध पहचाने जा सकते हैं। और इन सम्बन्धों के मूल सूत्र भारत में हैं। तुर्कों ने पामीर के घुमन्तू कबीलों की यह प्रक्रिया बन्द कर दी। तुर्की भाषा में बहुत से शक भाषाओं के शब्द आ गए और तुर्की के माध्यम से वे फिर ईरान की भाषा में आए। इनमें एक शब्द **खच्चर** है। बेली के अनुसार खोतानी शब्द **खदर**, तुर्की में **कतिर**, ईरानी में **खरतर** और मूलतः वह **अश्वतर** है। मग पुरोहितों के लिए बेली ने लिखा है कि कुषाण काल में शक-प्रदेश से मग पुरोहित उत्तर-पश्चिम भारत में आए। बराहमिहिर मग थे। बेली ने यह भी लिखा है कि ग्रीक भाषा के **मगोइ**, लैटिन **मागी** बाइबिल के ईसा मसीह वाले भाग में उल्लिखित हैं। खादिअन—पश्चिमी एशिया की प्राचीन भाषा—में ग्रीक **मगेइआ** (देवपूजा) का अर्थ जादू हुआ। ज़रथुश्त्र प्रसिद्ध धर्म संस्थापक थे। वह मग कहे जाते थे। इस सारे विवेचन में बेली ने कहीं भी ईरानी मगों का सम्बन्ध मगध के मगों से नहीं जोड़ा, **मग** के पूर्वरूप **मघ**

की कल्पना करना तो बहुत दूर की बात है। किन्तु **मघ** से **मग** का सम्बन्ध वैसे ही है जैसे ईरानी **यबुक** का भारतीय **यूथ** से। बेली ने लिखा है कि कुषाण राजा **यवुग** उपाधि धारण करते थे जिसका पूर्वरूप था ईरानी **यबुक**। इस ईरानी रूप का अर्थ था यूथपति, सेना संग्रह करने वाला। और बेली के ही अनुसार **यबुक** में शब्द मूल **यउ** है जो **यूथ** का रूपान्तर है। **ब्** तुर्की में **प्** बना और ईरानी **यबुक** तुर्की में **यप्कु**, **जब्कु** बना। इन तुर्की रूपों को देखकर **यूथ** शब्द की याद किसे आएगी? किन्तु **यूथ** के बिना न ईरानी रूप की व्याख्या हो सकती है न तुर्की रूपों की। **अश्व** से जैसे **अस्प** बना, वैसे ही ईरानी रूप **यबुक** का **ब्** तुर्की में **प्** बना। भाषा-परिवारों को अलग-थलग न मानकर वृहत्तर भाषायी क्षेत्र के आधार पर उनका तुलनात्मक विवेचन किया जाए तो उनका ऐतिहासिक विकास ज़्यादा अच्छी तरह समझ में आएगा।

यहाँ संस्कृत हृदय और श्रद्धा के **श्रद्** का स्मरण उपयुक्त है। फ़ारसी का **दिल** इन रूपों से सम्बद्ध होगा, कल्पनातीत है। किन्तु पार्थिया की भाषा में **ज़िर्द** शब्द है जिसका बलोची प्रतिरूप **जिर्द** है। अब **श्रद्** का रूसी प्रतिरूप **सेर्द्त्से** याद कीजिए। सकार **द्** में परिवर्तित हुआ है, **स्** सघोष होकर **ज्** हुआ; **सेर्द** का प्रतिरूप **ज़िर्द** प्राप्त हुआ। **ज़िर्द** का वैकल्पिक रूप **ज़िर**, जैसे लैटिन **कोर्द्** के साथ **कोर**; **ज़िर-जिर-दिर-दिल**, विकास की इस प्रक्रिया से **श्रद्-सेर्द्** का रूपान्तर **दिल** हुआ।

पुरानी फ़ारसी में एक सर्वनाम **अवम्** है। यह **अवेस्ता** की भाषा में भी है। यह **अयम्** का प्रतिरूप है। अन्य पुरुष, एकवचन, व्यक्तिवाचक सर्वनाम **अव** प्राचीन काल से उत्तर-पश्चिमी भारत में प्रयुक्त होता रहा है। वैदिक भाषा में भी इसका प्रयोग मिलता है। वैदिक भाषा और संस्कृत में **य** वाले मध्यदेशीय रूप का व्यवहार अधिक हुआ है किन्तु पश्चिमोत्तर भूमि पर **अव** का सिक्का ही चलता था। वैदिक भाषा, ईरानी और द्रविड़ भाषाओं में जो अनेक सामान्य तत्व हैं, उनमें एक महत्वपूर्ण तत्व यह **अव** सर्वनाम है। तमिल का **अवन्** इसी **अवम्** का प्रतिरूप है। **अवम्** पूर्वरूप है कि **अवन्**, यह पूछना बेकार है क्योंकि **म्** और **न्** के दो भिन्न क्षेत्र थे और तमिल का **न्** वाले क्षेत्र से विशेष सम्बन्ध था। **अव** का विश्लेषण किया जाए तो **अ** सर्वनाम दूरस्थ सूचक है और **व** व्यक्ति अथवा वस्तु-सूचक।

अनेक कारक रूप पुरानी फ़ारसी में बिलकुल संस्कृत से मिलते-जुलते हैं। **अवना** करणकारक का रूप है और इसमें सम्बन्धक चिन्ह **ना** संस्कृत **न** का ही प्रतिरूप है। **अवह्या** सम्बन्धकारक का एकवचन पुल्लिंग रूप है और **अवस्य** का प्रतिरूप है। **अस्माकम्** का रूपान्तर **अमाखम्** मिलेगा। **अइबि, अइवि** (उसको) रूप दिलचस्प हैं। इनमें **अव्** के बदले **अय्** का व्यवहार हुआ है जहाँ अर्ध स्वर **य्** इकार में परिवर्तित हुआ है। इस सर्वनाम में सम्बन्धक चिन्ह **भि** जोड़ा गया है। इसके दो रूपान्तर हुए; जब महाप्राणता का लोप हुआ तब **बि** रूप बना, और जब इस **ब्** ध्वनि को 'शुद्ध' किया गया तब **वि** रूप बना। **बगानाम्** सम्बन्धकारक का बहुवचन रूप है। मूल शब्द **भग** है जिसकी महाप्राणता के लोप से **बग** रूप बना है।

संस्कृत में सम्बन्धक शब्द मूल शब्द के बाद आते हैं किन्तु पुरानी फ़ारसी में वे

पहले भी आते हैं। मूल प्रवृत्ति सम्बन्धक चिन्ह को वाद में रखने की है जैसे **अवना में।** **उपायम्** में **उपा** सम्बन्धक है, **उपायम्** अर्थात् किसी वस्तु तक आया। कहा जा सकता है कि यहाँ **उपा** या **उप** उपसर्ग है और संस्कृत में उपसर्ग मूल शब्द से पहले आते ही हैं किन्तु पुरानी फ़ारसी के **उपामाम्** (मेरे द्वारा) में **उपा** निश्चय ही उपसर्ग नहीं है। सम्बन्धक शब्दों को मूल शब्द से पहले रखने की प्रवृत्ति कम्बोज भाषा में अब भी है। कम्बोज भाषा की अनेक प्रवृत्तियाँ यूरुप की विभिन्न भाषाओं में मिलती हैं। सामी परिवार की भाषाओं में विभक्ति चिन्ह तो संस्कृत के समान मूल शब्द के बाद लगाए जाते हैं किन्तु स्वतन्त्र सम्बन्धक मूल शब्द से पहले आते हैं। इससे मिलती-जुलती स्थिति प्राचीन ग्रीक और लैटिन की है।

जैसे **ना** चिन्ह करणकारक के लिए प्रयुक्त होता था, वैसे ही **न** चिन्ह सम्बन्धकारक के लिए प्रयुक्त होता था। संस्कृत **मम** का रूपान्तर यहाँ **मन** है। पुरानी फ़ारसी के रूप में **न** वही सम्बन्धक चिन्ह है जो गुजराती में अब भी प्रयुक्त होता है और हिन्दी के **अपना** (अवधी **अपन**) में दिखाई देता है। **मन** के विश्लेषण से **मम** की संरचना समझ में आती है। जैसे **मन** में **न** सम्बन्धक चिन्ह है, वैसे ही **मम** का दूसरा **म** सम्बन्धक चिन्ह है। अन्य पुरुष के लिए एक सर्वनाम हउ, हउव् है। डा० सुकुमार सेन ने इसका मूल रूप **सो, असौ** बताया है। यहाँ सर्वनाम मूल **स** परिवर्तित होकर **ह** बना है।

लेवी ने **द पर्शियन लैंग्वेज** (लन्दन, १९५१) में बताया है कि पुरानी फ़ारसी सचमुच कभी ईरान में बोलचाल की भाषा थी, इसमें सन्देह है। वह राजदरबार की भाषा अवश्य थी। लेवी का सन्देह सही हो सकता है। भारत के उत्तर में चीनी तुर्किस्तान से लेकर पश्चिम में वर्तमान तुर्की तक ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ प्राचीनकाल में शासक वर्ग की भाषा और थी और शासित प्रजा की भाषा और थी। चीनी-तुर्किस्तान में प्रजा की भाषा चीनी समुदाय की थी किन्तु शासक वर्ग की भाषा भारतीय प्राकृत समुदाय की थी। हित्तियों की भाषा आर्य परिवार की थी और शासित प्रजा की भाषा उससे भिन्न थी। इसलिए यह बिल्कुल सम्भव है कि पुरानी फ़ारसी, संस्कृत व्याकरण की विशेषताएँ लेकर चलने वाली, और अधिकतर ध्वनिपरिवर्तन से अपनी भिन्नता सूचित करने वाली, वास्तव में प्रजा की भाषा न होकर, भारतीय उद्भव के शासक वर्ग की भाषा रही हो। लेवी कहते हैं कि ईरान का एक भाग **पर्स** या **फ़र्स** कहलाता था और छठी सदी का प्रसिद्ध राजा कुरु इसी प्रदेश का था। यही प्रदेश टकसाली फ़ारसी की केन्द्रभूमि रहा है। ईरानी भाषा-समुदाय का क्षेत्र पामीर से कोहकाफ तक विशाल है पर इसका सबसे महत्वपूर्ण भाग पर्स या फ़र्स है। फ़ारसी का विकास यहीं हुआ, इससे प्राचीन ईरानी और अर्वाचीन फ़ारसी के विकास में भारतीय भाषाओं के योगदान की कल्पना की जा सकती है। **पहलवी पर्थवी** का रूपान्तर है और **पर्थवी** का सम्बन्ध **पार्थ** से है।

ईरान में बसने वाले आर्यों ने पंजाब में आकर अपने उपनिवेश बनाए, यह स्थापना तुलनात्मक भाषाविज्ञान से सिद्ध नहीं हो सकती, यह बात बरो जैसे

आर्य-द्रविड़ भाषाओं के विशेषज्ञ जानते हैं। इसलिए उन्होंने कल्पना की है कि भारतीय और ईरानी, ये दो शाखाएँ ईरान में ही विभाजित हो गई थीं। इस विभाजन से पहले उनकी संयुक्त भाषा बोलने वालों को प्रोटोइन्डोएर्यन् नाम दिया है जो वास्तव में भारत-ईरानी शाखा का ही दूसरा नाम है। फिर भी इन्डोईरानियन् न कहकर इन्डो-एर्यन् कहने में भारतीय भाषातत्वों पर बल तो है ही। बरो ने **जर्नल ऑफ़ रायल एशियाटिक सोसायटी** (सन् १९७३, संख्या २) में निबन्ध लिखा था **द प्रोटोइन्डो-एर्यन्स्।** इस निबन्ध में उन्होंने जितना ही पुरानी समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया है, उतना ही उन्होंने नयी उलझनें पैदा कर दी हैं।

सबसे पहले उन्होंने यह समस्या ली है कि पश्चिमी एशिया के जिस भाग में वर्तमान तुर्की है, उसके प्राचीन निवासियों का भारत से क्या सम्बन्ध है। इन लोगों की भाषा प्राचीन ईरानी की अपेक्षा प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से इतना अधिक मिलती है कि ईरान से भारत की ओर आर्यों के महाभिनिष्क्रमण की कहानियाँ हवा हो जाती हैं। यदि संयुक्त भारत-ईरानी शाखा के विभाजित होने पर, एक शाखा के भारत में आने पर संस्कृत का विकास हुआ, इस कथा पर विश्वास किया जा सकता है, तो इसी तरह एक अन्य शाखा के पश्चिमी लघु एशिया पहुँचने पर हित्ती आदि भाषाओं का विकास हुआ, यह बात भी मानी जा सकती है। कठिनाई यह है कि ईरान के पूर्व और पश्चिम में जिन प्रशाखाओं का विकास होता है, उनमें बहुत बड़ी समानता है। हित्ती और वैदिक भाषाओं में देवताओं, धर्म आदि से सम्बन्धित शब्दावली में बहुत बड़ी समानता है। यदि दोनों ओर की प्रशाखाओं का प्रसार ईरान से होता तो दोनों शाखाओं को ईरानी-हित्ती और ईरानी-हिन्दी कहा जा सकता था। किन्तु हित्ती भाषा में प्राचीनता के ऐसे चिन्ह हैं और भारत से उसका ऐसा गहरा सम्बन्ध है कि विद्वानों ने ईरानी-हित्ती के बदले हिन्दी-हित्ती (इन्डोहित्ताइट) नाम रखा। एक ओर हिन्दी अर्थात् भारतीय आर्यभाषा, दूसरी ओर हित्ती, दोनों में गहन समानता, दोनों के बीच में ईरान, आर्य अभियान का मार्ग निश्चित करने में जो कठिनाई पैदा हो रही है, वह स्पष्ट है।

अपने निबन्ध के आरम्भ में बरो कहते हैं निकट पूर्व (अर्थात् वर्तमान तुर्की राष्ट्र) में जो आर्यभाषाओं के अवशेष मिलते हैं, उनका सम्बन्ध भारतीय आर्य भाषा से है, ईरानी से नहीं। यह न तो ईरानी और भारतीय से अलग कोई तीसरा स्वतन्त्र भाषा-समुदाय है और न इसे आदि आर्यभाषा कहा जा सकता है। जहाँ ईरानी और भारतीय आर्य भाषाओं में अन्तर है, वहाँ निकट पूर्व के दस्तावेजों की भाषा भारतीय आर्यभाषा से मिलती है, ईरानी से नहीं। हित्ती-मितन्नी सन्धिपत्रों में मित्र, वरुण, इन्द्र, नासत्यों आदि को पहचान लिया गया है। वरुण का उल्लेख ईरानी दस्तावेजों में नहीं है। **ऋग्वेद** में मित्र और वरुण का उल्लेख एक साथ मिलता है। ईरानी दस्तावेजों में **मिथ्** (अर्थात् **मित्र**) और **अहुर** (अर्थात् **असुर**) का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में जहाँ-तहाँ **असुर** नाम के देवता का उल्लेख है; वह **मित्र** और **वरुण** से भिन्न है पर कभी-कभी उनके साथ भी उसका उल्लेख होता है। बरो का विचार है कि **मित्र** और

वरुण की जोड़ी की अपेक्षा **मित्र** और **असुर** की जोड़ी अधिक मौलिक यानी प्राचीन है। कौन अधिक प्राचीन है, यह प्रश्न गौण है। वास्तव में सुर, असुर, देव पौराणिक गाथाओं में अलग कर दिए गए हैं। सुर और असुर विरोधी माने गए हैं, देव ईरानी परम्परा में निम्न प्रकृति का प्राणी माना गया है, जैसे ग्रीक **दअेमोन्** अंग्रेज़ी का **डेमन्** हो गया। बरो ने ठीक लिखा है कि **असुर** का मूल अर्थ स्वामी है, प्राण का अर्थ देने वाले **असु** से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। **अवेस्ता** में **अहू** शब्द भी है जिसका वही स्वामी वाला अर्थ है। **अहू** और **असुर** **सू** या **सु** क्रिया से बने हैं जिसका अर्थ खेत में बीज डालना, सृजन करना है। क्रिया के पहले जो **अ** उपसर्ग है, वह निषेधात्मक नहीं है, अर्थघनत्व का सूचक है। कृषि-सभ्यता के विकास से **ऋषि, सुर, असुर** आदि जो शब्द कृषि सम्बन्धी कौशल से सम्पृक्त थे, वे आगे चलकर अपने मूल भौतिक परिवेश से अलग होकर पूर्णतः अथवा अंशतः देवत्वसूचक हो गए। एक ही विशाल परिवार के सदस्य जब मिलकर खेती करते थे, तब उन सबका मुखिया **कुलपति** कहलाता था। **कुलपति** के **पति** शब्द में जो स्वामित्व का भाव है वही **असुर** शब्द में है। यह **असुर** शब्द कुलपतित्व की कृषि-भूमि छोड़कर देवत्वसूचक बना। देवताओं से सम्बन्धित मनुष्य की धारणाओं का विकास कैसे हुआ है, इस पर ध्यान न देकर बरो मान लेते हैं कि असुर एक देवता था जिसकी उपासना **ऋग्वेद** के रचनाकाल तक पुरानी पड़ चुकी थी।

वसु शब्द को भारतीय ईरानी सम्बन्धों के विवेचन में बरो ने प्रस्तुत किया है। तर्क है कि **वसु** संस्कृत में संज्ञा है और ईरानी में (**वोहु** रूप में) विशेषण है। मितन्नी राजधानी का नाम **वस्सुकन्नि** अर्थात् **वसुखनि** (वसुओं, मूल्यवान धातुओं की खान) था। यहाँ भी **वसु** संज्ञा रूप में है। इस प्रकार भारतीय आर्यभाषा और ईरानी में तो भेद हुआ किन्तु पश्चिम एशियाई और भारतीय भाषाओं में समानता हुई। किन्तु यह तर्क अनावश्यक है। **वसु** उन शब्दों के वर्ग में है जो संज्ञा और विशेषण दोनों तरह प्रयुक्त होते हैं। विशेषण रूप में **वसु** संस्कृत **वसिष्ठ** में विद्यमान है (वैदिक भाषा में इसका **वसिश्त** रूप भी है)। अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि मितन्नी और भारतीय रूपों में सकार है, ईरानी में उसका परिवर्तित रूप ह् है। **वसु** के साथ **खनि** ही शब्द का मूल रूप है, मितन्नी में महाप्राणता का लोप होकर अल्प प्राण रूप रह गया है। **वोहु** और **वस्सुकन्नि** दोनों का उद्भव **वसु** और **खनि** में देखना चाहिए। बरो बिलकुल ठीक कहते हैं कि आर्य लोग पहले पंजाब पहुँचे हों और वहाँ से लौटकर मितन्नी भूमि पहुँचे हों, यह सम्भव नहीं है। पर इससे वह यह भ्रामक स्थापना प्रस्तुत करते हैं कि इन भाषाओं के विकसित होने से पहले आदि आर्य विभाजित होकर भारतीय आर्य और ईरानी आर्य बन चुके थे। प्राचीन जनसमुदाय गणसमाजों में संगठित होते थे, यह मानचित्र बरो के सामने नहीं रहता। इसलिए आर्य गणभाषाओं के बदले वह आदि आर्यों की भाषा की कल्पना करते हैं। उनकी कल्पना में ये आदि आर्य इन्डोयूरोपियन की एक शाखा हैं, वे विभिन्न गणों में संगठित न होकर एक विराट् जनसमूह हैं। किन्तु यह मान भी लिया जाए तो भारतीय और ईरानी आर्य अलग हैं, भाषा के अलावा

इसकी पहचान क्या होगी ? बरो के विचार से भारतीय और ईरानी भाषाओं का विकास बाद में हुआ किन्तु मूल आर्य भारतीय और ईरानी पहले बने ! यह भी मान लें तो हित्ती-मितन्नी छूटे जा रहे हैं। मूल आर्य विभाजित होने पर जब एक ही भाषा बोल रहे थे, तब भारत और तुर्की जैसे दूरस्थ देशों में एक ही तरह का भाषायी विकास क्यों हुआ, और बीच में ईरान की भाषा दोनों से भिन्न क्यों हुई ?

वास्तव में ईरानी भाषा-समुदाय के विशाल क्षेत्र में अनेक भाषाएँ बोली जाती थीं। समस्त ईरानी किसी समय **अवेस्ता** की भाषा ही बोलते थे, यह मिथ्या कल्पना है। वर्तमान तुर्की राष्ट्र की भूमि पर अनेक आर्यभाषाएँ बोली जाती थीं, इस तथ्य का विवेचन हित्ती-विशेषज्ञ स्टुर्टेवैन्ट ने किया है। बरो उस विवेचन से परिचित हैं और संस्कृत पर अपने ग्रन्थ में उन्होंने इन भाषाओं का उल्लेख भी किया है। उसी प्रकार भारत में मगध, कोसल, वृष्णि, कुरु आदि की विभिन्न गणभाषाएँ थीं। अपने विवेचन में इस संश्लिष्टभाषायी स्थिति को सरल करके बरो आदि आर्यों और उनकी दो शाखाओं, भारतीय और ईरानी की, बात करते हैं। आर्य पंजाब से लौटकर पश्चिमी लघु एशिया नहीं गए, यह तो सही है किन्तु बिना लौटे भी तो वे वहाँ जा सकते थे। बरो के लिए यह कल्पनातीत है कि आर्य अभियान भारत से शुरू हुआ हो। तब भारत को, उसके उत्तरी भाग या पंजाब को आर्यों का आदि देश मानना पड़ेगा। आदि देश कहीं होना ज़रूर चाहिए, भारत में नहीं हो सकता, इसलिए ईरान में होगा। मूल इन्डोयूरोपियन भाषा के बोलने वाले ईरान में न रहते थे पर उनकी जो शाखा वहाँ पहुँची, ईरानियों और भारतवासियों के लिए वही आदि आर्यशाखा है। कल्पना कीजिए कि उत्तर भारत, वृहत्तर भारत के उत्तराखण्ड में, मध्य एशिया, ईरान समेत पश्चिमी एशिया की भूमि पर सैकड़ों कबीले घूमते हैं। फिर घुमन्तू जीवन छोड़ते हुए वे कृषि-सभ्यता का विकास करते हैं। इस सभ्यता का विकास सभी कबीलों में एक साथ नहीं होता। भारत और ईरान में जब कृषि-सभ्यता पुरानी पड़ चुकी है, तब भी—तुर्क अभियान से पहले तक—पामीर के घुमन्तू कबीले उत्तरी चीन से लेकर दक्खिनी रूस तक धावा मारते हैं। स्वभावतः जिन कबीलों में कृषि-सभ्यता का विकास पहले हुआ, उन्होंने दूसरे कबीलों की भाषा और संस्कृति को अधिक प्रभावित किया। कृषि-सभ्यता के विकास के साथ-साथ, और उसके बाद, जैसे-जैसे उत्पादन-कौशल में विकास हुआ, मनुष्य ने पृथ्वी के गर्भ से खनिज पदार्थ निकालकर उन्हें उपयोग में लाना शुरू किया, नगरों का निर्माण हुआ, सुव्यवस्थित नगर-निर्माण-कौशल में वृद्धि हुई, वैसे-वैसे विकसित सभ्यता के इन केन्द्रों ने एक दूसरे को, और अपेक्षाकृत अविकसित समाजों को, प्रभावित किया। इस पृष्ठभूमि में यह बिलकुल स्वाभाविक होगा कि भारत भाषातत्वों के निर्यात का प्रमुख केन्द्र बने। यहाँ **ऋग्वेद** के अलावा सिन्धु घाटी की सभ्यता भी है।

सिन्धु घाटी की सभ्यता का उल्लेख बरो भी करते हैं।

बरो ने एक काम अच्छा किया है कि उन्होंने **ऋग्वेद** का समय कुछ और पहले तक खींचा है। उनका विचार है कि **ऋग्वेद** का समय २००० ई० पू० के आसपास होना चाहिए। ज़रथुश्त्र का समय वह ११०० ई० पू० या उससे कुछ पहले मानते

हैं। ईरानी गाथाओं की भाषा को वह वैदिक भाषा की समकालीन मानते हैं, कहते हैं कि उससे प्राचीनतर भी हो सकती है। जरथुश्त्र का समय ६०० ई० पू० के आस-पास माना जाता है; स्वभावतः उसे ५०० वर्ष और पहले ले जाने से **ऋग्वेद** का समय भी और पहले ले जाना पड़ेगा। जरथुश्त्र का समय और गाथाओं की भाषा का समय एक नहीं है। बरो के मत से गाथाओं की भाषा वैदिक भाषा की समकालीन है। किन्तु जरथुश्त्र बाद के हैं और जिस प्रकार वैदिक शब्दों का व्यवहार गाथाओं या **अवेस्ता** की भाषा में हुआ है, उससे उस भाषा के लिए भारत से भिन्न किसी अन्य आदि स्रोत की कल्पना प्रमाणित नहीं होती। बरो कहते हैं कि देवता या ईश्वर के लिए प्राचीन ईरानी में **बग** शब्द था। यही रूप पुरानी फ़ारसी में है यद्यपि **अवेस्ता** में ग़् संघर्षी रूप में है, वहाँ **बग़** रूप है। अब **भगवान्** वाले **भग** से अलग इस **बग** का विकास नहीं दिखाया जा सकता। **बोगु** जैसे रूप में यह शब्द स्लाव भाषाओं में भी है। **भग** ऐश्वर्य-सूचक है, संस्कृत में है, स्लाव भाषाओं में है, ईरानी में उसका गौण और सीमित देवत्व वाला अर्थ है।

४. फ़ारसी और पश्तो

आधुनिक फ़ारसी का विकास ग्यारहवीं सदी से माना जाता है। भारतीय भाषाओं की तुलना में फ़ारसी पर सामी प्रभाव बहुत है। उर्दू ने अरबी से शब्द बहुत लिए हैं किन्तु उसका व्याकरण मूलतः हिन्दी का है। फ़ारसी में व्याकरण के स्तर पर भी अरबी का प्रभाव पड़ा है। उर्दू में बीसवीं सदी से पहले अरबी तत्व अधिकतर फ़ारसी के माध्यम से आए, फ़ारसी से भी अधिक अरबी शब्द उधार लेने का काम उर्दू ने बीसवीं सदी में किया। सामी तत्वों को छोड़ दें तो आधुनिक फ़ारसी की संरचना ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत रोचक सिद्ध होगी और समग्र भारतीय भाषायी परिवेश से सम्बद्ध दिखाई देगी।

आधुनिक फ़ारसी का ध्वनितन्त्र प्राचीन ईरानी और पुरानी फ़ारसी से बहुत कुछ वैसे ही भिन्न है जैसे प्राकृतों के ध्वनितन्त्र से हिन्दी तथा अन्य आधुनिक आर्य-भाषाओं का ध्वनितन्त्र भिन्न है। हिन्दी आदि के लिए तो कहा जाता है कि मुसलमानों के हमले के कारण तत्सम रूपों का फिर से चलन हुआ, फ़ारसी में जहाँ ऐसे 'नये' रूप मिलते हैं जो अति प्राचीन हैं, तो क्या इनके बारे में कहा जाएगा कि ईरान पर अरब और तुर्क मुसलमानों के आक्रमण हुए, इसलिए पुराने तत्सम, अर्ध-तत्सम रूप फिर चालू किए गए? **अवेस्ता** की भाषा और शिलालेखों की पुरानी फ़ारसी, दोनों भाषाओं में एक ही ध्वनि के विभिन्न रूपान्तर मिलते हैं। इसका कारण यह है कि लिखित भाषा के अलावा अनेक अलिखित भाषाएँ भी व्यवहार में आती थीं और इनकी विविधता जहाँ-तहाँ लिखित भाषा में भी प्रतिबिम्बित हुई है। युगविशेष में किसी भाषा के लिखित रूप में तत्सम रूपों का व्यवहार बढ़ सकता है, यह मानते हुए भी कहना होगा कि लिखित भाषा में जैसे तद्भव मिलते हैं, उनसे भिन्न रूप भी पुराने समय में प्रचलित रहे होंगे। **अवेस्ता** की भाषा में स् यदि ह् में बदलता दिखाई देता है, तो इससे यह न

समझना चाहिए कि ईरान की भाषाओं में सर्वत्र ऐसा परिवर्तन होता था। **असुर** का ईरानी रूपान्तर **अहुर** अवश्य था पर **अशुर** रूप भी प्रचलित था। जिस देश को अंग्रेज़ी में **असीरिया** कहा जाता है, वह **असुर** देश है और उसका पुराना नाम **अशुरा** था। डा० सुकुमार सेन ने **अशुरा** को मूल रूप मानकर **अवेस्ता** के **अथ़ुरा** का सम्बन्ध उससे जोड़ा है। इस प्रकार **असुर** शब्द **अहुर, अशुर, अथ़ुर,** कम से कम इन तीन रूपों में बोला जाता था। भारत से जो शकार-प्रेमी मग ईरान पहुँचे थे, वे अवश्य **असुर** को **अशुर** बोलते रहे होंगे। साथ ही **असुर** को **असुर** कहने वाले भी ईरान में रहे होंगे, इसकी कल्पना की जा सकती है। भारत में **असुर** शब्द प्रचलित रहा, इसमें तो कोई सन्देह नहीं। प्राचीन ईरानी और पुरानी फ़ारसी **थ़्, द़्, ख़्** आदि संघर्षी ध्वनियाँ बहुत हैं। इनमें फ़ारसी ने केवल ख़ ध्वनि स्वीकार की है। संघर्षी थ़् अंग्रेज़ी में तो प्रयुक्त होता है (**थिंक्, थिन्** आदि शब्दों में) और अरबी का **थ़्वाद्** ध्वनि-चिन्ह उसे व्यक्त करता है किन्तु फ़ारसी में अरबी शब्दों की **थ़्वाद्** वाली ध्वनि भी **स्वाद्** यानी **स्** रूप में ग्रहण की गई।

पुरानी फ़ारसी में ऋ ध्वनि अधिकतर **अर्** में बदलती है। यों भी कह सकते हैं कि वह **र्** में बदलती है किन्तु तमिल के अनुरूप **र्** के पहले **अ** स्वर जोड़ना आवश्यक होता है। संस्कृत **ऋताच** पुरानी फ़ारसी में **अर्ताचा** है। यहाँ **ऋ** स्वर को **अर्** में परिवर्तित मान सकते हैं किन्तु संस्कृत **रजतम्** का प्रतिरूप यहाँ **अर्दतम्** है। **ऋ** स्वर नहीं है, **र्** के पहले स्पष्ट ही **अ** स्वर जोड़ा गया है। संस्कृत **ज्** पुरानी फ़ारसी में **द्** रूप धारण करता है किन्तु लैटिन में **ग्** रूप में ग्रहण किया जाता है। इसलिए लैटिन शब्द है **अर्गेन्तुम्** (चाँदी, श्वेत); अंग्रेज़ी में **आर्जेन्ट्** रूप है जहाँ **ज्** का आविर्भाव फिर होता है। **अजानात्** का पहलवी प्रतिरूप **अदाना** है जो सीधे **अजाना** से भी बन सकता है। जैसे **प्रसेनजित्** पालि में **पसेनदी** हुए, उसी तरह **अजाना अदाना** बने। **दाना, नादान, दानिशमन्द** इसी ख़ानदान के हैं। महाराष्ट्र और दक्षिण में **ज्ञान** के प्रथम व्यंजन के तालव्य उच्चारण के बदले जो दन्त्य उच्चारण होता है—**ज्याँन** को **द्याँन** कहने की प्रवृत्ति है—उसी के अनुरूप पुरानी फ़ारसी यानी पहलवी में यह प्रवृत्ति विकसित हुई, किन्तु अब ज् ध्वनि आधुनिक फ़ारसी में अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गई है। संस्कृत **जनानाम्** पुरानी फ़ारसी में **ज़नानाम्** है और **जीव्** क्रिया का प्रतिरूप **ज़ीस्तन्** है। यहाँ ज् ध्वनि सघोष सकार में परिवर्तित हुई है। मराठी में फ़ारसी **जगह** को **ज़ायगा** रूप देकर मराठीभाषी यह सिद्ध करते हैं कि **ज्** को **द्** में बदलने की प्रक्रिया के समान उसे **ज़्** में बदलने की प्रक्रिया भी भारतीय है।

ईरानी क्षेत्र के बहुत से स्थानवाचक शब्दों में **स्तान** लगा हुआ दिखाई देता है। यह **स्थान** का प्रतिरूप है। पुरानी फ़ारसी में संयुक्त स्वर और संयुक्त व्यंजन काफी हैं किन्तु आधुनिक फ़ारसी में इनका अलगाव देखा जाता है, विशेषरूप से शब्द के आदि स्थान में। **भ्रातर्** का प्रतिरूप **बिरादर् है** किन्तु **अब्र (अभ्र)**, में दो व्यंजन संयुक्त हैं। पुरानी फ़ारसी में **एतत्** का प्रतिरूप **अइत् है, एति** (जाता है) का प्रतिरूप **अइतेय्** है। आधुनिक फ़ारसी **अइ** और **अउ** संयुक्त स्वरों का व्यवहार नहीं करती; इनकी जगह **ऐ,**

औ का व्यवहार करती है। यही प्रवृत्ति उत्तरपश्चिमी आधुनिक आर्यभाषाओं में है। यदि फ़ारसी की तद्भवीकरण-प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाए तो वह भारतीय आर्य-भाषाओं में वैसी प्रक्रिया से मिलती-जुलती दिखाई देगी। संस्कृत **अक्षत** पुरानी फ़ारसी में **अख़्शत** है। **क्ष्** ध्वनि **ख़्श्** में परिवर्तित हुई है। ऐसा परिवर्तन आधुनिक फ़ारसी में नहीं होता। **क्षीर** का प्रतिरूप **शीर** है जैसे संस्कृत **क्षेत्र** का मराठी प्रतिरूप **शेत** है। साथ ही **क्षार** का फ़ारसी रूपान्तर **खार्** है। **क्ष्** को **ख्** में बदलने की प्रवृत्ति मागध भाषा-समुदाय की विशेषता है। फ़ारसी में उसे संघर्षी रूप दिया जाता है, इतना ही अन्तर है। यह सम्भव है कि मग जनों के प्रभाव से ईरान की भाषाओं में ऐसे परिवर्तन हुए हों। आधुनिक फ़ारसी में अ स्वर को वृत्ताकार बोलने की प्रवृत्ति है। इसका कारण भी मग-सम्पर्क हो सकता है। फ़ारसी में एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति मध्यवर्ती अघोष स्पर्श ध्वनि को सघोष करने की है। **मादर्, पिदर्, बिरादर्** रूप इसी प्रवृत्ति के कारण बने हैं। पर ऐसा सर्वत्र नहीं होता। **आतिश** (अग्नि) और **आदिश** दोनों तरह के रूप मिलते हैं। प्राकृतों में यह प्रवृत्ति बहुत व्यापक है और इन प्राकृतों में मागधी प्राकृत का स्थान प्रमुख है। यह प्रवृत्ति वास्तव में उत्तर-पश्चिमी है। **अशोक** का नाम **अशोग** या **असोग** नहीं मिलता। मग लोग चाहे पूर्व के रहने वाले हों चाहे पश्चिम के, मागध समुदाय की भाषाओं में अनेक प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जो उत्तर-पश्चिमी भाषाओं में हैं। इसी कारण मानक तमिल में यह प्रवृत्ति उत्पन्न हुई कि मध्यवर्ती अघोष ध्वनि का सघोष उच्चारण किया जाय यद्यपि तमिल में अघोष-सघोष के भेद से अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता। प्राकृतों में अघोष महाप्राण ध्वनि को भी सघोष महाप्राण कर देते हैं। सघोष महाप्राण ध्वनियाँ न फ़ारसी में हैं, न तमिल में, इसलिए प्राकृतों का उक्त परिवर्तन इन भाषाओं में नहीं होता। फ़ारसी में शब्द के अन्त में आने वाले **न** या **न्** का लोप करके पूर्वस्वर को अनुनासिक बना देने की प्रवृत्ति है। **मकान** से **मकाँ, ज़ुबान** से **ज़ुबाँ** रूप उर्दू कविता में इसी प्रवृत्ति के कारण मिलते हैं। तमिल में अन्य पुरुष सर्वनाम का एकवचन रूप **अवन्** बोलचाल में **अवाँ** हो जाता है। यह वही प्रवृत्ति है। फ़ारसी में पुराने **अवन्** (दूरस्थ व्यक्ति), **इवन्** (निकटस्थ व्यक्ति) रूप और भी संक्षिप्त होकर **आँ** और **ईं** हो गये हैं।

फ़ारसी और तमिल में एक महत्वपूर्ण भेद यह है कि तमिल में वर्त्स्य या मूर्धन्य **ट्, ड्** का व्यवहार होता है किन्तु फ़ारसी में इनका प्रवेश नहीं हुआ। एक अन्य केन्द्र द्रविड़ भाषाओं और संस्कृत को प्रभावित कर रहा था। तमिल पर उसका आंशिक प्रभाव है क्योंकि इस भाषा में शब्द के आदिस्थान पर **ट्** का व्यवहार नहीं होता। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि द्रविड़ परिवार और ईरानी समुदाय की भाषाएँ जब भारत के उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त पर सम्पर्क में आई थीं, तब द्रविड़ भाषाओं पर **ट्-ड्** वाले ध्वनिकेन्द्र का प्रभाव न पड़ा था। अन्य सम्भावना यह भी है कि ईरानी भाषाएँ **ट्-ड्** ध्वनियों वाले शब्दों को ग्रहण करते समय उन्हें **त्-द्** में बदल देती थीं। फ्रांस, इटली, रूस आदि ट-वर्गहीन क्षेत्रों के लोग जब अंग्रेज़ी या भारतीय शब्द बोलते हैं, तब आवश्यकतानुसार ऐसा ही परिवर्तन करते हैं। स्कौटलैन्ड, आयर्लैन्ड आदि केल्त-भाषा क्षेत्रों के लोग जब अंग्रेज़ी बोलते हैं तब उनके उच्चारण में भी ऐसे ही परिवर्तन

की झलक मिलती है। वैदिक मन्त्र या उनसे मिलते-जुलते मन्त्र ईरान की उपासना पद्धति में प्रयुक्त होते थे। वैदिक मन्त्रों की प्राचीनता असंदिग्ध है और इनमें ट-वर्गीय ध्वनियों का व्यवहार होता है। इसलिए यह धारणा पुष्ट होती है कि ऐसी ध्वनियों वाले शब्द ईरानी भाषा-समुदाय में उसकी ध्वनि-प्रकृति के अनुरूप बदल कर ग्रहण किए गए हैं, भले ही स्वयम् संस्कृत में ऐसे रूप किसी समय त-वर्गीय ध्वनियों वाले रहे हों। अंग्रेज़ी महीना **सेप्टेम्बर** हिन्दी में **सितम्बर** है। **सेप्ट** के मूल रूप **सप्त** में **त्** है। यह **त्** अंग्रेज़ी में **ट्** बना, हिन्दी में **त्** रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ। मध्यदेशीय **त्** पश्चिमी **ट्** में परिवर्तित हुआ, ईरानी समुदाय में वह पुन: **त्** रूप में ग्रहण किया गया। जहाँ तक **ण्** का सम्बन्ध है, वह संस्कृत. बाँगरू, पंजाबी, मराठी आदि आर्यभाषाओं तथा तमिल आदि अनेक द्रविड़ भाषाओं में है किन्तु फ़ारसी में उसका प्रवेश नहीं है। आधुनिक आर्यभाषाएँ बोलचाल के स्तर पर **ष्** का व्यवहार नहीं करतीं, यही स्थिति फ़ारसी की है। जैसे पालि और प्राकृत में **ष्** नहीं है, वैसे ही प्राचीन ईरानी और पुरानी फ़ारसी में भी वह नहीं है।

अनेक आर्यभाषाओं में **ब्** और **व्** का वैकल्पिक व्यवहार होता है। फ़ारसी में **पासबान्** और **पासवान्** (पहरेदार) दोनों रूप हैं। उत्तर-पश्चिमी आर्यभाषाओं तथा तमिल के समान फ़ारसी में तालव्यीकरण की प्रवृत्ति है। जैसे संस्कृत **कर** के तमिल प्रतिरूप **कइ** (हाथ) और **चॆइ** (करना) हैं, जैसे हिन्दी **क्यों** ब्रज क्षेत्र में **चौं** भी बोला जाता है, वैसे ही फ़ारसी में प्रश्नवाचक सर्वनाम **के** का एक प्रतिरूप **चे** भी है। **के** रूप जानदारों के लिए ही प्रयुक्त होता है और **चे** बेजानों के लिए भी। तमिल में सकार जैसे कभी-कभी **त्** में बदलता है, वैसे ही संस्कृत **आवास** फ़ारसी में **आबाद** है। **स्** पहले अघोष **त्** में परिवर्तित हुआ, फिर यह **त्** सघोष **द्** बना। संस्कृत के **व्** ध्वनि वाले शब्द जैसे मागध समुदाय में **ब** बोले जाते हैं, वैसे ही संस्कृत **वात** फारसी में **बाद** है। किन्तु ऐसा सर्वत्र नहीं होता। **यातु** के प्रतिरूप **जादू** में **य्** को **ज्** में बदलने की वही मागधी प्रवृत्ति फिर दिखाई देती है।

फ़ारसी की शब्द-निर्माण-प्रक्रिया में भारतीय शब्द-मूलों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। **रास्त, राशिद, राह, रहबर, रफ़्तन्, रवाना** आदि में संस्कृत की गति-सूचक **ऋ** क्रिया है। फ़ारसी रूपों में यह सीधे **र्** में परिवर्तित हुई है और उससे पहले अ स्वर जोड़ना आवश्यक नहीं हुआ। जिस पर हम चलते हैं, वह रास्ता या राह है, **रफ़्तन्** चलने की क्रिया है। **रवा** का अर्थ है जाता हुआ, साथ ही उसमें सीधे चलने का भाव भी है। संस्कृत में जैसे **ऋत** का अर्थ सत्य है यद्यपि क्रिया का मूल अर्थ चलना है, वैसे ही फ़ारसी में **रवा** के दो अर्थ हुए। **रवाना** का सम्बन्ध तो चलने से है किन्तु **रवादार** वह है जिसका चालचलन दुरुस्त होता है। **रास्ता** वह है जिस पर आदमी चलता है, **रास्त** वह व्यक्ति है जिसका आचरण शुद्ध है यानी चाल सीधी है। **रवी** यात्री के लिए प्रयुक्त होता है और **रविश** का अर्थ गति है। जैसे गति-सूचक **सर्** क्रिया से **सरिता** शब्द बनता है, वैसे ही **रू** क्रिया से नदी-वाचक फ़ारसी का **रूद** शब्द बना। जैसे **वृध्** क्रिया से **बढ़ना** और **बृद्ध** से **बूढ़ा** रूप बनते हैं, वैसे ही **ऋ** से एक ओर **रफ़्तन्**, **राह** जैसे रूप

बनते हैं, दूसरी ओर **रूद** जैसा रूप बनता है। **रवा**, **रविश** आदि में **ऋ** क्रिया **रू** वत् ही ग्रहण की गई थी। उकार-अकार अथवा उकार-इकार के बीच **व्** श्रुतिका आगम हुआ है। एक **ऋ** क्रिया **ऋचा** और **ऋग्वेद** के **ऋक्** वाली है। इससे कृदन्त रूप **रन्द** बना जिसका अर्थ है शब्द, कथन। उल्लेखनीय है कि इस अर्थ वाली **ऋ** के आधार पर तमिल में भी बोलने के अर्थ में **इर** जैसी क्रियाओं का व्यवहार होता है।

फ़ारसी शब्दों की रचना-प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसमें उपसर्गों का महत्व वैसे ही नगण्य है जैसे आधुनिक आर्यभाषाओं में। संस्कृत में उपसर्गों की भरमार है। आधुनिक आर्यभाषाओं में उपसर्गों की क्षीणता का कारण कुछ लोग द्रविड़-प्रभाव मानते हैं। यदि यह बात सही हो तो उन्हें फ़ारसी पर भी ऐसा ही प्रभाव मानना चाहिए। वास्तव में आर्यभाषाओं में दो प्रवृत्तियाँ रही हैं, एक उपसर्गों के बहुल प्रयोग की, दूसरी उनका प्रयोग न करने की। जर्मन और स्लाव समुदाय की भाषाएँ भी उपसर्गों का प्रचुर व्यवहार करती हैं किन्तु लैटिन समुदाय की भाषाओं की स्थिति वैसी ही है जैसी आधुनिक आर्यभाषाओं की।

ईरानी क्षेत्र में स्थानवाचक शब्दों के **स्थान** का रूपान्तर **स्तान** प्रयुक्त होता है। **स्कम्भ** और **स्तम्भ** रूप याद करें तो ज्ञात होगा कि **स्तान** के समानान्तर **स्कान** जैसा रूप भी होना चाहिए। जो स्थान **अज़रबैजान** कहलाता है उसका पूर्वरूप **आज़रबादगान** है। **बाद** शब्द के **द्** का लोप होने पर **अ** बचा और **य्** श्रुति के आगम से **बायि** रूप बना। **गान** का अरबी रूप **जान** हुआ और इस प्रकार **आज़रबायिजान** रूप स्थिर हुआ। **अज़रबैजान** का पूर्वरूप **आज़रबादगान** था, इसका प्रमाण **श्टाइनग्रास** का फ़ारसी-अंग्रेज़ी कोश है; शब्द का अर्थ बताया है अग्नि-मन्दिर। **आज़र** **अध्वर** का प्रतिरूप है, **बाद** **वास** का, **गान** **स्कान** का। **क्** ध्वनि के सघोष होने और **स्** के लोप होने पर **गान** रूप बना। **आज़रबादगान** उन थोड़े से शब्दों में है जिनमें **स्थान** के उत्तर-पश्चिमी प्रतिरूप **स्कान** का चिन्ह बच गया है। सामान्यतः ईरानी क्षेत्र में मध्यदेशीय **स्थान**-**स्तान** का ही प्रसार है। फ़ारसी की शब्द-निर्माण-प्रक्रिया में जो बहुत से प्रत्यय लगते हैं, वे संस्कृत तथा भारतीय आर्यभाषाओं के सामान्य प्रत्यय हैं। इनमें एक **कर** प्रत्यय है। **आहनगर** (लोहार), **कूज़गर** (कुम्हार) जादूगर जैसे रूपों में **कर** प्रत्यय लगा है जिसका आदि व्यंजन सघोष हो गया है। जैसे संस्कृत में **कर** और **कार** प्रत्यय के दो रूप हैं, वैसे ही फ़ारसी में।

गुनहगार, **रोज़गार** में **कार** प्रत्यय है। **कारीगरी** जैसे शब्दों में **गर** के बाद दूसरा प्रत्यय **ई** लगा है जैसे संस्कृत **मैत्री** में **ई** प्रत्यय है। यह समझना भ्रम है कि बँगला, हिन्दी आदि में ई प्रत्यय लगाकर जो संज्ञा-रूप बनते हैं, उनका चलन फ़ारसी प्रभाव से हुआ है। यह प्रवृत्ति बहुत पुरानी है और स्वयम् फ़ारसी में भारतीय आर्यभाषा केन्द्रों से पहुँची है।

संस्कृत के समान **त**, **ता**, **द**, **न्द** प्रत्यय लगाकर फ़ारसी में क्रिया से कृदन्त-रूप बनाये जाते हैं। **द** वाले रूप त्-मूलक प्रत्ययों का सघोष रूप हैं। **रास्त** (सीधा, उचित) और **रास्ता** में **त** और उसी का वैकल्पिक रूप **ता** प्रत्यय हैं। प्रवाहसूचक **रू** क्रिया से

रूद (नदी), **ऋ** के रूपान्तर **र** (बोलना) से **रन्द** (शब्द) वैसे ही बना है जैसे संस्कृत **शब्द** बना है। संस्कृत **इत** फ़ारसी में **इद** रूप में प्रयुक्त होता है यथा **रास्त** वाली **रा** क्रिया से **राशिद** (उचित मार्ग पर चलने वाला)। संस्कृत के समान **न** और **ना** दोनों रूपों में **न्**-मूलक प्रत्यय काम में लाया जाता है। गतिसूचक **रा** क्रिया से **रान** (यात्रा), **आबरान** (जल यात्रा) और **रवाना** (प्रस्थान करना); **जीवन, मरण** और हिन्दी **जीना, मरना** की तरह ह्रस्व-दीर्घ वर्ण वाले एक ही प्रत्यय के दो रूप हैं। फ़ारसी में जहाँ **इश** प्रत्यय है, वहाँ उसे **इत** का रूपान्तर मानना चाहिए। **इत** का सहज रूपान्तर **इस** हुआ, फिर मागधी वृत्ति के अनुसार उसका तालव्यीकरण हुआ। **रविश** (गति) में गतिसूचक **रा** या **रव्** क्रिया है, उसमें **इश** प्रत्यय लगाया गया। संस्कृत में **शिक्ष्, भक्ष्** जैसी क्रियाएँ वास्तव में कृदन्त हैं। **भस्** के सकार का मूर्धन्यीकरण हुआ, फिर वह **क्** में परिवर्तित हुआ, पुनः उसमें कृदन्त प्रत्यय **स** जोड़ा गया।

बालक जैसे शब्दों में **क** प्रत्यय लघुता या आत्मीयता प्रदर्शन के लिए लगाया जाता है, उसी तरह फ़ारसी में **मर्द** से **मर्दक** रूप बनता है। **जानवर** जैसे शब्दों में **वर** प्रत्यय का पूर्वरूप **हर** है और मूल रूप **धर** है। **शमादान** जैसे शब्दों में **दान** प्रत्यय **धान** का रूपान्तर है और फ़ारसी में वैसे ही प्रयुक्त हुआ है जैसे **दयानिधान** में **नि** उपसर्ग के साथ **धान** प्रत्यय लगा है। **हरामख़ोर** जैसे शब्दों में **ख़ोर** प्रत्यय **ख़्वर** क्रिया के आधार पर बना है। **क्षुध्** क्रिया के अन्तिम व्यंजन की महाप्राणता का लोप होने पर **द्** बचा और यह **र्** में परिवर्तित हुआ जैसे **बारह** का **रह दस** का रूपान्तर है। जैसे **क्षार** से **ख़ार**, वैसे ही **क्षु** से **ख़ु** या **ख़्व**। जैसे **दान** का मूल रूप **धान** है, वैसे ही फ़ारसी प्रत्यय **दार** का मूल रूप **धार** है। **आबदार** अर्थात् पानी ले चलने वाला, **वफ़ादार** वह जो वफा करे। **क्षार** का एक रूपान्तर **ख़ार** होगा, दूसरा **शार**। **आबशार** अर्थात् झरना, जहाँ से पानी का क्षरण होता हो। **क्षरण** का रूपान्तर **शरन** होगा। बाकू पर्वतमाला में एक चोटी का नाम **अबशरन** है जिसका संस्कृत रूप **अपक्षरण** या **अपक्षरन्** होगा। **धार** का वैकल्पिक रूप **धर** भी सम्भवतः फ़ारसी में प्रयुक्त होता था। **जूहर** उस स्थान को कहते हैं जहाँ बहुत से झरने या छोटी नदियाँ हों। यहाँ **हर धर** का रूपान्तर प्रतीत होता है और **जू** का मूल रूप हिन्दी **चूना** क्रिया का **चू** है जिसका सम्बन्ध **सोता, स्रोत** आदि की **स्रु** क्रिया से है। इसी **जू** का वैकल्पिक रूप **जौ** है जो **जौहरी** और **जौहर** में दिखाई देता है। **जौहर** का अर्थ है मोती या हीरा; धातु-प्रत्यय के विचार से उसका अर्थ हुआ पानीदार। **धार** प्रत्यय का एक रूपान्तर **यार** होता है। **धार** से **हार**, फिर **ह्** का लोप होने पर **यार**; **आयबार** अर्थात् पानी वाला। **इत** प्रत्यय का एक रूपान्तर **इल** फ़ारसी में संज्ञा और विशेषण रूप बनाने के काम आता है। बुलबुले के लिए **आबिल आब** में **इल** प्रत्यय लगाने पर बना है। संस्कृत **आविल** (जलयुक्त) **आप** से बना है जहाँ **प्** ध्वनि के स्पर्श तत्व का लोप हुआ है और उसका स्थान अन्तस्थ **व्** ने लिया है। हिन्दी शब्दों में जहाँ **हर** और **हार**, **अर** और **आर** प्रत्यय लगते हैं, वहाँ यह निश्चय करना सरल नहीं होता कि इनके पूर्वरूप कहाँ **कर** और **कार** हैं और कहाँ **धर** और **धार**। फ़ारसी में **आबकार, आबदार** दोनों रूप देखकर यह विश्वास होता है कि

कार और **धार** दोनों प्रत्ययों का व्यवहार समान अर्थों में होता था। **आर** से मिलता-जुलता **यार** प्रत्यय फ़ारसी में भी है जैसे **आबयार** में। प्रत्ययों की विविधता, उनके वैकल्पिक रूप, शब्द-निर्माण में उनकी भूमिका भारतीय आर्यभाषाओं के सन्दर्भ में ही समझी जा सकती है, साथ ही फ़ारसी प्रत्ययों के तुलनात्मक अध्ययन से आर्यभाषाओं का प्रत्यय-विकास समझने में सहायता मिलती है।

संस्कृत **मन्त** का फ़ारसी प्रतिरूप **मन्द** है जो अक्लमन्द जैसे शब्दों में मिलता है। जैसे **मन्त** के साथ **मान** है, वैसे ही इनके रूपान्तर **बन्त** और **वान** हैं। **दरबान** जैसे शब्दों में **बान** इसी **वान** का प्रतिरूप है।

फ़ारसी में समासरचना की प्रक्रिया संस्कृत से मिलती-जुलती है। समासों में रोचक वे रूप हैं जहाँ एक ही अर्थ और ध्वनि वाले शब्दों को मिलाया जाता है। इनमें बहुत से हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं। इनमें एक शब्द है **बन्दोबस्त** जो अंग्रेज़ों को भी बहुत प्रिय था और उसका व्यवहार वे अपनी इन्डियन इंगलिश में करते थे। **बन्द ओ बस्त** में **बन्द** तो **बन्ध** का रूपान्तर है और **बस्त बद्ध** का। लड़के जो **बस्ता** लेकर चलते हैं, वह इसी **बद्ध** के वैकल्पिक रूप **बद्धा** का विकास है। **बन्द** का अर्थ हुआ बाँधो और **बस्त** का अर्थ हुआ बँधा हुआ। इसी तरह **गुफ्तगू** में पहला शब्द **गुफ़्त** (या **गॉफ़्त**) कृदन्त है (कहा), और **गू** क्रियामूल (कहो या कहना)। **आमदरफ़्त** हिन्दी में इस तरह बोला जाता है मानो पहला शब्द **आम** हो, उसके बाद थोड़ा-सा रुककर दूसरा शब्द **दरफ़्त** आया हो। **आमद** ओ **रफ़्त** में दोनों शब्द कृदन्त हैं। **आमद**—आता हुआ, **रफ़्त** जाता हुआ। **कशमकश** में **कश** खींचने वाली क्रिया **कर्ष्** का प्रतिरूप है और बीच में **म** निषेधात्मक है। **कशमकश** अर्थात् खींचो और न खींचो। इसी प्रकार **दारमदार** अर्थात् धारण करो और धारण न करो। **कशमकश** के हिन्दी अर्थ में खींचने के साथ उसकी विरोधी क्रिया न खींचने का भाव थोड़ी-सी झलक देता है पर दारमदार में निषेध भाव पूर्णतः लुप्त हो गया है; निषेध भाव ने अर्थ को सघनता प्रदान की है।

पुरानी फ़ारसी में सर्वनाम-चिन्ह मूल शब्द के बाद लगाए जाते थे जैसे **अस्प**—घोड़ा, **अस्पी**—एक घोड़ा। यहाँ ई निर्देशक सर्वनाम है जिसका कार्य वही है जो अंग्रेजी में 'इन्डेफ़िनिट् आर्टीकिल्' (अनिश्चयसूचक सर्वनाम) का होता है। संस्कृत में **राम** के साथ जब सर्वनाम-चिन्ह **अस्** लगाकर **रामः** रूप बनता है तब वह सर्वनाम चिन्ह निश्चयसूचक होता है। अनिश्चय-सूचक सर्वनाम-चिन्ह संस्कृत में नहीं होते, अंग्रेज़ी तथा यूरुप की अन्य भाषाओं में होते हैं। लैटिन तथा स्लाव भाषाएँ संस्कृत से मिलती-जुलती हैं और उनमें भी मूल शब्द के बाद या पहले अनिश्चय-सूचक सर्वनाम नहीं लगाया जाता। इस सन्दर्भ में पुरानी फ़ारसी यूरुप की भाषाओं से अधिक मिलती है किन्तु ये भाषाएँ अनिश्चय-सूचक सर्वनाम मूल शब्द से पहले लगाती हैं, पुरानी फ़ारसी में सर्वनाम चिन्ह के व्यवहार की पद्धति वही है जो संस्कृत की है। पुरानी फ़ारसी में बहुवचन बनाने के लिए जो **आन्** प्रत्यय लगता है जैसे **कनीज़ान्** (बहुत-सी लड़कियाँ), वह संस्कृत **आनि** का रूपान्तर है। फ़ारसी में **काग़ज़ात्, मकानात्** आदि में जो **आत्** प्रत्यय दिखाई देता है, वह **आन्** से सम्बद्ध है। संस्कृत के सर्वनाम-चिन्ह **अस्** का व्यवहार

एकवचन के लिए हुआ, **आस्** का बहुवचन के लिए। इस **आस्** का रूपान्तर है **आत्** और **आत्** का रूपान्तर है **आन्**।

फ़ारसी में आधुनिक आर्यभाषाओं की सामान्य प्रकृति के अनुरूप विशेषक शब्दों में लिंगभेद दिखाना आवश्यक नहीं होता। **पीरेमर्द**—बूढ़ा पुरुष, **पीरेज़न**—बूढ़ी स्त्री; यदि हम कहें **वृद्ध स्त्री** तो काम चलेगा यद्यपि **वृद्धा स्त्री** गलत न माना जाएगा किन्तु **बूढ़ा स्त्री** प्रयोग स्वीकार न किया जाएगा। तत्सम विशेषक हमारे यहाँ लिंगभेद के बिना भी प्रयोग में आते हैं किन्तु तद्भव रूपों में लिंगभेद दिखाना आवश्यक होता है यद्यपि सर्वत्र ऐसा आवश्यक नहीं है। **बढ़िया लिखावट, बढ़िया आदमी, बढ़िया** में लिंग-भेद दिखाने की गुंजाइश नहीं है। मुख्य बात यह है कि फ़ारसी में लिंगभेद सम्बन्धी उदारता का विकास हिन्दी के समान हुआ है। अनेक आर्यभाषाएँ दो ही नहीं, तीन लिंगों के भेद का ध्यान रखती हैं; उनकी स्थिति अलग है।

जो लोग हिन्दी में कारक-चिन्हों के अभाव को भाषा के ह्रास का प्रमाण मानते हैं, उन्हें फ़ारसी की कारक स्थिति पर विचार करना चाहिए। लेवी ने फ़ारसी पर अपनी पुस्तक में लिखा है कि कुछ अपवादों को छोड़कर फ़ारसी में, अंग्रेज़ी के समान, कारक-चिन्हों का लोप हो गया है। कर्म कारक के लिए **रा** चिन्ह लगाया जा सकता है और उसके बिना भी काम चलता है। इस **रा** की स्थिति हिन्दी **को** जैसी है। **देहाती यकबार खर्बूज़ा आवर्द**—देहाती एक बोझ खरबूजे लाया; इस वाक्य में कर्म **खर्बूज़ा** के बाद कारक-चिन्ह लगाना आवश्यक नहीं है। फ़ारसी, अंग्रेज़ी, हिन्दी—दूर दूर की तीन भाषाओं में एक-सी प्रक्रिया घटित होती हैं। इसका कारण यह नहीं हो सकता कि अपभ्रंश काल में कारक-सम्बन्धी अराजकता फैल गई थी। **रा** कारक-चिन्ह कर्म और सम्बन्ध दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। अंग्रेज़ी के **देयर** (उनका) आदि सर्वनामों में सम्बन्धसूचक **र** है। राजस्थानी तथा अनेक पहाड़ी भाषाओं में इस **र** प्रत्यय का व्यवहार होता है। फ़ारसी में **मन्रा** जैसे रूप का निर्माण हिन्दी के **मेरा** की तरह हुआ है। **मन्रा** का प्रतिरूप **मरा** है। **म** और **मन्** का मूल रूप **मध** है जिससे **मैं, मो** आदि रूप बनते हैं। प्रश्नवाचक सर्वनाम **की** बँगला के समान फ़ारसी में भी है, अन्तर यह है कि बँगला में वह निर्जीव वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होता है। **की बूद** कहने से यह आशय समझ में आयेगा कि किसी व्यक्ति के बारे में पूछा जा रहा है—कौन था। बँगला में **के** सर्वनाम व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त होता है। फ़ारसी में **चे कार**—कौन सा काम, **चे शख़्स**—कौन आदमी, **चे** जीव और निर्जीव दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकता है। इसी प्रकार **को** वस्तुओं और व्यक्तियों दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। **की, के** अथवा **चे** और **को**, प्रश्नवाचक सर्वनाम के ये तीनों रूप भारतीय भाषाओं में मिलते हैं और इन सभी का मूल रूप है **कध**।

फ़ारसी में दूरस्थ और निकटस्थ सर्वनामों के भेद का आधार वही है जो भार-तीय आर्य-द्रविड़ भाषाओं में है। **आन्** दूरस्थ है, **ईन्** निकटस्थ है। **ऊ** अन्य पुरुष का एकवचन रूप है जो वास्तव में मध्यवर्ती वस्तु या व्यक्ति का सूचक था। इसका बहुवचन रूप **ईशान्** (वे) है जो वास्तव में निकटस्थ वस्तु या व्यक्ति का सूचक था। फ़ारसी में

सम्बन्धक सर्वनाम-चिन्ह मूल शब्द के बाद लगाए जा सकते हैं यथा **खान** अर्थात् घर और **खानम्** अर्थात् मेरा घर, **पिदर आएशान्** अर्थात् उनके पिता। यह प्रवृत्ति सिन्धी, कश्मीरी के अलावा तुर्की, अरबी आदि अन्य परिवारों की भाषाओं में भी है। फ़ारसी में सम्बन्धक शब्द मूल शब्द के पहले भी आता है यद्यपि विभक्ति-चिन्ह संस्कृत-परम्परा के अनुरूप मूल शब्द के बाद ही आते हैं। **ख़ूबतर अज़हमा** अर्थात् सबसे अच्छा, यहाँ **अज़** सम्बन्धक मूल शब्द **हमा** से पहले आया है। **बदरया** अर्थात् नदी में, यहाँ **ब** सम्बन्धक **दरया** से पहले आया है। **मियाने आन् दो दरख़्त**—दो दरख़्तों के बीच, यहाँ **मध्य** का प्रतिरूप **मियान दरख़्त** से पहले आया है। यह प्रवृत्ति कम्बोज भाषा-समुदाय में अब भी पाई जाती है और सामी भाषाओं में है, प्राचीन ग्रीक में है और अंग्रेज़ी में। फ़ारसी में दस के बाद गिनती के शब्द गढ़ने की प्रक्रिया बहुत दिलचस्प है। अंग्रेज़ी आदि यूरुप की भाषाओं में दहाई के बाद इकाई वाला क्रम अधिक से अधिक उन्नीस तक चलता है, बीस के बाद दहाई पहले, इकाई बाद को, यह द्रविड़ पद्धति शुरू हो जाती है। फ़ारसी में **याज़दह**—ग्यारह, **दवाज़दह**—बारह, **सीज़दह**—तेरह, यह क्रम आर्यभाषाओं की पद्धति के अनुरूप है किन्तु **बीस्त् ओयक**—इक्कीस, **सीओदो**—बत्तीस, यह पद्धति द्रविड़ भाषाओं के अनुरूप है। बीस तक का गणना-क्रम भारतीय आर्यभाषाओं के अनुरूप चलता है; इससे मिलती-जुलती स्थिति यूरुप की भाषाओं की है। बीस के बाद की गिनती द्रविड़ पद्धति का अनुसरण करती है। निष्कर्ष यह निकलता है कि फ़ारसी समेत इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं के मूलाधार में भारतीय आर्य-भाषाओं का योगदान मुख्य है किन्तु मूलाधार के ऊपर जो भाषाई प्रपंच है, उस पर द्रविड़ प्रभाव है। फ़ारसी में सघोष महाप्राण ध्वनियाँ जिस प्रकार सघोष अल्पप्राण बनती हैं, वह प्रक्रिया तेलुगु, कन्नड़ आदि भाषाओं में देखी जाती है। इससे उक्त स्थापना की पुष्टि होती है। मूल मध्यदेशीय आर्यभाषाएँ तिङन्त-प्रधान हैं किन्तु बाद की संस्कृत उत्तर-पश्चिमी आर्यभाषाओं के प्रभाव से कृदन्त-प्रधान है। द्रविड़ भाषाओं और फ़ारसी में ऐसी ही कृदन्त-प्रधानता है। भूतकालीन क्रिया रूपों में **गुफ़्तीद, कर्दन्द, ख़ास्तन्द** जैसे कृदन्त रूपों की भरमार है। **बकी गुफ्तीद**—तुमने किससे कहा, **हरचे ख़ास्तन्द कर्दन्द**—उन्होंने जो चाहा सो किया। लेवी ने तेरहवीं सदी की फ़ारसी से जो उदाहरण दिए हैं, उनमें ऐसे रूप बहुत हैं। अनेक कृदन्त जोड़कर सरल ढंग से वाक्य रचना की जा सकती है। चंगेज़ख़ाँ ने बुख़ारा नगर में आकर लूटमार की : **आमदन्द ओ कन्दन्द ओ सूख़्तन्द ओ कुश्तन्द ओ बुर्दन्द ओ रफ़्तन्द**—वे आए और नाश किया और आग लगाई और हत्या की और लूटा और चले गए। कृदन्त-प्रधानता का एक परिणाम यह हुआ है कि लम्बे वाक्य वास्तव में लघु वाक्यों का समूह होते हैं। एक मुख्य वाक्य हो, गौण वाक्य उससे सम्बद्ध हों, ऐसी वाक्य-रचना फ़ारसी की प्रकृति के बहुत अनुकूल नहीं है। लेवी के अनुसार छोटे-छोटे स्वतन्त्र वाक्य बटोरकर सब पर समान बल देते हुए बड़े वाक्य रचने की प्रवृत्ति के लिए स्पष्ट ही आग्रह दिखाई देता है। अंग्रेज़ी आदि यूरुप की भाषाओं से भिन्न फ़ारसी वाक्य-रचना की एक विशेषता यह है कि क्रिया सामान्यत: वाक्य के अन्त में आती है। भारत में आर्य भाषा परिवार ही नहीं, द्रविड़

आदि अन्य परिवार भी इसी रीति से वाक्य-रचना करते हैं। इस प्रकार ध्वनितन्त्र से लेकर वाक्यतन्त्र तक फ़ारसी के ऐतिहासिक विकास का विवेचन भारत के समग्र भाषायी परिवेश को ध्यान में रखकर ही किया जा सकता है।

ईरानी भाषा-समुदाय के क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण भाषा पश्तो है। फ़ारसी ने और उससे पहले ईरान की प्राचीन भाषाओं ने भारतीय आर्यभाषाओं को कहाँ तक प्रभावित किया है, इस समस्या का विवेचन करते समय फ़ारसी और पश्तो के आपसी सम्बन्धों को ध्यान में रखने से सहायता मिलेगी। जो विद्वान् सिन्धी, कश्मीरी और पश्चिमी पंजाबी को फ़ारसी-प्रभावित मानकर एक अलग दरद भाषा-समुदाय को मान्यता देते हैं, उनके लिए भी फ़ारसी और पश्तो का सम्बन्ध शिक्षाप्रद होगा। पश्तो-क्षेत्र में फ़ारसी केवल साहित्य पढ़ने-पढ़ाने की भाषा नहीं है; काबुल में उच्चवर्ग के पठान बहुधा फ़ारसी बोलते हैं। पठानों के देश में सामन्ती व्यवस्था अभी समाप्त नहीं हुई। इसका एक परिणाम यह है कि उच्चवर्ग पश्तो की तुलना में फ़ारसी को प्रश्रय देता रहा है और अपनी भाषा के प्रति हीनता के भाव से पीड़ित रहा है। पश्तो न केवल फ़ारसी से भिन्न एक स्वतन्त्र भाषा है वरन् इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं के विकास में उसका योगदान फ़ारसी क्षेत्र से कम नहीं है। कुछ बातों में यह फ़ारसी की अपेक्षा भारतीय आर्य भाषाओं के और भी निकट है।

पठान देश अत्यन्त प्राचीन काल से विभिन्न गण-समाजों का देश रहा है। ये गण-समाज सामन्ती व्यवस्था कायम हो जाने पर भी बहुत कुछ अपनी स्वाधीन सत्ता बनाए रहे। पर्वत प्रदेश में रहने से इन्हें अपनी स्वाधीन सत्ता बनाए रखने में सहायता मिली। **ऋग्वेद** में **पक्थ** गण का उल्लेख है। सम्भवतः यह **पश्त** का रूपान्तर है। अफ़गानिस्तान में पठान स्वयम् को **पश्तून** कहते हैं किन्तु कुछ भागों में इसी शब्द को **पख़्तून** बोला जाता है। **पख़्त** से **पश्त** रूप बना होगा, इसकी सम्भावना कम है। **पख़्त** से **पक्थ** रूप बनना सरल है; महाप्राणता ख् से हटकर त् में पहुँच गई है। **पश्तो** या **पुश्तू** शब्द काफी पुराना होगा, कम-से-कम उतना पुराना जितना ईरान शब्द है। पठान शब्द **पख़्त** की अपेक्षा **पक्थ** से बनेगा। **पख़्त** या **पक्थ** शब्द दूर-दूर तक प्रचलित था, यह यूनानी लेखक हेरोदोतुस् द्वारा प्रयुक्त **पक्तुएस्** से विदित होता है। पठान से मिलता-जुलता शब्द **पठार** है। सम्भवतः **पश्त, पक्थ, पख़्त,** ये शब्द पर्वत का अर्थ देते थे। रोह से इसी प्रकार **रोहिल्ला** शब्द बना और **ट्रम्प** ने पश्तो भाषा पर अपनी पुस्तक में बताया है कि **रोहु** सिन्धी भाषा में पर्वत को कहते हैं। उत्तर भारत में पठान जिस क्षेत्र में आकर खासतौर से रहे, वह रुहेलखण्ड कहलाया। (ट्रम्प के पश्तो व्याकरण की जो प्रति मुझे पढ़ने को मिली, उसमें ऊपर का पृष्ठ नहीं है। पुस्तक जर्मनी में छपी थी और भूमिका में सन् १८७३ दिया हुआ है।) **अफ़गान** शब्द ईरानियों का दिया हुआ है और बहुत से पठान यह शब्द पसन्द नहीं करते। वे स्वयम् को आर्य कहते हैं और उसी शब्द के अनुरूप उन्होंने अपनी विमान-सेवा का नाम रखा है।

ट्रम्प ने जब अपनी पुस्तक लिखी थी तब ईरान के प्रभाव से भारतीय आर्य-भाषाओं का विकास दिखाने की पद्धति का चलन न हुआ था। ट्रम्प ने पठान देश में

रहकर स्वयम् अपने कानों से पश्तो का बोल-चाल वाला रूप सुनकर व्याकरण लिखा था। इस तथ्य का उल्लेख उन्होंने अपनी भूमिका में किया है। उन्होंने सिन्धी भाषा का भी अध्ययन किया था और उसका व्याकरण भी लिखा था। वह उन थोड़े से भाषाविज्ञानियों में हैं जिन्होंने पश्तो का विवेचन भारतीय भाषायी सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए किया है।

किसी भी हिन्दीभाषी को फ़ारसी और पश्तो का जो अन्तर सबसे अधिक आकर्षित करेगा, वह फ़ारसी से भिन्न पश्तो में मूर्धन्य ध्वनियों का व्यवहार है। पश्तो में **ण्** है, ट्रम्प के अनुसार **ष्** भी है। उससे भी अधिक महत्वपूर्ण **ट्** और **ड्** ध्वनियाँ हैं जिनका फ़ारसी में नितान्त अभाव है। ट्रम्प ने लिखा है कि पश्तो में मूर्धन्य ध्वनियों का व्यवहार भारतीय प्राकृतों से मिलता-जुलता है। उन्होंने मूर्धन्य ध्वनियों के आधार पर पश्तो को भारतीय भाषाओं से जोड़ा है। प्राकृतों में इस तरह की ध्वनियों का व्यवहार अधिक हुआ है, "इसलिए फ़ारसी का प्रत्येक संज्ञा शब्द, जिसमें मूर्धन्य ध्वनि हो, आसानी से अपने भारतीय उद्भव का पता बता सकता है।" (पृष्ठ १२)। फ़ारसी में **ट्, ड्** का अभाव, पठान देश में उनका अस्तित्व, स्लाव समुदाय में उनका अभाव, जर्मन समुदाय में उनका अस्तित्व, इस स्थिति का मुख्य कारण यह है कि यूरुप के लिए भारतीय भाषातत्वों का एक वितरण-केन्द्र ईरान रहा है और दूसरा पठानदेश। ग्रीक, लैटिन, स्लाव आदि भाषा-समुदाय ईरान से अधिक सम्बद्ध हैं, जर्मन समुदाय पठानदेश से। यह सम्बद्धता सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं; विभिन्न केन्द्र एक दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं, इस कारण लैटिन जैसी भाषा में अनेक भाषातत्व ईरान से नहीं, पठानदेश से पहुँचे हैं।

ट् और **ड्** के लिए ट्रम्प का मत है कि इनका उच्चारण जीभ को मूर्धा की ओर ले जाने से होता है। ट्रम्प के समय तक ध्वनियों की छानबीन करने के लिए यान्त्रिक उपकरणों का चलन न हुआ था। फिर भी महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें पश्तो के **ट्, ड्** भारतीय आर्यभाषाओं के ट्, ड् जैसे सुनाई देते थे। १९२८ में जी० मौर्गेन्स्टीर्न ने ध्वनिशास्त्री लायड जेम्स के सहयोग से हज़ारा जिले के पठान नकीबुल्ला को सूचक बना कर पश्तो ध्वनियों का अध्ययन किया था। मौर्गेन्स्टीर्न ईरानी भाषाओं के विशेषज्ञ थे और लायड जेम्स ध्वनिशास्त्री थे। अतः दोनों का संयोग पश्तो ध्वनियों के विश्लेषण के लिए बहुत उपयोगी था। इनके अध्ययन का फल बी० एस० ओ० एस्० पत्रिका (सन् १९२८, खण्ड ५, भाग १) में प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने कहा है कि मूर्धन्य ध्वनियाँ जब शब्द के आदिस्थान में आती हैं, तब जीभ का प्रतिवेष्टन नहीं होता और वे वर्त्स्य होती हैं। स्वरों के बीच में और शब्द के अन्त में जीभ का प्रति-वेष्टन होता है और वे वर्त्स्यतालव्य ध्वनियाँ होती हैं। यह स्थिति भारतीय आर्य-भाषाओं के ध्वनितन्त्र में **ट्, ड्** आदि की स्थिति से मिलती-जुलती है। भारतीय उद्भव के अनेक शब्द पश्तो में बोले जाते हैं और इनके आदिस्थान में **ट्** है। हिन्दी **टोला** का प्रतिरूप **टोल्** है। **ग्राम** के समान यह शब्द समूह-सूचक है। पश्तो में उसका वह अर्थ बना हुआ है। राजस्थानी **टाबर**, सिन्धी **टपड़**, पंजाबी **टब्बर** का पश्तो प्रतिरूप **टपर**

(कुटुम्ब) है । पश्तो मूलशब्द के दन्त्य व्यंजन को मूर्धन्य भी बना देती है। यह प्रवृत्ति सिन्धी में भी है। **दुष्काल** का सिन्धी प्रतिरूप **डुकालु** है, पश्तो में **डुकाल** सिन्धी से पहुँचा है। **रोटी** का पश्तो प्रतिरूप **डोडई** आश्चर्यजनक है। सम्भव है **रोटी** का **रो** पहले **डो** या **दो** रहा हो। कहीं-कहीं सिन्धी का आदिस्थानीय **ट** पश्तो में **ड** हो गया है। हिन्दी **टक्कर**, सिन्धी **टकरु** पश्तो में **डकरह्** है। भारतीय शब्दों में जहाँ महाप्राणता है, वहाँ पश्तो में महाप्राणता का लोप हो जाता है और अघोष या सघोष अल्पप्राण मूर्धन्य ध्वनि का व्यवहार होता है। अवधी **मूठी**, सिन्धी **मुठि** का पश्तो प्रतिरूप **मुट्** है जो **मूठ** का रूपान्तर है। हिन्दी **ढेर** पश्तो में **डेर** हो गया है।

पश्तो को फ़ारसी से अलग करने वाली और हिन्दी परिवार से जोड़ने वाली **ट** और **ड** से भी अधिक महत्वपूर्ण उत्क्षिप्त मूर्धन्य ध्वनि **ड़्** है। महत्वपूर्ण इसलिए कि इसका व्यवहार पंजाबी और सिन्धी दोनों में कम होता है। यह ध्वनि फ़ारसी भाषा के ध्वनितन्त्र के अनुरूप उर्दू सँवारने वालों को पसन्द नहीं है किन्तु हिन्दी ही नहीं, बँगला में उसका खूब प्रयोग होता है। **र्** के संसर्ग से जैसे संस्कृत के अनेक रूपों में **त्** ध्वनि मूर्धन्य हो गई है, वैसे ही पश्तो में **र्** के संसर्ग से **द्** ध्वनि मूर्धन्य हुई और फिर दो स्वरों के बीच में होने से हिन्दी के समान उत्क्षिप्त भी हुई। फ़ारसी का **मर्दाना** पश्तो में **मड़नई** हुआ। **मर्द** पहले **मड** बना, फिर दो स्वरों के बीच का **ड्** उत्क्षिप्त हुआ। फ़ारसी **कर्दन्** इसी प्रक्रिया से **कड़ल्** बना, फिर वर्ण-संकोचन से आदि वर्ण के स्वर का लोप हुआ और **क्ड़ल्** रूप रह गया। जिन भाषाओं में वर्त्स्य ध्वनि का चलन माना जाता है, उनमें इस प्रकार की उत्क्षिप्त ध्वनि नहीं है। यह ध्वनि भारतीय आर्यभाषाओं में ही मिलती है; नौर्वे और स्वीडन की भाषाओं में और नौर्थम्बरलैन्ड की अंग्रेज़ी में वर्त्स्य से भिन्न मूर्धन्य ध्वनियों का अस्तित्व माना गया है किन्तु उनमें भी **ड़्** का व्यवहार नहीं होता। संस्कृत **षण्ड** पश्तो में हिन्दी की तरह **साँड़** है। हिन्दी में **साँड़** बैल के लिए ही आता है, पश्तो में भैंसे के लिए। ट्रम्प ने पंजाबी, **धाड़ा** और सिन्धी **धाड़ो** का प्रति-रूप **ताड़** दिया है। आदिस्थानीय **ध** को अघोष अल्पप्राण बोलने की प्रवृत्ति पंजाबी में है। अतः पश्तो **ताड़** (डाकुओं का दल) **धाड़ा** यानी **ताड़ा** के वैकल्पिक रूप **ताड़** के आधार पर बना है।

पश्तो में मूर्धन्य नासिक्य **ण्** है और जैसे कि जनपदीय बोलियों में बहुधा होता है, **ण्** को लोग **ड़्** की तरह बोलते हैं, वैसे ही पश्तो में उसका रूपान्तर होता है। **मुंगण** का वैकल्पिक रूप **मुंगड़** है। पंजाबी और बाँगरू के समान पश्तो कहीं-कहीं मूल शब्द के **न्** को भी **ण्** बना लेती है। इस प्रकार हिन्दी **वन** पश्तो में **वण्** है। गिनने वाली **गण** क्रिया पश्तो में **गणल्** है। ट्रम्प का कहना है कि पश्तो में मूर्धन्य **ष्** का व्यवहार होता है। उनके विचार से फ़ारसी के **श्** का उच्चारण पश्तो में अधिक कठोर होता है। इस प्रकार फ़ारसी **दुश्मन** पश्तो में **दुष्मन्** हो जाता है। **शिकार** वर्णसंकोच से **ष्कार** बोला जाता है। मौर्गेन्स्टीर्न और लायड ने मूर्धन्य **ष्** के बारे में कुछ नहीं लिखा। सम्भव है **पश्तो** शब्द मूलतः **पष्तो** रहा हो। इससे **पख़्त** और **पक्थ** वाले रूपों का विकास अधिक सहज होगा। **पश्त** से **पक्त** रूप बन सकता है किन्तु **पक्थ** के अन्तिम

वर्ण में महाप्राणता के योग का कोई कारण नहीं है; **पष्त** से यदि **पख्त** रूप बने तो **ख्** की महाप्राणता सरलता से अन्तिम व्यंजन में स्थानान्तरित हो सकती है। पश्तो-क्षेत्र के एक भाग में **ष्** को **ख्** बोलने की प्रवृत्ति है। हो सकता है कि संस्कृत **शुष्क** का फ़ारसी प्रतिरूप **खुश्क** किसी **षुष्क** जैसे पश्तो रूप से बना हो। ट्रम्प के अनुसार संस्कृत **शाखा**, फ़ारसी **शाख़** का पश्तो प्रतिरूप **षाख़** है जहाँ पश्तो ने फ़ारसी रूप के तालव्य **श्** को मूर्धन्य बनाया है। संस्कृत **श्वश्रु** का पश्तो प्रतिरूप **ख्वाषह्** (सास) है। यहाँ पहले वर्ण का तालव्य **श्** मूर्धन्यवत् बोला जाता होगा। यानी **श्वश्रु ष्वश्रु** बोला जाता होगा, इसलिए आदिस्थान में परिवर्तित हुआ है। इसी तरह **खुश्क** का **ख्** पूर्वरूप में मूर्धन्य **ष्** रहा होगा। फ़ारसी **शुतुर** की अपेक्षा पश्तो **ऊष्** (ऊँट) संस्कृत **उष्ट्र** के निकट है। संस्कृत क्रिया **चष्** (पीना) पश्तो में **च्‌षल्** है। आदि वर्ण का संकोच हुआ है और **च्** को संघर्षी रूप में ग्रहण किया गया है। इसी प्रकार संस्कृत क्रिया **कृष्** पश्तो में **क्षल्** (खींचना) है। यदि ट्रम्प की बात सही हो तो पश्तो रूप में **क्** के साथ **ष्** का संयोग दिखाई देगा। संस्कृत की संयुक्त ध्वनि **क्ष्** के मूल स्रोत अनेक हैं पर वे कोई भी हों, **क्** और **ष्** के संयोग के बिना **क्ष्** ध्वनि बन नहीं सकती। ऐसा संयोग सम्भवतः पश्तो में है। क्षुद्र का पश्तो प्रतिरूप **खोटइ** सीधे **क्षुद्र** का विकास नहीं है वरन् हिन्दी **खोटा** का रूपान्तर है। संस्कृत **पृच्छ्** क्रिया पश्तो में **पुष्तेदल्** है। **प्रश्न** से विदित होता है कि मूल क्रिया में **श्** ध्वनि थी, वही **च्छ्** में परिवर्तित हुई है। **ष्** ध्वनि का ऐसा रूपान्तर नहीं होता। इसलिए लगता है, पश्तो में तालव्य **श्** मूर्धन्य बना है। ट्रम्प ने संस्कृत **ऋज्** से पश्तो **रिष्तिश्रा** (सत्य) का सम्बन्ध जोड़ा है और लैटिन **रेक्तुस्** रूप उद्धृत किया है। मूर्धन्य **ष्, च्** या **ज्** रूप धारण करते नहीं देखा जाता; अतः मूलरूप में **श्** या **स्** के व्यवहार की अधिक सम्भावना है। पश्तो **रीश** या **रीष** दाढ़ी के लिए प्रयुक्त होता है यानी दाढ़ी के बालों के लिए। सम्भव है **ऋक्ष** का मूल अर्थ बालों वाला है। द्रविड़ परिवार की तोद भाषा में **ष्** का व्यवहार होता है और इसके बोलने वाले उत्तर से दक्षिणापथ गए जान पड़ते हैं। इसलिए मूर्धन्य **ष्** का केन्द्र पठानदेश या उसके आसपास का क्षेत्र माना जा सकता है।

सिन्धु का पश्तो प्रतिरूप **हिन्दु** नहीं है, **सीन्द** है। प्राचीन ईरानी भाषा परम्परा के विपरीत **स्** पश्तो में दृढ़तापूर्वक जमा हुआ है। **स्पइ** (कुत्ता), **सोए** (खरगोश), **साँड़, स्पेरह्** (पीला), **लास्** (हाथ) आदि शब्दों में **स्** का व्यवहार देखा जा सकता है। **फ़्** फ़ारसी की प्रमुख ध्वनि है किन्तु पठान इसे अल्पप्राण करके **प्** रूप में बोलते हैं। यह स्थिति स्लाव परिवार की उक्रैनी भाषा की याद दिलाती है जहाँ महाप्राण **ख्** तो है पर **फ़्** नहीं है। **फ़रिश्ता** पश्तो में **पिरिष्तह्** हो गया है। ट्रम्प ने लिखा है: "ईरानी भाषाओं से भिन्न पश्तो की एक विशेषता यह है कि उसमें **फ़्** का अभाव है। यह ध्वनि **फ़्** लिखी जाती है और व्यक्तिवाचक नामों में पाई भी जाती है किन्तु हठपूर्वक **प्** बोली जाती है, यहाँ तक कि **आफ़रीदी** भी अपने को **आपरीदइ** कहते हैं।" (पृष्ठ १७)। ट्रम्प ने पठानों के बीच रहकर उनके उच्चारण का अध्ययन किया था। इस सम्बन्ध में उनकी टिप्पणियाँ सदैव ध्यान देने योग्य हैं। पश्तो फ़ारसी की शाखा है और उससे

प्रभावित है, इस धारणा की आवृत्ति न करके उन्होंने अपने विवेचन में पश्तो की विशेषताएँ निश्चित करते हुए उसके स्वतन्त्र रूप पर बल दिया है।

फ़ारसी और पश्तो में एक महत्वपूर्ण भेद शब्द के आरम्भ में एक से अधिक व्यंजनों के प्रयोग को लेकर है। फ़ारसी में ऐसे व्यंजन-गुच्छ नहीं होते, पश्तो के लिए यह सामान्य बात है। मूल शब्द में यदि आदिस्थानीय व्यंजन-गुच्छ हो, तो फ़ारसी अतिरिक्त स्वर जोड़ कर व्यंजनों को अलग कर देगी; मूल शब्द में व्यंजन-गुच्छ न हो तो भी अनेक शब्दों में, वर्णसंकोचन द्वारा, पश्तो व्यंजन-गुच्छ पैदा कर देगी। संस्कृत **पितर्** फ़ारसी में **पिदर्** है किन्तु पश्तो में **प्लार्** है। इसी प्रकार फ़ारसी **कर्दन्** पश्तो में **क्ड़ल्** है, **शिकार** का रूपान्तर **ष्कार** है। अनेक प्रकार के व्यंजन-गुच्छ शब्द के आदि-स्थान में देखे जाते हैं। **म्ला** (जाँघें), **म्ज़ारइ** (बाग), **न्मर** (सूर्य), **प्सोल्** (कण्ठी), **र्ग़ाष्तल्** (लुढ़कना), **न्ग़ावतल्** (परिचर्या करना), **र्वड्** (दिन; वैकल्पिक रूप **व्रड्** भी है), **व्रोन्** (रान), **व्लल्** (धोना)। इस प्रकार के व्यंजन-गुच्छ अंशत: पंजाबी और संस्कृत में हैं, इनसे कुछ अधिक तुखारी में हैं। तमिल में भी अनेक व्यंजन एक साथ प्रयुक्त हो सकते हैं किन्तु शब्द के आदिस्थान में व्यंजन-गुच्छ वर्जित हैं, तमिल से भिन्न तेलुगु में जहाँ-तहाँ आदिस्थानीय व्यंजन-गुच्छ भी मिलते हैं।

इन्डोयूरोपियन परिवार के सन्दर्भ में, विशेषत: भारतीय आर्य द्रविड़ भाषाओं के सन्दर्भ में पश्तो का सबसे रोचक ध्वनि-परिवर्तन **त्, द्, न्** से सम्बन्धित है। ये तीनों ध्वनियाँ पार्श्विक ध्वनि **ल्** में बदलती हैं। सघोष-अघोष **थ्, ध्** ध्वनियाँ पश्तो में हैं नहीं, इसलिए उनके परिवर्तन का प्रश्न नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं है कि इस भाषा में **त्, द्, न्** ध्वनियों का व्यवहार नहीं होता। ये ध्वनियाँ हैं, साथ ही बहुत से शब्दों में वे परिवर्तित हुई हैं। इसका कारण यह है कि जिन गण-भाषाओं के तत्व लेकर पश्तो ध्वनितन्त्र का निर्माण हुआ है, उनमें एक शक्तिशाली केन्द्र वह था जिसमें त-वर्गीय ध्वनियों का नितान्त अभाव था। उसमें अन्तस्थ ध्वनियों का विकास हुआ था जिनमें पार्श्विक **ल्** ध्वनि प्रमुख थी। इसलिए **त्** और **द्** ही नहीं, **न्** भी **ल्** में बदलता है। इस केन्द्र में नासिक्य ध्वनियों का पूर्ण अभाव रहा होगा, नहीं तो दन्त्य नासिक्य के स्थान पर ओष्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, किसी भी अन्य नासिक्य का व्यवहार हो सकता था। बहुत सी आर्य-द्रविड़ भाषाओं में ऐसे पचीसों शब्द मिलेंगे जिनमें ल् ने नासिक्य ध्वनि का स्थान लिया है। इसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत मूर्धन्य नासिक्य **ण्** पार्श्विक **ळ्** या उत्क्षिप्त **ड़्** बनता है। पश्तो को फ़ारसी से अलग करने वाली यह एक प्रमुख ध्वनिप्रवृत्ति है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि गणभाषाओं का जैसा जमघट पठान देश में हुआ है, वैसा ईरान में नहीं हुआ।

संस्कृत **शत** का फ़ारसी प्रतिरूप **सद** है किन्तु पश्तो में इसका रूपान्तर **सल** है। संस्कृत **पितर्** का फ़ारसी प्रतिरूप **पिदर्** है किन्तु इसका पश्तो रूपान्तर **प्लार्** है। **हाथ** के लिए मूल शब्द **धस्त** का फ़ारसी प्रतिरूप **दस्त** है किन्तु इसका पश्तो रूपान्तर **लास** है जो **दस्त** नहीं, **दस, दास** जैसे पूर्वरूप से बना है। संस्कृत **देवर** का पश्तो प्रतिरूप **लेवर्** है जो लैटिन में **लेविर्** है। हिन्दी जनपदीय भाषाओं में चौड़ी थाली को **परात**

कहते हैं। इसका सम्बन्ध संस्कृत **पृथु** से है जो ग्रीक भाषा में **प्लातोस्** और अंग्रेज़ी में **फ्लैट्** (चपटा, चौरस) है। पश्तो में **त्** ध्वनि **न्** में परिवर्तित हुई है और **प्** सुरक्षित रहा है। पश्तो **प्लन्** का वही अर्थ है जो अंग्रेज़ी **प्लेन्** का है। इस प्रकार **पृथु** के दो अंग्रेज़ी रूपान्तर हुए **फ्लैट्** और **प्लेन्**। पहले रूप में **त्** ध्वनि केवल वर्त्स्य हो जाती है किन्तु दूसरे रूप में वह नासिक्य रूप लेती है। पश्तो में **त्** और **द्** ध्वनियाँ **ल्** में ही नहीं **न्** में भी बदलती हैं। इसी प्रवृत्ति के कारण संस्कृत **तीर्थ** का जलवाचक शब्द-मूल **तीर** आर्य-द्रविड़ भाषाओं का **नीर** बना। अब यदि अंग्रेज़ी **लिवर्** (जिगर) के पूर्वरूपों का अध्ययन किया जाए तो संस्कृत **यकृत्** से चलते हुए फ़ारसी **जिगर** तक पहुँचते हैं। **जिगर** के रूपान्तर **दिगर** से पश्तो **लिगर** बना और **लिगर** से अंग्रेज़ी **लिवर**। पश्तो में **दस** के लिए **लस** शब्द है। हिन्दी के **ग्यारह** का पश्तो प्रतिरूप **यहोलस्, यउलस्** अथवा **योलस्** है। **बारह** का प्रतिरूप **द्वहलस्, द्वोलस्** अथवा **दोलस्** है। **तेरह, चौदह, पन्द्रह, सोलह, सत्रह, अठारह, उन्नीस** के लिए क्रमशः **दिआलस्, च्वालस्, पिन्उहलस्, स्पाड़लस्** या **स्फड़स्, ओवहलस्** या **अवहलस्, अतहलस्** और **नुहलस्** अथवा **नूनस्** हैं। स्पष्ट है कि इन्डोयूरोपियन परिवार की लैटिन जैसी प्राचीन और अंग्रेज़ी जैसी नवीन, भारतीय भाषाओं में हिन्दी आदि और द्रविड़ भाषाओं में तमिल आदि के ध्वनितन्त्र की अनेक विशेषताएँ पश्तो-क्षेत्र से सम्बद्ध हैं।

अन्तस्थ ध्वनियों में **व्** ध्वनि के प्रयोग रोचक हैं। यह ध्वनि पश्तो में है और परिवर्तित भी होती है। **वायु** का प्रतिरूप **वो** उसका अस्तित्व प्रमाणित करता है; **वर्षाकाल** का प्रतिरूप **पर्शकाल** उसे स्पर्शध्वनि में बदलते दिखाता है। भारतीय भाषाओं में जैसे **प्** बहुधा **व्** में बदलता है, वैसे ही **दीप** का पश्तो प्रतिरूप **दीव** है। **प्** ही नहीं, **ब्** को भी **व्** रूप दिया जाता है यथा फ़ारसी **बाग़** (लगाम) का पश्तो प्रतिरूप **वाग़** है। फ़ारसी **शब** (रात) पहले **शव** बना, फिर **शो** रह गया। **ल्** और **व्** जोड़ीदार हैं। जिन भाषाओं में **ल्** की प्रधानता होती है, सामान्यतः उनमें **व्** भी होता है। पर यह अनिवार्य नियम नहीं है। **ल्** और **व्** पश्तो की मूल ध्वनियाँ हैं, यह मान लेने के बाद यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि कुछ प्राचीन गणभाषाओं में **व्** का सीधा उच्चारण न करके उसके पहले **ल्** ध्वनि जोड़ दी जाती थी। हिन्दी **भूख** या **भूखा** का पश्तो प्रतिरूप **ल्वझ़ह्** है। **भ्** पहले अघोष अल्पप्राण **प्** हुआ; फिर **प्** के स्पर्शतत्व का लोप हुआ और अन्तस्थ **व्** ध्वनि बची। फिर इस अन्तस्थ **व्** में दूसरा अन्तस्थ **ल्** जोड़ दिया। एक अन्तस्थ एक स्पर्श ध्वनि के बराबर न हो, दो तो होंगे। इससे मिलती-जुलती प्रक्रिया **व्** के साथ **र्** के संयोग में देखी जाती है। संस्कृत **भाषा** का पश्तो प्रतिरूप **व्राशह्** है। **भ्** की महाप्राणता सघोषता का लोप, प् के स्पर्शतत्व का लोप, फिर स्पर्शतत्व की क्षति-पूर्ति के लिए एक अन्य अन्तस्थ **र्** का संयोग। जर्मन भाषा में **स्प्राख़े** (भाषा) और **स्प्राख़ेन्** (बोलना) में भी अतिरिक्त **र्** का नियोग है। हिन्दी बोलियों का **पेर** (पीला) पश्तो में **स्पेर्** है। उसी तरह जर्मन **स्प्राख़े** में अतिरिक्त **स्** जोड़ा गया है। अंग्रेज़ी के संज्ञा-क्रिया **स्पीक्** (बोलना) और **स्पीच्** (बोली) इसी शृंखला में हैं केवल **र्** का योगदान नहीं है। तिब्बती भाषा में जैसे मूल शब्द के पहले **स्** जोड़कर अर्थ सम्वर्धित किया जाता है, वैसी प्रक्रिया

पश्तो में भी रही होगी। **पेर** का प्रतिरूप **स्पेर्** है, **तेरा** के लिए **स्ता** शब्द है, सम्भवत: **तव** के आधार पर **ता** बना और फिर **स्** जोड़ा गया। **मेरा** के लिए **ज़्मा** है जहाँ **मा** रूप के पहले सघोष **स्** (**ज़्**) जोड़ा गया है। संस्कृत **नाग** का अंग्रेज़ी प्रतिरूप **स्नेक** इसी सकार संयोग का उदाहरण है।

पश्तो में अनेक शब्द ऐसे हैं जिनमें भारतीय भाषाओं के अकार के स्थान पर ओकार का व्यवहार हुआ है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। संस्कृत **अभ्र** फ़ारसी में **अब्र** बना, फिर पश्तो **अव्र** हुआ और **व्** लोप के बाद **ओरह्** रह गया। अन्तस्थ **व्** ने लोप होने से पहले पूर्ववर्ती स्वर को ओकार बनाया। **ओरह्** का वही अर्थ है जो **अभ्र** का है यानी बादल। **ओरह्** जिस प्रक्रिया से बना, उसी से हिन्दी शब्द **ओला** बना। **भ्रातर्** के पश्तो प्रतिरूप **व्रोर्** में मूल शब्द के **त्** का लोप हो गया। यह लोप **त्-थ्-ह्** की प्रक्रिया से हुआ होगा और **ह्** ने पूर्ववर्ती स्वर को प्रभावित किया हो, यह सम्भव है। किन्तु **घर** के पश्तो प्रतिरूप **कोर्** के बारे में ऐसा कोई तर्क नहीं दिया जा सकता। **घ** को अघोष अल्पप्राण करने की प्रवृत्ति पंजाबी में है किन्तु वहाँ प्रथम वर्ण में ओकार नहीं है। फ़ारसी **आब** पश्तो में **ओब** है, संस्कृत **अश्रु** पश्तो में **ओषह्** है। यहाँ अकार ही ओकार रूप में प्रयुक्त हुआ है। **सप्त** के पश्तो प्रतिरूप **ओवह्**, फ़ारसी **सितारा** के पश्तो प्रतिरूप **स्तोरइ** में भी यही स्थिति है। **मातर्** के पश्तो प्रतिरूप **मोर्** की व्याख्या **व्रोर्** के समान की जा सकती है किन्तु **व्रोर्, मोर्** आदि में प्राकृतों के समान जो मध्यवर्ती **त्** का लोप हुआ है, वह **मातर्, पितर्** के फ्रांसीसी प्रतिरूपों **मेयर्, पेयर्** से तुलनीय है। **वायु** के पश्तो प्रतिरूप **वो** का सम्बन्ध सिन्धी **वाउ** से हो सकता है जहाँ उकार पूर्ववर्ती स्वर को प्रभावित करके लुप्त हुआ। संस्कृत **चत्वारि** के पश्तो प्रतिरूप **च्लोर्** में **व्** पूर्ववर्ती स्वर को प्रभावित करके लुप्त होता है। हिन्दी क्रिया **सूंघ** के पश्तो प्रतिरूप **सोग़** में सम्वृत स्वर विवृत हो गया है। अकार उकार के स्थान पर ओकार का व्यवहार मागधी वृत्ति का सूचक है। साथ ही आधुनिक पश्चिमी आर्यभाषाओं के समान पश्तो में संयुक्त स्वर **औ** को **ओ** बोलने की प्रवृत्ति है। इस प्रकार हिन्दी **चौकी** का पश्तो प्रतिरूप **चोकइ** है और **चौपाल** का पश्तो प्रतिरूप **चोपाड़** है। फ़ारसी में संयुक्त स्वर औ का व्यवहार खूब होता है; पश्तो की पद्धति भिन्न है।

पश्तो में ऐसे अनेक शब्द हैं जिनके अन्त में तमिल के समान संयुक्त स्वर **अइ** का व्यवहार होता है। कुबड़ा के लिए **कूवइ** शब्द का पूर्वरूप **कूवा** होना चाहिए। **पैर** का तला पश्तो में **तलइ** है। हिन्दी नेवला पश्तो में **नोलइ**, सितारा **स्तोरइ**, गेंडा **गेन्डइ**, हाड़ **हडइ**, होड़ करने वाला व्यक्ति **होडइ** इस संयुक्त-स्वर-विधान के उदाहरण हैं। ट्रम्प ने लिखा है कि **अइ** में **अ** का उच्चारण ह्रस्व एकार जैसा होता है। ठीक यही स्थिति तमिल की है और इसका मूल कारण अकार को एकार बनाने वाली कौरवी वृत्ति है।

कुछ शब्दों में **अइ** के स्थान पर **अउ** संयुक्त स्वर का व्यवहार होता है। मूलत: एक ही ध्वनिवृत्ति है जो शब्द के अन्तिम वर्ण में दीर्घ स्वर स्वीकार नहीं करती। **आ** को **अइ** कहा जाए तो यह कार्य उस क्षेत्र का होगा जहाँ **इ** स्वर की प्रधानता है और

अउ कहा जाय तो यह परिवर्तन उकार प्रधान क्षेत्र के अनुरूप होगा। प्राचीन भाषाओं की ध्वनिप्रवृत्तियों के विश्लेषण से विदित होता है कि मध्यदेश **इ** तथा **य्** का क्षेत्र रहा है और उत्तर-पश्चिमी जनपद **उ** तथा **व्** के प्रधान क्षेत्र रहे हैं। इस प्रकार पश्तो में दोनों ध्वनिप्रवृत्तियों का मिश्रण है। हिन्दी **पल्ला** पश्तो में **पलउ** है; ट्रम्प ने इसके समानान्तर सिन्धी रूप **पलउ** उद्धृत किया है। **आ** को **अइ, अउ** में रूपान्तरित करने की प्रवृत्ति बहुत पुराने समय में जन्मी थी जब तमिल जैसी द्रविड़ भाषाओं में इसका विकास हो रहा था। तमिल में यह प्रवृत्ति अब भी शक्तिशाली है, एक से अधिक वर्णों के शब्दों के अन्त में दीर्घ स्वर अपवाद रूप में मिल सकते हैं। पश्तो में ऐसी निषेध-भावना अब नहीं है। अतः शब्द के अन्त में **अइ** के अतिरिक्त **अई** का व्यवहार भी होता है। **चिट्ठी** का प्रतिरूप **चीटई** है, **चौकी** का प्रतिरूप **चोकई** है। सम्भवतः **अइ** लगाने की प्रवृत्ति तथा हिन्दी शब्दों के अन्तिम दीर्घ स्वर को बनाए रखने की इच्छा, दोनों का समन्वय किया गया है।

जैसे कन्नड़ की अपेक्षा तमिल में तालव्य ध्वनियाँ अनेक शब्दों में कण्ठ्य ध्वनियों का स्थान लेती हैं, वैसे ही पश्तो में फ़ारसी **कार** का प्रतिरूप **चार** (कार्य) और संस्कृत **कन्या** का प्रतिरूप **जिनई** है। यहाँ इस सम्भावना को भी ध्यान में रखना चाहिए कि कुछ शब्दों में मूलतः तालव्य ध्वनि थी, वही वह कण्ठ्य या दन्त्य ध्वनियों में परिवर्तित होती है। पालि **पसेनदो** का पूर्वरूप **प्रसेनजित** ही है। इसी प्रकार मूल क्रिया **जन्** से संज्ञारूप **जन्या** बनेगा। इसी का अघोष कण्ठ्य ध्वनि वाला रूपान्तर **कन्या** होगा। इस विश्लेषण के अनुसार पश्तो **जिनई** सीधे **जन्या** का रूपान्तर माना जाएगा। भारतीय भाषाओं के समान पश्तो में भी **य्** ध्वनि **ज्** में बदलती है। बैलों के जुएँ के लिए पश्तो **जुग्र** संस्कृत **युग** का रूपान्तर है। ऐसा कुछ शब्दों में होता है, क्योंकि **य्** और **व्** दोनों ध्वनियाँ पश्तो में अच्छी तरह प्रतिष्ठित हैं। यद्यपि फ़ारसी के समान पश्तो में भी **व्** को **प्** में बदलने की प्रवृत्ति है, फिर भी ट्रम्प की यह स्थापना सही है कि फ़ारसी की अपेक्षा पश्तो में **व्** ध्वनि अधिक दृढ़ता से अपनी जड़ जमाए है। **ताप** शब्द हिन्दी की तरह यहाँ **ताव** है अर्थात् **प्** ध्वनि भी **व्** में बदलती है। फ़ारसी **बर्फ़** पश्तो में **वाव्रह्** है; यहाँ **ब्** और **फ़्** दोनों **व्** में परिवर्तित हुए हैं। धोने के लिए **प्लु** के आधार पर पश्तो रूप **व्लल्** बना। संस्कृत **भर्** का फ़ारसी प्रतिरूप **बर्दन्** है किन्तु पश्तो प्रतिरूप **व्ळल्** है। कुरु जनपद में जैसे **र्** को **ळ्** कहने की प्रवृत्ति है या 'शुद्ध' उर्दू बोलने के प्रयास में जैसे कभी लोग **ज़रा** को **ज़ड़ा** कहते हैं, वैसे ही पश्तो में **र्** को कहीं-कहीं **ड्** किया गया है। **बर्फ़** का **र्** सुरक्षित रहा किन्तु **बर्दन्** का **र्** बदल गया; इसका कारण यह भी है कि **र्** से **द्** का संयोग होने पर **ड्** ध्वनि का जन्म हुआ, फिर दो स्वरों के बीच में होने से **ड्** उत्क्षिप्त ध्वनि में परिवर्तित हुआ। आदिवर्ण **ब** के स्पर्शतत्व का लोप हुआ, फिर वर्णसंकोच के कारण **व** के अकार का लोप हुआ। पश्तो में **व्** और **य्** दोनों ध्वनियाँ प्रतिष्ठित हैं किन्तु **व्** का व्यवहार ही अधिक देखा जाता है। अरबी बहुवचन रूप **उमरा** को पश्तो फिर बहुवचन **उमरायान्** बनाती है और **जंगवाला** (जंगबाज़) के **व्** को **य्** में बदलने पर **जंगयालइ** रूप भी चलता है।

य् और व् दोनों के उच्चारण में कुछ प्राचीन गणसमाजों को कठिनाई होती थी। इसलिए वे इन ध्वनियों के पहले ग् जोड़ दिया करते थे जैसे कि ब्रज-क्षेत्र की बोलियों में वु (वह) के प्रतिरूप ग्वु में अब भी होता है। यह प्रवृत्ति फ़ारसी में भी थी। ट्रम्प ने लिखा है कि फ़ारसी में आदिस्थानीय व् बहुधा ग् में बदल जाता है जिसका मतलब है, ग्व् के व् का लोप होने पर केवल ग् बच रहता है। केल्त भाषाओं के प्रसंग में इस प्रवृत्ति का विस्तृत विवेचन है। पश्तो में **उमरायान्** का वैकल्पिक रूप **उमरागान्** भी है और हिन्दी **वाला, वाल** आदि के लिए जहाँ पश्तो का **वालइ** प्रत्यय है, वहाँ **गल्वी, गली** प्रत्यय भी है। **मोरवालइ** अर्थात् मातृत्व; **पेज़न्दगल्वी, पेज़न्दगली** अर्थात् पहचान।

पश्तो की एक विशेषता यह है कि वह अपनी ध्वनिप्रकृति के अनुसार फ़ारसी और अरबी दोनों भाषाओं के शब्दों को तद्भव रूप देती है। इस प्रकार फ़ारसी **ख़ुदा** पश्तो में **ख़ुदाअ॑** हो गया है। कबीर ने जब **बहरा हुआ ख़ुदाय** कहा था, तब उन्होंने ख़ुदा के फ़ारसी नहीं, पश्तो रूप का प्रयोग किया था। ट्रम्प ने लिखा है कि पश्तो में ऐसे रूप हैं जिनके अन्त में ह्रस्व एकार है, यह उसकी विशेषता है। वास्तव में यह कौरवी पद्धति है जिसे अर्ध मागधी कहा गया था, जो मराठी के अनेक रूपों में मिलती है। यह एकार इ और य् का रूप भी लेता है। इसीलिए **राव** का प्रतिरूप **राय** भी है। पश्तो में **राअ॑, जोअ॑** (पुत्र), **मीअ॑** (मामा), **आश्नाअ॑** (परिचित) आदि रूप हैं। आधुनिक आर्यभाषाओं की प्रकृति के अनुसार दो स्वरों की टक्कर से बचने के लिए ऐसे रूपों में **य्, व्** श्रुति का आगम होना चाहिए था किन्तु ट्रम्प के लिखने से प्रतीत होता है कि प्राकृतों के समान यहाँ दो स्वरों की टक्कर स्वीकार की जा सकती है। **जोअ॑** शब्द जात का प्रतिरूप माना गया है। यह बात सही हो तो **त्** का लोप प्राकृतों के समान होगा। किन्तु मेरा अनुमान है कि पश्तो में भी **य्, व्** श्रुति का आगम होता है। ट्रम्प ने संस्कृत **वाच्** का प्राकृत रूप **वाआ** देते हुए पश्तो के **वअइ** का वैकल्पिक रूप **वयइ** (वचन) दिया है। पश्तो का विकास प्राकृतों के समान हुआ है, यह धारणा उन्हें पश्तो ध्वनियों को रोमन लिपि में लिखते समय प्रभावित करती है। साथ ही यह कहना भी आवश्यक है कि प्राकृत शब्द से उनका आशय शिलालेखों या नाटकों की प्राकृत से ही नहीं है, वे आधुनिक आर्यभाषाओं को भी प्राकृत कहते हैं। पश्तो पर अपने ग्रन्थ में उन्होंने आधुनिक प्राकृत भाषाओं का उल्लेख किया है और उनमें पश्तो को गिना है (पृष्ठ ४२)। पश्तो का विकास आधुनिक आर्यभाषाओं के समान हुआ है, यह सही है; पुरानी प्राकृतों में समकालीन भाषाओं के अनेक तत्व हैं, यह बात भी सही है, किन्तु प्राकृत व्याकरणों में जो नियम बताए गये हैं, उनके प्रति सतर्क रहना आवश्यक है।

पश्तो में महाप्राण ध्वनियों का लोप होता है, **घर** का प्रतिरूप **कोर** मिलता है, किन्तु तमिल की कुछ बोलियों के अनुरूप और अंग्रेज़ी के समान शब्द की आदिस्थानीय स्पर्श ध्वनि के उच्चारण में महाप्राणता का हल्का योगदान होता है। **मौर्गेन्स्टीर्न** और लायड ने अपने पूर्वोक्त निबन्ध में बताया है कि आदिस्थानीय अघोष स्पर्श ध्वनियों के उच्चारण में, विशेषतः ओष्ठ्य ध्वनियों के उच्चारण में, ईषत् महाप्राणता रहती है। इस प्रकार **पीर** शब्द **फीर** जैसा बोला जाएगा, केवल हिन्दी **फ्** की अपेक्षा

यहाँ महाप्राणता कम होगी। महाप्राणता अर्थभेदक नहीं है। यही स्थिति सघोषता की है। उक्त लेखकों ने मत प्रकट किया है कि आदिस्थानीय ड्, ग् आदि ध्वनियाँ अर्ध सघोष ही होती हैं। इससे प्रतीत होता है कि सघोषता और महाप्राणता दोनों वृत्तियों का प्रसार मध्यदेश से उत्तरी प्रदेशों की ओर हुआ है और मध्यदेश की तुलना में यहाँ इनकी भूमिका गौण है। पश्तो में संस्कृत त्रि का प्रतिरूप द्रे है जो जर्मन रूप से मिलता है। हिन्दी **धुन्ध** का पश्तो प्रतिरूप **दुन्द** है; यहाँ महाप्राणता का लोप हुआ है, सघोषता कायम रही है किन्तु **घर** के प्रतिरूप **कोर** में अघोषता आ गई है। सघोष महाप्राण ध्वनियों के अलावा अघोष महाप्राण ध्वनियों की महाप्राणता का भी लोप हो जाता है यथा हल का **फाल** पश्तो में **पालह्** है। दूसरी ओर **गोप** का प्रतिरूप **गोबह्** है और **पर्ण** का प्रतिरूप **बन्ड़ह्** है। मध्यवर्ती और आदिस्थानीय प्, दोनों स्थितियों में, सघोष हो गया है। पश्तो में सघोषता और महाप्राणता अर्थविच्छेदक नहीं हैं, महाप्राणता पूर्णतः नहीं है, सघोषता अंशतः नहीं है, इसलिए ऐसे अनियमित ध्वनि-परिवर्तनों से कोई हानि नहीं होती। फ़ारसी की अपेक्षा पश्तो में ह् का व्यवहार कम होता है। **सप्त** के पश्तो प्रतिरूप **ओवह्** में आदिस्थानीय ह् का लोप हो गया है किन्तु **भेड़ा** के प्रतिरूप **हेड़इ** में ह् बना हुआ है। भ् ध्वनि ह् में परिवर्तित हुई है जैसे कि भारतीय आर्यभाषाओं के बहुत से शब्दों में वह इसी प्रकार परिवर्तित होती दिखाई देती है।

पश्तो उत्तर-पश्चिमी भाषा है, इसलिए उसमें अनेक शब्दों के अन्त में **अइ** अथवा **अंइ** का होना स्वाभाविक लगता है, किन्तु उसमें बहुत से रूप ओकारान्त भी हैं। यह प्रवृत्ति ब्रज, राजस्थानी, गुजराती और सिन्धी की है और निस्सन्देह पश्तो से इन भाषाओं का, विशेषतः सिन्धी का, सम्पर्क सिद्ध करती है। **बीज़ो** (बन्दर), **पिशो** (बिल्ली), **बार्खो** (गाल), **बणो** (भौंह) आदि ऐसे रूप हैं। कहीं-कहीं अरबी शब्द पश्तो में हिन्दी की तरह स्वीकार किए जाते हैं। अरबी **वक़्त** पश्तो में **वख़्त** है; हिन्दी की जनपदीय भाषाओं में **ख्** संघर्षी न होकर स्पर्श रहता है, इतना ही अन्तर है। ट्रम्प ने लिखा है कि अरबी के जिन शब्दों में **अ** (ऐन द्वारा चिन्हित) ध्वनि है, उनमें उसका उच्चारण नहीं होता। ठीक यही स्थिति हिन्दी की है। यदि भारत के शिक्षित जनों की उर्दू और पश्तो की तुलना की जाए, तो विदित होगा कि पश्तो जहाँ अपने जातीय स्वरूप की रक्षा करती है, वहाँ उर्दू अरबी से अभिभूत हो जाती है।

पश्तो में कुछ ध्वनि-परिवर्तन ऐतिहासिक महत्व के हैं। थकान के लिए **स्तड़िअह्** शब्द है। इसके आरम्भ में **स्त** थकान के **थ** का रूपान्तर नहीं है। मूल शब्द **स्तध** से **स्तद**, फिर **स्तड़** रूप बने हैं। अवधी का **ठाढ़**, मानक हिन्दी का **खड़ा** आदि रूप स्तध जैसे कृदन्त से बने हैं। जैसे **स्तब्ध** में निपट नीरवता के अर्थ का विकास हुआ है, वैसे ही **स्तध** में थकान का। स्थल के लिए **तालइ** शब्द **स्थाल** का रूपान्तर है। संस्कृत में **स्थल** रूप का व्यवहार ही अधिक होता है किन्तु **स्थान** के समान यहाँ **स्थाल** रूप का व्यवहार भी होता था, इसका प्रमाण पश्तो **तालइ** है। कहना चाहिए कि हिन्दी **थाना** की तरह **स्थाला** रूप प्रचलित था, इसीलिए पश्तो शब्द के अन्त में **अइ** है। वैसे **न्** की जगह **ल्** का

व्यवहार पश्तो के लिए सामान्य है। इसलिए **स्थाना** को मूल कौरवी रूप मानने से भी काम चल सकता है। हिन्दी में **थाना** है ही। संस्कृत में **स्थल** है, **स्थान** भी है; इसलिए मानना चाहिए कि **न्** और **ल्** दोनों ध्वनियों वाले रूप पहले प्रचलित थे।

बोध शब्द का पश्तो प्रतिरूप **पोहह्** है। यहाँ आदिध्वनि अघोष हो गई है जैसे कि वह इस शब्द के ग्रीक प्रतिरूपों से मिलती है किन्तु अन्तिम वर्ण का **ध्**, **हेड़इ** (भेड़ा) के भ् की तरह ह् में बदल गया है। पश्तो अनेक शब्दों में अतिरिक्त सकार जोड़ती है किन्तु **तालइ** रूप में उसने सकार का लोप किया है। इसी प्रकार गरजने के लिए प्राचीन **स्तनु** से पश्तो शब्द **तना** (गर्जन) सकार का लोप करके बना है। संस्कृत श्रद्धा का **श्रद्**, रूसी **सेर्द्त्से** (हृदय) का सकार पश्तो में सघोष हुआ, वर्णसंकोच से आदिवर्ण का स्वर लुप्त हुआ, रेफ के संसर्ग से द् का मूर्धन्यीकरण हुआ, दो स्वरों के बीच में होने से ड् उत्क्षिप्त हुआ और इस प्रकार हृदय के लिए पश्तो **ज़ड़ह्** रूप बना।

भालू के लिए पश्तो शब्द **मीलू** है जो रूसी **मेद्वेद्** (मधुभोजी अर्थात् रीछ) से तुलनीय है। उसके घने बालों के कारण उसे संस्कृत में **ऋक्ष** कहा गया; बालों वाला यह अर्थ पश्तो **रीश्** में निहित है यद्यपि यह शब्द बालों वाली दाढ़ी के लिए प्रयुक्त होता है, रीछ से उसका सम्बन्ध नहीं है। **भालू** का पूर्वरूप **बालू** (बालों वाला) हो सकता है; यहाँ महाप्राणता का योग अनावश्यक होगा अथवा बालों की सघनता दिखाने के लिए **ब्** को **भ्** कर दिया गया होगा। उसके मधुप्रेम के कारण उसे **मेद्वेद्**, **मीलू** आदि कहा गया।

पश्तो के शब्द-भण्डार में एक ओर ऐसे शब्द हैं जिनका सम्बन्ध प्राचीन गण-भाषाओं से है, दूसरी ओर उसमें ऐसे शब्द भी काफी हैं जिनका सम्बन्ध अर्वाचीन आर्य-भाषाओं से है। इससे पश्तोभाषियों और आर्यभाषाभाषी भारतीय जनों के सुदीर्घ सम्पर्क का बोध होता है। पश्तो का ऐसा सम्पर्क द्रविड़ भाषाओं से भी है किन्तु वह अपेक्षाकृत प्राचीन है। **ऋक्ष** का मूल अर्थ बालों वाला है, यह बात पश्तो **रीश्** से ज्ञात होती है। यह प्राचीन गणभाषाओं का शब्द है। पश्तो **अवसूर** का अर्थ है लाल रंग। इसमें **अव** उपसर्ग है, मूल शब्द है **सूर**। प्राचीन गणभाषाओं की शब्दावली में प्रकाश और लालिमा दोनों का भाव बहुधा एक ही शब्द द्वारा व्यक्त होता है। इससे संस्कृत **सूर्य**, ग्रीक **हेलिओस्**, लैटिन **सोल्** के मूल अर्थ का बोध होता है। **सूर्य** वह जो प्रकाशमान है और रक्तवर्ण है। **अरुण** शब्द में इसी तरह दोनों भाव निहित हैं। **काल** का अर्थ पश्तो में वर्ष है, शब्द के व्यापक अर्थ को सीमित किया गया है। स्वयम् **वर्ष** की यही स्थिति है। **वर्** क्रिया से **वर्ष** शब्द बना है। इसी से **वार** रूप बनता है जो दिन के लिए प्रयुक्त होता है। अवधी में **वार** का सामान्य अर्थ समय अब भी स्वीकृत है; **वहि का वार नहिन्** अर्थात् उसे समय नहीं है। तमिल में **वारम्** सप्ताह के लिए प्रयुक्त होता है।

पश्तो में **स्वल्** क्रिया का अर्थ है जलना या जलाना। यह **स्वल्** क्रिया संस्कृत **स्वर्** (प्रकाशित होना) की प्रतिरूप है। **स्वर्** के वैकल्पिक रूप **सूर्** से **सूर्य** शब्द बना। कन्नड़ **सुडु** (जलाना), तमिल **चुडु** (उ०), संस्कृत **स्वर्**, पश्तो **स्वल्** से तुलनीय हैं।

पश्तो में ऐसे शब्द काफी हैं जो भारतीय आर्यभाषाओं से उसका अर्वाचीन सम्पर्क सूचित करते हैं। ऐसे शब्द फ़ारसी में कम मिलते हैं। पहले भारतीय आर्यभाषा का रूप और उसके बाद पश्तो शब्द, इस क्रम से यहाँ कुछ उदाहरण देते हैं : **नेवला—नोलई, सूँघ—सोग़, घर—कोर, चौकी—चोकई, चौपाल—चोपाड़, शृंगार—सिंगार, दीप—दीव, चूरा (चूर्ण)—चूर, कुत्ता—कूटह, मुट्ठी—मूट, सोंठ—सुंड** (ट्रम्प ने संस्कृत शुण्ठि, सिन्धी **सुंढि** रूप दिए हैं), **कुब्ज या कुबड़ा—कूबड़** (ट्रम्प ने सिन्धी रूप **कुब्रो** भी दिया है), **पल्ला—पलड़, गेंडा—गेनड़, हल्दी—हलद, होड़ी** (होड़ करने वाला)**—होडड़, कोढ़ी—कोड़ी, छिड़काव—चिड़काओ, टोपी—टोपई, चिट्ठी—चीटई, बाट—वाट, हमजोली—हमज़ोवलइ** (समकालीन), **चमार—चमिआर, गोप—गोपह, धोबी—दोबई, हाथी—हांतड़ह, सारिका—सारू** (सारस, मैना)। कुछ शब्दों के रूप जैसे हिन्दी में हैं, वैसे ही पश्तो में हैं। **मैल, टापू, सहेली, गोहार** (पुकार), **महाजन, महराज, काका, तोता** ऐसे ही शब्द हैं। पश्तो संस्कृत और फ़ारसी से जो तद्भव बनाती है, उनका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है। **अश्व** का पश्तो तद्भव रूप **आस** है, यहाँ इसका घोड़े वाला अर्थ बना हुआ है, किन्तु इंग्लैण्ड में पहुँचकर इसके अर्थ का अवमूल्यन हुआ और वह गधे का पर्यायवाची बना।

पश्तो की शब्दनिर्माण प्रक्रिया में सर्वाधिक ध्यानाकर्षण की बात क्रियार्थी संज्ञा-रूपों का निर्माण है। **लीदल्**—देखना, **पोहेदल्**—बोध होना, **ओरेदल्**—वर्षा होना, **ओसेदल्**—वास करना, **पुश्तेदल्**—पूछना, इन सब रूपों के अन्त में **दल्** प्रत्यय दिखाई देता है। इन रूपों से तमिल के क्रियार्थी संज्ञारूपों की तुलना करें : **चादल्**—मरना, **वेदल्**—जलाना, **उण्णुदल्**—खाना, **अरिदल्**—जानना, **चॅय्दल्**—करना। इस सबको आकस्मिक समानता कहकर नहीं टाला जा सकता। पश्तो और तमिल के क्रियार्थी संज्ञा-रूप क्रियामूल से सीधे नहीं बने; पहले **द** वाले कृदन्त रूप बने, फिर उनमें **अल्** प्रत्यय जोड़ा गया है। फ़ारसी के समान तमिल में भी **द** जोड़कर कृदन्त रूप बनता है। फ़ारसी **कर्दा** का तमिल प्रतिरूप **चॅय्द** है। यह **द** संस्कृत का कृदन्त प्रत्यय **त** है। तमिल में वह **त** ही लिखा जाता है और सम्भवतः पहले बोला भी जाता था। तमिलनाडु की दक्षिणी बोलियों में सघोषता का अभाव होने से वह **द्** अब भी **त्** बोला जाता है। बोलचाल की मानक तमिल में **त** प्रत्यय अनेक क्रियाओं के साथ **त्** व्यंजन की आवृत्ति करता हुआ प्रयुक्त होता है, यथा **पडित्तल्**—पढ़ना, **नडत्तल्**—चलना, **मूत्तल्**—बड़े होना, **मोत्तल्**—सूँघना। फ़ारसी में क्रियार्थी संज्ञारूप इस प्रकार के होते हैं : **आमदन्**—आना, **कर्दन्**—करना, **दीदन्**—देखना, **रसीदन्**—प्राप्त करना, **परीदन्**—उड़ना। ट्रम्प ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि पश्तो **दल्** फ़ारसी **दन्** का रूपान्तर है। इसलिए **दीदन्** जैसा फ़ारसी रूप पश्तो में **लीदन्** हो जाता है, आदिस्थानीय **द्** अन्त्य **न्** के समान **ल्** में परि-वर्तित हुआ, मध्यवर्ती **द्** बच गया। फ़ारसी में **दन्** के स्थान पर **तन्** वाले रूप भी हैं यथा **नेशस्तन्**—बैठना, **कोश्तन्**—मारना, **अन्दाख़्तन्**—फेंकना, **यफ़्तन्**—पाना, **बस्तन्**—बाँधना, **सूख़्तन्**—जलना। कुछ रूपों में संस्कृत के समान **त** प्रत्यय का व्यवहार होता है, अन्य रूपों में **द** का।

दल्, तल्, दन्, तन्, इन प्रत्ययों में **द, त** कृदन्त चिन्ह है, इसका प्रमाण यह भी है कि पश्तो में स्वतन्त्र **अल्** प्रत्यय वाले अनेक क्रियार्थी संज्ञारूप हैं, यथा **वयल्** (बोलना)। **अल्** के बदले यदि **अन** प्रत्यय लगे तो सीधा **वयन**, हिन्दी **बैन** रूप मिलेगा। यदि **य्** के स्थान पर **व्** श्रुति का आगम हो और **अल्** प्रत्यय लगे, तो **ववल्, बवल्, बोल्** क्रियारूप मिलेगा। यह **बोल्** क्रिया काफी पुरानी है, इसका एक प्रमाण यह है कि रूसी भाषा में **बोल्तात्** का अर्थ है बहुत बातें करना, **बोल्तून्** का अर्थ है बातूनी। **मीतल्**—मूतना, **द्रूमल्**—जाना, **जंगल्**—भूलना, **कवल्**—काटना, आदि पश्तो क्रिया-रूपों में **अल्** प्रत्यय लगा है; यह **अल्** संस्कृत **अन्** का प्रतिरूप है जो **गच्छन्, पठन्** आदि कृदन्त रूपों में देखा जाता है।

अन्, अन, अना प्रत्यय परस्पर सम्बद्ध हैं। कृदन्त रूप बनाने के अतिरिक्त वे अनेक संज्ञा-विशेषण-रूपों में प्रयुक्त होते हैं। पश्तो **वरन्** (ऊनी) संस्कृत **ऊर्ण** के **ऊर्** से सम्बद्ध है। **ओसनइ** (वर्तमान में) **अना** प्रत्यय है; इसी प्रकार **वेगानइ** (पिछली रात से सम्बन्धित) रूप बना है। संस्कृत त्व और **त्वन्** प्रत्यय किंचित् परिवर्तन से यहाँ भी प्रयुक्त होते हैं। **अनइ** का प्रतिरूप **अलइ** कृदन्त रूपों में मिलता है। **दमलइ**—जिसने दम लिया हो, **नीवलइ**—जिसे पकड़ा गया हो। त्व का रूपान्तर **तोब** है यथा **जड़त्व** का पश्तो प्रतिरूप **सड़्तोब** (जाड़ा) है। **ज्—ज़्—स्**, यह प्रक्रिया प्रथम वर्ण में सकार के स्थापित होने की है; मध्यवर्ती **ड** उत्क्षिप्त हुआ, फिर बलाघात की आवश्यकता से स्वर का लोप हुआ; **व्** ने पूर्ववर्ती वर्ण को प्रभावित किया और स्वयम् स्पर्शध्वनि बना। संस्कृत **त्वन्** पश्तो के **तून्** और **दून्** रूपों में मिलता है। **ज्वदून्** अर्थात् जीवन, **कुंडह्तून्** अर्थात् वैधव्य। **तून्** के साथ **तूनइ** प्रत्यय भी प्रयुक्त होता था जिसका पूर्वरूप **त्वना** माना जाएगा। उदाहरण : **रिश्तूनइ**—सत्य। यदि **त्व, त्वन्** आदि का मूल रूप **व, वन्** माना जाए, तो **ऊन्, ऊनइ** प्रत्यय भी इसी शृंखला में आ जाएँगे। **तड़ून्**—बाँधना, **वेरेदून्**—डरना, **पखवून्**—पकाना, ये सब संज्ञारूप हैं; **लीदूनइ**—दर्शनीय, **क्ड़नइ**—करणीय, यहाँ कृदन्त रूप बनाने के लिए **ऊनइ** प्रत्यय लगाया गया है। **ऊन्** में **क** या **का** प्रत्यय लगाया जाए तो **तिलंगा** और **कलिंग** जैसे शब्द बनेंगे। **कलिंग** वह जिसका **कल्** अर्थात् पत्थर—पर्वतों—से सम्बन्ध हो। **तिलंगा** वह जो **तॅल्—तॅन्** (दक्षिण)—का रहने वाला हो। इसी तरह पश्तो में : **लूटुन्कइ**—लुटेरा, **मसेदुन्कइ**—मुस्कराता हुआ। पश्तो में भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए **तिआ** प्रत्यय काम में आता है जो **त्वा** का वैकल्पिक रूप **त्या** है। **जोड़तिआ**—बुढ़ापा; **त्** ध्वनि **स्** में बदलती है तब इसी का रूपान्तर **सिआ** यही भूमिका पूरी करता है यथा **तंगसिआ**—तंगी।

पश्तो भाषा की एक विशेषता यह है कि आधुनिक आर्यभाषाओं से भिन्न वह अब भी क्रियापदों में उपसर्ग जोड़ती है। संस्कृत और रूसी के समान ये उपसर्ग क्रिया का अर्थ परिवर्द्धित करते हैं यथा **नास्तल्**—बैठना, **क्षे नासतल्**—नीचे बैठना; **च्षल**—पीना, **वॉच्षह्**—पियो। यह **वॉ** उपसर्ग बहुत सामान्य है और बहुधा क्रियार्थी संज्ञारूपों के साथ प्रयुक्त होता है : **क्ड़ल्**—करना, **वॉक्ड़ह्**—करो।

पश्तो भाषा की शब्द-निर्माण-प्रक्रिया में बीस से ऊपर गिनती वाले शब्द द्रविड़

भाषाओं और फ़ारसी की पद्धति से नहीं, संस्कृत और हिन्दी की पद्धति से बनते हैं। **यउ वीश्त** एक बीस, इक्कीस; **द्वह् वीश्त**—बाईस; **ओवह् वीश्त**—सत्ताइस, **यउदेर्श**—इकतीस, **द्वह् देर्श**—बत्तीस इत्यादि; हिन्दी के समान पश्तो में ग्यारह से उन्नीस तक ही नहीं, इक्कीस से उन्तीस तक और उसके बाद एक ही पद्धति चलती है। फ़ारसी और पश्तो में यह महत्वपूर्ण भेद है और भारतीय आर्यभाषाओं से उसके निकटतर सम्बन्ध का सूचक है। यह स्वाभाविक है कि पठान देश के कुछ भागों में महीनों के लिए अब भी भारतीय नामों का व्यवहार होता है। ट्रम्प ने लिखा है कि भारत के समीपवर्ती भागों में ऐसे नामों का व्यवहार होता है। चैत्र **चेतार्** है, वैशाख **वइसाक्** बना, तद्भव जेठ **जेट्** है, असाढ़ के प्रथम वर्ण का लोप हुआ, **हाड़, आड़** रूप बचा। **सावन** अपने हिन्दी रूप में ज्यों का त्यों है। **बाद्रो** रूप में **भादों** और **भाद्र** का मिश्रण है। **असू** और **कतक** आश्विन और कार्तिक हैं। मार्गशीर्ष के लिए **मगर** शब्द है जो ट्रम्प के अनुसार पंजाबी **मंघर,** सिन्धी **मंघिरु** का प्रतिरूप है। **माघ** हिन्दी के समान है, पूस और फागुन क्रमशः **पोह्** और **पागँड़** हैं। ऋतुओं में वर्षा के लिए **पशकाल्** रूप है। शीत ऋतु के लिए **ज़िमइ** हिम से सम्बद्ध है। दिन के नामों में **इतवार** हिन्दी के समान है, वैकल्पिक रूप **इतबार** भी है। शनि का रूपान्तर **खाली** दिलचस्प है; **ल्** ने **न्** का और **ख्** ने **श्** का स्थान लिया है। परसों के लिए जैसे अवधी का **परों** रूप है, वैसे ही पश्तो में **परून्** शब्द है जिसका अर्थ है बीता हुआ कल। हिन्दी कल के पश्तो प्रतिरूप **कलह्** का अर्थ है कोई भी समय; **हरकलह्**—किसी भी समय, हर समय; से बने हैं। **कलह्-कलह्**—कभी-कभी। **कल** और **काल** गतिसूचक एक ही क्रिया **ग** अथवा **गा** द्रविड़ प्रभाव से **ग्** ध्वनि अघोष रूप में प्रयुक्त हुई है।

५. पश्तो की पड़ोसी भाषाएँ और बोलियाँ

भाषा-सर्वेक्षण करनेवाला विद्वान् भाषाओं के विकास का ऐतिहासिक विवेचन करता है तो वह स्वभावतः बोलियों की ओर अधिक ध्यान देता है और इस कारण प्राचीन भाषाओं के प्रसंग में भी वह बोलियों की विविधता का ध्यान रखता है। इसलिए अन्य ऐतिहासिक भाषाविज्ञानियों से उसके विवेचन में कुछ भिन्नता होती है। यह बात ग्रियर्सन के लिए भी कही जा सकती है। अपने सर्वेक्षण ग्रन्थ के दसवें भाग में उन्होंने ईरानी भाषा-परिवार की चर्चा की है। अपने ग्रन्थ में उन्होंने भारत की भाषाओं का सर्वेक्षण किया है, फिर भी उसमें उन्होंने ईरानी परिवार की चर्चा की, उसका कारण यह है कि "उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में तथा ब्रिटिश प्रभाव के पड़ोसी क्षेत्र में जिसे ब्रिटिश अफगानिस्तान कह सकते हैं, यह भाषा [पश्तो] पेशावर, हज़ारा, बन्नू, कोहाट, डेरा इस्माइल खाँ के जिलों में तथा इनके और अफ़गान सीमा के बीच के क्षेत्र में बोली जाती है।" (लिंग्विस्टिक सर्वे, खण्ड १०, पृष्ठ ५)। उन्होंने पश्तो पर इसलिए नहीं लिखा कि आधुनिक आर्यभाषाओं से, सिन्धी और हिन्दी से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है वरन् इसलिए लिखा है कि पश्तोभाषी क्षेत्र ब्रिटिश भारत में है या ब्रिटिश प्रभाव-क्षेत्र में है। फिर भी उन्होंने जो सामग्री प्रस्तुत की है, उससे पश्तो का सम्बन्ध, उनके न

चाहने पर भी, भारतीय आर्यभाषाओं से स्थापित होता है।

ग्रियर्सन ने पारसी ईरानी और गैरपारसी ईरानी, दो भाषा-समुदाय माने हैं। जो पारसी समुदाय है, उसमें स् ध्वनि ह् में बदलती है किन्तु जो गैर-पारसी ईरानी है, उसमें ऐसा परिवर्तन विरल है। ग्रियर्सन मानते हैं कि पूर्वी समुदाय की पश्तो, बलूची आदि भाषाओं ने उत्तरपश्चिमी भारत से काफी तत्व उधार लिए हैं किन्तु उनका कहना है कि इन भाषाओं का अन्तस ईरानी है। इस अन्तस की अखण्ड सत्ता नहीं है क्योंकि पारसी और गैरपारसी दो भागों में ग्रियर्सन ने उसे पहले ही बाँट दिया है। प्राचीनकाल में पक्थ गण से भारतीय आर्य गणसमाजों का जो सम्बन्ध था, उसे छोड़ भी दें, तो अपेक्षाकृत अर्वाचीन काल में पठानों और भारतीय जनों का सम्पर्क नये-नये स्तरों पर कायम हुआ। ग्रियर्सन का कहना है कि बहुत से भारतीय डोम अफगानिस्तान में पेशेवर गायकों के रूप में बस गए और फिर वे अफगान बन गए। गाना-बजाना डोम जनों का पुराना पेशा है और बहुत जगह अब भी कायम है। पठानों की भाषा में इन डोम जनों के गीतों के माध्यम से अवश्य ही कुछ भाषातत्व पहुँचे होंगे। सम्पर्क का दूसरा स्तर यह था कि पठान और भारतवासी, दोनों ही तुर्कों से लड़े थे। ग्रियर्सन ने लिखा है कि बाबर ने काबुल से लेकर भारत तक पठानों के सिर काट-काटकर पिरामिड बना दिए थे। मेरठ की रक्षा के लिए इलियास नाम के पठान ने युद्ध किया था और खटक कबीले के खुशालखाँ ने औरंगज़ेब के विरुद्ध विद्रोह किया था। ग्रियर्सन ने लिखा है कि खुशालखाँ कवि थे और अब भी वह पठानों के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। बादशाह खान ने भारत के स्वाधीनता-संग्राम में भाग लिया, तो यह पुरानी हिन्दी-पठान जुझारू परम्परा के अनुरूप ही था।

ग्रियर्सन ने उत्तर-पश्चिमी बोलियों के जो नमूने दिए हैं, उनमें कुछ बातें उल्लेखनीय हैं। एक बोली है ओरमुड़ी। सम्भव है, इसमें **मुड़ी** शब्द भाषा-सूचक हो। इसमें भूतकालीन कृदन्तों के अन्त में **क** प्रत्यय दिखाई देता है। **मुल्लक**—मरा, **ख्वलक**—खाया। पेशावर की भाषा में कृदन्त चिन्ह **द** है यथा **कड़ेद**—किया गया है। **ख्वलक** जैसे रूपों में **द्** बदलकर **ल्** हो गया है और उसके बाद **क** जोड़ा गया है। ब्रजभाषा के **भयो** के प्रतिरूप **ब्यो** में क प्रत्यय जोड़कर **ब्योक्** रूप बनता है। **ख्वलकम्** का अर्थ हुआ उसने मुझे खाया। **ब्योकम्**—मैं था, **बुकयेन्**—हम थे। यह क भारतीय भाषाओं के सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य इसलिए है कि मगही क्रियारूपों में इसका व्यवहार होता है यथा **ऊ रोटी खलकइ**—उसने रोटी खाई। इसी प्रकार मैथिली में **वो रोटी खेलक**। मैथिली के वाक्य **तोहर नाम की थिको** (तुम्हारा नाम क्या है) में थि क्रिया के साथ **को** निश्चयसूचक प्रत्यय है। मानक हिन्दी, बाँगरू और पंजाबी के भविष्यकालीन क्रिया-रूपों में जो गा दिखाई जाता है, वह मगही और पश्तो बोलियों के क का समवर्गीय है।

ओरमुड़ी के कृदन्त क्रिया-रूपों में सर्वनाम प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यह बात पश्तो में भी है किन्तु ओरमुड़ी की विशेषता यह है कि कृदन्त में सर्वनाम-चिन्ह जोड़कर कर्म का बोध भी कराया जा सकता है। **ख्वलकम्** का अर्थ है, उसने मुझे खाया। **खुरम्**—वह मुझे खा सकता है; **खुरन्**—वह तुम्हें खा सकता है, **खुरीव**—तू उसे खा सकता है।

सर्वनाम-चिन्हों से इस प्रकार कर्ता के साथ कर्म का बोध कराना मगही और मैथिली की विशेषता है। क्रिया के साथ दो-दो सर्वनाम जोड़े जा सकते हैं। **खवलकत्**—तूने तूने खाया; यहाँ **अत्** सर्वनाम मध्यम-पुरुष एकवचन कर्ता का संकेतक है। **खवलकतम्**—मुझे खाया, यहाँ **अत्** के बाद **अम्** उत्तमपुरुष एकवचन कर्म का संकेतक है। ये विशेषताएँ न तो फ़ारसी में हैं, न अवेस्ता की भाषा में किन्तु भारतीय आर्यभाषाओं के पूर्वी समुदाय की दो भाषाओं में है।

तुर्की के समान ओरमुड़ी में संज्ञा शब्दों के बाद भी सर्वनाम-चिन्ह लगते हैं: **कितब्बीन्**—मेरी किताबें, **कितब्बी**—तेरी किताबें, **कितब्बीव**—उसकी किताबें, **कितब्बीन**—हमारी या तुम्हारी किताबें। यह विशेषता तुर्की, सामी, कोल आदि अनेक परिवारों में पायी जाती है।

ओरमुड़ी में **अ** सर्वनाम-चिन्ह निश्चयात्मक संकेतक का काम करता है। पश्तो के अन्य रूपों में द निश्चयात्मक संकेतक प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी के दि या द की भूमिका भी यही है। ऐसे संकेतकों का व्यवहार ईरानी या भारतीय आर्यभाषाओं में नहीं होता। प्राचीन ग्रीक में होता है, लैटिन में नहीं होता, स्लाव भाषाओं में नहीं होता, जर्मन समुदाय की भाषाओं में होता है, और सामी भाषाओं में होता है। इस विशेषता का प्रसार केन्द्र पठानदेश या उसका पड़ोसी क्षेत्र होना चाहिए।

पश्तो और उसकी पड़ोसी भाषाएँ भारतीय आर्यभाषाओं के समान मूल शब्द के बाद सम्बन्धक जोड़ती हैं यथा पेशावरी बोली में **माल**—मुझको, मराठी **मला** के समान है; सम्प्रदान कारक के लिए इस ल का व्यवहार मगही में भी होता है। किन्तु **द स्पाहयानो** (सिपाहियों का) में द सम्बन्धक मूल शब्द से पहले आया है। ओरमुड़ी में **इ सड़इ की** (एक आदमी को), **की** सम्बन्धक बाद में आया है किन्तु **प सड़इ** (एक आदमी के द्वारा), **त सड़इ** (एक आदमी का), यहाँ **प** और **त** सम्बन्धक मूल शब्द से पहले आये हैं। ऐसी ही संरचना कम्बोज समुदाय की भाषाओं में है, सामी भाषाओं और अंग्रेजी आदि इन्डोयूरोपियन भाषाओं में है। जिसे तुखार प्रदेश कहा जाता था, वहाँ कम्बोज समुदाय की भाषाएँ बोलने वाले रहते थे। ये पठानों के पड़ोसी थे। सम्बन्धक शब्दों को मूल शब्द से पहले रखने की प्रवृत्ति के प्रसार का केन्द्र यही उत्तराखण्ड है।

ओरमुड़ी आदि भाषाओं के कुछ शब्द ऐतिहासिक महत्व के हैं। ओरमुड़ी **पेत्स** संस्कृत **पश्च** का प्रतिरूप है; अंग्रेज़ी **पोस्ट** (पीछे) के पूर्वरूप **पस्त** का वर्णविपर्यय से बदला हुआ रूप **पेत्स** है। अंग्रेज़ी **पोस्ट** स्वयम् लैटिन से आया है। ओरमुड़ी **इद** (यहाँ) हिन्दी **इधर** के **इध** का रूपान्तर है। **गुदा** (कहाँ) में प्रथम वर्ण प्रश्नवाचक सर्वनाम है। रूसी में यही रूप **कुदा** और संस्कृत में **कुतः** है।

काबुल नदी के दक्षिण में **तिरही** भाषा बोली जाती है। इसकी एक विशेषता निश्चयात्मक संकेतक का व्यवहार है। **ले पकीरसि एक आन दे**—फकीर को एक आना दो। यहाँ **दे** सर्वनाम का रूपान्तर **ले** फकीर के पहले आया है। **ल गन पुत्र गुसा खुम् गा**—बड़ा बेटा गुस्से में आ गया। यहाँ संकेतक **ल** सर्वनाम **द** का रूपान्तर है। दोनों

का आधार **थ, थे** जैसे सर्वनाम हैं जो अंग्रेज़ी में संकेतक दि के रूप में प्रयुक्त होते हैं। **ल** वाले रूपान्तर में इनका व्यवहार फ्रांसीसी, इतालवी आदि भाषाओं में होता है। दूसरे वाक्य में **गा** क्रिया ठीक उसी रूप में है जिसमें वह अवधी में प्रयुक्त होती है। **पुत्र** शब्द, फ़ारसी से भिन्न, यहाँ संस्कृत रूप के समान है। **पकीरसि** का **सि** प्रत्यय अवधी और अपभ्रंश के सम्प्रदान कारक **हि** का पूर्वरूप है। कुएँ के लिए **कुइ** रूप अवधी **कुँइँ** के समान है। **ब्रिछत तोन**—वृक्ष के नीचे; यहाँ क्ष् ध्वनि मागधी के समान ख् में नहीं, अवधी के समान छ् में परिवर्तित हुई है। अवधी-ब्रज का **पनही-पन्हा** तिरही में **पना** (जूता) है। आँख के लिए **अक्षि** से ख् वाले रूप के बदले यहाँ छ् वाला रूप प्रचलित है—**अच्छे**, जिसकी तुलना के लिए ग्रियर्सन ने कश्मीरी का **अछ्** (आँख) रूप दिया है। स्त्री के लिए **स्त्रे** का व्यवहार होता है; बेटी के लिए **दे** शब्द का सम्बन्ध **धी** से है। **स्त्री** और **धी** दोनों के स्वर विवृत होकर एकार हो गये हैं। पिता के लिए **मल** शब्द कश्मीरी **मोलु** का प्रतिरूप है। पश्तो के समान, फ़ारसी से भिन्न, इसमें ड़् का व्यवहार होता है। **पुत्रेन लेन आड़ि**—बेटे ने उससे कहा। कर्ता **पुत्रे** के साथ **न** प्रत्यय लगा है और वह सम्प्रदान **ले** के साथ भी है। जो लोग समझते हैं कि आधुनिक आर्यभाषाओं में तिर्यक् और सामान्य दो ही कारक रह गये, वे **पुत्रे** और **ले** तिर्यक् रूप देखें और कहें कि तिरही का विकास ईरानी अपभ्रंश से हुआ है। **लेन** का **ले** सर्वनाम रूप है। संज्ञा के पहले संकेतक रूप में, अलग से स्वतन्त्र सर्वनाम रूप में उसका व्यवहार होता है। ग्रियर्सन ने हिन्दी **ने** के साथ तिरही **न** की तुलना बिलकुल ठीक की है। फ़ारसी में वैसा चिन्ह नहीं है। फ़ारसी **होशियार्** तिरही में **होखियार्** है और स्थान के लिए फ़ारसी **खान्** (कारखाने वाले **खान्**) के बदले यहाँ **थान** (घर) है। सोलह यहाँ **खोला** है किन्तु सत्रह **सतारा** है। **खोला** में **स्, होशियार्** के **श्** के समान परिवर्तित हुआ है किन्तु **सतारा** सीधे पंजाब से पहुँचा है। **जवाब दिता** (जवाब दिया) में **दिता** से उक्त धारणा पुष्ट होती है। **मलगण पुत्रसि जवाब दित**—बाप ने बड़े बेटे को जवाब दिया। **दित** कृदन्त है; **मल** के साथ करण कारक का कोई चिन्ह नहीं है। कर्मवाच्य कृदन्त, आधुनिक आर्यभाषाओं के समान, यहाँ कर्तृवाच्य के समान प्रयुक्त होते हैं। तिरही में सम्बन्ध कारक का चिन्ह मूल शब्द से पहले आता है, बाद को भी। **मसिदा, दा मे,** दोनों का अर्थ है मेरा। पंजाबी, पश्तो, तिरही, सभी में **द** या **दा** सम्बन्ध कारक के चिन्ह के रूप में प्रयुक्त होता है। यह व्यवहार-परम्परा फ्रांसीसी, इतालवी आदि लैटिन समुदाय की अर्वाचीन भाषाओं तक चली गई है। **पुत्रसि** के समान **मसि** सर्वनाम अपने साथ कारक-चिन्ह **सि** लिए हुए है किन्तु तिरही में **मसि** सर्वनाम-मूल जैसा प्रयुक्त हुआ है—जैसे हिन्दी में कुछ लोग **मेरे को** बोलते हैं। क्रिया वाक्य के आरम्भ में और अन्त में, दोनों प्रकार से आती है। **मलगण पुत्रसि जवाब दिता**—यहाँ क्रिया वाक्य के अन्त में है। **गा दूर मुल्कसि**—वह दूर देश गया, यहाँ क्रिया वाक्य के आरम्भ में आई है। इस क्षेत्र की भाषाओं में मुख्य कालभेद भूत और वर्तमान का है। भविष्य के लिए **भू** क्रिया का व्यवहार होता है। **दज्**—दण्ड देना; **मे बदेम्**—मैं मारूँगा; **ले बदेम्**—वह मारेगा। यहाँ **ब** उपसर्ग भविष्यवाचक वैसे ही है जैसे मागधी भाषाओं में। केवल उसकी स्थिति

मूल क्रिया से पहले है।

इस **ब** चिन्ह का व्यवहार पश्तो में दर्शनीय है। **जर्नल् औफ़् अमेरिकन् ओरिएन्टल् सोसायटी** (अप्रैल-जून, १९५१) में हर्बर्ट पेंज़ल ने पश्तो क्रिया पर एक लेख लिखा था। इसमें उन्होंने बताया था कि पश्तो क्रिया में मुख्य काल-भेद अतीत और वर्तमान का है। इन्हीं कालरूपों के अनुसार भविष्यकाल की रचना होती है यथा **ज़े ब दरेज़्ज़ेम्**—मैं रुकूँगा। **ब** चिन्ह का सम्बन्ध केवल भविष्य से नहीं है, यह अन्य उदाहरण से ज्ञात होता है। **ज़े ब दरेदेलेम्**—मैं रुक रहा था। जैसे हिन्दी में कहें **वे रुके हैंगे,** यहाँ संकेत भविष्य की ओर नहीं है वरन् सम्पन्न हो चुकी क्रिया की ओर है। उक्त निबन्ध के लेखक के अनुसार **ब** का अर्थ सन्दर्भ के अनुसार निश्चित होता है जिसमें एक अर्थ भविष्य का भी होता है। **दरेदेलेम्** में **ल** भूतकालीन कृदन्त का चिन्ह है। **ल** और **ब** दोनों का एक साथ व्यवहार या तो मागधी भाषाओं में है या पश्तो और उसकी पड़ोसी बोलियों में। बिहार और बंगाल की भाषाओं में जैसे **स्** और **श्** ध्वनियों का व्यवहार एक विभाजक रेखा है, वैसे ही पश्तो क्षेत्र में **स्** और **श्** का व्यवहार है। कन्दहार की बोली में **स्** का व्यवहार होता है। **शेम्** (मैं होता हूँ) का कन्दहारी प्रतिरूप **सेम्** है। फ़ारसी नेस्त (नहीं है) इस बोली के अनुरूप है किन्तु अन्यत्र **नेश्त** का चलन भी है। पश्तो क्षेत्र में **वेसु** और **वेशु** (वह हुआ), दोनों रूपों का चलन है। इस तरह का भेद फ़ारसी के आधार पर विवेचित नहीं हो सकता।

सेम्, शेम् में **स** क्रिया है। यही क्रिया **ह** रूप में भी प्रयुक्त होती है। ओरमुड़ी में **अजहम्**—मैं हूँ; **हफो हा**—वह है; **माख ह्यॅन्**—हम हैं; **हफई हिन्**—वे हैं। जैसे मगही और हिन्दी में ह-मूलक क्रियारूप प्रचलित हैं, वैसे ही ओरमुड़ी में। **स** ध्वनि-वाली क्रिया भी विशेष सन्दर्भों में प्रयुक्त होती है यथा **अज़्सम्**—मैं हो सकता हूँ; **अज़् स्योकम्**—मैं हुआ। **स** क्रिया का प्रतिरूप **अस्** है। यही **असिल्** जैसे तिरही के रूपों में विद्यमान है। **अस्** और **आस्** वाली क्रियाएँ प्राचीन हैं, इनका एक प्रमाण पुरानी फ़ारसी में **आह्** क्रिया का व्यवहार है। **जर्नल् औफ़् अमेरिकन् ओरिएन्टल् सोसायटी** (खण्ड ६६, सन् १९४६) में रोनैल्ड जी० केन्ट ने पुरानी फ़ारसी के **माम् काम** पद में कर्मकारक पर एक लेख लिखा था। शिलालेखों की इस पुरानी फ़ारसी में **यथा माम् काम आह,** यह वाक्यांश बार-बार आता है। इसका अर्थ है, जैसी मुझे इच्छा थी। जैसे हिन्दी में कहें, **मुझे आशा थी,** ठीक वैसे ही उक्त वाक्यांश में **माम्** का प्रयोग हुआ है। अतीत कालीन क्रियारूप **आह** का आधार **आस्** है। मराठी **आहे,** बँगला **आछे** इसी से सम्बद्ध हैं। अवधी, ब्रजभाषा आदि में **अहै, अछै, अछत** आदि का आधार **आस्** का वैकल्पिक रूप **अस्** है।

इण्डियन् लिंग्विस्टिक्स के चटर्जी जुबिली विशेषाङ्क (१९५५ ई०) में मौर्गेन्स्टीर्न ने खोवार भाषा के उदाहरणस्वरूप एक कहानी दी है और उस भाषा पर कुछ टिप्पणियाँ की हैं। इस कथा का एक वाक्य है: **सेर् कुर शेर्**। इसका उन्होंने संस्कृत रूपान्तर इस प्रकार दिया है: **सेतुः कुतः शेते**–पुल कहाँ है। इस भाषा में संस्कृत शब्दों की **त्** और **द्** ध्वनियाँ **र्** में बदलती हैं यद्यपि सर्वत्र ऐसा नहीं होता। इस प्रकार

सेतु शब्द सेर् हुआ। कुत: का प्रतिरूप कुर बना। शेर् में लेटने का अर्थ देने वाली शी या शे क्रिया के बदले अस्तित्वसूचक स या श क्रिया की कल्पना अधिक युक्तिसंगत है। कृदन्त रूप होगा सेत् या शेत्, उससे शेर्। खोवार भाषा के एक वाक्य का रूपान्तर लेखक ने संस्कृत में दिया है, फ़ारसी या प्राचीन ईरानी में नहीं, यद्यपि वह मानते हैं कि इस भाषा में भी बहुत से ईरानी तथा आर्येतर तत्व हैं। इसकी पड़ोसी कलश भाषा में भी त् को र् या ल् में बदलने की प्रवृत्ति है। उन्होंने इस बात का उल्लेख भी किया है कि खोवार में मूर्धन्य ळ् का व्यवहार होता है। मागधी भाषाओं के समान इसमें स्वर की लघुता या दीर्घता अर्थविच्छेदक नहीं है। लेखक के अनुसार जिन स्वरों पर बलाघात होता है, वे सुनने में दीर्घ लगते हैं। मौर्गेन्स्टीर्न ने इस महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख किया है कि भूतकालीन कृदन्त यहाँ सामान्य क्रिया की तरह प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार करना क्रिया के लिए खोवार रूप कर्दु है और इसका कलश प्रतिरूप कद है। यह स्थिति प्राय: समस्त ईरानी क्षेत्र में है। इन कृदन्त रूपों के चलन के पहले क्रिया के जो सामान्य रूप थे, वे भारतीय आर्यभाषाओं में हैं। यदि कृदन्त-पद्धति ईरानी क्षेत्र से भारत में आती तो यहाँ वे सामान्य रूप मिलते ही नहीं। तिङन्त पद्धति का केन्द्र है मध्यदेश। यहाँ से क्रिया के सामान्य रूप कुरु समुदाय के क्षेत्र में पहुँचते हैं। वहाँ की कृदन्त-पद्धति का जितना प्रभाव संस्कृत या हिन्दी पर है, उससे कहीं अधिक प्रभाव फ़ारसी तथा ईरानी समुदाय की अन्य भाषाओं पर है। इन भाषाओं के विवेचन से, अन्य भारतीय-अभारतीय भाषाओं के समान, मध्यदेशीय भाषा के मूल रूपों का बोध होता है। दूर संकेतक सर्वनाम खोवार में हसे है। इसका वैकल्पिक रूप हते है। ऐसे सर्वनामों का मूल रूप सध था, स निर्देशक सर्वनाम चिन्ह है और ध व्यक्ति-स्थानसूचक चिन्ह, इसका प्रमाण हते जैसा रूप है। स् परिवर्तित हुआ ह् में और ध् अल्पप्राण अघोष बना। त्, स् में बदला, तब हसे रूप बना। संस्कृत तथा द्रविड़ भाषाओं में दूरस्थ-वस्तु-सूचक अ पहले स था, यह बात यहाँ ह् के अस्तित्व से सिद्ध होती है। खोवार में दूरस्थ और समीप का भेद वैसा सुरक्षित नहीं है जैसा द्रविड़ भाषाओं में है, इसलिए ह का उपयोग समीपस्थ वस्तुओं के लिए भी होता है। एक सर्वनाम रूप है हतो गो (उसका)। यहाँ मूल सर्वनाम है हतो, उसमें सम्बन्ध कारक का चिन्ह गो लगा है। शूरसेनी भाषा समुदाय का सम्बन्ध-सूचक को यहाँ सघोष संघर्षी रूप में ग़ो है। सर्वनामों में क चिन्ह जोड़कर ऐसे रूप बनाने की पद्धति मालवी में अब भी है (मध्य प्रदेश के मालवा जनपद की भाषा की बात है)। खोवार भाषा का एक वाक्य है : हतो ग़ो सुत् झ़िझ़ुउ अस्तनि—उसके सात बेटे थे। यहाँ सप्त का रूपान्तर सुत् है। कहीं यह सप्त शब्द आदि वर्ण में एकार के साथ ग्रहण किया गया है जैसे अंग्रेज़ी सेवॅन् में, कहीं ओकार के साथ, जिसके संवृत रूप उ के साथ खोवार का सुत् है। पुत्रों के लिए झ़िझ़ुउ रूप की व्याख्या इस प्रकार हो सकती है। झ़ि तो धी है जो पुत्री के लिए अब भी प्रयुक्त होता है। इसका पुंल्लिग रूप रहा होगा उकारान्त धउ। बेटा-बेटी के लिए जो संयुक्त शब्द धीधउ कभी प्रयुक्त होता था, वह खोवार में केवल पुत्र का अर्थ देने लगा। मौर्गेन्स्टीर्न ने झ़ुउ शब्द का अलग से पुत्र अर्थ भी दिया है। झ़िझ़ुउ रूप,

लिंग-भेद पर ध्यान दिए बिना, बच्चों के लिए प्रयुक्त हो सकता है। **इअनुस् बादशातन् झ़िझ़उ अन् ते रेतइ**—एक दिन बादशाह ने अपने बच्चों से कहा। इ सर्वनाम चिन्ह है जिसके मूल समीपता भाव का लोप हो गया है। शाह के ह का लोप, फ़ारसी के समान नहीं, ब्रजभाषा के समान हुआ है। अपने के लिए **तन्** सर्वनाम का प्रयोग संस्कृत ही नहीं, तमिल के अनुरूप भी है। **झ़िझ़उ** में बहुत्वसूचक **अन्** अवधी के **अन**—यथा **दिनन** (बहुत दिन)—जैसा बना हुआ है। **ते** अवधी आदि जनपदीय भाषाओं के सम्बन्धक के समान है, फ़ारसी से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। **रेतइ** क्रिया कृदन्त रूप में है, उसका आधार वही **ऋक्** वाली **रि** क्रिया है। पूरी वाक्य रचना हिन्दी के ढंग की है।

झ़ि का प्रतिरूप **झी** बँगला में अब भी प्रयुक्त होता है। इसका मूलरूप **धी** मध्यदेश—विशेषतः ब्रजप्रदेश—में व्यवहृत होता है। **झ़ाउ** का पूर्वरूप **धउ**, और मूलरूप **धव** संस्कृत **विधवा** में है। **विधवा** वह स्त्री है जिसका साथी युवक न हो। **धव** का प्रतिरूप **धिय** संस्कृत **वंध्या** में है। **वंध्या** वह स्त्री है जिसके सन्तान न हो।

लड़की के लिए **झ़ूर्** शब्द है। कलश भाषा में इसका प्रतिरूप **छूर** है जो ब्रजभाषा के **छोरा-छोरी** की याद दिलाता है। **झ़्**, **छ्** ध्वनियों का मूल रूप **ध्** प्रतीत होता है। मौर्गेन्स्टीर्न ने कल्पना की है कि **झ़ूर्** का मूलरूप **जुहृता** था। **दुहिता** के ग्रीक प्रतिरूप **थुगातेर्** में आदिस्थानीय **थ्** मूलरूप के **ध्** की ओर संकेत करता है। **धूता, धूतर्** जैसे रूप से **दुहिता** रूप बनना सम्भव है। **धी** (लड़की) के समान **धू, धउ** (लड़का) रूप प्रचलित थे और इनके साथ **धूत** या **धूर** जैसे रूप थे जिनसे खोवार **झ़ूर्**, कलश **छूर्**, ब्रज **छोरा-छोरी** बने हैं। **भ्राता** का बहुवचन खोवार में **ब्रारगिनि** है। यहाँ **गिनि गण** का रूपान्तर है। यही तमिल का **गळ** है। खोवार में पत्नी के लिए **बोको** शब्द है जो मराठी **वाइको** से तुलनीय है; **वाइको** का **वाइ** अंग्रेजी **वाइफ़** के **वाइ** से तुलनीय है, और **वाइ** का नारीवाचक आधुनिक आर्य प्रतिरूप **बाई** है।

ऊपर के एक उदाहरण में **अनुस्** (दिन) शब्द आया है। लैटिन में इसका प्रतिरूप **अन्नुस्** वर्ष के लिए प्रयुक्त होता है। संस्कृत रूप **अयन** है। खोवार में संस्कृत शब्दों के प्रतिरूप भरे पड़े हैं; ऐसे रूप भारतीय आर्यभाषाओं में अधिक हैं, फ़ारसी में कम। स्त्री के लिए **किमेरि** शब्द का व्यवहार होता है जो **कुमारी** का रूपान्तर है। **तीक्ष्ण** का खोवारी तद्भवरूप **तुखुन्** है। झरने के लिए **उत्स** शब्द है जो हिन्दी के लिए भी अब क्लिष्ट माना जायगा : **ह्रुश् झ़ग़ उत्स् शेर्**—ऐसी जगह उत्स है।

चलने के लिए खोवार में **वग्** क्रिया है जो संस्कृत **वेग** से सम्बद्ध है। हिन्दी में **ग** क्रिया केवल अतीतकालीन **गया** जैसे रूपों में प्रयुक्त होती है; खोवार में संस्कृत **गत्वा** के समान पूर्वकालिक रूप **गिति** (आकर) है। इसी प्रकार **भू** के प्रतिरूप **बि** से **बिति** (होकर) रूप बनता है।

पठान देश के समीपवर्ती क्षेत्रों में काफिर, पशाइ, तिरही भाषाएँ बोली जाती हैं। इन भाषाओं का भारतीय आर्यभाषाओं से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। काफिर भाषा में माँ के लिए **नु** शब्द है। सम्भव है, **स्नुषा** सामान्य पारिवारिक सम्बन्ध सूचित करने वाला शब्द रहा हो; उसका तद्भव रूप यह **नु** है। बिल्ली के लिए **पिशा** शब्द **पिशाच**

की व्युत्पत्ति में सहायक होता है। **मास** का अर्थ है चन्द्रमा। संस्कृत **चन्द्रमस्** में **चन्द्र** और **मस्** दोनों एक ही अर्थ के सूचक हैं। **चन्द्रमा, पूर्णिमा** आदि का **मा** चन्द्रवाचक है। पुरुष के लिए **मनुश** और स्त्री के लिए **स्त्रो** शब्द काफिर भाषा में हैं, फ़ारसी में नहीं। काफिर क्षेत्र में **अश्व** के साथ **घोड़ा** भी पहुँचा है; **वुश्प, उश्प** और **गूड़ा**।

काबुल नदी के उत्तर में पशाइ बोलियाँ हैं। यहाँ पुरुष के लिए **वीर** शब्द है। संस्कृत **अक्षि** का रूपान्तर **अछि** यहाँ प्रचलित है। जैसे **पक्षी** का एक तद्भव रूप **पंछी** है, वैसे ही यहाँ **अछि** का वैकल्पिक रूप **अंछ** है। **पंछी** के साथ आधुनिक आर्य भाषाओं में **पाखी** है, वैसे ही यहाँ उसी अर्थ में **पछीन्** के साथ **पखीम्** है। चन्द्रमा के लिए **माइ** के अलावा **मा** पूर्णिमा के मा का अर्थ बताता है। माता के लिए **आई** और खाने के लिए **जेवन्** मराठी की याद दिलाते हैं। बाप के लिए **दादा** ठेठ भारतीय शब्द है।

एच० डब्ल्यू बेली ने **इन्डियन लिंग्विस्टिक्स** के चटर्जी जुबिली विशेषाङ्क (१९५५) में **इन्डिका एत् ईरानिका** लेख में वैदिक और ईरानी शब्दों के प्राचीन सम्बन्धों पर बल देते हुए कुछ उदाहरण दिए हैं। इनमें एक शब्द है **क्रम**। क्रम का मूल अर्थ है चलना। अनाज पर मनुष्यों या पशुओं के चलने से उसे माड़ा जाता था, इसलिए **क्रम** शब्द का एक अर्थ माड़ना हुआ। इसका ईरानी रूपान्तर **ख्रम्** है। बलूची में **खुमानी** उस स्थान को कहते हैं जहाँ नाज इकट्ठा किया जाता है। काफिरी भाषा में **क्रम्**, उसका कृदन्त रूप **क्रन्द्**, चितराल की खोवार भाषा में **क्रोम्** माड़ने की क्रिया से सम्बन्धित हैं। बेली ने अनाज को पीटने, मीसने, उस पर चलने आदि के लिए संस्कृत **क्रम्** का उल्लेख किया है। इसी के संज्ञारूप **क्रमण** का फ़ारसी रूपान्तर **खिर्मन्** (फ़सल) है। बेली ने वैदिक **खल** का भी उल्लेख किया है जो **खलिहान** में अब भी विद्यमान है। किन्तु यह **खल** भिन्न अर्थ देने वाला **खल** है और **क्रम** से भिन्न है। हिन्दी **माड़ना, मड़नी** आदि का सम्बन्ध **मर्दन** की **मर्द्** क्रिया से है। **मर्द्** का एक रूपान्तर **माद्** होगा, **माद्** का रूपान्तर **नाद्** होगा। ईरानी समुदाय की भाषाओं में **नाद्** क्रिया पीटने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। इसी का रूपान्तर हिन्दी **नाज** है; **नाज** वह जो काटी हुई धान्यराशि को माड़कर, पीटकर निकाला जाय।

यहाँ कुछ बातें बलोची भाषा के बारे में कहना चाहिए। बलोची के क्षेत्र में सिन्धी, पश्तो और ब्राहूइ बोलने वालों की संख्या काफी है। कुछ जिलों में तो अधिक संख्या सिन्धी और पश्तो बोलने वालों की है। इस प्रकार यहाँ सिन्धी और पश्तो से एक द्रविड़ भाषा निकट सम्पर्क में आती है। पश्तो के समान और फ़ारसी से भिन्न बलोची में मूर्धन्य ध्वनियों का व्यवहार होता है। बार्कर और मंगल की पाठ्यपुस्तक **ए कोर्स इन् बलूची** की समीक्षा करते हुए विलियम ए. कोट्स ने **लिंग्विस्टिक्स** पत्रिका (जुलाई १९७३) में लिखा है कि पश्तो के समान इसमें प्रतिवेष्टित व्यंजन हैं, उर्दू की विशिष्ट ध्वनियाँ **अय्, अव्** (अर्थात् **ऐ, औ**) इसमें पाई जाती हैं और ये स्वर तथा प्रतिवेष्टित व्यंजन निश्चय ही भारतीय आर्यभाषाओं से आए हैं। यद्यपि ब्राहूइ पड़ोसी भाषा है, किन्तु प्रतिवेष्टित ध्वनियाँ बलूची में आर्यभाषाओं से आई हैं। तमिल के समान ब्राहूइ में प्रतिवेष्टित व्यंजन शब्द के आदिस्थान में प्रयुक्त नहीं होते; इसके

विपरीत आर्यभाषाओं में उनका स्वच्छन्द प्रयोग होता है और बलूची में ऐसे स्वच्छन्द व्यवहार की प्रवृत्ति है। बलूची में ट् ड् ध्वनियों के व्यवहार का उल्लेख अपने सर्वेक्षण ग्रन्थ में ग्रियर्सन ने भी किया है। पश्तो के समान कुछ स्थितियों में अल्पप्राण व्यंजनों को महाप्राण संघर्षी रूप देने की प्रवृत्ति यहाँ भी है। इस प्रकार शिना शब्द फ़िथ् बोला जाता है। पश्तो के समान बलूची में भी पूर्ण प्रतिवेष्टित महाप्राण ध्वनियाँ नहीं हैं। ग्रियर्सन ने गाइगर का मत उद्धृत किया है कि बलूची में प्राचीन भाषातत्त्व फ़ारसी की अपेक्षा अधिक हैं, उस पर साहित्य की फ़ारसी का प्रभाव अल्पतम है; पुरानी फ़ारसी की अपेक्षा उसका सम्बन्ध अवेस्ता से अधिक है। कोट्स ने लिखा है कि कोई भी भाषा-विज्ञानी बलूची तथा अन्य भाषाओं, विशेषतः भारतीय आर्यभाषाओं की समानता पर ध्यान दिए बिना न रहेगा, संरचना की दृष्टि से बलूची ईरानी भाषाओं की अपेक्षा बहुधा भारतीय आर्यभाषाओं के अधिक निकट प्रतीत होती है। पश्तोभाषियों और भारतीय आर्यों के पुराने सम्बन्धों की बात विख्यात है किन्तु बलूचिस्तान की मुख्य भाषा भी हमारी भाषाओं के निकट है, यह बात कम लोग जानते हैं। वह ईरानी भाषाओं की अपेक्षा भारतीय आर्यभाषाओं के अधिक निकट है, बहुतों के लिए यह बात कल्पनातीत होगी। जो बात ट्रम्प ने पश्तो के लिए कही है, वही बात कोट्स ने बलूची के लिए कही है। मूर्धन्य ध्वनियाँ प्रतिवेष्टित हैं कि नहीं, पश्तो के सन्दर्भ में कुछ विद्वानों के लिए यह बात विवादास्पद है। कोट्स ने बलोची के ट्, ड् को असन्दिग्ध रूप में प्रतिवेष्टित माना है और उन्हें भारतीय आर्यभाषाओं की देन माना है।

ध्वनियों के अलावा बलोची वाक्य-रचना के बारे में कोट्स ने लिखा है कि रखना क्रिया का फ़ारसी प्रतिरूप बलूची में नहीं है। बलूची में **मेरे पास एक रुपया है, मेरे बहुत भाई हैं, मेरे पास बहुत सी किताबें हैं**, ऐसे वाक्यों को हिन्दी वाक्यतन्त्र के अनुरूप कहा जाएगा : **गों मन् रुप्पिए अस्त, मनि बज् ब्रस् अन्त, मन् बज् किताब अस्त**। बलूची की कारक-रचना भारतीय आर्यभाषाओं की कारक रचना से मिलती-जुलती है। उत्तम पुरुष सर्वनाम **मन्** के कर्म-सम्प्रदान बहुवचन रूप **अमारा, मारा** बँगला-राजस्थानी की याद दिलाते हैं। संस्कृत में जैसे **लोक** शब्द प्रकाश के अलावा संसार के लिए प्रयुक्त होता है, वैसे ही बलूची में **लोग** शब्द का अर्थ है घर। और गड़रिए में जो **गड़** है वह बलूची में भेड़ के लिए प्रयुक्त होने वाला गड् शब्द है। हिन्दी का **गाड़र** इसी से सम्बद्ध है। पश्तो के समान भारतीय आर्यभाषाओं से बलूची के सम्बन्ध प्राचीन और अर्वाचीन दोनों हैं।

ईरानी समुदाय की एक भाषा कुर्द है। इस भाषा के बोलने वाले अब ईरान, इराक और तुर्की के पार्वतीय सीमान्तों में रहते हैं। **ट्रान्जैक्शन्स् औफ़ द फ़िलौलौजीकल सोसायटी** नाम की पत्रिका के एक अङ्क (१९६१) में डी० एन० मैकेन्ज़ी ने इस भाषा के उद्भव पर **दि औरीजिन्स् औफ़् कुर्दिश्** नाम का लेख लिखा है। इसमें उनकी स्थापना है कि कुर्द भाषा की प्रत्येक विशेषता किसी न किसी ईरानी बोली में मिलती है। यदि कुर्द और इन ईरानी बोलियों की ये विशेषताएँ भारतीय भाषाओं में मिलें और फ़ारसी में न मिलें, तो इससे सिद्ध यह होगा कि ईरानी समुदाय की ये बोलियाँ

तथा कुर्द, फ़ारसी की अपेक्षा, भारतीय भाषाओं के अधिक निकट हैं।

एक विशेषता यह है कि स्वर के बाद आने वाली, अथवा दो स्वरों के बीच में स्थित, **म्** ध्वनि स्पर्श तत्त्व खोकर अन्तस्थ **व्** में बदल जाती है। संस्कृत **नाम** और **ग्राम** जैसे हमारी जनपदीय भाषाओं में **नांव** और **गांव** हैं, वैसे ही कुर्द में **नाम** शब्द **नाव्** है। फ़ारसी का **कमान** शब्द **कवान्** हो गया है। फ़ारसी से भिन्न, अन्य ईरानी समुदाय की भाषाओं के समान, कुर्द भी स्वच्छन्दतापूर्वक अरबी शब्दों का कायाकल्प करती है। **शमा** का रूपान्तर **शवा** होगा, **जमात्** और **तमाम्** कुर्द में **जिवात्** और **तवाव्** हो गये हैं। यह प्रवृत्ति बलूची में भी है किन्तु वह मध्यवर्ती **म्** को ही बदलती है। फ़ारसी **शुख़्म्** (पहली जोत) के लिए कुर्द **शोव्** रूप है किन्तु बलूची में **शोम्** है। ऐसे ही फ़ारसी **चश्म** बलूची में **चम्** है, कुर्द में **चाव**। **नमाज़्** दक्षिणी बलूची में **नमाश्** है किन्तु उत्तरी-बलूची में **नवाश्** है। मध्य का अर्थ देने वाला फ़ारसी **मियान्** दक्षिणी बलूची में **न्यामा** है, उत्तरी बलूची में **न्यँव** है। **नवाश्**, **न्यँव** आदि शब्दों में **म्** मध्यवर्ती है; एक क्षेत्र की बलूची में वह **व्** में परिवर्तित हुआ है।

फ़ारसी के विपरीत कुर्द अघोष महाप्राण **ख्** या **ख़्** को अल्पप्राण कर देती है जो द्रविड़ प्रभाव का प्रमाण है : **ख़र्—कर्** (गधा), **ख़न्दीदन्—कनीन्** (हँसना), **ख़रीदन्—किरीन्** (ख़रीदना)। **म्** के समान **ब्** भी **व्** में बदलता है। फ़ारसी **आब** (जल) कुर्द तथा दक्षिणी बलूची में **आव** है। बलूची में मध्यवर्ती व्यंजन बने रहते हैं किन्तु कुर्द में इनका बहुधा लोप होता है। ऐसा प्राकृतों में भी होता है। भारतीय तद्भव रूप **दीठा** कुर्द और बलूची क्षेत्रों में पहुँचा; बलूची में **दीता** और कुर्द में **दी** रूप हैं। दोनों भूतकालीन कृदन्त का अर्थ देते हैं—दिखाई दिया।

फ़ारसी **द्** कुर्द में **ज्** रूप धारण करता दिखाई देता है। फ़ारसी **दानिस्तन्** कुर्द में **जानीन्** (जानना) है किन्तु इसका सीधा सम्बन्ध **जान** क्रिया से हो सकता है। इसी प्रकार फ़ारसी **दामाद** कुर्द में **जावा** है जो सीधे **जमाता** से सम्बन्धित हो सकता है। फ़ारसी की अपेक्षा कभी-कभी कुर्द तथा अन्य ईरानी भाषाओं में शब्दों के प्राचीन रूप अधिक सुरक्षित मिलते हैं। हिरन के लिए कुर्द और बलूची रूप **आसिक्** फ़ारसी **आहू** की तुलना में अधिक प्राचीन है क्योंकि वह **ह्** के पूर्वरूप **स्** को बनाए हुए है। इसी प्रकार **मत्स्य** का कुर्द प्रतिरूप **मासी** फ़ारसी **माही** से अधिक प्राचीन है। संस्कृत **यव** फ़ारसी में **जौ** है, अवेस्ता में **यव** है, कुर्द में **जो** है, गोरानी बोली में अब भी **यव** है। संस्कृत **यकृत्** अवेस्ता में **याकर्**, फ़ारसी में **जिगर**, कुर्द में **जर्ग** किन्तु गोरानी में **यहर्** है। **या** क्रिया से तमिल और कश्मीरी का नदीवाचक **यार्** और जर्मन का कालवाचक **यार्** शब्द बनते हैं। कुर्द में **यार्** शब्द का अर्थ है समय।

ईरानी भाषाओं में **व्** की स्थिति रोचक है। कुछ कुर्द बोलियों में **व** ध्वनि **ज्** में बदलती है किन्तु दक्षिणी कुर्द में वैसा नहीं होता। संस्कृत **वात** फ़ारसी में **बाद**, उत्तरी कुर्द में **बा**, किन्तु दक्षिणी कुर्द और गोरानी में **वा** है। बलूची में **वात** का रूपान्तर **ग्वात्** है, ठीक आगरा जिले की व्रज में **वु** के प्रतिरूप **ग्वु** के समान। **वर्षा** और **बारिश** का बलूची प्रतिरूप **ग्वारिश्** है। कुछ शब्दों में **ग्व्** के स्थान पर केवल

ग् रह जाता है। स्मृति के लिए दक्षिणी कुर्द **बोर्**, उत्तरी कुर्द **बोर्** का बलूची प्रतिरूप **गोर** है।

बलूची में अग्नि के लिए **आस्** शब्द है। इसका सम्बन्ध **अत्रि, अथर्वन्, अध्वर्यु** आदि शब्दों में अग्निवाचक **अध्वर्** या **अथर्** से है। संस्कृत पुत्र का बलूची प्रतिरूप जैसे **पुसग्** है, वैसे ही **अथर्** का प्रतिरूप **आस्** है। गोरानी भाषा में **हुर्** शब्द **उर्ध्व** का प्रतिरूप है। इसमें आदिस्थानीय **ह्** अनावश्यक रूप से नहीं जोड़ा गया, वह दूरस्थसूचक **सु** सर्वनाम का रूपान्तर है। **हुर्** का सम्बन्ध **उर्ध्व** की अपेक्षा **उत्** से अधिक है। **उत्तर** में यही **उत्** है। **उत्तर** अर्थात् अधिक ऊँचा। उच्च शब्द भी उत् के आधार पर बना है। **सुध—हुद, हुर्**, इस तरह यह रूप बनेगा। मैकेन्ज़ी ने इसी शृंखला में पुरानी फ़ारसी के **उल्**, उत्तरी कुर्द के **हिल्** और मध्यक्षेत्रीय कुर्द के **हळ्** रूप दिए हैं।

हळ् रूप में मूर्धन्य **ळ्** ध्यान देने योग्य है। इसका प्रयोग पूरे कुर्द क्षेत्र में नहीं होता। उत्तरी कुर्द में **ल्** है और मध्य कुर्द में **ळ्** मिलता है। यह ध्वनि द्रविड़ भाषाओं में है, मराठी, राजस्थानी, बाँगरू आदि आर्यभाषाओं में इसका व्यवहार होता है, वह भारत से बाहर इन्डोयूरोपियन परिवार की अनेक भाषाओं में मिलती है। फ़ारसी **बुलंद** कुर्द में **बिळिन्द** है, फ़ारसी **मर्दन्** कुर्द में **माळ, माल्** (माड़ना) है।

उत्तरी कुर्द का एक शब्द **बनी** है जिसका अर्थ है सेवक। मैकेन्ज़ी ने इसका सम्बन्ध बन्धक से जोड़ा है। तमिल **पणि** (सेवा) से कुर्द **बनी** का सम्बन्ध जोड़ना अधिक युक्तिसंगत है। **बनी** हिन्दी जनपदों के **बनिहार** से तुलनीय है। **पण्** या **पन्** के अन्तिम व्यंजन का लोप होने पर **पो, पा** जैसे रूप मिलेंगे। हिन्दी की **पोना** क्रिया का अर्थ है करना, बनाना; रोटी बनाने या करने के लिए इस क्रिया का व्यवहार होता है। कुर्द में भी रोटी बनाने के लिए इस क्रिया का व्यवहार होता है: **वे जिने नान् पात्** —उस स्त्री ने रोटी पोई।

कुर्द में संज्ञा के बाद सर्वनाम-चिन्ह जोड़े जाते हैं यथा **बाबेमिन्** (मेरे पिता), **दीआमिन्** (मेरी माता), **कुरमिन्** (मेरा लड़का)। कुर्द भाषा में **कुर** शब्द का मूल अर्थ पुत्र सुरक्षित है। मगही और मैथिली के समान कुर्द में क्रिया के कृदन्त रूपों के बाद सर्वनाम चिन्ह जोड़े जाते हैं: **नानि बिदमिन्** रोटी दो मुझे; **कितेबकम् दानीपन्** —पुस्तक मेरी दी गई तुम्हें। इन वाक्यों में सर्वनाम-चिन्ह सम्प्रदानकारक का बोध कराता है। मैकेन्ज़ी ने लिखा है कि उत्तरी कुर्द में सर्वनाम-प्रत्यय समाप्त होते जाते हैं। अनेक भारतीय आर्यभाषाओं के समान कुर्द क्षेत्र में भी पुराने वाक्यतन्त्र पर नया वाक्यतन्त्र हावी होता जाता है।

७

मध्य और पश्चिमी एशिया के भाषा परिवार और भारत

१. सुमेरी भाषा और भारत

(क) प्रस्तावना

भारत के पश्चिम में जहाँ अब अरबीभाषी इराक प्रदेश है, किसी समय सुमेर नाम का शक्तिशाली राज्य था। पुराना बाबुल नगर इसी क्षेत्र में था और पश्चिमी एशिया में वह सामी भाषा और संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बना। सुमेरी लोग स्वयं सामी परिवार के नहीं थे, किस परिवार के थे, इस बारे में कोई सर्वसम्मत धारणा नहीं है। बाइबिल में यहूदियों की जो संस्कृति सुरक्षित है, उस पर सुमेर का गहरा असर है। बाइबिल ने जिस हद तक यूरुप की सभ्यता को प्रभावित किया है, उस हद तक अप्रत्यक्ष रूप से सुमेर ने भी यूरुप को प्रभावित किया है। सुमेरी भाषा और संस्कृति के विशेषज्ञ क्रैमर ने द सुमेरिअन्स (शिकागो, १९६३) में बताया है कि बाबुल में सामी जनों के आने से पहले वहाँ सुमेरी लोग रहते थे। ये लोग दो नदियों के बीचवाले उपजाऊ क्षेत्र में चौथी सहस्राब्दी के उत्तरार्ध में आकर बसे थे। दो हज़ार वर्ष तक इनकी सभ्यता कायम रही। दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व में इनका ह्रास होता है किन्तु इनकी भाषा इस क्षेत्र में बहुत दिनों तक महत्वपूर्ण बनी रही। गैंड नाम के विद्वान् ने सुमेरी भाषा की पाठ्य पुस्तक में बताया है कि जब यह भाषा कहीं बोलचाल की भाषा न रह गई थी, तब भी धार्मिक कार्यों के लिए उसका महत्व बना रहा और यह स्थिति भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के समय तक थी।

सुमेर साम्राज्य पूर्व में भारत तक और पश्चिम में एक ओर कश्यप सागर (कैस्पियन सी), दूसरी ओर भूमध्य सागर और तीसरी ओर इथिओपिया तक फैला हुआ था। स्वभावत: सुमेर का सम्पर्क मिस्र और भारत से था। सुमेरी भाषा में ये लोग अपने को कृष्णशिर कहते थे। क्रैमर के अनुसार २००० ई० पू० से वे ऐसे शब्द का व्यवहार अपने लिये करते आये थे। भारत के बाहर सब गोरे लोग रहते थे, इस धारणा का खण्डन करने के लिए यह कृष्णशिर नाम महत्वपूर्ण है। कम-से-कम बाल उनके काले थे, त्वचा का वर्ण कृष्ण रहा हो चाहे न रहा हो। कीलाक्षरी लिपि में इनके देश का नाम शुमेर लिखा जाता था। मेर, मीर शब्द देश और स्थान के लिए भारत से लेकर रूस तक प्रयुक्त होते रहे हैं। सम्भव है, सुमेर अथवा शुमेर का मेर भी स्थानवाचक हो।

भारतीय पौराणिक गाथाओं में सुमेरु पर्वत प्रसिद्ध है। पुरातत्वज्ञ लेओनार्ड वूली ने अपनी पुस्तक द सुमेरिअन्स (आक्सफोर्ड, १९२८) में लिखा है कि ये लोग मूलत: पहाड़ों के रहने वाले थे; इनके देवता सदा पहाड़ों पर रहते थे। यह बिलकुल सम्भव है कि भारतीय परम्परा का सुमेरु पर्वत सुमेरी जनों की प्राचीन निवासभूमि से सम्बद्ध हो। इनका मुख्य नगर उर था। विभिन्न युगों में यह सुमेर की राजधानी रहा। भारतीय भाषाई सन्दर्भ में उर शब्दमूल पुर का रूपान्तर है। सुमेर का एक प्रसिद्ध नगर निप्पुर था। इससे यह धारणा पुष्ट होती है कि सुमेरी उर और पुर वही शब्द हैं जो स्थान-वाचक शब्दों के साथ प्राचीन काल से सारे भारत में प्रचलित होते रहे हैं। अरब लोग उर नगर को वर्क कहते थे, अक्कादी में यह शब्द उरुक है और बाइबिल में एरेक नाम आया है।

सुमेरी लोगों ने तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० में लेखन-कौशल विकसित किया था। भारतीय लिपियों से सुमेरी लिपि की एक आधारभूत समानता यह है कि प्रत्येक चिन्ह पूरे वर्ण का सूचक होता है। सुमेर राज्य पर सामी घुमन्तू कबीलों ने बार-बार आक्रमण किये और अन्त में वे सुमेर देश के स्वामी बन गये। सुमेरी लोग मूलत: कृषक और पशुपालक थे। वे गेहूँ और जौ की खेती करते थे, गोल पहियोंवाली गाड़ियों का उपयोग करते थे। उनकी भाषा में दो सौ शब्द केवल भेड़ों से सम्बन्धित थे। उनकी धार्मिक गाथाएँ अनेक प्रकार से भारतीय देवकथाओं की याद दिलाती हैं। ये आकाश के देवता अन की पूजा करते थे। इनके सूर्य के देवता का नाम उतु था। उनके राजा स्वयं को सूर्यपुत्र कहते थे। पृथ्वी की देवी की थी; अन, की दोनों मिलकर, द्यावापृथ्वी के समान, माता-पिता-रूप आकाश और पृथ्वी के देवता थे। वायु के देवता का नाम एन लिल था। वर्षा और झंझावात का देवता इशकुर भारतीय मरुतों के समान था। चन्द्रमा का देवता नन्न अथवा सिन कहलाता था। उर नगर उसी को अर्पित था। पाताल का देवता एनकी था। मातृरूप में अनेक देवियों की उपासना होती थी। उर में शुब् अद् नाम की रानी की कब्र में, वुली के अनुसार, चाँदी का बना हुआ गाय का सिर मिला था। इनका एक महाकाव्य गिल्गमेश् प्रसिद्ध है जिसमें सृष्टि और जल प्रलय की कथा है। भारतीय गाथाओं में वीर पुरुषों की तुलना बहुधा वृषभ से की जाती है। मिस्र और सुमेर में भी वृषभ को ऐसी ही प्रतिष्ठा प्राप्त थी। पुरातत्वज्ञों को ऐसी सामग्री मिली है जिससे सुमेर और मिस्र से सिन्धु घाटी की प्राचीन भारतीय सभ्यता का सम्पर्क प्रमाणित होता है। मोएन्जोदड़ो में खुदाई का काम करने वाले पुरातत्वज्ञ मैकाय ने फर्दर एक्सकैवेशन्स (१९३८) में बताया है कि वृषभ-आकृति-युक्त मंचिकाएँ मिस्र, सुमेर और भारत में मिलती हैं; यह कल्पना करना कठिन है कि प्राचीन पूर्व की तीन महत्तम सभ्यताओं में ऐसी मंचिकाओं का अस्तित्व आकस्मिक है। मैकाय का मत है कि सुमेर तथा निकटवर्ती देशों से सिन्धु घाटी के लोगों का निकट सम्पर्क था। उनके अनुसार सुमेर में अनेक स्थानों पर भारतीय नमूनों और कारीगरी की मुद्राएँ मिली हैं। उनका अनुमान है कि भारत और मिस्र अपना व्यापार सुमेर देश से होकर करते थे, भारतीय व्यापारी सुमेर पहुँचने के लिए सम्भवत: जल-मार्गों और स्थल-मार्गों दोनों का उपयोग करते थे।

(ख) ध्वनितन्त्र, रूपतन्त्र

विशेषज्ञों का मत है कि प्राचीनतम सुमेरी अभिलेखों में सामी शब्द मिलते हैं। सुमेरी भाषा चाहे जिस परिवार की हो, चाहे उसका अपना स्वतन्त्र परिवार हो, यह तथ्य स्वीकृत है कि सामी भाषाओं से उसका सम्पर्क था। सुमेरी भाषा का सम्पर्क मिस्र और सिन्धु घाटी की भाषाओं से भी अवश्य रहा है। सिन्धु घाटी की लिपि सुमेरी लिपि से भिन्न है; सिन्धुघाटी की लिपि पढ़ी नहीं गई पर यह बिलकुल सम्भव है कि सिन्धुघाटी की भाषा के कुछ शब्द सुमेरी में विद्यमान हों, भले ही हम उन्हें पहचान न पायें। पर इसी कारण यह भाषा हमारे लिये अत्यन्त आकर्षक हो जाती है। इसके लिए कहा गया है कि यूराल-अलताई भाषाओं के समान यह संयोगात्मक है। उसका सम्बन्ध फिनोउग्रियन परिवार से जोड़ा गया है। सुमेरी भाषा की प्रकृति सामी भाषाओं से इस बात में भिन्न है कि सामी भाषाओं में शब्दमूल के व्यंजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं, सुमेरी भाषा में स्वर और व्यंजन दोनों महत्वपूर्ण होते हैं; सामी भाषाओं में शब्दमूल के स्वर में परिवर्तन करने से रूप विकार सम्भव होता है, इसके विपरीत सुमेरी भाषा में शब्दमूल ज्यों का त्यों रहता है, उसके आगे-पीछे अन्य शब्द या शब्दांश जोड़े जाते हैं। सुमेरी भाषा की एक विशेषता यह है कि शब्द का अन्तिम व्यंजन अनुच्चरित रहता है, व्याकरण की आवश्यकता के लिए जब कोई स्वर जोड़ा जाता है, तभी उस व्यंजन का उच्चारण होता है।

सिन्धु नदी के पार एशिया के अनेक भाषा-परिवारों के समान सुमेरी में भी महाप्राण ध्वनियों का अभाव है। इस भाषा में संज्ञा और क्रिया का भेद अविकसित है। जो शब्द संज्ञा है, वह क्रिया का भी काम कर सकता है। भारत के कोल, द्रविड़ आदि अनेक परिवारों में इससे मिलती-जुलती स्थिति है। इस भाषा में व्याकरणगत लिंगभेद नहीं है, द्रविड़ भाषा के समान मनुष्य और मनुष्येतर में भेद किया जाता है। इसके शब्दमूल अधिकतर एकवर्णी होते हैं। शब्दों के उच्चारण में कभी-कभी स्वरों को छोड़ दिया जाता है। भारतीय भाषाओं से इसकी एक महत्वपूर्ण समानता यह है कि सम्बन्धक चिन्ह, भारतीय भाषाओं के समान, मूल शब्द के बाद आते हैं, उससे पहले नहीं, यथा **उरु मे अ**—हमारे नगर में; **शुम् अ**—मेरे हाथ में। यहाँ सम्बन्धक चिन्ह **अ** मूल शब्दों के बाद आया है। बहुवचन सूचित करने के लिए किसी शब्द की आवृत्ति भी की जाती है जैसा कि प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में होता है यथा **कुर्**—पर्वत, **कुर् कुर्**—अनेक पर्वत।

सुमेरी भाषा की क्रियापद-रचना उन तमाम भाषाओं से मिलती है जिनमें कृदन्त क्रिया का मुख्य रूप होता है। सुमेरी भाषा में कर्मवाच्य कृदन्त क्रियार्थी संज्ञा का काम करता है। गैंड ने लिखा है कि जिसे धातु कहते हैं, वह सम्पूर्ण भूत की सूचना देती है, उसमें प्रत्यय जोड़कर अन्य काल अथवा अवस्था की सूचना दी जाती है। **मुदु**—उसने बनाया; **मुदुए**—वह बनाता है या बनायेगा। काल, पुरुष, वचन की सूचना देने के लिए क्रिया में जोड़े जाने वाले चिन्ह अति अल्प हैं। यह कमी कृदन्त रूपों के व्यापक व्यवहार से बहुत कुछ पूरी कर ली जाती है। आर्य भाषा परिवार के उत्तर-पश्चिमी

क्षेत्र में, पड़ोसी फ़ारसी और पश्तो में कृदन्तों की प्रधानता है। अरबी में भी क्रिया का सहज रूप अतीत काल की व्यंजना करता है। भाषाविज्ञानियों को जैसे संस्कृत के मुकाबले आधुनिक आर्यभाषाओं में क्रियारूपों की कमी खटकती है, वैसे ही उन्हें सुमेरी भाषा में रूपगत दरिद्रता लगभग निराश कर देती है। सुमेरी में ऐसी दरिद्रता और कृदन्तों के चलन की बात पढ़कर ऐसा लगता है, हम आधुनिक आर्यभाषाओं का विवरण पढ़ रहे हैं। पर यह सुमेरी भाषा एक महान् संस्कृति की वाहक थी; पृथ्वी, सूर्य, वायु आदि की उपासना में क्रिया-रूपों की कमी से कोई बाधा न पड़ती थी। यह बात उन लोगों के लिए शिक्षाप्रद है जो आधुनिक आर्यभाषाओं की रूपगत दरिद्रता पर आँसू बहाते हैं।

अनेक आर्य और आर्येतर भाषाओं के समान सुमेरी में भी संज्ञा के बाद सर्वनाम चिन्ह जोड़े जाते हैं, यथा **कल-म-नि** —उसकी भूमि, **उमुन् बि ने** —उनका स्वामी। ऊपर जो **उरु मे श्र** का उदाहरण दिया गया है उसमें **मे** सर्वनाम-चिन्ह नगरवाचक **उरु** के बाद आया है। सुमेरी भाषा में संकेतक सर्वनाम या विशेषण मूल शब्द के बाद आते हैं यथा **लु** शब्द का अर्थ है मनुष्य। **लु बि** का अर्थ हुआ यह मनुष्य; इसी **लु** में महत्तासूचक **गल्** विशेषक जोड़ा तो **लुगल्** रूप बना जिसका अर्थ हुआ बादशाह।

सुमेरी को भारतीय भाषा परिवारों से जोड़ने वाली एक विशेषता संख्यासूचक शब्दों की निर्माण-पद्धति है। जैसे द्रविड़ भाषाओं में दहाई पहले आती है, वैसे ही सुमेरी में : **उ** माने दस, **अश्** माने एक; **उ अश्** माने ग्यारह, **उ मिन्** माने बारह। यह क्रम भारत के बाहर फ़ारसी में है, इन्डोयूरोपियन परिवार की अन्य भाषाओं में भी है, विशेषत: बीस की संख्या के बाद वाले शब्दों में।

गैड ने लिखा है कि सुमेरी भाषा में क्रियार्थी संज्ञा का रूप कृदन्त जैसा होता है। धातु में **द** या **दे** प्रत्यय लगता है जो संस्कृत के **त** प्रत्यय का ही सघोष रूप जान पड़ता है। कृदन्त रूप के बाद सर्वनाम-चिन्ह जोड़कर वाक्यांश रचे जाते हैं। धातु में एक **अब्** प्रत्यय जोड़कर क्रियार्थी संज्ञा बनाने की पद्धति है यथा **दिमब्** —बनाना, **सिमब्** —देना। यहाँ भी **ब** अथवा **अब** प्रत्यय पूर्वी क्षेत्र के क्रियार्थी संज्ञा वाले हिन्दी रूपों से मिलता-जुलता है। क्रियापद के साथ अनेक प्रत्यय-उपसर्ग जोड़कर ऐसी पद-रचना की जाती है कि सारा वाक्य क्रिया से सम्बद्ध रहता है। सुमेरी भाषा में, अंग्रेज़ी आदि के विपरीत और हिन्दी आदि के अनुरूप, कर्म क्रिया के पहले आता है। **एमिनु इन्दुश्र**—एमिनु नामक नगर बनाया। इसी पद्धति के अनुरूप जब संज्ञा के साथ धातु जोड़कर क्रियापद बनाते हैं, तब संज्ञा शब्द क्रिया से पहले आता है, यथा **शु** हाथ, **गर्** बनाना, **शुगर्**—हाथ से बनाना; **क**—मुख, **गि** घुमाना, **कगि**—मुँह फेरना। कर्तासूचक सर्वनाम-चिन्ह क्रिया से पहले आते हैं यथा **दु**—निर्माण करना, **इन्दु** उसने या उसने बनाया। हिन्दी वाक्य-रचना में जैसे कृदन्त के साथ समापिका क्रिया **होना** जोड़कर क्रियापद रचा जाता है, वैसे ही सुमेरी भाषा में **मे** अथवा **अम्** (होना) जोड़कर कृदन्त से पूर्ण क्रिया बनाते हैं। मूल वाक्यांश के अतिरिक्त गौण वाक्यांशों में पूर्ण क्रिया के बदले, तमिल के समान, कृदन्तों का व्यवहार ही अधिक होता है। गैड का कहना है कि सुमेरी

क्रियापद क्रिया का पूरा दर्जा पाता ही नहीं है। यह धारणा सम्भवतः इसलिए बनी कि कृदन्त रूपों को पूर्ण क्रिया नहीं माना गया। इस भाषा में क्रियापदों का वैसा ही महत्व है, जैसा कि कोल भाषाओं में है। क्रिया से सम्बद्ध अन्य तत्व उसमें जोड़ते जाते हैं। इसलिए सुमेरी वाक्य में क्रिया को ही उसका केन्द्रबिन्दु मानना चाहिए।

सुमेरी भाषा की अनेक विशेषताएँ भारतीय भाषा परिवारों की विशेषताओं से मिलती-जुलती हैं। प्रत्यय-उपसर्ग जोड़कर क्रिया का अर्थ बदलना, आवृत्ति द्वारा बहुवचन बनाना या अर्थ पर जोर देना, विशेष प्रकार की वस्तुओं के लिए विशेष शब्द-संकेतों का उपयोग करना उक्त विशेषताओं में शामिल हैं। आर्यभाषाओं के परिवेश में जो भाषाएँ रहीं, वे क्रमशः लिंगभेद की विशेषता का उपयोग करने लगीं। सुमेरी भाषा में मुख्य भेद मानव और मानवेतर पदार्थों में है पर स्त्री-पुरुष वाला लिंगभेद इस भाषा को प्रभावित करने लगा है। इसलिए कुछ प्रत्यय मूल शब्द में लगाकर उसे स्त्री-लिंग बनाया जाता है। **दुमु** शब्द का अर्थ है सन्तान या पुत्र। जब पुत्री का बोध कराना हो तब उसमें **सल्** प्रत्यय जोड़ेंगे, **दुमुसल्**—लड़की।

शब्द निर्माण करते समय संज्ञा के बाद विशेषण जोड़कर नया संज्ञा शब्द बनाया जा सकता है यथा **लु**—मनुष्य, **गल्**—महान्; **लुगल्**—राजा। यह शब्द वैसे ही बना है जैसे **पितामह** में पिता के बाद विशेषण जुड़ा है। मूल शब्द में उपसर्ग जोड़-कर भाववाचक संज्ञा बनाई जा सकती है यथा **गल्**—महान्, **नम्गल्**—महत्ता। दो संज्ञा शब्दों को जोड़कर संस्कृत के समान समास रचना हो सकती है यथा **उद्**—सूर्य, **उद्शु**—सूर्यास्त। विशेषण के बाद कोई सम्बन्धक चिन्ह जोड़कर क्रिया विशेषण बनाया जा सकता है यथा **गल्**—महान्, **गल्बि**—महत्व के साथ। सुमेरी भाषा में अनेक शब्द ऐसे हैं जिन्हें देखकर लगता है कि इनकी रचना सर्वनाम मूलों में पदार्थसूचक प्रत्यय जोड़कर हुई है: **एगिर्**—पश्चात्, **उगु**—ऊपर, **उद्**—जब। सुमेरी भाषा में अनेक ऐसे शब्द हैं जिनमें पहला वर्ण **अ** प्रत्यय जैसा अलग प्रतीत होता है यथा **अगल्**—महत्ता-पूर्वक, **अगुर्**—गुरुत्वपूर्ण, **अनग्**—हवि (**नग्**—द्रव पदार्थ है, विशेष सन्दर्भ में उसके व्यवहार के लिए **अ** प्रत्यय जोड़कर उसे नया अर्थ दिया गया है)। संस्कृत में जिन शब्दों के आरम्भ में **अ** प्रत्यय है पर निषेधात्मक अर्थ नहीं देता, वे ऐसे सुमेरी शब्दों से तुलनीय हैं। अनेक प्रत्यय-उपसर्ग भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त ऐसे तत्वों से मिलते-जुलते हैं।

इनमें एक है **क** जो सम्बन्धकारक का चिन्ह है। **युगल अब्जुक**—राजा पाताल का। एक वैकल्पिक रूप **र** भी है। **कुर्** पहाड़, **कुर्कुर्** अर्थात् बहुत से पहाड़, **कुर्कुर् र** अर्थात् पहाड़ों का। **क** का सघोष रूप **ग** भी इसी कार्य के लिए प्रयुक्त होता है। मध्यम पुरुष सर्वनाम **ज** के साथ **गे** जोड़ने पर **जगे** रूप का अर्थ हुआ तेरा। **र** का उपयोग सम्बन्ध के अलावा अन्य कारकों में भी होता है यथा **मर**—मुझको। ये **र** और **क** आर्यभाषाओं के बहुप्रयुक्त कारक-चिन्ह हैं।

हिन्दी तथा अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं के समान सुमेरी में कर्ता और कर्म कारकों में प्रायः एक से रूप होते हैं। मूल शब्द में **ए** अथवा **अ** जोड़कर कर्ता या कर्म

कारक का संकेत किया जा सकता है पर इन कारक-चिन्हों का व्यवहार अनिवार्य नहीं है। अपभ्रंश से हज़ारों साल पहले भारत की एक पड़ोसी भाषा में कारक-रचना की स्थिति संस्कृत से भिन्न आधुनिक भाषाओं के अनुरूप थी. यह तथ्य उन भाषाविज्ञानियों के ध्यान देने योग्य है जो अपभ्रंश में कारक-रचना का ह्रास देखकर क्षुब्ध होते हैं। अधिकरण कारक में दिशाबोधक सुमेरी शु प्रत्यय का व्यवहार संस्कृत के बहुवचन चिन्ह सु की याद दिलाता है, किलिशु — [illegible] स्थान की ओर। अपादान कारक में त प्रत्यय संस्कृत के अनुरूप जान पड़ता है। अधिकरण में पुनः संस्कृत के समान ए प्रत्यय का व्यवहार भी होता है। संस्कृत में यह ए केवल एकवचन के लिए है। गैड ने ब, त जैसे प्रत्ययों की यह व्याख्या भी की है कि इनमें व्यंजनान्त शब्द के अन्तिम व्यंजन की रक्षा के लिए है किन्तु उरुत—नगर से, यहाँ व्यंजन रक्षा का प्रश्न नहीं है। सम्बन्ध कारक का चिन्ह क या ग है, अ नहीं, यह इससे भी स्पष्ट है कि जहाँ केवल अ है, वहाँ गैड ने इन व्यंजनों के लोप की बात कही है। स्वरों के पहले, व्यंजन से पहले और शब्द के अन्त में क् या ग् का लोप हो जाता है "जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि सम्बन्ध कारक के अन्त में अ है।" (गैड : ए सुमेरियन रीडिंग बुक, आक्सफोर्ड, १९२४ : पृष्ठ २३)। राजा का दास, यह पद यों लिखा जायेगा कि दास का विशेषण उसके बाद आये। एरि लुगलक् — दास राजा का, क् का लोप होने पर रह जायेगा एरिलुगल। अन्तिम वर्ण का अकार वास्तव में अक् का अवशेष है।

(ग) शब्दतन्त्र

भारतीय भाषा परिवार और पड़ोसी भाषाओं के सर्वनाम ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। सुमेरी सर्वनामों में लिंगभेद नहीं होता। पुरानी स्थिति यही है। संस्कृत में केवल अन्य पुरुष के सर्वनाम लिंगभेद सूचित करते हैं। उत्तम पुरुष एकवचन सर्वनाम का सुमेरी कर्तारूप म है जो संस्कृत मम, मया आदि रूपों का आधारभूत अंश है। इसके वैकल्पिक सुमेरी रूप मे, मए भी होते हैं। जब यह संज्ञा शब्दों के बाद प्रयुक्त होता है तो इसका रूप मु होता है। मध्यम पुरुष सर्वनाम का एकवचन रूप ज है और प्रत्यय रूप में यह जु है। सम्भव है यह ध, ध्व जैसा सर्वनाम रहा हो जो परिवर्तित होकर यहाँ ज बना है। अन्य पुरुष सर्वनाम का एकवचन रूप एने संस्कृत अन्य से सम्बद्ध हो सकता है। सुमेरी में न्-मूलक सर्वनामों का यथेष्ट व्यवहार होता था। प्रत्यय रूप में यह अन्य पुरुष सर्वनाम नि, ने रूप में दिखाई देता है यथा कलमनि — उसकी भूमि, उमुन्बिने—उनका स्वामी। निकट और दूरस्थ पदार्थों का सूचक सर्वनाम हुर् का आधारभूत हु प्राचीन सर्वनाम सु का रूपान्तर है।

अब सुमेरी भाषा के कुछ शब्दों पर विचार किया जाये। इनका नगरवाचक शब्द उर अथवा उरु निस्सन्देह भारतीय उद्भव का है। नगरपालक के लिए पतेसि शब्द पति का प्रतिरूप है। सुमेरी में दम्पति शब्द तो नहीं है किन्तु दम् है जो पति या पत्नी किसी के लिए प्रयुक्त हो सकता है। सन्तान के लिए दुमु शब्द इसी दम् से सम्बद्ध है। सन्तान के लिए एक शब्द उतु भी है। सुत—हुत—उत ऐसा विकास सम्भव है।

सुमेरी भाषा जिस क्षेत्र में बोली जाती थी, उसमें ऐसा परिवर्तन बहुत स्वाभाविक था। सुमेरी में संवर्धन का अर्थ देने वाली **सु** क्रिया है जो **सुत** की **सु** क्रिया से मिलता-जुलता अर्थ देती है। पुनः अनाज के लिए **शे** शब्द है जो इन्डोयूरोपियन परिवार की **से, सी** (जन्म देना, बीज बोना) जैसी क्रियाओं का प्रतिरूप है। यदि **स्** **त्** में परिवर्तित हो, जैसा कि तमिल में बहुधा होता है, तो **सु** क्रिया का **तु** रूप मिलेगा। सुमेरी **तु** या **तुद्** का अर्थ है बच्चे पैदा करना। जन्म देने के लिए एक क्रिया **उगु** है। सम्भव है, यहाँ भी मूल क्रिया **सु** हो और **ग** कृदन्त चिन्ह हो। सूर्य, प्रकाश और समय के लिए सुमेरी **उद्** का मूल रूप **सुद्** हो सकता है जिसका अर्थ होगा जलना, प्रकाश करना; कन्नड़ में यही अर्थ देने वाली **सुडु** क्रिया है। तमिल में **चुडु** (गर्मी) के साथ **उडुगु** (उप०) रूप भी है। संस्कृत **उडु** (नक्षत्र) भी स्मरणीय है।

सुमेरी भाषा का **अर** शब्द गमन और पथ का अर्थ देता है। सम्भव है इसका आधार **सर्** क्रिया हो। सुमेरी भाषा का एक अन्य शब्द है **हरन्**। इसका अर्थ भी पथ है; इसलिए **स्-ह्** वाले परिवर्तन पर विश्वास होने लगता है। सुमेरी भाषा का **अब्ज़ु** (पाताल) संस्कृत **अपस्** का प्रतिरूप है। धरती के नीचे जो जल है, जिस जल में **एनको** देवता निवास करता है, वह **अब्ज़ु** है। समुद्र के लिए **अब, आब** शब्द है जो **अप्स्, आपस्** का प्रतिरूप है। प्रलय और झंझावात के लिए **अमरु** शब्द **मरुत** की याद दिलाता है। शासन और शत्रुभाव का सूचक **बल्** शब्द भारतीय **बल** के गोत्र का है। बलवान के लिए **अगुर्** शब्द भी है। **गुर्** का अर्थ है विशाल, शक्तिशाली; क्रियारूप में इसका अर्थ है उत्कर्ष प्रदान करना। इसका सम्बन्ध भारतीय गुरु से है। **अ** प्रत्यय जोड़कर नया शब्द **अगुर्** बनाया गया है।

एक शब्द है **जि** जिसका अर्थ है जीवन, दूसरा शब्द है **ति** जिसका अर्थ है जीना। सम्भव है, संस्कृत **जीव्** क्रिया का एक रूपान्तर **जी** हुआ हो और दूसरा **दी** (**प्रसेनजित्** से **पसेनदी** की तरह) और इस **दी** का अघोष रूप हो **ती** अथवा **ति**। एक शब्द है **सिद्** जिसका अर्थ है आराम करना, यह संस्कृत **सद्** (बैठना) का वैसा ही प्रतिरूप है जैसा अंग्रेजी **सिट्** है। एक अन्य **सिद्** **शीत** का प्रतिरूप है; असिद् अर्थात् ठंढा पानी। यहाँ **अ** का अर्थ जल है; अलग से भी **अ** इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। स्पष्ट ही **अपः** से **अप्**, फिर शब्द के अन्तिम व्यंजन का उच्चारण न होने से यह रूप बना। आँख के लिए **इगि** शब्द अक्षि से सम्बद्ध है। स्थान के लिए **कि** शब्द है जो ग्रीक **गॅअ** (धरती), संस्कृत **ज्या** (उप०) से सम्बद्ध है। **किबल्**—शत्रु की भूमि, **किउर**—नगर की भूमि, **किएन्गि**—सुमेर की भूमि, **किदिन्गिर्र**—देव भूमि। सुमेर की भूमि को **कलम्** भी कहते थे। यहाँ **कल** का अर्थ पर्वत होगा और यह प्रसिद्धि थी कि सुमेरीजन पर्वतों से आये हैं। यह **कल** भारतीय **कलिंग** में है। तमिल **कल्** का अर्थ है पत्थर। भूमि के लिए एक अन्य शब्द है **मद**; इसका अक्कदी रूप **मातु** है जो तमिल भाषा के **नाडु** से मिलता-जुलता है। कन्नड़ **माडु** का अर्थ निर्माण करना, खेती करना है। सम्भव है, सुमेरी **मद** का अर्थ खेती की भूमि हो।

सुमेरी क्रिया **दु** का अर्थ है बनाना। इसका सम्बन्ध हिन्दी **धन्धा** की **धन्**,

फ़ारसी **दस्त** (हाथ) के पूर्वरूप **धस्त** की **धस्** क्रिया से है। अंग्रेज़ी **डू** (करना) और सुमेरी **डु** का स्रोत **धॉर्** क्रियामूल है। इस **डु** का रूपान्तर **रु** है। सुमेरी क्रिया **रु** का अर्थ है देना; रूसी में इसी से संज्ञा शब्द **रुक** (हाथ) बना है। **डु** या उसके पूर्वरूप **धु** का एक सुमेरी रूपान्तर **शु** भी है जिसका अर्थ है हाथ। **धर्** या **घर्** का **शर्** रूपान्तर भारत में कभी प्रचलित रहा होगा; उसी से संस्कृत **श्रम** बना है। **श्रम** का मूल अर्थ होगा कर्म। संस्कृत **कर** (हाथ), **कृ** (करना) का आधार **घर्** है। इस **घर्** का **गर्** रूपान्तर सुमेरी में है; **गर्** का अर्थ है बनाना, **शुगर्** का अर्थ हुआ हाथ से बनाना। **कारीगर** में यही **गर्** है जो सुमेरी से फ़ारसी में पहुँचा है।

कारीगर के लिए सुमेरी **नगर्** शब्द दिलचस्प है। भारतीय **भग** अथवा **नग** निर्माण कौशल के लिए विख्यात थे। जहाँ **नग** एकत्र हों, वह स्थान **नगर** कहलाया; **ग्राम** से भिन्न **नगर** में निर्माणकौशल की व्यंजना है। सुमेरी में **नगर** शब्द कौशल से जुड़कर कारीगर का अर्थ देने लगा। संस्कृत **भर्ग** (प्रकाश) की **भर्** क्रिया सुमेरी में **बर्** (चमकना) है। संस्कृत **प्रथ्** (फैलना) में **प्र** क्रियामूल **पर्** का संयोगी परिणाम है। तमिल में **पर** (फैलना) महाप्राणित **थ** से मुक्त स्वतन्त्र क्रिया है। इसी का प्रतिरूप सुमेरी **पर्** (उप०) है। संस्कृत **हूत** की **हू** क्रिया का पूर्वरूप **घू** था। ध्वनि के लिए सुमेरी **गु** इससे सम्बद्ध है। सुमेरी **जल्** (चमकना), **उद्-जल्** (प्रभात), **जलग्** (पवित्र और प्रकाशमय होना) संस्कृत **ज्वल्** के आधार पर बने रूप हैं। बुलाने के लिए सुमेरी **पद्** क्रिया संस्कृत **पद** (शब्द), तमिल **पाडु** (गाना) की शृंखला में है। तमिल **अप्पन्** (पिता) का सुमेरी प्रतिरूप **अब्ब** है, तमिल **अत्तन्** (उप०) का सुमेरी प्रतिरूप **अद्द** है, तमिल **अम्मा** (माँ) का सुमेरी प्रतिरूप **अम** है।

दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के पूर्वार्ध में किसी सुमेरी साहित्यकार ने विद्यारम्भ करने वाले छात्र की दिनचर्या लिखी थी। यह संसार के प्राचीनतम यथार्थवादी गद्य-लेखन का एक नमूना है। पूरी रचना में केवल छात्र अपनी बात कहता है। थोड़े दिन से पाठशाला जाने लगा है और डरता है कि विलम्ब होने पर गुरुजी मारेंगे। इस संवाद में एक वाक्यांश बराबर आता है : **अम-मु निन्द-मिन्**—मेरी माँ ने मुझे दिया। **अम्मा** का प्रतिरूप **अम** दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० में इतना प्रतिष्ठित हो चुका था कि साहित्य में भी उसका व्यवहार हुआ था। (**जर्नल् आफ़् अमेरिकन् ओरिएन्टल् सोसायटी,** खण्ड ६६; १६४६ ई० में उक्त रचना उद्धृत है।)

सुमेरी देवकथाओं पर क्रैमर की पुस्तक की आलोचना करते हुए उक्त पत्रिका (खण्ड ६४; १६४४ ई०) में आल्ब्राइट् ने लिखा था कि सुमेरी भाषा और साहित्य का सम्बन्ध (इन्डोयूरोपियन परिवार की) हित्ती भाषा और (सामी परिवार की) अक्कादी भाषा और उनके साहित्य से है। ऐसी स्थिति में सुमेरी भाषा का सम्बन्ध भारतीय आर्य-द्रविड़ भाषाओं से हो, तो यह स्वाभाविक ही होगा। भारतीय शब्दों के जैसे प्रतिरूप सुमेरी में मिलते हैं, उनसे यह प्रमाणित होता है कि तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० में भारत की उत्तर-पश्चिमी आर्य-द्रविड़ भाषाओं का यथेष्ट विकास हो चुका था।

२. सामी भाषा-परिवार और भारत

(क) प्रस्तावना

संसार के भाषापरिवारों में ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सामी भाषापरिवार है। सामी भाषाओं का एक प्रमुख केन्द्र बावेरु, बाबुल या बैबिलोन भारत-ईरान के पड़ोस में था। अक्कादी, हीब्रू, अरबी इस परिवार की प्रसिद्ध प्राचीन भाषाएँ हैं। सामी भाषाक्षेत्र में अनेक प्रदेश ऐसे थे जो व्यापार और धन-सम्पत्ति के लिए प्रसिद्ध थे। इनमें भूमध्यसागर के तट पर बसा हुआ छोटा-सा फिनीशिया नाम का देश था। यूनानियों ने अपनी लिपि फिनीशिया से प्राप्त की थी। यूरुप में जो ईसाई धर्म फैला, उसके संस्थापक ईसामसीह अरमाइक नाम की सामी भाषा बोलते थे जो हीब्रू से मिलती-जुलती है। छठी और पाँचवीं ईसा-पूर्व सदियों में ईरानी साम्राज्य के शासकों ने अपने क्षत्रपों के लिए राजभाषा के रूप में अरमाइक का ज्ञान अनिवार्य कर दिया था। आगे चलकर अरबी ने एक ओर फ़ारसी को प्रभावित किया, दूसरी ओर उसने अंग्रेज़ी समेत यूरुप की भाषाओं को प्रभावित किया। अल्जेब्रा, ऐड्मिरल् जैसे गणित और नाविक-विद्या के शब्द अंग्रेज़ी में अरबी से पहुँचे। यह सिलसिला पुराना है। पश्चिमी एशिया से न केवल सामी तत्व यूरुप की भाषाओं में पहुँचे हैं, वरन् सामी भाषाओं के माध्यम से भारतीय भाषातत्व भी वहाँ पहुँचे हैं। सामी भाषाएँ न केवल आर्यभाषाओं की पड़ोसी रही हैं, वरन् वे नाग और द्रविड़ भाषाओं की पड़ोसी भी रही हैं। सामी भाषापरिवार के निर्माण का इतिहास जानने के लिए आर्य-सामी सम्बन्धों का ज्ञान आवश्यक है। इस ज्ञान से विदित होगा कि सामी भाषा के जिन केन्द्रों का प्रभाव समस्त सामी भाषाओं पर पड़ा है, वे भारत-ईरान के पड़ोस में थे।

(ख) प्राचीन सामी भाषा अक्कादी

सामी भाषाओं में अक्कादी अत्यन्त प्राचीन है। एरिका राइनर ने इस भाषा पर एक पुस्तक लिखी है: **ए लिंग्विस्टिक् ऐनालिसिस् औफ़् अक्कादिअन्** (मूतों; १९६६)। इसमें उन्होंने बताया है कि २४०० ई० पू० से लेकर पहली ई० शताब्दी के अन्त तक इस भाषा का व्यवहार होता रहा था। इसका मूल क्षेत्र दो नदियों के बीच का वह प्रदेश है जिसे मेसोपोटामिया कहते हैं, जहाँ अरबीभाषी इराक राज्य है। बाबुल और असीरिया इसके दो मुख्य केन्द्र थे। इसकी लिपि अरबी लिपि के विपरीत बाईं ओर से दायीं ओर को चलती थी।

बाबुल और असीरिया के भाषा-रूपों में एक भेद **श्** और **स्** का है। बाबुल की भाषा मागधी के समान बहुधा **श्** का व्यवहार करती है किन्तु असीरिया की भाषा दन्त्य **स्** को प्रधानता देती है। हिन्दी क्षेत्र की बोलियों और परिनिष्ठित बँगला का सा भेद है। बाबुली **बश्बत्** (बैठा है) का असीरियाई प्रतिरूप **उस्बत्** है। असीरियाई में **अ** स्वर के बाद **र्** और **ह्** आयें तो वह बाबुली में **ए** हो जाता है यथा **गरु** (बैरी होना) का बाबुली रूप **गेरु** है, **सहरु** (छोटा) का बाबुली रूप **सेह्रु** है। जैसे मध्यदेशीय

अकार कौरवी क्षेत्र में एकार हो जाता है, विशेषतः ह् और र् के पहले, वैसे ही अक्कादी के दो रूपों में अकार-एकार की स्थिति है। लिखित रूप में अकार-एकार का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता। एक ही शब्द एक जगह अकार से लिखा गया है तो दूसरी जगह एकार से। एक जगह हरु (खोदना) रूप है तो दूसरी जगह हेरु। जो लोग लैटिन-ग्रीक के एकार को संस्कृत में अकार बनते देखते हैं, उनके लिए अक्कादी की यह स्थिति शिक्षाप्रद है। इस बात को ध्यान में रखने से अक्कादी रूपों के आर्य प्रतिरूप पहचानने में सुविधा होगी। जैसे द्रविड़ भाषाओं में सघोष-अघोष का भेद बाद में विकसित हुआ है और अधिकतर सर्वत्र-भेदक नहीं है, वैसे ही अक्कादी भाषा की लिपि में सघोष-अघोष का भेद सदा महत्त्वपूर्ण नहीं होता। एक जगह **गलातु** लिखा, दूसरी जगह **गलाबु** लिखा।

संस्कृत **अदस्** के **अद** के समान अक्कादी में एक सर्वनाम मूल **अग** है जो दूरस्थ वस्तु के लिए संकेतक का काम करता है। द्रविड़ भाषाओं में कोण्ड **अकन्** (वह आदमी), **अको** (दूर) तुलनीय हैं। इसका मूलरूप **सघ** होगा। **घ** की महाप्राणता का लोप हुआ और स् जब ह् में परिवर्तित हुआ, तब उसकी महाप्राणता का भी लोप हुआ। स्, ह्, अ संकेतक सर्वनाम हैं; वस्तुसूचक **घ** का अवशेष ग उसके साथ जुड़ गया। इसी के आधार पर निकटवर्ती वस्तु का संकेतक **अगन्नु** बना। **स** सर्वनाम का प्रतिरूप **श** (वह, जो) भी यहाँ प्रयुक्त होता था। 'जहाँ' के लिए **एम** सर्वनाम का मूल अंश **ए** अथवा **य** है जो **यत्र** में दिखाई देता है।

अक्कादी में घर के लिए **बीतु** शब्द है। अरबी रूप **बैत्** है। यह शब्द **भू** क्रिया के **भॅय्** जैसे विकल्प से बना है। **भू** का एक अर्थ निवास करना था जैसा कि **भुवन** और **भवन** शब्दों से प्रतीत होता है। अक्कादी में **वश्** क्रियामूल का व्यवहार बैठने के अर्थ में होता था। **वश्वत्, उस्वत्** (बैठा है) में **बश्, उस्** संस्कृत **बस्** के रूपान्तर हैं। सूर्य के लिए **शम्शु** में क्रियामूल **शम्** है। **कम्, कन्** आर्य-द्रविड़ भाषाओं में प्रकाश का अर्थ देने वाली धातुएँ हैं। **चम्** क्रिया के **शम्** रूपान्तर से **शम्शु** रूप बना। **चन्द्र** शब्द के निर्माण में वैसी ही प्रक्रिया है। अक्कादी **दूम** (अन्धकारमय) स्पष्ट ही **धूम** का प्रतिरूप है। **पुर** शब्द का द्रविड़ प्रतिरूप **उर, ऊर** समस्त पश्चिमी एशिया में फैला हुआ है। इसका प्रतिरूप **अलु** अक्कादी में प्रयुक्त होता था। **अमतु** (शब्द) में **अ** उपसर्ग है, मूल शब्द **मतु** फ्रांसीसी **मो** (लिखित रूप **मोत्**), इतालवी **मोत्तो** (शब्द) से तुलनीय है। तमिल **माट्टु** (शब्द), कन्नड़ **मातु, मात** (शब्द, भाषा) और तेलुगु **माट** इसी शृंखला में हैं। अक्कादी **अबु** (पिता) का मूल अंश वही है जो तमिल **अप्पु**, कन्नड़ **अप्प** का है। इसी का प्रतिरूप **अब्बा** है। अक्कादी क्रिया **बनु** का अर्थ बनाना है। **बनाना** के मूल अंश **बन** और **बनु** की समानता आकस्मिक प्रतीत होती है किन्तु इन दोनों का सम्बन्ध प्राचीन भारतीय क्रियामूल **पन्** या **पण्** से है। हाथ का अर्थ देने वाले शब्दों से करने, बनाने का भाव व्यक्त करने वाली क्रियाएँ सम्बद्ध हैं। तमिल **पणदि** (सृजन, कारीगरी), **पणिक्कन्** (कारीगर), **पण्णु** (बनाना, अलंकृत करना) में वही क्रिया है। तेलुगु **पनि** (कौशल, कर्म), **पन्नु** (तैयार करना) **पन्** क्रिया से सम्बद्ध हैं।

अक्कादी **बेल्** (शासन करना), **बेलु** (स्वामी) का एक सामी प्रतिरूप **बाल** भी रहा होगा। फिनीशिया के पुराने अभिलेखों में **जकरबाल्**, **इत्तोबाल्**, **एलिबाल्** जैसे शासकों के नाम बहुत आते हैं। **बेलु**, **बाल** आदि का सम्बन्ध संस्कृत क्रिया **पाल्** (पालन करना) से होगा या **बल** से। **बाल** **बअल** रूप में लिखा जाता था। अक्कादी **बेलु** और फिनीशियन **बअल** एक ही हैं। यह **बअल शमेम्** (आकाश का स्वामी) से ज्ञात होता है। **शमेम्** में वही **शम्** क्रिया है जो **शम्शु** में है। आर्यभाषाओं के समान सूर्य और आकाश दोनों के साथ प्रकाश का भाव जुड़ा हुआ है। तमिल क्रिया **आळ्** (शासन करना) भी इस सन्दर्भ में विचारणीय है। जैसे **बाल्** और तमिल **आळ्** रूप एक दूसरे से मिलते हैं, वैसे ही अक्कादी **बेलु** और तेलुगु **एलु** (शासन करना) एक दूसरे से मिलते हैं।

(ग) अरबी

सामी भाषाओं में ध्वनि-परिवर्तन की कुछ रीतियाँ वैसी ही हैं जैसी भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों की भाषाओं में मिलती हैं। अरबी की एक विशिष्ट ध्वनि **क़्** है। बहुत जगह यह ध्वनि सामान्य **क्** के स्थान पर प्रतिस्थापित होती है। अंग्रेजी शब्द **ब्यूरोक्रैसी** अरबी में **बीरुक़ातीय** है। यह शब्द फ्रांसीसी भाषा से आया है या अंग्रेजी से, यह प्रश्न गौण है; दोनों भाषाओं में **क्** है, **क़्** नहीं। अंग्रेजी शब्द **ड्यूक** अरबी में **दूक़्** है, **ऑर्गन्** **उर्ग़ून्** है, **बंगाल** **बंग़ाल्** है। अरबी में **प्** ध्वनि का अभाव है। स्वभावतः जहाँ यह ध्वनि मूल शब्दों में है, वहाँ अरबी में उसका रूपान्तर होता है। रूपान्तर की सीधी रीति उसे सघोष करने की है। संस्कृत **सप्त** का रूपान्तर **सब्अ्** है। शनिवार के लिए **सबत** रूप है जिसका मूल अर्थ है सातवाँ। हीब्रू भाषा में इसी से **शब्बाथ्** रूप बनता है। इसका सम्बन्ध **शाबथ्** क्रिया से जोड़ा जाता है जिसका अर्थ है विश्राम करना। वास्तव में यह **शाबथ्** क्रिया का अर्जित अर्थ है। **शब्बाथ्**—लैटिनरूप **सब्बतुम्**, अंग्रेजी रूप **सैबथ्**—का अर्थ है सातवाँ दिन जब धर्मानुसार यहूदियों को विश्राम करना चाहिए। **अश्व** के फ़ारसी प्रतिरूप **अस्प** के आधार पर बना परिचित शब्द **सिपाही** अरबी में **सिबाही** या **सबायि** है। दूध के लिए अरबी **हलब्** का सम्बन्ध कन्नड़ **पालु-हालु** से हो सकता है। उस स्थिति में **प्** ध्वनि **ह्** में परिवर्तित हुई मानी जायेगी। साँप के लिए अरबी **हाविन्** कन्नड़ **पावु-हावु** से मिलता-जुलता है। हिन्दी **हल** के समान अरबी **हरस्** का अर्थ हल जोतना है। इस शब्द का मूलरूप द्रविड़ भाषाओं का **पल्** ज्ञात होता है। खेती में काम आनेवाला नुकीले दाँतों का उपकरण तमिल में **पल्लि**, **पलकि** है, उससे काम करने की प्रक्रिया **पलुकु** है। कन्नड़ में उसी दाँतदार उपकरण को **हलिवे**, **हलकु**, **हलिके**, **हलुबे**, **हलुवे** कहते हैं। **पल्** शब्द का मूल अर्थ दाँत है। ग्रीक **पॉलॅओ** (हल चलाना) तुलनीय है।

ह् अरबी की बहुप्रयुक्त, उसके ध्वनितन्त्र में दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित ध्वनि है। **पो**, **पा** क्रियाएँ गतिसूचक रही हैं। जैसे गतिसूचक **गा** से **काल** शब्द बनता है जो पैर, मार्ग और समय तीनों का अर्थ देता है, वैसे ही **प्** ध्वनि ह् में परिवर्तित हो तो **हाल**,

हौल जैसे रूप बनेंगे। **हौल**—वर्ष, **हाली** —वर्तमान, **हौली** [illegible] आदि अरबी रूपों का निर्माण गतिमूलक क्रियाओं से वैसे ही हुआ है जैसे आर्य-द्रविड़ भाषाओं में **वार**, **वर्ष** आदि रूपों का निर्माण हुआ है। हाल का एक अर्थ बदलना भी है जो पुनः गतिसूचक है, परिवर्तन की **वर्** क्रिया के समान। इसी से अर्थ विस्तार करके **हाल्** शब्द का अर्थ अवस्था हुआ। **हार्** क्रिया का अर्थ बदलना, लौटना है। यह क्रिया **हाल्** का ही प्रतिरूप है। एक अन्य रूप **हान्** का अर्थ आना, पहुँचना है। वर्ष-सूचक **हौल्** के समान यहाँ **हीन्** का अर्थ समय है।

उत्तरपश्चिमी भारतीय भाषाओं तथा ईरानी क्षेत्र की कुछ भाषाओं में जैसे **स्** ध्वनि **ह्** में बदलती है, वैसे ही अरबी के कुछ शब्दों में **ह्** का मूलरूप **स** प्रतीत होता है। अस्तित्वसूचक **स** क्रिया से अरबी **हयाह्** (जीवन) रूप बनता है। इसी से जीवित प्राणियों को **हयवान्** कहा जाता है। अरबी **हयवान्** की रचना फ़ारसी के ढंग पर हुई है। अरबी **हदस्** का अर्थ है घटित होना। यह रूप **स** क्रिया के कृदन्त **सत्** उसके रूपान्तर **हद** से बना है। अरबी में **त्** और **स्** ध्वनियाँ कुछ शब्दों में एक दूसरे का स्थान लेती हुई दिखाई देती हैं। **हित्ती** शब्द अरबी में **हिस्सी** है। ग्रीक भाषा का **तउरोस्** (बैल) अरबी में **सौर्** है। कहीं-कहीं मध्यवर्ती स्पर्श ध्वनि का लोप प्राकृतों के समान होता है। **शृगाल** का अरबी प्रतिरूप **सुआल्** है। हिन्दी **सियार** और अरबी **सुआल** का विकास एक ही पद्धति से हुआ है।

बहने के लिए अरबी की एक क्रिया **जरा** है। इसी से **जारिन्** (प्रवाहित) रूप बनता है जो हिन्दी में **जारी** बनकर खूब प्रयुक्त होता है। **जरी** (मार्ग), **जर्रा** (धावक), **जरयान्** (प्रवाह, नदी) आदि शब्द उसी शृंखला के हैं। संस्कृत **क्षर्** के प्रतिरूप हिन्दी **झर्** के आदिवर्ण की महाप्राणता का लोप होने पर **जर्** शब्दमूल मिलेगा। एक मिलता-जुलता शब्द **जरफ़्** (प्रवाह) है जहाँ **ज्** ध्वनि सघोष सकार बन गई है। व्यक्ति, स्वभाव, अस्तित्व के लिए अरबी **ज़ात्** संस्कृत **जाति** का रूपान्तर है। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनमें **र्** ध्वनि के पहले तमिल के समान अतिरिक्त स्वर जोड़ा गया है। चावल के लिए **अरुज़्ज़** तमिल **अरिचि** (अथवा **अरिजि**) का रूपान्तर है। द्रविड़ भाषाओं में जैसे बहुधा आदिस्थानीय **ह्** का लोप हो जाता है, वैसे ही अरबी के अनेक रूपों में उसका लोप होता है। हल जोतने के लिए अरबी की एक क्रिया **हरस्** है, दूसरी क्रिया **अरस्**; किसान के लिए एक शब्द **हारिस्** है, दूसरा **अरीस्**। जब तक द्रविड़ और सामी गण किसी समय पड़ोसी न रहे हों, तब तक ऐसे ध्वनि-परिवर्तन कल्पनातीत माने जाएँगे। जैसे **क्षार** का फ़ारसी रूपान्तर **खार** है, वैसे ही **क्षर्** का अरबी रूपान्तर **ख़ल्** है। **ख़ल्** क्रियामूल से **ख़लास्** शब्द बनता है। इसका सम्बन्ध **स्खलन** वाली **स्खल्** क्रिया से जोड़ा जा सकता है; यह **स्खल्** स्वयम् **क्षर्** के आधार पर निर्मित है। **क्षर्** में एक ओर समाप्ति का भाव है, दूसरी ओर क्षरण की निरन्तरता के भाव से उससे शाश्वत प्रवाह का बोध भी होता है। इसी कारण अरबी **ख़ल्** से सम्बद्ध कृदन्त रूप अरबी **ख़लद** है जिसका अर्थ निरन्तर वर्तमान रहना है। शाश्वत जीवन के लिए इसी से **ख़ुल्द** शब्द बनता है।

नाग भाषाओं में जैसे पश्चिमोत्तरीय अघोष अल्पप्राण स्पर्श ध्वनि को महाप्राण बोलने की प्रवृत्ति है, जैसे तमिल की कुछ बोलियों में इन्डोयूरोपियन परिवार की अंग्रेज़ी जैसी भाषा में महाप्राणता का पुट देने की प्रवृत्ति है, वैसे ही अरबी के कुछ शब्दों में महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण ध्वनि का रूपान्तर जान पड़ती है। अरबी **ख़लत्** का अर्थ है दो चीजों को मिलाना। ठीक यही अर्थ तमिल क्रिया **कल** का है। संस्कृत **कला**, **कल्प** आदि का सम्बन्ध **कल्** शब्दमूल से है। **कल्प** में जैसे सृजन का भाव है, वैसे ही अरबी **ख़लक़्** का अर्थ है सृजन करना। इसी से **ख़ल्क़** (सृष्टि), **मख़लूक़** (सर्जित) आदि शब्द बनते हैं। इस तरह का अर्थ विस्तार आर्यद्रविड़ भाषाओं में भी है। कन्नड़ **कल्क**, **कलक** (मिश्रण), **कलिपसु** (मिश्रित करना) में **कल** क्रिया का मूल अर्थ स्पष्ट है। कुड़ुख भाषा का **खल्ना** (मिश्रित करना) हिन्दी खलबट्टा के साथ, अरबी **खल्** के निकट पहुँच जाता है। अरबी में एक दूसरा रूप **ख़ला** है जिसका अर्थ है खाली होना। इसी से अन्तरिक्ष के लिए **ख़लाअ**, एकान्त के लिए **ख़ल्व**, **तख़लिय** आदि रूप बनते हैं। यहाँ तमिल क्रिया **कल्लु** विचारणीय है जिसका अर्थ है खोदना, खाली जगह बनाना। **पारस्** का अरबी रूपान्तर **फ़ारिस्** है। हीब्रू में **पारस** है। फ़ारसी और अरबी दोनों में **फ़्** ध्वनि **उद्‌भव स्थान** ईरान की ओर संकेत करती है। काटने के लिए **कत्** आर्यद्रविड़ भाषाओं की बहुप्रयुक्त क्रिया है। मुँह से काटने के लिए तमिल और कन्नड़ में **कच्चु** क्रिया है। यदि **क्** ध्वनि महाप्राण संघर्षी रूप ले तो **खत्** क्रिया मूल बनेगा। अरबी में **खत्त** का अर्थ लकीर खींचना है। इससे **कतब**, **किताब** आदि रूपों की तुलना की जाए, तो लकीर खींचने और लिखने का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाएगा। मूल अर्थ काटने का है। जहाँ **त्** ध्वनि **स्** में बदलती है, वहाँ **कस्** क्रिया से **कसाई**, **कस्साब** जैसा शब्द बनता है। अरबी में एक क्रिया **माद्** है जिसका अर्थ है स्थानान्तरित होना। एक दूसरी क्रिया है **मास्** जिसका अर्थ है एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचना। दोनों परस्पर सम्बद्ध हैं और द ध्वनि **स्** में बदली है या **स्** ध्वनि द् में। **थोरियम्** अरबी **सोरियम्** है, **पैथोलौजी** अरबी में **बासोलौजी** है। अरमाइक **तलत्** (तीन) हीब्रू में **शलोश्** है।

अरबी शब्दतन्त्र में क्रियामूलों का वही महत्व है जो संस्कृत में है। धातु की पहचान व्यंजनों से होती है, स्वरभेद से वाच्यभेद सूचित किया जाता है यथा **कबर्** (उसने स्तुति की), **कुबिर्** (वह स्तुत हुआ)। अरबी धातुओं में कहीं चार व्यंजन होते हैं, कहीं तीन, कहीं इनसे भी कम। इन धातुओं के विश्लेषण से विदित होगा कि जिसे दो से अधिक व्यंजनों की धातु कहा जाता है, वह वास्तव में कृदन्त रूप है। समी ए. हन्ना और नजीब ग्रेइस् ने मिस्र में बोली जानेवाली अरबी की पाठ्यपुस्तक **बिगिनिंग् अरैबिक्** (लाइडन्, १९७२) में बताया है कि अरबी में क्रिया का सामान्य रूप भूतकालिक होता है यथा **फ़तह्** (जीत गया), **शिरिब्** (पी गया)। भूतकालिक रूप का अर्थ है भूतकालिक कृदन्त। कृदन्त से धातु को अलग करने पर आर्य-सामी क्रियामूलों की समानता पहचान में आयेगी।

संस्कृत **तृषा**, **तृप्ति**, **तीर्थ**, अंग्रेज़ी **ड्रिंक्** (पीना) का **तेर्** क्रियामूल अरबी में **शिर्** बना। उससे भूतकालिक **शिरिब्** की रचना हुई। **नीर** और **शराब** एक दूसरे से कोसों

दूर लगते हैं पर हैं एक ही कुल के। ब्राहुइ दीर् (जल) का रूपान्तर है तमिल नीर्। पानी और पीना अर्थ की दृष्टि से परस्पर सम्बद्ध रूप हैं। शिर् के विकल्प शर् से शराब शब्द बना। बलग् (पहुँचना) का आधार बर्, बल् है। कश्मीरी वल् (आना), पुरानी अंग्रेज़ी के वॆअल्कन्, जर्मन् वल्कॆन्, आधुनिक अंग्रेज़ी वाक् (चलना) में वल् क्रियामूल है, जर्मन अंग्रेज़ी रूपों में कृदन्त चिह्न क भी है। कन्नड़ वर् (आना, पहुँचना), में व् के बदले ब् है। अरबी बदह् (आना), बदा (घटित होना), बदवी (घुमन्तू) का आधार बर् का कृदन्त रूप बद है। हिन्दीभाषी किसान कहते हैं, तकदीर में जो बदा होगा सो होगा; यहाँ प्राचीन भारतीय बर् क्रिया अरबी कृदन्त के माध्यम से फिर अपने देश लौटकर आई है। बर् क्रिया से संस्कृत वात, फ़ारसी बाद (वायु), अरबी बतीन् (मोटा) रूप बने। संस्कृत क्रिया वस् का अर्थ कपड़े पहनना भी है जिससे वास, वस्त्र शब्द बनते हैं। वास में लि प्रत्यय जोड़कर अरबी लिबास् बना। वस्त्र का प्रतिरूप, सकार को सघोष करते हुए, वज़्ज़ है। वस्त्र के स्-त् मिलकर संयुक्त ध्वनि स्स् बने, फिर ज़्ज़्। इसीसे कपड़े का व्यापारी वज़्ज़ाज़, हिन्दी रूप में बजाज, कहलाया। उद्यान के लिए अरबी बुस्तान् स्पष्ट ही ईरानी से उधार लिया हुआ शब्द है। द्रविड़ भाषाओं में फूल के लिए जो पू शब्द प्रयुक्त होता है, वह संस्कृत पुष्प में, फ़ारसी बोस्ताँ के बो में, अरबी बुस्तान् के बु में विद्यमान है। खम्भे के लिए अरबी उस्तुवान् में स्थ् ध्वनि वैसे ही स्त् में परिवर्तित हुई है जैसे स्थान का स्थ् बुस्तान् के स्त् में परिवर्तित हुआ है।

चमकने के लिए अरबी शब्द अलक़् में क् कृदन्त प्रत्यय है। इस शब्द का निर्माण वैसे ही हुआ है जैसे प्रकाशसूचक संस्कृत अर्क का। अर् क्रियामूल के वैकल्पिक रूप अल् से हिन्दी के अलाव आदि शब्द बने हैं। निर्माण करने के लिए अरबी क्रिया बना है। इसी से बिना (इमारत), बनना (निर्माता), मबनीय (निर्मित) आदि शब्द बनते हैं। अरबी बना और हिन्दी बनाना क्रिया के मूल अंश बन् का सम्बन्ध पन् या पण् से है। सर्प के लिए अरबी में हय्य और हाविन् शब्द हैं। इसके कन्नड़ प्रतिरूप पावु, हावु हैं। संस्कृत धर्म की घर् क्रिया के हर् प्रतिरूप से हर्ष, हर आदि संस्कृत शब्द बने हैं। इस हर् क्रियामूल से अरबी में बहुत से शब्द बने हैं। हर्र्—गरमी, गरम होना; हर्रार्—ऊष्मा; हरूर्—गरम हवा; हर्रान्—गरमाया हुआ, प्यासा; हरिब्—क्रुद्ध होना; हर्ब्-प्रज्ज्वलन; हरक़्—अग्नि, जलाना; हरीक़्—अग्नि।

घटित होने के लिए हदस् क्रिया में मूल अंश हद् भारतीय सत् का प्रतिरूप है। जो घटित हो चुका है वह हादिसा है।

अरबी में सार्—चलना (सैर करना), साल्—प्रवाहित होना, सैल्—सरिता, सैलान्—प्रवाहित, ये सारे शब्द गतिसूचक हैं; नदी और प्रवाह से इनका सम्बन्ध वैसा ही है जैसा सर्, सरिता, सरस्वती का है। शासन करने के लिए सास् स्पष्ट ही शास् का प्रतिरूप है। सियासत (राजनीति), सियास् (शासन) उसी सास् से सम्बद्ध हैं। वर्ष के लिए सन् सूर्यवाचक अंग्रेज़ी सन्, लैटिन सोल् और संस्कृत सूरि, सूर्य से सम्बद्ध हैं।

सूर्य के लिए है शम्स्, मोमबत्ती के लिए शमअ़, दोनों चमकने का अर्थ देने वाली शम् क्रिया से बने हैं। मूल क्रिया कम् है जिसका प्रतिरूप कन् अरबी क़न्दील

और अंग्रेज़ी **कैन्डल्** में है। **कन्** से **चन्** और पुनः इससे **शम्** रूप बना। **ज़ामि**—प्यासा, **ज़मि अ**—प्यासा होना **आचमन** की **चम्** क्रिया के आधार पर बने हैं। भागने के लिए **फ़र्** आर्य-द्रविड़ **पर्** क्रिया से बना है। सुपरिचित **फ़रार** इसी क्रिया से सिद्ध होता है।

कतब् (लिखना), **कत्तिब्** (लिखाना) में कत् क्रियामूल है जिसका अर्थ है काटना। काटकर अक्षर अंकित करने की क्रिया **कतब्** हुई। काटने के लिए अरबी में अनेक शब्द हैं : **क़रत्, क़द्, क़सब, क़त्त्, क़ज्ज़, क़तअ, क़लम्**। इन सबका आधार **कर्त्** या **कत्** है। **क़त्ल** में यह **कत्** है। संस्कृत **कर्तन** (कटाई), हिन्दी **काटना**, लैटिन **कअेंदो** (काट डालना), तमिल **कत्ति** (छुरी), फ़ारसी **कुश्तन्** (काटना) सम्बद्ध रूप हैं।

लग़ा (बोलना), **लुग़ा** (भाषा), **लक़ब** (पदवी), ग्रीक **लॅगो** (कहना), संस्कृत **ऋक्** (स्तुति), रूसी **रेच्** (भाषण) सम्बद्ध रूप हैं। अरबी **हम्द** (स्तुति करना) से तुलनीय है ग्रीक **हुम्नॉस्** (गान)। संस्कृत **सामन्** (स्तवन, गायन) के क्रियामूल **सम्** का रूपान्तर होगा **हम्**। **कबर** (उसने स्तुति की) की **कब्** धातु संस्कृत **कवि** की **कव्** धातु के समान है। अरबी **लमअ** (चमक), **लम्मा** (चमकीला), **लमहा** (प्रकाश) में **लम्** क्रिया-मूल **दामिनी** के **दम्** का रूपान्तर है और ग्रीक **लम्पो** (चमकना), **लम्पस्** (मशाल), अंग्रेज़ी **लैम्प** में विद्यमान है। अरबी **अर्द** (धरती), जर्मन **ॲर्दॅ**, अंग्रेज़ी **अर्थ्** का मूल अर्थ होगा जुती हुई भूमि। यहाँ **अर्** क्रियामूल वही है जो लैटिन **अरो** (जोतना) में है। द्रविड़ भाषाओं में तुलु **उर** (जुताई), तमिल **उऴ्** (जोतना) और संस्कृत **उर्वर** तुलनीय हैं। अरबी **नदा** (बुलाना), **निदा** (चिल्लाना) का सम्बन्ध संस्कृत **नद्** (शब्द करना) से है। **नशिक़** (सूँघना), **नश्क़** (साँस खींचना) का सम्बन्ध संस्कृत **नासा** से है।

लैटिन **अक्विल** (बाज पक्षी), अरबी **उक़ाब** (उप०) का आधार तमिल क्रिया **उक** या **उग** (ऊँचे उड़ना) हो सकती है।

संस्कृत **सः** (वह) के समानान्तर पुरानी अक्कादी में **सुअ** (पु०) है। स्त्रीलिंग रूप **सिअ** है। बाद की अक्कादी (श् वाली बोली) में **शुअतु** और **शिअति** रूप हैं। फिनीशिया की प्राचीन भाषा में हू, हे के साथ **हूअत्, हेअत्** रूप हैं। अरबी **हु** का पूर्व-रूप **सु** था। ग्रीक भाषा का निर्देशक सर्वनाम **हो** इसी शृंखला का रूप है। **हु** के **ह्** का लोप होने पर तमिल का मध्यवर्ती वस्तुसूचक **उ** सर्वनाममूल प्राप्त होता है। अरबी का उत्तम पुरुष बहुवचन रूप **ना** वही है जो तमिल का एकवचन **नान्** है और संस्कृत का बहुवचन **नः** (हमारा) है।

संस्कृत के समान अरबी संश्लिष्ट पद्धति की भाषा है। नाम शब्दों के साथ कारक-चिन्ह जुड़ता है। आर्यभाषाओं में जैसे कारक-चिन्ह मूल शब्द के बाद आता है, वैसे ही सम्बन्धक उसके बाद आता है। अरबी में, ग्रीक-लैटिन के समान, कारक-चिन्ह तो शब्द के बाद आता है किन्तु सम्बन्धक पहले आता है। संश्लिष्ट भाषा की मूल प्रकृति किसी अन्य प्रभाव से यहाँ बदलती दिखाई देती है। कम्बोज भाषा में अंग्रेज़ी अरबी के समान पूर्व-सम्बन्धक (प्रिपोज़ीशन) होता है। कोल, तुर्क, मंगोल आदि भाषाओं के समान अरबी में संज्ञा में सम्बन्धवाचक सर्वनाम जोड़ा जाता है यथा **वलद** (पुत्र), **हु** (वह), **वलदहु** (उसका बेटा)। इसी पद्धति के अनुरूप अनिश्चयार्थी संकेतक मूल

शब्द के बाद आता है यथा **मलिकुन्** (एक राजा)। इसके विपरीत निश्चयार्थी संकेतक, ग्रीक, जर्मन, अंग्रेज़ी की तरह, शब्द के पहले आता है यथा **अल् बैतु** (वह मकान)। यहाँ भी दो पद्धतियाँ सक्रिय दिखाई देती हैं। खादिमुत्तबीबि (वैद्य के चाकर) में मुख्य शब्द **ख़ादिम** (चाकर) पहले आया, **उत्तबीबि** (वैद्य के) विशेषक पद है, मूल शब्द के बाद आया है। अंग्रेज़ी में इसी तरह **सर्वेन्ट्स् ऑफ़ द डॉक्टर्** पदरचना होगी।

अरबी क्रिया के बाद सर्वनाम-चिन्ह जोड़ती है। कर्ता के अलावा ये सर्वनाम-चिन्ह कर्म की सूचना भी देते हैं : **शकर्नि** (उसने मुझे धन्यवाद दिया), **शकरकु** (उसने तुम्हें धन्यवाद दिया), **शकरुहु** (उसने उसे धन्यवाद दिया)। यहाँ हम मगही-मैथिली और कोल भाषाओं के क्रियापद-संसार में पहुँच जाते हैं। अरबी क्रिया हिन्दी-तमिल के समान लिंगभेद भी सूचित करती है : **कतब्** (पुरुष ने लिखा), **कतबत्** (स्त्री ने लिखा)। आदेशात्मक रूपों में लिंगभेद बना रहता है; **तिक्तिब्** (लिखो; पुरुष से), **तिक्तिबि** (लिखो; स्त्री से)। ऐसा भेद कृदन्त-प्रधान भाषाओं में सम्भव होता है। संस्कृत और तमिल के समान अरबी में क्रिया के बिना वाक्य-रचना हो सकती है यथा **अल् बैतु कबीरुन्** (मकान बड़ा है)।

भारतीय और सामी भाषाओं में शब्दतन्त्र के साथ संरचना की भी अनेक समानताएँ हैं।

३. तुर्क-मंगोल और फ़िनोउग्रियन परिवार तथा भारत

(क) तुर्की

एशिया का एक महत्वपूर्ण भाषा परिवार तुर्क-मंगोल है। कुछ लोग इसे अल्ताई परिवार कहते हैं। तुर्की और मंगोल इस परिवार की दो प्रमुख भाषाएँ हैं। तुर्कों और मंगोलों से भारत का गहरा सम्बन्ध रहा है। उस सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए इस परिवार को तुर्क-मंगोल कहा; अल्ताई की अपेक्षा यह नाम भारत-वासियों के लिए अधिक अर्थवान् होगा। कुछ विद्वान् फिनलैण्ड आदि की भाषाओं को सम्बद्ध मानकर यूराल-अल्ताई परिवार की कल्पना करते हैं। यूरालिक अथवा फिनो-उग्रियन भाषा-समुदाय को तुर्क-मंगोल समुदाय से अलग रखना ज्यादा अच्छा है, दोनों का पारिवारिक सम्बन्ध बहुतों को स्वीकार नहीं है।

भारतीय भाषाई सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए तुर्की भाषा का अध्ययन करते समय कुछ रोचक तथ्य सामने आते हैं। अनेक आर्य-द्रविड़ भाषाओं के समान तुर्की उस क्षेत्र में पड़ती है जिसमें तालव्यीकरण की प्रवृत्ति प्रबल है। **क्** और **त्** को **च्** तथा **ग्** और **द्** को **ज्** बनाने की प्रवृत्ति न केवल आर्य-द्रविड़ भाषाओं में है वरन् इन्डो-यूरोपियन परिवार की भाषाओं में—अंशतः यथा इटालियन और अंग्रेज़ी में, और बहुशः यथा रूसी में—भी है। इससे तालव्यीकरण का पुराना प्रभावक्षेत्र पहचानने में सहायता मिलती है। यह क्षेत्र एक ओर भारत की आर्य-द्रविड़ भाषाओं को समेटता है और उत्तरी तथा पश्चिमी प्रदेश उसके केन्द्र में हैं, अर्थात् भारत की उत्तरपश्चिमी भाषाएँ उससे अधिक प्रभावित हैं, दूसरी ओर वह तुर्क और स्लाव समुदायों को अपने भीतर

समेटे है। उल्लेखनीय है कि तालव्यीकरण की प्रवृत्ति से सभी द्रविड़ भाषाएँ समान रूप में प्रभावित नहीं हैं; इस प्रवृत्ति से कन्नड़ कम प्रभावित है, तमिल अधिक। कन्नड़ में करना क्रिया के लिए **कंय्** रूप है तो तमिल में **चेय्**।

यदि तालव्यीकरण का वृत्त इतना बड़ा है कि उसमें अनेक भाषा-समुदाय सिमट आते हैं तो इस बात की काफी सम्भावना रहती है कि एक ओर जहाँ **क्** ध्वनि **च्** रूप में ग्रहण की गई हो, वहाँ दूसरी ओर **च्** ध्वनि भी पड़ोसी अतालव्य क्षेत्र में **क्** रूप में ग्रहण की गई हो। जब भाषातत्वों के पूर्व से पश्चिम की ओर प्रसार के अनेक प्रमाण मिलें तो इस सम्भावना को ध्यान में रखना होगा कि **च्** ध्वनि वाले पूर्वी शब्द पश्चिमी भाषाओं में, यथा ग्रीक और लैटिन में, **क्** रूपान्तर के साथ ग्रहण किये गये हों।

भारतीय भाषाओं में तालव्य और मूर्धन्य ध्वनि-प्रवृत्तियों के केन्द्र प्रायः एक ही साथ सक्रिय दिखाई देते हैं; जो क्षेत्र कश्मीरी से लेकर तमिल तक तालव्यीकरण का है, वही मूर्धन्यीकरण का है। किन्तु तुर्की इस मूर्धन्यीकरण वाले क्षेत्र से बाहर है; तुर्की के अलावा स्लाव समुदाय तथा फ़ारसी भी इससे बाहर हैं। साथ ही सिन्धी, गुजराती के साथ पश्तो इस क्षेत्र के भीतर है। केवल जर्मन-समुदाय की कुछ भाषाएँ इस क्षेत्र के निकट दिखाई देती हैं। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि तालव्य और मूर्धन्य ध्वनियों के केन्द्र भारत से बाहर काफी अलग हैं, बृहत्तर भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में वे एक दूसरे से मिल जाते हैं। अतः इन दोनों वृत्तों के मुख्य केन्द्र इसी भाग में हों, इसकी पर्याप्त सम्भावना है।

तुर्क-मंगोल समुदाय की पड़ोसी द्रविड़ भाषाएँ मूर्धन्यीकरण से बहुत प्रभावित हैं किन्तु तुर्की आदि पर यह प्रभाव नहीं है, यह तथ्य महत्वपूर्ण है। इससे विदित होता है कि तुर्की की अपेक्षा द्रविड़ भाषाएँ आर्यभाषाओं से अधिक सम्बद्ध हैं, तथा मूर्धन्यीकरण क्षेत्र तुर्की-फ़ारसी-स्लाव से कटा हुआ अलग है। तालव्यीकरण और मूर्धन्यीकरण का अध्ययन एक साथ करें, तभी सही निष्कर्ष तक पहुँचेंगे।

हिन्दी में हम **पिनकची, तबलची, मशालची** जैसे रूपों से परिचित हैं। तुर्की में **कपि** (द्वार) से **कपिची** (द्वारपाल), **यलन्** (झूठ) से **यलञ्ची** (झूठा), **इनत्** (हठ) से **इनत्ची** (हठी) आदि रूप बनते हैं। तुर्की में च-वर्गीय ध्वनियों का व्यवहार होता है, यह बताने के लिए ये उदाहरण काफी हैं।

तालव्यीकरण की एक उल्लेखनीय विशेषता तुर्की में यह है कि कुछ स्वरों के साथ **क्**, **ग्** के साथ **य्** अर्ध स्वर जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार अरबी **कातिब, मालूम, मज़्कूर** तुर्की में **क्यातिप्** (सचिव), **माल्यूम, मॅज़्क्यूर्** (पूर्वोक्त) बोले जाते हैं। यह प्रवृत्ति तुर्की को कश्मीरी से जोड़ती है।

मज़्कूर् के तुर्की रूपान्तर में प्रथम वर्ण का अकार बदलकर अॅकार हो गया है। इसी प्रकार अरबी **मज़्लिस्, आलम्** (संसार) **कलम, तासीर** बदलकर तुर्की में **मॅज़्लिस्, आलॅम्, कलॅम्**, तेसीर हो गये हैं। **अ** को **अॅ** वत् बोलने की प्रवृत्ति कश्मीरी और तमिल के अलावा कौरवी भाषा में भी है। द्रविड़ और तुर्की में एक महत्वपूर्ण भेद

यह है कि द्रविड़ भाषाओं में, विशेषतः तमिल में, शब्द के अन्त में या तो नासिक्य ध्वनि होगी या स्वर अथवा अर्ध स्वर होगा। इसे हम शब्द-रचना की अजन्त और अर्ध अजन्त प्रक्रिया कह सकते हैं। जहाँ शब्द के अन्त में स्वर हो वहाँ वह अजन्त हुआ, जहाँ **य्, र्, ल्, व्, स्, न्** आदि ऐसी ध्वनियाँ हों जिनमें स्पर्शतत्व क्षीण है, वहाँ शब्द अर्ध अजन्त हुआ। जहाँ शब्द के अन्त में स्पर्श ध्वनि हो, वहाँ वह हलन्त हुआ। अरबी **किताब्** तुर्की में **किताप्** है, संस्कृत **रंग** तुर्की में **रंङ्क्** है। शब्द-रचना की हलन्त पद्धति तुर्की को फ़ारसी और कौरवी से जोड़ती है, द्रविड़ भाषाओं से अलग करती है। संस्कृत में कौरवी प्रवृत्ति का आंशिक प्रभाव है। संस्कृत के अजन्त शब्द मानक हिन्दी में हलन्त बोले जाते हैं, इसका मुख्य कारण कौरवी प्रभाव है। तुर्की और फ़ारसी के सान्निध्य से यह प्रभाव पुष्ट हुआ है।

रंग और **किताब्** के **ग्** और **ब्** तुर्की में अघोष **क्** और **प्** रह गये हैं। तुर्की के समान स्लाव और जर्मन समुदायों में अन्त्य सघोष व्यंजन को अघोषवत् बोलने की प्रवृत्ति बलवती है। जब तुर्की में कहना होगा उसकी किताब, तब शब्द के अन्त में सर्वनाम-चिन्ह **इ** जोड़ेंगे और स्वरसंयोग होते ही **प** सघोष हो जायगा, रूप बनेगा **किताबि**। यह प्रवृत्ति संस्कृत से मिलती-जुलती है। **शरत् काल** में **शरद्** का **द्** अघोष है, अघोष **क्** के पड़ोस में होने से, किन्तु **शरदागम** और **शरद्गत** में सघोष है, आ स्वर और सघोष **ग्** के सान्निध्य से कारण।

तुर्की और द्रविड़ भाषाओं में यह समानता है कि शब्द के आरम्भ में सामान्यतः दो व्यंजन साथ नहीं आते। अंग्रेज़ी **क्लब्** तुर्की में **कुलुप्** और **क्लुप्** दोनों रूपों में बोला जाता है। इसी प्रकार **स्लाव** शब्द तुर्की में **इस्लाव्** है जैसे अंग्रेज़ी **स्कूल्** हिन्दी में **इस्कूल्** बोला जाता है। तुर्की में, प्राकृत के समान, कुछ शब्दों में मध्यवर्ती व्यंजन का लोप करने की प्रवृत्ति है। फ़ारसी **अगर** और **दीगर** (अन्य) तुर्की में **अंयेंर्** और **दीयेंर्** बोले जाते हैं। यह प्रवृत्ति तुर्की में सीमित है, द्रविड़ और जर्मन समुदायों में अधिक है। यह मूलतः स्पर्श ध्वनि को संघर्षी रूप देने की प्रवृत्ति है। **ग** पहले **ग़** हुआ, फिर **अ** अथवा **य** ने उसका स्थान लिया।

तुर्की में **फ़्** ध्वनि का चलन काफी है, द्रविड़ भाषाओं में **फ्** या **फ़्** का अभाव है। किन्तु महाप्राण ध्वनियों का व्यवहार तुर्की की विशेषता नहीं है। **फ़्** अधिकतर अरबी-फ़ारसी से आये शब्दों में देखा जाता है। उज़बेकिस्तान के तुर्की बोलने वाले अरबी **फ़न्** (कला) को **पन्**, फ़ारसी **हफ़्ता** को **हप्ता** बोलते हैं। पुराने समय में उनके मुँह से **फ़्** को **प्** सुनने के कारण फ़ारसी के जानकारों ने **उजबक** शब्द को मूर्ख का पर्याय बनाया होगा। **ख़्** ध्वनि फ़ारसी और रूसी में खूब प्रयुक्त होती है किन्तु तुर्की में वह अपना अल्प स्पर्श-तत्व खोकर बहुधा **ह्** हो जाती है; अरबी **ख़ला** (अन्तरिक्ष, खाली जगह), **ख़ाला** (मौसी), **ख़ल्क़्** (जनता), **ख़बर्** तुर्की में **हला**, **हाला**, **हल्क्**, **हबेंर्** हो गये हैं।

तुर्की और द्रविड़ भाषाओं में एक बहुत बड़ी समानता यह है कि इनमें कोई शब्द **र्** और **ल्** से आरम्भ नहीं होता। यह इनकी मूल प्रवृत्ति है और इसके अनेक

अपवाद हैं। तमिल इरण्डु (दो) बोलचाल में रॅण्डु है; इससे विदित होगा कि तमिल में पुरानी प्रवृत्ति कितनी क्षीण हो गई है। कर्णाटक और आन्ध्रप्रदेश में रॅड्डि नाम के भू-स्वामी देश में विख्यात हैं। र्-ल् से शब्द आरम्भ न करना, करना तो इनके पहले किसी स्वर को जोड़ देना, यह प्रवृत्ति ग्रीक, केल्त आदि समुदायों में भी अंशतः पायी जाती है और स्पेन तथा फ्रान्स के कुछ भागों में बोली जाने वाली बास्क भाषा में भी वह विद्यमान है। निस्सन्देह इन भाषा-समुदायों में इस प्रवृत्ति का होना आकस्मिक घटना नहीं है और इसका केन्द्र प्राचीन द्रविड़-तुर्क क्षेत्रों या उनके पड़ोस में होना चाहिए।

तुर्की में स्, श् ध्वनियों का व्यवहार होता है, तमिल को छोड़कर अनेक द्रविड़ भाषाओं में ये ध्वनियाँ विद्यमान हैं। तमिल में भी शिक्षित जनों की भाषा में श् का व्यवहार होता है यथा भाष् का तमिल प्रतिरूप पेशु (बोलना) भी है। दक्षिण भारत में शिव के उपासकों की संख्या काफी है और वे शिव को शिव ही कहते हैं। इसी प्रकार अनेक तमिल नामों में स्वामी की खपत काफी है। फिर भी स्, श् को च् या छ् बनाने की प्रवृत्ति प्राचीन आर्य-द्रविड़ क्षेत्रों में काफी व्यापक रही है। गम् के प्रतिरूप गश् का गच्छ् रूपान्तर, प्रश्न की प्रश् क्रिया का प्रच्छ् रूपान्तर इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। यह प्रवृत्ति जहाँ-तहाँ तुर्की में भी है। संस्कृत इष का अर्थ है पेय। इसकी आधारभूत इष् क्रिया का तुर्की रूपान्तर इच् (पीना) है।

तुर्की शब्दभण्डार पर अरबी-फ़ारसी का गहरा असर है; तुर्की जातीयता का भाव जैसे-जैसे प्रबल हुआ, तुर्कों ने वैसे-वैसे इस प्रभाव से मुक्ति पाई। तुर्की से आर्य-भाषाओं का सम्बन्ध पुराना है और कुछ बातों में यह आर्य-द्रविड़ भाषाओं के सम्बन्ध से मिलता-जुलता है। पुरानी तुर्की में किल् (करना) क्रिया का व्यवहार होता था; इससे सम्बद्ध है कॉल् (बाँह)। करोति (करता है) और कर (हाथ) संस्कृत में सम्बद्ध रूप हैं। इसी प्रकार कन्नड़ कॅय् का एक अर्थ है करना, दूसरा अर्थ है हाथ। कर् के र् का एक रूपान्तर य् है, दूसरा है ल्। तुर्की किल् और कॉल् के पूर्वरूप हुए, कॅर् और कॉर्। इस कॉर् से संस्कृत कुरु और कॅर् से कृणु रूप बनते हैं।

संस्कृत गम् का प्रतिरूप गर् है जो गर्त (रथ) में विद्यमान है। जैसे कर् का तुर्की रूपान्तर किल् है, वैसे ही गर् का रूपान्तर गॅल् है। गॅल् का अर्थ है आना जैसे गम् के अंग्रेजी रूपान्तर कम् का अर्थ है आना। तुर्की गिर् का अर्थ है प्रवेश करना; सम्भव है, इसका सम्बन्ध भी उक्त गर् से हो। जाने के लिए गित् क्रिया गिर् का कृदन्त रूप है। संस्कृत में गर् के प्रतिरूप कर् से काल (समय) बना; तुर्की में कॅरॅ का अर्थ है समय, अवसर। मल्तो कलॅ (जाना), कुड़ुख कला (जा), तमिल काल् (पैर), पर्जि केल् (उप०) उसी गमनसूचक कर् से बने हैं। इनसे मंगोल रूप कोल् (पैर) और हिन्दी गोड़ तुलनीय हैं। यहाँ संस्कृत काल का फिन प्रतिरूप कॅल्लॉ (समय) भी उल्लेखनीय है।

आर्य-द्रविड़ भाषाओं की एक प्राचीन क्रिया वर् है; संस्कृत वर्तमान में यह वर् है, वही तमिल वरु (आना, घटित होना) है। तुर्की वर् का अर्थ है पहुँचना।

मलयालम **वरुग**, कन्नड़ **बर्** का अर्थ पहुँचना भी है। **बर्** का एक तुर्की रूपान्तर है **ऑल्** (होना, घटित होना); इसे तमिल **वरु** का प्रतिरूप मानना चाहिए। जैसे संस्कृत में **वात**, **वायु** की **वा** का प्रतिरूप **या** क्रिया है, वैसे ही तुर्की में **बर्** का प्रति **युरु** (चलना) है। इसी **युरु** के प्रतिरूप **यॉल्** से तुर्की **यॉल्चु** (यात्री) बना; संज्ञारूप **यॉल्** का अर्थ है मार्ग जैसे तमिल **वरवु** और **वारि** का अर्थ है मार्ग। जाना, गुज़रना, ऐसी क्रियाएँ मरने का अर्थ भी व्यक्त करती हैं। तुर्की **ऑम्रॅलुम्** (मृत्यु) का आधार वही **बर्**, **बल्** क्रिया है; इससे तुलनीय है तमिल **ऑळि** (मरना)।

जो क्रियाएँ चक्रगतिसूचक हैं, वे बहुधा जनसमुदाय, लोगों के एकत्र होने का अर्थ भी देती हैं। तमिल **उरु** का अर्थ है होना, घटित होना; **उर** का अर्थ है निकट आना, भीड़ लगाना। कन्नड़ **ऑट्टु** का अर्थ है एकत्र होना। एकत्र होने की क्रिया मैत्री और शत्रुता दोनों भावों से होती है। तमिल **ऑट्टिनर्** का अर्थ है मित्र, **ऑट्टलन्** का अर्थ है शत्रु। कन्नड़ **ऑड्डन** का अर्थ है फौज। यहाँ हम **बर्** क्रिया का अर्थ-प्रसार देखते हैं। जनता को गोलबन्द करना उसे एकत्र करना है। **बर्** के **ऑर्** रूपान्तर से कन्नड़ **ऑट्टु** और **ऑड्डन** रूप बनते हैं; इसी **ऑर्** से तुर्की का **ऑर्दु** (फौज) रूप बनता है। **ऑर्दु** का अर्थ फौज क्यों हुआ, यह हम **ऑर्** के एकत्र वाले अर्थविस्तार से समझते हैं। यह तुर्की **ऑर्दु** अब भारत में भाषा के लिए प्रयुक्त होने वाला **उर्दू** शब्द है।

द्रविड़ भाषाओं में कुटुम्बीजनों के लिए प्रयुक्त शब्दों के पहले एक सर्वनामचिन्ह लगाने की प्रथा है। तमिल **कङ्ङइ** माने छोटी बहन, **ऍङ्ङइ** हुई मेरी छोटी बहन, **उङ्ङइ** हुई तुम्हारी छोटी बहन। **तङ्ङइ** का मूल अर्थ होगा उसकी छोटी बहन; अब यह अन्य पुरुष वाला अर्थ क्षीण हो गया है। **तंगइ** के समान **तम्बि** (छोटा भाई) रूप है। तमिल **तात्ता** (पितामह) में **त** सर्वनामचिन्ह है, इसका ज्ञान तमिल **अत्तन्** (पिता) से होता है। **तात्ता** और **अत्तन्** का सम्बन्ध पहचानने से संस्कृत **तात** की व्युत्पत्ति समझ में आती है। कन्नड़ में **तात** पिता और पितामह दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। **तात** का **त** सर्वनामचिन्ह है। तमिल **तम्बि** और **तङ्ङइ** के समान पिता के लिए **तन्दइ** शब्द है। **ऍन्दइ** हुए मेरे पिता, **उन्दइ** हुए तुम्हारे पिता, **तन्दइ** उसके पिता, फिर केवल पिता। **तन्दइ** का तेलुगु प्रतिरूप है **तण्ड्रि**।

तुर्की में ईश्वर के लिए, अरबी और फ़ारसी से भिन्न, **तन्रि** शब्द है। यह शब्द तुर्की के किसी क्रियामूल से सिद्ध होता दिखाई नहीं देता। कन्नड़ **तन्दॅ** का **द्** जब **र्** रूप में ग्रहण किया जायगा, तब उसका सीधा रूपान्तर **तन्रि** होगा। **तन्दॅ** या **तण्ड्रि**, इन रूपों से **तन्रि** का सम्बन्ध निश्चित है। पिता के लिए आदरसूचक शब्द तुर्की में ईश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ; वह उस भाषा में द्रविड़ स्रोतों से पहुँचा है, इसमें सन्देह नहीं।

तमिल **अन्नइ** (माता) तुर्की में **अन्नॅ**, **अना** (उप०) है। तमिल में **अन्नइ** के साथ **तन्नइ** भी है; तुर्की में **तन्नइ** नहीं है। तुर्की **तन्रि** का द्रविड़ उद्गम तमिल **तन्नइ** से पुष्ट होता है।

तमिल **अत्तन्** का एक प्रतिरूप **अप्पन्** है। **तात** के समान इसका व्यवहार पुत्र के लिए भी होता था। कुइ **आपाँ** (पुत्र), कन्नड़ **अप्प** (पिता) एक ही शृंखला के शब्द

हैं। अप्पन् का सर्वनामचिह्नित तमिल रूप तगप्पन् (पिता) है, गोंडी में एक रूप मइपो (मेरे पिता) है। अब यदि प या ब जैसा कोई सर्वनामचिह्न हो तो अप्पन्, आप्पा, आपाँ, अप्प से पप्पन्, बप्पन्, पाप्पा, बाप्पा, पापाँ, बापाँ जैसे रूप बनेंगे। मेरा कहना है कि इस तरह का सर्वनामचिह्न था।

आई, माई, ताई, बाई शब्दों पर विचार करें। मराठी आदि का आई (माता) हिन्दी माई और ताई का आधारभूत शब्दमूल है। द्रविड़ व्युत्पत्तिकोश में तमिल आयि की शृंखला के साथ असमिया, बंगला, उड़िया, सिन्धी, गुजराती और मराठी के आई, आइ रूपों का उल्लेख है। तमिल, कन्नड़ आदि में त सर्वनामयुक्त ताय्, तायि रूप भी है। कुवि में माइय (मेरी माँ) रूप भी है। अब आई, ताई और माई के आपसी सम्बन्धों के बारे में सन्देह न होना चाहिए। मराठी में माता अथवा अपने से बड़ी स्त्री के लिए सम्मानसूचक संबोधन बाई है। हिन्दी प्रदेश के पश्चिमी भाग में, विशेषतः बुन्देलखण्ड में, माता के लिए बाई शब्द का व्यवहार होता है। तमिल में जैसे स्त्रियों के नामों के साथ अम्मा लगाने का चलन है, वैसे ही मराठी में बाई शब्द लगाया जाता है। बाई का संक्षिप्त गुजराती रूपान्तर बा है। ब के सर्वनामचिह्न होने में कोई सन्देह नहीं है। द्रविड़ भाषाओं में ताई के समान बाई के समकक्ष रूप का व्यापक चलन नहीं है। किन्तु कोलमि बे (माँ) सम्बद्ध रूप अवश्य है।

आई और बाई का सम्बन्ध जान लेने पर अप्पन् और बप्पा, बाप, बापू का सम्बन्ध समझ में आ जाता है। पितामह के लिए उत्तरभारत में बाबा शब्द का चलन है। जैसे तात के साथ सघोष ध्वनियों वाला दादा रूप है, वैसे ही बाप के साथ बाबा है। तुर्की में बाप के लिए बाबा शब्द है। जैसे तेलुगु में अप्प शब्द पिता और माता दोनों के लिए प्रयुक्त होता है, वैसे ही हिन्दी में बाबा पुरुषवाचक है किन्तु रूसी में बाबा वृद्ध स्त्री के लिए, बाबूश्का दादी के लिए प्रयुक्त होता है।

अंग्रेज़ी पापा बच्चों का अनुकरणात्मक शब्द नहीं है। बाबा का अघोष ध्वनियों वाला प्रतिरूप है पापा। यह शब्द ग्रीक भाषा में भी है और वहाँ उसका पप्पस् रूप अप्पन् के और भी निकट है। ग्रीक भाषा में पप्पस् के साथ पप्पॉस् रूप का चलन भी था; पहला पिता के लिए, दूसरा पितामह के लिए सुरक्षित रहा। प सर्वनाम का एक वैकल्पिक रूप पाँ था; इससे अंग्रेज़ी का पोप बना और उसका मूल अर्थ पिता है। लैटिन में पॉप उस पुरोहित को कहते थे जो बलिवेदी पर पशु का वध करता था।

जैसे पापा बच्चों का अनुकरणात्मक शब्द नहीं है, वैसे ही अंग्रेज़ी का डैड, डैडी शब्द बच्चों का शब्द नहीं है। जो सम्बन्ध बाप और पापा का है, वही दादा और डैडी का है। यह दादा शब्द भी बाबा के साथ तुर्की में पहुँचा है। हिन्दी दादा के समान तुर्की दॅदॅ पितामह के लिए प्रयुक्त होता है। रूसी प्रतिरूप द्याद्या पिता के भाई के लिए काम में आता है।

पापा और पोप के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि तुर्की में एक निर्देशक सर्वनाम बु (यह) है और वह संज्ञारूपों के साथ जुड़ता भी है यथा ग्युन् (दिन) के साथ बु लगाकर रूप बनाया बुग्युन् (आज)।। शब्दरचना की जो प्रक्रिया संस्कृत अद्य और सद्यस् में है,

वही ग्युन् और बुग्युन् में है। ग्यु (दिन) का विकल्प हुआ ग्य; इसमें सर्वनामचिन्ह अ जोड़ा तो अग्य (आज) बना, स जोड़ा तो सग्यस् (अभी) बना।

तुर्की कर (काला), संस्कृत कार (अन्धकार का कार), तमिल करु (काला) सम्बद्ध रूप हैं। संस्कृत कूप का तुर्की प्रतिरूप है कुयु। संस्कृत उपसर्ग उद् (ऊपर) और हिन्दी क्रिया उड़ में तुलनीय है तुर्की उच् (उड़ना)। तुर्की में [illegible] सूचित करने के लिए एक क्रिया वर् है; वर्दि अर्थात् वह था। दूसरी इ क्रिया है; इदि अर्थात् वह था। वर्दि और इदि का एक ही अर्थ है; वर् क्रिया द्रविड़ भाषाओं में है, अतः इस अनुमान के लिए पर्याप्त आधार है कि इदि का सम्बन्ध द्रविड़ इर् से है। तमिल इरु (होना) का एक प्रतिरूप कोलभाषा में इग् है, दूसरा इत् है। जैसे इग्, इत् में र् का लोप हुआ है, वैसे ही तुर्की इदि में। इत् और इदि दोनों में त् और द कृदन्त प्रत्यय के चिन्ह हैं; कोल में त् क्रियार्थी संज्ञा का बोध कराता है, तुर्की में भूतकाल का। तमिल कप्पु (ढाँकना), संस्कृत कपट, कपाट, हिन्दी कपड़ा की आधारभूत कप् क्रिया तुर्की कपलि (ढँका हुआ) में है। प्राकृत घार (दुर्ग) से सम्बद्ध है तमिल का (रक्षा करना), काप्पु (निगेहबानी)। घर्, कर् क्रिया का तुर्की प्रतिरूप है कोरु (रक्षा करना)। कन्नड़ बेळ (प्रकाश), रूसी बेलुइ (श्वेत) से तुलनीय है तुर्की बेलिल (स्पष्ट)। संस्कृत मन्दिर, तमिल मन्रु (गाय बाँधने का स्थान) से तुलनीय है तुर्की मन्दिर (उप०)। तुर्की मन्दिर और तमिल मन्रु का एक ही अर्थ हो, यह तथ्य किसी समय बाड़ा का अर्थ देने वाले मन्दिर के व्यापक व्यवहार की सूचना देता है। तमिल मन्रु के सभाभवन आदि अन्य अर्थ हैं, तुर्की मन्दिर का अर्थ सीमित है। तमिल कूलि (मजदूरी), कन्नड़ कूलि (उप०; मजदूर) का हिन्दी रूप है कुली। तुर्की में कुल् का अर्थ है दास। कुल् और दास की अर्थप्रक्रिया एक है। फ़ारसी दस्त (हाथ) की दस् क्रिया का अर्थ था करना। जो मेहनत करे वह दास। कोलमि कल् (करना) के विकल्प कॉल् से तुर्की कुल्, तमिल कूलि रूप बनेंगे।

संस्कृत कति (कितने) का तुर्की प्रतिरूप कच् है। संस्कृत किम् तुर्की में ज्यों का त्यों है। तुर्की में लिंगभेद नहीं है। किम् का अर्थ हुआ कौन। क् मूलक सर्वनाम तुर्की को द्रविड़ भाषाओं से अलग करते हैं। तुर्की के प्रश्नवाचक सर्वनाम नॅ और मि भी द्रविड़ भाषाओं के या, ए आदि से भिन्न हैं। तुर्की में निषेधात्मक क्रियारचना के लिए म अव्यय का व्यवहार होता है। यह संस्कृत के निषेधात्मक मा का प्रतिरूप है। क्रियारचना, विन्यास की दृष्टि से, द्रविड़ पद्धति के अनुरूप है। ऑल् माने होना; ऑल्मदिम् माने मैं नहीं हुआ। ओल् के बाद म निषेधसूचक अव्यय लगा। दि कृदन्त प्रत्यय है; संस्कृत में त, थ, द, ध चारों प्रत्यय कृदन्त बनाने के काम आते हैं। तुर्की का भूतकालिक दि प्रत्यय आर्य-द्रविड़ भाषाओं की प्रत्यय-पद्धति के अनुरूप है। संस्कृत इह के पूर्वरूप इध का ध तुर्की में महाप्राणता खोकर स्थानवाचक प्रत्यय का काम करता है। बुरद (यहाँ), ऑरद (वहाँ), नॅरॅदॅ (कहाँ) में द स्थानसूचक प्रत्यय है। तुर्की का सम्बन्धवाचक कि प्रत्यय हिन्दी के, का की शृंखला के अन्तर्गत है। बुरद का अर्थ हुआ यहाँ; बुरदकि कितप् का अर्थ हुआ यहाँ की किताब। तुर्की कि का स्त्रीलिंग से कोई सम्बन्ध नहीं है। तुर्की चि जहाँ किसी वस्तु से किसी व्यक्ति का सम्बन्ध व्यक्त करता

है, वहाँ वह कि का ही कार्य सम्पन्न करता है। यथा **कपि** (द्वार) से **कपिचि** (द्वारपाल), **यॉल्** (मार्ग) से **यॉल्चि** (यात्री)। सम्भव है यह **चि** पूर्वोक्त **कि** का रूपान्तर हो। तुलनीय है रूसी **गोरे** (दुःख) से उत्पन्न **गोर्की** (दुखी), **गारेत्** (जलना) से **गार्याची** (गरम)।

संस्कृत में **जन्** से **जन्म** के समान तुर्की में **दांग्** (पैदा होना) से **दांगुम्** (जन्म), **इच्** (पीना) से **इच्किम्** (पेय) रूप बनते हैं। तुर्की में संज्ञा के साथ करना क्रिया जोड़कर नयी क्रिया हिन्दी की तरह बना लेते हैं : यथा **नमाज़् किल्मक्** (नमाज़ करना, प्रार्थना करना)। हिन्दी के समान तुर्की में दो शब्दों को जोड़कर नया अर्थ पैदा करने की प्रवृत्ति है। **इश्** (काम), **ग्युच्** (मेहनत), **इश्-ग्युच्** (काम में लगे होना); **यतक्** (बिस्तर), **यॉर्गन्** (लिहाफ़), **यतक-यॉर्गन्** (बोरिया बँधना)। हिन्दी के समान तुर्की में शब्द की आवृत्ति से अर्थान्तर पैदा किया जाता है; **यवस् यवस्** गिदियोर्लार् (वे धीरे धीरे जा रहे हैं)।

तुर्की में संख्या शब्दों के निर्माण की द्रविड़ पद्धति लागू है; पहले दहाई फिर इकाई, **ऑन्** (दस), **ऑन्बिर्** (ग्यारह), **यिर्मि** (बीस), **यिर्मिबिर्** (इक्कीस)। यही पद्धति फ़ारसी में है। संख्या शब्दों की रचना की यह द्रविड़ पद्धति तुर्की, फ़ारसी के अलावा यूरप की भाषाओं में है, विशेषकर बीस से बाद के संख्या शब्दों में।

तुर्की में सम्बन्धवाचक **इन्** प्रत्यय तमिल और रूसी के समान है। **अहमद्** से **अहमदिन्** अर्थात् अहमद का; तमिल में **मगन्** (पुत्र) से **मगनिन्** (पुत्र का); रूसी में **स्ताल्** (फ़ौलाद) से **स्तालिन्** (फ़ौलादी)। तुर्की संयोजक भाषा है, अश्लिष्ट है, मूल-शब्द के बाद स्वतन्त्र सम्बन्धक जोड़कर कारकरचना होती है। रूसी संश्लिष्ट भाषा है। **अहमदिन्, मगनिन्** और **स्तालिन्** में संरचना की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। तुर्की का वाक्यविन्यास भारतीय भाषाओं के समान होता है, वाक्य के आरम्भ में कर्ता होगा, अन्त में क्रिया। किन्तु भारतीय भाषाओं के ही समान तुर्की की क्रियापदरचना इससे भिन्न विन्यासपद्धति की सूचना देती है। तुर्की **गॅलिरिम्** (मैं आता हूँ) में क्रिया पहले है, कर्ता सर्वनाम बाद को है, ठीक संस्कृत के **गच्छामि** (जाता हूँ) की तरह। आर्य, कोल, द्रविड़ भाषाओं के साथ तुर्की भी अपने विकास की आदिम अवस्था में विधेय पहले, उद्देश्य बाद को, इस क्रम से वाक्यरचना करती रही है। आगे चलकर कोई ऐसा जबर्दस्त प्रभाव इन भाषा-समुदायों पर पड़ा कि पुरानी विन्यास-पद्धति के अवशेष मात्र रह गये; पहले उद्देश्य फिर विधेय, यह क्रम पुरानी पद्धति पर हावी हो गया। भाषाओं का इतिहास जानने के लिए ये अवशेष बहुत महत्वपूर्ण हैं। ऊपर तुर्की का जो **गॅलिरिम्** रूप दिया गया है, उसका सर्वनाम-चिन्ह **इम्** तुर्की में स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त नहीं होता। तुर्की के उत्तम पुरुष, एकवचन **बॅन्** (मैं) से इस **इम्** का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। संस्कृत **पठामि** का **आमि** या **मि** संस्कृत में स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त नहीं है। किन्तु बँगला **आमि**, मराठी **मी** स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त होते हैं। इससे विदित होगा, ये सर्वनाम कितने पुराने हैं। विधेय-उद्देश्य क्रम वाली विन्यासपद्धति मूलतः किस परिवार की है, यह जानने के लिए सर्वनामों के स्रोतों का पता लगाना होगा। तुर्की

का **इम्** सर्वनामचिन्ह उसकी विन्यास-पद्धति पर भारतीय प्रभाव की ओर संकेत करता है। क्रियापद रचना के समान संज्ञा के बाद सर्वनामचिन्ह लगाकर उससे व्यक्ति का सम्बन्ध दिखाया जाता है यथा **बाबा** (पिता) और **बाबाम्** (मेरे पिता)। यहाँ भी सर्वनामचिन्ह तुर्की स्रोत का नहीं भारतीय स्रोत का है। सिन्धी, फ़ारसी, अरबी आदि भाषाओं में सर्वनामचिन्ह जोड़ने की यह पद्धति ही नहीं, उत्तम पुरुष एकवचन का चिन्ह भी वही है।

सर्वनामों का विकास, उनका संज्ञा और क्रियापदों के साथ व्यवहार, इस व्यवहार की विभिन्न पद्धतियाँ, विभिन्न भाषासमुदायों में एक से सर्वनाम रूपों का प्रसार, यह सब केवल एक भाषा-परिवार को लेकर विवेचित नहीं हो सकता। उसके लिए भाषाओं का अन्तरपारिवारिक सन्दर्भ ग्रहण करना आवश्यक है, इस सन्दर्भ के लिए किसी एक भाषाई क्षेत्र को आधार मानना आवश्यक है। बृहत्तर भारत को भाषाई क्षेत्र मानने से उक्त कोटि का विवेचन सुविधापूर्वक किया जा सकता है।

(ख) मंगोल

मंगोल जनों की भाषा तुर्की से मिलती-जुलती है। इनकी मुख्य भूमि मंगोलिया है; मंगोल भाषा की बोलियाँ साइबीरिया और उत्तरी चीन में फैली हुई हैं। तुर्की और मंगोल दोनों समुदायों में स्वरतान का प्रयोग नहीं होता। मंचूरिया की मंचू भाषा तुर्क-मंगोल परिवार की है। इस परिवार से भिन्न स्वरतानवाला चीनी भाषासमुदाय, मंचूरिया और मंगोलिया से लेकर कश्मीर के ऊपर चीनी तुर्किस्तान तक, गैर स्वरतान वाली भाषाओं से घिरा हुआ है।

मंगोलिया गणराज्य की राजधानी उलाङ् बातॉर की भाषा खल्ख पर जौन सी. स्ट्रीट ने अपनी पुस्तक **खल्ख स्ट्रक्चर** (खल्ख की संरचना) में बताया है कि **क्** ध्वनि मुख्यतः रूसी से उधार लिये हुए शब्दों में सुनाई देती है। अधिकांश बोलनेवाले **क्** के स्थान पर **ख्** या **ग्** का व्यवहार करते हैं, **किनो** (सिनेमा, फिल्म) को **खिनो** कहेंगे, **त्राक्तॉर्** (ट्रैक्टर) को **तराग्तॉर्**। इसका अर्थ यह हुआ कि मंगोल भाषा में **क्, प्** की अपेक्षा सघोष **ग्, द्** का चलन अधिक है। तमिल जैसी द्रविड़ भाषाओं की अपेक्षा **ग्, द्, ब्** से आरम्भ होने वाले शब्दों की यहाँ भरमार है। **गेर्** (घर), **गर्** (हाथ), **गल्** (आग), **गजॉर्** (स्थान), **गलजु** (पागल), **दॉलो** (सात), **दवा** (सोमवार), **दलअँ** (समुद्र), **दू** (छोटा भाई), **बातॉर्** (बहादुर), **बि** (मैं), **बगॉ** (छोटा), **बरिख्** (पकड़ना), **बॉस्गूल्** (भगोड़ा), **बिशि** (नहीं), **बइदि** (दशा) आदि में सघोष महाप्राण स्पर्श ध्वनि की स्थिति दर्शनीय है। **क्-त्-प्** में केवल **त्** का आदिस्थानीय व्यवहार इस भाषा के लिए सहज है। अन्त्य स्थान में तुर्की के समान **ग्-द्-ब्** को अघोष बोलने की प्रवृत्ति है।

इन उदाहरणों में एक शब्द है **गर्** (हाथ)। या तो मंगोल जन संस्कृत **कर** के **क्** को सघोष बोलते थे या फिर उन्होंने **कर** के पूर्वरूप **घर** को **गर्** बनाया है। यह असम्भव नहीं क्योंकि हिन्दी **घर** का **गेर्** प्रतिरूप उनके यहाँ सुलभ है। संस्कृत **हस्त** और फ़ारसी **दस्त** से हम इनके पूर्वरूप **घस्त** तक पहुँचते हैं। **घर्** क्रिया के **घन्** विकल्प

से हिन्दी **धन्धा** बना, **घस्** से **घस्त**। **घर्** के वैकल्पिक रूप **घर्** से करना की **कर्** धातु, और उसका प्रतिरूप **गर्** प्राप्त होंगे। **घ्** के **ख्** रूपान्तर से ग्रीक **खेंइर्** (हाथ) बना। फ़ारसी **कर्दन्** (करना) में **कर्** है किन्तु **कारीगर, बाज़ीगर, सितमगर** आदि में सघोष ध्वनिवाला **गर** है। हो सकता है कि शब्द के बीच में आने से **क्** को सघोष कर दिया गया हो किन्तु नेपाली में **कर्** क्रियामूल का **गर्** रूप ही प्रचलित है। उधर कन्नड़ में **कॅय्** के साथ **गॅय्** (करना) रूप भी है। इससे यह सम्भावना पुष्ट होती है कि भारत के उत्तरपश्चिमी क्षेत्र में **कर्** के साथ **गर्** रूप का चलन था और यह **घर्** का रूपान्तर था।

तुर्की के समान खल्ख में भी आदिस्थानीय **र्** के पहले अतिरिक्त स्वर जोड़ने की प्रवृत्ति है यथा रूस यहाँ **ऑरॉस्** है, **रादिओ** (यानी रेडियो) का रूपान्तर **अर्राजिव्** है। रूस तो **ऑरॉस्** बना किन्तु **लेनिन** में इतना ही परिवर्तन हुआ कि **ल्** के तालव्यी-करण के साथ उसे **ल्येनिन्** रूप में ग्रहण किया गया। जौन सी. स्ट्रीट् के अनुसार **क्-त्-प्** के बाद स्वर हो तो उनका उच्चारण ईषत् महाप्राणता के साथ होता है। यह प्रवृत्ति अंग्रेज़ी में है और तमिल की कुछ बोलियों में है। फ़ारसी **कज्** (टेढ़ा) खल्ख में **खज्** है, **खज्गइ** अर्थात् टेढ़ा या बेईमान। हिन्दी **कार**, तमिल **करु** यहाँ **खर्** (काला) है। कुछ आर्यद्रविड़ भाषाओं के समान **प्** का स्पर्श तत्व क्षीण होने पर खल्ख में वह **व्** बोला जाता है। जैसे कहें खूब काला, तो खल्ख रूप होगा **खव् खर्**। यहाँ **खव्** फ़ारसी **खूब** का रूपान्तर है; **खर्** में **अ** की संगति के लिए **उ** को **अ** बनाया गया है किन्तु **खॉव् खॉल्** (बहुत दूर) में **खॉल्** के **ऑ** के कारण **खूब** का उकार **ऑकार** रूप में प्रतिष्ठित है।

संस्कृत **अद्** (खाना) का ग्रीक और लैटिन प्रतिरूप **ऍदो** है। खल्ख **इदॉख्** (भोजन करना), **इदा** (भोजन) में **अद्** का वैकल्पिक रूप **ऍद्** है। संस्कृत **यव** (द्रुतगति) से सम्बद्ध हैं **यवच्** (उप०; प्रगति) और **यवख्** (चलना)। संस्कृत **या** (जाना) के पूर्व-रूप **यर्** का विकल्प होगा **यव्**। **यवख्, इदॉख्** जैसे रूपों में **ख्** कृदन्त प्रत्यय का चिन्ह है और वह **क्** का रूपान्तर है। खल्ख क्रिया **यारख्** (जल्दी करना) का आधार **यर्** है। **ग्यलइख्** (चमकना), **गल्त्** (आग्नेय) का आधार संस्कृत **घर्म** के **घर्** क्रियामूल का **गल्** रूपान्तर है जो संस्कृत **ग्लौ** (चन्द्रमा), अंग्रेज़ी **ग्लो** (दमकना), जर्मन **ग्लुट्** (लपट) में विद्यमान है। खल्ख **गॅरॅल्** (प्रकाश) का आधार **गॅर्** है। **यर्** का प्रतिरूप **इर्** खल्ख क्रिया **इरॅख्** (आना) में है। **यर्** के विकल्प **वर्** का रूपान्तर **ऑर्** खल्ख क्रियारूप **ऑर्लो** (गया) में है। सम्भवत: खल्ख में इसका **वल्** रूपान्तर भी है यथा खज्वल्ज़ख् (लँगड़ाकर चलना)। यहाँ **खज्** (टेढ़ा, लँगड़ा) फ़ारसी **कज्** का प्रतिरूप है; उसमें **वल्** जोड़कर उक्त रूप रचा गया है। **ऑलूल्** (सभी लोग) में **ऑल्** बहुत्वसूचक है। **वर्** क्रिया मूलत: चक्रगतिसूचक है, अत: उससे गोलबन्दी के अर्थ का विकास होता है। **ऑल्** को **वर्** का रूपान्तर मानना चाहिए। तमिल **उरळ्** (भीड़ लगाना) में **वर्** का रूपान्तर **उर्** तुलनीय है। जन-समुदाय या जाति के लिए खल्ख **उलॉस्** का आधार **उल्** क्रियामूल होगा जिसका अर्थ होगा एकत्र होना। तुर्की में इसका प्रतिरूप **उलुस्** (जाति, राष्ट्र) है। **वर्** का एक रूपान्तर **ऑर्**, होने के अर्थ में, प्रयुक्त होता है यथा

खल्ख पद खल् ऑगि का अर्थ है गरम होना। खल्ख में संस्कृत गर्त (रथ) की गर् क्रिया का चलन भी है यथा गरख़्(बाहर जाना)। गर् > कर् > खर् > खल्, इस क्रम से खाल्ग (द्वार) रूप बना। जैसे तमिल पुगु (जाना) से पुगुडि (द्वार), वैसे ही खल् से खाल्ग।

ऊपर गर् (करना) के मूलरूप घर् की चर्चा की गई है; इस घर् का एक वैकल्पिक भर् था। मंगोल क्षत्र में गर् के समानान्तर बर् का चलन था, इसका संकेत बरिख़् (पकड़ना), बरिऊल् (हत्था), बरुन् (दाहिना) से मिलता है। संस्कृत ग्रभ्, ग्रह् (पकड़ना) में हाथ का संकेत देने वाला गर् शब्दमूल है। संस्कृत दक्ष और दक्षिण सम्बद्ध रूप हैं और इनमें भी दस्त का आधारभूत दस् है। जो हाथ काम करने में कुशल है, वह दक्ष है, दक्षिण है। उसी तरह बरुन् का अर्थ हुआ दाहिना। तमिल पडु (करना), संस्कृत पटु (कुशल) का आधार पर् क्रिया है, बर् का प्रतिरूप। पर् का एक तमिल प्रतिरूप पण् (कर्म) है जिससे संस्कृत पाणि (हाथ) सम्बद्ध है। खल्ख में दाईं के लिए बरिग्चि शब्द है। इसके बर् का अन्य स्रोत मानना चाहिए। एक भर् क्रिया का अर्थ था धारण करना, वहन करना। इससे गर्भ धारण करने, सन्तान को जन्म देने के अर्थ का विकास हुआ। अंग्रेज़ी बॅअर् (धारण करना, वहन करना), बर्थ् (जन्म) में यह अर्थ-प्रक्रिया स्पष्ट है।

खल्ख बइ (होना), बइदल् (दशा), रूसी बीत् (होना), अंग्रेज़ी बी (उप०) का आधार भॅय् होगा, भॉव् का विकल्प, संस्कृत भू (होना) से सम्बद्ध। खल्ख रूप बइल्दख़् (लड़ना) का बइ भिन्न स्रोत से आया प्रतीत होता है। रूसी बीत्व (युद्ध) तुलनीय है। बीत्व का सम्बन्ध रूसी क्रिया बीत् (मारना) से हो सकता है।

आह्वान के अर्थ में संस्कृत क्रियामूल ऋक् का खल्ख प्रतिरूप उरिखाँ (बुलाना) है। र् के पहले अतिरिक्त स्वर जोड़ा गया और क् को महाप्राण बनाया गया। तमिल अरि (जानना, ज्ञान) से खल्ख अॅर्दॉम् (ज्ञान) तुलनीय है।

खल्ख भाषा का एक रोचक शब्द है मॉदाँ (पेड़)। इसका निभ्आनिगन प्रतिरूप है मॅदिस्। द् के र् में बदलने पर तमिल मरम्, पर्जि मॅरि रूप बने। इनका अर्थ भी पेड़ है। समुद्र के लिए खल्ख दलअॅ से तुलनीय है ग्रीक थलस्स (समुद्र)। दल् और थल् का पूर्वरूप होगा धल्। संस्कृत धरुण (जल), धारा (प्रवाह) का धर् इस धल् का पूर्वरूप है। तमिल एरु (बैल) अन्य पशुओं के लिए भी प्रयुक्त होता है जब मादा से भिन्न नर की ओर संकेत करना हो। ब्राहूइ अरे मर्द, पति के लिए प्रयुक्त होता है। खल्ख अर्श् का अर्थ है मर्द, पुरुष। संस्कृत वृष का अर्थ बैल है, पुरुष भी। उक्त द्रविड़-मंगोल रूपों का सम्बन्ध वृष से है; वृष की आधार क्रिया है वॅर्, उसका रूपान्तर हुआ अॅर्। बहुत्वसूचक संस्कृत पुरु का खल्ख प्रतिरूप है बुर् (सब)। हिन्दी घर के खल्ख प्रतिरूप गॅर् का उल्लेख पहले हो चुका है। मंगोल प्रदेश में गॅर् का अस्तित्व घर की प्राचीनता का प्रमाण है। मंगोलिया की राजधानी उलाङ्, बातॉर् का बतॉर् तो फ़ारसी का बहादुर है, उलाङ् (लाल) का आधार क्या है? मेरा अनुमान है कि इसका आधार संस्कृत रंग है, इसके प्रतिरूप रॅङ्क् का चलन तुर्की में है, यह हम देख चुके हैं। रंग > रङ् > लङ् > उलङ्, इस प्रकार इस रूप का विकास सम्भव है। रंग का सम्बन्ध

चमकने से है। जो वस्तु चमके, वह लाल, पीली, हरी, किसी भी चटक रंग की हो सकती है। संस्कृत **हरि** में मूलभाव प्रकाश का है; इसका अर्थ सूर्य, चन्द्र है, रक्त, पीत, हरित भी। **रक्त** का अर्थ है लाल और रँगा हुआ।

तमिल में बड़ी बहन के लिए **अक्का** शब्द है। द्रविड़ व्युत्पत्ति कोश में इसके साथ माँ के लिए संस्कृत **अक्का** और बहन के लिए प्राकृत **अक्का** रूप उद्धृत किये गये हैं। खल्ख में **अक्का** का प्रतिरूप **अंखाँ** (माँ) है। द्रविड़ भाषाओं में **अक्का** का पुंल्लिंग रूप **अक्क** प्रचलित है। पर्जि **अक्क** (नाना), कुवि **अक्कु** (दादा) का खल्ख प्रतिरूप **अखाँ** (बड़ा भाई) है।

खल्ख भाषा में उत्तम पुरुष सर्वनाम का एकवचन रूप **वी** है। यह संस्कृत **वयम्** (हम) और अंग्रेजी **वी** (उप०) से मिलता-जुलता है। इसके साथ दूसरा उत्तम पुरुष एकवचन रूप है **मिन्** (मैं)। यह तेलुगु **मनमु** (हम), फारसी **मन्**, संस्कृत **मद्** (**अस्मद्** और **मदीय** का **मद्**), हिन्दी **मैं** से मिलता-जुलता है। इसका एक बहुवचन रूप **मन्** (हम-तुम) है। **अखाँ** और **अंखाँ** की तरह **मन्** और **मॅन्** में अर्थभेद किया गया है; मूलतः रूप एक है। इनके साथ उत्तम पुरुष का ही एकवचन रूप है **न**, **नम्**, **नद्**। **नमइग्** (मुझे), **नद्** (मुझको) का **न**, **नम्** संस्कृत **नः** (हमारा, हमें), तमिल **नाम्** (हम), ग्रीक **नोइ** (हम दोनों, संस्कृत **नौ**), लैटिन **नोस्** (हम) के आधारभूत **न** का समकक्ष है। वास्तव में **मन्** और **नम्** परस्पर सम्बद्ध रूप हैं। तमिल **नाम्** का ब्राहुइ प्रतिरूप **नन्** है। **मन्** और **नन्** को एक ही सर्वनाम मूल मानें चाहे न मानें, इसमें सन्देह नहीं कि आर्यद्रविड़ समुदायों के साथ ये रूप तुर्क-मंगोल परिवार में भी फैले हुए थे।

खल्ख भाषा का मध्यम पुरुष सर्वनाम संस्कृत के **त्वम्**, **तव** वर्ग का है। इसका एकवचन रूप **ची** वास्तव में **ती** का रूपान्तर है। **तनइ** (तुम्हारा), **तनर्** (तुम लोग) बहुवचन रूपों में **त**, **तन्** रूप स्पष्ट है। संस्कृत **तुभ्यम्** के **तु**, हिन्दी **तू**, रूसी **तो** या **तुइ** (तू) से **ची** सम्बद्ध है। अन्य पुरुष सर्वनाम के एकवचन रूप हैं **अॅन्** और **तॅर्**, बहुवचन रूप हैं **अॅद्** और **तॅद्**। खल्ख **अॅन्** और **अॅद्** का सर्वनाम मूल **अॅ** संस्कृत **इयम्**, **इदम्** के **इ** और **अदः**, **असौ** के **अ** वर्ग का है। **तॅर्** और **तॅद्** का **तॅ** संस्कृत **तद्** के **त** वर्ग का है। खल्ख भाषा में **अॅ** और **तॅ** वाले रूपों में किंचित् अर्थभेद है। **अॅ** सर्वनाम वक्ता से वस्तु की अपेक्षाकृत समीपता दिखाता है, **तॅ** अपेक्षाकृत दूरी।

खल्ख के प्रश्नवाचक सर्वनामों में संस्कृत **किम्** और तमिल **या** दो स्रोतों के रूप हैं। **खॅन्** (कौन) **किम्** वर्ग का है, **यू** (क्या) **या** वर्ग का है। **यमर्** (कैसा) में आधारभूत **य** है। **खा** (कहाँ) का आधार **क** है, अतिरिक्त महाप्राणता से वह **ख** बना।

खल्ख भाषा का **दल्** कृदन्त प्रत्यय ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। **बइख्** (होना) से **बइदल्** (स्थिति, दशा), **सुरख्** (सीखना) से **सुर्दल्** (सीख; सिद्धान्त), **ऑर्गॉख्** (भागना) से **ऑर्गॉदल्** (भगोड़ा); इसी प्रकार तमिल में क्रियार्थी संज्ञारूप बनते हैं: **चॅय्** से **चॅय्दल्** (करना), **अरि** से **अरिदल्** (जानना), **पो** से **पोदल्** (जाना); पुनः इसी प्रकार पश्तो में: **रब्** से **रउदल्** (खेत काटना), **मूम्** से **मून्दल्** (पाना), **लव्** से **लउदल्** (बोलना)। खल्ख में **दल्** का सर्वत्र वही कार्य नहीं है जो पश्तो और तमिल

में है किन्तु उससे मिलता-जुलता अवश्य है। खल्ख प्रत्यय **ऊल्**, **ऊर्**, **ऊरि** परस्पर सम्बद्ध प्रतीत होते हैं यथा **खरख्** (देखभाल करना) से **खरूल्** (रखवाला), **बरिख्** (पकड़ना) से **बरिऊर्** (हत्था), **सुर्गख्** (सीखना) से **सुर्गूलि** (स्कूल)। संस्कृत **मयूर** की व्याख्या तमिल **मयिर्** (बाल) और **मयिल्** (मोर) के आधारभूत **मय्** में **ऊर** प्रत्यय जोड़ने से होती है। इसी प्रकार संस्कृत **केयूर** (बाजूबन्द) की व्याख्या **कर** के तमिल रूपान्तर **कइ** (हाथ) में **ऊर** जोड़ने से होती है। अवधी में **कोल्हौरु** (जहाँ कोल्हू चले), **भुसौरु** या **भुसौरा** (जहाँ भूसा रखा जाय) में स्थानवाचक **ऊरु** प्रत्यय है। प्रत्यय पुराना है और अनेक भाषा-परिवारों में इसका व्यवहार होता था। भोजपुरी, बंगला, मराठी, रूसी आदि का भूतकालिक **ल** प्रत्यय खल्ख में भी प्रयुक्त होता है यथा **यव्ला** (वह गया) किन्तु भोजपुरी के समान इसका व्यवहार अन्य कालों के लिए भी होता है यथा **बी यव्ला** (मैं जा रहा हूँ)।

खल्ख में शब्द की आवृत्ति से वैसा ही अर्थबोध पैदा होता है जैसा हिन्दी में। **खॅन्-खॅन्** का ठीक हिन्दी अनुवाद होगा कौन-कौन। हिन्दी में शब्द की ध्वनि का अनुकरण करते हुए **पानी-वानी** जैसी पदरचना खल्ख के **गॅर् मॅर्** (घर दुआर) में है। हिन्दी के **माँ-बाप** की तरह खल्ख में **ऍचॅग्-ऍख़** शब्द युग्म है। **मिनी ऍचॅग् ऍख़्** (मेरे माँ-बाप) में सर्वनाम संज्ञा-पद से पहले है। **मिनी गॅर्** (मेरा घर), **मिनी दू** (मेरा छोटा भाई), **मिनी खायग्** (मेरा पता) में संज्ञा के बाद सर्वनाम-चिह्न नहीं जोड़ा गया। **मॉङ्गॉल् खॅलोग् तॅर् सइन् यरिन** (वह मंगोल अच्छी तरह बोलता है), यहाँ क्रिया **यरिन** में पुरुषसूचक सर्वनामचिह्न नहीं है। **सइन् बइन ऊ** (तुम कैसे हो), **तॅर् ऑदो गॅर्ते बइन** (वह अभी घर पर है), दोनों वाक्यों में दो भिन्न पुरुषों के साथ क्रियारूप अपरिवर्तित रहता है। इससे यह निष्कर्ष निकालना सही न होगा कि मंगोल भाषा की संरचना तुर्की से भिन्न है। इस बात की सम्भावना अधिक है कि मंगोल भाषा की संरचना मूलतः वैसी ही थी जैसी तुर्की की है। **यरिन**, **बइन** पुरुषभेद से मुक्त कृदन्त हैं।

मंगोल-समुदाय की एक भाषा **बुरिअत** गण-समाज की है। बुरिअत जन साइबेरिया में बैकाल झील के आसपास शताब्दियों से रहते आये हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार मंगोलों का आदिदेश यही क्षेत्र था। इसी क्षेत्र में प्रसिद्ध विजेता चंगेज़खान का जन्म हुआ। बुरिअत जन कुछ शताब्दियों तक घुमन्तू जीवन बिताते रहे हैं, आखेट और पशुपालन उनके जीवनयापन के मुख्य साधन रहे हैं। अब उनका क्षेत्र सोवियत संघ में है और उनकी भाषा पर रूसी का गहरा प्रभाव पड़ा है। फिर भी उसमें प्राचीनता के अनेक लक्षण विद्यमान हैं। बुरिअत क्षेत्र की मानक भाषा का आधार **खोरी** नाम की बोली है। जेम्स ई० बोसन ने **बुरिअत रीडर** (मूतों, १९६२) में इस भाषा का विवरण दिया है। इसकी भूमिका में उन्होंने बुरिअत शब्दभण्डार के बारे में लिखा है कि इसमें तिब्बती और संस्कृत से उधार लिए हुए शब्दों का पुराना स्तर है; ये शब्द बौद्धमत के प्रसार के साथ इस भाषा में आये थे। उन्होंने बताया है कि बौद्धमत का प्रसार यहाँ सत्रहवीं सदी में हुआ था। जो शब्द बौद्धमत के साथ यहाँ पहुँचे

स्रोतों के कर्तारूप नहीं हैं। अन्य कारकों में **बिदेंनेंइ** (हमारा) के साथ **मनइ** (उप०) आदि रूप तो हैं, **नम्** वर्ग का कोई रूप नहीं है। **बि** का बहुवचन **बिदें** है किन्तु **शि** (तू) का बहुवचन है **त** (या **तन्** जिससे **तनइ** अर्थात् तुम्हारा रूप बना)। **शि** और **त** दो स्रोतों से आये सर्वनाम हैं। और ये स्रोत काफ़ी पुराने मालूम होते हैं। तुलना करें संस्कृत **गच्छसि** (तू जाता है) और **गच्छथ** (तुम जाते हो) के सि और थ से। संस्कृत **सि** मध्यमपुरुष सर्वनाम के एकवचन रूप का कार्य कर रहा है, इसका मंगोल प्रतिरूप है **शि**; संस्कृत **थ** मध्यमपुरुष सर्वनाम के बहुवचन रूप का कार्य कर रहा है, इसका मंगोल प्रतिरूप है त। सम्भव है, **ति** का रूपान्तर हो **सि**।

बुरिअत में संख्यासूचक शब्द द्रविड़ पद्धति से बनते हैं : **अर्बन्** (दस), **खॉयॉर्** (दो), दोनों से मिलकर रूप बना **अर्बन्-खॉयॉर्** (बारह); **खॉरिन्** (बीस), **नेंगंन्** (एक), दोनों के योग से रूप बना **खॉरिन्-नेंगंन्** (इक्कीस)। दहाई पहले, इकाई बाद को।

(ग) फिनलैन्ड की भाषा

एशिया का एक महत्वपूर्ण भाषा-परिवार यूरालिक अथवा फिनोउग्रियन है। रूस के उत्तर में फिनलैन्ड नाम का जो प्रसिद्ध देश है, वहाँ इसी परिवार की फिन भाषा बोली जाती है। सोवियत संघ के पूर्वी भाग में एस्तोनिया नामक गणतन्त्र की भाषा इस परिवार की है। फिनोउग्रियन परिवार की मग्यार भाषा का केन्द्र हँगरी नामक देश है। उत्तरी, पूर्वी और मध्य यूरुप में इस परिवार की भाषाएँ स्लाव और जर्मन भाषा-समुदायों की पड़ोसी हैं। इस परिवार की भाषाएँ बोलने वाले अनेक गणसमाज साइबेरिया में फैले हुए हैं। भौगोलिक दृष्टि से तुर्क-मंगोल और फिनोउग्रियन परिवार एशिया का बहुत बड़ा भाग और यूरुप का काफी भाग घेरे हुए हैं। इन्डोयूरोपियन परिवार से, विशेषत: आर्य-द्रविड़ समुदायों से, इनका गहरा सम्बन्ध रहा है। फिनलैन्ड और हँगरी में जो भाषाएँ बोली जाती हैं, वे यूरुप की भाषाओं की अपेक्षा भारतीय भाषाओं के अधिक समीप हैं।

यहाँ फिनलैन्ड की भाषा की कुछ विशेषताओं की चर्चा करेंगे। फिनलैन्ड के लोग अपने देश को **सुओमि**, अपनी भाषा को **सुओमि लइनेंन्** कहते हैं। हम अधिक परिचित फिन नाम से उसकी चर्चा कर सकते हैं। यह भाषा उन आर्यद्रविड़ भाषाओं से मिलती-जुलती है जिसमें सघोष स्पर्श ध्वनियों का अभाव है। चूलिका पैशाची में **गगन** को **ककन**, दामोदर को **तामोतर**, **बालक** को **पाळक** कहते थे। इसी प्रकार फिन में **गैस** को **कासु**, डाक्टर को **तॉह्_तॉरि**, **बम** को **पॉम्मि** कहते हैं। यह प्रवृत्ति द्रविड़ भाषाओं में है विशेषत: दक्षिणी तमिल में। चूलिका पैशाची में इस प्रवृत्ति का कारण द्रविड़ प्रभाव ही हो सकता है। किन्तु चूलिका पैशाची में अघोष महाप्राण **ख्-थ्-फ्** ध्वनियाँ हैं, फिन में इनका अभाव है। कुछ स्थितियों में फिन स्वर से पहलेवाले व्यंजन का द्वित्व करती है अथवा व्यंजन का दीर्घ उच्चारण करती है। **यूरॉप** और **रोमान्टिक** के फिन रूप हैं **यूरोप्प** और **रोमान्तिक्क**। तमिल-मलयालम में अंग्रेज़ी **कप्** के रूपान्तर **कप्प** से ये रूपान्तर मिलते-जुलते हैं। द्रविड़ भाषाओं में मूर्धन्य ध्वनियों का व्यवहार उनकी

उल्लेख्य विशेषता है, फिन में इनका अभाव है। तुर्क-मंगोल भाषाओं में **च्**, **ज्** का व्यवहार होता है, फिन में इनका अभाव है। द्रविड़ भाषाओं के समान शब्द के आरम्भ में फिन संयुक्त व्यंजन पसन्द नहीं करती। प्राकृतों और द्रविड़ भाषाओं के समान कुछ स्थितियों में स्पर्श तत्व को क्षीण करने, स्पर्श ध्वनि को अर्धस्वर में बदलने की प्रवृत्ति भी फिन में है। **लुके** (पढ़ना) से **लुइन्** (मैं पढ़ता हूँ), **अपु** (सहायता) से **अवुन्** (सहायता का)। फिन में ह् ध्वनि का व्यवहार बड़े पैमाने पर होता है और बहुत से शब्द ह् से आरम्भ होते हैं। द्रविड़ और तुर्क मंगोल भाषाओं के विपरीत फिन में **र्**, **ल्** से आरम्भ होने वाले शब्दों की संख्या बहुत बड़ी है।

फिन में **स्** ध्वनि सुप्रतिष्ठित है। ऐसा लगता है कि किसी समय इस भाषा पर उन लोगों का प्रभाव पड़ा है जो **स्** को **त्** रूप में ग्रहण करते थे। इस कारण अनेक फिन शब्दों के एक रूप में **स्** है तो दूसरे में **त्** है यथा **कन्सि** के साथ **कंत्त** (ढक्कन), **कैसि** के साथ **कैत्ते** (हाथ), **तॉसि** के साथ **तॉत्त** (सच)। इससे अनुमान होता है कि फिन **ऍत्तै** (वह) का सम्बन्ध संस्कृत **एषः** से होगा (संस्कृत **एषः** और **एतद्** स्वयं सम्बद्ध रूप हैं); फिन **वात्तं** (वस्त्र) का पूर्वरूप **वास** होगा। पुरानी तमिल में संस्कृत **समय** के **तमयम्** जैसे रूपान्तर मिलते हैं। साथ ही भारतीय सीमान्त पर **त्** का स्पर्श-तत्व क्षीण करके उसे **स्** रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति भी काम कर रही थी। **पुत्र** के इरानी रूप **पिसर्** में यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। संस्कृत उद (पानी), रूसी **वॉद** का अंग्रेज़ी प्रतिरूप तो **वाटर्** है, जर्मन प्रतिरूप **वासॅर्** है। फिन **वॅत्तै** (पानी) का **त्** मूल ध्वनि के अनुरूप है किन्तु इसके साथ जो दूसरा रूप **वॅसि** (उप०) है, उसमें जर्मन **वासॅर्** के समान् **स्** ध्वनि **त्** का रूपान्तर है।

फिन **कूलु** (सुना जाना), **कूलुइसा** (विश्रुत, प्रसिद्ध) में **श्रु** की श् ध्वनि **क्** रूप में ग्रहण की गई है, **शतम्** के **कॅन्तुम्** रूपान्तर की तरह। जैसे आधुनिक ग्रीक में **चीन** को **कीन** कहते हैं, वैसे ही फिन में अंग्रेज़ी **बॅञ्च्** को **पॅङ्क्कि** कहते हैं। जिन भाषाओं में **च्** ध्वनि नहीं है, वे उसे **क्** रूप में ग्रहण कर सकती हैं, यह तथ्य यहाँ स्पष्ट है।

फिन में आदिस्थानीय **व्** का व्यवहार वैसे ही होता है जैसे संस्कृत और तमिल में किन्तु जैसे इन भाषाओं में कभी-कभी **व्** का लोप हो जाता है और उसका ओष्ठ्य तत्व साथ के **अ** को **ऑ** अथवा **उ** में बदल देता है, वैसे ही फिन में कुछ शब्दों का आदि-स्थानीय **व** बदलकर **ऑ** हो गया है। इनमें **ऑलें** (होना) क्रिया है जिसका प्रसार तुर्क-मंगोल भाषाओं में हम देख चुके हैं। इसका पूर्वरूप **वर्** है। **वल्तिओ** (स्थिति) में **वल्** है। संस्कृत **वस्** (रहना) का फिन प्रतिरूप **असु** (उप०) है। संस्कृत में अस्तित्व-सूचक **वस्** से जैसे **वस्तु** रूप बनता है, वैसे ही फिन **असिअ** का अर्थ है वस्तु, पदार्थ। संस्कृत **अस्** और फिन **ऑसु** (घटित होना) परस्पर सम्बद्ध हैं।

फिन भाषा में प्रकाशसूचक शब्द भारतीय स्रोतों की ओर संकेत करते हैं। आकाश के लिए **तैवस्** शब्द स्पष्ट ही **दैवस्** का रूपान्तर है। इसके साथ दिन के लिए **पैवै** शब्द है जो **तैवस्** से नितान्त असम्बद्ध नहीं है। **तैवस्** की आधारभूत क्रिया **घॅर्** हो तो **पैवस्** की आधारभूत क्रिया **भॅर्** होगी। **घॅर्** से कृदन्त **घॅर्प**, फिर **र्** लोप होने पर

घॅप् जो प्राकृत घिप्पति में धातुवत् प्रयुक्त है। फिन पलाँ (अग्नि) सीधे संस्कृत भर्ग (प्रकाश) के भर् की ओर संकेत कर रहा है। पल् का रूपान्तर वल् अनेक द्रविड़ भाषाओं में है। फिन वलाँ का अर्थ है प्रकाश। संस्कृत पलित (प्रज्वलित), फिन पलाँ, वलाँ, कोत पोल् (दिन), वोल् (उप०), तुलु पळ्ळॅन् (प्रकाश), तमिल वॅळ् (श्वेत) सम्बद्ध शब्द हैं। गोंडी पॅयल् (दिन) में शब्दमूल पॅय् फिन पॅवॅ (दिन) से तुलनीय है। फिन वलाँ और वल्क (श्वेत) परस्पर सम्बद्ध हैं।

गोंडी पॅयल् का पॅय् सीधे पॅर् का रूपान्तर हो सकता है। तब संस्कृत पेरु (अग्नि, सूर्य), गोंडी पॅयल्, फिन पॅवॅ एक ही शृंखला के रूप सिद्ध होंगे। फिन किर्कस् (प्रकाशमान) में वह किर् है जो संस्कृत किरण में है। घर्म के घर् का वैकल्पिक रूप हुआ घॅर्, उसका विकास होगा कॅर्। किर् का किळ् रूपान्तर तमिल किळर् (चमकना, प्रकाश) में है। फिर हॅल्लॅ (गर्मी) में हॅल् का पूर्वरूप घॅर् हो सकता है; हॅल्लॅ ग्रीक हेलिओस् (सूर्य) से तुलनीय है।

संस्कृत वर्ण का अर्थ रंग इसलिए है कि यहाँ वर् का अर्थ है चमकना और वह भर् > पर् का विकास है। अर्थ की यही प्रक्रिया फिन वॅरि (रंग) में है। अन्य स्रोत की वर् क्रिया का अर्थ है बहना; इससे संस्कृत का वारि (जल) शब्द बनता है। वारि से तुलनीय है फिन विर्त, विरॅन् (धारा)। पर्जि वॅरॅद् (बाढ़), तमिल वॅळ्ळम् (उप०; पानी) भी यहाँ स्मरणीय हैं। तमिल पोक्कु (मार्ग) का सम्बन्ध उस भाषा की पो (जाना) क्रिया, कन्नड़ पोलु (गमन) से है; फिन पॉल्कु (मार्ग) का आधार गमनसूचक पॉल् क्रिया होगी। फिन पलत (लौटना), पॉइस्तु (चले जाना), पऑंत (भागना), पकॅनॅ (उप.) परस्पर सम्बद्ध रूप प्रतीत होते हैं। कॅविन् (मैं गया) में कॅ का सम्बन्ध गम् क्रिया से है, संस्कृत गर्त के गर् का रूपान्तर गय् होगा, पॅर् के पॅय् रूपान्तर के समान। घॅर् के घॅय् रूपान्तर से ध्यान की ध्यै क्रिया बनेगी; घॅय् का अघोष अल्पप्राण रूप तॅय् फिन तिऑत (जानना) में है। हिन्दी धन्धा के धन् का पूर्वरूप धर्, धस् है। धर् > धय् > तय् क्रम से फिन तइदॅ (कला), तेन् (करना), तॅह्दॅ (उप०), तॅकि (उप०) की व्याख्या होती है। संस्कृत भार के भर् क्रियामूल के भय् > पय् रूपान्तर से फिन पइनव (भारी) रूप बना; संस्कृत भरण (वस्त्र धारण) के भर् > पर् > पय् से फिन पॅइत्ति (आवरण) सिद्ध हुआ।

फिन पुहुअ, पुहॅलॅ (बात करना) में ह् ध्वनि सम्भवतः क् का रूपान्तर है। तमिल पुगळ् (प्रशंसा करना) का एक रूपान्तर पुहळ् होगा; ह् के लोप और व् श्रुति के आगम से तेलुगु पॉवडु (उप०) रूप बना है। पुहुअ का एक फिन प्रतिरूप पकिनॉइ (बात करना) है। ये दोनों रूप सम्बद्ध जान पड़ते हैं; दूसरे रूप के क् से यह सम्भावना पुष्ट होती है कि प्रथम रूप का ह् पहले क् था। कन्नड़ पॉगर् का अर्थ है चमकना, चमक; फिन पुह्दस्, पुह्लइत का अर्थ है शुद्ध, पवित्र। यहाँ मध्यवर्ती ग् को ह् में बदलने से फिन रूप की व्याख्या होती है।

तमिल कप्पि (ढाँकना) के फिन प्रतिरूप कवि में प् के स्थान पर व् है। फिन कुऑरि (आवरण) में मध्यवर्ती प् ध्वनि का स्पर्शतत्व क्षीण हुआ है। कुऑरि का एक

फिन प्रतिरूप **कुआॅर्त** (आवरण) है जिसका सम्बन्ध हिन्दी-तुर्की **कुर्ता** से है। **काॅप्** > **काॅव्** से एक कृदन्त रूप **कुआॅर** बना; फिर इसे मूल क्रिया मानकर पुनः कृदन्त बनाया **कुआॅर्त**। उसका आकारान्त कौरवी रूप हुआ **कुर्ता**। जर्मन **हॉनिग्** के अंग्रेजी प्रतिरूप **हनी** (शहद) में **ग्** लुप्त है, वैसे ही फिन **हुन्य** (उप०) में **ग्** लुप्त है और **हुनय** को जर्मन **हॉनिग्** से जोड़ना उचित होगा। संस्कृत **अज्** (हाँकना), ग्रीक **अगो** (ले चलना) से फिन **अय** (हाँकना) का सम्बन्ध जोड़ना इसी प्रकार उचित होगा।

संस्कृत **मूर्त** और **मूर्ति** से तुलनीय है फिन **मूरत** (थवई का काम करना), **मूररि** (थवई, मिस्त्री)। लैटिन **मूरुस** का अर्थ है दीवाल, विशेषकर नगर के चारों ओर बनी दीवाल। इस प्रकार **मुर्** या **मूर्** का मूल सम्बन्ध है गोल दीवाल बनाने से। तमिल **मुरुं** का अर्थ है घेरा डालना, घेरा। यह शब्द तमिल **पुर** (रक्षा करना) से सम्बद्ध है; **पुर्** का मूल अर्थ होगा घेरा डालना, इसी कारण दुर्ग के लिए संस्कृत में **पुर** शब्द है। **पुर्** का रूपान्तर **मुर्**, उससे **मुरुं**। घेरा डालना, रक्षा करना, दीवाल बनाना, कारीगरी का कोई भी काम करना, इस प्रकार सम्बद्ध रूपों में अर्थ-प्रसार हुआ। फिन **पीरि** (वृत्त) में **पिर्** क्रियामूल **पुर्** का वैकल्पिक रूप है। संस्कृत **भाण्ड**, तमिल **पानइ** (मिट्टी का बड़ा बर्तन), फिन **पन्नु** (बर्तन) एक वर्ग के शब्द हैं। फिन **साॅइ, साॅइद, साॅइन्** (ध्वनि) का सम्बन्ध संस्कृत **स्वन्** से है। संस्कृत **तम** के **म्** को दीर्घ करके फिन **तुम्म** (अँधेरा) रूप बना। फिन **अर्तेरिआॅइ** (भोजन करना) और संस्कृत **अद्** (उप०), फिन **विल्ल** (ऊन) और अंग्रेजी **वूल्**, संस्कृत **ऊर्ण** सम्बद्ध रूप हैं।

फिन **सिसर्, सिसरॅन्, सिसर्त** (बहन) संस्कृत **स्वसृ** (उप०) के प्रतिरूप हैं। संस्कृत **अत्ता** (माँ, बुआ, सास), तमिल **अत्तइ** (बुआ, सास), और फिन **ऐइति** (माँ) परस्पर सम्बद्ध रूप हैं। **अत्तइ** में सर्वनामचिन्ह **त** जोड़ने से **तात्तइ** रूप बनेगा; यह फिन भाषा में **तैति, तैतिए** (चाची) है। यदि हिन्दी **चाचा** का विकास **तात** से माना जाय तो **चाची** का पूर्वरूप **ताति** होगा। पारिवारिक सम्बन्धों को व्यक्त करने वाले अनेक फिन शब्द भारतीय आर्य-द्रविड़ शब्दों से मिलते-जुलते हैं, इस बारे में सन्देह नहीं रह जाता।

द्रविड़ भाषाओं से फिनोउग्रियन परिवार की समानताएँ देखकर बरो ने यह मत स्थिर किया कि दोनों भाषा-समुदायों का एक ही उद्गम होना चाहिए। बरो आर्य-भाषाओं से फिनोउग्रियन समुदाय की समानताओं को गौण स्थान देते हैं। उनका विचार है कि इन्डोइरानियन शाखा से भारत के बाहर फिनोउग्रियन लोगों का सम्पर्क हुआ था, तब उन्होंने इन्डोयूरोपियन परिवार के भाषा-तत्व ग्रहण किये। यदि बरो की स्थापना स्वीकार कर लें तो भी उससे यह निष्कर्ष तो निकलता ही है कि इन्डो-इरानियन, फिनोउग्रियन और द्रविड़जन किसी समय पड़ोसी थे और इनके परस्पर सम्पर्क से इनके मूल शब्दभण्डार में पड़ोसी भाषाओं के शब्द आये हैं। आश्चर्य की बात है कि फिनोउग्रियन परिवार में संख्यावाचक **शत** (सौ) सर्वत्र फैला हुआ है— फिन **सत**, मोर्द्विन् **शदाॅ**, जिर्यान **शो**, ओॅस्त्याक **सत्**, वोगुल **सात्** इत्यादि—और इस परिवार की द्रविड़ 'शाखा' में इस शब्द का नितान्त अभाव है। विद्वान् जब भाषाओं

में समानताएँ देखते हैं, तब वे इनकी व्याख्या के लिए सामान्य उद्गम की कल्पना करते हैं। विभिन्न भाषाकेन्द्रों में परस्पर सम्पर्क से भाषातत्वों का विनिमय हो सकता है, इस विनिमय से समानताओं का विकास हो सकता है, यह धारणा उनके चिन्तनक्षेत्र से बाहर रहती है।

फिन भाषा के कुछ सर्वनामरूप देखें। इस भाषा का एक पुराना प्रश्नवाचक सर्वनाम है **कॅनें** (कौन) यथा **कॅन्-तिश्रॅस्** (कौन जानता है)। बोलचाल की फिन में **कॅल्तै, कल्लै, कॅस्तै, कॅहॅन्** आदि रूपों का प्रयोग होता है। संस्कृत **किम्** के प्रतिरूप **कॅन्** का न् **कॅल्** शब्दमूल में ल् है। संस्कृत **कस्** का वैकल्पिक रूप **कॅस्** फिन में एक जगह **स्** की रक्षा किये है, दूसरी जगह उसका रूपान्तर ह् है; संस्कृत कः से मिलती-जुलती स्थिति है। **कॅस्** का एक विकल्प **कॉस्** भी रहा होगा। उससे **कु** सर्वनाम मूल बना; इसमें **क** प्रत्यय जोड़ने से **कुक** (कौन) रूप रचा गया। **कुइक** (कोई), **कुकान्** (कोई नहीं), **कॉस्क** (क्योंकि), **कुम्पि** (दो में कौन) आदि **कस्, किम्** शृंखला के सर्वनाम हैं। इसी प्रकार **यॉक, यॉत** (जो) संस्कृत **यद्** से सम्बद्ध हैं। स्पष्ट ही फिन भाषा के सर्वनामों का सीधा सम्बन्ध संस्कृत रूपों से है। उत्तम पुरुष सर्वनाम **मिनै** और **मॅं**, मध्यम पुरुष **सिनै** और **तॅं**, अन्य पुरुष **हैन्** और **हॅं** कन्नौगुगोरिअन परिवार से अपना सम्बन्ध व्यक्त कर रहे हैं। **मि** और **मॅं**, **सि** और **तॅं** सर्वनाम मूल वही हैं जो तुर्क-मंगोल परिवार में हैं; अन्य पुरुष **हॅं** का वैकल्पिक रूप **हॉं** तुर्की में **श्रॉं** (वह) है। संस्कृत **सः** का **सें** विकल्प बँगला में अब भी प्रचलित है, उसका रूपान्तर है **हॅं**। **सः** के बहुवचन रूप **ते** से सम्बद्ध है खल्ख **तॅर्** (वह)।

फिन भाषा में क्रिया के साथ सर्वनामचिन्ह तुर्क-मंगोल भाषाओं के समान लगते हैं: **श्रॉलॅन्** (मैं हूँ), **श्रॉलॅम्मॅ** (हम हैं), **श्रॉलॅत्** (तू है), **श्रॉलॅत्तॅ** (तुम हो); क्रियापद रचना की यह पुरानी पद्धति है, संस्कृत **पठामि** वाली। ठीक जैसे संस्कृत में इस विन्यास को अन्य पद्धति ने प्रभावित किया, तब **श्रहं पठामि** का चलन हुआ, ठीक वैसे फिन में **मिनै श्रॉलॅन्, मॅं श्रॉलॅम्मॅ, सिनै श्रॉलॅत्, तॅं श्रॉलॅत्तै** कहने का चलन हुआ। न केवल सर्वनामों में समानता है, वरन् फिनोउग्रियन और आर्यभाषाओं के विन्यास की प्राचीनतम पद्धति एक सी है और जिसे उत्तरकालीन पद्धति ने प्रभावित किया, वह भी एक सी है। इससे विदित होता है कि फिनोउग्रियन समाज कहीं यों ही घूमते-भामते आर्यों के सम्पर्क में न आ गये थे; दोनों समुदाय शताब्दियों तक पड़ोसी रहे हैं और इस प्रकार उनकी भाषाओं का विकास हुआ है।

८

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान और भारत

१९वीं शताब्दी में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान यूरुप और एशिया की दूर-दूर तक फैली हुई जातियों को बहुत कुछ वैसे ही एक दूसरे के निकट लाया जैसे औद्योगिक पूँजीवाद के विकास के साथ सारी दुनिया में एक विशाल पूँजीवादी बाजार कायम होने से दूर-दूर बसने वाली जातियाँ एक दूसरे के नजदीक आईं। ग्रीक और लैटिन जैसी भाषाएँ यूरुप के पुनर्जागरण में अपनी प्रेरणादायक भूमिका पूरी कर चुकी थीं; वे नये सिरे से ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के विकास में सहयोग देने लगीं। इस सहयोग में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका संस्कृत की थी। प्राचीन भाषाओं में संस्कृत के ही पास सबसे प्राचीन लिखित सामग्री मौजूद थी। इसके सिवा संस्कृत की व्याकरण-पद्धति तथा यहाँ के ध्वनि-विश्लेषण-सम्बन्धी सिद्धान्तों ने यूरुप के विचारकों पर बहुत गहरा असर डाला। संस्कृत के अतिरिक्त मध्यपूर्व की जिन भाषाओं का लोग नाम भी नहीं जानते थे, अचानक उनमें लिखी हुई विशाल सामग्री का पता लगा और प्राचीन मानव-संस्कृति तथा भाषाओं का एक नया संसार ही लोगों की आँखों के सामने आ गया। एस० एन० क्रैमर ने अपनी पुस्तक **द सुमेरियन्स** (१९६३) में १९वीं शताब्दी के उस भाषाविज्ञान को उचित ही मानवतावाद की संज्ञा दी है जिसने सुमेर, असीरिया और बैबीलोन की भाषाओं का पता लगाया।

२०वीं शताब्दी में आते-आते ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का महत्व काफी कम हो गया। इसका एक कारण यह हो सकता है कि ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में जो काम होना था, वह हो चुका है और उसमें किसी मौलिक विकास की सम्भावना नहीं है। प्रो० घाटगे ने बम्बई विश्वविद्यालय में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पर जो व्याख्यान दिये, उनकी भूमिका में यही धारणा प्रकट की है कि भारत-यूरोपीय ऐतिहासिक-भाषाविज्ञान की सभी प्रमुख स्थापनाएँ निश्चित हो चुकी हैं और इस क्षेत्र में छोटे-मोटे संशोधन और परिवर्तन की ही गुंजाइश है। **करेन्ट ट्रेन्ड्स इन लिंग्विस्टिक्स** (खण्ड ५, १९६९) में तुलनात्मक भारतीय आर्य भाषाओं पर अपने लेख में ब्लॉख की पुस्तक **लैन्दो आर्यां** (१९३३) के बारे में गोर्डन एच्० फेयरबैंक्स ने यह मत प्रकट किया है कि वह अब भी अपने विषय का श्रेष्ठ ग्रन्थ है और उसके बाद जो कुछ काम किया गया है, वह छोटी-मोटी समस्याओं को हल करने के लिए ही किया गया है। किन्तु **करेन्ट ट्रेन्ड्स** में ही प्रकाशित अनेक लेखों में विद्वानों ने ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की वर्तमान स्थिति पर क्षोभ प्रकट किया है। जिन पुरानी भाषाओं की सामग्री से ऐति-

हासिक भाषाविज्ञान की धारणाओं को पुष्ट या संशोधित करना था, उनकी ओर उन्होंने ध्यान दिलाया है। विशेषरूप से तुखारी, हित्ती और दक्षिणी यूनान की भाषाएँ भारतीय आर्य भाषाओं से सम्बन्धित हैं। भारत-यूरोपीय भाषा-परिवार के निर्माण और विस्तार की समस्याएँ सुलझाने के लिए इन प्राचीन भाषाओं के विश्लेषण से जो सहायता मिल सकती थी, वह नहीं ली गई। इनमें दक्षिणी यूनान की भाषा (मिसिनीयन ग्रीक) को लोग वैदिक भाषा का समकालीन या उससे कुछ अधिक प्राचीन बतलाते हैं। स्वभावतः इस पर यथोचित कार्य न होने से ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की पुरानी मान्यताएँ पूरी तरह पुष्ट नहीं मानी जा सकतीं।

प्राचीन भाषाओं के अलावा एशिया और यूरप की बहुत सी बोलियाँ हैं जिनका समुचित विवरण अभी प्रस्तुत नहीं किया गया। विशेषरूप से ईरानी परिवार की भाषाएँ मध्य एशिया, मध्य पूर्व और कोहकाफ तक अनेक क्षेत्रों में फैली हुई हैं। इनका विवरण प्राप्त न होने पर ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के प्रेमियों ने शोक प्रकट किया है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के नाम पर जिस एक भाषा परिवार पर सबसे अधिक काम हुआ है, वह भारत-यूरोपीय है। इसके बाद सामी, द्रविड़, आस्ट्रो-एशियाटिक और फिनोउग्रियन भाषा परिवारों पर भी काम हुआ है किन्तु यह काम अधूरा है और छोटे पैमाने पर हुआ है। अनेक भाषा परिवार अभी अविवेचित पड़े हुए हैं, जो ऐतिहासिक भाषाविज्ञानियों के लिए एक तरह की चुनौती है किन्तु इन पर काम करने की ओर लोगों का विशेष उत्साह नहीं दिखाई देता। पचीसों भाषाएँ ऐसी भी हैं जिनको किसी भी परिवार की सदस्यता देना बहुत कठिन मालूम होता है। भाषा-परिवार की कल्पना के बिना ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पंगु हो जाता है। उसकी धीमी प्रगति का यह भी कारण हो सकता है।

किन्तु यदि भाषाविज्ञान की सामान्य प्रगति की ओर ध्यान दिया जाय तो बीसवीं शताब्दी के सामने पुराना ऐतिहासिक भाषाविज्ञान वैसे ही ओछा लगता है जैसे आधुनिकता-बोध के सामने रानी विक्टोरिया के समय की कविता। अमरीका में ब्लूमफील्ड के समय से लेकर अब तक भाषाविज्ञान ने अभूत-पूर्व प्रगति की है और आज-कल भाषाविज्ञान में अमरीका वैसे ही जगद्गुरु है जैसे किसी समय अध्यात्मवाद में भारत था। न केवल विवरणात्मक भाषाविज्ञान में अमरीका ने प्रगति की है, वरन् भाषा-सम्बन्धी सैद्धान्तिक विवेचन में युगान्तर उपस्थित कर दिया है। चोम्स्की को लोग उचित ही भाषाविज्ञान का आइन्स्टाइन कहते हैं। किन्तु इस प्रगति से ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की पुरानी मान्यताओं में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ और न इस विकास से ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की प्रगति को विशेष प्रेरणा मिली। यह आश्चर्य की बात है क्योंकि ब्लूमफील्ड पाणिनि के प्रेमी तथा ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के पण्डित थे और चोम्स्की ने पाणिनि के कारक-विचार में अपने रचनान्तरण व्याकरण के तत्व देखे हैं। रौबर्ट डी० किंग ने एक पुस्तक **हिस्टौरिकल लिंग्विस्टिक्स ऐन्ड जेनरेटिव ग्रामर** लिखी है। इसमें उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि अमरीका में ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान पर यथेष्ट ध्यान न देने से काफी क्षति हुई है। (पृ० ३)

ब्लूमफील्ड ने लैंग्वेज नाम की अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा था कि संस्कृत की तरह ग्रीक और लैटिन का भी समुचित विवरण प्राप्त होता तो ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की प्रगति में बड़ी सहायता मिलती। इससे स्पष्ट है कि विवरणात्मक भाषाविज्ञान ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का शत्रु नहीं, उसका मित्र है। भाषाओं का विवरण ही प्राप्त न होगा तो उनकी तुलना कैसे होगी ? और यदि तुलना न होगी तो परिवार में उनका स्थान कैसे निर्धारित होगा और परिवार का इतिहास कैसे लिखा जायेगा ? होना यह चाहिए था कि विवरणात्मक भाषाविज्ञान के विकास के साथ-साथ पुरानी जानी पहचानी भाषाओं के व्याकरण नये ढँग से लिखे जाते और नई अविवेचित भाषाओं का नया विवरण प्रस्तुत किया जाता। इससे ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की प्रगति में बड़ी सहायता मिलती। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। या तो विवरणात्मक भाषाविज्ञान ने भाषाओं के सम्बन्ध में ऐसी कोई नई दृष्टि नहीं दी जिससे पुरानी मान्यताओं में संशोधन करना जरूरी होता या ऐतिहासिक भाषाविज्ञान ने पहले ही इतनी प्रगति कर ली थी कि अधिक विकास की गुंजाइश न होने से यह नई दृष्टि उसके लिए व्यर्थ थी। यह सम्भव है कि आधुनिक भाषाविज्ञान भविष्य की ओर अधिक उन्मुख है, इसलिए अतीत की ओर देखना उसके लिए समय नष्ट करना हो।

कारण जो भी हो, एशिया और यूरुप की भाषाओं के बारे में आधुनिक भाषा-विज्ञानी जहाँ भी लिखते हैं, अर्थात् ऐतिहासिक दृष्टि से उनके वर्गीकरण और विकास की बात करते हैं, वहाँ वे पुरानी मान्यताएँ ही दोहराते हैं। प्राचीन काल में एक इन्डोयूरोपियन भाषा थी, उसके विघटन से संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि भाषाकुलों का विकास हुआ। उत्तरभारत में पहले द्रविड़ लोग रहते थे, उन्हें परास्त करके यहाँ आर्यों ने अपने उपनिवेश कायम किये। उत्तरभारत की हिन्दी, मराठी, बँगला आदि भाषाएँ एक आदि भारतीय आर्यभाषा की सन्तान हैं, इस तरह की मान्यताएँ वे सभी लोग दोहराते हैं जो इस विषय पर कुछ लिखते हैं। १९वीं शताब्दी में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का जो मूल ढाँचा बनाया गया था, २०वीं सदी की भाषाविज्ञानी प्रगति से उसमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ।

भाषा-विज्ञान में परिवार-सम्बन्धी धारणा बहुत ही व्यापक है। एक आदि भाषा जननी—दूसरी भाषाएँ उसकी पुत्रियाँ। यह धारणा तुलनात्मक भाषाविज्ञान का मूलाधार है। मानव परिवार की उत्पत्ति और विकास के लिए दो व्यक्ति अनिवार्य हैं; एक स्त्री, एक पुरुष। आदम और हव्वा की कल्पना के बिना मानव-परिवार के विकास की बात नहीं की जा सकती। किन्तु भाषा-परिवार के विकास के लिए एक ही भाषा दरकार है; यहाँ दो भाषाओं के बिना, दो तत्वों के अन्तर्विरोध और मिलन के बिना ही नई-नई भाषाओं की सृष्टि हो जाती है। अंग्रेजी में लोग पैरेन्ट लैंग्वेज तथा डौटर लैंग्वेजेज की बात करते हैं। माता और पुत्री की बात कही जाय चाहे न कही जाय, वह भिन्न शब्दावली में अक्सर दुहराई जाती है। सोस्योर ने आधुनिक भाषाविज्ञान को काफी प्रभावित किया है। उन्होंने विद्वानों को इस बात के प्रति सचेत भी किया था कि भाषापरिवार वैसा ही परिवार नहीं होता जैसा मानव परिवार होता है किन्तु उन्होंने सामी भाषाओं

के रूप-विचार की चर्चा करते हुए आदि सामी भाषा तथा पुत्री भाषाओं का उल्लेख किया है (कोर्स इन जनरल लिंग्विस्टिक्स, लंदन, १९५९, पृष्ठ—२२०)। क० मुं० विद्यापीठ तथा केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा के अनेक विद्वानों का कहना है कि आदि भाषा या माता पुत्री भाषाओं की कल्पना पुरानी पड़ चुकी है और इसे अब कोई नहीं दोहराता। इसलिए यहाँ कुछ विद्वानों का उल्लेख आवश्यक होगा जो ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में काम कर रहे हैं और इन धारणाओं को दोहराते हैं। डा० देवीप्रसन्न पट्टनायक ने उड़िया, असमिया, बँगला और हिन्दी के आदि रूप पर शोध-कार्य किया है। उनकी पुस्तक की भूमिका में जी० ऐन्० फेयरबैंक्स ने यह प्रश्न उठाया है कि जब इन भाषाओं की आदि-पूर्व-भाषा (**दि ओरिजिनल ऐनसेस्टर ऑफ़ दीज लैंग्वेजेज**) विघटित हुई और इससे उसके आधुनिक प्रतिनिधियों का जन्म हुआ, तब किन विशिष्ट ध्वनिगत लक्षणों से यह विघटन सम्भव हुआ (देवीप्रसन्न पट्टनायक : **ए कन्ट्रोल्ड हिस्टोरिकल रिकन्स्ट्रक्शन ऑफ़ ओरिया, आसामीज, बंगाली ऐन्ड हिन्दी**, १९६६)। **करेन्ट ट्रेन्ड्स** में प्रकाशित फेयरबैंक्स के जिस लेख का नाम ऊपर आ चुका है, उसमें वह पांच आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी भाषा (द पैरेन्ट लैंग्वेज) की चर्चा करते हैं. मेरी आर० हास ने **करेन्ट ट्रेन्ड्स** (खण्ड ३) में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान और भाषाओं के पारिवारिक सम्बन्ध (जेनेटिक रिलेशनशिप) पर जो लेख लिखा है, उसमें बताया है कि पुत्री भाषाओं से जो सामग्री प्राप्त होती है, उससे आदि भाषा (प्रोटो-लैंग्वेज) का पुनर्निर्माण सम्भव होता है। नार्मन ऐच्० ज़ाइड ने मुंडा भाषा-परिवार पर बहुत काम किया है। **करेन्ट ट्रेन्ड्स** (खण्ड ५) में उन्होंने मुंडा तथा ग़ैर-मुंडा आस्ट्रो-एशियाटिक भाषाओं पर एक लेख लिखा है। इसमें उन्होंने प्रोटो मुंडा तथा उसकी "डौटर" और "ग्रैंड डौटर", "प्रोटो लैंग्वेजेज" की चर्चा की है। स्पष्ट है कि परिवार-सम्बन्धी माता-पुत्री वाली कल्पना आधुनिक ऐतिहासिक भाषाविज्ञान से बहिष्कृत नहीं है। ब्लूमफ़ील्ड और एमेनो ने द्रविड़ भाषाओं पर उसी पद्धति के अनुसार काम किया है जिसमें एक आदि भाषा के विघटन से अनेक भाषाओं के विकास की कल्पना की गई है। जैसे बड़े भाषा-परिवारों के लिए आदि भाषा है, वैसे ही छोटे परिवारों, यथा लैटिन परिवार अथवा संस्कृत परिवार, के लिए आदि भाषा है। स्थापना यह है कि हिन्दी, मराठी, बँगला आदि भाषाएँ संस्कृत के विघटित होने के बाद उसी का आधुनिक रूप हैं; वैसे ही फ्रांसीसी, इतालवी, स्पेनी आदि भाषाएँ लैटिन के विघटन के बाद उसका आधुनिक रूप हैं। यूनान के बारे में कोई यह नहीं कहता कि वहाँ की आधुनिक भाषा प्लैटो अथवा होमर की भाषाओं के विघटन का परिणाम है। कोई यह भी नहीं कहता कि प्लैटो की भाषा होमर की भाषा से निकली है। वास्तव में प्लैटो और होमर की भाषाएँ दो भिन्न बोलियाँ हैं। इनके अलावा वहाँ अन्य बोलियों का चलन भी था जो ध्वनितन्त्र, व्याकरण, शब्द-भण्डार आदि की दृष्टि से परस्पर भिन्न हैं। ई० पू० पहली सहस्राब्दी में निश्चित रूप से इनका वहाँ चलन था। इनसे भी पहले ई० पू० दूसरी सहस्राब्दी में दक्खिनी यूनान की जो भाषा मिली है, उसे भी कोई समस्त यूनानी बोलियों की जननी नहीं मानता। सौभाग्य से यूनान में अनेक गणों (कबीलों) की भाषाओं का प्रयोग काफी पहले से होता रहा और उनके नमूने भी

सुलभ हैं। इसलिए यह सिद्ध करना जरा कठिन है कि एक ही आदि भाषा से इनका जन्म हुआ किन्तु बाद में चलकर अनेक बोलियों का चलन बन्द हो गया और न केवल यूनान के भीतर वरन् यूनान के बाहर भी दक्षिणी यूरुप, एशिया, अफ्रीका, जहां भी यूनानियों के उपनिवेश थे, एक ही यूनानी भाषा बोली जाने लगी। यह स्थिति सामाजिक विकास, विशेष रूप से व्यापारिक सम्बन्धों के विकास का परिणाम थी। इससे मिलती-जुलती स्थिति प्राचीन भारत में वैदिक भाषा की है। उसके समानान्तर और कौन-सी बोलियां यहां बोली जाती थीं, उनका कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। इससे लोगों ने निष्कर्ष निकाला कि वैदिक भाषा के समानान्तर उससे मिलती-जुलती दूसरी गण-भाषाओं का यहाँ चलन ही न था। यदि यूनान में पुरानी बोलियों के नमूने सुलभ न होते तो शायद लोग वहां भी कहते कि यूनान की आधुनिक भाषा होमर की भाषा के विघटन का परिणाम है। संस्कृत पर बरो अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ के पहले ही वाक्य में कहते हैं कि तीन हजार वर्ष पहले उत्तर-पश्चिम से आने वाले हमलावरों ने जो एकरूप भाषा (ए सिंगल् फ़ोर्म ऑफ़ स्पीच) यहां चलाई, उसी से उन तमाम भाषाओं की उत्पत्ति ([illegible]) हुई जो अधिकांश भारत में बोली जाती हैं। आदि भाषा के प्रति विद्वानों में कैसा प्रबल आग्रह है, यह बरो के इस वाक्य से समझा जा सकता है। आश्चर्य की बात है कि लैटिन की समकक्ष अन्य प्राचीन इतालवी बोलियां सुलभ हैं; किन्तु उनसे आधुनिक रोमांस भाषाओं का सम्बन्ध प्रायः नहीं जोड़ा जाता।

यह भी अद्भुत बात है कि यूनान में जहां पहले अनेक बोलियां थीं, वहां एक भाषा रह गई और उत्तर भारत में जहां एक भाषा थी, वहां अनेक भाषाओं का विकास हुआ। एक बात स्पष्ट है कि मुंडा, द्रविड़, आर्य, सामी आदि जिन भाषा-परिवारों का इतिहास लिखा गया है, उनमें अनेक भाषाओं को जन्म देने वाली एक आदि भाषा की कल्पना की गई है। इस बात को लोग मानते हैं कि भारत-यूरोपीय परिवार को लेकर जिस पद्धति से इतिहास-लेखन हुआ, उसी पद्धति से अन्य भाषा परिवारों के भी इतिहास-लेखन का प्रयत्न हुआ। मेरी आर० हास के अनुसार ब्लूमफ़ील्ड ने अमरीकी आदिवासियों की कुछ भाषाओं का इतिहास-लेखन किया तो उन्होंने भारत-यूरोपीय भाषा-परिवार पद्धति से ही उनकी आदि भाषा (प्रोटो अलगौंकिन) का पुनर्निर्माण किया।

किन्तु ब्लूमफ़ील्ड पुराने ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की कुछ खामियों से परिचित थे। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की आधार-भूमि थी तुलनात्मक पद्धति। इस पद्धति के अनुसार काम करने वाले विद्वान् यह मानकर चलते थे कि किसी भाषा-परिवार के निर्माण से पहले किसी एकरूप आदि भाषा का चलन था। लोग कहते हैं कि बारह कोस पर बोली बदलती है। यह प्रायः असम्भव है कि लम्बे-चौड़े इलाकों में उस समय जब कि यातायात के साधनों का बहुत विकास न हुआ था, एकरूप कोई परिनिष्ठित भाषा बोली जाती हो। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ **लैंग्वेज** के अठारहवें अध्याय में तुलनात्मक पद्धति की आलोचना करते हुए ब्लूमफ़ील्ड ने लिखा था कि यह पद्धति यह मानकर चलती है कि जननी-भाषा के जो लक्षण थे, उनकी साखी प्रत्येक शाखा अथवा भाषा में मौजूद है, और इन सम्बन्धित भाषाओं में जो एक-सी या मिलती-जुलती विशेषताएँ हैं, उनसे जननी-

भाषा की विशेषताओं का पता चलता है। ब्लूमफील्ड कहते हैं कि यह मानने का अर्थ यह हुआ कि आदि भाषा बोलने वाला समाज (दि पैरेन्ट कम्यूनिटी) भाषा के विचार से पूरी तरह एकरूप था; दूसरे यह अर्थ भी निकलता है कि आदि भाषा बोलने वाला समाज अचानक और तीखे ढंग से विघटित हो गया और उससे दो या दो से अधिक पुत्री समाज (डौटर कम्यूनिटीज़) उत्पन्न हो गईं और इनका एक-दूसरे से कोई सम्पर्क न रहा।

ब्लूमफील्ड की यह आलोचना बहुत ही महत्वपूर्ण है। सम्भावना यही है कि सभ्यता के विकास के साथ गण-समाज एक दूसरे के निकट आये, न कि यह कि टूटकर ऐसे अलग हुए कि उन्होंने एक दूसरे को प्रभावित ही न किया। जो बात एक परिवार की भाषाओं के लिए सही है, वह अनेक भाषा-परिवारों के लिए भी सही हो सकती है। भाषा-परिवार एक दूसरे से कटे हुए शून्य में विकसित नहीं होते, वरन् वे [illegible] में एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। भाषा-परिवारों के [illegible] क्रम में प्राचीन-काल की ओर चलते हुए हम या तो ऐसे परस्पर विरोधी तत्वों तक पहुँचते हैं जिनसे उस परिवार की सभी भाषाओं का सम्बन्ध नहीं होता अथवा ऐसे सामान्य तत्वों तक पहुँचते हैं जो सभी अथवा अधिकांश भाषाओं की सम्पत्ति जान पड़ते हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि भाषाविज्ञान में अक्सर दो विरोधी से लगने वाले दृष्टिकोण सामने आते हैं। एक के अनुसार प्रत्येक मनुष्य की अपनी बोली होती है, उसकी अपनी विशेषताएँ होती हैं और भाषाविज्ञान में अध्ययन की मुख्य वस्तु यह व्यक्ति की बोली (ईडियोलेक्ट) है। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि भाषाओं के विकास की कुछ विश्वव्यापी मानसिक प्रेरणाएँ हैं जो विभिन्न भाषाओं में प्रतिफलित होती हैं। इन (लैंग्वेज यूनीवर्सल्स) का अध्ययन ही भाषाविज्ञान का मुख्य विषय है। निस्सन्देह प्रत्येक व्यक्ति की बोली में अपनी विशेषताएँ होती हैं किन्तु वह इस बोली का व्यवहार दूसरों को अपनी बात समझाने के लिए ही करता है और दूसरों की व्यक्तिगत विशिष्ट बोलियाँ भी वह समझ लेता है। इससे सिद्ध हुआ कि भाषा सामाजिक आदान-प्रदान का साधन है और इसी दृष्टि से भाषाविज्ञान में उसका अध्ययन होना चाहिए। खुद ही अपने से बोले और अकेले में अपनी बातें सुने, यह स्थिति कुछ पहुँचे हुए लोगों की हो जाती है। किन्तु वे भी वहाँ तक पहुँचने से पहले अपने परिवेश से वैसे ही भाषा सीखते हैं जैसे वे दूसरे लोग जो पहुँचे हुए नहीं हैं।

यदि विश्वव्यापी सामान्य मानसिक प्रेरणाओं से भाषाओं का जन्म और विकास होता तो सारे संसार में एक ही भाषा बोली जाती या अनेक भाषाओं में केवल ऊपरी भिन्नता होती और उनके मूल तत्व एक ही होते। किन्तु भाषाओं की स्थिति इससे भिन्न है। भाषाओं के इतिहास को हम किस निगाह से देखते हैं, यह काफी हद तक इन दृष्टि-कोणों पर निर्भर है। दोनों ही दृष्टिकोण एकांगी हैं, इसलिए ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के विकास में सहायक नहीं होते। वास्तव में जैसे व्यक्ति और समाज एक दूसरे से जुदा, फिर भी सम्बद्ध हैं, वैसे ही भाषा के विश्वव्यापी तत्व व्यक्ति-केन्द्रित विशेषताओं से जुदा, फिर भी सम्बद्ध हैं। इसी तरह एक परिवार की भाषाएँ एक दूसरे से भिन्न, फिर भी आपस में जुड़ी हुई हैं। ऐसे ही भिन्न भाषा-परिवार एक दूसरे से अलग हैं, फिर भी उनमें अनेक तत्व सामान्य हैं। ऐसा इसलिए है कि किसी भी भाषा-परिवार का विकास इस

धरती पर नितान्त अकेलेपन में नहीं हुआ; किसी भी भाषा-परिवार की शाखाओं का विकास ऐसी अलगाव की स्थिति में और भी नहीं हुआ। यह भी स्मरणीय है कि भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध उन्हें बोलने वाले समाजों के परस्पर सम्बन्धों पर काफी हद तक निर्भर हैं।

भाषा का अध्ययन उस समाज के गठन से अलग करके नहीं हो सकता जिसमें वह बोली जाती है। यहाँ तात्पर्य समाज-व्यवस्था से नहीं वरन् इस व्यवस्था से सम्बद्ध सामाजिक गठन से है। रक्त सम्बन्ध पर आधारित गण सामाजिक गठन का एक रूप हैं। इस गठन के अन्तर्गत एक व्यवस्था वह है जिसमें सब लोग मिलकर शिकार करते हैं या कन्द मूल इकट्ठे करते हैं, दूसरी व्यवस्था वह है जब पशु-पालन और खेती के बल पर श्रम का विभाजन हो जाता है और वर्गों तथा व्यक्तियों के पास सम्पत्ति इकट्ठी होने लगती है। इस दूसरी व्यवस्था के अन्तर्गत ये गण टूटने लगते हैं और पहले से बड़ी इकाइयों का निर्माण करते हैं। भारत में गौतम बुद्ध के समय से लेकर अब तक जो जनपद दिखाई देते हैं — जैसे अवध, बुन्देलखण्ड, मालवा, मिथिला, आदि — वे उन गणों से ही बने हैं जो टूट रहे थे या टूट रहे हैं। सामन्ती व्यवस्था के जनपद प्राक्सामन्ती गण राज्यों से भिन्न कोटि के हैं। सामन्ती-व्यवस्था के ह्रासकाल में इन जनपदों का अलगाव टूटा और बड़ी-बड़ी जातियों का निर्माण हुआ जैसे हिन्दी भाषी जाति, मराठी भाषी जाति, बँगला भाषी जाति इत्यादि। इसलिए यह प्रश्न समीचीन है कि जिस आदि भाषा से उस परिवार की भाषाओं का जन्म होता है, वह किसी आदिम कबीले की भाषा है या सामन्तकालीन जनपद की भाषा है या विभिन्न जनपदों के मेल से बनी हुई किसी आधुनिक जाति की भाषा है।

सामाजिक विकास-क्रम में किसी भी भाषा के बोलने वाले स्थिर इकाई की तरह नहीं रहते। इस अस्थिरता का प्रभाव भाषा पर भी पड़ता है। इसलिए जो लोग समझते हैं कि आधुनिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके उनकी सामान्य विशेषताओं के आधार पर आदि भाषा का पुनर्निर्माण कर लेंगे, वे वास्तव में उसी पद्धति का अनुसरण करते हैं जिसके अनुसार आदि-भाषा के विघटन के पश्चात् लोग आधुनिक भाषाओं तक पहुँचते हैं। तुलनात्मक पद्धति में जो दोष है, वह दोनों स्थितियों में है, चाहे आदिभाषाओं से शाखाओं की ओर चलो, चाहे शाखाओं से आदिभाषा की ओर चलो। दोनों ही स्थितियों में भाषाओं के विकास का पेचीदा रास्ता बहुत सीधा हो जाता है।

वृक्ष-शाखा सम्बन्धी स्थापना में जो कमजोरियाँ थीं, उन्हें दूर करने के लिए लोगों ने कल्पना की कि आदिभाषा एकरूप नहीं थी वरन् उसमें बोलियों की भिन्नता थी। ब्लूमफील्ड ने जोहानेस श्मित का हवाला देते हुए कहा कि ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की कठिनाइयाँ दूर करने के लिए यह कल्पना की गयी कि भाषा-सम्बन्धी विभिन्न परिवर्तन लहरों की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान की तरफ फैलते जाते हैं। जितना ही दूर जाएँगे, उतना ही भेद बढ़ता जाएगा यद्यपि किसी एक बिन्दु पर यह कहना कठिन होगा कि अमुक बोली समाप्त हुई और दूसरी आरम्भ हुई। श्मित के अनुसार इन्हीं बोलियों में कोई एक बोली राजनीतिक और सामाजिक कारणों से प्रमुख हो जाती है और दूसरी

बोलियों का स्थान ले लेती है। श्मित के इस सिद्धान्त पर टिप्पणी करते हुए सोस्योर ने भी पुराने ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की आलोचना की थी। सोस्योर ने कहा था कि यह कल्पना करना आवश्यक नहीं है कि विभिन्न जातियाँ (नेशन्स) जब नये स्थानों पर पहुँचीं तब नयी भाषाओं का विकास हुआ; विभिन्न देशों में इन जातियों के अभियान से पहले ही बोलीगत भेद उठ खड़े हो सकते थे और अवश्य उठ खड़े हुए होंगे। (**कोर्स इन जेनरल लिंग्विस्टिक्स**, पृ० २०९)। कार्ल ब्रुगमन ने इन्डोजर्मन भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण की भूमिका में लिखा, "यह एक असम्भव कल्पना है कि जिस भाषा को काफी संख्या में लोग बोलते रहे हों और जो विकास की कई मंजिलें पार करती रही हो, उसमें कुछ न कुछ बोलीगत भेद न उत्पन्न हो गया हो; इसलिए हम नहीं मानते कि जिस समय इन्डोजर्मन लोग अपेक्षाकृत छोटे राज्य में बसे हुए थे और उनमें परस्पर सम्पर्क भी काफी घनिष्ठ था, उस समय उनकी भाषा एकदम एकरूप थी। निस्सन्देह स्थानीय भेद पैदा हो गये थे यद्यपि पूरे विश्वास के साथ इनके ठीक-ठीक उदाहरण निश्चित नहीं किये जा सके" (**एलीमेन्ट्स ऑफ़ द कम्पैरेटिव ग्रामर ऑफ दि इन्डो-जर्मैनिक लैंग्वेजेज़**, लन्दन १८८८, पृष्ठ २)।

बरो ने भी लिखा है कि संस्कृत शब्द नाभि और यूनानी शब्द ओमफ्लोस एक ही मूलरूप से नहीं जोड़े जा सकते यद्यपि दोनों भाषाओं ने उन्हें आदिम इन्डोयूरोपियन काल में प्राप्त किया है; विस्तृत तुलना के द्वारा स्पष्ट ही जिस इन्डोयूरोपियन भाषा तक हम पहुँचते हैं, वह उस समय भी भिन्न बोलियों में गहराई से विघटित हो चुकी थी (आलरेडी डीपली स्प्लिट अप इन्टू ए सीरीज ऑफ वेरीइंग डायलेक्ट्स; **द संस्कृत लैंग्वेज**, पृष्ठ ११)।

ब्रुगमन या बरो दरअसल आदिभाषा वाले सिद्धान्त के विरोधी नहीं हैं। उनकी कठिनाई केवल यह है कि जिस आदिभाषा तक वह पहुँचते हैं, वह बोलियों में बँटी हुई दिखायी देती है। बरो की शब्दावली से प्रतीत होता है कि मूलभाषा ही विघटित होकर बोलियाँ बनी हैं; यदि थोड़ा परिश्रम और किया जाए या कुछ और सामग्री प्राप्त हो जाए तो उस मूलभाषा का भी पता लग जाएगा जिससे बोलियाँ बनी हैं। भद्रिराजु कृष्णमूर्ति ने तेलुगु क्रियापदों पर अपने ग्रन्थ में यह माना है कि आदि द्रविड़ भाषा में बोलीगत भेद उत्पन्न हो गये थे (**तेलुगु वर्बल बेसेज़**, पृष्ठ २४९)। कामिल ज़्वेलेबिल ने द्रविड़ भाषाओं के ध्वनितन्त्र का जो तुलनात्मक अध्ययन किया है, उसमें उन्होंने कृष्णमूर्ति की स्थापना से मिलती-जुलती बात दोहराई है। उन्होंने लिखा है: "प्रोटो-द्रवेड़ियन में भी स्पष्ट बोलीगत भेद मौजूद रहे होंगे और साथ ही बोलियों के मिश्रण के लिए भी परिस्थितियाँ मौजूद रही होंगी।" (**कम्पैरेटिव ड्रैवीडियन फ़ोनोलौजी**, १९७०, पृष्ठ १८)। आर्यभाषाओं के क्षेत्र में काम करने वालों की तरह द्रविड़ भाषाओं के क्षेत्र में काम करने वाले भी यह मानते हैं कि आदिभाषा में बोलीगत भेद थे। ये बोलियाँ एक-दूसरे से इतना मिलती-जुलती हैं कि उन्हें एक ही भाषा की बोलियाँ माना गया है। दो विरोधी तत्वों के मिलन और संघर्ष से प्रेरित होने वाला विकासक्रम यहाँ नहीं है।

दो भाषापरिवारों के निर्माण और परस्पर प्रभाव की प्रक्रिया यहाँ और भी नहीं

है। इसलिए यह कहना असंगत न होगा कि १९वीं सदी में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान ने भाषाओं का जो परिवारगत वर्गीकरण किया था और इन परिवारों के अन्तर्गत भाषाओं के विकास की जो मोटी रूपरेखा बनायी थी, वह सब आज भी मान्य है।

जहाँ तक भारत से इस ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का सम्बन्ध है, वहाँ बात पुराने इतिहास की ही नहीं आज के भारत की भी है। जिस समय ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का विकास हुआ, उस समय भारत अंग्रेजों का उपनिवेश था। भाषाविज्ञान की समस्याएँ राजनीतिक समस्याओं से जुड़ी हुई थीं। अंग्रेजों को यहाँ दो प्रमुख भाषासमूह दिखायी देते थे—एक उत्तर भारतीय आर्य भाषासमूह और दूसरा दक्षिण भारतीय द्रविड़ भाषा-समूह। यदि यह सिद्ध किया जाए कि आर्य आक्रमणकारियों ने भारत में आकर द्रविड़ भाषाओं का दमन किया तो इसकी प्रतिक्रिया अंग्रेजों के लिए लाभप्रद होगी। कुछ ईसाई धर्म-प्रचारकों ने बड़ी लगन से और बड़ी सूझबूझ से द्रविड़ भाषाओं पर कार्य किया किन्तु उनके इस बहुत अच्छे काम का एक उद्देश्य यह भी था कि वे द्रविड़-भाषियों को समझायें कि उत्तर भारत के ब्राह्मणों ने तुम पर अपनी भाषा लादी है, इसलिए तुम्हारा कर्तव्य न केवल संस्कृत के चंगुल से निकलना है वरन् ब्राह्मण धर्म की दासता से मुक्त होना भी है। ईसामसीह की शरण में जाने से ही पुराने पापों का प्रायश्चित्त सम्भव है। अंग्रेजों ने राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की एकता को छिन्नभिन्न करने के लिए मुसल-मानों को, भाषा और संस्कृति में, हिन्दुओं से अलग करके दिखाया। पंजाब में उन्होंने मुसलमानों को हिन्दुओं से ही नहीं सिक्खों से भी अलग करने की कोशिश की। यद्यपि पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब की बोलियों में वैसा भेद नहीं है जैसा ब्रिटेन की अंग्रेज़ी और वेल्श भाषाओं में है, फिर भी उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि पश्चिमी पंजाब सदा ईरान की ओर उन्मुख रहा है। दरद भाषाओं की कल्पना से ग्रियर्सन ने सिन्ध, कश्मीर और पश्चिमी पंजाब को, १९४७ से बहुत पहले ही, भारत से अलग कर दिया था। वह पुराना काम १९४७ से कुछ पहले, और विशेषकर उसके बाद, ब्रिटेन और अमरीका के अनेक भाषावैज्ञानिक करते रहे हैं। एमेनो कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रख्यात विशेषज्ञ हैं। वह संस्कृत के पण्डित हैं, पाणिनि के अन्यतम प्रशंसक हैं और द्रविड़ भाषाओं के विशेषज्ञ हैं। १९५४ में उन्होंने भारत के भाषागत प्रागैतिहासिक काल पर एक निबन्ध लिखा था। इसके आरम्भ में उन्होंने यह धारणा दोहराई कि ईसा-पूर्व दूसरी सहस्राब्दी में एक इण्डोयूरोपियन भाषा बोलने वाले गिरोह उत्तर पश्चिम से भारत में आए, आगे चलकर इस भाषा का नाम संस्कृत हुआ। एमेनो कहते हैं कि डेढ़ सौ साल से हम उपर्युक्त भाषा सिद्धान्त मानते आए हैं और उसके पक्ष में जो तर्क दिये गए हैं, उन पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है (यद्यपि हिन्दू लोगों को अपनी परम्परा के आधार पर ऐसे किसी आक्रमण का ज्ञान नहीं है)। एमेनो की इस युक्ति से यह भी सिद्ध होता है कि बीसवीं सदी में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान मूलतः पुरानी मान्यताओं को लेकर ही चल रहा है। इसके आगे वह कहते हैं कि उत्तर भारत और दक्षिण भारत के बीच की सीमारेखा पर ध्यान दिया जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि हमलावर भाषा संस्कृत (दि इनवेडर लैंग्वेज संस्कृत) से उत्पन्न (डिसेन्ड) होने वाली इन्डोआर्यन भाषाओं के

सामने द्रविड़ भाषाएँ निरन्तर पीछे हटती चली गई हैं।

इस तरह एमेनो ने आर्य भारत और द्रविड़ भारत के रूप में भारत का भाषागत विभाजन कर दिया है। लेकिन उन्हें पाकिस्तान से कम दिलचस्पी नहीं है। ग्रियर्सन के चरण-चिन्हों पर चलते हुए वह इस धारणा की पुष्टि करते हैं कि जिस सिन्धु घाटी में हड़प्पा और मोएन्जोदड़ो की सभ्यता विकसित हुई थी, वह कभी भारत से घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध नहीं रहा। अपनी बात के समर्थन में उन्होंने एक दूसरे अमरीकी विद्वान् डब्लू नार्मन ब्राउन की पुस्तक का हवाला दिया है। पुस्तक का नाम है, **द युनाइटेड स्टेट्स ऐन्ड इण्डिया ऐन्ड पाकिस्तान** (हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५३)। इस पुस्तक में नार्मन ब्राउन कहते हैं कि बाहर के दखलन्दाज दर्रों से होते हुए जब भारत में आकर जम गये, तब शुरू में यहाँ के निवासियों की तुलना में उनके मन का लगाव बाहर वालों से ही ज्यादा था। बाहर वालों से उनका वह सम्बन्ध तभी शिथिल हो सकता था जब भारत के भीतर और धँसते हुए यहाँ वे और भी जम जाते। तीसरी सहस्राब्दी में सिन्धु घाटी की हड़प्पा-सभ्यता आंशिक रूप में तत्कालीन पश्चिमी एशिया की सभ्यता से मिलती-जुलती थी और आंशिक रूप में गंगा तटवर्ती बाद की भारतीय सभ्यता से मिलती थी। इसके बाद जो आर्य पंजाब में आकर बसे और जिन्होंने वेदमन्त्र रचे, वे अपने समकालीन पूर्वी भारतीयों की अपेक्षा अपने धार्मिक और भाषायी सम्बन्धियों—'ईरानियों'—के अधिक निकट थे। जब भारत में इस्लाम का प्रवेश हुआ, तब उत्तर-पश्चिमी प्रदेश का सम्बन्ध ईरान, बुखारा, मध्यएशिया से अधिक था, भारत से कम।

"यदि कोई ऐसा युग रहा हो जब पंजाब सांस्कृतिक रूप में शेष उत्तरी भारत का अंग बन गया हो, तो वह युग बहुत ही अल्प रहा होगा।" (एमेनो : **कलेक्टेड पेपर्स**, अन्नामलइ यूनिवर्सिटी, १९६७, पृष्ठ १५८)। भाषाविज्ञान की चर्चा करते हुए एमेनो जब इस तरह की स्थापनाएँ उद्धृत करते हैं, तब उनके राजनीतिक उद्देश्यों पर सन्देह होने लगता है। उन्होंने अनेक जगह लिखा है कि वेदों की रक्षा के लिए और उनकी भाषा को बोलने और समझने के लिए प्राचीन काल में भारतीय भाषाविज्ञान का विकास हुआ और इस विकास की सबसे बड़ी देन थे पाणिनि। किन्तु पाणिनि उसी उत्तर-पश्चिमी प्रदेश के थे जो युगों-युगों तक भारत से अधिक पश्चिमी पड़ोसियों की ओर उन्मुख रहा था। आश्चर्य की बात है कि पाणिनि के व्याकरण का जितना प्रभाव भारत पर पड़ा, उसका सहस्रांश भी ईरान पर नहीं पड़ा। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का यह भी एक चमत्कार है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की आधुनिक प्रगति के साथ जैसे पश्चिमी पंजाब भारत से कट गया, वैसे ही पूरा भारत एशिया से कटता चला गया है। पहले विश्वास था कि इन्डोयूरोपियन परिवार में 'इन्डो' लगा हुआ है, इसलिए उसमें भारत का भी कुछ हिस्सा होगा। किन्तु धीरे-धीरे 'इन्डो' का महत्व क्षीण होता गया और अकेला 'यूरोपियन' ही सार्थक रह गया। संस्कृत के वे सारे तत्व जो यूरप की भाषाओं में न मिले, गैर-इन्डोयूरोपियन माने गये। वैसे अनार्य तत्व मूलतः द्रविड़ भाषाओं के होंगे, यह कल्पना की गई। कौल्डवेल ने मध्य उन्नीसवीं सदी में ही द्रविड़ों का सम्बन्ध शक

रिवार से जोड़ा था। कौल्डवेल का यह शक परिवार बहुत लम्बा-चौड़ा था। इसमें तुर्क-मंगोल और फिनो-उग्रियन परिवार की भाषाएँ शामिल थीं। बीसवीं सदी में तुर्क-मंगोलों को यूरुप के फिन-मगयारों से अलग किया गया और द्रविड़ों का सम्बन्ध यूरुप के फिनो-उग्रियन परिवार से ही जोड़ा गया। बहुत दिनों तक किसी ने कौल्डवेल की मान्यताओं पर ध्यान नहीं दिया, न स्वीकारा, न अस्वीकारा। लगभग सौ वर्ष बाद बरो ने पुराना सूत्र फिर उठाया। उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया कि द्रविड़ों को उत्तर-पश्चिमी भारत का मूल निवासी बताया जाता है। फिनो-उग्रियन तथा द्रविड़ परिवारों की भाषाओं में इतनी अधिक समानताएँ हैं कि उनका एक सामान्य उद्भव मानना ही होगा। बरो के इस मत के अनुसार आर्यों की तरह द्रविड़ भी भारत में बाहर से आए और यूरुप से आए। द्रविड़ भाषाओं में वही अंश भारतीय हो सकता है जो फिनो-उग्रियन परिवार की भाषाओं में न मिले। इस तरह द्रविड़ भाषा परिवार की भाषा-सम्पदा भी यूरुप के हवाले हो गई।

एक तीसरा भाषा-परिवार है मुंडा या कोल। इसका नाम आस्ट्रोएशिऐटिक भी है। जैसा कि इस नाम से प्रकट है, इस परिवार की भाषाएँ बोलने वाले भी भारत में बाहर से आए, बरो के अनुसार पूर्व की ओर से आए। इन्हें आर्यों ने तो परास्त किया ही, सम्भव है द्रविड़ों ने भी उन्हें दास बनाया हो। बरो के अनुसार जब आर्य लोग पंजाब पार करते हुए गंगा-तटवर्ती भूमि की ओर बढ़ रहे थे, तब उनका मुकाबला करने के लिए मुंडा लोग पूरब से उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ आए। (बरो की ये मान्यताएँ उन लेखों में हैं जो अन्नामलइ यूनिवर्सिटी द्वारा **कलेक्टेड पेपर्स आन द्रविडियन लिंग्विस्टिक्स** नाम से साइक्लोस्टाइल कराके प्रकाशित किए गए हैं।) ऐसा लगता है कि आर्यों के विरुद्ध मुंडा और द्रविड़ जनों का संयुक्त मोर्चा बनते-बनते रह गया। मुंडा भाषाओं में उनके जो मूलतत्व हैं, वे सब दक्षिण-पूर्वी एशिया के हैं। भारत का हिस्सा यहाँ भी नहीं है। बस इतनी गनीमत है कि मुंडा लोग यूरुप से न आए थे।

एक अन्य भाषा-परिवार है चीनी-तिब्बती, इस परिवार की अनेक भाषाएँ हिमालय की उपत्यकाओं में बोली जाती हैं। जैसा कि नाम से प्रकट है, 'चीनी तिब्बती' परिवार अभारतीय है; न चीन भारत का हिस्सा है, न तिब्बत। इसलिए नाग भाषा-परिवार की जो भाषाएँ भारत में बोली जाती हैं, वे भी भारत में बाहर से आईं। ऐसा लगता है कि जब यूरुप और एशिया के सारे इलाके आबाद हो चुके थे, तब भारत ही ऐसा देश था जहाँ कोई आबादी न थी। इस खाली जमीन पर उत्तर, पश्चिम, पूरब जिस दिशा से जिसे जगह मिली, घुसता चला आया और यहाँ आकर बस गया। पहले कुछ शब्द देशज होते थे; जो संस्कृत में न मिले वह देशज। इस मान्यता में भी प्रच्छन्न रूप से यह भाव निहित था कि संस्कृत विदेशी भाषा है। पहले लोग इस देशज का सम्बन्ध द्रविड़ मुंडा आदि परिवारों से जोड़ते थे। किन्तु पृथ्वी को पीठ पर लादने वाले कच्छप की तरह अब इस देशज का पता लगाना बहुत कठिन हो गया है।

भारत के सन्दर्भ में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का सारतत्व यह है कि भारत की अपनी भाषा-सम्पदा कुछ भी नहीं है।

एमेनो ने एक और लेख लिखा है—**इण्डिया ए लिंग्विस्टिक एरिया**। स्थापना यह है कि भारत में अनेक भाषा-परिवार आकर मिलते हैं और एक-दूसरे को इस तरह प्रभावित करते हैं कि उनमें कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएँ उत्पन्न होती हैं जो भारत के बाहर इन परिवारों की भाषाओं में नहीं मिलतीं। एमेनो की यह स्थापना महत्वपूर्ण है। इसमें यह माना गया है कि भाषा-परिवार एक दूसरे से पूरी तरह अलग-थलग, एक दूसरे को प्रभावित किये बिना, विकसित नहीं होते। सोवियत भाषाविद् आन्द्रोनोव ने टाइप के अनुसार भाषाओं के वर्गीकरण पर जोर देते हुए कहा है कि आर्य और द्रविड़ परिवारों की भाषाएँ, बहुत दिनों से साथ रहते-रहते, अपनी ऐसी सामान्य विशेषताएँ उत्पन्न कर चुकी हैं कि यह मानना होगा कि पुराने भाषा-परिवारों की सीमाएँ टूट रही हैं और एक नवीन भारतीय भाषा-परिवार का निर्माण हो रहा है। इसमें आर्य और द्रविड़ दोनों परिवारों की भाषाएँ हैं। यह स्थापना भी महत्वपूर्ण है। इससे उसी मान्यता की पुष्टि होती है कि भाषा-परिवार एक दूसरे से कटे हुए शून्य में परिवर्धित नहीं होते। इस मान्यता को ध्यान में रखते हुए आदि भाषाओं के निर्माण और विघटन के प्रश्न पर फिर विचार करना चाहिए। इस सम्भावना को पहले से ही अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भिन्न भाषा-परिवारों के मूलतत्व भी एक दूसरे के सम्पर्क से विकसित हुए होंगे।

भारत के प्रमुख चार भाषा-परिवारों ने एक दूसरे को कितना प्रभावित किया है और वे आपस में किन सूत्रों से बँधे हुए हैं, इस बात का पूरी तरह पता तभी लगाया जा सकता है जब इन परिवारों की भाषाओं का पूरा विवरण सुलभ हो। अभी स्थिति यह है, यह विवरण अधूरा है और जितना भी सुलभ है, उस पर इस दृष्टि से—परिवारों की परस्पर सम्बद्धता की दृष्टि से—विचार नहीं हुआ। अधिकतर काम इस बात की खोज-बीन को लेकर हुआ है कि आर्यों की भाषाओं में कितने आर्येतर शब्द आए हैं। बरो और एमेनो का सारा काम इसी धारणा के अनुरूप है। यह धारणा इस पूर्वाग्रह पर निर्भर है कि भारत के चार भाषापरिवार अपने मूल तत्वों का विकास, अलग-थलग रहकर, एक दूसरे से सम्पर्क में आने के पहले ही, कर चुके थे। इसलिए प्राचीनकाल में इन भाषा-परिवारों के निर्माण के प्रश्न पर पुनर्विचार की गुंजाइश अब भी है।

इस प्रश्न का निर्णय आगे चलकर जैसा भी हो, इस बात से तो इन्कार नहीं किया जा सकता कि चारों भाषा-परिवारों में किसी एक का भी—कम-से-कम भारत के सन्दर्भ में—इतिहास तब तक नहीं लिखा जा सकता जब तक चारों का पूरा विवरण प्राप्त न हो। अभी किसी भी भाषा-परिवार का पूरा विवरण प्राप्त नहीं है। तब भाषा-विज्ञान के पण्डित कैसे कह सकते हैं कि भारतीय आर्य भाषाओं के इतिहास के बारे में जो कुछ कहना था, वह सब कहा जा चुका है, अब जहाँ-तहाँ दो-चार छोटी-मोटी बातें ही जोड़ी जा सकती हैं?

भारत की जिन भाषाओं का सबसे अधिक सर्वेक्षण किया गया है, वे सब आर्य परिवार की हैं। यह काम ग्रियर्सन और उनके सहयोगियों ने अपने विराट् ग्रन्थ **लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इण्डिया** में किया। इस ग्रन्थ के लिए जिन लोगों ने सामग्री जुटाई, वे भाषाविज्ञान के प्रशिक्षित कर्मचारी नहीं थे और उस समय तक भाषाविज्ञान में

ध्वनियों के सही विवरण देने के कौशल का विकास भी न हुआ था, यह आम आलोचना लिंग्विस्टिक सर्वे के बारे में लिखित और अलिखित रूप में भाषाविज्ञान के आधुनिक पण्डितों से सुनने को मिल जाती है। ग्रियर्सन के विवेचन में जो राजनीतिक दाँव-पेंच हैं और जिनको नये पण्डितों ने भी अपनाया है, उनकी आलोचना सुनने को नहीं मिलती। किन्तु यह सत्य है कि इतने बड़े पैमाने पर लिंग्विस्टिक सर्वे जैसा भाषा-सर्वेक्षण संसार में अन्यत्र कहीं भी नहीं हुआ। समृद्ध अमरीका के सर्व-साधन-सुलभ भाषा-विज्ञानी भी, जहाँ नवीन सामग्री नहीं मिलती, वहाँ ग्रियर्सन का ही सहारा लेते हैं (यथा **करेन्ट ट्रेन्ड्स इन लिंग्विस्टिक्स** के ५वें खण्ड में रामानुजन् और मसीका)। लिंग्विस्टिक सर्वे में द्रविड़-मुंडा-नाग भाषा-परिवारों को अंशतः ही लिया गया है। एमेनो और बरो का यह कहना बिलकुल सही है कि द्रविड़ भाषा-परिवार का इतिहास तब तक नहीं लिखा जा सकता जब तक लिखित और अलिखित, प्राप्य और दुष्प्राप्य, समस्त द्रविड़ भाषाओं का विवरण प्रशिक्षित भाषा-विज्ञानियों द्वारा प्रस्तुत नहीं कर दिया जाता। आर्य भाषाओं की अपेक्षा द्रविड़ भाषाओं पर कार्य कम हुआ है (यद्यपि कुछ कार्य बहुत अच्छा हुआ है जैसा आर्य भाषाओं पर नहीं हुआ)। द्रविड़ भाषाओं की अपेक्षा मुंडा भाषाओं पर और भी कम काम हुआ है, मुंडा भाषाओं की अपेक्षा नाग भाषाओं पर जो काम हुआ है वह और भी कम है। इन चारों भाषा-परिवारों को भारतीय सन्दर्भ में परस्पर सम्बद्ध रूप में परखा गया हो, ऐसा काम शून्य के बराबर है। जो अज्ञात भाषाएँ या भाषा परिवार हमारी जीवित या स्वर्गीय भाषाओं पर अपने अस्तित्व के चिन्ह छोड़कर तिरोहित हो गई हैं, उनका कोई हिसाब नहीं है। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि सम्पूर्ण भारत के सन्दर्भ में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का आरम्भ होना अभी बाकी है।

यह आशा की जा सकती थी कि भारत के स्वाधीन होने पर इस काम की ओर लोग सबसे पहले ध्यान देंगे किन्तु जिन सांस्कृतिक कामों पर पैसा खर्च हुआ, उनमें भाषा-सर्वेक्षण का हिस्सा ही सबसे कम रहा है। इस तरह के काम में भारत सरकार और पड़ोसी देशों की सरकारें, भारत के भाषाविज्ञानी तथा पड़ोसी देशों के भाषाविज्ञानी परस्पर सहयोग कर सकते हैं। यह सहयोग आवश्यक है और इससे भाषाविज्ञान के क्षेत्र में बहुत बड़ा काम हो सकता है। भारत में भाषाविज्ञान के अनेक केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। ऐसे केन्द्रों में अनेक भाषाविज्ञानी काम करते रहे हैं जिन्हें इंग्लैंड और अमरीका में प्रशिक्षित होने का अवसर मिला था। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सरकारों और भाषा-विज्ञानियों में सहयोग हो चाहे न हो, राष्ट्रीय स्तर पर यह सहयोग सर्वथा सम्भव है। यह बात नहीं है कि इन केन्द्रों में अभी परस्पर असहयोग हो; सब एक दूसरे को जानते बूझते हैं, सम्मेलनों और संगोष्ठियों में मिलते भी रहते हैं, अनेक सरकारी गैरसरकारी योजनाओं में पूरा या अधूरा काम भी करते हैं किन्तु यह सत्य है कि भारत के सन्दर्भ में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के विकास के उद्देश्य से राष्ट्रीय स्तर पर जैसा योजनाबद्ध कार्य होना चाहिए, वैसा कार्य ये केन्द्र नहीं कर रहे हैं। यह बात भी सही है कि हिन्दी-भाषी प्रदेश में भाषाविज्ञान के अनेक केन्द्र हैं किन्तु हिन्दी-भाषी प्रदेश की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इनमें भी जिस तरह के सहयोग और सम्पर्क से जैसा

सुनियोजित कार्य हो सकता है, वैसे कार्य के लिए अभी तक प्रयत्न नहीं किया गया। सम्भव है ऐतिहासिक भाषाविज्ञान और भाषाओं के विवरण प्रस्तुत करने के काम को बहुत से भाषाविज्ञानी अनावश्यक समझते हों।

आए दिन यहाँ दंगा-फसाद भाषाओं को लेकर हुआ ही करता है। इस तरह के झगड़ों का सम्बन्ध केवल वर्तमान भाषा सम्बन्धी स्थिति से नहीं है वरन् भाषाओं के पुराने इतिहास से, उस इतिहास की हमारी गलत-सही जानकारी से है। यदि इस देश का सामाजिक राजनीतिक इतिहास ज्ञान की वृद्धि के लिए और देश की प्रगति के लिए आवश्यक है, तो भाषा-सम्बन्धी इतिहास भी आवश्यक है। वास्तव में सामाजिक इतिहास से सम्बन्धित बहुत सी मान्यताओं का आधार भाषाओं के इतिहास के बारे में हमारी समझ है। जहाँ पुरातत्व की सामग्री सुलभ नहीं है, जहाँ इतिहास के प्राचीन लिखित दस्तावेज प्राप्य नहीं है, वहाँ इतिहासकार भाषाओं से प्राप्त सामग्री के सहारे ही प्राचीन युगों के अन्धकार में अपनी राह टटोलते हैं। बहुत से लोग सांस्कृतिक इतिहास से भाषाविज्ञान को अलग करके देखते हैं किन्तु भाषाओं के इतिहास को उन्हें बोलने वालों के इतिहास से पूरी तरह अलग करना असम्भव है। भाषा मनुष्य की महत्वपूर्ण अर्जित सम्पत्ति है। हमारे पूर्वजों ने किस तरह की भाषा-सम्पत्ति अर्जित की, इसकी जानकारी अपनी राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान के लिए आवश्यक है। यह भाषा-निधि न केवल हमारे लिए गौरव की वस्तु है वरन् उन सभी लोगों के लिए आकर्षण और गौरव की वस्तु होनी चाहिए जिन्हें मानव-संस्कृति से दिलचस्पी है। जो मानव-संस्कृति द्रोही हैं, जिन्हें मनुष्यता से कोई वास्ता नहीं, वही भाषाविज्ञान के क्षेत्र में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के प्रति उदासीन रह सकते हैं।

पुराना इतिहास वर्तमान परिवर्तनशील स्थिति से जुड़ा हुआ है। आज जो भाषाएँ बोली जाती है, उनका वर्तमान विवरण प्राप्त किये बिना उनका प्राचीन इतिहास नहीं लिखा जा सकता। भाषाविज्ञान में अतीत की जानकारी के लिए सबसे पहले वर्तमान की जानकारी आवश्यक है। भारत में भाषा-सम्बन्धी वर्तमान स्थिति तेजी से बदल रही है। ५० वर्ष पूर्व जो बहुत से शब्द हम बचपन में सुनते थे, अब गाँव में सुनाई नहीं देते। परिनिष्ठित भाषाएँ शिक्षा के प्रसार के साथ गाँवों में बोलियों का रंग-रूप बदल रही हैं। इसीलिए भाषाओं के विवरण प्रस्तुत करने का काम शीघ्रता से होना चाहिए। इस विवरण में परिनिष्ठित भाषाओं से अधिक बोलियों पर ध्यान देना आवश्यक है और यही काम जरा मुश्किल है। ये बोलियाँ केवल आर्य भाषापरिवार या द्रविड़ भाषापरिवार के अन्तर्गत होंगी तो काम न होगा। जिन भाषापरिवारों के बारे में हमें अपेक्षाकृत कम जानकारी है, उन पर पहले और अधिक ध्यान देना ज्यादा आवश्यक है। किन्तु हम इतिहास के प्रति उदासीन रहते आये हैं। भारतीय संस्कृति, प्राचीन और नवीन, में बहुत से मूल्यवान तत्व हैं किन्तु इनमें इतिहास-तत्व नहीं है। राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन का इतिहास लिखने वाले भारतीय विद्वान् अधिकतर विदेशियों द्वारा संकलित और प्रकाशित सामग्री का सहारा लेते हैं। तब भाषाओं के इतिहास के लिए जो सामग्री सुलभ है, उसे विदेशियों के अलावा और कौन जुटाएगा? कोई भाषा-

परिवार हो, परिनिष्ठित भाषा हो चाहे बोली हो, आधारभूत सामग्री मिलती है तो सामान्यतः किसी विदेशी के प्रयत्न के फलस्वरूप। शायद आर्थिक क्षेत्र में भारत इतना परनिर्भर नहीं है जितना भाषाविज्ञान के क्षेत्र में। यदि भाषाविज्ञानी राष्ट्रीय आत्म-सम्मान की भावना से नितान्त असम्पृक्त न हों, तो उनके लिए यह स्थिति चिन्तनीय होनी चाहिए।

इस देश में अनेक धर्म-प्रचारक हैं। उन्होंने धर्मप्राण भारत में ही नहीं, भौतिकवादी यूरुप और अमरीका में भी अपनी धर्म-ध्वजा फहरा दी है। किन्तु यहाँ बहुत से आदिवासी इलाके हैं जहाँ निरक्षर पिछड़े हुए लोगों को साक्षर बनाने का काम ईसाई मिशनरियों ने अपने हाथ में ले रखा है। उन्नीसवीं सदी और उससे पहले भी मिशनरियों का प्रयत्न यह होता था कि यहाँ की भाषाएं सीखें, उनके व्याकरण लिखें और कोश बनाएँ जिससे उन भाषाओं के माध्यम से जनता में धर्म-प्रचार हो सके। इसीलिए भारतीय भाषाविज्ञान का गहरा सम्बन्ध ईसाई मिशनरियों के काम से है। बीसवीं सदी की विशेषता यह है कि आदिवासियों की बोलियों के अलावा वे अंग्रेजी प्रचार पर विशेष ध्यान देते हैं। स्वाधीन भारत के पिछले पच्चीस-तीस वर्षों में अंग्रेजी भाषा का अभूतपूर्व प्रचार और प्रसार हुआ है। भारत में जिन्हें अपनी भाषा की प्राचीनता पर सबसे अधिक गर्व था, उन्होंने इस प्रचार-प्रसार में सबसे अधिक योग दिया; तब कोई आश्चर्य नहीं कि नागालैण्ड में लोगों ने अंग्रेज़ी को अपनी जातीय-भाषा घोषित किया। अनेक आदिवासी इलाके धर्म-प्रचार के बहाने विघटनकारी षड्यन्त्रों के अड्डे बने हुए हैं। जिन विदेशी ताकतों को भारत की राष्ट्रीय एकता और प्रभुसत्ता फूटी आँखों नहीं सुहाती, वे करोड़ों रुपये इन पिछड़े हुए इलाकों पर खर्च कर रहे हैं कि धर्म-प्रचार और निरक्षरता-निवारण के साथ-साथ देश के विघटन के लिए इन्हें केन्द्रों के रूप में इस्तेमाल किया जा सके। भाषाविज्ञानियों को इस ओर ध्यान देना चाहिए या अपनी प्रयोगशाला के भीतर दुनिया से बेखबर बैठे रहना चाहिए? भाषाविज्ञान चाहे ऐतिहासिक हो चाहे अनैतिहासिक, भाषाओं के व्यवहार, भाषाओं के विकास, भाषाओं के माध्यम से मानवजाति की प्रगति से उसका गहरा सम्बन्ध है। यदि पिछड़ी हुई जातियों के विकास के लिए हम उनकी भाषाओं को शिक्षा और साहित्य का माध्यम बनाने में सहायता नहीं देते तो हम भाषाविज्ञानी के रूप में अपना दायित्व नहीं निबाहते। अमरीका में भाषाविज्ञान का बहुत विकास हुआ किन्तु वहाँ के रेडइण्डियन लोगों को अपनी भाषाओं के माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक विकास करने का मौका नहीं मिला। यह कैसा भाषाविज्ञान है कि भाषाएँ नष्ट होती रहीं, उनके बोलने वाले पददलित होते रहे और भाषाविज्ञान फलता-फूलता रहा। यह विचित्र स्थिति है। भारत में हम अपनी भाषाओं के विकास के लिए भाषाविज्ञान का सक्रिय सहयोग चाहते हैं। जिन प्रदेशों में परिनिष्ठित भाषाओं का अभाव है, जहाँ बहुत सी बोलियों का समूह दिखाई देता है, जहाँ जातीयता का विकास नहीं हुआ, जहाँ लिखित भाषा का रूप है ही नहीं, वहाँ इन जातियों, कबीलों और भाषाओं की प्रगति के लिए भाषाविज्ञान को आगे आना है। जहाँ भाषाओं के लिखित रूप सुलभ हैं, जहाँ परिनिष्ठित भाषाएँ प्रचलित हैं, वहाँ उनके अगले विकास के

लिए भाषाविज्ञान को काम करना है। भाषाओं की वर्तमान स्थिति को लेकर इस दृष्टि से जो भी काम किया जायगा, वह ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के लिए उपयोगी होगा। किन्तु भाषाविज्ञान ऐतिहासिक हो चाहे अनैतिहासिक, भारत में उसकी पहली मान्यता यह है कि भाषाविज्ञान का प्रशिक्षण भारतीय भाषाओं में हो ही नहीं सकता। केवल अंग्रेजी के माध्यम से वैज्ञानिक भाषाशास्त्र का शिक्षण सम्भव है। ऐसे परमुखापेक्षी भाषाविज्ञान से कैसे आशा की जाय कि वह भारतीय भाषाओं की प्रगति में सहायक होगा ? उसके लिए भारतीय भाषाएँ प्रयोगशाला के लिए सामग्री जुटाने का साधन हो सकती हैं, उनकी प्रगति से उसे कोई सरोकार नहीं है।

यह आवश्यक नहीं है कि भारत के सन्दर्भ में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पर काम शुरू करने के लिए उस दिन की राह देखी जाय जब भारत की और भारत के पड़ोसी देशों की—अर्थात् यूरुप, एशिया और उत्तरी अफ्रीका की—तमाम भाषाओं का सर्वेक्षण पूरा हो जाय। दोनों काम साथ चल सकते हैं। जैसे-जैसे नई विवरणात्मक सामग्री प्राप्त होती जाय, वैसे-वैसे भाषाओं के इतिहास से सम्बन्धित मान्यताओं को परिवर्धित या परिवर्तित किया जा सकता है। अभी भी यथेष्ट सामग्री प्राप्त है, विशेषकर भारत की आर्य और द्रविड़ भाषाओं के सम्बन्ध में। आवश्यकता इस बात की है कि इस सामग्री का अध्ययन नए दृष्टिकोण और नई पद्धति से किया जाय। अब तक आर्य और द्रविड़ भाषाओं की सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन इस दृष्टि से किया गया कि ये दोनों भाषा-परिवार मूलतः परस्पर असम्बद्ध रहने की दशा में विकसित हुए हैं। ऐसा होना अनिवार्य नहीं है। कुछ लोग यह मानते हैं कि भाषाओं में पारिवारिक (जेनेटिक) सम्बन्ध नहीं होते। इनका कहना है कि भाषाएँ कुछ अलग-अलग वर्गों में (टाइपों में) बाँटी जा सकती हैं और ये टाइप वाले सम्बन्ध ही मुख्य सम्बन्ध हैं। यह दृष्टि ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के लिए सहायक है किन्तु अपने में पूर्ण नहीं, एकाङ्गी है। यह उस बहुत सी भाषा-सामग्री को छोड़ देती है जिसके आधार पर भाषाएँ एक दूसरे के समान दिखाई देती हैं। यह दृष्टि इस ऐतिहासिक तथ्य को अस्वीकार करती है कि किसी एक भाषा के बोलने वाले अपने सामाजिक गठन—गण या जाति—के टूटने पर विभाजित भी होते हैं। सामाजिक गठन के न टूटने पर उसके काफी सदस्य किन्हीं विशेष परिस्थितियों में दूसरी जगह जाकर बस भी सकते हैं। पिछले चार सौ वर्षों में ब्रिटेन की अंग्रेज़ीभाषी जाति के हिस्से अपना देश छोड़कर संसार के दूर-दूर भागों में—आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, अफ्रीका, अमरीका आदि में—जाकर बस गये हैं। मूल जाति से अलग होकर नये-नये प्रदेशों में विकसित होने वाली इन भाषाओं में परस्पर काफी भिन्नता है यद्यपि इतनी नहीं है कि इन्हें भिन्न भाषा की संज्ञा दी जा सके। टाइप के अनुसार इन भिन्न-भिन्न देशों में अंग्रेज़ी का वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाय तो कम से कम ध्वनितन्त्र की दृष्टि से अमरीकी अंग्रेज़ी ब्रिटिश अंग्रेज़ी से भिन्न टाइप की भाषा सिद्ध होगी। किन्तु भाषा की सारी सामग्री देखने पर यह उचित ही है कि ब्रिटिश और अमरीकी अंग्रेज़ी को एक ही भाषा का नाम दिया जाता है।

अंग्रेज़ी के प्रसार से पहले इससे मिलता-जुलता अरबी भाषा का प्रसार है। मध्य-

पूर्व में जहाँ पहले सामी परिवार की अन्य भाषाएँ बोली जाती थीं, वहाँ उसी परिवार की एक भाषा अरबी का चलन हुआ। इसका प्रवेश मध्यपूर्व के अलावा उत्तरी अफ्रीका में भी हुआ। इराक से लेकर मोरक्को तक जो अरबी बोली जाती है, वह एक-रूप अरबी नहीं है। शिष्ट जनों की भाषा से अलग हटकर सामान्य जनों की भाषा अपनी जातीय विशेषताएँ लिए भिन्न-भिन्न प्रदेशों में विकसित हो रही है। इन भाषाओं में निश्चय ही पारिवारिक सम्बन्ध है। टाइप के अनुसार वर्गीकरण की पद्धति वास्तव में उन कठिनाइयों से बच निकलने का एक मार्ग है जो भाषापरिवार से सम्बन्धित अवैज्ञानिक धारणाओं से उत्पन्न होती हैं।

किसी भाषा के बोलने वाले जब मूल प्रदेश छोड़कर दूसरी जगह बसने जाते हैं, तो वह नया प्रदेश वीरान न हुआ तो वहाँ के निवासियों से उनका सम्पर्क होता है। यह सम्पर्क किस प्रकार का है, यह इस पर निर्भर है कि दो भिन्न भाषाएँ बोलने वाले लोगों की सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषागत स्थिति कैसी है। एक स्थिति यह है कि मूल प्रदेश छोड़कर जाने वाले लोग दूसरे स्थानों में विजेता बनें, वहाँ के निवासियों का नाश कर दें या उन्हें अपना गुलाम बना लें या दोनों ही एक प्रदेश में रहें, लड़ाई-झगड़ों के बावजूद कोई किसी का नाश न कर पाए और वे एक-दूसरे की भाषा को प्रभावित करें। जर्मनी से जब ऐंगल और सैक्सन गणों के लोग ब्रिटेन पहुँचे तो उन्होंने वहाँ के केल्त निवासियों का या तो सफाया कर दिया या उन्हें 'इंग्लैण्ड' से बाहर वेल्स, स्कॉटलैण्ड और आयरलैण्ड में खदेड़ दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज़ी भाषा में केल्त जनों की भाषा के तत्व बहुत ढूँढने पर ही जहाँ-तहाँ मिल पाते हैं। किन्तु इससे पहले जब रोमन लोगों ने ब्रिटेन पर अधिकार किया था तब उन्होंने न तो मूल निवासियों का सफाया किया, न उनकी भाषा का दमन किया। आगे चलकर अंग्रेज़ों के देश पर फ्रांस से आने वाले नार्मन लोगों ने अधिकार किया तो इसका बहुत गहरा असर अंग्रेज़ी भाषा पर हुआ। नार्मन लोगों की पराधीनता से मुक्त होने पर भी अंग्रेज़ी-भाषी जाति के बुद्धि-जीवी लैटिन और फ्रेंच से बहुत ज्यादा प्रभावित हुए। इसका परिणाम यह है कि मिल्टन की भाषा में लैटिन तत्व इटली के महाकवि दान्ते की भाषा के लैटिन तत्वों से बहुत ज्यादा है। वर्तमान अंग्रेज़ी शब्द-भण्डार की दृष्टि से जर्मन की अपेक्षा फ्रेंच के अधिक निकट है।

भारत के हज़ारों साल से आर्य और द्रविड़ भाषाएँ बोलने वाले एक साथ रहते आए हैं। यहाँ ये दोनों भाषापरिवार निरन्तर एक दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं। अंग्रेज़ों और अमरीकियों के लिए यह सोचना स्वाभाविक हो सकता है कि जैसा व्यवहार उनके पूर्वजों ने ब्रिटेन में केल्त जनों के साथ और अमरीका में रेडइण्डियन जनों के साथ किया, वैसा ही व्यवहार प्राचीन भारत में आर्यों ने द्रविड़ों के साथ किया होगा। किन्तु ऐसा होना अनिवार्य नहीं है।

द्रविड़ भाषाओं के सन्दर्भ में न केवल संस्कृत की रचना और विकास पर विचार करना आवश्यक है वरन् उस इन्डोयूरोपियन भाषा की रचना और विकास पर भी विचार करना आवश्यक है जिसकी एक शाखा इण्डोआर्यन या संस्कृत मानी जाती है।

यूरुप की नवीन और प्राचीन भाषाओं के अनेक तत्वों की व्याख्या द्रविड़ भाषाओं के सन्दर्भ को ध्यान में रखे बिना हो ही नहीं सकती।

भाषा-तत्वों में मूल शब्द-भण्डार का महत्व अन्यतम है। इसी आधार पर कोल्ड-वेल से लेकर एमेनो और बरो तक भाषाओं की परिवारगत समानताएँ निश्चित करते रहे हैं। इस धारणा का उल्लेख स्तालिन ने भाषाविज्ञान पर अपने निबन्ध में किया था। करेन्ट ट्रेन्ड्स इन लिंग्विस्टिक्स के प्रथम खण्ड में सोवियत भाषा-विज्ञान पर लिखते हुए कई विद्वानों ने इस बात पर जोर दिया है कि जब तक स्तालिन जीवित थे, तब तक इस धारणा को बहुत महत्वपूर्ण माना गया। उनके मरने के बाद, व्यक्ति-पूजा के चलन के खिलाफ आन्दोलन शुरू होने के बाद, इस धारणा के बारे में सोवियत भाषाविज्ञानी चुप्पी साध गये। इससे विद्वानों ने यह सिद्ध किया कि मूल शब्द-भण्डार सम्बन्धी धारणा निरर्थक थी और सांस्कृतिक क्षेत्र में सोवियत शासकों के अवांछित हस्तक्षेप का प्रमाण थी। वास्तव में ये विद्वान् मान लेते हैं कि मूल शब्द-भण्डार-सम्बन्धी कल्पना स्तालिन की अपने मन की उपज थी। यह धारणा स्तालिन से बहुत पहले से प्रचलित थी और इसका स्पष्ट उल्लेख ब्लूमफील्ड के अलावा वर्तमान अमरीकी भाषाविज्ञानियों की अनेक रचनाओं में मिलता है। मूल शब्द-भण्डार की धारणा के बिना दो भाषाओं की तुलना करना कठिन है। किन्तु भाषाविज्ञानी यह भी मानते हैं कि भाषा-तत्वों में शब्द-भण्डार वाला तत्व ही ऐसा तत्व है जिसकी स्थिरता पर सबसे कम भरोसा किया जा सकता है। इसीलिये पूरे शब्द-भण्डार पर ध्यान केन्द्रित करने के बदले मूल शब्द-भण्डार पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है। यह 'मूल' शब्द सापेक्ष है। मूल शब्द-भण्डार में सर्वनाम या क्रियापद, पारिवारिक-प्राकृतिक परिवेश से सम्बन्धित शब्द, कृषि, सामान्य उद्योग आदि से सम्बन्धित शब्दावली आती है। किन्तु यह शब्दावली स्थिर नहीं है और इसे किसी मूल आदि-भाषा से जोड़ना भ्रामक है।

मूल शब्द-भण्डार की तरह मूल व्याकरण-विशेषताओं की कल्पना की जा सकती है किन्तु ये विशेषताएँ अपेक्षाकृत स्थिर होते हुए भी नितान्त अपरिवर्तनशील नहीं हैं। ब्लूमफील्ड का यह कहना सही है कि भाषा-तत्व कम या अधिक स्थिर हो सकते हैं किन्तु उनमें शाश्वत तत्व कोई नहीं है।

पुरानी तुलनात्मक पद्धति में ध्वनि सम्बन्धी नियमों पर बहुत विचार किया गया था। इसी क्षेत्र में भाषाविज्ञानियों का दावा था कि उन्होंने ऐसे कठोर नियम ढूंढ निकाले हैं जिनकी तुलना भौतिक विज्ञान के नियमों से की जा सकती है। यह नियम-रचना लिखित रूप में पाई जाने वाली भाषाओं के परिनिष्ठित रूप को ध्यान में रखकर की गई थी। किन्तु परिनिष्ठित भाषाओं की सीमा के भीतर ही नियमों के बहुत से अपवाद निकल आये थे। जब परिनिष्ठित भाषाओं के समानान्तर बोलियों की कल्पना की जायगी तब ये कठोर नियम और भी शिथिल होते दिखाई देंगे। किन्तु तुलनात्मक पद्धति में, और भाषा के विवरणात्मक अध्ययन में भी, ध्वनि-तत्व बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इन्हीं ध्वनि-तत्वों से शब्द रचे जाते हैं और यह शब्द-रचना-प्रक्रिया शताब्दियों तक चलती है। ध्वनि-तत्वों से अधिक महत्वपूर्ण है वह रचना-प्रक्रिया जिसके अन्तर्गत सीमित से दिखने वाले

मूल ध्वनि-तत्व निरन्तर किसी असीम प्रक्रिया द्वारा आवश्यकतानुसार नये-नये शब्द रचते जाते हैं। वाक्य रचना में जैसे कुछ मूल रूपों के आधार पर हम निरन्तर नये-नये शब्द रचते जाते हैं, वाक्य रचना में जैसे कुछ मूल रूपों के आधार पर हम निरन्तर नये-नये वाक्य रचते हैं, वैसे ही हम मूल ध्वनि-तत्वों के आधार पर शब्द-रचना के कुछ मूल रूपों के सहारे अनन्त शब्द-भण्डार रचते चले जाते हैं। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि भाषा के सभी स्तर आपस में जुड़े हुए हैं, एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और इसी से भाषा एक सजीव, संश्लिष्ट वास्तविकता के रूप में सामने आती है। किसी एक तत्व को अलग करके उसका अध्ययन करने से —यद्यपि अक्सर ऐसा करना आवश्यक होता है—हमें आंशिक सत्य ही प्राप्त हो सकता है।

भाषाओं की तुलना करते समय केवल समानताओं पर ध्यान देना वांछनीय नहीं है, जो भिन्नताएँ हैं उन्हें भी देखना चाहिए। भिन्नताओं से समानता का और समानताओं से भिन्नता का पता चल सकता है। अंग्रेजी के कुछ शब्द ऐसे हैं जो ब्रिटेन में नहीं बोले जाते, अमरीका में बोले जाते हैं। इससे भिन्नता का पता चला। कुछ शब्द ऐसे हैं जो पहले ब्रिटेन में बोले जाते थे पर अब अमरीका में ही सुरक्षित रह गये हैं। इससे पुरानी समानता का पता चला। वैदिक भाषा में ऐसे अनेक शब्द हैं जो लौकिक संस्कृत में नहीं हैं किन्तु वर्तमान भाषाओं में हैं। लौकिक संस्कृत वैदिक संस्कृत से भिन्न सिद्ध हुई किन्तु इसके साथ वैदिक संस्कृत और आधुनिक भाषाओं के कुछ तत्वों की समानता का पता चला। इससे यह सम्भावना भी सामने आई कि लौकिक संस्कृत में जो तत्व लिपिबद्ध नहीं हैं, वे उस समय परिनिष्ठित नहीं थे। यह बात वैदिक भाषा के लिए भी कही जा सकती है। इसके साथ ही संस्कृत में ऐसे बहुत से शब्द हैं जो न इन्डोयूरोपियन परिवार की किसी भाषा में हैं, न द्रविड़ आदि किसी अन्य भारतीय भाषा-परिवार में। भाषा परिवार की प्रचलित धारणाओं के अनुसार इन शब्दों की व्याख्या नहीं हो सकती। ऐसे ही जर्मन भाषा कुल में ऐसे बहुत से शब्द हैं जो ग्रीक, लैटिन या संस्कृत में नहीं हैं अथवा ग्रीक में ऐसे शब्द हैं जो लैटिन-जर्मन-संस्कृत में नहीं हैं। शब्द-भण्डार का अध्ययन बार-बार भाषा-परिवारों की सीमाएँ तोड़ता है। सम्भव है, जितने भाषा-परिवार हमने मान लिए हैं, प्राचीन काल में उनकी संख्या इससे अधिक रही हो। कभी-कभी यह भी देखने में आता है कि ग्रीक या लैटिन का कोई शब्द संस्कृत में नहीं है किन्तु आधुनिक भारतीय भाषाओं में है अथवा स्लाव भाषा का कोई शब्द न तो ग्रीक, लैटिन, संस्कृत में है, न आधुनिक भारतीय भाषाओं में है किन्तु द्रविड़ भाषाओं में है। इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन में प्राचीन लिखित भाषाओं के साथ आधुनिक भाषाओं पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। दोनों के समग्र अध्ययन से ही तुलनात्मक पद्धति ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में अपनी भूमिका पूरी कर सकती है।

यूरप और एशिया के भाषापरिवारों का इतिहास भारत के भाषापरिवारों के इतिहास से जुड़ा हुआ है। भारत के भाषापरिवारों का इतिहास वर्तमान भारतीय भाषा परिवारों के सर्वेक्षण के बिना नहीं लिखा जा सकता। भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण-कार्य केवल भारत के लिए नहीं, समस्त एशिया और यूरप के लिए महत्वपूर्ण है। अन्य

परिवारों को छोड़ दें तो केवल इन्डोयूरोपियन परिवार का इतिहास जानने के लिए यह सर्वेक्षण आवश्यक है। जब तक हम संस्कृत को आर्य विजेताओं की भाषा मानते रहेंगे, तब तक इन्डोयूरोपियन परिवार के विवेचन के लिए ऐसा सर्वेक्षण निरर्थक लगेगा। किन्तु जहाँ हम इन्डोयूरोपियन परिवार का विवेचन वृहत्तर भाषाई क्षेत्र के सन्दर्भ में करेंगे, जहाँ इस परिवार की भारतीय पृष्ठभूमि पहचानेंगे, वहाँ वह सर्वेक्षण महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। इन्डोयूरोपियन परिवार पर बहुत काम हुआ है किन्तु यह काम इन्डोयूरोपियन परिवार को उसके समूचे भाषाई सन्दर्भ से काटकर किया गया है। नवीन सामग्री सुलभ होने पर इस विस्तृत भाषाई सन्दर्भ का ज्ञान जितना ही समृद्ध होगा, उतना ही इन्डोयूरोपियन परिवार का विवेचन करने में सुविधा होगी। भाषाई क्षेत्र भारत से जिन पड़ोसी भाषा परिवारों का सम्बन्ध है, उनका विवेचन करने में भी सुविधा होगी।

भाषाविज्ञान में सामी और इन्डोयूरोपियन परिवार दो छोरों पर पूरे अलगाव की स्थिति में हैं। तुर्क-मंगोल और फिनो-उग्रियन एक जगह हैं, सामी परिवार दूसरी जगह। आर्य-द्रविड़-कोल नाग समुदायों से सामी और इन्डोयूरोपियन समुदायों का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। मैंने इस पुस्तक में थोड़ी-सी सामग्री की ओर संकेत किया है, जिससे इन परिवारों का आपसी सम्बन्ध पहचानने में सहायता मिले। इन्डोयूरोपियन परिवार की भारतीय पृष्ठभूमि की तरह सामी-तुर्क-मंगोल परिवारों की भी भारतीय पृष्ठभूमि है। प्राचीनकाल में इन परिवारों की भाषाएँ बोलने वाले परस्पर निकट सम्पर्क में रहे हैं। यह स्वाभाविक है कि उनमें भाषातत्वों का आदान-प्रदान हुआ हो। इस सारी विनिमय प्रक्रिया की केन्द्रभूमि है भारत। इसी कारण ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की प्रगति के लिए भारतीय भाषाओं का अध्ययन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

० ० ०

भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी

[खंड २ : इंडोयूरोपियन परिवार की भारतीय पृष्ठभूमि]